

हिन्दी साहित्य का इतिहास

प्रथम खण्ड
आदिकाल और भक्तिकाल

डा० कृष्णमन्द श्रीवास्तव

एम० ए० हिन्दी (प्रयाग)

एम० ए० तुलनात्मक भाषा विज्ञान (कलकत्ता)

बी० ए० (कलकत्ता)

प्राध्यापक हिन्दी विभाग

कलकत्ता विश्वविद्यालय

कलकत्ता



प्रथम प्रकाशन

१९५८ - कलकत्ता

१५ - १९५८

५९ - १९५८

द्वितीय

(C) डा० दयानन्द ग्रीवास्थ



प्रकाशक

अमिताभ प्रकाशन

२० बाल मुकुन्द मल्ल रोड

कलकत्ता-७

फोन ३४ १६३६

दीपावली

सम्वत् २०२१

प्रकाशन सं० १९६३

आमरण :

सनत् ७२

मुद्रक :

रेफ्ल भाट प्रेस

३१ वरुतावा स्ट्रीट

कलकत्ता-७

सूच्य :

पद्म वपदे

पूज्य गुरु प्रोफेसर सुकुमार सोम
एम० ए० पी एच० डी०

और

पूज्य पिता श्रीबेणोमाथय ठासरो

को

(C) डा० दयानन्द श्रीवास्तव



प्रकाशक :

अमिताभ प्रकाशन

२० बाल मुकुन्द मञ्जर रोड

कलकत्ता-९

फोन : ३४ १४३४

दीपावली

सन् २०२१

प्रकाशन सं० १६६५

आयतन :

सन १९८१

सूचक :

रेफरेंस आर्ट प्रेस

३१ बंगल्ला स्ट्रीट

कलकत्ता-९

सूचक :

पृष्ठ संख्या

प्रणम्य गुरु प्रोफेसर सुकुमार रोम

एम० ए० पी एच० डी०

और

प्रणम्य पिता श्रीबेणीमाधव कालखी

को

विषय-सूची

१—आदि काल

आदि काल का स्वल्प विस्तरेण १ हिन्दी साहित्य का इतिहास-दर्शन और आदि काल २ आदि काल की काव्य विधाओं के स्वरूप विकास का इतिहास १३, सिद्ध साहित्य २७ सिद्ध साहित्य का दर्शन और भाव पक्ष ४१ काव्य रूप और अभिव्यञ्जना प्रणाली १४० भाषा ५६ ।

(१) आदि काल का काव्यस्वरूप—रासो काव्य धारा ६२ रासक काव्य श्रुतियों का परिचय ६६ ।

(२) नाम पन्थी काव्य धारा—नाम पन्थ का स्वल्प विस्तरेण १५६ नाम पन्थ का प्रागुक्त काल १६७, नाम पन्थ के सावकों की परम्परा १६९ दर्शन और भाव पक्ष १८६ काव्य उत्पत्ति और अभिव्यञ्जना प्रणाली १९४ भाषा २०२ । विद्यापति २०६ विद्यापति की रचनायें २१६ विद्यापति के पदों का भाव पक्ष २२४ विद्यापति की भाषा २४३ ममीर कुसरो २४४ और काव्य २४७ मुल्ला बाठव २४६ ।

२—भक्ति (काव्य) काल

(फ) सन्त साहित्य

सन्त साहित्य का स्वल्प विस्तरेण २१३ सन्तों की परम्परा २१६ हिन्दी में सन्त परम्परा २६३ पन्थ-निर्माण ३३२, सन्त साहित्य का दर्शन और भाव पक्ष ३३६ अभिव्यञ्जना प्रणाली और भाषा ३५२ ।

(ख) सूफी प्रेमाख्यानक काव्य धारा

प्रेमाख्यानक काव्य का स्वल्प विस्तरेण ३५७ कवि और काव्य-परिचय ३६० वक्ता की हिन्दी की प्रेमाख्यानक रचनायें ४०७ सूफी का अर्थ ४०९ सूफी मत और तत्सम्बुद्ध ४१ सूफी मत का इतिहास ४११ प्रेमाख्यानक काव्य में दर्शन ४१३ सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों में योगसाधना ४२२ प्रेममार्गीय

छावना ४२१ सूफी प्रेमास्पानक काव्यों का काव्य पञ्च ४३६ सूफी प्रेमास्पान
काव्यों का काव्य रूप ४३१ वन्योक्ति या समासोक्ति ४३१ सूफी प्रेमास्पानक
काव्यों में कथानक स्तियों ४३८ प्रबन्ध कल्पना और महाकाव्यतत्त्व ४३१
रहस्यवाद ४३० ।

(ग) कृष्ण भक्ति काव्यधारा

कृष्ण भक्ति तथा काव्य का स्वस्व विस्तरेण ४३१ कृष्ण भावना का
विकास ४३५ कृष्ण काव्य की परम्परा ४३८ राधा का क्रम विकास ४८१
प्रेम ललाटा और माधुर्य भाव ४८६ वैष्णव धर्म के प्रमुख व्याचार्य ४८८ द्वितीय
के कृष्ण भक्ति कवि—जीव और रचनायें ४९५ भक्ति और वर्तन काव्य तत्त्व
धर्मर मीठ १९८, काव्य रूप १७६ सत्य-योगिता १७६ बलद्वार विधान और
सक्ति बलिम्ब १८० भाषा १८३ भीरु बार्ह १८४ सुखास मदनमोहन १८६
नरोत्तम दास १९० रसवान १९० ।

(घ) राम भक्ति काव्यधारा

राम भक्ति काव्य का स्वस्व विस्तरेण १०० सीता का क्रम विकास १०१
कवि और काव्य परिचय १०४ वर्तन ११७ भक्ति ११९ काव्य पञ्च १११
मानस का महाकाव्यतत्त्व १३० गोस्वामी जी के काव्य में युव-छापछता १७४
बका १७५ गोस्वामी तुलसी दास की भाषा १८४ रचनायें १८५ ।

निवेदन

इस ग्रन्थ में मैंने हिन्दी साहित्य की विविध धाराओं का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। अपने अध्ययन में मैंने नवीनतम खोजों और विश्लेषणों से पर्याप्त लाभ उठाया है। इस अर्थ में केवल आदि कालीन और मक्ति कालीन साहित्य के स्वरूप विश्लेषण का प्रयत्न किया गया है। ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड में रीति अथवा शृंगार काव्य तथा भाषुनिक साहित्य का अध्ययन किया गया है। द्वितीय खण्ड की परिशिष्टियों में हिन्दी भाषा के उद्भव और विकास के संक्षिप्त इतिहास के अतिरिक्त आदिकालीन और मक्ति कालीन साहित्य की राजनैतिक सामाजिक भाषिक और सांस्कृतिक पृष्ठ-भूमियों की मयी है तथा हिन्दी साहित्य की विविध धाराओं का अध्ययन भारतीय साहित्य धाराओं के सन्दर्भ में किया गया है।

अपने अध्ययन के लिए मैंने काव्य-रूप दर्शन भाव-पञ्च अभिव्यक्ति प्रणाली तथा भाषा—इन आधारों का अवलम्ब ग्रहण किया है। प्रत्येक धारा के सामूहिक अध्ययन के अतिरिक्त उस धारा की विशेष काव्य-कृति अथवा उस धारा के विशेष कवि का विशेष अध्ययन भी किया गया है। अपने अध्ययन की पूर्णता हेतु जिन विद्वानों की कृतियों और निष्कारों का उपयोग मैंने किया है, उन्हें मैं यथा से प्रणाम करता हूँ।

साहित्य के इतिहास-लेखन की वैज्ञानिक विधा मुझे अपने पुण्य गुरु डॉक्टर मुकुन्दर सेन से मिली है। यह ग्रन्थ उनके आदीशिव की ही उपलब्धि है। इस ग्रन्थ के प्रणयन में मेरे मित्र और सहयोगी श्री प्रबोधनारायण सिंह, श्री रघुनन्दन मिश्र और श्री विष्णुकान्त घास्त्री के सहयोग मेरे लिए भार्गव-वर्षक रहे हैं। परम आदरणीय श्री तीवराज श्री मिश्र की उदार भागी से मेरा मार्ग प्रशस्त हुआ है। इन सभी महानुभावों के प्रति मैं भद्रा-मन हूँ।

मेरे विभाग के अध्यक्ष श्री कल्याणमन जी सोडा ने इस ग्रन्थ की मूद्रिका तैयार कर मुझ पर जोर डाला की है उसका लिए केवल शिष्टाचार की श्रद्धावली

से अपनी भावनाओं को व्यक्त करने में मैं असमर्थ हूँ। सोझा भी पी बिडता,
सख और आशीर्वाद का मैं लुभी हूँ।

अमितान प्रकाशन के अध्यक्ष श्री माधिक बख्ताकत एम० ए० मेरे शिष्य
और मित्र हैं। वे एक अच्छे कवि और कुशल दिली हैं। इस ग्रन्थ का प्रकाशन
उन्होंने बित निष्ठा और विश्वास के साथ किया है। इसके लिए उन्हें
धन्यवाद देकर उनके महत्त्व को कम नहीं करना चाहता। छेठ सूरजमल जाबान
पुस्तकालय के पुस्तकालयक भी बड़ीप्रसाद पाण्डेय तथा वहीं के अन्य कर्मचारियों
ने मुझे सब प्रकार की सुविधायें दी हैं। मैं इन सब का आभारी हूँ। मेरी
जीवन-संमिती श्रीमती सुमीला श्रीवास्तव ने इस रचना के स्वयं-प्रियोग में
गिरतर सहयोग प्रदान किया है। इस हेतु उन्हें धन्यवाद देकर आभारस्तुति
पढ़ी करना चाहता।

द्वितीय विभाग

—दयानन्द श्रीवास्तव

कसकता विश्वविद्यालय

धीपावली

१११-१९६४

भूमिका

साहित्य के इतिहास एवं उसके इतिहास-वर्तन पर विचार करने के पूर्व सबसे पहला यह दखना चाहिए कि वस्तुतः इतिहास है क्या ? क्या साहित्य से हमारा साक्ष्य साहित्य के 'पुरातत्त्व' या उसके अतीत का इतिवृत्तात्मक विवरण क्रमबद्ध कविवृत्त और मारा निरूपण ही है या इसके अतिरिक्त कुछ और भी ? यही हमें इस प्रश्न पर विचार करना होया कि क्या साहित्य का इतिहास-वर्तन अपने सही सम्मर्भ में सम्भव है और यदि हाँ तो किस अर्थ और स्वरूप में । उसकी सीमा और सामर्थ्य क्या है ?

आज इतिहास अंग्रेजी के हिस्ट्री का अर्थात् बन गया है । 'हिस्ट्री' का साक्ष्य अपने मूल ग्रीक अर्थ में 'खोज' और 'अनुसन्धान' या एक इसका सर्वप्रथम प्रयोग हिरोडोटस ने किया । हिरोडोटस ही पश्चिम के सर्वप्रथम इतिहास-लेखक थे जिन्होंने इतिहास को वैज्ञानिक मानवीय तर्क-समय और विज्ञानप्रद विद्या के रूप में स्वीकार किया । हिरोडोटस ने इतिहास को गति और प्रवाह-मयुक्त शान प्रियाता और अतृप्त अनुसंधान का हेतु माना । हिस्ट्री शब्द के आधुनिक रूप और अर्थ को विकसित करने में इसका दूसरा महत्वपूर्ण योग-दान जर्मन शब्द Geschichte ने दिया जिसका अर्थ 'होना' 'बढ़ित होना' है । १९वीं शताब्दी तक आते-आते हिस्ट्री शब्द का अर्थ मानवीय घटनाओं का 'संघटन' और 'विकास' हो गया । प्राचीन ग्रीक-जर्मन शब्दों के मूल में हिस्ट्री शब्द के दो अर्थों की भी दो मूल विचारधारायें परिलक्षित होती हैं —(१) अनुसन्धान की वैयक्तिक प्रवृत्ति (२) घटनाओं का इतिवृत्तात्मक और क्रमबद्ध विवरण और निरूपण । इन्हीं दो मूल विचारधारायों के आधार पर हिस्ट्री शब्द के बहुमुखी प्रयोग में भी उसके दो ही मूल अर्थ प्रमुख हैं —(१) संकुचित अर्थ में वह मानवीय घटनाओं का सङ्ग्रह है जिसका अर्थ मानवीय विकास को स्पष्ट कर एक अन्तरङ्ग प्रवृत्तिमानता स्थापित करना है । (२) व्यापक अर्थ में मानवीय जीवन के साध-साध प्राकृतिक घटनाओं और परिवर्तनों का भी क्रमबद्ध निरूपण है । आधुनिक विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि संसार

मनुष्य भी निर्मल है। उसी प्रकार गत्यात्मक है। उनका भावार्थक, वैज्ञानिक भाव गति का लेखा-जोखा भी इतिहास का ही क्षेत्र है। इसलिये भौतिकी विज्ञान भी इतिहास का ही एक अङ्ग है।

भाष्यीय दृष्टि से इतिहास का अर्थ इतिह् कास्तेऽस्मिन्; इति+ह्+भास् अर्थात् पूर्व कृतान्त प्राधान्य कहा होता है। इतिहास को अष्टादश शास्त्रों के अन्तर्गत मिला जाता है। आचार्य कोटिय्य ने इसे 'पञ्चम वेद' कहा है। अर्थ शास्त्र के अनुसार —

पुराणमिति वृत्तमाध्यामिकावाहृत्य

वर्मशास्त्रं वर्मशास्त्रं केतिहासः ।

इतिहास पुराण^१ भाष्यीय वाक्य का अन्तर्गत प्रसिद्ध और विद्विष्ट प्रयोग है। रामायण महाभारत, अष्टादश पुराण—इतिहास पुराण के अन्तर्गत ही रखे गए हैं। शङ्कराचार्य ने इतिहास का एक प्रमाण माना है। वह इतिहास धर्म अर्थ, काम मोक्ष के साधनों से सम्बन्धित पूर्व कृत कहा ही है। आचार्य धीवर दास्वी ने —

माधोदि बहुध्याभ्यासै देवदि अतितामयम्

इतिहासमिति प्रोक्तं भविष्याद्भुद् धर्मभ्युक्तः ।

कह कर इसका महत्व प्रतिपादित किया है। अतएव भाष्यीय विचार-दृष्टि में इतिहास मानवीय विज्ञान की हो नहीं छोड़ बल्कि उस से भी संयुक्त और सम्बन्धित दृष्टि है—दुस्साध-व्यामिका ।

अब प्रश्न उठता है कि इतिहास सभ्य के इस अर्थ और सम्बन्ध में साहित्य के इतिहास की उपयोगिता और आवश्यकता क्या है ?

साहित्य के इतिहास के सम्बन्ध में सबसे पहला और विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या साहित्य का इतिहास केवल सम्भव है ? अपनी प्रसिद्ध पुस्तक Theory of Literature में अंग्रेजी साहित्य के इतिहास धर्मस भी ली० बेंटेन् ने इस सम्बन्ध में बनेक विद्वानों के मत उद्धृत किये हैं जिन्होंने साहित्य के इतिहास की असम्भाव्यता (निर्लप्यता) बनाई है। ली० दन्त्यु० ली० बर का मत है 'हमें साहित्य के इतिहास की कोई आवश्यकता नहीं। कारण, उन्हीं उद्देश्य के लिये विद्यमान रहने हैं वे सनातन हैं और हम माने अतीत

के अभाव में उनका कोई इतिहास हो ही नहीं सकता। सापेनहावर ने भी कला-सम्बन्धी अपनी विवेचनाओं में कुछ ऐसा ही मत प्रकट किया है। रॉके ने सापेनहावर के मत की विवेचना करते हुए साहित्य के इतिहास को इतिहास के अन्तर्गत ही नहीं रखा। कुछ ऐसा ही मत टी० एस० इलियट का भी है जिसने साहित्य के प्रबलमान अस्तित्व और उसकी गत्यात्मक व्यवस्था में साहित्य के इतिहास-क्रम को स्वीकार नहीं किया।

हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों में भी कुछ ऐसी धारणा प्रचलन रूप से बिलार्ई पड़ती है। मिथ वन्धुओं ने 'विनोद' को इतिहास न कहकर भाषा के उत्तमोत्तम शत मनीन और प्राचीन कवियों की कविता पर समालोचना' ग्रन्थ के रूप में प्रचलन रूप से ही स्वीकार है और उन्हीं के सहारे इतिहास ग्रन्थ लिखने की इच्छा प्रकट की है।

आलोचकों का एक दूसरा बर्य भी है जो इस बात को स्वीकारता है कि साहित्य का इतिहास-मेखन सम्भव ही नहीं। साहित्य का इतिहास या तो सामाजिक इतिहास हो जाता है या साहित्य में अभिव्यक्त विचारों का क्रमबद्ध निरूपण। यही कारण है कि टॉमस बास्टन हेनरी मॉर्गे आदि इतिहास केसकों ने अपने अंग्रेजी साहित्य के इतिहासों को 'ब्रिटिश मस्तिष्क की कहानी' या 'राष्ट्र की जीवनी' ही कहा है। मेस्की स्टीफेन ने साहित्य को बृहत् सामाजिक संज्ञान का ही एक विशेष व्यापार (Function) मिला है और उसीके अनुसार पर अंग्रेजी काव्य के प्रसिद्ध इतिहासकार कोर्ट होप ने काव्य सम्बन्धी अध्ययन को राष्ट्रीय संस्कारों का अनवरत विकास माना है। जिस प्रकार इन आलोचकों की दृष्टि में साहित्य और साहित्य का इतिहास एक साधनमात्र है ठीक इसके विपरीत कुछ इतिहासकारों के अनुसार साहित्य का अध्ययन वस्तुतः कला के विकास का अध्ययन है और इस माते इस बर्य के इतिहासकारों की दृष्टि प्रमुख और अविकल्प दृष्टि से प्रसिद्ध कवियों और साहित्यकारों के आलोचनात्मक अध्ययन की ओर रही है। राष्ट्रीय केतना या मस्तिष्क के गत्यात्मक विकास की ओर नहीं। एडमंड प्रास ने इसी सम्बन्ध में अपने इतिहास को 'अंग्रेजी साहित्य की गति' कहा है जिसमें अंग्रेजी साहित्य के विकास की यात्रा पराक्षित की गई है। इन इतिहासकारों ने भी अपने ग्रन्थों को भी

प्रत्यक्ष इतिहास न कहकर समीक्षा या आलोचना ही कहा है। अंग्रेजी आलोचना के इतिहासकार जार्ज सेन्ड्सबरी जिसका सिद्धान्त वास्टर पेटर के सिद्धान्तों के निकट या वस्तुतः एक परिणाम ही है। साहित्य के इतिहास की सबसे बड़ी कठिनाई अतएव उसकी कार्य-कारण मति है जो साहित्य के सम्पूर्ण विकास के साथ उसके अध्ययन की मूलभूत कठिनाइयों भी उपस्थित करती है। बेडक न अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ में इन कठिनाइयों की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि साहित्य का इतिहास अपनी सूक्ष्म प्रवृत्तियों और अपने जटिल विकास में एक ऐसी असुविधा लकी कर देता है जो संगीत या चित्रकला के इतिहास में दृष्टिगत नहीं होती। चित्रकला का इतिहास चित्रकारों का इतिहास नहीं होता ठीक उसी प्रकार संगीत का इतिहास संगीतकारों का इतिहास नहीं होता। वह वस्तुतः बिना संगीत के रूपों का इतिहास होता है जिसकी क्रमबद्धता स्वतन्त्र रूप से पठनीय और दृश्य है। इसके विपरीत साहित्यिक सिद्धान्तों में अभी तक ऐसी कोई प्रणाली विकसित नहीं हुई है जो विज्ञान की विद्युत् पद्धति को समेटे साहित्य-जन्म के इतिहास को स्पष्ट कर सके। अतएव साहित्य के इतिहास-लेखन की तीन असुविधायें हैं — (१) सामाजिक इतिहास से पूरक विद्युत् कला के इतिहास रूप में प्रस्तुत करना (२) केवल कृत्यों या कवियों का जीवन-परिचय होने से बचना, (३) प्रमुख ग्रन्थों की परिचिता समीक्षा या प्रत्यक्ष आलोचना ही न रखना। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों के समान भी प्रायः प्रारम्भ से ही ये असुविधायें थीं। हिन्दी साहित्य का तापी-वृक्ष प्रथम इतिहास कविवृक्ष होते हुए भी क्रमक्रमानुसार नहीं है और न इसमें साहित्यिक प्रवृत्तियों का निरूपण है। तापी में स्वयं भूमिका में लिखा है कि वे व्यावहारिक कठिनाइयों के कारण क्रम निर्धारण में असमर्थ हैं। तापी न विमोचन की सम्भावना साहित्य रूप के आधार पर बताई है। तापी के आधार पर लिखे गये फ्रेन्क और कटीमुदीन की पुस्तक *A History of Hindi Poets* में भी हिन्दी कवियों के विवरण मात्र उपस्थित हैं। व्यक्ति विवरण की यह परम्परा मध्यकाल में बनी जा रही थी। 'मल्लमात्र' और 'बैष्णवों की बातें' इसका प्रमाण हैं। 'तिरविहृद' 'सरोज' भी एक ऐसा ही कवि-वृक्ष मण्ड है जिसमें कवियों की रचनाओं के परिचय और उदाहरण दिये गये हैं। महेश्वरत

शुरू और मातापीत मिश्र के कवित्त खाकर' भी इसी कोटि में आते हैं। बाबू स्वामसुन्दर दास द्वारा प्रकाशित हिन्दी कोविद् रत्नमाला' के दोनों भाग, जिनमें अस्सी लेखकों के जीवन-चरित्र इतिवृत्तों के निष्पन्न के साथ दिये गये हैं में इतिहास का कोई सूत्र विद्यमान नहीं है। रामनरेश त्रिपाठी की 'कविता-कौमुदी' भी एक प्रकार से कवि-वृत्त संग्रह ही है। प्रारम्भ के प्रथम दोनों भागों में एक सौ अड़तीस कवियों का विवरण दिया गया था। इस जीवन चरित्र परम्परा या कवि-वृत्त संग्रह के विपरीत सर्व प्रथम आर्म प्रियर्सन ने अपन 'मार्बल बर्न' क्यूमर लिट्रचर आफ हिन्दुस्तान' को प्रस्तुत किया है। यद्यपि यह ग्रन्थ पूर्ववर्ती इतिहास ग्रन्थों पर अवलम्बित है तथापि हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन का प्रथम वैज्ञानिक रूप इसीमें दृष्टिगत हुआ है। डॉ० लक्ष्मीसागर बाप्योय के शब्दों में 'यह हिन्दी साहित्य की नींव का वह पत्थर है, जिसने परवर्ती इतिहास ग्रन्थों को कूट प्रभावित किया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के विभिन्न काल-विभाग भी इसमें दिये गये हैं। स्व० नरसिंह बिलोचन शर्मा ने प्रियर्सन को हिन्दी के विधेयवादी साहित्येतिहास के सूत्रपाठ का श्रेय दिया है। मिश्र बन्धुओं और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कास-विभाजन भी मुख्यतः प्रियर्सन पर आधारित है। प्रियर्सन के परचात् 'मिश्र बन्धु बिनोद' ने हिन्दी साहित्य के ऐतिहासिक मध्यमन की एक पुष्ट परम्परा स्थापित की। डॉ० रामकुमार वर्मा ने मिश्र बन्धुओं का ही इतिहास के इतिहासात्मक लेखन का प्रथम श्रेय देते हुए लिखा है कि "हिन्दी साहित्य के प्रथम इतिहास को विस्तार पूर्वक लिखने का श्रेय मिश्र बन्धुओं को है।" इन ग्रन्थों में यद्यपि हिन्दी साहित्य के क्रमबद्ध विकास की सामग्री उपलब्ध होती है परन्तु इसमें इतिहास-लेखन की वैज्ञानिकता का निदान अभाव है। 'सरोज' और प्रियर्सन के उपर्युक्त इतिहास की टीका करते हुए श्री रामचन्द्र शुक्ल रसायन ने लिखा है कि "सरोज वास्तव में इतिहास ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता क्योंकि उसमें वह सामग्री नहीं जिसका साहित्य के इतिहास में होना अनिवार्य है।" उसी प्रकार प्रियर्सन का ग्रन्थ भी डॉ० रसायन के शब्दों में 'एक कविनामावली ग्रन्थ है जो हिन्दी साहित्य के इतिहास की ओर संकेत करता हुआ सहायक मात्र रहता है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास की रचना-विधि और प्रवृत्ति में विदेशी विद्वानों

का योगदान भी कम नहीं है। एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में किश के सामान्य के केस तथा ग्रीस आदि विदेशी विद्वानों ने हिन्दी साहित्य के इतिहास की रचना बिबि को पुष्ट किया है। इन सब में सबसे अधिक महत्वपूर्ण ग्रियर्सन का इतिहास है जो यद्यपि 'सरोज' पर आधारित है फिर भी अपनी बलानिबलता में विशिष्टता ही नहीं गनीन्ता भी रखता है।

हिन्दी साहित्य का सर्वप्रथम मुख्यबन्धित इतिहास 'हिन्दी भाषा सागर' की भूमिका के रूप में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रस्तुत किया। इस भूमिका में उन्होंने साहित्य के इतिहास-वर्णन की दृष्टि स्थापित करते हुए लिखा 'जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में परिवर्तन होता जाता है। आदि से अन्त तक इसी चित्तवृत्तियों की परम्परा के साथ उनका सामञ्जस्य विद्यमान ही साहित्य का इतिहास कहलाता है। अपने इतिहास में आचार्य शुक्ल ने इसी सामञ्जस्य को प्रबलता दी है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की यह दृष्टि एक प्रकार से ऊपर विधित उन अग्रज इतिहासकारों की दृष्टि की जिनका उत्प्रेष हमने मार्स, स्टीफेन और कोर्ट होफ के अन्तर्गत किया है। शुक्ल जी की इस दृष्टि को स्वर्गीय मन्त्रि मिथोचन शर्मा ने साहित्य के इतिहास की विवेकात्मक दृष्टि कहा है। डॉ० रमाधर शुक्ल 'प्यास' ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (जिसे उन्होंने हिन्दी साहित्य का एकमात्र सांगोपांग विवेचनात्मक और ऐतिहासिक विकासालोचनात्मक ग्रन्थ कहा है।) में लिखा है 'साहित्य के इतिहास से हमारा यही तात्पर्य है कि इतिहास के समान जिसमें साहित्य की निम्न निम्न समय से सम्बन्ध रखने वाली वृत्तियों या अब स्वाभौतिका मुख्यबन्धित वर्णन हो उसे साहित्य का इतिहास समझना चाहिये। साहित्य के इतिहास का अर्थ यह नहीं है कि वह साहित्य के मूलकाक से प्रारम्भ करके मौलिक रूप के साथ वर्तमान काल तक जो कुछ भी उसमें विकास हुआ है उसका एक सघा बिबि विवित करके पाठकों के सम्मुख उप स्मित कर दे। डॉ० प्यास जी की दृष्टि अतएव यहाँ एक ओर साहित्य से सम्बन्ध रखने वाले निम्न निम्न विषयों की वृत्तियों, उनके कारणों और परिणामों पर रही है बहो दुसरी ओर महाकवियों के साहित्यिक कार्यों पर प्रकाश डालने की भी। पन्ना विरचविद्यालय में हिन्दी साहित्य के इतिहास पर दिव

गये व्याख्यानों में—जो पीछे 'हिन्दी भाषा और उसका इतिहास' के नाम से प्रकाशित हुआ - हरिऔध जी ने प्रारम्भ में जहाँ साहित्य का विवेचन किया है, वहीं साहित्य के देश और समाज पर पड़ने वाले प्रभाव की विशेषता का निरूपण भी किया है। यद्यपि हरिऔध जी ने साहित्य के इतिहास-दर्शन पर कुछ भी नहीं लिखा फिर भी उनके प्रारम्भिक विवेचन में साहित्य के इतिहास सम्बन्धी उनकी मान्यताएँ स्पष्ट हैं। सं० १९८७ में प्रकाशित मूर्यकान्त शास्त्री के 'हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास' और श्री चतुरसेन शास्त्री द्वारा लिखित 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' व्याप्ति भी इसी दृष्टि से प्रभावित हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' में प्रकाशक की ओर से यद्यपि यह निवेदन कर दिया गया है कि यह हिन्दी साहित्य का इतिहास नहीं है परन्तु यह उसकी भूमिका को स्पष्ट करने वाली भूमिका है। आधुनिक इतिहासों को यह अभिन्न स्पष्ट करती है और अभिप्य में उलझे जाने वाले इतिहास ग्रन्थों की विज्ञा निर्विधिका है परन्तु इसके साथ उनका यह भी बाधा है कि "जिन विद्वानों ने हिन्दी साहित्य के इतिहास पर कलम उठाई है उन्होंने नवीन दृष्टिकोण का सर्वथा विचार नहीं किया। नहीं बहुत कुछ किया है। पर, इन पुस्तक में उस दृष्टिकोण को जिस स्पष्टता और योग्यता से व्यक्त किया गया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। जो भी हो यह भी एक प्रकार से अहिन्दी भाषी साहित्यिकों को हिन्दी साहित्य का परिचय कराने के बहाने से ही लिखी गई थी और इस नाते हममें हिन्दी साहित्य को सम्पूर्ण भारतीय साहित्य से अभिन्नित्व देबाने की चेष्टा साहित्य के इतिहास-क्रम और उसके आधार पर ही की गई है। इन समस्त इतिहासकारों की दृष्टि इतिहास के सम्बन्ध में उसे सांस्कृतिक परम्पराओं से जोड़ प्रोत्त बेसने की रही है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन की यह परम्परा इस प्रकार सम्पुष्ट होती रही। विभिन्न विश्वविद्यालयों और साहित्य-संस्थानों और अनेक विद्वानों द्वारा किए जाने वाले दोष-कार्यों और अनुसन्धानों ने जहाँ हमारे सम्मुख अपरिमेय सामग्री रखी वहाँ दूसरी ओर साहित्य के इतिहास-लेखन को और भी व्यापक और दुरुह बना दिया है। हिन्दी साहित्य की महान् परम्परा वस्तुतः सांस्कृतिक और अनेक सन्दर्भों में समसामयिक इतिहास से प्रभावित रही है।

यों तो यह प्रत्येक साहित्य के लिए सत्य है पर हिन्दी साहित्य के लिए और भी सत्य है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रस्तावित कुछ वर्षों में प्रकाशित बृहत् हिन्दी साहित्य के इतिहास की योजना सांस्कृतिक धार्मिक और राजनीतिक पृष्ठ भूमि को भी उतना ही महत्व देती है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास से सम्बन्धित कुछ ऐसे मूलमूल तथ्य हैं, जो हर इतिहासकार के कार्य को सुकर बना कर उसके सम्मूल एक प्रस्तावक चित्त बन कर रहे रहते हैं। इनमें सर्वप्रथम है कालनिर्धारण और उसके नामकरण की समस्या। बरिष्ठ इतिहासकारों ने प्रत्येक काल के सम्बन्ध में जहाँ विभिन्न नाम दिये हैं वहाँ इनके निर्धारण के सम्बन्ध में भी विभिन्नता दिखाई है। आचार्य शुद्ध के परवर्ती इतिहासकारों ने प्रायः उन्ही की पद्धति का अनुकरण या अनुसरण किया है। आचार्य हमारी प्रसाद त्रिवेदी ने अपने इतिहास 'हिन्दी साहित्य' में जहाँ एक ओर उसके प्रारम्भिक काल को आदि काल कहा है वहाँ भक्ति काव्य प्रेममयीय काव्य एवं रीति काव्य के सम्बन्ध में 'काव्य' शब्दको नहीं रखा। यहाँतक कि तृतीय खण्ड 'भक्ति साहित्यका आदिर्भाव' के अन्तर्गत उन्होंने 'वास्तविक हिन्दी साहित्य का आरम्भ' और 'आधुनिक काल' दीपक देते हुए उसके अन्तर्गत परिभाषित भाषा और 'साहित्य का आरम्भ' आदि दीर्घक दिये हैं। एक ओर दृष्टान्त दृष्टव्य है। डॉ० यशवन्त चन्द्र गुप्त ने सद्यः प्रकाशित अपने हिन्दी साहित्य का ऐतिहासिक इतिहास में लोकाभिन्न वर्गीकृत और समाजोपलब्ध आदि पद्धति में हिन्दी साहित्य के विभिन्न काल-दण्डों का वर्गीकरण किया है। बन्धुन हम कटिनाई का मूल कारण उसकी प्रबलमात्रता की बहुमुखी गत्यात्मकता है। लोक साहित्य के अध्ययन ने साहित्य के इतिहास-संश्लेष को और अधिक कठिन बना दिया है। उदाहरणार्थ हमारे सामने फिर वही कटिनाई आनर उपस्थित होती है कि यदि हम प्रमुख प्रवृत्ति के अनुसार लिखन करते हैं तो प्रमुख प्रवृत्तियों में इतर श्रेष्ठ कवि और उनकी रचनायें भी साहित्य के इतिहास में गण रह जाती हैं। हम आधुनिक साहित्य के इतिहास के सम्बन्ध में अपने हम मंत्र की पुष्टि कर सकते हैं। आधुनिक काल का दायारावी युग—त्रिवेदी का रोमैण्टिक युग कहा जाता है—कई सन्दर्भों में 'साहित्यिक' भी था। राम और हृष्य काव्य सम्बन्धी रचनायें हम युग में प्रचुर परिमाण में ही नहीं,

श्रेष्ठ काव्य के कलाओं से संयुक्त भी मिली गई परन्तु उन रचनाओं का न तो मूल्योक्त हो सका है और न ब्ययन ही। इस सम्बन्ध में एक और बात भी विचारणीय है और वह है श्लोकानुश्रुति के परिवर्तन की। साहित्य और साहित्यकार के मूल्योक्त में तो श्लोक-श्रुति का महत्व भी कम नहीं है। साहित्य का इतिहासकार इस आंक श्रुति का तिरस्कार बहिष्कार नहीं कर सकता है। आज यदि कोई चाह कर भी कन्वन्शन्स या कन्वन्शन्स को सम्योक्त कवि जोषित करने का मरसक प्रयास भी करे तो वह एक कुछ वैज्ञानिक विवेचन *Pure Academic discourse* भन्ने ही रहे श्लोक-प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं कर सकता। यहाँ पर सोचना गम्भिर होगा कि साहित्य के इतिहास के ब्ययन की सीमा केवल सिद्धांतियों या *Academicians* तक ही सीमित हो जाती है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के सम्मुख एक और कठिनाई है और वह है प्रामाणिकता की। आज भी हम अपने प्राचीन साहित्यकार के बारे में अन्तिम निर्णय पर नहीं पहुँचे हैं। अनुसन्धान और गवेषणा जारी है। साहित्य का प्रबुद्ध अध्येता और विचारक उत्सव्यन्वी समग्र सामग्री का निरूपण (संकेत मात्र ही सही) इतिहास में खोजता है। किसी भी इतिहासकार के लिए यह असम्भव है कि वह अपनी मरसक श्रेष्ठ से भी इसे पूर्ण बना सके। हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन की चौथी कठिनाई है कवि-वृत्त और उनके काव्य निरूपण की। किस कवि को किन्तु और किस अनुपात में स्थान मिलना चाहिए यह समस्या सरलता से नहीं सुलझाई जा सकती है। आचार्य दूर के इतिहास पर इस दृष्टि से आशेष किया गया है। अंग्रेजी इतिहासकार भी इस कठिनाई का संकल्पना से समाधान प्रस्तुत नहीं कर पाये। हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन की पाँचवीं बटिल समस्या है माप और साहित्य के सम्बन्ध की। हिन्दी विभिन्न शैलियों का समूह है। प्रश्न उठता है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास में इन विभिन्न शैलियों के साहित्य और साहित्यकारों का किन्तु स्थान होना चाहिए। वर्तमान समय में यह प्रश्न और भी बटिल हो जाता है। इसका कारण है कि इन शैलियों के साहित्य की प्रचुर सामग्री प्रकाश में आ रही है। अंग्रेजी में जिसे *सिफ्टिंग* या *'सुनीलिंग'* कहते हैं, वह हिन्दी में सरलता से नहीं किया जा सकता।

विश्वविद्यालयों में प्रारम्भ हो केकर अन्त तक साहित्य का इतिहास पाठ्यक्रम में रहता ही है। पाठ्यक्रम की दृष्टि से अनेक इतिहास लिखे गये हैं। इन इतिहासों में जहाँ एक ओर पाठ्यक्रम के अनुसार परीक्षोपयोगी होने का ध्यान रखा जाता है वहीं दूसरी ओर यह भी चेष्टा की जाती है कि यह इतिहास हिन्दी साहित्य की महान् परम्पराओं का उसकी प्रवृत्तियों का और उनकी सांस्कृतिक चेतना का सम्यक प्रतिनिधित्व भी कर सके।

डॉ० दयानन्द श्रीवास्तव मेरे सहयोगी और परम मित्र हैं। वे एक सफल शिक्षक ही नहीं साहित्य-अध्येता विचारक और आलोचक भी हैं। प्राचीन साहित्य उनका क्षेत्र है। जो मध्ययुगीन और आधुनिक साहित्य उनकी सम्पत्ति। भाषा विज्ञान के गहन अध्ययन ने उनकी विचारधारा को गभीर गूँज दिये हैं। डॉ० श्रीवास्तव दृढ़ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' विभिन्न इतिहासों की एक नयी भाव नहीं है। यह इतिहास दो छण्डों में प्रकाशित हो रहा है। इस इतिहास की विशेषता है कि यह जहाँ एक ओर विभिन्न धाराओं और प्रवृत्तियों का सम्यक विश्लेषण करता है, वहीं दूसरी ओर प्रत्येक युग की मूलभूत प्रवृत्तियों का भी विवेचन करता हुआ हमारे साहित्यकारों और कवियों की कृतियों का संक्षिप्त और प्रौढ़ आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। स्पष्ट कहूँ कि डॉ० श्रीवास्तव का 'इतिहास आचार्य गुरु के इतिहास का अनुकरण नहीं है। जहाँ उन्होंने गरीब लोगों और अनुसन्धानों का आधार व अवलम्ब ग्रहण किया है वहीं साहित्य के अध्ययन के गरीब माप-दण्डों का आश्रय भी ग्रहण किया है। इतिहासकार की दृष्टि अन्वीक्षिकी दृष्टि होती है और इस दृष्टि से वह केवल विश्लेषणात्मक ही नहीं होनी संश्लेषणात्मक भी होती है। साहित्य का इतिहास एक विज्ञान है जो कला और दर्शन भी। वास्तविक ने सर्वप्रथम इस इतिहास-दर्शन की ओर संकेत किया था और आज विशिष्ट पाश्चात्य आलोचक भी इतिहास (History) और इतिहास विज्ञान (Historiography) का मूलभूत अन्तर स्वीकार करते हैं वहीं साहित्यिक इतिहास और साहित्य के इतिहास (History of Literature) का भी। डॉ० श्रीवास्तव ने जो दृष्टि अपनाई है वह समन्वयपरक दृष्टि है। अर्थात् साहित्यिक इतिहास-अंगन की दृष्टि और साहित्य के इतिहास-अंगन की दृष्टि भी। साहित्यिक इतिहास समाज-सांस्कृतिक सौजन्यपूर्ण राजनीतिक आर्थिक आर्थिक

भावि आचार्यों में साहित्य की गतिविधिका निरूपण करता है। डॉ० श्रीवास्तव के इतिहास की एक और विशेषता यह है कि वह केवल पाठ्य प्रामाणिक और परीक्षोपयोगी ही नहीं है परन्तु हिन्दी साहित्य का संश्लिष्ट और सम्यक् अध्ययन भी प्रस्तुत करता है। इस नाते यह अध्येता और अध्यापक तथा विचारकों के लिए समान रूप से उपादेय है। मैं स्वीकार करता हूँ कि डॉ० श्रीवास्तव के इतिहास में कुछ ऐसी बातें हैं जो सन्दिग्ध और मेरी दृष्टि से कुछ बंधों में पुनर्विचार चाहती हैं। मैं उनका उत्तर और विवेचन करना इस लिए निरर्थक और बनावटपूर्ण समझता हूँ कि वे अपेक्षाकृत अल्पस्त गौण हैं। डॉ० श्रीवास्तव ने उनके ही धर्मों में हिन्दी साहित्य की विभिन्न धाराओं का समीक्षात्मक अध्ययन किया है। निस्सन्देह उन्होंने प्रायः समस्त उपलब्ध सामग्री का समावेश करने का सफल प्रयास भी किया है। यह उनकी बालोचना-दृष्टि उनकी विद्वत्ता और उनकी सूक्ष्म-बुद्धि का प्रमाण है। इस दृष्टि में न तो पूर्व-ग्रह है और न प्रचलित भावों का चित्तबाधा। हिन्दी साहित्य के उद्भव और विकास पर संभव ने साधिकार गूठन दृष्टिकोण भी उपस्थित किया है। मैं डॉ० श्रीवास्तव को बधाई ही नहीं देता, उनसे यह निवेदन भी करता हूँ कि वे भविष्य में भी इसी प्रकार अपने अध्ययन अपनी विद्वत्ता और अपनी रचनाओं से साहित्य के अध्ययन की कमीन दिशा उपस्थित करते रहें।

हिन्दी विभाग

कलकत्ता विश्वविद्यालय

कलकत्ता

कन्यायामसठ कोट्टा

अध्यक्ष हिन्दी विभाग

कलकत्ता विश्वविद्यालय

कलकत्ता

आदिकाल

आदिकाल का स्वरूप विश्लेषण

हिन्दी-साहित्य के आदिकाल की सर्जना अनेक आन्तरिक भाव-संक्रमणों एवं बाह्य प्रक्रियाओं के माध्यम से हुई है। भाव-मग्न तथा शिथिल चित्त की दृष्टि से प्रत्येक साहित्य अपनी पूर्ण परम्पराओं का विकसित रूप होता है। भाषा के विकास के समान साहित्यिक शक्तियों और विषयों का विकास यथोचित चिन्तन विधियों का प्रतिफल होता है। जीवन को विकसित करनेवासी अनुभूतियों या विचक्षणशील शक्तियों भाव-बोध के स्तरों का संघासन एवं नियन्त्रण करती हैं। जीवन की अन्य विषयों के समान साहित्यिक विषयों युग-जीवन की प्रत्येक शक्तियों के अनुकूल ही निर्मित होती हैं। हिन्दी-साहित्य के इतिहास-कैलक इस सत्य की अवधारणा कर गए हैं। साहित्य-सर्जना बाह्य अनुभूतता का प्रतिफल है। इसके आधार पर ही साहित्यिक विषयों की रचना होती है।

हिन्दी-साहित्य के आदिकाल के उद्भव और विकास की कोई निश्चित तिथि प्रस्तावित नहीं की जा सकती। परन्तु अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के समान हिन्दी के आदिकाल का स्वरूप-संस्थापन महाभारत के परवात् की साहित्यिक विषयों द्वारा होता है। जिस कृतियों का अवलम्ब ग्रहण कर हम आदिकाल की कल्पना करते हैं उनमें अनेक भाव शक्तियाँ चिन्तन पाराम्य प्रतिबिम्बित हैं। जिस काल की हम वर्णन कर रहे हैं उसमें संस्कृत की अत्यन्त रचनाएँ हुईं साथ ही साथ अपभ्रंश की रचनाएँ अपनी व्यापक परम्परा लेकर सम्मुख आईं। अपभ्रंश की रचना विधा के साथ हिन्दी की आदिकालीन रचनाओं का ऐतिहासिक

सम्बन्ध है। स्पष्टता और लक्ष्यपन की सुविधा की दृष्टि से अपभ्रंस काव्य विधा की प्रस्तुत वर्गों में विभक्त करते हैं—१. जैन अपभ्रंस साहित्य २—जैनतर अपभ्रंस साहित्य। साहित्यिक विधाओं की दृष्टि से इस वर्गीकरण का पुनः प्रस्तुत रूप में विभाजन किया गया है—(क) जैन प्रबन्धकाव्य—(१) पुराण (२) चरित (३) कथा साहित्य (क) जैन भाष्यात्मिक काव्य (ग) बौद्ध बोद्धा एवं चरित (घ) अपभ्रंस के शौर्य एवं प्रथम साम्प्रदायी मुक्तककाव्य। [देखिए : हिन्दी साहित्य का सृष्टम् इतिहास प्रथम भाग पृ० ३३०]। जैन प्रबन्धसाहित्य की व्यापक अनुवृत्तता पुराण-साहित्य में वल्लभित हुई है। इसके अन्तर्गत स्वयंभू का 'पद्मचरित' (पद्मचरित) 'हरिवंशपुराण' पुष्करत (पुष्करत) इत 'महापुराण' है।

स्वयंभू का समय वि० सं० ८३७-८३९ के मध्य माना जाता है। 'पद्मचरित' १० सर्गियों की रचना है जिसकी भाव भूमि-राम कथा पर आधारित है। 'हरिवंश पुराण' में वृष्णकथा का आधार ग्रहण किया गया है। पुष्करत की कृति 'महापुराण' है। इनकी अन्य कृतियाँ हैं 'जसहरचरित' 'नामकुमार' चरित। 'महापुराण' १२० सर्गियों की रचना है—सर्गियों पुनः कड़वकों में विभक्त हैं। इसमें ६३ महापुरुषों की जीवन-चारा संकलिप्त है।

इस सम्बन्ध की दूसरी विधा है चरित और कथा साहित्य। पुष्करत की कृतियाँ—'नामकुमारचरित' (नामकुमारचरित) और 'जसहरचरित' (जसहरचरित) विशेष उल्लेखनीय हैं। इस विधा की एक अन्य महत्वपूर्ण कृति है 'करवीरचरित'। इसके लेखक हैं मुनिकमलदास। इनका समय है वि० सं० ११२२। प्रस्तुत कृति में कथानककड़ियों का स्वस्वनिर्माण विशेष महत्वपूर्ण है। कथानककड़ियों की इस परम्परा का विकास 'पृथ्वीराज राव रासो' में देखने को मिलता है। यह १० परिच्छेद (परिच्छेद) की रचना है जो पुनः कड़वकों में विभक्त है। हर्षिप्र भूरि (१२१९ वि० सं०) का 'नेमिनाह चरित' इस विधा की एक अन्य कृति है। जिनपचन्द्र भूरि की रचना 'नेमिनाह चरित' श्री लक्ष्मण की कृति है। नेमिनाह के बंराय ग्रहण करने पर राजकनी का जीवन विग्रामन की सुविधा से कवि छाप प्रस्तावित है। उद्दीप्त विधा के अन्तर्गत प्रवृत्ति विषय इस काव्य का मुख्य चेतन है। इसीके अन्तर्गत 'बाण्ड मासा' की उद्भावना मिलती है जिसका विकास ज्ञानपीठ के 'पद्मचरित' में हुआ है।

उ०—बससाहू बिहसिय बजराइ । मयममितु मसमानिस बाइ ॥

फुट्टिरि हिमडा माफि बसंत । बिसपइ राजस पिकरुखर कनु ।

ससी दुखत बीसरिबा मयइ । संनसि भमरउ किन हयभुजइ ॥

बीस पंथ पिर ओबधु होइ । छाउ भियउ बिससउ सहु कोइ ॥

बजरास (बतप्रास) की कृति 'भविष्यत्तकहा' (भविष्यत्तकमा) इस परम्परा की एक और महत्वपूर्ण काव्य-रचना है । प्रस्तुत कृति लोक-गाथाओं की काव्यात्मक अनुभूतना के आधार पर पद्धति है ।

अपभ्रंश काव्य विधा का दूसरा रूप 'परमात्मकाद्य', 'योगासार' और 'साययमम दोहा' में मिलता है । इनके रचनाकार हैं ओइंदु (११वीं शताब्दी) । रामसिंह की कृति 'पाहुइ दोहा' इस चरम की एक अन्य कृति है ।

अपभ्रंश काव्य-धारा का तीसरा रूप बीहूदोहा एवं 'पर्यापरी' में मिलता है, (द्विती साहित्य पृ० इ० पृ० ३४८) । इस प्रकार 'सरह', 'कष्ट', 'भूइपा' इत्यादि की कृतियाँ इस काव्य-धारा के अन्तर्गत आती हैं परन्तु उनकी रचना में परवर्ती अपभ्रंश की हैं जिनका विस्तार आगे के पृष्ठों में किया गया है ।

अपभ्रंश में मुक्तक काव्यस्वरूपों की भी व्यापकता मिलती है । विषय की दृष्टि से उन्हें 'बीर' और 'प्रणम' मुक्तक रूपों में विभाजित करते हैं । हेमचन्द्र के व्याकरण में संकल्पित दोहों में इन दोनों रूपों की उपसम्प्लि हो जाती है । उनमें लोक-जीवन की उदात्त और अनुभूतना और शृंगार-संवेगा प्रतिबिम्बित मिलती हैं । इन दोहों का संकलन हेमचन्द्र ने लोकजीवन से किया है ।

उ०—

हरि नखाविउ पैपनइ बिम्हइ पाण्डिउ कोउ ।

एबहि राहपमोइहई न मानइ तं होउ ॥

'हरि को प्रांगण में नृत्य कराती हैं लोग बिस्मय में पड़े इस प्रकार राधा के पर्यापरी की ओ अग्रिजापा हो वह हो' प्रणम की कुहेतिकाओं की सौन्दर्यपूर्ण अभिव्यञ्जना प्रस्तुत चरम की विशेषता है ।

बइ केवैइ पाबीसु मिउ बकिमा कुहु करीसु ।

पाण्डिउ नबइ सराजि जिबे सखने पइ सीसु ॥

'बकि घोषाय से मैं अपने प्रिय को पा जाऊँ तो अपूर्व कार्य करूँगी जब

जिस प्रकार लीन य^१ में प्रवेश कर जाता है उसी प्रकार मैं उसके हृदय में सघरीर प्रवेश कर जाऊँगी। प्रणय की आकुशता उसुकुशता और मिलन की उत्कण्ठा गृन्धार की अनुपेक्षता की बलवती प्रेरणा बन कर इन वस्तुओं में उपस्थित हुई है। प्रणय-मुक्तकों का ककारमक सौन्दर्य इन बोहों की विभूति है। प्रणय भावनाओं के अतिरिक्त इन बोहों में वीर या शौर्य भावना का अति उल्लासपूर्ण रूप भी मिलता है। उल्लास का यह स्वरूप लोक-संस्पर्शों की बाधित भाव-अनुप्रेक्षा को मुखरित करता है —

एह ति मोटा एह पणि एह ति तिसिमा खण ।

एन्नु मुनीसिम आनिमइ जो न नि बालइ बय ।

‘अब यहाँ है युद्ध-भूमि यहाँ है और तीव्र खड्ग यहाँ है यहाँ वीरों का पीरूप सभी परीक्षित होता है जब (वह युद्ध भूमि से) अब-बला नहीं फेरता है।

बद बना पाछका तो सहि मम्मु पिएण ।

वह मया अम्हह तजा तोरें मारि अयेण ।

‘ऐ सखी यदि शत्रु पराजित हुए तो निश्चय ही मेरे प्रिय द्वारा यदि हमारी सेना पराजित हुई है तो निश्चय ही मेरा प्रिय मारा गया है।

अपभ्रंश काव्य-परम्परा की अनुपेक्षता आधिकासीन हिन्दी काव्य-भारा की कण-सूचना में विशेष सहस्रोत्पत्ति रही है। अपभ्रंश के जैन पौराणिक विषयों की भाषाभारा का पहलव हिन्दी में नहीं हो सका।^१ अपभ्रंश की मुख्य वीर तथा गृन्धार पूर्ण परम्परा का विकास हिन्दी में हुआ है। ‘ढोला माक रा दोहा’

१—इसके दो कारण हैं प्रथम तो वीर के जैन कवियों ने परिनिष्ठित अपभ्रंश में ही काव्य-रचना करते रहना अपना आदर्श समझा क्योंकि अपभ्रंश उनके लिए बार्मिक और पुष्प भाषा की और हिन्दी में पौराणिक प्रबन्ध काव्यों की रचना करना उन्होंने ठीक नहीं समझा। दूसरा इसका कारण यह भी हो सकता है कि हिन्दी का विकास आधिकासीन आरंभ से अधिक प्रभावित रहा है जो ब्राह्मण धर्म का आन्दोलन था और जिसका जैन कवियों पर प्रभाव नहीं पड़ा तीसरे हिन्दी के प्रबन्ध कवियों ने भी क्रिममें राजकवि सूरी या सगुप्तबन्ध से इस परम्परा को नहीं अपनाया—हि० वृ० ६० पृ० ११५

में शुभार-परम्परा का स्वल्प मिलता है। कतिपय आलोचकों ने बिहारी के दोहों को इसी परम्परा में देखने का प्रयास किया है। भाव की दृष्टि से बिहारी 'गाथा सम शती' और 'आया सम शती' के वर्ग में आते हैं। अभिष्यञ्जना प्रणाली की दृष्टि से बिहारी अपभ्रंश-शैली का संरक्षण करते मिलते हैं।

हिन्दी के आदिकावलीन साहित्य में कतिपय कथानक-कवियों का नियमित प्रयोग मिलता है। 'करकडचरित' में बिजदरम गुप्तकवच से प्रणय उद्भाषना की विधि का प्रयोग मिलता है। सुए का इस सन्दर्भ में प्रयोग किया गया है। 'धृञ्जीराज रासो' और 'पद्मावत' में इस विधा का प्रयोग किया गया है।

काव्य-रूपों के साथ-साथ अपभ्रंश छन्दों का विकास हिन्दी में पूर्ण रूप से हुआ है। संस्कृत महाकाव्यों के स्वल्प-गद्य का अपभ्रंश ने स्वीकार नहीं किया। अपभ्रंश के महाकाव्य रूपों की अपेक्षा सन्धियों में बिभक्त होते हैं। प्रत्येक सन्धि पुनः कड़वकों में बिभक्त होती है। कड़वक के अन्त में 'बत्ता' का नियोजन मिलता है। जायसी तथा अन्य सूफी प्रबन्धों तथा तुलसी के 'मानस' में यह परम्परा ही ग्रहण की गई है। रासक-काव्य द्वारा में इस अभिष्यञ्जना शिल्प के प्रति आग्रह मिलता है। इस प्रकार हिन्दी के आदिकावलीन साहित्य के काव्य रूपों तथा छन्द विद्या के अध्ययनके ऐतिहासिक संदर्भों की दृष्टि से अपभ्रंश साहित्य का स्वल्प विस्तारण महत्वपूर्ण है।

हिन्दी साहित्य का इतिहास-दर्शन और आदिकावली

हिन्दी-साहित्य के इतिहास-लेखन की परम्परा का घिसाव्वास फ्रांसीसी विद्वान यासी-द-लासी के इतिहास ग्रन्थ *Historie de la Literature Hindoui Hindustanee* (इस्त्वार-द-ला लिजेरात्यूर ऐं दुई-एँ-ऐनुस्तानी) नामक ग्रन्थ से हुआ। इस कृति के प्रथम भाग के प्रथम संस्करण का प्रकाशन सन् १८३९ में, तथा दूसरे भागका प्रकाशन १८७०-७१ में हुआ। साहित्य के इतिहास लेखन में दो प्रमुख तत्त्व विधेय अवस्थित हैं। प्रथम—काल-क्रम का निरूपण, द्वितीय-साहित्य प्रवृत्तियों का विस्लेषण। इन दो दृष्टियों का आधार प्रस्तुत कृति में ग्रहण नहीं किया गया है। यासी ने अपनी बुस्तक में कवियों का संग्रह वर्ण-क्रम के अनुसार किया है। परन्तु उनकी रचना के विस्लेषण से यह

स्पष्ट होता है कि साहित्य की विविध प्रवृत्तियों से वे परिचित थे। हिन्दी-रचनाओं के प्रस्तुत स्पष्ट वर्गीकरण से इस कथन की पुष्टि होती है। हिन्दी की रचनाओं को वे चार भागों में विभाजित करते हैं—

(क) आख्यान (ख) आदिकाम्य (ग) इतिहास (घ) काव्य । पद्य रूपों के आधार पर उन्होंने प्रस्तुत वर्गीकरण किया है—अमंग आस्था कवित्त या कविता कहनौ मसारा, कीर्तन गान गामी मीठ गुजरी, फनुरंग बरन बरबा कुल छन्द चौपीई, धनकरो छन्द इत्यादि^१ ।

इस परम्परा की दूसरी कृति है जिनसिंह सेगर का 'पिब सिंह सरोज' । यह कृति सन् १८८३ में प्रकाशित हुई। इस कृति में एक सहस्र कवियों का संक्षिप्त परिचय तथा उनकी रचनाओं के उदाहरण हैं^२ । इस सन्दर्भ की तृतीय उल्लेखनीय कृति है प्रियर्सन का इतिहास 'बी माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ माडर्न हिन्दुस्तान (Modern Vernacular Literature of Northern Hindustan) प्रस्तुत-ग्रन्थ में सामग्री को कास के अनुसार विभाजित करने का प्रयास किया गया है। प्रियर्सन न प्रस्तुत रूप में विभाजन किया है। (क) बाल्य कास (ख) पत्रहवीं शरी का बार्मिक पुनर्जागरण ।

१ डॉ० लक्ष्मी सावर बाल्जोव ने इसके हिन्दुई बाल भाग का अनुबाद किया है। अनुबादक का यह कथन है 'प्रस्तुत पुस्तक उनके (तापी के) ग्रन्थ में से हिन्दुई से सम्बन्धित अंश का सर्वप्रथम हिन्दी अनुबाद है। इनसे इस ग्रन्थ का पूर्ण या आंशिक अनुबाद न तो अंग्रेजी में है न तो किसी अन्य भारतीय भाषा में है। परन्तु डॉ० महारेश साहा और श्री मारायण पाण्डेय ने एक नवीन ग्रन्थ का उत्पादन किया है। इनके अनुसार फैन्स और करीमुद्दीन ने १८४८ में ही तापी के प्रथम संस्करण का उर्दू में अनुबाद किया था। तापी इस अनुबाद से परिचित थे। दूसरे संस्करण में उन्होंने इस अनुबाद का सम्मत भी किया है। २ 'पिब सिंह सरोज' के पूर्व की दो अन्य कृतियों का उल्लेख मिलता है—

(१) काव्य-संग्रह महेश दत्त ।

(२) कवित्त-रत्नाकर-माधारीनिधि (डॉ०—रामकुमार बर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ११. नृ० संस्करण) ।

(घ) मलिक मुहम्मद जायसी और उनकी कविता ।

(ङ) बज्र का कृष्ण सम्प्रदाय ।

(च) मुगल दरबार ।

(छ) तुलसीदास ।

(झ) रीति काव्य ।

(ञ) तुलसीदास के अन्य परवर्ती ।

(ट) अठाखूबी छताखी ।

(ड) कम्पनी के शासन में हिन्दुस्तान ।

(ढ) महापानी बिक्टोरिया के शासन में हिन्दुस्तान ।

प्रियर्सन के पश्चात् इतिहास-काल की दृष्टि से दूसरा महत्वपूर्ण प्रयास है मिश्रबन्धुओं का 'मिश्रबन्धुविनोद'। इसके प्रथम तीन भाग संवत् १९७० में प्रकाशित हुए। चौथा भाग (आधुनिक काल) संवत् १९९१ में प्रकाशित हुआ। इनके प्रत्येक की प्रमुख विशेषता है साहित्यिक विषयों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण। उनके वर्गीकरण की रूप-योजना इस प्रकार है—

(क) पूर्वारम्भिक काल — सं० ७०० — १३४३

(ख) उत्तरारम्भिक काल — सं० १३४४ — १४४४

(ग) पूर्वमाध्यमिक काल — सं० १४४३ — १५६०

(घ) प्रौढ़ माध्यमिक काल — सं० १५६१ — १६९०

(ङ) पूर्वांतवृत्त काल — सं० १६९१ — १७८९

(च) अज्ञात काल — (प्रायः उत्तरांतवृत्त एवं परिवर्तन काल के ।)

(छ) परिवर्तन काल — सं० १८९० — १९२५

(झ) वर्तमान काल — सं० १९२६

मिश्रबन्धुओं ने साहित्यिक प्रवृत्तियों के प्रति आग्रह प्रकट किया है परन्तु समय के स्पष्ट विभाजन से वे अपने का ऊपर नहीं उठा सके हैं। 'वास्तव में 'मिश्रबन्धु विनोद' में काल विभाजन के आधारों का संकर है। आदि प्रकरण में बीरगाथा काल के साथ और सभी प्रकार की रचनाएँ रखी हैं। मिनमें कुछ पीछे की भी हैं। इसी प्रवृत्ति की ओर संकेत करते हुए आचार्य रामचन्द्र मुरल ने कहा है

‘ओ बीर की पुरानी परिपाटी के अनुसार कहीं कहीं का छिन्न देसकर ही प्राकृत भाषा और कहीं औपाई देसकर ही अवधी या बंसवाड़ी समझते हैं ओ भाव को ‘घाट’ और बिहार को ‘फीछिन’ कहते हैं वे यदि उन्मूल पद्यों के संवत् १००० के क्या संवत् १०० के भी कथायें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं’ । इस प्रकार आचार्य शुक्ल प्रवृत्तियों के प्रति अधिक आग्रहीत समझे हैं ।

इस प्रकार हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की सर्वप्रथम प्रवृत्ति और सुस्पष्ट योजना आचार्य शुक्ल द्वारा हिन्दी नगर सागर’ की भूमिका में प्रस्तावित हुई थी । आचार्यने इतिहास लेखन की सर्वनात्मक अनुकूलता की प्रस्तावना प्रस्तुत करने में की है—‘जबकि प्रत्येक देशका साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्तियोंका स्थायी प्रतिबिम्ब होता है तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता जाता है । यदि ये अन्त तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य-परम्परा के साथ-साथ उनका सामंजस्य बिखाना ही ‘साहित्य का इतिहास’ कहलाता है । जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक सामाजिक सांस्कृतिक तथा आर्थिक परिस्थिति के अनुसार होती है अतः कारण-स्वरूप इन परिस्थितियों का किञ्चित् विवरण भी आवश्यक होता है । इस दृष्टि से हिन्दी साहित्य का विवेकन करने में यह बात ध्यान में रखनी होगी कि किन्हीं विशेष समय में लोगों में कवि विरोध का संचार और पोषण किपर से और किस प्रकार हुआ । कथ्युक्त व्यवस्था के अनुसार हम हिन्दी साहित्य के १०० वर्षों के इतिहास को चार भागों में विभक्त कर सकते हैं—

(क) आदि काल (बीरगाथा काल सं० १०५०-११७५)

(ख) पूर्व मध्यकाल (अदि काल सं० ११७५-१७००)

(ग) उत्तर मध्यकाल (दीप्ति काल सं० १७००-१८००)

(घ) आधुनिक काल (नव काल सं० १८००-१८७५)

इस प्रकार आचार्य शुक्ल ने अपने वर्गीकरण में दोहरे नामों का प्रयोग किया है । हिन्दी नगर सागर की भूमिका में प्रस्तावित इस स्वरूप का विस्तार ‘हिन्दी साहित्य के इतिहास’ में दिया गया है । आचार्य ने यह विभाजन प्रवृत्तियों

के अनुसार किया है परन्तु वे स्वतन्त्र विभाजन के समर्थक नहीं थे। उन्होंने इस ओर संकेत करते हुए कहा है, 'यद्यपि इन काव्यों की रचनाओं की विशेष प्रशंसा के अनुसार ही उनका नामकरण किया गया है पर यह न समझना चाहिए कि किसी विशेष काव्य में और प्रकार की रचनाएँ होती ही नहीं थी। जैसा भक्ति काव्य या रीतिकाल को सँ तो उसमें भीर रस के अनेक काव्य मिलते जिनमें भीर रागाओं की प्रशंसा उसी ढंग से होगी जिस ढंग की भीर गाथा काव्य में हुआ करती थी। शुक्ल जी ने आदिकाल के लिए 'भीर गाथा काव्य की संज्ञा दी है। आलोच्य काव्य की प्रमुख कृतियों को दो बर्गों में आचार्य ने विभक्त किया है। प्रथम—अपभ्रंश की रचनाएँ—(क) विजयपाल रासो (ख) हम्मीररासो। (ग) कीर्तिकथा (घ) कीर्तिपताका।

द्वितीय—वैशम्पाय की कृतियाँ—(प) कुमाररासो।

(च) बीसछदेवरासो।

(छ) पूष्पीरावरासो।

(ज) जयचंदप्रकाश।

(झ) जयमर्त्यक-जयचन्द्रिका।

(ञ) परमाकरासो (आस्था का मूलकाव्य)।

(ट) सुसरो की पहेलियाँ।

(ठ) विद्यापति-पदावली

इन्हीं बारह ग्रन्थों का समावेश आचार्य आदि काल के अन्तर्गत करते हैं। आचार्य का यह स्पष्ट संकेत है कि 'बीसछदेव रासो' 'सुसरो की पहेलियाँ' और 'विद्यापति की पदावली' के अतिरिक्त अन्य प्रस्तावित कृतियाँ भीरगाथात्मक हैं। हम दृष्टि के आधार पर ही शुक्ल जी 'आदिकाल' के लिए 'भीरगाथाकाव्य' की संज्ञा उचित मानते हैं।

इस वर्ग में निम्नग्रन्थों ने आदिकाल के निर्धारण हेतु निम्नलिखित कृतियों का संश्लेष किया है —

१ मगध नीला।

२ पृथ्वीनन्दन।

३ वर्तमान

४ संवत्सार ।

५ पत्तलि ।

६ अन्त्य योग ।

७ जम्बूस्वामीरासा ।

८ रत्नविमिरासा ।

९ नेमिताप चतुर्ष्व ।

१० उपएसमासा (उपवेद्यमासा) ।

मुक्त जी के अनुसार प्रथम पीछे की रचना है । पुस्तक से एक उद्धरण प्रस्तुत करते हुए आचार्य ने यह निष्कर्ष प्रदान किया है—

तेहि रिल कया कील मलसाई । हरि के नाम गीत बिल साई ।

मुमिरौ गुठ गोविन्द के पाठ । अगम अपार है जाकर मार्ग ।

‘बृह नवकार’ ‘जम्बूस्वामी रासा’ ‘नेमिताप चतुर्ष्व’ ‘उपएस मासा’ जैन धर्म के तरुण निरूपण पर हैं । ‘वर्तमान’ ‘संमत सार’ मोटिसमात्र हैं ।

‘इस प्रकार केवल दो साहित्यिक पुस्तकें बचीं जो वर्णनात्मक (डेस्क्रिप्टिव) हैं—एक में मन्द के ज्योत्नार का वर्णन है दूसरी में मुजरात के रक्तक पर्वत का । अतः इन पुस्तकों की नामावली से मेरे निश्चय में किसी प्रकार का अन्तर नहीं पड़ सकता । यदि ये जिन जिन प्रकार की १ पुस्तकें साहित्यिक भी होतीं तो भी मेरे नामकरण में कोई बाधा नहीं डाल सकती थी क्योंकि मैंने १ प्रसिद्ध बीरमायात्मक पुस्तकों का उत्सर्ग किया है ।’ इस प्रकार मुक्तजी का स्पष्ट निर्णय है कि इस काल की अधिकांश कृतियाँ बीरमायात्मक हैं अतः इसे बीरमायाकाल के रूप में ही स्वीकार करना चाहिए । इस काल को मध्य जम्बुजी के समान केवल ‘आदिमाल’ कहना उपयुक्त नहीं है ।

परन्तु मुक्तजी ने जिन कृतियों को ‘बीरकाव्य’ माना है उनमें से अधिकांश बीरमायात्मक नहीं हैं । उनमें ‘राम’ ‘काव’ आदि शृंगार मूलक रचनाएँ भी हैं । धार्मिक अनुप्रेणाओं के साथ-साथ उनमें काव्य-सौन्दर्य भी पवीत भाषा में है । बरनी रचना हिन्दी साहित्य के ‘आदिमाल’ के प्रथम

व्याख्या में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने शुक्लजी की संस्थापना का सङ्केत करते हुए निम्नवचनों के नामकरण का समर्थन किया है। अपने प्रथम व्याख्यान में द्विवेदीजी ने प्रस्तुत वर्कों का अवसम्भ ग्रहण करते हुए शुक्लजी का सङ्केत किया है। शुक्लजी द्वारा प्रस्तावित रचनाओं में शुक्ल पीछे की रचनाएँ हैं कई नोटिस मान है कई के सम्बन्ध में यह निश्चित नहीं कहा जा सकता है कि उनका मूल रूप क्या था ? अतः—

(क) कुमाररासो विजयपासरसो बीससरेख रासो—बहुत पीछे की रचनाएँ हैं।

(ख) हमीररासो जयचन्द्रप्रकाश-जयचन्द्रिका परमाकरासो—नोटिस मान है।

(ग) पृथ्वीराज रासो का मूल रूप क्या था इसका आज भी पता नहीं।

इस सन्दर्भ में यह विशेष उल्लेखनीय है कि द्विवेदीजी ने 'प्राकृत पैयसम्' के पद्य 'नाप सिद्धों की रचनाओं' दोहा माह-रा दोहा' जैन कवियों के 'रास फाय' आदि काव्य, 'उक्ति व्यक्तिप्रकरण' एवं 'वर्णरत्नाकर' तथा 'सन्देशरासक' को भी आदि कास के अन्तर्गत माना है। परन्तु आचार्य द्विवेदी का यह मोह हिन्दी के आधिकासीन साहित्य की कास-अवधि और काव्य-अवधि को अधिक विस्तार देने के कारण ही है। आधिकासीन की रूप-सौजन्य को द्विवेदीजी ने अधिक व्यापक बनाया है।

आचार्य शुक्ल इस प्रस्तावना के माबी रूप से परिचित हो सकते हैं। उनकी व्यापक दृष्टि इस सत्य को स्पष्ट देख सकी थी कि माबीयुग के आलोचक इस प्रकार का प्रश्न उत्पन्न कर सकते हैं। कम्प्युट समस्या के स्पष्टीकरण के लिए उन्होंने प्रस्तुत समाधान की भी प्रस्तावना की है—(१) इन रचनाओं को हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत नहीं स्वीकार कर सकते थे अपभ्रष्ट की रचनाएँ हैं। यही कारण है कि 'बीरवाचा' के पूर्व द्वितीय प्रकरण में आचार्य ने 'आधिकासीन' शीर्षक के अन्तर्गत उन रचनाओं की विवेचना की है जिन्हें वे अपभ्रष्ट के अन्तर्गत मानते हैं। अतः 'भावकाचार' (सं. ६१० देवसेन) 'आदिपुराण' (पुष्पक सं. १०२६) 'जयहर चरित' छिन्न-भागों की रचनाएँ हेमचन्द्र के संकलित दोहे 'कुमारपास प्रतिबोध' (धोमप्रमसूरि सं. १२६१) 'प्रबन्ध चिन्तामणि' (बीनाचार्य)

मैकुंग सं० १३६१) 'धाऊ' धार्यवृत्ति (धाऊ'वर) आदि वृत्तियों का विवरण उन्होंने 'अपभ्रंश काव्य' के अन्तर्गत किया है। शुक्लजी का दूसरा आग्रह यह है कि वे रचनायें धार्मिक संवेदना पर आधारित हैं अतः इनको विवेचना साहित्यिक विषयों के अन्तर्गत नहीं होनी चाहिए। शुक्लजी का प्रथम निर्णय यथार्थ और वैज्ञानिक है। अपभ्रंश-वृत्तियों का अध्ययन हिन्दी के सन्दर्भ में एक विशेष दृष्टि से ही अपेक्षित है। आधिकांश हिन्दी साहित्य की पूर्ण पीठिका और उसके स्वस्थ विकास के ऐतिहासिक चरणों के स्पष्टीकरण की दृष्टि से यह अध्ययन अनिवार्य-सा कथ्यता है।

आचार्य का द्वितीय आरोप उचित नहीं लगता है क्योंकि इनमें धार्मिक अनुचिन्ता के साथ-साथ साहित्यिक सौन्दर्य भी है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही कहा है 'धर्म बहो कवि को केवल प्रेरणा दे रहा है। जिस साहित्य में केवल धार्मिक उपदेश हो उससे यह साहित्य निश्चितरूप से मिला है जिसमें धर्म भावना प्रेरक शक्ति के रूप में काम कर रही हो जो हमारी सामान्य अनुपपत्ता को मजबूत और प्रभावित कर रही हो'।^१ जैन-धर्म एवं बौद्ध सिद्धों की रचनाओं में अपने युगों को पकड़ कर लेनेवासी कवियों का प्रस्तावना स्वात्मक बराबर पर हुआ है। अतः इनमें हम केवल धार्मिक रचनाओं की संज्ञा देकर इनकी अगहगहना नहीं कर सकते। इस दृष्टि के अनुसार भक्ति-भाव धारा के अन्तर्गत रचित वृत्तियाँ कबीर मानस 'मुरसाय' 'पद्मवत' भी साहित्य के क्षेत्र से बाहर ही रहें।

राहुल साँहस्रायन ने आधिकांश काव्य-धारा के लिए सिद्ध-सामन्त युग की प्रस्तावना की है और ७६० ई०—१३०० ई० तक की अवधि को उन्होंने 'सिद्धसामन्त' युग की सीमा मानी है।^२ इस प्रकार राहुल साँहस्रायन और हजारी प्रसाद द्विवेदी की प्रस्तावना में विशेष अन्तर नहीं है। अर्थात्, राहुलजी के वर्गीकरण के अन्तर्गत वे सभी वृत्तियाँ आयी हैं जिनकी प्रस्तावना द्विवेदीजी ने की है। इनके अनुसार पुष्करवत् स्वयंभू, जोरहु, कनकामर ईशवन्धु सूरदास कन्हैया इत्यादि हिन्दी के आधिकांश कवियों के रूप में आते हैं।^३ मध्यम में दो प्रकार की रचनायें मिलती हैं—[१] बौद्धमिथो-जैन साधुओं की रचनायें [२] सामन्ती और रसात्मक या शृंगारी रचनायें।

१ आलोचना इतिहास अंक०, पृ० ७६।

२ हिन्दी काव्य काव्य—राहुल साँहस्रायन : अन्तरविका।

डॉ० रामकुमारबर्मा ने अपने ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य का आलोचक इतिहास' में आधिकासीन साहित्य को दो धाराओं के अन्तर्गत विभाजित किया है। प्रथम—सम्बिधासीन साहित्य (सं० ७००-१२००) इस प्रस्तावना को बेपुन दो भागों में विभक्त करते हैं (क) पूर्वार्ध—इसने अन्तर्गत सिद्धसाहित्य जनसाहित्य की विधायें आती हैं। इस प्रकार सरहपा-सबरापा सरपा-रन्हापा आदि सिद्धों की तथा स्वयंमु, पुष्पान्त धनपास रामसिंह कनकामर जिनदत्तगुरि, हेम चन्द्र शालिमह मेछुग राजसेसरगुरि आदि की रचनायें प्रथम वर्ग के अन्तर्गत आती हैं। (ख) सम्बिधाक के उत्तरार्ध के अन्तर्गत नायकप्रवास की रचनायें 'सन्देश रासक' बमीर लुसरो की रचनायें मुक्तावाक्य की रचनाओं को डॉ० बर्मा ने स्वीकार किया है। द्वितीय धारा के लिए डॉ० बर्मा ने चारणकास की संज्ञा दी है। डॉ० बर्मा की यह धारणा आचार्य मुक्त की धारणा के समान ही है। उनकी धारणा है कि रासक या बीर गीतों के सेवक चारण थे। परन्तु यह धारणा भ्रान्तिक नहीं है। समग्रता की दृष्टि से हिन्दी के आरम्भिक काव्य को हम आदिकाव्य या आदिकाक ही कह सकते हैं। इसके अन्तर्गत प्रस्तुत धारायें प्रमुख हैं। (१) रासककाव्य (२) नाय साहित्य-काव्य-धारा (३) बीर काव्य-धारा।

आदि काल की काव्य विधाओं के स्वल्प विकास का इतिहास

हिन्दी की आधिकासीन काव्य विधाओं की सर्वना अपनी पूर्ण परम्परा (अपभ्रंश ब्रह्म) की पीठिका पर हुई है। काव्य-स्वरूप छन्द-योजना और भाव-संविधान की दृष्टियों से अपभ्रंश और ब्रह्म की काव्य विधाओं ने हिन्दी की सर्वनात्मक अनुभेदना का संघाकन और नियमन किया है। जिस वाक्य-मन्त्र में हिन्दी की आदि कासीन रचनायें पस्त्रित हो कर स्वरूप धारणकर रही थीं सममें अपभ्रंश ब्रह्म की रचनायें भी निरुसनीस थीं। ये रचनायें बाष्प अनुभेदना पर ब्रह्मन्विता थीं। भाव और विषय, इन दोनों ही दृष्टियों से इनमें रचनात्मक प्रतिभा का स्वरूप और श्रुति संस्थापित हो चुका था। ये रचनायें अपभ्रंश तथा ब्रह्म के अधिक निकट थीं परन्तु इनसे मुक्त होने का प्रयास भी कर रही थीं। ये नवीन सृजनात्मक शक्तियों का संघर्ष कर रही थीं। पश्चात् साहि

निरंक विकास की गरीब अनुवृत्तताओं का संस्पर्श गरीब साहित्यिक सर्वनामों को अपनी गरिमा प्रदान कर रहा था। भाषा स्वतंत्र रूप धारण कर रही थी साथ साथ साहित्य भी स्वतंत्र संस्वानों पर आधारित हो रहा था। इस दृष्टि में हिन्दी की रचनाओं के समानान्तर अपभ्रंश रचनायें भी निरंकलनीय थीं। यही कारण है कि काव्य-स्वल्प और छिन्न विधियों की दृष्टि से अपभ्रंश तथा भारि काव्यीय रचनाओं में समता है। यह तथ्यांक भी है।

अगर इस ओर संकेत किया गया है कि हिन्दी की भारिकाव्यीय रचनायें गरीब भूमिकाओं का संस्पर्श नहीं कर सकी थी। जिस राष्ट्रीय सामाजिक और सांस्कृतिक सापेक्षता में अपभ्रंश की रचनायें निर्मित हुईं वह सापेक्षता हिन्दी के उन्मुखकाल में भी बनी रही परन्तु गरीब काव्यालयिक सम्मा वनाओं के उन्मुख का प्रकाश ही नहीं उत्पन्न होता है। अपभ्रंश काव्य निर्माण में जैन किन्तु बिना मूल अनुप्रेषणा बनी रही। इस अनुप्रेषणा को कवियों ने अधिक उपास तथा एवम् संबिंदन पीछे दृष्टियों से ग्रहण किया। उनकी रचनात्मक प्रक्रिया में लोक संवेदनाओं को विशेष स्थान दिया गया है। जैन अनुप्रेषणाओं पर आधारित होने के कारण यहाँ चरित्रकाव्यों के प्रति कवियों का विशेष आग्रह रहा है। इसी के समानान्तर कथाकाव्यों की रचना प्रस्तावित की गई। काल क्रम से चरित्र-काव्य तथा कथा-काव्य प्राबल्य तथा प्रियत्वविधि इन दोनों ही दृष्टियों से एक दूसरे में समीकृत होत गये थे। अपनी दृष्टियों के नायकत्व कवि अनेक दृष्टियों से करते मिलते हैं। काव्य का नायकत्व वे कथा दृष्टि में काव्य रूप की दृष्टि से साथ ही साथ धर्म के अनुसार भी करते मिलते हैं। इन सभी दृष्टियों में अपभ्रंश काव्यों के वर्गीकरण की योजना की गयी है। समझता की दृष्टि से अपभ्रंश साहित्य की प्रमुख विधा अब-सम्भावना हो सकती है—

(क) जैन प्रबन्धात्मक रचनायें—ब्रह्मवादी-नीति सम्बन्धी।

(ग) बौद्ध अपभ्रंश रचनायें।

(घ) पार्थिव अनुकूलना में मुक्त प्रबन्धात्मक तथा मुक्त रचनायें।

जैन प्रबन्धात्मकों को प्रस्तुत रूप में विभाजित करने का प्रयत्न किया गया है—(क) पौराणिक प्रबन्धात्मक (ख) चरित्रकाव्य (ग) कथाकाव्य। परन्तु

यह वर्गीकरण अधिक वैज्ञानिक नहीं लगता है। इन समस्त रचनाओं में कथा तथा के प्रति विशेष आग्रह होने के कारण प्रबन्धात्मकता है। साथ ही साथ किसी विशेष व्यक्ति के चरित-उद्भावन का प्रयास भी मिलता है। इन सन्दर्भ में बहुत स्थिति का सान्दीकरण प्रस्तुत बकव्य से हो जाता है 'स्वरूप की दृष्टि से अपभ्रंश के पौराणिक काव्यों और चरितकाव्यों में बहुत अन्तर नहीं है। पौराणिक काव्यों में विषय का विस्तार अधिक होने से सन्धियों की संख्या पचास से सवा सौ तक होती है। जब कि चरित काव्यों में विषय विस्तार मर्यादित रहता है। इसमें सन्धि संख्या अधिक नहीं होती। वेप बातें जैसे सन्धि कड़बक कुछ पंक्ति बगल बाहि में दोनों में कोई भेद नहीं होता'—'धर्मसिचरित'-भूमिका हरिवंशम मिमांसी विद्या भवन, बम्बई, हिन्दी महाकाव्य स्वरूप विकास, पृ० १७१ से प्रस्तुत)। इन दृष्टियों की सामूहिक विशेषतायें प्रस्तुत हैं। (क) इनके चरित नायक पौराणिक हैं या जग धर्म के निष्ठावान अनुयायी। (ख) भाकार की दृष्टि से इन में विभिन्नता है। (ग) कुछ में अनेक महापुरुषों की कथा कही गयी है, किसी किसी में केवल एक व्यक्ति की कथा प्रस्तुत की गई है।

१—डॉ० टगारे ने अपभ्रंश भाषा और साहित्य का प्रस्तुत वर्गीकरण किया है—(क) पूर्वी अपभ्रंश—छह तथा कछ के 'बोहाकोश' और 'बर्पाप' की भाषा (ख) पश्चिमी अपभ्रंश—पुष्पदन्त 'महापुराण' 'गमिकुमारचरित' 'असहचरित' 'करकंडचरित' की भाषा—(ग) पश्चिमी अपभ्रंश—कालिदास बोर्दु, रामसिंह, धनपाल हेमचन्द्र ('विक्रमोर्वशीय' सावयवम्न बोहा) 'पाहुड़ बोहा' 'मविसयत कहा' हेमचन्द्र के व्याकरण में प्रस्तावित ज्वाहरणों की भाषा)। Historical Grammar of Apbhramsa परन्तु अपभ्रंश के भेदों के आधार पर अपभ्रंश साहित्य की विवेचना सम्भव नहीं है। भावभारा तथा काव्यों-रूपों की दृष्टि से इसके साहित्य का अध्ययन अधिक वैज्ञानिक होगा।

(ग) ये दृष्टियाँ सन्धियों में विभक्त मिलती हैं। सन्धियों कड़बकों में विभक्त मिलती हैं।

(ख) सन्धि के आरम्भ में कथा के निर्देशन की दृष्टि से एक पद्य रहता है जिसे झुबक कहते हैं।

अब कथा निबोधन की दृष्टि में 'चरित' 'कथा' 'पुराण' में अन्तर नहीं मिलता है । 'पुराण' को अन्य विषयों से अलग रखने का एक अन्य कारण लगता है । जिन में से महापुराण की परिभाषा देते हुए कहा है 'मह प्रत्य महापुराण इत्यस्मि' है कि इसमें तीर्थों, करों, चरित्रों, बलदेवों, बानुदेवों, प्रतिबानुदेवों प्रभृत प्राचीन महापुरुषों का चरित वर्णित है (आदि पुराण) । पुष्पाक्ष के अनुसार पुराणे कवियों को मूल रचना को पुराण कहते हैं । परंपरों, काल में विषय की अपेक्षा काव्य या छन्दसों के नाम से चरित या कथा काव्य मिलाने की प्रथा मिलती है । 'रासक' 'चरचरी' 'छता' 'बेठि' 'रमावन', 'कौमुदी' 'संकीर्तन' 'प्रकाश' 'मिठास' 'विषय' 'अम्बुद्वय' दीपक में भी रचनायें प्रस्तुत हुई हैं ।

अब अत्रि काव्य विभागों की बाह्य विभिन्नता में आन्तरिक एकता मिलती है । हिन्दी की आदिकालीन रचनाओं में इन छन्दों के प्रति विशेष आग्रह मिलता है । अत्रि का अविच्छेद कृतियों का आरम्भ एक निश्चित रूप से होता है । आरम्भ में तीर्थों की स्तुति पूर्वकवियों की प्रशंसा दुर्जन निन्दा की विधा मिलती है । बार्मिक मान-संविदा पर आधारित होते हुए भी इनमें शू या और मय की उद्भासना काव्यात्मक तत्वों को सम्प्रेषित करती है और कतिपय कृतियों में प्रमाद्वान्त काव्यों का आबसम्बोध मिलता है । कथानक-संपन्न में अक्षयि काव्यों का संग्रह भी इनमें किया गया है । इनमें कथानककृतियों का व्यापक प्रयोग मिलता है । कुमारिदत्त, गुणभवन, विनयान से प्रेम की उद्भासना की कवि का प्रयोग इन रचनाओं में मिलता है । इन कृतियों का प्रयोग हिन्दी की आदिकालीन कृतियों में ही नहीं बल्कि 'मानस' 'पद्मावत' तथा इन कवियों की अन्य कृतियों में भी किया गया है ।

इस विनयेय का प्रमुख सम्बन्ध में एक विनयेय महत्व है । आदिकालीन हिन्दी साहित्य की प्रणितियों इन्हीं मन्दनों में विकसित हुई हैं । 'अम्बु' अन्य काव्य-जग काव्यगत कृतियों और अम्बु की दृष्टि में हमारी में जोड़वही घटावही एक का जोड़साहित्य परिनिष्ठित अत्रि में प्राप्त साहित्य का ही ब्रह्म है, यद्यपि उसकी माया उग अम्बु में घोड़ी निम्न है । (हिन्दी साहित्य प्रथम संस्करण १९५०) ।

ऊपर यह संक्षेप किया गया है कि अपभ्रंश काव्य में प्रबन्ध-काव्य तथा आत्म्यात्मिका-काव्य वर्म-काव्य में विलोप अन्तर नहीं मिलता। 'परम चरित' के कवि स्वयंभूने इस कृति को कथा की संज्ञा दी है। वे इसे 'राम कहा' कहते हैं—

बढमाण मुह कुहर विणिमय

राम कहा नइ एह कमामय—[परमचरित] ।

बगपाल ने भी इसी प्रकार अपनी कृति की कथात्मकता की ओर संकेत करते हुए कहा है।— 'गिम्मस पुण पबित्त-कहा'। इसी परम्परा में 'कीर्तिस्त' 'पृष्णीराज रासो' 'मानस' आदि कृतियाँ जाती हैं।

अपभ्रंश की कतिपय कृतियों में कथा की प्रस्तावना ब्रह्मा-भोवा के माध्यम से होती जाती है। इसकी दो श्रेणियाँ मिलती हैं।

(क) दो व्यक्तियों के मध्य।

(ख) पशु पक्षियों के मध्य।

'भीष्माई कहा' में कवि-कविपत्नी की वार्ता के माध्यम से कथा प्रस्तावित है। हिन्दी की आदिकाशीन कृतियों में 'कीर्तिस्त' 'पृष्णीराजरासो' इत्यादि में इस कृति का प्रयोग मिलता है। 'कीर्तिस्त' में भृगु-भृषी की सम्वाद योजना की गई है। प्रत्येक पंक्त्य में भृषी भृम से प्रत्युत्तर करती है और उत्तर रूप में भृम कथा कहता है। इसी प्रकार 'पृष्णीराजरासो' में शुक-शुकी के संवाद की योजना मिलती है। उदाहरण :—

'शुकी कहै शुक संभरी कहौ कथा प्रिय प्राग

पुपु भोरा भीषण पह, क्लि हुम बैर बितान ।

बारहवें समय में शुकी ईक्षिणी के विषय में प्रश्न करती है—

बंसि शुकी शुक प्रेम करि, बाणि अन्त जो बत

ईक्षिणी निष्पह व्याह बिबि मुप्य मुनि मत्त ।

औरहवें समय में

कहै शुकी शुक संभली नीर न बाबै मोहि,

रय निरजानि बंद करि नय इक पूछो तोहि ।

मुकी सरिस मुक उम्बरपौ बरपो नारि सिर बित
 सयन संयोमिति संभरे, मन में मंडप हित ।
 पन कम्बू बासुन्ध संभौ बंध्यो सेत पुरसान
 ईक्षिनि व्याहि इन्ध करि, कहौ मुनहि ई कान ।

‘पृथ्वीराज रासो’ में यन्-उत्त कवि-कविपत्नी के सम्बन्धों की भी योजना मिलती है—

समर्थ एक निधि चंद । बाम बत वस्त्रि रम पाई ।

विस्सी ईस गुनेय । किति कहौ बानि अंठारि ॥

इस सन्दर्भ में विशेष उल्लेखनीय यह है कि ‘पृथ्वीराज रासो’ के आदि रूप पर विचार करते हुए डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने यह संकेत किया है कि ‘रासो’ का आदि रूप इन सम्बन्धों में ही प्रस्तावित रहा होगा ‘यह बात आप से छिपाता नहीं चाहता कि यह बात मेरे मन में समझी हुई है कि चंद का मूल ग्रन्थ मुक-मुकी संवाद के रूप में लिखा गया था और जितना अंश इस संवाद रूप में है उतना ही वास्तविक है । विद्यापति की कीर्तिछता से समान रासो में भी प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में और कदाचित् अन्त में—मुक-मुकी की बात भीत अवश्य रही होगी ।

संवाद शैली को दोस्वामी तुलसीदास ने ‘मानस’ में भी अपनाया है । ‘अपावत’ में भी मुक-सम्वाद की परिभूमिका ग्रहण की गई है । थोड़ा-बड़ा की बिचा की ओर बालकाण्ड में संकेत करते हुए कहा गया है—

बाग बसिक जो कथा सुहाई । भव्वाज मुनि बरहि सुनाई ॥

कहिहुँ छोड़ संवाद बतानी । मुनहुँ सकल सखन सुनु मानी ॥

संभु कीन्ह यह बलि सुहावा । बहुरि ह्वा करि उमहि सुभावा ॥

छोड़ त्रिष कापमुनूहिहि कीन्हा । राम प्रसन्न अधिकारी कीन्हा ॥

तेहि सन बावबसिक पुनि पावा । तिन्ह पुन भव्वाज प्रतिभावा ॥

—बालकाण्ड

कवि सम्बन्धालम्बक शैली का पूर्ण निरूपण उत्तरकाण्ड में करता है—

(५) जब से राम प्रजाप रायेया । उन्ति भयद अति प्रबल रिनेया ॥

पूरि प्रकास रहेन तिहूँ सोका । बहुतेन्ह सुख बहुतन मन सोका ॥
बिन्हहि सोक ते कहवैं बयानी । प्रपन्न अविद्या निम्ना निशानी ॥

—उत्तरकाण्ड

(क) गिरिजा कहेवैं सो सब इतिहासा । मैं बेहि समय गयवैं जग पासा ॥
मन सो कथा सुनहु जहि हेतू । मयउ काग पहि जग-कुल केतू ॥
बन रघुनाथ कीन्ह रन कीड़ा । समुझत भरति होति मोहि व्रीड़ा ॥
इन्द्रजीत करि आप बचामो । तब नारद मुनि गठइ पठामो ॥
बंधन काटि गयो उरगाथा । उपमा हृदय प्रबड बिपाया ॥
प्रभु बंधन समुझत बहु भांती । कल बिचार उरग आराती ॥
व्यापक कहा बिजय बासीसा । माया मोह पार परमीसा ॥
सो जगज्जार मुनेवैं जग माही । देखेवैं सो प्रमाद कसु नाही ॥

—उत्तरकाण्ड

जयसी मे 'पद्मावत' में इस परम्परा का अनुकरण किया है—

गुमा बानि कवि कहूँ कस सोगा । सिधक दीप तोर कस सोगा ॥
कोन रूप तोरी रूपमनी । लहुँ हौँ सोन किरैं पदमिनी ॥

×

×

×

×

मुमिरि रूप परमावति केरा । हंसा गुमा रानी मुत हैरा ॥
बहि सरवर मेंह ईस म बाबा । बमुका ठेहि सर हंस कहाबा ॥
दर्द कीन्ह अय जगत अनूपा । एक-एक ते जागरि रूपा ॥

—पद्मावत नागमती गुमा—

संवाद अध्याय ४ १२

अपभ्रंश-काव्यों में पूर्ब कवि प्रपंचा कवि की आरम्भ छप्पता का प्रकाशन सम्बन्ध प्रपंचा दुर्जन निन्दा, काव्य-आरम्भ करने की एक निरिखत विधा बन गई है । हिन्दी की आदि कासीन कृतियों में यह विधा संरक्षित मिलती है ।

पद्या ०१—मउ हउ हैमि नियमयनु न मुनिम अक्कुनु छहु बेधिय विषायमि ।

जा बिरहूय जय बंडहि मुनि वहि सा कह कोल समाबमि ॥

पुष्पवन्त —महापुराण

पुनश्चापान समो मुकर्म म सहस्रस्य कुसलाय ।
 त्रिय लोए सुखदं बहि कयं बहि नि छिट्ठं ।
 बबहूठाय—सकस्य-माहर्मि पोसाहर्मि भासाए ।
 सनसल धर हरणे मुकसत मूसियं जेहिं ।

[सन्देश रासक]

धुरं सम्य कम्बी छठु बग कम्बी । जिनै बसियं बैनि सा बंग सम्बी ॥
 कम्बी किली किली यकसी मुकिली । तिनकी उचिट्ठि कम्बी बन्धमकसी ॥

— बग बर्याई

म्यास भादि कनि पुंगर नाभा । जिन्हु छाबर हुरि मुजस बखाना ।
 बरल कमल बंदतै तिन्हु केरे । पुखहुं सकल म्फोरन मेरे ॥
 कलि के कजिन्हु करतै परनामा । जिन्हु बरने रघुपति गुन ग्रामा ॥
 जे प्राकृत कनि परम स्याने । भापों जिन्हु हुरि बलि बपाने ॥

मुससी — मानस-बाककाव्य

सखन प्रज्ञसा—दुर्जम मिन्द्या

इह सखन लोपहु विपठ छिटठ । बा सुद्धि भग्मस्तु विविधु इट्ठ ॥
 ओ पुनु सनु पुबहु बइह संप । सो कि बग्मास्तिपउ बेउ बंमु ॥
 परिच्छिन्न छएहिं बाबाऊ जानु । नुन बन्य कहि कि बग्मास्तिपउ बेइ बंमु ॥
 परिच्छिन्न छएहिं बाबाऊ जानु । नुन बन्य कहि मि कोरि तानु ।
 बउ छप्पुइ बैगिनि पर होरिछि । बउ सहउ छउ सिचहुं नुन पछाई ॥

मुससी —

बहुनि बन्दि यत्तम्य सति जाए । जी जिनु काज दाहिनेहु बायें ॥
 परहित हानि नाम जिन्हु करे । उअरें हण विपार बहेरे ॥
 ओ परदोष लगहिं एह साधी । परहित भुउ बिले फन घासी ॥
 बन्ने रास बस रैप मरोपा । सहस बरन बजइ पर दोषा ॥

काव्य में कथानक कविओं का प्रयोग अरज या काव्यो में मुक्त मानस रूप से हुआ है । इन कविओं के वाक्यमय है यदि छोड़ संभवों को काव्य में स्थान देना है, साथ-साथ कथा को कठिनीकता भी प्रदान करता है । अरज या काव्य-कविता में

इसे विशेष स्थान दिया गया है। उदाहरण स्वल्प हम 'मविद्ययत नहा' को ले सकते हैं। मविद्ययत, वसुधैव कुटुम्बकम् के साथ तिसक द्वीप व्यापार के लिए जाता है। वसुधैव तिसक द्वीप में उसके साथ छल करता है। उसे वहीं छोड़कर वहाज लेकर चला जाता है और मविद्ययत के संबंधों की उद्भावना करता है। इसी प्रकार 'करकण्ड चरित' में करकण्ड सिमल की यात्रा करते हैं। वहाँ की राजकन्या रतिवेगा से विवाह करते हैं। प्रत्यावर्तन में समुद्र में उनपर मत्स्यका आक्रमण होता है। विद्याधरी करकण्ड का अपहरण करती है। विद्याधरी उससे विवाह करती है। उसके पश्चात् कन्या करकण्ड रतिवेगा की संयोग भूमि में छोड़ दिया जाता है। इस कृति का प्रयोग बायसी के 'पपावत' में किया गया है। इस कृति के 'बेस-माता खण्ड' 'समसी-समुद्र खण्ड' में इस कृति का ही प्रयोजन मिलता है। पपावती से विवाह कर रत्नसेन विदाह लेता है। 'करकण्ड चरित' के समान रत्नसेन के सम्मुख भी समुद्र में पटना पड़ी है—

कहाँ उठी समुद्र उत्थाना। भूषा पंच सरण नियरागा।
 बोधित नवहि नैवे लय पानी। नावहि राक्स भास तुमानी ॥
 बुझहि हस्ती घोर मानवा। पहुँ विसि आह पुरै मंस खवा।
 ततस्तन राज-गोस्ति एक आवा। सिखर टूट जस डसन डोसावा ॥
 बोधित टूक-टूक छव भए। एहु न जाना कहे बलि गए।
 भए राजा रानी बुझ पाटा। हुनी बहे बसे बुझ बाग त
 समसी-समुद्र खण्ड में बोधित दुपटना के पश्चात् पपावती और रत्नसेन—

मिलन की योजना देवी संयोग पर उपस्थित है। यह प्रस्तावना भी 'करकण्ड चरित' के अनुरूप ही है। गुमा से सम्बन्धित कृति का प्रयोग भी 'करकण्ड चरित' में उपलब्ध है। इस कृति के आठवें परिच्छेद में एक मुए की भी कहानी है। वह विद्याधर था। गुमा के रूप में उम्मेन के निकट एक पर्वत पर रहता था। वह विद्याधर था। उसने सेठ की कुटुम्बिनी से मुक्त करामा और राज बरबार में राजा को उसने आसीर्वाद दिया। बायसी के 'पपावत' का गुमा भी इस प्रकार का है—

एहि बन रहत गई इम्ह आऊ। तरिख बछत न देखा काऊ।
 भाव ठाको स्वर बछ मछनाही। आबहु यह बन छाँडि पराही ॥
 ये तो उके और बन ताका। पंडित गुमा भुक्ति मन बाका ॥

बिचोड़ का व्यापारी मुन्ना से उसके गुणों के प्रति विश्वास करता है ।
उत्तर में वह कहता है—

हौ बान्धन बी पण्डित कहु आनन पुन सोई ।
पड़े के आगे जो पड़े पुन काम तेहि होई ।
तब पुन मोहि बहा हो बैबा अब फिर हुन भूट परेबा ।
अब गुन कौन को अब बजमाता । बानि मंजूसा ने ने आना ।
पंडित होई से हाट नह चड़ा । जहाँ बिकाय भूमिना पड़ा ।

बनिबारा सप्त-पृ० ११

हिंदी में इन वृत्तियों का विकास आप्त भाव-संस्पर्शों पर हुआ है । लोक
धेतना पर विकसित होते वाली रूढ़ियों में समय के अनुसार परिवर्तन होता है ।
उदाहरण स्वयं सिंहस दीप में सम्मिलित कथानक-रुढ़ि परिवर्तिकास में अनेक
परिवर्तनों के साथ ग्रहण की गई । 'पृष्णीराज रासो' में इस रुढ़ि का प्रयोग
पद्मावती विवाह के संदर्भ में हुआ है । परन्तु यहाँ वह 'उत्तर दीप' की कथा
है और वह समुद्र सिंघर की राजकुमारी है ।

उत्तर दिशि यद् गङ्गापति समुद्र सिंघर इह दुष्म ।

वहै सुनिजप सुरराजपति जादू कुलह बमम् ॥

यहाँ समुद्र सिंघर में सम्मिल 'सिंघर-दीप' का भाव निहित छया है ।
[हिंदी साहित्य का आकाल -पृ० ८४] । डॉ० द्विवेदी की यह धारणा है
कि यह कहानी १५ वीं शताब्दी की है । सिंहस वरा की कथा का प्रयोग नाय
सम्प्रदाय में मत्स्यत्र की जीवनौ में मिलता है । मत्स्येन्द्र नाथ किसी 'गारी बेरा'
में पहुँच कर साधना प्रारंभ होते हैं । योगि सम्प्रदाय विष्णुति में सिंहस वरा को
'निषादेरा बहा गया है । इस ओर संकेत करते हुए द्विवेदी जी ने कहा
है 'यहाँ प्रारंभिक केवल इतना है कि परवर्ती काल में भाव अनुष्ठानों में
निश्चय रूप प्रियारेण करीबन एक दूसरे से उलझा गया गया है । पद्मावत
के समय में भी विनयदेरा दक्षिण में सम्मिल जाता था परन्तु बाद में उत्तर में
सम्मिल जाने लगा ।' आकाल-(८३)।

अप्रग काव्य-रूपों में एक बिना उन इतिवृत्तों की है जिसका नामकरण
लोक प्रचलित ऋतुओं पर हुआ है उदाहरण 'बाणसाक्षात्काश' 'अब (कागु)

काव्य' 'बीमाता-काव्य' इत्यादि । भाव-योजना की दृष्टि से इस वर्ग की रचनायें भी भरितकाव्य ही हैं । अपभ्रंश-काव्य विधाओं के अन्तर्गत 'छागकाव्य' एक विशिष्ट काव्य विधा है । हिन्दी के आरम्भिक में 'छागु काव्य' की स्पष्ट रूप योजना मिलती है या नहीं यह विवादपूर्ण है । क्योंकि भाषा की दृष्टि से आरम्भिक हिन्दी की अपेक्षा ये अव्यवस्थित के निकट हैं । परन्तु 'हिन्दी साहित्य का प्रारम्भिक इतिहास' (प्रथम भाग) में प्रारम्भिक हिन्दी पर विचार करते हुए लेखक ने छागु-काव्य को हिन्दी की आरम्भिक कृतियों के अन्तर्गत स्वीकार करते हुए कहा है 'इस काव्य की काव्य-कृतियों में दो कृतियाँ विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं— बिन पणकृत 'भूस्मिन् छागु' (१२७१ वि०) राजसेनर सूरि कृत 'नेमि नाथ छागु' परन्तु इस निर्णय के लिए सबसे प्रमाणों की आवश्यकता है ।

'छागु-काव्य' का विकास लोक भावस की भाव भूमि पर हुआ है । 'रासक' काव्य के समान सम्बन्धतः यह अपने आदि रूप में नृत्य-गीत परक रहा होगा । काव्य-वर्णन में यह साहित्यिक रूप धारण करता गया और इसकी संस्थापना असंख्य काव्य के रूप में हुई । इसमें मीति तत्त्व की प्रधानता मिलती है, परन्तु कतिपय कृतियों में काव्य-तत्त्व का भी समावेश मिलता है । अतः इनमें प्रबन्धात्मकता भी अनिवार्य रूप में विद्यमान है । वैसे यह बसन्त ऋतु का काव्य है । यह 'भासों' में विभक्त मिलता है । इनकी समाप्ति धान्य रसमें होती है । विप्रसन्न के अन्तर्गत विषय की रसधाराओं की उद्भाषना इनकी प्रमुखता है । 'बसन्त' के अतिरिक्त इनमें वर्षा तथा अन्य ऋतुओं का भी रूप-विधान मिलता है । इनके गायक बिन पण-मुख हैं । अतः छागु काव्य की दो स्पष्ट धारायें मिलती हैं । प्रथम धारा के अन्तर्गत वे कृतियाँ आती हैं जिनमें प्रबन्धात्मकता है उदा० 'भूस्मिन् छागु' और 'नेमि नाथ' छागु दूसरे वर्ग के अन्तर्गत वे कृतियाँ आती हैं जिनमें प्रबन्धात्मकता का आग्रह नहीं मिलता है । इनमें बसन्त, मुहूर्त- उसके उद्गीर्ण-स्वरूप का उद्भाषन ही प्रमुख है उदा०—'मोहिनी छागु' 'भूपई छागु' 'बसन्त विभास छागु' आदि रचनायें ।

'भूस्मिन् छागु' में भूस्मिन् के तप रंग की रचना के वर्णन के अन्तर्गत शोभा (विषय) के सौन्दर्य निरूपण का संक्षिप्त रूप विधान मिलता है ।—

मयज खण्ड विमि रूह लहृत जयु बेनी रंढो
सरलत तरलत द्वातलत रोमावसि रंढो

बिछीड़ का व्यापारी मुझ से उसके मुँहों के प्रति बिज्ञासा करता है ।
उत्तर में वह कहता है—

हौं बान्हन ओ पण्डित कहु जापन गुन सोई ।
पड़े के जाग ओ परे हुन नाम तेहि होइ ।
तब मुन मोहि कहा हो बैबा अब पिअर हुड छु परेबा ।
अब गुन कौन ओ संद बजमाणा । पाति मँबूसा बे बै आना ।
पंडित होई से हाट नह चड़ा । बहौं बिकाय भूकिया पड़ा ।

बनिबारा खण्ड-गू० ११

हिन्दी में इन कृतियों का विकास जाग्रत भाव-संस्पर्श पर हुआ है । लोक-चेतना पर विकसित होते वाली कृतियों में समय के अनुसार परिवर्तन होता है । उदाहरण स्वल्प सिंहस दीप से सम्बन्धित कथानककवि परिवर्तिकात्म में अनेक परिवर्तनों के साथ ग्रहण की गई । 'पृथ्वीराज रासो' में इस कवि का प्रयोग पद्यावली बिबाह से स्वर्ग में हुआ है । परन्तु यहाँ वह 'उत्तर दीप' की कथा है और वह 'समुद्र सिंघार' की राजकुमारी है ।

उत्तर बिसि बड़ गङ्गापति समुद्र छिपर एक दुग ।

वहँ सुबिजय मुरराजपति जाहु कुच्छ अमम ॥

यहाँ समुद्र छिपर में सम्मत् 'सिक्क-दीप' का माव निहित समता है । [हिन्दी साहित्य का आदिकाल -गू० ८४] । डॉ० द्विवेदी की यह चारणा है कि यह कहानी १६ की पद्यावली की है । सिंहस दीप की कथा का प्रयोग माव सम्प्रदाय में मरस्यन्त की बीबनी में मिलता है । मत्स्येन्द्र माव किसी 'नारी देव' में पहुँच कर साधना अग्र होठे हैं । योगि सम्प्रदाय किञ्चित् में सिंहस दीप को 'त्रिपादेव' कहा गया है । इस ओर संकेत करते हुए द्विवेदी जी ने कहा है 'यहाँ प्रासंगिक केवल इतना है कि परवर्ती काल में नाप अनुभूतियों में सिक्क देव त्रिपादेव कश्मीरन एक दूसरे से उलझा दिया गया है । पद्यावत क समय में भी सिक्कदेव दक्षिण में समझा जाता था परन्तु बाद में उत्तर में समझा जाने लगा ।' आदिकाल-(८१)।

अपभ्रंश काव्य-रूपों में एक बिबा उक्त कृतियों की है जिनका नामकरण लोक प्रचलित जादुओं पर हुआ है उदाहरण 'बाह्यमासाकाव्य' 'अम (फागु)

काव्य' 'बौमात्ता-काव्य' इत्यादि । भाव-योजना की दृष्टि से इस वर्ग की रचनायें भी चरित्रकाव्य ही हैं । अपभ्रंश-काव्य विधाओं के अन्तर्गत फामकाव्य' एक विशिष्ट काव्य विधा है । हिन्दी के आदिकाल में 'फाम काव्य' की स्पष्ट रूप योजना मिलती है या नहीं यह विचारपूर्ण है क्योंकि भाषा की दृष्टि से आदि कालीन हिन्दी की अपरान ये अग्रहूठ के निकट हैं । परन्तु 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (प्रथम भाग) में प्रारम्भिक हिन्दी पर विचार करते हुए लेखक ने फाम-काव्य को हिन्दी की आदिकालीन कृतियों के अन्तर्गत स्वीकार करते हुए कहा है 'इस काल की काव्य-कृतियों में दो कृतियाँ विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं— जिन पराहत 'भूक्तिमह फाम' (१२७५ वि०) राजसेसर मुरि हूत 'भेमि माय फाम' परन्तु इस निर्णय के लिए सबब प्रमाणों की आवश्यकता है ।

'फाम-काव्य' का विकास लोक मानस की भाव भूमि पर हुआ है । 'रासक' काव्य के समान सम्भवतः यह अपने आदि रूप में नृत्य-गीत परक रहा होगा काल-अवधि में यह साहित्यिक रूप धारण करता गया और इसकी संस्थापना अर्जकृत काव्य के रूप में हुई । इसमें गीति तत्त्व की प्रधानता मिलती है, परन्तु कतिपय कृतियों में काव्य-तत्त्व का भी समावेश मिलता है । अतः इनमें प्रबन्धात्मकता भी अनिवार्य रूप में विद्यमान है । जैसे यह बसन्त ऋतु का काव्य है । यह 'मासों' में विभक्त मिलता है । इनकी समाप्ति शान्त रसमें होती है । मिश्ररस के अन्तर्गत विमोघ की रधाओं की उद्भासना इनकी प्रमुखता है । 'बसन्त' के अतिरिक्त इनमें वर्षा तथा अन्य ऋतुओं का भी रूप विधान मिलता है । इनके पायक जन धर्म-मुख्य हैं । अतः फाम काव्य की दो स्पष्ट शाखाएँ मिलती हैं । प्रथम भाग के अन्तर्गत वे कृतियाँ आती हैं जिनमें प्रबन्धात्मकता है तथा 'भूक्तिमह फाम' और 'भेमि माय' फाम दूसरे वर्ग के अन्तर्गत वे कृतियाँ आती हैं जिनमें प्रबन्धात्मकता का आग्रह नहीं मिलता है । इनमें बसन्त, मुख्यतः उसके उद्गम-स्वरूप का उद्भासन ही प्रमुख है, उदा०—'मोहिनी फाम' 'भुवई फाम', 'बसन्त बिलाह फाम' आदि रचनायें ।

'भूक्तिमह फाम' में भूक्तिमह के तप-योग की चेष्टा के वर्धन के अन्तर्गत कोशा (विद्या) के मौन्दर्य निरूपण का संक्षिप्त रूप विधान मिलता है ।—

मयम खण त्रिमि कह कहत अनु बेची दंडो

सरकउ तरकउ स्यामकउ रोमावकि दंडो

तुम पयोहर उत्सव सिंगार मयका
 कुसुम बाणि नित्य जमिय कुम्भ किरपाणि भुक्का ।
 काजल बज्रिणि नयन जय तिर संवत-फाई,
 बोरियाबाई कंबुसिय पुन दरमंडिल ताई ।

मदन के लडग के समान बेजी सहराती है तरल-सरल रोमाञ्जलि गृणार मुक्त है उत्तुंग उत्कृष्टित पयोहर गृणार की संस्थापना करते हैं कुसुम बाण की स्थापना से कामदेव ने जमूत के दो बट रख लिये हैं नेत्र कम्बलमुक्त हैं केस में माँग कर कंबुकि-जन्म से उसने बधस्वलों को सुसम्पित किया है ।' इस छंद में बसन्त के बहिरिक्त जन्म श्रुतियों के उत्तिम निश भी निमोचित हैं उदा० प्रस्तुत मद्य में बपी का रूप मिथान विशेष दर्शनीय है—

मिर मिर मिर मिर मिर-मिर ए मेहा बरिसति ।
 ललहल-ललहल ललहल-ए बाहला बहति ॥
 मज मज मज मज ए बीबुबीह मजकूब ।
 बर-बर-बर-बर ए बिरहिनी मन कम्पई ॥

'ये मेघ रिम रिम रिम बरस रहे हैं ये नाले कल-कल छन्न में प्रति ध्वनित हो रहे हैं बिद्युत (मज मज मज) जमक रही है बिरहिनी का मन बर-बर कांप रहा है ।

महु गम्भीर घरेज मेह जिमिजिमि बाजले
 पंचबाण नित्य कुसुम बाण तिमतिम साजले
 जिम जिम कैठति महमहल परिमल मियसावद,
 तिम तिम कामिय बरस लागि निज रमनि मनावद ।

'बैसे जैसे मधुर' स्वर-मैत्र वर्जन करते हैं बैसे बैसे कामदेव अपने बाणों से सुसम्पित हो रहा है । बैसे-बैसे केसकी अपनी सुरति और अपना परिमल प्रसारित कर रही है त्यों-त्यों कामी अपनी रमणियों के बरणों पर मिर कर मना रहे हैं । इस वर्न की दूसरी महत्त्वपूर्ण इति है 'नेमिताम काव' । यह राजमती तथा नेमिताम की कथा-जंजला पर वर्जित है । इस छंद में श्रुत-वर्जन यही मिला है । बसन्त सूरि की 'स्वूल मन्त्रोपा प्रेम विकास काव' इस परम्परा की एक

हेमचन्द्र ने 'वेदी नाम माळा' में 'फामु' के स्वरूप की ओर प्रस्तुत पंक्तियों में संकेत किया है—

फम्पु महुच्छने फल्ही नवणी फ्नुस फम्पुसा मुक्के ।

वेदीनाम माळा । १।८२ ।

वस्तुतः वसन्तोत्सव के अर्ब में हेमचन्द्र ने 'फामु' की मूल अनुवृत्तता को स्वीकार किया है । 'जिनपद्मसूरि' ने 'स्फुसमह फाम' में 'फामु' के स्वरूप की ओर संकेत करते हुए कहा है :—

बार तर गच्छि जिन्न पद्म सूरि किम फामु रसैवगु ।

सेत्ता नाचइ धेन मामि रंमिहि मावेवठ ॥

—स्फुसमहफामु ।

'रत्नपुर मंडन आशिनाथ फाम' में 'फामु काव्य' की चर्चा प्रस्तुत पंक्तियों में की गई है —

वेत्ता बंस बजावइ ए, पावइ पंचम रागु,

रंग भरिइक सेसइ, गोसिइ जिणवर फामु ।

इस प्रकार जोर-नुस्स की परिभूमि से पद्धति होकर फामु-काव्य ने एक विशिष्ट प्रकार के संस्कृत काव्य विधा का रूप धारण कर लिया ।

'फामु काव्य' की सामान्य विशेषतायें निम्नलिखित हैं—

(क) संस्कृत शैली में प्रकृति के उद्दीपन रूप का अंकन ।

(ख) विष्णु की उद्भाषना में स्त्रीगीतों की भाव-संवेदना का अंकन ।

(ग) काव्य का उपसंहार संयोग एवं शास्त्र रस में कथा प्रमाण कृतियों में नायक-नायिका जैन धर्म में वीक्षित हो जाते हैं ।

(ङ) 'फामुकाव्य' 'भाषों' में विभक्त हैं । इनमें 'फामु' 'रोसा' तथा 'दूहा' छन्दों का प्रयोग मिलता है ।

'द्वितीय नेमिनाथफामु' 'बम्पुम्बामीफामु' 'पार्श्वनाथफामु' में 'दूहो' का प्रयोग मिलता है । सोसहबी शताब्दी के फामु काव्यों में संस्कृत श्लोकों का प्रयोग किया गया है । उदा० 'नारी निरास फामु' में 'श्लोक' तथा 'दूहो' के रूप की योजना मिलती है । इस काल के 'फामुकाव्यों' में 'रासक' छन्द का भी

प्रयोग मिलता है। 'फामु रौली' के अन्तर्गत एक अन्य रौली का विकास मिलता है जिसे 'गीता रौली' की संज्ञा मिली है। इसी रौली की ओर संकेत करते हुए डॉ॰ बघरख शर्मा तथा बघरख बोम्बा ने कहा है 'जब काव्य की फामु रौली अग्निने यता के कारण अनप्रिय बनने लगी तो इसके अन्तर्गत भ्रष्ट भी लिखलाई पड़ने लगे फामु का एक विकसित रूप 'गीता' नाम से प्रचलित हुआ रास० रा० काव्य पृ० ७७ उदा० 'भ्रमर गीता' (अमृतमंड) 'नेमिताल भ्रमर गीता' 'अमृत स्वामी ब्रत गीता' इत्यादि।

प्रबन्धकाव्यों के अतिरिक्त अपभ्रंस काव्य की दूसरी काव्य विधा मुक्तकों में मिलती है। इस वर्ग की रचनाओं की जेल-साधना से ही सम्बन्धित हैं। इस वर्ग में भाव चेतना की दृष्टि से दो शारंगों मिलती हैं।

प्रथम वर्ग की रचनाओं में समाधि ज्ञान की चर्चा है। दूसरे वर्ग की रचनाओं में आशकों को उपदेश दिया गया है। (उपवास, तीर्थ व्रत-याज्ञ आदि का उपदेश)। ये रचनाएँ काव्य के अन्तर्गत इसलिए स्वीकार की जा सकती हैं कि ये पद्य-कवि हैं।

प्रथम वर्ग की रचनाओं को साधारणतः एहसवादी रचनाओं की संज्ञा दी गई है। इनमें बीरबु (योगीन्द्र १० की शवी) का 'परमात्म प्रकाश' और 'भोमाधार' रामसिंह का 'पाहुड़ बोहा' हैं।

मुंछिय मुंछिय मुंछिया । सिर मुंछित चित्तमुंछिया ।

चित्तहुं मुंछु बि कियत । संसारहुं बंझु त्रि कियत ।

ओ मुंछी ! सिर मुंछित किया किन्तु चित्त मुंछित नहीं किया जिसने सिर मुंछित किया उसने संसार को खण्डित कर दिया।

बिनि छोन बिलिखइ पाबियइ तिम बइजित बिदिय

समरति हुन जीबड़ा काइ समीहि करिय ॥ १७६ ॥

जिस प्रकार अन्य पानी में विलीन हो जाता है उसी प्रकार चित्त परमात्मा में विलीन होकर समरत हो जाता है।

इस सन्दर्भ में विशेष उल्लेखनीय यह है कि बौद्धधर्म के सिद्धान्त निरूपण में

रामसिंह ने योग-मूसरु शब्दों का प्रयोग किया है। 'अनाहतनाद' 'बहु रस' 'ईडा फासा' स्त्री-परक रूपों का प्रयोग मोक्ष-वर्णन के सन्दर्भ में किया गया है।^१

सुप्रभाचार्य की कृति 'बैराग्यसार' इस सन्दर्भ की अन्य महत्वपूर्ण रचना है। इसमें 'द्विपरी', 'पद्मटिका' आदि का प्रयोग किया गया है। किन्तु दोहों की संख्या अति व्यापक है। विषय की दृष्टि से यह 'पाहुड़ दोहा' की भावभारा की कृति है। उदा०—गुरु-त्रिगुणक गुरु सिद्ध सिद्ध गुरु रम्यतय साध

सो बरिसावई अन्य भावदा, भवजल पावइ पाइ।

'गुरु त्रिगुणक' गुरु सिद्ध है छिन्न और एतन्मय (वर्तन ज्ञान चरित्र) के तत्त्व हैं। वह आत्म और पर-दर्शन कराता है उसकी कृपा से भवसागर पार जा सकते हैं। गुरु की महिमा का यह पर कबीर या उनके वर्ग के अन्य साधकों की भावनाओं के अनुरूप है।

सिद्ध साहित्य

बौद्धधर्म से विकसित महाभान सम्प्रदाय की विभिन्न अनुवर्तनाओं पर रचित साहित्य को 'सिद्ध साहित्य' की संज्ञा मिली है। इस वर्ग का साहित्य बंगाल के पासवर्गीय राजाओं के राजत्व काल में आठवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी के मध्य किया गया है। अतः इस वर्ग के साहित्य में मगध प्रदेश में विकसित चार सौ वर्षों के मध्य की भाषा के विकसितस्वीकृत स्वरूप के भी वर्तन हो जाते हैं।^२ इस विशिष्ट साहित्यिक धारा का सर्वप्रथम प्रकाशन

१ पाहुड़ दोहा मगध प्रान्त जैसा समझा है। विषय का क्रमबद्ध विश्लेषण नहीं मिलता। कृति के कुछ पद्य हेमचन्द्र ने उद्धृत किए हैं (पा० दो-मू० पु० २२ ११)। अतः दोहों निरिक्त रूप से हेमचन्द्र के पूर्ण के हैं। योमीन्द्र और रामसिंह की कृतियों के पद्यों में बहुत मात्र-साम्य है।—हिन्दी साहित्य प्रथम खण्ड-पृ० ४११।

२ तिब्बती परम्परा के अनुसार सिद्धों की संख्या ८४ है। 'वर्ण एकाकर' (सम्पादक सुनीति कुमार चटर्जी तथा बबुआ मिश्र—एशियाटिक सोसाइटी बङ्गाल १९४०) में ८४ सिद्धों का उल्लेख किया गया है परन्तु मामावसी के अन्वयत केवल ७५ सिद्धों के ही नाम दिए गए हैं। किन्तु केवल निम्नलिखित साधकों की रचनाएँ ही ज्ञात हो सकी हैं—सुईपा (सुईपाव सुवीपाव सुवी

महामहोपाध्याय हृष्यकाय शास्त्री द्वारा हुआ । सन् १९१६ में उनकी प्रसिद्ध कृति 'हमार बखरर पुरान बाँवठा भाषाय बौद्ध यान ओ दोहा (हमार बर्य प्राचीन बौद्ध भाषा का बौद्ध यान और दोहा) प्रकाशित हुई । नेपाल दरबार काइबरी में चार स्वतंत्र ग्रन्थ—'बबौरबर्गबिनिषियम' सरोज हज का 'दोहा कोष' कुम्माचार्य का 'दोहा कोष' तथा डाकार्यम—संकलित है । इन ग्रन्थों को एक ग्रन्थ में शास्त्री महोदय ने सम्मिश्रित किया । 'बबौरी पीठ संघट' का मुख्याम या 'बबौरी पीठ कोष'। इसके लिपिकाय के अनेक काज पश्चात् मुनिरत्न ने इस पर एक वृत्ति लिखी । वृत्तिकार ने इसका नामकरण 'बबौरबर्गबिनिषियम' किया था । ^१ मुनिरत्न

चरन), कुकुदुरीपा (कुकुदुरीपा), निम्पा (निम्पा), मुडरी (मुडरीपा) चाटिल (चाटिलपा) मुकुस (मुकुसपा) कान्हा (कुम्मापा) कामलि (कम्ब साम्बरपा) डोम्बी (डोम्बीपा) धाम्ति (धाम्तिपा) मद्धिस्ता (मद्धिस्ता) बीमा (बीमापा) सरह (सरहपा) धर (धरपा) अजदेव (अजदेवपा) टेम्पना (टेम्पनापा) दारिक (दारिकपा) भारे (भारपा) ताङ्क (ताङ्कपा) जमन (जमनपा), नाम (नामपा) (तनी-निम्बी) परम्पा से प्राप्त) (ताङ्की डोम्बी) ।-देखिए बबौरीपीठ पदावली डॉ० सुकुमार सेन (साहित्य समा वर्षमान) । भी राहुलसाँ कल्याण के अनुसार जिन धावकों की रचनाएँ उपलब्ध हैं उनकी नामावली इस प्रकार है—सङ्घपा (नाम्बा मबी छती) सङ्घपा (निम्ब सिता) ननुकपा (नाम्बा) लुईपा (मय) बिठपा (मय) डोम्पा (मय) धारिकपा (छीसा), नुडरीपा (निवुम्पर) कुकुदुरीपा (कलिकवस्तु) कमरिपा (छीसा) कङ्घपा (बिहार-अङ्गाल गोरखपा (गोरखपुर इसी छती) तंतिपा (अरति नगर) महीपा (मय) भारेपा (धारिली) नामपा (निम्ब मधिता) तिङोपा (मय धारिली छती) धारिपा (मय) —देखिए—हिन्दी काव्य बाण (राहुल साँकल्याण) । (निम्बा महत् इलाहाबाद १९४२) ।

१-नेपाल दरबार के लिपिकारों ने 'मुखग्रन्थ' और 'वृत्ति' इन दोनों की अलग अलग प्रतिलिपियों की थीं । डॉ० सुकुमार सेन ने 'मुख ग्रन्थ-पाठ' और 'वृत्ति' में प्रस्तावित पाठों में प्राप्त कथर का निर्वहन करते हुए इस धारणा की संस्थापना की है ।

ने 'अर्पारच्यं विनिश्चय' की रचना किस समय की इस सम्बन्ध में हम निश्चित रूप से कुछ कहने में असमर्थ हैं। परन्तु भाषा-स्वरूप तथा अन्य इतिहास सम्बन्ध संकेतों का आचार ग्रहण कर हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि 'अर्पारच्यं विनिश्चय' की रचना चौदहवीं शताब्दी में हुई। अतः 'अर्पावीत' और 'दोहों' की रचना इसके पूर्व ही हुई होगी। भाषा-स्वरूप का आचार ग्रहण कर हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि इसकी रचना ६-१२ शताब्दी में के मध्य अवस्था हुई होगी। इस प्रकार यह भी संकेत मिलता है कि समस्त वीत और दोहा एक काल की रचना नहीं हैं। मिला मिली काव्यों में ये रचनाएँ हुई हैं। मुरु-शिष्य परम्परा में इसका मौखिक विकास भी होता रहा है।

महामहोपाध्याय भी हृष्यप्रदा शास्त्री ने मुईपा को आदि सिद्धाचार्य माना है। मुईने चौदहवीं से सम्बन्धित 'अमिसमयविमर्ग' नामक ग्रन्थ की रचना की है। यह अनुमान किया जाता है कि मुईपा बीपंकरभीज्ञान के समकालीन थे और 'अमिसमयविमर्ग' के रचनाकार के रूप में उन्होंने बीपंकर का सहयोग प्राप्त किया था। बीपंकर भीज्ञानने १०३८ ई० (कतिपय विद्वानों के अनुसार १०४२ ई०) में विष्णुपीठ से विद्वत् की यात्रा की थी। पन्द्रह वर्षों तक उन्होंने वहाँ कर्म प्रचार किया। इस निष्कर्ष के अनुसार मुई का समय प्यारहवीं शताब्दी पूर्वार्ध था। परन्तु डा० मुकुमार सेन के अनुसार मुई का समय बसवीं शताब्दी है। इनका यह निष्कर्ष है कि मुई और भीज्ञान सामयिक नहीं थे। परबर्ती काल में मुई के अपूर्ण ग्रन्थ 'अमिसमय विमर्ग' को उन्होंने पूरा किया। डॉ० सेन ने एक

अर्पा-संख्या	लिपिकार का मूळ	वृत्ति-वदन्त मूळ
२६	अईसन अर्पा कुकुुरीपाएँ पाईठ अईसनि	
६३	तिन न फलूपई हरिता पिईई न पानी	खन्तइ
८१	सोने भरिल्ली ककना नाबी	भरिल्ली
११६	बलद बिआएस गविआ बाँस	बलदा गाधी

डा० मुकुमार सेन ने एक अन्य दृष्टि से मूळ लिपि तथा मुनिदत्त की वृत्ति में प्राप्त पाठ के लिपि-काळ में अन्तर होने का संकेत किया है। मूलपाठ के लिपिकार ने वीत के प्रत्येक चरक को द्रुवपद के रूप में स्वीकार किया है। मुनिदत्त ने प्रायः समस्त अर्पा के द्वितीय पद को द्रुवपद कहा है। यही पृ० ३४।

जन्म सम्भावना की प्रत्यावृत्तता की है। इनके अनुसार 'अभिसमय' मुई की भूस कृति थी। और इस दृष्टि की परिस्थिति की रक्षा धीमान ने 'विमंग' नाम से की थी। सिम्बली परम्परा से प्राप्त ग्रन्थों में मुई के तीन ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। 'भी भगवद् अभिसमय' 'अभिसमय विमंग' तथा 'तत्त्वस्वभाव बोहा कोय गौतिका दृष्टि नाम'। डॉ० मुकुमार सेन की यह चारणा है कि इस अभिसमय कृति में मुई के 'बोहा' और 'अपीगीत' का संग्रह है। ताराताब के अनुसार मुई शायदा के सिम्ब थे^१।

मुई—मुईवा की रक्षा में जन्म अपीकारों से अधिक स्पष्टता है। तांत्रिक शास्त्रावली और 'संघा भाषा' का आभास इनकी रक्षाओं में नहीं मिलता है। आरम्भिक चक्र में अपक-नियोजन की चेष्टा मिलती है परन्तु अपक की पूर्णता पर ये ध्यान नहीं देने हैं। उदा०

काभा तस्वर पंच विदास ।

अचस चिए पईठो वास न मु ॥

दिङ् कण्ठि महासुह परिवान ।

मुई भगई मुव पुन्निचज बानि ॥

सम्भ सभाहिष काहि करीमद ।

मुख कुपेये निचित मरिजद ॥

'तन तस्वर है पौच शास्त्राये (इन्द्रियों) है अज्जस चित में कास प्रवेश कर गया है महासुह को प्रमाण कर (चित) को दृढ़ करो। मुई का कथन है कि मुख से ज्ञान प्राप्त करो। समस्त उपसम्बियों से काय क्या ? मुख-मुख दोनों ही स्थितियों में मूर्ख निश्चित है। इस प्रकार जन्म अपीकारों के समान अपक की सम्पूर्णता यहाँ नहीं मिलती है। इस कथन में स्पष्टता है सासन्निकता अथवा संघा भाषा' का नियोजन भी नहीं है। अपने दूसरे गीत में मुई ने शास्त्रात्मक स्तर पर यह कहा है कि योगधारण द्वारा ही आध्यात्मिक दृष्टि की उपलब्धि होती है जगत्प से इसकी उपलब्धि नहीं सास्त्र वेद-पुस्तक द्वारा इस पथ का निर्देशन नहीं हो सकता।

१ अपीगीत पञ्चावली भूमिका

२ *Mystic Tales of Tarannath*—By Edolsteinminio
इस कृतिका केवला अनुवाद थी भूलेन्द्र नाथ दत्तन किया है—पृष्ठ ११ ।

भाव न होइ अभाव न जाइ

अइस सवोई को पतिजाइ ।

बाहिर बन्ध-पिगू-रज न जाणी ।

सो कहसे आगम-जे ऐं बसानी ।

‘अहाँ भाव की स्थिति नहीं है अभाव का प्रवेष्ट नहीं है इस प्रकार की प्रस्तावना पर कौन विश्वास करेगा ? जिसके बर्ण-संज्ञन और रूप का परिचय नहीं उसका वर्णन वेद कैसे करते हैं ?

सरहपा—राहुस सांख्यशास्त्र ने सरहपा को आदि सिद्धाचार माना है । इनके अनुसार इनका काल ७१० ई०—८०६ई० है । राहुस जी के अनुसार सरहपा की सुष्परम्परा इस रूप में है ।

शान्ति रसित (वर्मपात्र के सामयिक ई० ७७०-८१५) हरिमन्त्र ।

|
सरहपाव ।

|
सबरपाव ।

|
सुईपाव ।

(गंगा-पुरातत्त्वांक) ११३३-पृ० २२०

राहुस जी का निर्भय तारानाम के आधार पर अवलम्बित है* । इनका बौद्ध नाम ‘राहुसमन्त्र’ था । ये बख्शपानी सायक भी थे । इनका बख्शपानी नाम ‘सरोजबन्ध’ भी था । राहुससांख्यशास्त्र द्वारा निर्धारित सरह का समय विवाद पूर्ण है । सरह का समय बसबी छताब्दी से पूर्व नहीं पड़ता है । (देखिए मैसॉर मिस्त्रीके पृ० ११) । बाख्शी छताब्दी तक सरह के अनेक बोहोसोक जीवन में प्रचलित हो चुके थे ।

१ ये तात्त्विक सिद्धांतों से सम्बन्धित थे । ऐसी किंवदन्ती है कि उन्होंने घर (बाघ) बनाने वाली निम्न जाति की स्त्री को सावना-मुदा के रूप में ग्रहण किया था । अतः उन्हें सरहस्त पाव (सरहपा) कहा गया है ।

पण्डित दिवाकरचन्द ने सरहू के बोहों का संकलन किया था। इस संकलन के अन्त में कुछ बोहों दिवाकरचन्द लिखित हैं।

हरा०—सम-संविता तत्त फनु-सरहू पाब भनति।

जो भनगोजर पाठिआई सो परम्परा न होन्ति॥

सरहू के अन्त में संवहकरी ने लिखा है—

बोहि विनट्ट पनट्ट-पऊ सोहिअ मन्व मुत्त।

सरहूपाब किम बोहू तिऊ सो संवहिन एव॥

'मिलन' ब्रजवा प्रनट पर को सुठ कर मैने अर्थ स्पष्ट किया है। इस प्रकार सरहू का बोहो संयोजित हुआ।

दिवाकरचन्द ई० सन् ११०१ के पूर्व हुए थे। सरहू के बोहों को प्रनट्ट होयै यदि पचास वर्षों की अवधि लगी होमी तो सरहू का समय प्याहूनी सवावरी का प्रथमार्द्ध निश्चित होता है।^१ सिम्बरी परम्परा में सरहू के लिए 'महायोगी' 'बोमीस्वर' 'महाधवर' 'महाचार्य' आदि उपाधियों का प्रयोग मिलता है। सिम्बरी परम्परा से इनकी जो कृतियाँ उपलब्ध हैं उनमें 'महा समुद्रोपदेश' 'अपरेखनीति' 'हादलोपदेश' 'बर्मोपदेश' 'तत्त्वोपदेशसिद्धि' 'चर्मीनीति' 'भाषना दृष्टि पीतिपा' चितकोप-अवबन्ध गीति 'दार्मिनी-गुह्य बन्धू गीति' इत्यादि प्रमुख हैं।

तारागण ने दो सरहू का उल्लेख किया है। एक बरतीवा के समयकालीन थे द्वितीय ब्रजदि आचार्य सरोरहू थे। वे पण्डित थे राज पुरोहित थे। शाङ्गिनी का संग करने के कारण राजा ने उन्हें निर्वासित किया था। राहुल साहस्रनाम ने इन दो स्वतन्त्र व्यक्तियों में अन्तर नहीं माना है। राहुल जी का ही अनुसरण अन्ध इतिहास केवलकों ने किया है। फलस्वरूप वे स्थिति का स्पष्टीकरण नहीं कर सके हैं।

सरहू के नाम के चार बरौपद मिलने हैं। उनमें प्रथम है बाईसवों पर निषका बारम्भ इस प्रकार है—

१-देखिए चर्मीनीति पञ्चमली पृ० १७।

२-वही।

अपने रवि रवि भव निर्वाणा

मिछे छोम बन्वावए अपना । भरू ।

इसमें साधक की यह भारणा है कि समुच्च अपनी वृत्तियों के कारण ही भव बन्धन में बद्ध है । ब्रह्म-भरण के भाव से मुक्त होने के लिए अपनी वृत्तियों से ऊपर उठना होना । दूसरे 'ब्रह्मगीत' (३२) में सद्यः सहजसमाधि की स्थिति का निरूपण करते हुए सहजपथ के स्वरूप की व्याख्या करते हैं ।

नाद न बिन्दु न रवि न शशि मण्डल ।

बीमराज सहजाने मुक्त । प्र० ।

उबू रे उबू छाड़ि मा केन्ह रे बंक ।

निबड़ि बोहि मा बान्ह रे कांक ॥

'जहाँ नाद है न बिन्दु है न रवि है न शशिमण्डल है राज स्वभाव से निरत जहाँ मुक्त है । सहज मार्ग का परित्याग कर तिर्यक मार्ग को मत ग्रहण करो । बोधितत्त्व निकट है संका जाने की आवश्यकता नहीं ।" तीसरे 'ब्रह्मगीत' (३८) में साधक ने मन को मौका मन को तांत्रिक और गुह-उपदेश को पतवार के रूप में स्वीकार कर भव निर्वाण की विधि की बर्णना की है । चौथे 'ब्रह्मगीत' (३९) में साधक ने मन के अविविद्यापूर्ण स्वरूप की बर्णना की है । अविविद्या से मुक्तिहेतु गुह-उपदेश अपेक्षित है । इस प्रकार इन पदों में ध्यान-धारण और योग-स्वरूप मिलान ही मिलता है । इनमें तांत्रिक साधनाओं की विधियों की ओर संकेत नहीं मिलता है ।

सद्यः के बोधों में सिद्ध-बारा की चिन्तन विधि और बीज-बारा-स्वरूप का व्यापक विस्तरेयन मिलता है । इन दृष्टियों से इनका निशेध महत्त्व है ।

मात्राधारा के अनुसार इनके बोधों के वर्गीकरण का प्रयत्न किया गया है ।^१ बोधाकोप से कुछ उदाहरण दिए जाते हैं :—

१—राहुक साहस्यबाग ने हिन्दी काव्य बारा में इस प्रकार का विभाजन किया है —

(१) रहस्यवाद (२) पाञ्चण्ड-अण्डन (३) मंत्र-वेदता बेकार (४) योग में निर्वाण (५) काया-तीर्थ (६) गुह-महिमा (७) सहज-संयम (८) कर्मक-कुसिद्ध ।

पवन बहते मर जो हृदय । बरन चलते मर सो डगड ॥

नम बरितते मर जो सिम्भ ॥ न उबगहि मर लबहि पदस्थ ॥

‘पवन की संचरणशीलता से जो अन्तममार्ग नहीं होता है ज्वाला की जलन से जो दग्ध नहीं होता है मर-वर्षा से जो भीषता नहीं है न तो (उसकी) उत्पत्ति होती है, न उसका सम होता है ।’

विषम रमन्त न विषम विस्मय ॥ उमर हरि न पानी क्षिप्य ॥

एमर बोह मूख सरन्तो । विस्हि न बाह्र विषम रमन्तो ॥

‘विषय में रमन करते हुए विषय में विभीन न हो; जैसे गृह में पानी नहीं क्षिप्य इस प्रकार इस मूख वत्स को विघने पहन कर किया वह विषय में रमन करते हुए भी विषय में प्रभावित नहीं होता ।’

भरे लक्ष्मी बाहिरे पुच्छ ॥ पर देखे पड़िबेसी पुच्छ ॥

घरु मगद बड़ । बाबउ जप्पा । मर सो येय न बारन जप्पा ॥

—दोहा कोय

‘गृह में रहते हुए बाहर लोकात्ता है पति को देखती है वस्तु पड़ोसी से पुच्छती है । घर कहते हैं मुख । अपने को जानो ध्यान-वारण-अप से उसकी अपलम्बि नहीं होती है ।

विरूपा विरूपा-सिद्धि केवल एक चर्चा उपलब्ध है । सिद्धि मनुष्य से ‘महायोगी’ ‘योगीश्वर’ आचार्य विरूपा की प्रसूत कृतियाँ प्राप्त हुई हैं । ‘कर्मचण्डालिका’ ‘माम गीति’, ‘दोहाकोष’, तथा ‘विरूपा पद चतुर्थीति’ । तारा नाम ने यह उल्लेख किया है कि कान्हू का ही दूसरा नाम विरूपा था । कान्हू के नाम से प्रचलित एक चर्चा में तारागान के कर्त्तव्य का आवास मिलता है ।

केहो केहो लोहोरे विरूपा बोलई,

बिबुजन लोख तीरे कष्ट न देखई । बह ।

कान्हू यादत काम बगडाली,

बोले मर आयति नाहि धिदनाली । पद ।

‘कोई-कोई तुम्हें ‘विष्णा’ भी कहते हैं। विद्वान लोग तुम्हें कण्ठ से मुक्त नहीं करते। कान्हू ने माग माया तुम बाण्डासी हो। डोम्बी से अधिक पप प्रप्टा अन्य कोई नहीं है। परन्तु इस सन्दर्भ में ‘विष्णा’ का अर्थ कुस्प से है। कान्हू ने विष्णा के नाम से कुछ लिखा है इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता है।

गुणहरीपा का उल्लेख तिब्बती परम्परा में नहीं मिलता है। इनके नाम से केवल एक अर्पापद मिलता है (अर्पा संख्या ४) — उदा०

तिब्बटा वापि ओइनि दे बैकबासी ।
 कुस्मिन् बाष्टे कण्ठं विधासी । द्रव ।
 ओइनि तेंद विनु लनहि न बीबमि
 यो मुह पुम्वि कमल-रस पीबमि,
 सेपुहें ओइनि अय न बाअ
 ममि कुले बहिमा उडिमान समाअ ॥

सागु परे धाकि कोबा ताळा ।

चौर-सूज बेणि पखा फाछ ॥

मणइ कुण्डी अम्हे कुन्दुर बीण ।

नर अ नारी मानो उमिल बीरा॥

‘अंक’ में से योगिनी (मुझे) अलिप्त प्रदान कर। कमल-बज्र की कीड़ा में त्रिबस समाप्त हुआ। ओ योगिनी। मैं तुम्हारे बिना एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता। तुम्हारे बचनों को विचुम्बित कर मैं कमल-मधु का पान करता हूँ। मणिपूठ से (यह) बोडिमान तक पहुँचती है। द्वास पर ताळा-मुँजी से बन्द है। चौर-सूर्य के दो पंख लुमे हैं। कुण्डी कहते हैं हम प्रेम-कीड़ा में रह हैं। नर-नारियों में (प्रेम) पटाका उत्प्लिष्ट है। प्रस्तुत अर्पा में नाम-मार्गीय प्रतीकों द्वारा काया-साधना की विधि की अर्चा की गई है। ‘कमल’ ‘कुस्मिन्’ ‘ओइनि’ उडिमान’ ‘चौर’ ‘सूरज’ आदि प्रतीकार्थक शब्द हैं जिनका प्रयोग सिद्धसाहित्य में निवर्तित रूप से किया गया है। ये सिद्ध साहित्य के पारिभाषिक शब्द हैं। डा० सेन की धारणा है कि गुणहरीपा इनका छप (कवि नाम) था। सम्भवतः इनका नाम पुच्छ कवि या ‘कुन्द’ था।

मुसुकपा के नाम से सम्बन्धित आठ जगहों पर मिले हैं। पर प्रचलित धारणा यह है कि 'बोधिचर्यावतार' तथा 'सिद्धासमुच्चय' नामक ग्रन्थ मुसुकपा-रचित हैं। इनका नाम आन्तिवेव था। परन्तु वास्तविकता यह है कि आन्तिवेव मुसुक के अनेक वर्षों पहले हो चुके थे। वे मन्त्रुयी के उपासक थे। मुसुक सहजमायी साधक थे। मुसुक का समय वा सं० १२१५। इस वर्ष में इन्होंने 'अतुराभरण' नामक ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ में बौद्धसाधक की साधना विधा और उसकी विनियमों से सम्बन्धित निबन्ध हैं। इस कृति में अवहट्ट (Proto New Indo Aryan) के उदाहरण प्रस्तुत किये गये कतिपय दोहे भी संकलित हैं।

उदाहरण—

अन्नु पसरतु अन्वत वाएह भक्क ।

हेठेठ कमल करि धम्म भक्क ॥

सूअ अण्णि सदि समरए वाइ ।

राउत्तु बोले वाइ-मरए गाइ ॥

[अमीमीति पञ्चाशदी पृ० ११]

मुसुक ने अपने को राजत भी कहा है। डॉ० सुकुमार सेन ने इसकी जगह कहे हुए कहा है कि सम्भवतः मुसुक राजपुत्र या राजसेवी बन्धारोही थे। इस कारण ही इन्होंने 'राजत' की उपाधि मिली थी। मुसुक ने अण्ण-सौली का विशेष प्रयोग किया है 'हरिण', 'अहेरी' के अण्णों और परिभाषिक शब्दों के द्वारा मिलित निरोध पक्क निरोध की साधनात्मक धूमियों का निरूपण इनकी रचनाओं की प्रमुखता है।

अण्ण मासे हरिणा बहरी । अणह न आइअ मुसुक अहेरी ।

ठिअ न सुअ विअ न पाणी । हरिणा हरिणीर निअअ न पाणी ॥

हरिणी बोअअ मुअ हरिणा ठों । ए अण आइ होअ भात्तो । (अमी ९ ।)

अपने मांस के कारण ही हरिणा अपना दागु है। अण भर के लिए मुसुक आखेट का परिष्ठाग नहीं करता है। हरिण दूध नहीं पीता अण नहीं पीता है। हरिण को हरिणी का निरूपण प्राप्त नहीं है। हरिणी हरिण से कहती है वह

बन छोड़ कर हम भाग जते । 'इस सन्दर्भ' 'हरिज चञ्चल मन 'अहेरी' साधक और 'हरिजी' 'नैरात्म' के रूप में चित्रित हैं' ।

एक अन्य कपी में 'मूसा' (बूढ़े) की प्रतीक-बोबना के द्वारा अविद्या तथा समय की क्षणभंगुरता एवं उसके विनाशकारी स्वरूप की ओर संकेत किया गया है ।

गिरि बंधारी मूसा करज बंधारा ।

अमिज मसम मूसा करज महारा ।

मार रे ओइया । मूसा पबना ।

जेश छूटइ अबला-गबला ।

भबबिन्वाळ मूसा कतब गाती ।

चञ्चल मूसा कलिमौ नासक पाती । कर्मा० २१

'निष्ठा अव्यक्त रूप है और मूसा (बूढ़े) की लीड़ा मारम्भ हुई वह अमृत का आहार करता है । योमी पवन के बूढ़े को माये, जिससे आबागमन (पवन के आबागमन) की क्रिया समाप्त हो (या आबागमन से तुम मुक्त हो) । बूढ़े के कारण जन्म होता है और वह छिन्न कर देता है । इसका जंचार जब टूटता है तब (आबागमन के) बन्धन से मुक्ति मिलती है ।' सन्निवृत्त और पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग इनकी रचनाओं में मिलता है, उदा० 'उसहर', 'बबबूई' 'कमल' 'बिरमालन' 'महामुख' 'कहना' इत्यादि । इन शब्दों में निहित प्रतीकात्मकता का स्पष्टीकरण आगे किया गया है ।

१—इस प्रकार की भावबोबना आज भी लोक-जीवन में प्रचलित मिलती है—

उदा०

मैं ठाढ़ी ठाढ़ी अरज कर्क मेरे लव की प्राय बचानो

हरिना हरिनी बुने बंधक में ब्याबे सार्ई फांस,

कूट फाँस के हिरनी निकली हिरन के लपि गए फांस

एव हिरनी हिरना से बोली मुन हिरन मेरी बात

गुम लो फंस गए बास में अब मेरा कौन हवाल —देसिए Obscure Religions cult

कण्डूपा (कण्डू)—अपौरुषों में से अतिकाम्य पदों के रक्षयिता कान्हू है । उन्होंने ठीक अपौरुषों की रक्षा की है । 'कान्हू' 'कन्हू' 'कान्हि' 'कान्हिल' 'कान्हिष्ठा' इत्यादि इनके नाम के अनेक रूपान्तर मिलते हैं । कान्हू ने अनेक वीरों में अपने को 'कापालिक योधी' 'योगी' अथवा 'ठांगा' कहा है ।

कान्हू ने जाकम्बरीपा को अपना गुरु या पुत्र माना है । ११ वें अपौरुष के अन्त में वे कहते हैं—

साक्षि करिब जाकम्बरी-पाए ।

पाक्षि न राहुम मोरि पान्हिमाचाप ॥^१

'मैं अपने जाकम्बरीपा (गुरु) को साक्षी करूँगा । पक्षिदाचार्य मेरे पक्ष में नहीं है' ।^१ मित्राणों की यह पारणा है कि कान्हू 'हे बभ्रुपंजिका या 'योगरत्न मासा' (हे बभ्रुपंज की टीका) के लेखक थे । इनका समय ११२२ ई० था । नाथ सम्प्रदाय में कान्हुपा (कण्डूपा ?) जाकम्बरीपा (झाड़ीपा) के शिष्य माने गये हैं । 'नाथ सम्प्रदाय' की विशेषता के अन्तर्गत इस सम्बन्ध में विचार किया गया है । धर्मीदुष्ट ने इनका समय ७०० ई माना है ।^२ परन्तु यह निर्णय उचित नहीं लगता । वस्तुस्थिति यह है कि कान्हू के नाम से जो रचनाएँ मिलती हैं वे दो व्यक्तियों (कान्हू) की रचनाएँ हैं । प्रथम कान्हू (कान्हू) जाकम्बरीपा के शिष्य थे । उनका नामान्तर विरुपा था । उन्होंने अपने को 'कापालिक' कहा है । दूसरे कान्हू कापालिक नहीं थे ।^३

डा० मुकुन्दार सेन ने इस तथ्य की ओर ध्यान दिया है कि अपौरुषों का १० ११ १८ १९ २१ ४२ के रक्षयिता प्रथम कान्हू थे । उदा० —

१ राहुल साहस्रनाम ने इसका पाठान्तर दिया है—

साक्षी करहु गुरु जाकम्बरी बाज

मोहि न ब्रूम्य पण्डित बाज ।

डा० मुनील कुमार अय्यर ने इसका अर्थ दिया है—मैं अपने गुरु जाकम्बरी पाद को साक्षी करूँगा मेरा पण्डिताचार्य (मैं स्वयं एक पण्डित हूँ) इसे स्वीकार नहीं करता । २ Chants Mistiques page 24

३ हेन्रिज कर्प्री वीलि परावली पृ० १२

(१) मगर बाहिरे डोम्बी तोहर कुड़िया
छर छोट बाइसि बान्ह नाइया । [चर्पा सं १०]

(२) मव निबाने पड़ह-भाइछा
मन पवन बेनि करल कसाछा । [घुद०]
बज-बज इन्दुहि-साव उछसिआ
कान्ह डोम्बी बिबाहे चसिआ । बह । [चर्पा १८]

चर्पा संख्या ७ ६, १२ १३ २४ १० ४५ के रचयिता द्वितीय कान्ह थे ।

उदा०—(१) आसिए-कासिए बाट रुबेला

ठा वेसि कान्ह विमन मइला । [घु]

कान्ह कहि गई कबि निवास

ओ मन पीजर छो उभास । [घु]

(२) एरकार बड़ बासोड़ मेबिज,
बिबिह बिबापक बान्हन तोड़िय । [घु]

कान्ह बिस्वइ आसव माठा

सहज लकिनी बन पइसि निबिठा । घुब । [चर्पा ६]

पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग की दृष्टि से भी ये रचनाओं दो स्वतन्त्र व्यक्तियों की लगती हैं । प्रथम की रचनाओं में 'डोम्बी' 'परा' 'रदि-सधि' 'निबान' 'सहज' 'कान्ह' आदि शब्दों का व्यापक प्रयोग मिलता है । द्वितीय की रचनाओं में 'आसि-कासि' 'एरकार' 'तिघरन' 'कल्ला' 'बिन-रमन' 'यमन' आदि पारिभाषिक शब्दों का व्यापक प्रयोग मिलता है । परन्तु इन समस्त विवेचनाओं से वस्तुस्थिति का स्पष्टीकरण नहीं हो पाता । पर्याप्त प्रमाणों के अभाव में इस प्रकार के निर्णय में संकोच होता है ।

अन्य रचनाकारों में 'कामसिमा' 'कुकरिया' 'बीतापा' 'सबरपा', 'बारिकपा' विशेष उल्लेखनीय हैं । 'कामसिमा' के नाम से केवल एक चर्पापर उपलब्ध है ।

उदा०—छोमे मरिनी कल्ला नाबी

ल्ला खोइ नाहि के ठाबी ।

बाहुनु कामसिमा यमन उबेरों

गेडी आम बन्हुइइ करसैं । चर्पा सं० ३

इसके गुरु अक्षयपटापा थे। इन्होंने संस्कृत में भी रचनाएँ की हैं। इन रचनाओं में इनका नाम कम्बलाचार्य मिलता है। सरह के दोहाकोष्ठ के टीकाकार लक्ष्मणराय ने कम्बलाचार्य रचित चार श्लोकों को उद्धृत किया है।

चर्यापीठ के वृत्तिकार का यह अनुमान है कि चर्या संख्या १७ के रचयिता 'बीनापा' हैं। उदा०—

सूच जात सवि कायेकि तात्पी
अग्रा दान्ती चाकि किञ्चत अवधूती ॥
राजइ जाको छहि हेरक बीना
गुन तान्ति-बलि विरसइ क्ता ॥

प्रस्तुत अंश में रचयिता के रूप में 'हेरक बीना' के नाम का प्रयोग किया गया है। इसी परम्परा में 'डोम्बी हेरक' का भी प्रयोग मिलता है। अतः यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि यह रचना 'डोम्बी हेरक' की है अथवा 'बीनापा' की। सिम्हरी परम्परा के अनुसार बीनापाच बीरपा के बंधुवर थे। इन्होंने 'बय बामिनी निष्कम अम' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। तारानाथ के विस्मयच है यह संकेत मिलता है कि बीनापाच और डोम्बी हेरक एक ही व्यक्ति थे।

चर्यापीठ सं० २८ और ३० कं लेखक छवरपा है। चर्यापीठ में 'छवर' छवरी' का प्रयोग अनेक बार आया है। डा० मुकुन्दार सेन की यह धारणा है कि 'छवरपा' नाम के एक से अधिक आचार्य हुए हैं। 'चर्यापीठ फदाबली' में संकलित चर्या छिन्न छवरपा की है इसका निर्णय नहीं किया जा सकता। इन पद्यों में छवर-छावरी के विरह मिलन-स्वप्न निरूपण के माध्यम से 'पौराण्योपनि' के मिलन की प्रस्तावना की गई है। उदा०—

ऊचा ऊँचा पावत वैधि बधइ छवरी बाली
मोरंगी निम्न परछिन छवरी पीवत मुखरी माकी।
उमठ सबछे पावत सबछे मा कर पुनी गूहार तो होरि,
लिख बलिनी नामे सहज सुखरी। मृ०। चर्या २७।

सिम्हरी भाषा में 'छवरीखर' नाम से अनेक रचनाओं के अनुबाध मिलते हैं। 'सायकनामा' में इनके नाम से, सितदुःख कुम्भारनाथ, तथा 'बयबोधिनी

-आराधन बिम्ब' नामक रचनायें संकलित हैं। तारानाथ के अनुसार महासिद्ध शक्तीना और सरह एक ही व्यक्ति थे। यं सुरा के गुरु थे।

'अयौरवर्षाविनिश्चय' में वारिकपा का एक पं संकलित है (पद संख्या ३४)।

सुन कदनवि अमिल काज बाक भिअ
बिससइ बारिक गजनन पारिम बूले।
बरस सख भिन्ता महा सुहे

बिससइ बारिक गजनन पारिम बूले।—अयौ (३४)

सिद्धाति माया में इनकी रचनाओं के अनुबाद सुरक्षित हैं।

दर्शन और माय पक्ष

यह सर्वविशित सत्य है कि सिद्ध साहित्य बौद्ध-धर्म से विकसित सहजपानी सम्प्रदाय की मूल चेतनावृत्तियों पर निर्मित है। सिद्धाचार्यों के नाम से जिनकी रचनायें हमें प्राप्त हैं वे पण्डित और अनेक विद्वानों के प्राचार्य थे। इन्होंने संस्कृत तथा सोक-भाषा इन दोनों में रचनायें की हैं। सिद्ध-साधना पर तंत्रों का विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है। भारतीय धर्म-साधना में तंत्रों की जो चारों दिशाओं में फैली हैं। प्रथम; वेद-सम्मत द्वितीय वेद विपरीत। ब्रह्मपान के विकास में इस द्वितीय चारा में विशेष योग दिया है। द्वितीय चारा दो स्वतन्त्र उपचारों से निर्मित होती है—(क) चैतन्य (ख) शास्त्रतंत्र। सहजपान शास्त्रतंत्रों से अधिक प्रभावित हुआ है। शास्त्रतंत्रों में 'पंच मकार' की भावना का विशेष प्रचलन था। इसका उत्कृष्ट 'कौमज्जान निर्णय' में मिलता है। 'कौमज्जान' में 'पंच मकार' का प्रयोग एक दिशिष्टि धर्म में किया गया है। यहाँ प्रतीकात्मता के प्रति ही आग्रह है। उदा० मद्य=मधु= सहस्र दण्ड से कटित होने वाली सुधा।

मौस=ज्ञान से पाप-पुण्य के हनन की प्रक्रिया।

मत्स्य=ईडा मिंगला (गंगा-मनुष्या) में प्रवाहित

१—ऐसी चारणा है कि इस सम्प्रदाय का सम्मुख मान्य प्रदेश के भी पर्वत पर हुआ था। परन्तु यह चारणा भ्रान्ति-मुक्त है। इसका स्वस्वनिर्माण मगध विक्रमपीठ और नागन्वा के महाविद्वानों में हुआ था। श्री पर्वत 'कापा' शिखों का केन्द्र रहा है। सिद्ध साहित्य पर कापाशिवों का भी प्रभाव मिलता है।

काव्य ।

मूढा=अक्षर का परिष्कार । मैत्रुन=सहस्वार में स्थित शिव तथा कुण्डलिनी शक्ति का योग । ब्रह्मयानी साधना के माध्यम से सिद्ध-साहित्य में इन प्रतीकों का व्यापक प्रयोग हुआ है ।

जिस साधना से सम्बन्धित साहित्य की जर्नी हम कर रहे हैं उसमें 'हैबनू' की साधना पर विशेष आस्था थी । 'है' का अर्थ होता है 'महाकल्पना' और 'नू' का प्रयोग 'प्रज्ञा' के अर्थ में किया गया है । इसी सुन्दर में बसीस नाकियों की जर्नी की गई है । वे बोधिविप्त को बहुत कष्टी हैं । महासुख-स्थान की ओर ब्राह्मणानु को प्रसाहित कष्टी हैं । इसी अनुचेतना और अनुमृति का वर्णन मुमुक्षुता के इस जर्नी पर मैं लिखता हूँ—

अब रात्रि भर कमल विकसित
बसिष जोड़नी तबु संघ उल्लसित ।
अस्मिन् ससह्र माने अबधूई
रजन सहये कबैद [सोई] ।
अस्मिन् ससह्र यई निजाने
कमलिनी कमल बहूई फाड़े ।

'जर्नरात्रि को कमल विकसित हुआ बसीस बोधिविप्ता उसके साथ उल्लसित हुई । जन्माने अबधूटी मार्ग में मग्न किया (वह) रात्रि में सहज-वर्धन करता है । अस्मिन् निजाने में पहुँचता है प्रज्ञा में कमलिनी-कमल का प्रस्फुटन हुआ ।' इनमें 'कल्पना', 'रत्ना' और 'अबधूटी' प्रमुख हैं । 'कल्पना' का स्वभाव ब्रह्मापूर्ण है 'रत्ना' 'उपामयुगी' है । अबधूटी इनके मध्य में स्थित है । वह ब्राह्म-साहक भाव से युक्त है । 'कल्पना' को कल्प प्रज्ञा, और बाव दक्षि के प्रतीक के रूप में

१ ब्राह्मिष्ठ बोधिविप्त महासुख स्थाने स्वयन्ते—अवेद्या सुखमय विद्या बाबा, बाहिनी, कूर्मबा भाकिनी देहा बोवा विष्टा मावरी छवरी सीतबा औरया कल्पना रत्ना अबधूटी, प्रवया कुम्भजर्नी, मुकुटिनी सामाया हैतुशानिका, विषोया प्रेमकी सिद्धा, पावकी, सुवगा भैरुता, काकिनी मेहा, अम्बिका, भारसिका ।

चित्रित किया गया है। अबधूती शक्ति-मयी है। इसके तीन स्वरूप हैं—
(क) अबधूती (ख) बाण्डाही (ग) बंगाही। प्रथम में इँठ स्थिति द्वितीय में
इँठा-इँठ स्थिति और तृतीय में अड़ठ स्थिति रहती है। मुसुरपा ने इसी स्थिति
की ओर संकेत करते हुए कहा है, 'आज मुसुक बंदासी भइली।

साहजिया सिद्धों ने शून्य का उत्प्रेक्ष्य अनेक रूपों में किया है। सहजसाधना
में 'शून्य' की विचारधारा का आग्रह माध्यमिक या शून्यवादी सम्प्रदाय से हुआ।
इसके आचार्य नागार्जुन थे। अमिनव मुत ने 'तन्त्रालोक' में कालपञ्चयान के
सिद्धान्तों का व्यापक विस्तरेण किया है। 'शून्यता' को वे 'बज्र' का पर्यायवाची
मानते हैं। उनके विस्तरेण के आधार पर 'शून्यता' यह है अमेघ और अविभाज्य
है। यह अनन्तर और अव्यक्त-मुक्त है। उसे 'बज्र' भी कहते हैं। बज्रयान के
सर्वोपरि देव हैं बज्र सत्त्व। 'बज्र' को शून्यता और 'सत्त्व' को शान्ति का प्रतीक
माना गया है। यह विज्ञानवादियों की विद्वत्ति भावता के समान है। बोधि
सत्त्व की प्राप्ति के लिए 'कल्या' और 'शून्यता' के संयोग की कल्पना की गई है।
महायान में 'शून्यता' को 'प्रज्ञा' 'कल्या' को उपाय का पर्यायवाची माना गया
है। तथावादिन अश्वघोष एवं नागार्जुन ने भी शून्यता को इन्हीं अर्थों में
ग्रहण किया है। सिद्ध-साहित्य में शून्य का वर्णन इसी रूप में किया गया है।
यहाँ शून्य का वर्णन निम्नलिखित चार रूपों में हुआ है—(क) शून्य (ख) अति

१—समुद्रधुतियों के अनुसार ताराणात्र योगाचार-मार्ग के प्रवर्तक थे।
इन्होंने बौद्ध धर्म में तंत्र-तत्त्व का समावेश किया था। इस मत के विपरीत
कतिपय आचार्यों की यह धारणा है कि माध्यमिक शून्यवाद ने आवर्तक नागा
जुन ने योगाचार-तंत्र तथा ब्राम्हणीय साधना का समावेश किया था।

२ इस सम्प्रदाय में वस्तु निरूपण के लिए चार विधानों का प्रयोग किया गया
है अस्ति (१) नास्ति (नहीं है) नो भवं (न अस्ति न च नास्ति) नसन् मासन्
धरसन् आप्यनुमयारमकम्; चतुष्कोटि-विनिर्मुक्त तत्त्वं माध्यमिका विदुः। अतः
इन दृष्टियों से परम तत्त्व (स्वरूप) का निर्वारण सम्भव नहीं है। यह मन-वाची
की परिधि के परे है। अतः यह अनिर्वचनीय है। माध्यमिकों ने परम तत्त्व को
अव्य-अव्य के मध्य माना है।

धून्य (ग) सर्वधून्य (घ) महाधून्य । प्रथम मानसिक अवस्था का चेतक है । वह स्त्री का पर्यायवाची है । इसमें प्रवृत्तियाँ जाग्रत होती हैं । अतिरूप्य असकामास होता है । यह अज्ञान के समान प्रकाशवन्त है । सर्वधून्य आलोक-उपसम्य का साधन है । महाधून्य साधना का परम ध्येय है ।

तिसोपा इयी महाधून्य का वर्णन करते हुए कहते हैं—

सहज महातठ करिअए तिछोए,

ख-सम स्वभावे रे जागत का कोए ।

जिम जल पानिअ टासिका भेइ न जाऊ,

तिम गम रजना रे समरते गगम समाऊ ।

‘सहज-बुद्ध तीनो लोक में प्रकाशवन्त है, मन की अवस्था आकाशवत् (ख-सम) है । जल और जल के संयोग से उनका (जल का) अन्तर समाप्त हो जाता है । मन आकाश में तिरोहित हो जाता है । मन और आकाश (धून्य) में अन्तर समाप्त हो जाता है । सहज अवस्था या धून्य-समाधि की व्यञ्जना उत्कृष्टवासियों द्वारा हुई है । उदाहरण स्वरूप धून्य में अवस्थिति की पूर्ण स्थिति का वर्णन प्रस्तुत अंश में विशेष रूप से दर्शनीय है ।

ठाक्य मोर जर नाहि पड़िबेसी

हाकिठ जात नौहि नित आवेसी । ध्रु ।

बने संसार बहिष जाज,

बुद्धि कूब कि बेधे समाय । ध्रु ।

बज्य बिजाएल बबिजा बाँझि

फिटो बुद्धिए ए तिगो छोसि । ध्रु ।

बो सो बूबी सोइ निबूपी

बो सो बोर सोइ बूसाबी । ध्रु ।

निजे निजे सिपास सिहें संव बूमज

छेहन-भाएर भीत बिरले बूमज । ध्रु ।

इस अंश में बचन वृत्तियों का स्वरूपनिरूपण है । इनसे अज्ञान का प्रसार होता है । वृत्तियों के निरोध से सम स्थिति उत्पन्न होती है । इस साहित्य की यह विधायिका प्रयोग ललितसाहित्य में निबन्धित रूप से हुआ है । उदा

कैसे नगर करौ कूटबारी ।

बंभस पुरिस बिबसाज मारी ॥

बंस बिबाइ गाय मइ बौंभ ।

मकड़ो मर मांछी छविहारी ॥

मास पसारि बिहू रसबारी ।

भूसा खेबट नाब बिबइया ॥

मीड़क सोरे सौं प पहरइया ।

मिठ उठी सिंह त्याक संव बूने ।

कहै कबीर कोइ बिरला बूने ॥—कबीर

शून्य साधना के अन्तर्गत यहाँ कुण्डलिनी-आगरण की साधनात्मक भूमि की निरंतर चर्चा मिलती है। इस दृष्टि से यहाँ हिन्दू-संन-दर्शन का भी प्रभाव दिखता है।

‘देवयतन’ के अनुसार ‘बण्णासी’ नामि में प्रयुक्लि है। ‘लोचना’ भी ज्यक्त षीक है। इसकी क्रिया प्रक्रिया के पश्चात् चन्द्रना से ‘हुम’^१ शब्द प्रति ष्मिठ होता है। ‘बाण्णासी’ के सिम् ‘निरात्मा’ ‘अवधूतिका’ तथा ‘प्रजा’ मावि नामों का भी प्रयोग दिखता है। कामासाधना के संदर्भ में चन्द्राली ने बाण्ट स्वस्म की चर्चा करते हुए साबक ने कहा है—

२—‘अस्तौति नास्तौति छमे वि-अन्ता

बुद्धो-अबुद्धी इमे वि-अन्ता,

तस्मादुमे अन्त विवर्जयित्वा

अये हि स्थलं प्रकरोति पण्डितः ।’ सुमाधिराज । दोबिए हिन्दी साहित्य का गृह्य इतिहास पृ० ४२४ । नामार्जुन ने शून्य की परम्परा-रूप में ग्रहण किया है।

वह माव रूप है—अपर प्रत्यय सौत प्रपंचेयंभितम्

निर्विकल्पम् नामावमेतत् तत्त्वस्य अदाभम् ।

१—चण्णासी ज्यकति मामी, बहति पञ्चवमानवान्,

बहति च लोचना निवि इये ‘हुम’ अचै छवि । हे वयतन’ ।

कमल कुल्लि माओ महल मिवाली

समता बोए जखिज कडाही । ध्रु ।

डाह डोमि परे जापेकि बागि

सछहर लद विचहु पानी । ध्रु ।

मउखर ज्वाला बूम न बीछइ

मैव सिहर लद बमन पसइ । ध्रु ।

कमल-कुल्लि' के मध्य वह निर्बीज (अक्रिय) थी । समता से बरखाही प्रत्यक्षित हुई । खोम्बी के दर भीषम अग्नि कपी है । अन्नमा से उस (यह) पर (में) पानी छोड़ रहा हूँ । बरती भीषकी से ज्वाला और बूम नहीं निकल रहा है । मैव-सिहर से वह जगल में प्रविष्ट कर गई ।

ऊपर 'समता' शब्द का प्रयोग एक विशेष दृष्टि से किया गया है । 'अन्नमा' और सूर्य को 'प्राण-अपान' माना गया है । 'अन्नमा' से रस का स्वास्त्र होता है । सहस्रसमाधि में 'समता' या 'समभाव' की आवश्यकता रहती है । 'अन्नमा' में सोरह कलायें रहती हैं । 'सूर्य' में बाह्य कलायें । अन्नमा अपनी कला के माध्यम से उत्पत्ति और संछाद करता है । सूर्य अपनी कला से सोपन और मिताष्ट करता है । अन्नमा की कला को यदि 'सूर्य' की कार कला मिल जाय तो समस्तिष्ठि आ जाती है । यह स्थिति भी शून्य की स्थिति है । अन्नमा सहस्र चक्र में और सूर्य मूसाबार चक्र में है । इस प्रक्रिया को अनेक 'रूपको' के माध्यम से प्रकट किया गया है । 'चौद सुख बैनि पाखा भाजा' जयबा भाद न भिनु न रवि सति मच्छल' ऐसी पंक्तियों में इसी सम स्थिति की कथा की गई है ।

बई यग पवन न संबरइ रवि सति बाहि पवेस

तहि बड़ि बित बिदामकइ सखे कहिय उवेस ॥

२—अन्नमा की कलायें—जड़ोला कछोछिनी उन्नाकान्ति तरंकिनी घोपिनी सम्पग प्रवृत्ति सहरी कोका जोसिहान, प्रसरति प्रबाह, प्रसन्नत शीम्य अवस्थि ।

सूर्य की कलायें—तापिनी वासिका बाहुकनी घोषणी प्रबोधिनी, स्वरा जाकर्षिणी तुष्टि, बहिनी उमिरेखा किरनवती, प्रमाती ।

‘जहाँ मन और फल का संहरण नहीं हो सकता जहाँ रविचरित का प्रवेश नहीं हो सकता, वहाँ पर चित को विधाम देना चाहिए। स्रष्टा का यही उपदेश है।’

अस्य के ‘महायानसूत्रालंकार’ में तांत्रिक बुद्धधर्म से सम्बन्धित पौष्टिक प्रक्रियाओं का उल्लेख मिलता है।^२ सिद्धसाहित्य में नारी के मुद्रा प्रतीकों का उल्लेख मिलता है। नारी के मुद्रा प्रतीकों की दृष्टि से इस वर्ग की साधना और साहित्य का मूल्यांकन दो दृष्टियों से किया जाता है। प्रथम के अनुसार इस वर्ग का साहित्य वाममार्गीय भावों को प्रस्तावित करता है। दूसरी दृष्टि के अनुसार वाममार्गीय सम्भावना केवल प्रतीक रूप में ही ग्रहण की गई है। अतः इस साधना-प्रवृत्ति और साहित्य की मूल अनुपेक्षा व्याख्यात्मक है। वस्तु स्थिति क्या भी इस सम्बन्ध में हम स्पष्ट निर्णय देने में असमर्थ हैं। इस सत्य को स्वीकार करते हुए हमें संकोच नहीं होता है। इन साधकों के समय में और इनके पश्चात् भी इनके प्रतीक अभिधा के रूप में ही ग्रहण किए गए। इनके जीवन-सापेक्ष रूप में ही स्वीकृति मिली।

यहाँ धूम्र को ‘नैरात्म रेवो’ के रूप में स्वीकार किया गया है। इसके प्रगाढ़ आभिमान में बोधिचित्त के बद्ध रहने की कल्पना की गई है। इस रूप को युग मय प्रतीक द्वारा स्वीकृति मिली। ‘ब्रह्म ब्रह्म स्रष्टा’ में ‘युगमयप्रकाश’ के अन्तर्गत ‘शून्यता’ को फली और ‘कल्याण’ को पति-रूप में चित्रित किया गया है। बाम्पत्ययुग्म के प्रतीकात्मक स्वरूप के माध्यम से ‘सहज प्रेम’ का स्वरूप-निर्धारण किया गया है। ‘साधन मासा’ में ‘शून्यता’ और ‘कल्याण’ से समन्वित परम तत्त्व को ‘तनुसक’ या ‘युगनन्द’ कहा गया है और इस स्थिति को ‘समरस’ की स्थिति कहा गया है। इसे ‘सहज-मुख’ भी कहते हैं। इस विचार-मोक्षना का निमोक्षण सिद्धसाहित्य में नियमित रूप से किया गया है —

विमिश्रण विस्मिन्ब्रह्म पाणिपि

विमि धरणी कइ चित।

समरस बाद तनसणे ॥

बद पुनू हो सब चित।

२—मैयुनस्य परवृत्तीविमुत्तमम् कम्मते परम् बुद्ध धर्मस्य विहारे—संक्षेपवर्णन।

‘सुम्नप्रतीकों’ के माध्यम से काया-साधना की विभिन्न भूमियों का निरूपण इस साहित्य में विरोप रूप में मिलता है। उदाहरण—

नगर बहिरे डोम्बि तोहरि कुटिया
 ओइ-ओइ बासि बाम्ह नाहिमा ।
 बासो डोम्बि । तोए संम करज में संग
 निबिज कम्ह कपासि ओइ कांन ।
 एक सो परमा बउवाठि पाबुकी
 ताहि बडि नाचज डोबी बापुकी ।

‘नगर के बाहर डोम्बी ! तुम्हारी कुटिया है ब्राह्मण का पुत्र उसका स्वामी करक के बसा बाठा है । निर्धन कापासिक कम्ह मल है । है डोम्बी । मैं तुम्हारा संग करूँगा । एक पद और चौसठ पंखड़ी है । उस पर बढ़कर डोम्बिनी मृत्प कछी है’ । व्याख्याकारों का यह निर्देश है यहाँ ‘डोम्बी’ के द्वारा साधक कुम्हलिनी वायरन की प्रक्रिया का निरूपण कर रहा है ‘कौसज्जान निर्धन’ में ‘सहजा’ ‘कुम्हजा’ और ‘जम्पजा’ का सस्तेज साधक की दृष्टिनी के रूप में हुआ है । ‘सहजा’ स्वकीया है वह साधक की दृष्टिनी है । इसके सहयोग से वह सहजसमाधि में रत होता है । इसी सम्बन्ध में ‘मुद्रा-साधना’ के अर्थ में ‘दृष्टिनी’ तथा ‘तस्वी’ की भी बर्णन मिलती है । ‘दृष्टिनी’ और तस्वी के साथ केहि बिन्ने बिना बुधलन नहीं प्राप्त होता है ।

सिद्धों की दृष्टि उपमोक्षपूर्वक की इसका संकित उनकी रचनाओं में पर्याप्त रूप से मिल जाता है । उनकी यह धारणा थी कि जैसे विप सेवन से विप मरता है वैसे ही संसार का उपमोक्ष करने से आनन्दमन से मुक्ति मिलती है ।

बिसज रमन्त न बिसर्जे बिलिम्पइ, उजर हुरइ न पागौ क्षिप्पइ ॥

समए ओइ मूक सरन्तो बिसहि न बाहइ बिसज रमन्तो ॥

‘विषय में रमन-करते हुए विप में क्षिप्त न हो ऊपर-गुरु में बल नहीं झकटा है । जो इस राज्य को समझने हैं वे विषय में क्षिप्त रहते हुए भी विप में प्रवाहित नहीं होते ।

काया-साधना की विधा सिद्धों की उपासना-पद्धति का प्रमुख अंग है । इस और ऊपर दृष्टि विधा या बुका है । काया-साधना के अन्तर्गत

साधना-पीठों का विशेष महत्व है। इन्हें सिद्ध पीठ कहते हैं। साधक अपनी गृहिणी के साथ साधना-पीठ में साधना-उपसमि का प्रयास करता है। इस सम्बन्ध में जादूगर कामरूप ओडियान और भीरु का उल्लेख मिलता है। निम्नलिखित अंश में इसी साधना-भूमि का उल्लेख है —

हुसि धूहि पिठो धरन न जाइ
 बसेर ठेन्तिल कून्तीरे खाम ।
 जौगन धर पन मूत मो बिजाती
 कामेर चोर नित बभराती ।
 सधुरा निह गेस बहुड़ी जामज
 कामेर चोर नित कागइ जामज ।
 बिपसइ बहुड़ी कागइ डरे जाम
 रात भरलै कामठ जाम ।

अर्ध रात्रि के समय प्रज्ञा ज्ञानमयिक के समय सबकुत्ती बपी बपू से अभिसार के सिंग कामरूप जाती है। इसी प्रकार एक अन्य अंश में मणिकूत से जायत होकर बसवित्त के 'उडियान' या 'ऊर्ध्व महामुख' स्वान में समाहित होने की प्रक्रिया का वर्णन है। 'सिद्ध सिद्धान्त पद्धति' में कामरूप पीठ उडियान की स्थिति स्थापितकाल बरु में है। सिद्ध साहित्य में सिद्ध-पीठों का प्रयोग इस सिद्धान्त के अनुसार ही किया गया है।

अगर यह सक्ति किया गया है कि सिद्धों ने संसार में रहकर उससे निर्भिन्न रहने का उपदेश दिया है। प्रेमपूर्ण माद-दया और मिथ्या से ऊपर उठकर बेतना भूमि पर अवस्थित होने का भाव-सम्बोध इनकी रचनाओं से मिलता है। अत्यन्त चित्तवृत्तियों की क्रियात्मकता को वे छोड़कर व्यापार विधानों द्वारा स्पष्ट करते हैं —

काहेरे बसि मेकि अण्डहु कीस
 बेकिह हाक पदम जोरीस (बउरीस) ।
 अपसा मांससे हरिना बरी
 उनह न छाड़म मुमुक बहेरी ।
 तिन न छुवई हरिना पियई न पावौ

हरिना हरिजीर निरुन न जानी ।

हरिनी बोसुन तुन हरिना तो

ए बन घासि होहु भान्ती ।

निम्न के निम्न निम्न के साथ किन्तु निम्न में मैं जीवन यापन कर रहा हूँ । समस्त विद्याओं में तुमका तार हो रहा है । अपने मांस के कारण हरिण तुम का बेरी हो गया है । बधिर एक बाण के लिए भी संग नहीं छोड़ता है । हरिण न तो तुम खूता है न पानी पीता है । हरिना हरिजी का स्थान नहीं जानता है । हरिनी हरिण से कहती है मेरे कबल पर ध्यान दो । इस बाण का परिष्कार कर अव्यय करें । इस अंग में 'बन' संसार का त्रयपूर्ण स्वप्न है । हरिण ब्रह्म मन का पर्याय वाची है । ब्रह्मत्ता के कारण मन-हरिण ने अपने को दुःखी से मातुल कर लिया है । 'हरिणी' 'नैरात्मा' का प्रतीक है । वह मन को ब्रह्मत्ता में मुक्त कर उसे स्थिरता प्रदान करती है ।

राष्ट्रायनिक प्रक्रियाओं द्वारा कामा-साधना की विधि रघुश्वर रामायण की प्रमुखता थी । नाय-साधना-बारा में इस विधि का विकास हुआ है । पण्डु सिद्धों ने रसात्मक प्रक्रियाओं की आवृत्ति की है । उनका यह विश्वास है कि सिद्ध अधिपत्य योगी हैं व यह नहीं जानते कि जन्म-मरण कैसे होता है । उनके लिये जीवन-मरण समान होता है । रसायन का प्रयोग वे करते हैं जो जन्म मरण से समझीत रहते हैं ।

अपने रवि रवि भव निर्वाण

निजे जोड बनबावए अपावा ।

अम्हें न वापहु अविष्ट जोड

आम मरण जब कहसन होइ ।

अइसो आम मरण बि तइसो

जीवन्त अइसो बाहि जिसेसो ।

जाएहु मरणे मितका

सो करइ एत एसावे न कह्या ।

जामें काम नि काम बाय ।

एए मननि अविष्ट सो बाय ।

अपने को अस्तित्व और निर्वाण में आनृत कर मनुष्य जन्म में बाँधता है । हम अचिन्त योमी यह नहीं जानते कि जन्म-मरण कैसा होता है । हमारे लिए जीवन-मरण समान है । जो जन्म-मरण से भयभीत हैं वे रस और रसायन का प्रयोग करते हैं । जो मन्दिरों (ईश्वर) को खोजते हैं वे अमर नहीं हो पाते । यह कहा नहीं जा सकता कि कर्म से जन्म होता है या जन्म से कर्म । यह कहते हैं कि वह नाम अचिन्त्य है ।

इस सम्प्रदाय में परावृत्ति और उल्टी साधना का विशेष आचार ग्रहण किया गया है । साधारण स्थिति में कृष्णलिनी-आमरण और प्राण-वायु के ऊर्ध्व-मग्न की प्रक्रिया को उल्टी साधना कहते हैं । सिद्ध सम्प्रदाय से लेकर कबीर तथा बैष्णव सहजिया तक उल्टी साधना का उल्लेख मिलता है । इस सन्दर्भ में सिद्धों ने वसुधै क्वार का उल्लेख किया है जहाँ साधक बाली को बाँधता है । उदा०—

एक से मुक्तिमा दुइ करे साम्बध ।

बीब न बाकसता बाली बान्धम ॥

सहजे बिर करी बाली बन्ध ।

बधनि दुआरत बिन्ह देखाइमा ॥

आइल गराहुक अपने बहिया ।

अउलठ बड़िण बेठ पसारा ॥

पडल मणहुक नाहि लिसारा ।

एक बहुली सरह मास ॥

मजलि बिस्या पिर करि बास ॥

एक मास को एहों को बंध किया है सहज में स्थिर होकर बाली बाँधने में संलग्न है । (उसे पान करने बाँधा) बज-अमर तथा दृढ़ स्थलों वाला बन पाता है । वह वसुधै क्वार पर चिह्न (प्रवेश-पत्र) लिखताकर आया है । वह यह चौंछ पड़ी मुक्ता छूता है । योग सम्बन्धी भावों को व्यञ्जित करने के लिए बस्तीक प्रतीकों का प्रयोग यहाँ नियमित रूप से मिलता है । कृष्णलिनी को सुपुत्रा के मार्ग से अक्षरार्थ तक ले जाने की विधि को भी उल्टी साधना कहा गया है । इस सन्दर्भ में ईश्वर विप्लवा को जसना-रसना या वंगा-यमुना भी कहा गया है ।

सिद्ध साहित्य में उनकी साधना प्रणाली दो कर्मों में व्यक्तित्व हुई है। एक विधा यह है जिसमें सामान्य जीवन को प्रभावित करने की चेष्टा निहित है। दूसरी विधा में मोक्ष-सम्पत्ति द्वारा सैद्धांतिक तत्त्वों के निरूपण का आग्रह है। प्रथम के अन्तर्गत साधक का यह आग्रह है कि साधना प्रणाली से परिचित होने के लिए धर्म में दीक्षित होना पड़ेगा। धर्म के साथ साक्षात्कर्म स्थापित करना होना जैसे ही जैसे लक्षण धर्म में मिली हो जाता है। तब-कर्म वर्धन से क्षुधा की दृष्टि नहीं होती। धर्म को देखते मात्र से रोम दूर नहीं हो जाता है। इसी प्रकार बिना धर्म-साक्षात्कर्म के सुख-प्राप्ति सम्भव नहीं है।

सिद्धों ने गुह-मध्यरा और गुह-महत्त्व को सर्वत्र स्वीकार किया है। गुह को सम्पूर्ण ज्ञान-पूर्ण होना चाहिए। इसका उल्लेख करते हुए उन्हें न कहा है—

आय न आय अनिज्ज ताव न सिस्स करइ ।

अन्ता मत्त क्काम तिम वेणि कूज पड़ेइ ।

सरह बोहा =

इनका स्पष्ट निर्देश है कि गुह-वचनो से धर्म के कर्म को तोड़िए, जो धर्मों से न देखें उस पर विश्वास न करें—‘संक-पाठ तोड़िए सुख-कर्म। न मुगद सो गव बीसइ नज्जये। धारण ज्ञान को उन्होंने मस्तक कहा है। इससे समान नहीं मित्रता ज्ञान की मुपा ठूस नहीं होती। इसके विपरीत गुह-उपदेश समुत्तर यह है

गुह-उपदेशे अमिम्भ रतु भाव न पीज्ज वेहि,

बहु-धत्तत्त्व-मत्तत्त्वहि, तिसिए मरि अउपेहि ।

इस प्रकार गुह-उपदेश से ज्ञान की उपलब्धि होती है। प्राप्त-मुक्त की उपलब्धि होती है। यह अनिर्वचनीय है। इसका वर्णन करते हुए साधक ने कहा है—

‘सो परमेसह वामु कहिज्जइ । सुरज कुमारी जीम पड़िज्जइ’

(मुद्रित) कुमारी के मुक्त की अनुमति होती है। उसका वर्णन सम्भव नहीं है। इसी प्रकार ‘परमेसह’ की अनुमति होती है। उस अनुमति का वर्णन संभव नहीं है। परम सत्य की उपलब्धि धरीर में ही होती है। बाह्य उपकरणों से उसकी प्राप्ति सम्भव नहीं है। बुद्ध धरीरत्त्व है—

पण्डित सकल सत्य बल्लभाजइ

देहिहि बुद्ध वत्तत्त्व न जायइ ।

गुरु-उपदेश से ही मन आकाश-वत होता है। इस ओर संकेत करते हुए सरह
म कहा है—

सम्ब-स्व तहि ज-सम करिअइ । ससम सहाने मभवि अतिअइ ॥

सोबी मनु तहि अमनु करिअइ । सहज सहाने सो पन रअइ ।

सिद्ध सम्प्रदाय प्रवृत्तिमुक्त सम्प्रदाय का । अतः इसकी दृष्टि उपभोग-वादी
की । साधना के क्षेत्र में इस सम्प्रदाय के आचार्यों ने विधि विधानों का खण्डन
किया है । काया में ही तीर्थ-स्थानों की स्थिति मानो गयी है—

एतु मे मुरसरि जमुणा एतु मे गंगा सागर ।

एतु पत्राग बमारति, एतु से जन्द रिवाग्र ।

जतु पीठ उपपीठ एतु मरु ममरु परित्यों ।

देवा सरिमज दिल गइ मुअ जग्न न दिहुओ ।

सिद्ध साहित्य के अत्यन्त उपलब्ध रचनाओं में बाह्य एकता के साथ-साथ
आन्तरिक विभिन्नता है । समस्त रचनायें बौद्ध रचनायें नहीं हैं । इनमें तांत्रिक
साधना से सम्बन्धित रचनायें हैं सजह मार्ग की भावयोजना पर आधारित रच-
नायें हैं मंत्रपात्र की भाषा भी इनमें लिखित है साथ ही साथ इनमें ब्रह्मायनी
साधना का भी निर्वर्णन मिलता है । इन विभिन्न साधना-आचार्यों से सम्बन्धित
विशिष्ट शब्दावली का प्रयोग इस सम्प्रदाय की रचनाओं में व्यापक रूप में हुआ
है । उदाहरण स्वरूप यहाँ इन विभिन्न साधनाओं से सम्बन्धित कुछ 'स्कन्ध'
निर्बान' 'गगन' 'कन्ता' इत्यादि विशिष्ट शब्द प्रयुक्त मिलते हैं । अनेक स्थलों
पर साधकों ने अपने का योमी भी कहा है । इन साधकों में से अनेक योगमार्गी
भी थे । परन्तु एक छत्य की ओर विस्वास पूर्वक संकेत किया जा सकता है ।
इनमें तपस्वर्या की भाषना नहीं मिलती है । इन्होंने इन्द्रियों के निरोध के प्रति
आग्रह नहीं प्रकट किया है । इस सम्बन्ध में एक ओर संकेत मिलता है जिस पर
विद्वानों ने अभी तक ध्यान नहीं दिया था । सिद्धों की जो सूची हमें प्राप्त है
उसमें धर्मकीर्ति और ब्रह्मगर्भ का उल्लेख नहीं मिलता है । ब्रह्मगर्भ ने 'हैबन्ध
तंत्र' की टीका की है । 'हैबन्धतंत्र' की जनक टीकायें मिलती हैं । इनमें
'ब्रह्मगर्भ' की टीका अधिक विस्तृत तथा महत्वपूर्ण है । ब्रह्मगर्भ 'हैबन्ध तंत्र'

में प्रयुक्त शब्दों के प्रतीकों को स्पष्ट करते हैं। वे इन शब्दों के अभिव्यक्ति को ही स्पष्ट मानते हैं। इन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि सिद्धों की क्रियाएँ अवामाधिक हैं। इनके आचरण अनमोदित हैं। ब्रह्मसम ने इन शायकों की निन्दा की है। तन-मन के आचरण में वे जीवन में कर्म का प्रचार करते थे। दूषित व्यापारों के आचरण में वे धन-अर्जन करते थे। अपने विनाश की पूर्ति के लिए अपने निस्वाप्ती मित्रों की भावनाओं का अनुचित लाभ उठाते थे। ब्रह्मसम के इस संकेतों से वस्तु स्थिति का स्पष्टीकरण हो जाता है। वे सिद्धों की शायना विधि और उनके आचरण से समुद्र नहीं थे। बहुत सम्भव है इस कारण ही सिद्धों ने अपनी परम्परा में इनका उल्लेख नहीं किया है।

सिद्ध साहित्य का काव्य रूप और अभिव्यक्ति प्रणाली

सिद्ध साहित्य 'बोहों' 'बर्मावीतों' 'ब्रह्मगीतों' और प्रहेलिकाओं में उपलब्ध है। 'बर्मा वीति' के भावस्वरूप की ओर संकेत करते हुए कुकुरीपा ने कहा है—

ब्रह्मसमि बर्मा ब्रह्मगीता ऐ गाइत
कोहि मने एहू हिमहि समाइत।

'कुकुरीपा' एसी बर्मा गाते हैं कि कोटि में से किसी एक के रूप में उसका समावेश होता है। इस प्रकार 'बर्मा वीति' में एक विशेष प्रकार का अर्थ निहित रहता है। 'बर्मा' शब्द का मूल अर्थ है आचरण या व्यवहार, बर्मात् शास्त्र या तपस्वी का आचरण। बौद्ध साहित्य में भिक्षुक के आचरण के अर्थ में 'बर्मा' शब्द का व्यवहार मिलता है^१। 'बर्मा वीति' येव हैं। नाम से स्पष्ट है कि इनमें गीति-तत्त्व की प्रधानता है। बर्मा वीतों की मूल विधि ब्रह्मसम के पथों का ब्रह्मता की वैष्णव वीति पदावली के समान ही है।^२

'बर्मा वीति' के समान ही 'ब्रह्म वीति' हैं। सामूहिक अनुष्ठानों पर 'बर्मा वीति' का गान होता था परन्तु गोपल धौमिक अनुष्ठानों पर 'ब्रह्म वीति' का गान होता था। 'ब्रह्म वीति' का एक उदाहरण दिया जा रहा है।

१—वेदिए-बर्मा वीति पदावली भूमि पृ० २१।

२—वही

मिथ्ये मिथ्य बिसाम - यउ
 कोब निमन्त्रिब काई
 सह बन्ता न बइ सन्तरसि
 उठहि समल मिसाई ।
 कज अप्पान बि करिब बिम
 मा कर मुन मिथिन्त
 मब मब पड़िमा समल बनू
 उठहि ओ इति मिन्त ।
 पुण्ण—परबइ सन्तरसि
 मा कर काज—बिबाउ
 तइ-अप मिह समल बनू
 पठिबउ अप मबसाउ ।
 मिण्ण मात बि मा करेहि पिम
 उठइ पुन सहाब
 कामहि ओइनि बिन्द तुई

किटुउ अइबा भाव ।^१—साधन भाषा

प्रस्तुत अंश में चार योमिनियों उदासीन प्रणयी (प्रमु) से अनुत्पन्न कर रखी हैं । वे कहती हैं प्रिय मिथ्या अभिमान न करो । योमिनियों अनुत्पन्न कर रखी हैं । प्रिय तुम शून्य स्वभाव हो । तुम उठो । योमिनियों की कामना करो जिससे अभाव का भाव दूर हो ।

अपनी अनुभूतियों चिन्तन रेखाओं तथा साधना स्वल्प को व्यक्त करने के लिए इस भाषा के साधकों ने गुह्य प्रतीकों और पारिभाषिक शब्दों का व्यवहार किया है । इस प्रकार उपमा उत्प्रेक्षा तथा रूपक के स्वल्प-विधाओं के प्रति ये विशेष जागरूक हैं । इनमें अर्थ की विधा निहित है । एक अर्थ सामान्य या साधारण होता है जिसे अभिव्येयात्मक कह सकते हैं । दूसरा अर्थ प्रतीकात्मक या लक्षणा मूलक होता है । सरह के 'दोहा कोय' के पञ्जिकाकार अक्षयवन्द्य तथा 'बयौ वीति' के वृत्तिकार मुनिचन्द ने भाषा के इस विविध प्रयोग-स्वरूप को 'सम्प्रा

भापा' कहा है। इसे 'सम्भा चरच' 'सम्भा संकेत' वा 'सम्भा' भी कहा गया है।^१ महामहोपाध्याय हृष्यसाय शास्त्री ने सम्भा भापा का स्पष्टीकरण करते हुए कहा है कि 'प्रकाश' और 'अन्धकार' की भापा को सम्भा भापा कहते हैं। इसमें कतिपय व्यक्त और कतिपय घोपन तत्त्व रहते हैं। अर्थ की स्पष्टता और अस्पष्टता यहाँ निरन्तर निघमान है।^२ परन्तु इस परिभाषा का स्पष्टीकरण से 'सम्भा भापा' का स्वरूप स्पष्ट नहीं हो पाता है। डा० सुकुमार सेन ने इस सम्बन्ध में अपना मतलब बैसे हुए कहा है कि 'आलो' (आलोच) अंवारि (अन्धकार) के साथ सम्भा भापा का कोई सम्बन्ध नहीं है। उनकी बारम्बा है कि जिस भापा या शब्द में निहित अभीष्ट अर्थ को सर्वज्ञ होकर समझा जाय उसे सम्भा भापा कहते हैं।^३ वस्तुतः इसमें दो अर्थों की सन्धि रहती है। इस कारण ही उसे सम्भा भापा की संज्ञा मिली है। प्रस्तुत पंक्तियों में सम्भा भापा के कतिपय उदाहरण दिए जा रहे हैं :—

शब्द	सामान्य अर्थ	सम्भा अर्थ
आसि-कासि	'स्वर' 'व्यंजन'	प्रस्वाप्त निश्वास
उदा० आसिर् कासिर् वाट रुनेला (बर्गी—७)।		
बन्ध बाँध	बाँध	प्रज्ञा ज्ञान प्राप्ति
उदा० बान्ध नुब्ध बुद्ध बका छिछि रहार पुत्तिन्वा । (बर्गी १४)		
		उरक बान्ध बिज नाच न भिन्वा । (बर्गी २६)
हरिण	हरिण	विष
		उदा० आप्ने मोसि हरिण बा बेरी । (१)
हरिणी	हरिणी	नैरात्मा ज्ञान मुखा
उदा० हरिणा हरिणीर निब्य न जानी । (बर्गी ६)		
भोका	भोका	महा मुक्त काय ।
उदा० सोने भरली कस्सा नाकी । (बर्गी ८)।		

१—इसलिए बर्गी बीसि परावर्ती: प्रूमिका—पृ० ७४

२—इसलिए बोधवान् भी बोहा—प्रूमिका ।

३—इसलिए बर्गी बीसि परावर्ती—पृ० २४

रूपक के माध्यम से साधना बिबि का प्रकाशन इस धारा के साहित्य की अमिष्यज्जना प्रणाली का एक मुख्य गुण है। समीप शृङ्गार-परक रूपक द्वारा 'शून्य' या 'सहज' की उपलब्धि का चित्रण इनकी अमिष्यज्जना प्रणाली की विशिष्टता है। इस सन्दर्भ में लोकसापेक्ष विधानों का प्रयोग विशेष वर्तनीय है। उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत बंध में प्रणयातुर प्रणयी के द्वारा साधक ने सहज समाधि की वर्षा की है —

ऊँचा ऊँचा पावत ताहि समझ सबरीबाला
 मोरिंग पिण्ड परिहिम सबरी पीवत मुंजरीमासा
 उमठ शबरो पावत शबरो भा कर गुली-गुहाड़ा
 ठोहोरि निज भरिणी नामे सहज सुन्दरी
 माना तकर मोडसिस र जणत लागेसि डाली।
 एकेलि सबरी ए वण हिड्ड कर्ण कुण्डल बज्यबारी
 तिमबातु छाट पडिला सवरो महामुहे सेजधाइली
 सबर मुंजगम नैरामनि बारी पेकुल रात पोहाई ॥

'ऊँचे-ऊँचे पर्वत पर शबरी बाला रहती है। उसने मोर पण्ड बारण कर लिया है। उसने गले में गुज की माला पहन ली है। उमठ शबर पावत शबर बोलाहस नहीं करता है। निज एहिणी सुन्दरा नाम सहज सुन्दरी है। अनेक वृत्त मञ्जलि हैं। उनकी शाखायें पगल को स्पर्श कर रही हैं। कर्ण-कुण्डल और बज्य बारण किए शबरी अकेली बूम रही है। त्रिपातुओं की घम्या (महामुज की घम्या) है। शबर प्रेमी (मुंजगम) है। शबरी प्रेमिका है। प्रणय-केलि में रात्रि व्यतीत हुई। यहाँ सहज को 'सुन्दरी' या 'एहिणी' के रूप में ग्रहण किया गया है। 'नैराम' से आर्तिपन की कल्पना की गई है। साधना-भूमि में लय हो जाने की प्रक्रिया को काम-केलि के रूपक द्वारा व्यञ्जित किया गया है।

पण्ड इन्द्रियों को मारने की बिधा को साधक ने आग्नेय के रूपक द्वारा व्यक्त किया है—

जब तुम्हें भुलने का क्षण

मजिस्ति पश्य बना ।

यसिन्धी बग परसन्ने होहिनि एकदु मया ।

इसी प्रकार मौका के रूपक (कर्मा १३ १४) का प्रयोग मिलता है, कई बुलने का रूपक (कर्मा २६) बीया का रूपक (कर्मा १७) साबना प्रवासी की व्यञ्जना के लिए प्रयुक्त है ।

साहित्य में युग-जीवन की सापेक्षता विद्यमान रहती है । वह सापेक्षता सिद्धों की रचनाओं में भी विद्यमान है । अपने युग के सामाजिक स्वस्व को अप्रस्तुत विधान के रूप में सिद्ध-साहित्य के रचनाकारों ने ग्रहण किया है । इस सापेक्ष विधान के स्वस्व का उद्घाटन डॉ॰ सुकुमार सेन ने 'अर्वा मीति पदावली' की भूमिका में किया है । उनका यह निर्वारण है कि सिद्धों की रचनाओं में सम सामयिक जीवन के विश्व समझ कर आए हैं । अपने निष्कर्षों को अधिक स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं 'अर्वा' में बेबी-बेबता की उपासना नहीं है । इसमें राजा मंत्री की अनुकृपा भी नहीं है । इनका साहित्य न तो किसी पूर्व-परम्परा पर अवलम्बित है और न यहाँ किसी रीतिरिद्ध बारा का स्वस्व ही निम्नोचित है । अपने युग का साधारण जीवन-स्वस्व और लोकजीवन की वैदिक कर्मा यहाँ प्रतिबिम्बित है ।^१ उदाहरणस्वरूप 'आस्नी बनाने की विद्या' में युग-जीवन की एक बारा का स्पष्ट परिचय मिलता है । स्रिता की बति और उसके रूप-सौन्दर्य को साक्षक संनिष्ठ रूप विधान के द्वारा निम्नोचित किया है । कई बुलने और कपड़ा बुलने के रूपक में भी युग-जीवन का स्वस्व सापेक्ष रूप में विद्यमान है । पारिवारिक जीवन के संकलन-स्वरूप का सापेक्षविधान यहाँ विशेष दृष्टव्य है । इस कथन की सप्रता सिद्धों द्वारा प्रयुक्त 'भ्रमुर' 'साधु' 'मन' इत्यादि शब्दों बारा स्थापित होती है । विशेषमूलक अन्तर्कार के द्वारा उद्धृत बौद्धियों की रचना यहाँ एक विशेष प्रकार की व्यञ्जना प्रवासी है । इसके अन्तर्गत विपरीत धर्म (युग) वाले शब्दों का प्रयोग किया गया है । कर्मा संख्या २ (कुम्भुरीया) कर्मा संख्या ३३ (टेटनपा) में इस विद्या का प्रयोग मिलता है । उवा •

टाकत मोर भर माहि पड़येपी

हाड़ीत भात माहि मिठ जायेली । धुब ।

× × × ×

हुड्डिड हुब कि केले समाय

बल्लर बियाएस मनिजा बाँसे

पिटो हुहिए-ए तीनो सँसि ।

बो सो हुनि सोइ निबूची

× × × ×

नित नित सिमास सिहे सम बूमअ

टेलेपाएर गीत बिरले बूढे । धुब । कर्पा ३३ ।

माथा

सिद्धों की रचनाओं की भाषा मागची अबहट्ट है । डॉ० मुनीसि कुमार चटर्जी ने इन रचनाकारों की भाषा को शौरसेनी अपभ्रंस से पूर्वत संस्पर्धित माना है । वस्तुतस्विति यह है कि मिन-मिन प्रावेष्टिक भाषाओं के आचार्यों एवं भाषा वैज्ञानिकों ने यह संस्वाधित करने का प्रयास किया है कि 'कर्म' नीति और 'बोहा कोष' उनकी भाषा की अपनी निबियाँ हैं । इस प्रकार हिन्दी बंगाली मैथिली उड़िया आसामी—इन समस्त भाषाओं के विद्वानों ने सिद्धों की रचनाओं की अपनी-अपनी भाषा के साहित्य के रूप में स्वीकार किया है । परन्तु उनकी कारण वैज्ञानिक और इतिहास-सम्पत् नहीं है । सिद्धों की रचना जिस भाषा में हुई है उसमें संक्रान्तिकाजीन आधुनिक भारतीय आर्य भाषा के स्वरूप निहित है यही कारण है कि इसमें विभिन्न आधुनिक आर्य भाषाओं के प्रारम्भिक स्वरूप के दर्शन सहज में ही हो जाते हैं । परन्तु ये रचनाएँ मागची अबहट्ट में ही हैं । इस सरपता का प्रतिवाद अवैज्ञानिक होगा । 'बोहा कोष' एवं 'कर्म नीति' की रचनाएँ जिस काल अवधि में हो रही थीं उसमें अबहट्ट साहित्यिक भाषा के रूप में उत्तर भारत में रूढ़ित थी । कुछ लोगों की यह भी धारणा है कि 'बोहा कोष' की भाषा शौरसेनी अपभ्रंस है और 'कर्म नीति' की भाषा मागची अपभ्रंस । बोहा पश्चिमी प्रदेश का प्रचलित अपभ्रंस है इसका प्रयोग

पूर्वी बचनों में व्यापकरूप से नहीं हुआ है परन्तु भाषा के आचार पर 'बोहा कोष' और 'बनौ-गीति' में अन्तर स्पष्ट नहीं किया जा सकता है।

भाषा-स्वरूप पर विचार करते समय एक अन्य सत्य की अवहेलना कर दी जाती है। इन रचनाओं का विकास मौखिक रूप में होता रहा है। इसके अतिरिक्त इनके सिफिबद्ध हो जाने के पश्चात् समय-समय पर इनकी प्रतिक्रियाएँ होती रही हैं। प्रतिक्रियाओं की असावधानी के कारण भाषा के मूल स्वरूप में यत्र-तत्र परिवर्तन होते रहे हैं उदाहरण स्वरूप 'अकारान्त' शब्दों को 'इकारान्त' या 'एकारान्त' कर देना उनके लिए साधारण बात थी।

व्याकरण की दृष्टि से निम्नलिखित विशेषताएँ ध्येयनीय हैं—

(क) करण के लिए -त -ते निबन्ध का प्रयोग। सप्तमी के लिए -ए-एर,-र पठ्ठी के लिए -रे, रें अतुर्बी के लिए—रिपा-सांग अधिकरण कारक के लिए 'भासे' के प्रयोग विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं।

(ख) कर्तृत्वकाश के लिए -क प्रत्यय का प्रयोग यहाँ निमित्त रूप से होता है—उदा० 'पड़िल मिति' (बोहा) 'सोने भरिली कदना नाबी 'सधि लामेसि तानी'।

(ग) स्त्री प्रत्यय के रूप में -इ,-ई का प्रयोग विशेष रूप में मिलता है। पुल्लिङ्ग प्रत्यय के रूप में जा का प्रयोग मिलता है। यह प्रयोग कर्ता और कर्म कारक के रूपों में विरोध रूप से चलने को मिलता है।

(घ) भविष्यत् काल के लिए -इव्-(व) प्रत्ययों का प्रयोग किया गया है। उदा०—'करिज्, 'जाइव्' 'होइव्' इत्यादि।

(ङ) वर्तमान काल के अतिरिक्त अन्य कालों में क्रिया भाव-कर्मवाच्य में प्रयुक्त हुई है।

(च) संस्मावाचक धन; एक एक, दूई, बनि तिलि चउ पञ्च पाञ्च बटीस तेवीस चउछठी कोड़ि इत्यादि।

सङ्ग—अधिकोस 'बनौ गीति' 'पावहुलक' 'पञ्चदशिका' पड़ड़ी चउपई शब्दों में रचित हैं। इनमें गीति-तरंग विद्यमान है और इनके रावों का भी

‘बज्जगीति’ में मात्राओं का क्रम १३+१२ है। ‘अयी गीति’ में दो बिभायें मिलती हैं। प्रथम में मात्रा-क्रम ८+७ है। द्वितीय में ८+८+१० है। अधिकारतः अयी प्रथम बिभा में रचित है। इस छन्द बिभा ने ही परवर्तीकाल में ‘पयार छन्द’ का स्वरूप कारण कर दिया। द्वितीय छन्द बिभा से परवर्ती काल में ‘त्रिपरी’ छन्द का विकास हुआ।

प्रथम —

। । । २ । । । । । । । । ।
निति निति सित्राल विहे सम पुम्भ ॥

। । । । । । । । २ । । । ।
बडण पाएर गीत विरले बुम्भ ॥

द्वितीय —

। । । । । । । । । । । । । २ । । । । ।
मुसुक मजइ कठ राउत भणइ कठ सजना एह सहाब^१

इस प्रकार अपभ्रंश-अबहट्ट की काव्य-परम्परा अभिव्यञ्जना प्रभासी और छन्द-सम्पत्ति ने हिन्दी के आधिकासीन साहित्य की पीठिका निर्मित की है। हिन्दी की आधिकासीनकाव्य बिभायें अपभ्रंश और अबहट्ट से ही प्रस्फुटित हुई हैं। कठ हिन्दी ने आधिकासीन साहित्य की आचारभित्ति के अध्ययन की दृष्टि से इन पृष्ठों में प्रस्तुत सामग्रियों का विशेष महत्त्व है। आये के पृष्ठों में हिन्दी के आधिकासीन साहित्य पर विचार किया जा रहा है।

आरिकास का काव्य स्वरूप

(१) रासो काव्य धारा

रासो काव्य-धारा आरिकासीन हिन्दी साहित्य की एक प्रमुख काव्य विधा है। हिन्दी साहित्य के इतिहास केन्द्रों ने निम्न निम्न दृष्टियों से 'रासो' शब्द और 'रासो'-काव्य-रूप का विश्लेषण और मूल्यांकन किया है। परन्तु मूल्यांकन में काव्य-स्वरूप के विकास और प्रसार के ऐतिहासिक सम्बन्धों की अवहेलना की गई है। 'हिन्दी शब्द सागर' में इस शब्द का परिचय प्रस्तुत रूप में प्रस्तावित किया गया है— संज्ञा पु० ('छन्दः') किसी राजा का पद्यमय बीजनवर्णित, विशेषतः वह बीजनवर्णित जिसमें उसके युद्धों और बीछा आदि का वर्णन हो जैसे पृथ्वीराज रासो, बुजान रासो हम्मीर रासो इत्यादि। कतिपय विद्वानों ने इसका सम्बन्ध 'छन्दः' शब्द से स्थापित किया है परन्तु हिन्दी भाषाविज्ञान के ध्वनि परिवर्तन की सामान्य प्रवृत्ति के अनुसार 'छन्दः' शब्द से इसका विकास सम्भव नहीं है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'बीसलदेव रासो' का आधार ग्रहण करते हुए इस शब्द की व्युत्पत्ति प्रस्तावित की है। 'बीसलदेव रासो' के कवि ने अपने काव्य में 'रसायन' शब्द का प्रयोग किया है—

(१) नासह रसायन रस भर बाह,

तूठी अह धारवा निमुक्त माह

(२) नासह रसायन आरम्भ,

कतिपय विद्वानों ने इसकी व्युत्पत्ति राजारस शब्द से किया है—
 राजारस > राजावसु > राजसु > रासो या राजवस > रासवसो > रसवसो > रासो।
 'रासी' ने इसकी व्युत्पत्ति के लिए 'रासमूय' शब्द की प्रस्तावना की है। राजस्थान में 'रास' या 'रासो' का बर्ण झड़का होता है। इस अनुश्रवण को ग्रहण करते हुए कतिपय आलोचकों की यह धारणा है कि 'रासो' वह निश्चित

१—संस्कृत छन्दः > रासो > रसो > रासो कविराज स्वामल दाह

काशी प्रताप अवतारक तथा रासारायण शुक्ल।

काव्य विद्या है जिसकी भूत संवेदना 'ममर्षे' या संघर्ष की भावना पर परिचायित
है। इस सन्दर्भ में 'पृथ्वीराज रासो' का स्पष्टीकरण करते हुए यह संस्थापना
की गई है कि 'पृथ्वीराज रासो' का अर्थ हुआ 'पृथ्वीराज की कीड़ायेँ' 'पृथ्वीराज
का साहित्यिक कार्य' या उनका 'संघर्ष'।

'रासो' शब्द संस्कृत के 'रासक' शब्द से विकसित हुआ है। प्राचीन इतिहासि
की भी 'रास' कहने की प्रथा थी उदा० 'कुमारनाभ रास' 'भीमाक रास' इत्यादि।

साहित्य-स्वरूप की दृष्टि से 'रासक' एक नृत्य-काव्य या वेप रूपा है।
'हरिवंश पुराण' में 'रास' का सांकेतिक उल्लेख मिलता है। 'विष्णु पुरुष' में रास
की अर्थात् गोपालों के एक विशेष नृत्य के रूप में मिलती है। भास के
'मालविकाग्निमित्र' नाटक में रास के सजातीय 'हस्तीसक' का उल्लेख मिलता है।
डॉ० मणकड Types of Sanskrit Drama में 'रास' की विवेचना
करते हुए इसका अर्थ 'विज्ञाना' देते हैं और इसका सम्बन्ध उस काल के प्रचलित
नृत्य से जोड़ते हैं जब संगीत की भाषा और कलात्मक गीति व्यवस्थित नहीं हुई
थी। बाणभट्ट के 'हर्षचरित' में इसके प्रमाण मिलते हैं कि इनके समय तक 'रास'
में नृत्य की पूर्ण व्यवस्था हो चुकी थी। रासक-नृत्य का प्रचार जन-जीवन में
हो चुका था। 'हर्षचरित' में 'अस्तील रासक पराणि' का उल्लेख मिलता है।
'अस्तील रासक पराणि' का अन्विष्ट स्वरूपों द्वारा गाए जाने वाले गीत से है
(डॉ० बासुदेव चरण अग्रवाल)। इस प्रसंग में काव्यों की अमृत के समान मधुर
कल्पने वाले मधुर आकाश करने वाली स्त्रियों के अस्तील रासक वगैरे गाने का
उल्लेख मिलता है।

सातवीं से दसवीं शताब्दी तक 'रासक' की व्यापक विधायी का
मस्तुटन हो रहा था। इस सन्दर्भ में अप्रकाशित जन-ग्रंथ 'सरदार पद्म पट्टावली'
का उल्लेख विशेष महत्व रखता है। इस दृष्टि से एक विशिष्ट नृत्य का उद्घाटन
होता है। इस समय तक बौद्ध मन्दिरों में 'सन्तुष्ट रास' की प्रथा वर्जित थी
परन्तु सामान्य जीवन में 'रासो' का व्यापक प्रचार था। अनेक सन्दर्भों से यह
स्पष्ट उद्भूत मिलता है कि सातवीं शताब्दी तक 'नृत्य रासकों' की मात्र-बारा
में सम्यक्त्व का समावेश हो चुका था अर्थात् 'नृत्य रास' के समानान्तर

‘अन्तरास-पारा’ का प्रादुर्भाव हो चुका था। चौदवीं शताब्दी की अन्तर्गत जाने वाली कृति ‘उपदेश पञ्च पट्टावली’ में ‘हृषीक’ ‘अगुह रास’ और ‘प्रेराजक’ का उल्लेख मिलता है। ‘रास’ के साथ-साथ ‘अचरी’ का भी प्रयोग मिलता है। जैन साधकों ने इस काम्य रूप को उपदेश-काव्य के रूप में अपनाया। फलतः ‘रासो’ काव्य विधा में गेय तत्त्व सिद्धि होने लगा और उद्देश्यतत्त्व की प्रभावशालिता होने लगी।

डा. माता प्रसाद गुप्त ने ‘रासक-काव्य पारा’ के विकास का इतिहास प्रस्तुत करते हुए यह संस्थापना की है कि अपभ्रंश काल में ही ‘रासो’ की दो अलग-अलग परम्पराएँ स्थापित हो चुकी थीं, (क) गुरु-मील-नरक रासो (ख) क्षत्र वैशिष्ट्यपरक रासो। प्रथम परम्परा के अन्तर्गत उन कृतियों का विकास हुआ जिसका भाव-संबन्ध जैन-धर्म की कृतियों पर अवलम्बित है। इनका सम्बन्ध जैन महात्माओं संतपतियों तथा तीर्थंकारकर्मियों के चरित से है। इसी परम्परा के अन्तर्गत वे ‘श्रीसम्बेधरासो’ की भी स्वीकार करते हैं।

दूसरी पारा क्षत्रवैशिष्ट्यपरक ‘रासो’ की है—‘सम्बेध रासक’ तथा ‘पृथ्वीराज रासो’ ऐसी कृतियाँ उसके अन्तर्गत आती हैं। इस विभाजन के अनुसार प्रथम का विकास मुख्यतः पुरा है। डॉ० गुप्त की यह धारणा धारणा तत्त्व के वर्गीकरण के आधार पर निर्मित है। धारणातत्त्व की प्रसिद्ध कृति है ‘भाव प्रकाशन’। प्रस्तुत कृति में केवल न काव्य के प्रस्तुत रूपों का उल्लेख किया है—

[क] गुरु कथा [ख] कथा [ग] सिद्धी [ङ] मेदुपक । प्रचलित स्वरूपों की चर्चा करते हुए लेखक ने ‘कथा’ के उपभेदों का उल्लेख किया है—

[क] गुरु रासक [ख] मण्डल रासक [ग] गाल्य रासक ।

तत्पुनरा कथा सिद्धी मेदुपके स्वात्मतुषिषम् ।

कथा रासक नामस्वातमेमा रासकं प्रवेत् ॥

गुरु रासकमेकन्तु तथा मण्डल रासकम् ।

एकन्तु बोधिमियमात्मात्मा रासकमीरीतम् ॥

धारणा तत्त्व ने गाल्य रासक को उप रूपक रासक गुरु

१—भाव प्रकाशन नामकबाह् बोधित्तल सीरीज पृ० २१० हिन्दी साहित्य पृ० ११ से उद्धृत।

के अन्तर्गत माना है। डा० मुत की यह धारणा है 'ऐसा प्रतीत होता है कि नाट्य रासक नाटकीय संकेतों और उसके कुछ अन्य तत्वों से विरहित होकर गीत-नृत्य-परक रासक-परम्परा में डल गया। इस परम्परा की अनेक रचनाओं में उनके गाए जाने और नृत्य-समन्वित होने का जो उल्लेख मिलता है यह इस उद्भव की ओर संकेत करता है।' इसपरक में रासक को भागवत कहा गया है—

डोम्भी थी परित माणो
भाणी प्रस्मान रासका
काव्य च सत नृत्यस्य
मेधा स्तुत्येऽपि भागवत् ।*

विरहार्क ने 'वृत्तत्राविसमुच्चय' में 'रासक' की प्रस्तावना छन्द-संवेदना पर की है। उदाहरण —

अडिहहि दुबहएहिंन भत्ता रडुहिं तह अडोसाहिं
बहुएहिं ओ रउडिं सो भणइ रासठ ॥४॥

जिस रचना में अडिह्ता पूहा, भाता रडु और डोसा इत्यादि छन्द हों उसे रासक कहते हैं (वृत्तत्राविसमुच्चय ४ ११)। 'वृत्तत्राविसमुच्चय' के अतिरिक्त स्वयंभू ने 'स्वयंभूच्छन्दस' में कल्पना की है —

भत्ता छडुजिआहिं पडुभडिया मु अण्यएहिं ।
रासा बनो कम्मे अणमण अहिरामो होइ ॥

जिस काव्य में भत्ता छडु पडुबडी तथा अन्य रूपकों के कारण बन-मन अमिराम होता है वह रासक है। 'रास' या 'रासक' की दो धारणें 'सन्देसरायक' के रचनाकास तक सुस्थापित हो चुकी थीं। 'रासक' का उल्लेख नृत्य के रूप में मिलता है साथ ही साथ येव रूपक के रूप में भी इसकी जगह मिलती है। उदा

कह ब ठाइ अउवेइहिं बैठ पयासियइ

कह बहुरुजि निबडठ रासठ भासियइ । सन्देध रामक ४३

डा० भोसा संकर व्यास ने यह संकेत किया है कि रासक का गीति नाटकों से सम्बन्ध स्थापित करना भ्रामक है। डा० व्यास की यह धारणा है कि 'सन्देध

१—हिन्दी साहित्य—पृ० १०० ।

२—रास और रामायणी काव्य पृ० ३ ।

रासक' हिन्दी का प्राचीनतम नाटक नहीं है। उनका कथन है। "ऐसा मत-प्रकाशन वैचारिक अपरिपक्वता का चोकर है। वस्तुतः इस भ्रांत धारणा का आधार सम्पूर्ण रासक के ४३ वें पद्य की 'कह बहुइति निबद्धत रासक भासिमइ' पंक्ति के 'रासक भासिमइ' का वा मयाणी द्वारा प्रस्तुत अंग्रेजी अनुवाद है जिसका आशय है— इस (समोर नगर में) रासक बहुकसियों द्वारा अमिनीत होता है।' संस्कृत टीकाकार भासिमइ' का संस्कृत व्याख्यान 'भाष्यते' स्थित है जो स्पष्ट 'रासक' कहा जाता है—इस मत की पुष्टि करता है। उपर्युक्त हिन्दी लेखकों की भ्रान्त धारणा मयाणी जी के अंग्रेजी अनुवाद के कारण है। वस्तुतः भाषों के द्वारा मीठकियों में गाए जाने वाले मीठों के लिए 'रासक' शब्द प्रयुक्त हुआ है ठीक वैसे ही जैसे बनारस की कजली।^१ डॉ० व्यास की यह संस्थापना वैज्ञानिक विस्मय की अपेक्षा रहती है। भाषों द्वारा मीठकियों में गाए जाने वाले मीठों को रासक के रूप में डॉ० व्यास ने स्वीकार किया है। इस स्वीकृति के लिए उनके पास कोई आधार नहीं है। 'रासक' की एक मात्र-धारा का पट्टन येय रूपरत्न की भूमिका पर हुआ है। इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। डॉ० बलराम जोषा ने उन प्रमाणों का संकलन और विस्मय किया है जिनके आधार पर 'रासक' को उपर्युक्त के अन्तर्गत स्थान मिला है। 'उपदेश रघामन' में यह स्पष्ट उल्लेख है कि रासक एक गेय काव्य है।^२ 'उपदेश रघामन रास' में 'रास' के अतिरिक्त स्वयं की ओर स्पष्ट संकेत किया गया है।^३

'बीसछत्रे रासो' में ऐसे संदर्भ मिलते हैं जिनके आधार पर 'रासो' या 'रास' के रूप-स्वरूप को स्वीकार करने में संकोच नहीं होता है—

सरसति सामगी करत हउ पसाउ ।

रास प्रयासउ बीसछ-र राउ ॥

बोला पइसइ मोंदबी ।

बाबर भासर बापाजे बोझि ॥

१—हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास। प्रथम भाग अ० २

२—अर्थ सर्वेषु रागेषु बीसते गीत कीजिये ।

३—रासक नाम काव्य है । [रि निम्नलिखित ।

अपना

पावण हार भौंडइ (ब) र गार्ई ।

रास रुइ (सम) यह बैसली बाई ।

तास रुइ समपइ घुंछरी ।

मौडिली मौडिली सौपना ।

रास प्रयास ईषी निधि होई ।— सत्यजीवन वर्मा ।

‘रास’ माने वाले अपनी मंडलियाँ बनाकर जब इसे माँ में तो उस समय बौदुरी यात्रि वाले साथ-साथ बजते रहें । घुंछरू माँ के साथ तास बी वाय । मायकों की मण्डली के बीच में बैठने वाले कसाकार बोड़ हों और वे दूर-दूर बैठें और बाहर के वृत्त में बैठने वाले कसाकार सफन होकर बैठें ।

इस सन्दर्भों से यह स्पष्ट होता है कि लघुकाय रास की मूल प्रेरणा अग्नि न्यात्मक थी । ऐसा समझा है कि रास की मूल अनुप्रेरणा नृत्यपरक थी । समय के साथ उसमें छन्द की योजना की गई होयी और नृत्य तथा छन्द की सामूहिकता के पश्चात् उसमें कथावस्तु का निबोधन किया गया होगा ।

अगर डॉ॰ माताप्रसाद गुप्त के उस विस्लेषणत्वक्य का उत्तरण किया गया है जिसमें उन्होंने ‘रासक काव्य’ का वर्गीकरण छन्दों के आधार पर किया है ।

१—रास-नृत्य के भेद के कारण इस गेय रूपक के दो प्रभान बने जाते हैं—(१) ठाकुरास (२) झकुटारास । ठाकुरास में मंडलाकार नृत्यते हुए ठाकुरों से ठाकुर संगीत और पदचप से निर्गत किया जाता है । झकुटा रास में दो छोटे-छोटे बंदों को हाथ में लेकर परस्पर एक दूसरे के बंदों पर ठाकुर बने हैं । स्त्रियों के ठाकुरास को ‘हमची’ कहते हैं और पुरुषों के ठाकुरास को ‘हीच’ कहते हैं । रास का मूल अर्थ है गर्जना । उसके बाद उसका अर्थ हुआ मायिक छन्द में विरचित रचना । उसके बाद एक ही छन्दों में विरचित रचना रास कहलाने लगी । लघुपरान्त इसने स्वतन्त्र गेय उपरूपक का रूप ग्रहण किया । सामूहिक गेय रूपक होने के नाते इसमें रस अनिवार्य बन गया । इसलिए रास काव्य ‘रसात्मक’ बने जाने लगे । रसपूर्ण होने के कारण ही यह रचना ‘रास’ कहलाई ऐसा भी एक मत है ।

परन्तु छन्दों की अपेक्षा काव्य-रूपों के आचार पर 'रासक' का वर्गीकरण अधिक वैज्ञानिक होगा। 'काम्यानुशासन' के आठवें अध्याय में हेमचन्द्र ने काव्य के दो मुख्य भेदों का उल्लेख किया है।—(क) प्रेक्ष्य (ख) श्रव्य।

प्रेक्ष्य के अन्तर्गत पुनः उपवर्गों का उल्लेख करते हैं। (१) पाठ्य (२) गेय।

हेमचन्द्र ने गेय के प्रस्तुत रूपों के स्वल्प का निर्धारण किया है—

(१) बोधिका (२) मान (३) प्रस्ताव (४) सिद्धि (५) भाषिका (६) प्रेरण (७) रामाक्रीड (८) हस्तीरसक (९) माण्डवी (१०) भीगवित्। ये दस रूपक क्रमशः उद्धृत किये—इन तीन रूपों में मिलते हैं। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने यह प्रस्तावित किया है—रासक आरम्भ में एक प्रकार के गेय-उद्धृत प्रयोग प्रधान रूपक को कहते थे जिसमें बोधे मनुष्य प्रयोग भी मिलते हैं। नवविधों का संक्षेप के साथ इसे यादी की। 'संक्षेप रासक' इसी प्रकार का शेष रूपक है। इसके अनुसार 'पृथ्वीराज रासो' का आदिबोध भी 'संक्षेप रासक' के समान ही रहा होगा। यह प्रधान रूप से उद्धृत प्रयोग प्रधान मनुष्य प्रयोग-युक्त गेय रूपक था। इस प्रकार द्विवेदी जी ने रास काव्य की तीन धर्मिका की बर्णना की है—(१) साम्य या मनुष्य रास (२) उद्धृत रास (३) मिश्रित रास। प्रथम की मूल अनुबोधना पूर्णगार-मुख्य होती है। द्वितीय की धर्मता और भावना पर अवलम्बित होती है। तृतीय मनुष्य-वीर मिश्रित होती है। 'संदेधरासक' तथा 'बीसछदेवरास' प्रथम परम्परा की कृति हैं। 'बाहुबलीरास' (जैन काव्य) उद्धृत धर्मता पर निर्मित है और 'पृथ्वीराजरासो' मिश्रित धर्मता का 'रास काव्य' है।

काव्य विद्या की अनुबोधना पश्चिमीय होती है। एक निश्चित काव्य विद्या का पस्तकन होता है और वह साक्षात् प्रस्तावना का रूप धारण कर लेती है। रासक 'काव्य विद्या' बाण्ड्य भाव-संवेदना पर विकसित हुई है। यही कारण है कि परम्पराकाल में रास का विकास 'चरित काव्य-शैली' में हुआ। इसमें कथा-तत्त्वों का समावेश किया गया। अथर्व वेद काल में चरितकाव्यों के लिए विविध नामों का उपयोग मिलता है। इनमें निम्नलिखित और रूपक विशेष प्रचलित हुए। इसी मान धारा के अनुसार 'रास' या 'रासक' संज्ञा देकर भी चरित-काव्य समझे गये। इसके पश्चात् 'रासक' 'काव्य-रूप' का पर्यायवाची बन जाता है। यही कारण है कि 'रास रासो' 'चरित सिद्ध रासो' 'बीसछदेव रासो', 'पृथ्वीराज रासो' को

विवेचना काव्य कर्मों की दृष्टि से होने लगी। आख्यायिका के गुणों के समावेश हो जाने के पश्चात् रासक का पञ्चजन प्रस्तुत चाराजों में हुआ—

(क) लौकिक पद्य-बद्ध कथा-काव्य के रूप में—‘सन्देश रासक’।

(ख) ऐतिहासिक कथित काव्य—‘पृथ्वीराज रासो’।

(ग) जैन मुनियों द्वारा—पुराण-साहित्य की कृति पर प्रस्तावित ‘चन्द्रनन्दा रास’ ‘अम्बू स्वामी रासो’ इत्यादि।

(घ) ऐतिहासिक विवेचना पर आधारित परम्परा मुख्यतः लोक-धर्मा-काव्य विवेचना पर आधारित—‘बीसलदेव रासो’।

रासक-काव्य-कृतियों का परिचय

मुञ्ज रास —‘मुञ्ज रास’ शीर्षक किसी स्वतंत्र ग्रन्थ की प्राप्ति अभी तक नहीं हो सकी है। ‘हेमचन्द्र’ प्रबन्ध चिन्तामणि’ और ‘पुरातन प्रबन्ध संग्रह’ में उपलब्ध कतिपय सांकेतिक संदर्भों के आधार पर इस कृति के आविस्वर की कल्पना की जाती है। हेमचन्द्र ने सिद्ध हेम’ (सन् ११४०) में दो दोहे संकलित किए हैं जिनमें मुञ्ज की प्रणय-कथा की मूल संविधा का परिचय मिलता है। उदा०

रक्तसह सा विसहारिणी वे कर धुम्बिनि नीउ ।

पडिनिमिअ मुञ्जसु जळ जेहि अडोहिअ पीउ ॥

बाहू भिछोडि जाहु तुहु हउ तेवई को दोषु ।

हिमपट्टि जइ नीसरहि जाजउ मुञ्ज सरोसु ॥

प्राकृत व्याकरणम् ४३१, २, ३।

‘जल मले वाली भासा मुञ्ज के प्रतिनिध के साथ जल पीने वाले करो

१—डा० माता प्रसाद गुप्त ने रासक-काव्य-चारा का विभाजन निम्नलिखित रूप में किया है (हिन्दी साहित्य द्वितीय खण्ड १०१ ११६) ।

(क) जल रूपक निबद्ध परम्परा—‘सन्देश रासो’ ‘अरसेसर बाहुवकी रास’ ‘बुद्धि रास’, ‘जीव दया रास’ ‘चन्द्रनन्दा रास’ ‘अम्बू स्वामी रास’ ‘नेमिचन्द्रदया रास’ ‘कञ्चुसी रास’ ‘समरा रास’ तथा ‘बीसल देव रास’ ।

(ख) छन्द-वैविध्य-युक्त-रासो परम्परा —‘मुञ्ज रास’ ‘सन्देश रासक’ ‘पृथ्वीराज रासो’ ‘हम्मीर रासो’ ‘बुद्धि रासो’ ‘परमार रासो’ ‘विजयनाथ रासो’ ‘राधा रासो’ ‘छन्द रासो’ ‘कायम रासो’ ‘छत्र साम रासो’ ‘मोकरा रासो’ ‘समय सिद्ध रासो’ ‘हम्मीर रासो’ ।

का बुझन कर के बीबिठ है । २। ओ मुख । तुम मेरे मुख-बन्धन को छुड़ा कर
 आ एगरो हो । यदि तुम मेरे हृदय से कले जाओ तभी (मैं) तुम्हें अपने स रस
 (विमुक्त) समुन्मी । १ 'प्रबन्ध चिन्तामणि' (देवतुंग समय समय १३०४ ई०)
 में भी मुख से सम्बन्धित कथा का उल्लेख किया गया है । पद्महरी-शोभहरी
 छरी के जैन प्रबन्धसंग्रहों की एक प्रतिसिद्धि का आधार ग्रहण करते हुए 'पुरातन
 प्रबन्ध संग्रह' (संग्रहकर्ता-मुनि जिनचिन्मय) में मुख से सम्बन्धित प्रबन्ध का
 संकलन किया गया है । इन समस्त सन्दर्भों से 'मुख रास' के मूल स्वल्प का
 निर्धारण नहीं हो पाता । जैनग्रन्थ के द्वारा संकलित दोहों के आधार पर यह निष्कर्ष
 तो निकाला जा सकता है कि इनके व्याकरण की रचना-अवधि के पूर्व ही मुख
 से सम्बन्धित कथामें या किंवदन्तियों लोक-जीवन में प्रचलित हो चुकी थी और
 इन किंवदन्तियों का आधार मुख से सम्बन्धित कोई काव्य-ग्रन्थ रहा हो । परन्तु
 इसके आधार पर यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि वह रासक-परम्परा
 का काव्य-ग्रन्थ ही रहा होया और उसका नाम 'मुख रास' या 'मुख रासक'
 रहा होया । ४ इस सम्बन्ध में आपत्ति यह है कि इसके रचनाकार
 और इसकी रचना तिथि के विषय में हमें कुछ ज्ञान नहीं है । मुख का समय
 अनुमान से ई० १०००-१२५६ माना गया है । सिद्धहेम का समय ई० ११४०
 अनुमानित किया गया है । अतः यदि मुखरास से सम्बन्धित किसी काव्य की
 रचना हुई होयी तो उसकी रचना तिथि इन दोनों के मध्य रही होगी । 'पुरातन
 प्रबन्ध संग्रह' में संकलित कतिपय अंशों को यहाँ दिया जा रहा है—

सायक बाद जेक नद गम्बह दस सिर रास ।
 मय्यणह सो जजि गर मुख म करसि बिसाव ॥
 का मति पन्धर सम्पन्न वा मति पहिली होइ ।
 मुख गम्बह मुनासबह जिवन न बेहब कोइ ॥

१—सिद्ध हेम अनुपासन सम्पादक पी० एल बेंच (पुना) पृष्ठ ७५ ।

२—प्रबन्ध चिन्तामणि (सिंधी जैन ग्रन्थालय) पृ० २१-२३ ।

३—पुरातनप्रबन्धसंग्रह (सिंधी जैन ग्रन्थ माला) पृ० १३-१५ ।

४—वैजिण—हिंदी साहित्य द्वितीय खण्ड पृ० ११२ ।

मेरी व्यक्तिगत चारणा यह है कि मे अंश लोक-जीवन में प्रचलित विविधतियों पर ही अधिष्ठित आधारित है, यह इनकी प्रामाणिकता के कुछ परोक्ष प्रमाणों की आवश्यकता है।

अपभ्रंश रसायन शास्त्र—‘अपभ्रंश रसायन शास्त्र’ के रचनाकार जिनदत्त सूरि हैं। इस कृति में अश्वकी रचना विधि का कोई उल्लेख नहीं है। जिनदत्त सूरि की एक अन्य रचना उपलब्ध हुई है जिसका नाम है, ‘काम स्वयं कुसुम’। इस ग्रन्थ की रचना विधि का उल्लेख प्रस्तुत अंश में मिलता है—

विदूषक सवस्वधरि सय बोद्ध ।
 हुयइह पणइठठ मुहु भर बाद्ध ॥
 इस संसार सहानि भवतिहि ।
 बतहि मुम्मइ सुकळ वनेतहि ॥^१

यद्यपि इसकी रचना विधि सम्भवत् १२०० वि० है। डॉ० माता प्रसाद मूल की यह चारणा है कि ‘अपभ्रंश रसायन शास्त्र’ इस कृति की पूर्ण की रचना है।

माया की दृष्टि से ‘अपभ्रंश रसायन शास्त्र’ अपभ्रंश की रचना है। यह ३२ धारों की कृति है और यह ‘अपभ्रंश’ खंड में लिखी गई है। इस सन्दर्भ में एक विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि ग्रन्थ में इसके काव्य-रूप (‘रास या ‘रासक’ नामक) का उल्लेख नहीं किया गया है। जिनदत्त उपलब्धता से इसकी टीका की है। टीकाकार ने इसे ‘रासक-परम्परा’ की कृति कहा है। उनके विस्तेषण के आधार पर यह परम्परा-रूप काव्य है और अनेक रागों में गेय है।^२ इसकी मूल संरचना धार्मिक है और यह केव-रूप में लिखित है। इसमें मनुष्य-जीवन के महत्त्व पर व्याख्या के साथ-साथ मनुष्य के उद्धार-मार्ग का भी वर्णन है।^३

१—विशिष्ट बही पृ० १०१।

२—अपभ्रंश काव्य जयी-भाष्यबाइ बोरिएठठ सौरीन टीका ‘खंड’ २ ३ ४।

३—मुनि जिनदत्त सूरि की एक अन्य कृति ‘अश्वकी’ है। रचना ४७ वस्तु धारों में समाप्त हुई है। ‘काव्यस्वरूप कुसुम’ में अर्थकर कुसुम का वर्णन है, साथ ही मनुष्यों के धर्मनिरोधी आचरणों की निन्दा है। जिनदत्त सूरि स्वैराग्र्यर सग्रहाय के खरतर मध्य के प्रतिनिधि आचार्य से।

भरतेस्वर बाहुबली रासः— भरतेस्वर 'बाहुबली रास' के रचयिता शास्त्रिण सूरि हैं। ग्रन्थकार ने ग्रन्थ की रचना विभिन्न का उत्प्रेक्ष इस रूप में किया है—

सम्बत ए बारक एतासि फागुन पंचमिइ एत कीउत ए। २०३। अर्थात् इसकी रचना विभिन्न १२४१ (सं० ११८४) है। इस काव्य का प्रथम रस नीर है। इसमें भरत तथा बाहुबलि (भगवान् श्वपक के पुत्रों) के मध्य राजसत्ता के लिए संघर्ष का आचार प्रवृत्ति किया गया है। इसकी रचना २०३ छन्दों में हुई है। यह 'रासक-काव्य-परम्परा' की एक महत्वपूर्ण कृति है। इसकी भाषा अवहट्ठ है। कृतिकार ने इसके काव्य-रूप की ओर संकेत करते हुए कहा है—
'हूँ हिब पमानि गु रासह लविहि। इसमें वेप-तत्त्व भी पमीत भाषा में है। इस कृति से एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है—

पल जमाअ करिमाअ कृत करतल को बंडव
भस्मई साबल सजल-सैकहल मसल पमंड (उ)।
सिगिनि शुभ टंकार सखित भाभाजसि तागई।
परलु सखाई करि बरइ भाला उगाई ॥

सन्देशरासक— 'सन्देश रासक' अवहट्ठ की रचना है। भाषा की दृष्टि से यह हिन्दी की पूर्ववर्ती कृति है। परन्तु हिन्दी के 'रासक काव्य' स्वरूप के विकास के अध्ययन की दृष्टि से यह कृति ऐतिहासिक महत्त्व रखती है। साथ ही साथ भाषा के सन्धि वालीन स्वस्व (अपभ्रंस और हिन्दी के मध्य की भाषा) के अध्ययन के लिए भी इस रचना का विशेष महत्त्व है। इन्हीं दृष्टियों को सम्मुख रखते हुए इस कृति पर यहाँ विचार किया जा रहा है।

'सन्देश रासक' के रचयिता अज्ञातमान (अज्ञानह्मान) है। ग्रन्थ के आरम्भ में इन्होंने अपने परिचय के रूप में कहा है—

पद्याएसि पाहुओ पुन पसिडो म निन्देसो रिब।
तह किए संभूओ भाएओ मीरसेनस।
एह तनओ कुसुमको पाइय कन्वेनु बीबसियेसु।
अहमाअ पसिडो सनेहयरासव रस्य।

पश्चिम में प्राचीन काल से अत्यन्त प्रसिद्ध जो म्हेच्छ देव है उसी प्रदेश में मीर सेन तन्नुबाय (भारद्) उत्पन्न हुआ । उसके पुत्र बह्ममाण ने जो अपने कुल का कमल या तमा प्राकृत-काव्य और यौग विषय में सुप्रसिद्ध या सन्देश रासक की रचना की है । कवि ने अपनी कृति को 'सनेह रासक' कहा है । विद्वानों ने 'सनेह रासक' का क्वास्तर 'सन्देश रासक' किया है । परन्तु अनि परिवर्तन की सामान्य प्रवृत्तियों के अनुसार इसका क्वास्तर 'सनेह रासक' होना चाहिए ।^१ कवि ने अपने को 'भारद् बंश' का कहा है । 'भारद्' शब्द का अर्थ स्पष्ट नहीं हो पाता है । इस कृति के टीकाकार ने इस अंश की टीका करते हुए लिखा है 'प्रतीक्ष्यां पश्चिम दिशि प्रभूत पूर्वं प्रसिद्धो म्हेच्छनामा देवोऽस्ति तत्र विषये भारद्देवीत्याम् तन्नुबायो मीर सेनाख्य सम्भूत उत्पन्न ।'^२ 'अर्थात् पश्चिम में म्हेच्छ नामक देव है । यह पूर्व में अति प्रख्यात है । यहाँ मीरसेन नामक पुलाहा (भारद्) उत्पन्न हुआ । 'भारद्' देवी शब्द समता है । परन्तु 'देवी नाम माता' में इसका उल्लेख नहीं मिलता है । बैसे इस शब्द का प्रयोग तीन अर्थों में होता है—(क) प्रवृद्ध (ख) सत्पुण्य (ग) यह में आया हुआ । परन्तु कस्मीरिय ने निम्नलिखित में इसका अर्थ 'पुलाहा' ही किया है । निम्न लिखित अंश से भी इसका स्पष्टीकरण होता है—

विषय कवित्वं विद्वान्माह्वु

पक्षित पक्षित्परणु मनुष्य जमि कोत्तिय क्वासिद्ध ।

कौटुहलिक भासिद्ध सरसमाह सनेहारासक ।

तं आपवि विमि सिद्धु लघुलुहमन करवि सनेहु ।

पामरं बण बूहकूहर्हि भं रणयत निमुगेहु ।

'अपनी काव्य विद्या के महारम और पाण्डित्य को बढ़ाने वाले इस सन्देश रासक की रचना मनुष्य लोक (जन्म) में कौत्तिक ने कौतूहलसम्बन्ध सरस भाव में की है । यह जान कर हे बुधबनो ! जाने क्षण भर स्नेह कर पामर बण द्वारा स्तूत अक्षरों में रचित इस काव्य को सुनो । सन्देश रासक पृ० ७

प्रस्तुत अंश में बह्ममाण ने अपने लिए 'कोत्तिय' शब्द का प्रयोग किया है जो पुलाहा का पर्यायवाची है ।

१—सनेह रासक > सन्देश रासक > सनेह रासक

अहमदन अपने पूर्व की काव्य-परम्परा से परिचित थे। अत्यन्त विनम्रता होकर अपने पूर्व के अपभ्रंश प्राकृत पेशाबी एवं संस्कृत के कवियों को नमन करते हैं। उनके काव्य तथा सूक्त-वैभव के प्रति सम्मानभाव व्यक्त करते हैं—

पुष्पज्योत्स्ना यपो मुकुटं च सस्त्रं कुसुमान् ।

शिवसोऽयं सुन्दरं जेहि कयं जेहि निद्रिट्ठं ॥

अबहुदय-सङ्गत-पादपनि पैसाह्वयनि मायाए ।

कनकमण्डपाहरणे मुकुटं मूसियं जेहि ॥

‘सम्पत्त’ शाल में कुछ प्राचीन विद्वानों और कवियों को भी नमस्कार कटा है, जिनके द्वारा जिलोक के मुख्य काम बनाए गए। जिन्होंने अपभ्रंश संस्कृत प्राकृत और पेशाबी भाषा में कविता की तथा सुन्दर काव्य को लगभग एवं अलंकार से विभूषित किया। इसके पश्चात् कवि अपनी रचनाशक्ति और शक्त प्रति आप्ता की व्यक्तता करता है—

ठागज्जु कईय जम्हारि साय सुखस्स सत्थ रहियाय ।

अनसकप्यंयपुनकं कुकमित्त को पर्वसिह ॥

जइवा न इत्थ दोसो जइ सयं ससहारेण भित्तिमए ।

ता कि न हु बोइअ भुज्जे रयणीसु बोइअ ॥

जइ पण्डुगिहि रियं सरसं सुमणोहरं च ठसिहरे ।

ताकि सुवचास्सा मा काया करकपर्वसु ॥

‘उन कवियों के सम्मुख हम जैसे श्रुति शाल न जानने वालों की कठना रहित कुकमिता की प्रशंसा कौन करेगा? अपना इसमें कोई शेष नहीं क्योंकि यदि निरा में जन्मा उचित होता है तो रात को घर में दीपक नहीं जलाये जाते हैं? यदि एक-दिल्लरों पर बैठकर कोयले लपट और मनोहर सज्ज करती हैं तो क्या (घर की कुँदों) पर बैठकर कोयले काँच-काँच न करें?

सम्पत्त रासक का रचना-काल —

पाटन स्थित जैन भग्नागरे से मुनि विनविजयको सन् १२१२ में ‘सम्पत्त रासक’ की एक हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई थी। सन् १२१८ में ‘महाशारद-रिसर्च इन्स्टीट्यूट’ से इनमें इस कृति की एक अन्य प्रतिलिपि मिली थी। इसमें

मूल पाठ की संस्कृत छाया 'अबधूतिका' भी संलग्न थी। सन् १९१६ में सोहाबती (मारवाड़) से उन्हें एक अन्य प्रतिष्ठित मिली। इनके व्यापार पर डॉ० हरिवल्लभ मिश्राजी ने इसका सम्पादन किया^१। बहुमास में अपन समय अपना ग्रन्थ के रचनाकाल का कोई उत्कल नहीं किया है। अतः इस कृति की रचना तिथि का स्पष्ट निर्धारण नहीं हो पाता है। अनेक ऐतिहासिक तत्त्वों का विस्लेषण करते हुए उन्होंने यह निष्कर्ष प्रदान किया है कि 'सन्देश रासक' की रचना विद्यानाथ या कुमार पाठ के समय में हुई थी। उनका समय बारहवीं शताब्दी उत्तरार्ध या तेरहवीं शती पूर्वार्ध है। भाषा की दृष्टि से भी यह कृति इसी काल की रचना समझी है।^२ राहुबसांहृत्यापन इसे बारहवीं शताब्दी की कृति मानते हैं (हिन्दी काव्य धारा)। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी उसे बारहवीं तेरहवीं शताब्दी की रचना मानते हैं। (हिन्दी साहित्य का आदि काल पृ० ६०)। श्री जगरन्धर नाहटा इसे पन्द्रहवीं शताब्दी की रचना मानते हैं।

सन्देश रासक का काव्य-रस --

सन्देश रासक' रासक काव्य विद्या की प्रतिनिधि रचना है। यह कृति तीन प्रक्रमों में विभक्त है। प्रथम प्रक्रम कवि-परिचय और काव्य-परिचय से संबंधित है। मूल कथा द्वितीय प्रक्रम से आरम्भ होती है। तृतीय प्रक्रम में विप्रसंग के अन्तर्गत शत्रु वर्णन की महती भेदना मिलती है। तथा संयोग में ग्रन्थ की समाप्ति होती है। द्वितीय प्रक्रम में कथा की संबिंदना कवि इस रूप में प्रस्तावित करता है—

जन्मपरिचोरेण विरहसक्तिं धनदृष्ट्याहुरि।

वीणाबाहिं पशु पिह्ये अल पचाहपवहंति बीहुरि ॥

- १—सन्देश रासक—सम्पादक—श्री विनमित्रय मुनि और हरिवल्लभ मिश्राजी।
 सिन्हा जैन ग्रन्थमाला प्रकाशक भारतीय विद्याभवन सं० २००१। सन्देश
 रासक—सम्पादक डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा विश्वनाथ बिपाठी—
 प्रकाशक हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर बम्बई ४। डॉ० माता प्रसाद गुप्त भी
 सन्देश रासक का सम्पादन कर रहे हैं। २ सन्देश रासक—सूचिका पृष्ठ ११।

विष्णुमि कवयंस्तिनु, वह सामस्मिपवन्तु ।

कव्यह राहि विडम्बिम वाराविबह सवन्तु ॥२७॥

—सन्देश रासक द्वितीय प्रक्रम ।

‘विष्णुमगर की कोई सुन्दरी को यौवन के सम्पूर्ण प्रस्तुत्य में है, जिसकी कठि खीण है जो हुंसगामिनी है—उसका मुख-मण्डल मन्त्रि हो गया है । अयु-प्रवाह के घाव (प्रिय के) पथ देख रही है । उस रमणी का वर्णन वर्ण घरीर विष्णुमि से स्थापन हो गया है । मागो राहु ने कव्यगा को उस किया है ।’ रमणी एक पत्निक को देखती है । पत्निक के भाष्यम से कवि जाठ याबाओं में रमणी के स्व-सौम्य का वर्णन करता है—

कुमुम सराजह स्वमिहि, विधि निम्नमिम परिटठ ।

तं निषेधेनियुपहिम निहि, बहा मविमा बट्ठ ॥

‘वह कामदेव के बाण के समान थी । स्वमिहि और रक्षाकार की मण्डल रचना उस रमणी को देखकर ममतापूर्ण पत्निक ने जाठ याबाओं पढ़ी ।

इन जाठ ‘याबाओं’ में से यहाँ कतिपय उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत है —

रमणीतम विह्वयो अमियंभरणो सुपुष्पसोमो य ।

अकलंक भाह वयनं वासरणाहस्य पडिबिबं ॥३३॥

‘निसा के अन्धकार को नष्ट करने वाले अमृतवर्षी पूर्ण जन्मा के समान उस रमणी का मुख निष्कलंकता में सूर्य के प्रतिबिम्ब के समान है ।

उपकृत सिरेनियु पडिबिबार्हं अंगार्हं टीहमि सुसविसेधं ।

को कविमलान वृषह सिट्ठं विहिमामि पुनरुत्त ॥

‘शेखरा (पार्वती) को अन्धकार ज्ञान ने उससे भी अधिक कुनो के साथ नायिका के अंगों का मल किया है । कवियों को कौन बीच दे सकता है जब ज्ञान ने स्वयं पुनरुत्ति की सृष्टि की है ।

इन याबाओं को सुनकर वह राजवराजनामिनी अन्धित हो जाती है । पर-जगुठे से बरती खोसती हुई उस कंचन-अपी ने पत्निक से विनासाकी ‘हे पत्निक ! अब तुम कहाँ जा रहे हो और तुम कहाँ से जा रहे हो ? वह प्रिय के पास सन्देश भेजने की उत्कृष्टा मकट करती है । वह सन्देश कहती है जो

समाप्त नहीं होता । पबिक कहता है 'हे मृगमयने ! तपन तीर्थ समस्त विद्याओं में विख्यात है । सम्पूर्ण पृथ्वीपर वह मूल स्वाम के नाम से प्रसिद्ध है । वहाँ से गोप्स सन्तों को ग्रहणकर (गोप्स सन्देश लेकर) प्रभु के आदेश से सम्भात जा रहा हूँ ।' (९५) । इस कथन की प्रतिक्रिया रमणी पर जिस रूप में हुई (क्योंकि उसका प्रिय भी तो सम्भात ही में है ।) उसका वर्णन करते हुए कवि कहता है—

पठ मातृमि निमि सिधु पक्षि यद्द दम् करहि,
कहूँ किमि सविस्त पिय तुम्हकसपहि ।
पहिण यद्द कस्यमि कहूँ कि कसमणि
कि मिमिहहि विण रपणि उमिणिपमियम यणि ॥९८॥

‘हे पबिक ! यदि आदेशन (वर) मोड़कर अर्थात् बैठकर क्या कहे तो प्रिय को बोड़ दायों (भयानों) में कुछ समझ कहूँ । पबिक कहता है 'हे कनकाजिनि ! कहो रोने से क्या काम । उद्विग्न मृगमयने ! तुम दिन-रात कीप क्यों होती पायी हो ?’

इस प्रकार इस प्रक्रम में बिरहिणी की विकल बेवना अगणित मान-आवेगों में मुलान्तित हुई है । विविध दायों में अपनी मनोव्यथा को पबिक के माध्यम से प्रिय के पास पहुँचाना चाहती है । उसके मन की आकुसुता प्रिय के भौकट्य की कामना, और भावों के आकुसुत संस्पर्शों की तरलता इस अंश में काव्य-बैभव का सुमार है ।

पबिक से अपनी व्यथा की व्यञ्जना में मार्मिका लब्धा का अनुभव करती है । परन्तु वह अपनी व्यथा से असमर्थ है, वह अनुभव करती है कि यदि लब्धा करके वह बीज रह जाय तो उसकी जीवन-मारा अति इपनीय हो जायगी । वह सन्देश कहती है (९६-९७ पद्य) को समाप्त नहीं होता । पबिक प्रत्याग की अमिताया व्यक्त करता है । बिरहिणी के निवेदन पर वह पुन रुक जाता है । अनेक रूपों में अपनी मनोदशा को अक्षिप्त करण के परचाव अन्त में वह पबिक से कहती है—

बिरहनि कणमंगितानु, तद्द सामन्निपवन्तु ।
पञ्च राह् विवर्जित, ताराह्निवद् सन्तु ॥२४॥

—सन्देश रासक द्वितीय प्रक्रम ।

विजयनगर की कोई सुन्दरी जो यौवन के सम्पूर्ण प्रसङ्ग में है जिसकी कटि लीन है जो हंसयामिनी है—उसका मुख-मण्डल मस्तिन हो गया है । अधु प्रवाह के साथ (प्रिय के) एक वेश रही है । उस रमणी का कंकन बर्ष शरीर बिछावित से स्वामल हो गया है । मानो राहू ने चन्द्रमा को ग्रस लिया है । रमणी एक पक्षि को देखती है । पक्षि के माध्यम से कवि आठ माथाओं में रमणी के रूप-सौन्दर्य का वर्णन करता है—

कुसुम धराज्ज् स्वनिहि, निहि जिन्मविय गरिट्ठ ।
तं सिन्धेजिनु पक्षि निहि, महा मविया अट्ठ ॥

‘वह कामदेव के बाण के समान थी । स्वनिधि और रक्ताकार की मञ्जुल रचना उस रमणी को देखकर ममतापूर्ण पक्षि ने आठ माथाओं परी ।

इन आठ ‘माथाओं’ में से यहाँ कतिपय उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत है —

रमणीतम बिह्वजो बभियभरजो सुपुष्पसोमो य ।
अकलंक माह बभय वासरणाहस्त पविर्विबं ॥३३॥

निहा के अन्धकार को मल करने वाले अमृतवर्षी पूर्ण चन्द्रमा के समान उस रमणी का मुख निर्विकलता में सूर्य के प्रतिबिम्ब के समान है ।

स्यसम्ब सिन्धेजिनु पक्षिमाई बंवाई तीह्वि सुवमिसेतं ।
को कविमवाय ब्रुवह सिट्ठं बिहिवावि पुनरत्त ॥

‘सौख्या (पार्वती) को बन्धनकर जड़ा ने उससे भी अधिक गुणों के साथ नास्तिका के बंधों का गठन किया है । कवियों को कौन बोध ले सकता है, जब ब्रह्मा ने स्वयं पुनर्वाच की सृष्टि की है ।

इन माथाओं को सुनकर वह राजमरास्यामिनी स्मित हो जाती है । पर-अंगूठे से धरती खोदती हुई उस कंकन-बन्धों ने पक्षि से निजावाकी है पक्षि । अब तुम कहाँ जा रहे हो और तुम कहाँ से आ रहे हो ? वह प्रिय के पास संवेद भेजने की उत्कण्ठा प्रकट करती है । वह संवेद कहती है जो

समाप्त नहीं होता । पथिक कहता है 'हे भृगुमन्यवे ! तपस्य तोर्षं समाप्त विद्याओं में विख्यात है । सम्पूर्ण पृथ्वीपर वह मूख स्थान के नाम से प्रसिद्ध है । वहाँ से गोपन सन्देशों को ग्रहणकर (गोपन सन्देश लेकर) प्रभु के आदेश से सम्भात जा रहा हूँ । (६१) । इस कथन की प्रतिक्रिया रमणी पर जिस रूप में हुई (क्योंकि उसका प्रिय भी तो सम्भात ही में है ।) उसका वर्णन करते हुए कवि कहता है—

पठ मोक्षवि निमि सिद्धम् पश्यिष्य वह वयं करहि,
कहूँ क्विपि सदित्तत पिम तुच्छम् उच्यते ।
पश्यिष्य ममह कथमपि कहूँ कि कथमपि
कि मित्रकहि विष रम्यि उचिष्मिन्मियम यमि ॥६२॥

हे पथिक ! यदि आपेक्षण (पैर) मोक्षकर अर्थात् बैठकर क्या करो तो प्रिय को थोड़े शब्दों (कसरों) में कुछ सन्देश कहूँ ।' पथिक कहता है 'हे कनकाश्रिति ! कहो रोने से क्या काम । उद्विग्न भृगुमन्यवे ! तुम जिस रात शीघ्र क्यों होती जाती हो ?"

इस प्रकार इस प्रक्रम में विरहिणी की विकल वेदना अव्यक्त भाव-आवेशों में मुखरित हुई है । विविध शब्दों में अपनी मनोव्यथा को पथिक के माध्यम से प्रिय के पास पहुँचाना चाहती है । उसके मन की आकुलता प्रिय के मैकल्प की कामना, और भावों के आकुल संस्पर्शों की तरलता इस अंश में काव्य-बैभवं का सूचक है ।

पथिक से अपनी व्यथा की व्यहना में लामिका लम्बा का अनुमन्य करती है । परन्तु वह अपनी व्यथा से असमर्थ है वह अनुमन्य करती है कि यदि लम्बा करके वह मील यह नाम तो उसकी पीवन-पारा अति दयनीय हो जायगी । वह सन्देश कहती है (६२ व २ शब्द) जो समाप्त नहीं होता । पथिक प्रस्थान की अमिताया व्यक्त करता है । विरहिणी के निवेदन पर वह पुनः रुक जाता है । अनेक क्यों मैं अपनी मनोव्यथा को अंकित करने के पश्चात् अन्त में वह पथिक से कहती है—

जल गयो सो मुहमो तरिह बम्ह बिबसाउ अगियसी ।
 बिबसाउ हियए पवित्र कासो काकुम्ह परिणमइ ॥१२८॥
 मुहोअहं जल पिए इउमउ बिम्हानसेन को बिम्ह ।
 मस्यगिरि सोसणेन य सोसिबउ सोसिया बय ॥१२९॥

‘जित दिन से वह प्रिय (सुभग) गया है, उस दिन से मुझ अग्निहृति (उद्विगता) है । निश्चय ही समय हृदय में काल के समान समता है । जिससे मैं प्रिय-स्पृष्टा हुई वह प्रीप्स अपनी अग्नि (प्रीप्सामि) से जल जाये । जिसके द्वारा मैं सोसित हुई हूँ वह (प्रीप्स) मस्यगिरि समीर से बूझ जाए ।

तृतीय प्रक्रम में कवि पट्टाभुवर्धन की योजना के द्वारा बिरहिनी की अवस्था का चित्रण कराया है । यह वर्णन उद्गीष्म के रूप में हुआ है । और यह प्रीप्स से आरम्भ होता जिसका क्रम इस रूप में है—

प्रीप्स वर्णनम्, बारी वर्णनम्, सरद वर्णनम्, हेमन्त वर्णनम्, चिसिर वर्णनम्, तथा बसन्त वर्णनम् । ऋतुओं के संस्मिष्ट व्यापार विधान की ओर कवि की दृष्टि यहाँ नहीं है । नायिका पक्षि से विभिन्न ऋतुओं में अपनी मनोरंजनों के रूप ही प्रस्तुत करती है । और अपने भावों के नियोजन के सिद्ध प्रकृति के मिला-व्यापारों को संकलित को करती है । प्रीप्स की तत्त वामु बिरहिणियों को तत्त करती है जातक मन्त्रण की कामना से पित पित करते हैं । सविता का बल क्षीण हो जाता है । फल-भार से ममित मुन्बर सङ्कार बन और मुन्बर समते हैं ।

अस्तुहउ बामवलि पईवजु थं बहुर,
 तं मुन्बर बिरहिणिहि अंगु करिउउइइ ॥
 पित आवइहि मन्त्रिअइ मन्त्रण करिउरिहि ।
 सन्निभ निवहु तुम्हअउ सरद तरसिणि हि ॥
 फलहारिण उल्लसित अउसअयइ मुहि ।
 कुंज रस बयसिउउ पडिउर गंवरहि ॥

वर्णों के वर्णन में कवि अधिक जीवन्त है। जब मेघों के समानान्तर उड़ने वाली बक-वंक्षियों का रूप विशेष मोहक लगता है। समूह रूप करते हैं। पावस का उपसंहार करती हुई वह कहती है—

जबमेहमास मान्त्रिय बहूमि सुरभाष रत्नविशि पसरो ।
 वनस्रज धम्म इवोद्गच्छि पिय पावसं कुसहं ॥ १२५ ॥
 राय रज्ज कंठमि किञ्चि न सिधमि
 कह हउ कह पिउ पत्परणि बु न मुस्य सलि ।
 जइ गह जिम्वउ बीउ पावसंमिहि बजिउ
 क्षियउ न किम किरि पुट्ट-उमं बजिहि बजिउ ।

‘जबमेघ मासों से मण्डित गम में इन्द्रधनुष और पृथ्वी ठल को सवन आच्छादित किए हुए इन्द्रियों से रिखाओं का प्रसार आरक्त हो गया है।’

‘प्रिय ! पावस कुसह है। अनुराग से रज-कण्ठा (मैं) अब स्वर्णों से बनी तो कहाँ मैं और कहाँ प्रिय ! मेरे बाग प्रस्तर के बन हुए मे जो सही लज मर नहीं गई यदि पाप-बन्ध से जटित भीम नहीं निकसा तो हृदय ही क्यों नहीं फूट गया मानो यह भी बन्ध का बना हुआ है। इसी प्रकार शरद हैमन्त शिशिर और वसन्त के वर्णन है। वसन्त के सम्प्राप्त्यर्थ प्रमाओं के अंकन के प्रति कवि की दृष्टि विशेष सजब है। ऋतुवर्णन के द्वारा कथा को विकसित करने की चेष्टा भी की गई है।

इस प्रकार ‘सन्धेय रासक’ ‘शीत प्रबन्ध बर्मा’ मुक्तक काव्य है और इसकी मूल अनुपेक्षा शृङ्गार मूलक है। इस कृति में युग के लोक-जीवन-स्वरूप का भी अंकन मिलता है। और ऋतु वर्णन और शरद वर्णन से उस समय के भारत के पश्चिमोत्तर प्रांत का पूरा परिचय मिलता है। रूपवर्णन प्रकृतिवर्णन इत्यादि में कवि पूर्ण परम्परा का ही अनुसरण करता है।

‘सन्धेय रासक’ २२१ छन्दों का काव्य है। सामूहिकता की दृष्टि से इसमें २२ प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। सिधले पृष्ठों में ‘हस्तवाधिसमुच्चय’ और ‘स्वर्णमुच्चय’ का उल्लेख किया गया है। इस कृतियों में ‘रासक’ के लक्षकों की बड़ी संख्या मिलती है। ‘सन्धेय रासक’ में इनके द्वारा निर्धारित ‘रासक’ के सम्पूर्ण

समान उपनमन हैं। २२३ ध्वनों में ८४ ध्वन केवल रासों हैं। इसके अनिश्चित अन्य ध्वनों की संख्या इस प्रकार है—

ध्वन	संख्या
बाहा	४०
बडिहा	२४
पडिहिया	२२
बोहा	१८
बेमिलन	३
कामिनीमोहन	२
भुविह्वल	२
सहस्रह्वल	२
कान्धक	१
कुवह	१
मन्दिनी	१
ममरावली	१
संक्रोड्य	१
रमनिज	१

सम्बन्ध रासक की भाषा

सम्बन्ध रासक परवर्ती अपभ्रंश अपौरव अवहट्ट की वृत्ति है। इसकी भाषा की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख नीचे किया जाता है।

(क) संयुक्त व्यंजनों (closed syllables) में सामान्य स्थिति में व व्यंजि ह में परिवर्तित मिलती है। उदाहरण—सद्यवर > सद्यहर, ससिहर।

उदा. भावर बन संयुक्त ससिहर बयनी (है सद्यवर बनने वह नवर छेप्ट बनो से परिपूर्ण है।)। सद्यवसु निघ > सद्यनिरनिघ सो बासल पुरुष सद्यनिरनिर बयनि। कियउ सद्यु सविमासु कस्य बीहर नयनि। (छि पत्रिक के पास पहुँचकर बीर नयना बिरहिनी क्युपु बाणी से निवास पूर्वक बोली)।

(ख) बनेक सन्दर्भों में ह व्यंजि न में परिवर्तित मिलती है।

उदा० विरहिनि > विरहनि विरहाण मह एउठ मुनहु विमुदठ रसियह रस संजी
मयरो (विरहिणियों के लिए मकरध्वज रसिकों के लिए विमुदठ रस संजीवक है)।

(ग) अकारान्त पुल्लिङ्ग प्रातिपदकों की उ विभक्ति स्वाच् प्रत्यय के साथ संलग्न होने पर कृत हो जाती है—उदा० गेय सुगिय परबेयण निन्नेह् बरह

मसिमिलितु कहि म्वर छह् तह् बरह ।

‘उस स्नेहहीन ने बज्जते हुए मेरी बेचना नहीं सुनी उस लस में एक मासिनी वृत्त कहना’ ।

(८) द्वितीय और तृतीय पर्व की सम्प्रकाचीन भारतीय आर्य भाषा में प्राचीन भाष्यीय आर्य भाषा के स्वर मध्य स्वर व्यञ्जनों का स्रोत होने लगा था फलस्वरूप सम्पर्कित स्वरों (vowels in contact) की प्रवृत्ति की उद्भावना हुई । अन्य प्रक्रियाओं के साथ-साथ व्यावृत्तिक भाष्यीय आर्य भाषा में सम्पर्कित स्वर समीकृत होने लगे थे । यह प्रवृत्ति ‘सन्देश रासक’ की भाषा में मिलती है ।

उदा० स्पर्धकार > मुनआर > मुन्तार ।

मुन्तारह बिमि महहियउ पिय उछिब करेउ (मुन्तार के समान मेरा हृदय सर्वप्रथम प्रिय की उत्कण्ठा उत्पन्न करता है) ।

सहकार > सहकार > साहार ।

उह पल्लव मुल्लति समुट्ठिय करुम कृमि

हउ किम निस्साहार पहिय साहार बनि ।

‘वे (कीर) पल्लव के साथ झूलते हैं तो करुम ध्वनि उठती है । पक्षि । सहकार बनने मुझे निस्साधार कर दिया ।

(९) सन्देश रासक की भाषा में ‘य’ ध्वनि (y glide) की प्रधानता मिलती है—

उदा० मय > मय > मय ।

बह मयमहु मउ मरए कमक मउ मरए कमल बलम्य हलमय बुपिययो ।

इसी प्रकार ‘य’ ध्वनि के भी व्यापक उदाहरण मिलते हैं ।

उदा० स्तति > स्तति > स्तति ।

पुनर लोमन गह दुबलव ।

केवकी > केवइ > केवइ ।

केवइ वह कंदुइय अनुरता समन ।

(१) द्वित व्यञ्जन के सरलीकरण (Simplification of double Consonants) के उदाहरण दो क्कों में मिलते हैं—

(१) पूर्व की छबु स्वरध्वनि को बिना दीर्घ किए हुए—

कथिकार > कथिसार > कथमार

बुड़ा + बस > बुडिस्तव

(२) पूर्व की छबु स्वरध्वनि को दीर्घ करके —

ऊना० उच्छ्वास > ऊनास

मिस्तरति > नीसरत

(७) कर्तृवाचक संज्ञा रचना के लिए—यह प्रत्यय का प्रयोग 'सन्देश रासक' की भाषा की एक प्रमुख विशेषता है—उदा० बीकनर (२२) संबीकनर (२२) उच्छाकनर (१७) । हिन्दी के कर्तृवाचक प्रत्यय-एण (कूटेरा बिनेरा) का विकास इसी प्रत्यय से हुआ है ।

(८) सम्बन्ध कारक के लिए—ह का सविमलिक प्रयोग किया गया है । पचसंवह, (७) पियंवह ।

(९) सर्वनाम प्रथम पु० कर्ता एवबचन हउ हउ, मध्यम पुंस्य तुह तू

कर्म ,, मह

करण मह तह

अधिकरण मह पह

सम्बन्ध मह

बहुवचन —करण अन्हहि, तुम्हेंहि, तुमहि

सम्बन्ध = अन्ह

(१०) संख्या वाचक —छह, एण (१८) के दिल्ली (८१) बितभय (विपुला) हु थिय (११२ लोगों) छि (१८) बरजनी (११६) ।

(११) क्रिया—

(क) आशार्च में क (१६) छि, हहि का प्रयोग मिलता है । (मध्यम पु० एवबचन) अमु = वहमु (८२) कहि वहह (१८) अन्ध पुरण एवबचन

के लिए—अत का प्रयोग मिलता है—उदा० होत, (२) सिग्मन्त वयत
इत्यादि ।

मध्यम० बहु० के लिए—अहु का प्रयोग मिलता है—उदा० गुम्बु निमुणहु ।

(क) वर्तमान कासिक कृत के लिए—अत का प्रयोग निम्नलिखित रूप से
मिलता है—उदा० उम्मिल्लतो (१००) मोस्य (२१) ।

(ग) इन्द्रार्ध के लिए—इअत (उअत), इअणु (पदिअणु, कदिअणु)
आदि रूप मिलते हैं ।

(घ) मविण के लिए—उ और-ह का मिलने है ।

इणु (प्रथम) इसि इहसि इहइ, इत्यादि ।

(१२) कर्मवाच्य के लिए निम्नलिखित तीन रूप प्रयुक्त मिलते हैं—

(क) इप (स) इअ, (ग) ईप । इनके अवतिरिक्त इ रूप भी मिलता है—
मिअइ रिअइ मिअइ, थअइ ।

(१३) प्रेरणार्थ और नामवाच्य—प्रेरणार्थ के लिए 'भाब' प्रत्यय का प्रयोग
मिलता है । 'व्याप्यान' से 'क्यामियइ', 'त्रिअक' से 'त्रिअकियि' (१९८)
'वचिय' से 'वचियअइ' आदि नाम वाच्य हैं । य 'सन्नेस रासक' में व्यापक रूप में
प्रयुक्त है ।

(१४) परस्मैय्य लेशवाक्यीः—प्राचीन भारतीय भाष्य भाषा के कठिण
संयोगात्मक रूपों के अवस्थाप 'सन्नेस रासक' की भाषा में निम्ने है । परन्तु
नवीन कारक चिह्नों के रूप में निम्नलिखित शब्द विधाय रूप से महत्वपूर्ण हैं—

(क) उत्तिअहि (अधिकरण)ः—विअहि विअरअण-उत्तिअहि अ-पअमियइ (४३) ।

(ख) हुँउठ टिअठ रेसि—उदा० हिअव टिअठ (हृअय से) कुअविअ रसि ।

(ग) सवि (> सम्) उदा कइय सवि ।

(घ) तपि इस परसर्ग का प्रयोग सम्बन्ध कारक के अर्थ में होता है, उदा०
महणपि, महणपि, इत्यादि ।

बीसठदेव रासो—'बीसठदेवरासो' के रचयिता नरपति गालु हैं । प्रस्तुत
इति की रचना निचि के विषय में अत्यन्त न स्वयं लिखा है—

बाण से बहोतछाही मंजारी ।

सैठ बनी मबमा बुधियारि ॥

मास रसाइन आरम्भ ।
 सारवा ठूठी बड़ कुमारि ॥
 कासमीरा मुस मंडनी ।
 रास प्रपासों बीसल दे राह ॥

एक अन्य प्रतिक्रिया में इसकी रचना तिथि प्रस्तुत रूप में प्रस्तावित है—

संवत् सहस्र सतिहतरई आनि ।
 मास कबीसरे कबी अमृत आनि ॥
 गुल मुम्बज बरहाण न ।
 मुकुल पल पंचमी आवन मास ॥
 रोहिणी कलस चौहामण्ड ।
 सो दिन तिथि ओइसी ओइह रास ॥

एक अन्य प्रति में इस कृति की रचना तिथि का निर्देशन इस रूप में मिलता है—

संवत् तेर सतोत्तरह आनि
 सुक पञ्चमी बह भावन मास
 हस्त कलस रविवार सु ।

एक अन्य प्रति में रचना तिथि का कल्लेस इस रूप में हुआ है—

संवत् सहस्र तिहतरह आनि
 मास कबीसरि सरसिय आनि ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'बाण्डे चौ बहोतराहा' का अर्थ संवत् १ : सेते है ।

१—बाण्डे चौ बहोतरा का स्पष्ट अर्थ—१२१२ है । 'बहोतर' 'बावसोत' का अपांतर है । अथ 'बाण्डे चौ बहोतरा' का अर्थ 'बावसोत बाण' से है । गणना करने पर विक्रम संवत् १२१२ में स्पष्ट बरी नवमी को बुधवार पड़ता है । कवि ने रासों में सर्वत्र वर्तमान काल का ही प्रयोग किया है जिससे यह बीसल देव का समकालीन जान पड़ता है—
 द्विती० सा० इ० पृ० ३२ ३२ ।

डॉ० ठारक नाथ अग्रवाल ने संवत् १०६३ की त्रिपि की स्वीकार किया है। अमरचन्द नाहुटा ने विभिन्न प्राप्त प्रतियों के अनुसार प्रस्तुत त्रिपियों का निर्धारण किया है। सम्बत् १०७३ १०७३ १२१० १३०७, १३७७। मिथ बन्धुओं ने सं० १२२० साक्षा सीताराम ने १२७२ सम्प ओदन बर्मा ने १२१२ योरी चंकर हीराचन्द ओझा ने इसे संवत् १०३० १०३६ क मम्म की रचना माना है। इन दृष्टियों से 'बीसलदेव रासो' की रचना बीसलदेव क १३६ वय परचात् हुई।

योरीचंकर हीराचन्द ओझा इसे चौदहवीं शती चित्रम की रचना मानते हैं।^१ डॉ० राम कुमार वर्मा इसे सं० १०७३ की रचना मानते हैं।

मिथ-मिथ प्रतियों का आधार ग्रहण करते हुए डॉ माठा प्रसाद गुप्त ने 'बीसलदेव रासो' के रचनाकाल से सम्बन्धित निम्नलिखित त्रिपियों की प्रस्तावना की है।

(१) पं० सं० १०७७।

(२) म० सं० १०७९।

(३) म० सं० १३७७।

(४) " सं० १३०६।

{ 'तेर सगोत्तर' स य वा मिथ अथ
सिए जा सज्जे है।

(५) " सं० १२७७।

(६) " सं० १०१०।

{ बारह सो बहोत्तराहा' स य बाना

अर्थ सिए जा सज्जे है। इस ठाविका का प्रस्तुत करत हुए डॉ० गुप्त ने मान कहा है 'श्रीनादि और कार्तिकादि—दो प्रकार के वर्गों के अनुसार इन छ' का बारह त्रिपियाँ बन जाती हैं और यदि दस और वर्तमान संकल्प लिए जायें तो उनमें से कुछ बीसलदेव त्रिपियाँ होती हैं।^२ बन्धुन 'न विभिन्न त्रिपियों के आधार पर 'बीसलदेव रासो' की रचना त्रिपि का नियम सम्भव नहीं समझा है। बहुत सम्भव है इस काव्य का विकास लोक-जीवन में मौखिक परम्परा से

१—राजपूतों का इतिहास भूमिका पृ० १६।

—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० १४७।

२—बीसलदेव रास द्वितीय संस्करण पृ० ३६ ३७।

हुवा हो। और मूल रचना के पर्वोत्त समय बाद इसे पुनः सिम्बिद्ध करने के अनेक प्रयत्न हुए हो। डॉ० माता प्रसाद यत्न में इस कृति के विकसतशील स्वभाव की कल्पना की है। 'बीसछदेव रास' के सम्पादन में उन्होंने नेबल एक सौ अठ्ठाईस छन्दों का आचार ग्रहण किया है। उनकी यह धारणा है कि 'बीसछदेव रास' का मूल रूप इन्हीं छन्दों में रहा होगा। इस कृति के स्वस्थ विकास की चार अवस्थाओं की भी कल्पना उन्होंने की है। प्रत्येक अवस्था के लिए पचास वर्षों की अवधि के अन्तर की प्रस्तावना की गई है। अपने निर्धारित पाठ-परम्परा के अनुसार डॉ० गुप्त ने प्रथम प्रतिका काल सं० १३९६-१४३३ के मध्य माना है। तथा संवत् १४०० को 'बीसछदेव रास' का रचनाकाल स्वीकार किया है। इस सम्बन्ध में अपनी धारणा का अधिक व्यापक रूप में स्पष्टीकरण करते हुए डॉ० गुप्त ने लिखा है 'एक अन्य प्रकार से विचार करने पर ग्रन्थ की रचना १४ बीसताब्दी के उत्तरार्ध में होने का अनुमान होता है। इसके पाठ की एक प्राचीनतम विद्यमान प्रति सं० १९९६ (सन् १३७६) की है और एक दूसरी शाखा की सं० १९९६ (सन् १६१२ ई.) की। पाठ-परम्परा पर विचार करने पर रिलाई पकटा है कि सं० १९३३ (सन् १३७६) की प्रति तक मूल से पाठ की कम से कम चार स्थितियाँ पड़ी होगी और इसी प्रकार सं० १९९६ (सन् १६१० ई.) की प्रति तक मूल रचना से पाठ तक छ स्थितियाँ कम से कम पड़ी होगी। यदि प्रत्येक स्थिति के लिए १० वर्षों का समय रक्खा जाय तो मेरे विचार से अधिक नहीं है—तो एक शाखा के अनुसार मूल पाठ का समय सं० १४३३ (सन् १३७६ ई०) तथा दूसरी शाखा के अनुसार सं० १३९६ (सन् १३१२ ई०) के लगभग टकरता है। यह तो प्राप्त प्रतिओं के आचार पर हुआ। अर्थात् नहीं कि और प्रतिवाँ प्राप्त होने पर बीच में एकाग्र स्थितियाँ और भी निकल आएँ। ऐसी दशा में दोनों तिथियों में से सं० १३९६ (सन् १३१२ ई०) के लगभग की तिथि अधिक मान्य प्रतीत होती है।'

श्री मोतीलाल मेनारिया ने 'बीसखरेब रासो' के माया-स्वरूप का आचार प्रवृत्त करते हुए कहा है कि यह कृति सोखहूँ की दासी की है।^२ श्री अवरधर माहटा ने भी इसी विश्वास का समर्थन किया है।^३ मेनारियाजी ने यह भी कहा है कि 'बीसखरेब रासो' का रचयिता मुजराठ का एक कवि है जिसने सं० १५६५ वि० (सन् १४८८ ई०) तथा सन् १५०३ ई० में दो अन्य ग्रन्थों की रचना की है। मेनारिया जी ने मुजराठी कवि नरपति की कतिपय पंक्तियों को प्रमाण-स्वरूप उद्धृत भी किया है।^४

माहटा और मेनारिया का निष्कर्ष 'बीसखरेब रासो' के नागरी प्रचारिणी बोले संस्करण पर आधारित है। यह संस्करण निम्नसंजीव नहीं है। इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। डॉ० माताप्रसाद^५ गुप्त ने 'बीसखरेब रास' का सम्पादन किया है। डॉ० तारकनाथ^६ अग्रवाल ने भी इस ग्रन्थ का सम्पादन किया है। ये सम्पादन अधिक वैज्ञानिक हैं। इनमें माया का जो स्वरूप प्रस्तावित है, उसके आधार पर हम यह निर्णय ले सकते हैं कि यह कृति सोखहूँ की दासी में रचनी गई है।

'बीसखरेब रास' के रचयिता नरपति नासू और मुजराठ के नरपति क्या एक ही व्यक्ति हैं यह प्रश्न विचारणीय है। इस सम्बन्ध में निर्णय सरलता से नहीं दिया जा सकता। डॉ० गुप्त ने वस्तु स्थिति को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। उनका निष्कर्ष इस प्रकार है—

(क) मुजराठ के कवि ने अपने लिए 'नासू' का प्रयोग नहीं किया है। 'बीसखरेब रास' के कवि ने अपने को 'नरपति नासू' कहा है।

(ख) जो सात पंक्तियाँ दुबना के लिए दोनो कवियों से ली गई हैं उनमें से चार तो 'बीसखरेब रास' के लिखित रूप से प्रसिद्ध छंदों के हैं। दोप तीनों में

२—राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० ८७-८८।

३—राजस्थानी जगवरी १९४०।

४—राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० ८८-८९।

५—बीसखरेब रास हिन्दी परिपत्र निम्नविद्यालय प्रकाश।

६—बीसखरेब रासो हिन्दी प्रचारक पुरतवाक्य—बाराभासी।

जो साम्य है वह साधारण है उस प्रकार और उतना साम्य देखा जाय हो मध्ययुग के किन्हीं भी दो कवियों मिल सकता है ।

डॉ० गुप्त का द्वितीय निष्कर्ष जबकि वैज्ञानिक प्रमाणों की अपेक्षा रखता है । मुखरात के भरपति बौन धर्मावलम्बी थे । इनकी जिन रचनाओं का उल्लेख किया गया है वे बौन धर्म से सम्बन्धित हैं । 'बीसम्बेरासो' का कवि बौन मतावलम्बी नहीं है और प्रस्तुत दृष्टि भू गार मूर्ख रचना है । इन सबितों से वस्तु स्पष्टि का स्पष्टीकरण हो सकता है ।

कवि कथा के अन्त में कहता है —

जिउं राजा रानी सु मित्या ।

तिम एव संसार मिलिब्यो सहुकोइ ॥

'सम्बेरासो' के कवि ने भी कथा के अन्त में इसी प्रकार की भावना प्रकट की है—

जेम अविस्तिउ कज्जु तसु मियु लज्जि महुं तु ।

तैम पवत सुसंताइ जयइ जनाइ जगंतु ॥ २२३ ॥

बीसम्बेरासो का काव्य-सौन्दर्य

'बीसम्बेरासो' रासक-काव्य परम्परा की प्रतिनिधि रचना है । विरहाङ्क तथा स्वयंभू की रासक-विषयक जिन परिभाषाओं का उल्लेख किया जा चुका है उनके अनुसार 'बीसम्बेरासो' का मूलाङ्कन सम्भव नहीं सम्यता है । परन्तु

१—हिन्दी साहित्य द्वितीय खण्ड पृ० १०२

२—राजस्थानी साहित्य के इतिहास की रूप रेखा (मोटीलाल मेनारिया १९३३)

में कैलाश ने लिखा है हिन्दी भाषा के बाबि स्वल्प और उसकी अविकसित अवस्था का बहुत कुछ आभास हमें इस ग्रन्थ द्वारा मिलता है । पुनः नाहुटा ने 'बीसम्बेरासो' की इस्तिकसित प्रतियों की पूर्वक लेख (राजस्थानी जनदरी १९४०) में ग्रन्थ की औलोमिक ऐतिहासिक और भाषा-तत्त्वों का विश्लेषण करते ग्रन्थ की प्रामाणिकता का सन्दन किया है । स्वर्गीय गोरीशंकर हीराचन्द ओझा ने तारी प्रचारिणी पत्रिका-वर्ष ४० ५४ सं० १९९९ २००६ में 'बीसम्बेरासो' की व्यापक आलोचना की है । इसके नाहुटा की की संकाओं का समाधान होता है । विशेष अध्ययन के लिए इन सबनों को देखे ।

‘रासक काव्य’ की प्रचाल कृतियाँ इस कृति में उपलब्ध हो जाती हैं। इस कृति में छन्दों की विविधता नहीं है। इसमें केवल एक ही प्रकार का छन्द प्रयुक्त है। डॉ० माता प्रसाद गुप्त इसे अस्य रूपक निबद्ध परम्परा की कृति मानते हैं। डॉ० गुप्त के वर्गीकरण के सिद्धान्त के प्रति विचार प्रकट किया जा चुका है। परन्तु यदि उनके वर्गीकरण की स्पष्टता के प्रति आग्रह ही प्रकट किया जाय तो इसे ‘अस्यरूपक निबद्ध परम्परा’ की अपेक्षा ‘एक रूपक निबद्ध रासक-काव्य-कृति’ की संज्ञा दी जानी चाहिए। वास्तविकता यह है कि ‘बीससरेख रासक’ का विकास ‘मेघ रासक काव्य’ के रूप में हुआ है और अपनी रचना के अनेक वर्षों पश्चात् यह कृति लिखित हुई है।

‘बीससरेख रासो’ एक कोमलकामी ‘रासक काव्य’ है। अपने मूलरूप में यह एक प्रमगीत है जो विप्रलम्भ की संवेदना पर विकसित है। इस कृति में बीससरेख तथा राजमल्ली बाल्य-सूत्र की कथा के आधार सिद्धा-रूप में ग्रहण किया गया है। बीससरेख का राजमल्ली से कटकर उड़ीसा जामा और बारह वर्षों के पश्चात् लौट जाना—यही इसकी कथा है। परन्तु इसमें कथा का विशेष महत्त्व नहीं है। विरहिणी भाविका का प्रवास में गए पति के पास किसी पवित्र या अन्य व्यक्ति द्वारा सदैव मेघने की रुढ़ि का प्रयोग भारतीय साहित्य की एक प्रमुख विधा है। काश्मिर के ‘मिथुन’ में मेघ का प्रयोग दूत के रूप में हुआ है। ‘सदैव रासक’ में इस रुढ़ि का प्रयोग किया गया है। अतः बीससरेख रासो इसी प्रकार की कृति है।

‘बीससरेख रासो’ का कवि भाष्यीय काव्य-रुढ़ि का अनुसरण करते हुए आरम्भ में एवैस बन्दना करता है—

मठरिका नंदन त्रिभुवन धार ।

गाव मेरह बारह बरह मंदार ॥

एक दंतव मुनि मन्त्रहस्त ।

इस बन्दना के पश्चात् कवि कृति की मुख्य संविज्ञा की ओर संकेत करता है—

हृष गमनि मूयञ्जोयणी मारि ।

सीस समारद रिग मयद ॥

×

×

×

×

काँद सिरजी वल्लामांरी मारि ।

बाद दिहावठ रे मूय्ठा ॥

बीसल्लेव रास' का आरम्भिक अंश केवल उपक्रम है । कृति की मूल संविदा द्वितीय प्रक्रम से आरम्भ होती है । यह अनुकेतना पुरुष और मारी की सहज मनोवैज्ञानिक भाव अनुप्रेषणाओं पर अवलम्बित है । जब परिणीता के सम्मुख प्रलयव्यञ्जना की अपेक्षा वह अपने बीमब का अभिमान प्रकट करता है । यह सामन्तवादी मनोवृत्ति की विशेषता है । बीमब से राजमती को प्रभावित करने के प्रयत्न का वर्णन प्रस्तुत पंक्तियों में किया गया है—

गरब करि बोझियद संझमरि बास ।

मो सारियठ महि अबर मूजास ॥

म्हा बरि संझमरि उग्रह

बिहू रिचई मांजा रे जेसस मर ।

लाख तुरीया पापर पइइ,

धोरी राजकठ बरसजउ मइ अजमेरि ।

राजमती प्रत्युत्तर देती है 'हे सौमरबास कर्म न करो तुम्हारे समान जन्म मुपास भी हैं एक [तो] जड़ीसा का स्वामी है । उसके घर हीरे की जाने हैं । जड़ीसा के राजा के बीमब का उल्लेख सुनते ही बीसल्लेव को आश्चर्य लगता है । उसके पुरुष मन में सँका जागृत होती है । वह कहता है, 'हे धोरी तैरा जन्म जेससमेर में हुआ विवाह अजमेर में हुआ । तू बापू बरस की धोरी है और कहाँ जड़ीसा और जगलापपुरी है । मैं बल छोड़ता हूँ और पानी नमता हूँ । तू अपने जन्म की बातें कह । इस सम्बन्ध में कवि राजमती का उपवर्णन करता है और लोक उक्तों का समावेश करता है । बीसल्लेव के प्रत्युत्तर में राजमती अपने पूर्व जन्म की कथा कहती है । इस उप-वर्णन में कवि पारम्पर्य सूचित उपमाओं का प्रयोग करता है—

जनम मांगित स्वामी मारु कह देखि ।
 राज कुंवरि अरु रूप असेति ।
 रूप निरूपम मेदिनी ।
 पहिराव ओबड़ी मीमाह रे लंकि ।
 माछी गोरी बग पावसी ।
 अहर प्रबालीय नर बाजिम बंत ।

राजमती मारी की नैसर्गिक अनुभूतियों से पूरित संस्पृष्ट हो जाती है । वह अपने प्रिय की अहमम्भता के सम्मुख अपने को मत्त कर लेती है, क्योंकि बाम्पत्य जीवन की गरिमा के प्रति उसमें मोह है । वह यह अनुभव करती है कि अपने प्रत्युत्तर से उसने अपने पति को आघात पहुँचाया है । बीससत्त्व प्रवास की प्रस्तावना करता है । राजमती उसे समझाती है । वह अपने पीछे स हीरो के लाने का प्रलोभन देती है । बीससत्त्व का आहत अहं इससे खुद नहीं होता । वह प्रवास के लिए तत्पर है । राजमती की मारी-बेतना आकृष्टता में परिवर्तित हो जाती है । विप्रसम्भ की मायका से उद्भूत राजमती का स्वरूप विधान कवि अनुभूतियों की तीव्रता द्वारा व्यञ्जित करता है ।

वात्सल्य उज्ज्याणत भग जान न देख ।
 मो सह मारि कह सरिसीय केह ।
 अंचल ग्रहि पच हम कहह ।
 दुद दुप छाछह हो घामीय घौम ।
 जीवन मुरखीय मारिस्वह ।
 दोष कितव जह साधन बाध ।

प्रवासी जला परणु स्त्री उस जाने नहीं देती । वह कहती है, 'या तो मुझ मार बाध या तो घायल जल । उसका उत्तरीय पकड़ कर राजमती इस प्रकार कह रही है, 'हे स्वामी सम्भा समझ मुझ से कुछ पीड़ा पहुँचाते हैं । एक तो जीवन जो मुझ मरोड़ कर मारता है । दूसरा संतान हीन होना ।

हम स्पष्ट देखते हैं कि इस सन्दर्भ में कवि ने बाम्पत्य की सहज अपिकार अन्य अनुप्रेषणा के द्वारा प्रणयी-मुपत की गृहकारण के अनुभूतियों

का चित्रण किया है। प्रथम की कुहेसिकाओं में वियोग की भावी सम्भावना का अंकन काव्य-सौन्दर्य और भाव-सौन्दर्य की उद्भासना करता है। अति संयत शब्दावली में कवि ने संस्पर्श के प्रभावों का भी अंकन किया है। राजमती संस्पर्श से बीससरेख उन्मूलित हो उठता है। यादना तथा तर्क के मध्य उसकी स्थिति द्वन्द्वात्मक हो उठती है।

छोड़ि गइ गोरी तू रे मुझे जाण ।
बरस बिन रहै तव बारही जांण
कठिण पयोहर बिन किया ।
हसि करि गोरी कहिमु बिचार ।
एक बिब मुर नर तुमाछइ धार ।

‘गोरी तू मुझे छोड़ मुझे जाने दे। यदि मैं बरस बिन रहूँ तो मेरी छाप तुमने अपने कठिन पयोहरों पर अग्नि रख दिया है। गोरी तू हँस कर अपने बिचार कह। यह दिव्य अग्नि तुने बढ़ाकर रक्खा है। इस अग्नि में मुर-नर समी धार हो चुके हैं।’

राजमती सह-वर्णिनी है। वह माजिनी भी है। उसका मान अधिकार अत्य अधिकार पूर्ण है बीससरेख उसकी अवमानना करता है। राजमती का अधिमान आहत होता है। वह ममाहृत होकर कहती है—

छाबी हो स्वामी महे बारी हो आस ।
मदसा हो बारब सिक्कर बेसास
बाबी करि अजि नजि दिणी
महाकी सगा सुबीजा माई छोपी बी भाम ।
बीबत बी मूया बबइ
जातु हो बनी कुम्हारका काम ।

इस प्रकार की वर्णन प्रणाली में कवि ने लोक प्रचलित मुहावरों और ओकों छियों का प्रयोग किया है। इन प्रयोगों से बचन अस्मिता एवं भावसिक प्रति क्रिया का उद्भाटन कवि सफ़लतापूर्वक कर बैठा है। राजमती अपनी ही भाव नाओं का मूल्यांकन कर पाती है। बीससरेख के आहत मन को वह समझने का

प्रयास नहीं करती। बीसब्बेन के आहत मन का परिचय उसके ही कथन से स्पष्ट हो जाता है।

कबुआ बोस न बोसि हे नारि
मइ तुम्है मेल्हीय है बितह बिसारि,
जीम नमी महु मीकलइ
दब का दाबा यो कूस्त लेइ
जीम का दाबा न पासहइ।

अग्नि-वत्स (शृंग) तो पुनः पल्लवित होता है परन्तु अचन-वत्स (व्यक्ति) पल्लवित नहीं होता।

बीसब्बेन बसा जाता है। किमोबिनि राजमती को सात सहेलीयों समझा रही है। परन्तु कमकी बानी में सहानुभूति की अपेक्षा व्यंग्य ही अधिक प्रचलित है। वे कहती हैं 'यदि नारी में गुण हों तो पुरुष विदेश क्यों जाय ? राजमती इस व्यंग्य को समझती है। वह अत्यन्त संममिता शब्दों में उत्तर देती है। 'बरते हुए मृग को मोहित कर लीजिए—पर स्वामी को अश्वर में कैसे बाँधें ? सतियों इस संकेत को ग्रहण नहीं कर पाती हैं। अतः उसे अति स्पष्ट शब्दों में कहना पड़ता है—

सात सहेलीय मुझउ म्हारीय बात
कंचूउ ओसि बिबाहिमा गाभी,
बा बीठा मुनिबर बलइ
महकउ मूरल राबण बाणइ सार
भीमा बरित महस रूप किया
राठ नहीं लयी भई पीडार।

वह अति स्पष्ट शब्दों में अपने को व्यक्त कर देती है। सतियों ने उसका शास्त्रवर्धन रूप काव्य और नारी मनोविज्ञान पर व्यंग्य किया था, अतः इस प्रकार का कथन उसके लिए अनिवार्य हो गया था।

इसके परभाव कवि प्रकृति वर्णन की योजना करता है। 'बारह मासा वर्णन प्रजापति के अत्यन्त प्रकृति-वर्णन उत्कीर्ण-रूप में किया गया है। वह पर

मरा अपभ्रंश में भिद्यती है। इसका उत्कृष्ट पीछे हो चुका है। बीससवेक रास में प्रकृति वर्णन कार्तिक भास से आरम्भ होता है और आस्तिक में समाप्त हो जाता है। वर्णन की बिधा में प्रकृति का संक्षिप्त औरण रूप और उसके सौन्दर्य का गत्यात्मक रूप सम्मुख नहीं आ सका है। प्रकृति का सम्पूर्ण कियात्मक आशेष बिरहिणी को तीव्रता के साथ संभावित नहीं कर पाता। इस कृति में परिचयना या इतिवृत्ति की प्रणाली ही विशेष रूप से ग्रहण की गई है। प्रकृति की भूमिका पर नाना ऋतुओं की उद्भाषना 'सन्देश रासक' में भिद्यती है। इस ओर हम संकेत कर चुके हैं। परन्तु 'बीसस देव रासो' में इस सम्भावना का विकास नहीं हो सका है। प्रकृति के उन्मेष की अपेक्षा कवि नायिका की संवेदना पर ही अधिक केन्द्रित रहता है। परन्तु आरम्भिक चित्रों में वर्णन की मैसर्गिकता विशेष आकर्षण पूर्ण है। इनमें चित्रात्मकता का आग्रह भी है नायिका की विकसता की व्यञ्जना को चेष्टा भी है। उदा०—

फायुन फहरवा कंयिया रूप ।
 बिजइ कमकियठ निसि बिल न भूप ।
 बिल मयां ऋतु पाछटी ।
 म्हाकठ मुरप राउ बेपइ जाइ ।
 बीबठ ठठ बीबन सही ।
 फहरइ चिहुं बिसि बाबइ छइ बाइ ।

इस संदर्भ में जावसी के 'पचावठ' की प्रस्तुत पंक्तियाँ तुलनीय हैं—

फायुन पवन झकोरा बहा ।
 बीयुन सोठ जाइ महि सहा ॥
 तन बस मिशर पात भा मोरा ।
 तेहि पर बिरह बेइ मकमोरा ॥
 छहर भरहि भरहि कन बाबा ।
 मइ मोलत फूल फरि साबा ॥
 फायु करहि सब बाँचरि बोरी ।
 मोहि तन जाइ बीन्हा बस होरी ॥

आमसी के वर्गों की संक्षिप्तता तीव्रता और व्यापारों की संप्राप्तता उपलब्धता में लगी है।

प्रकृति की परिवर्तित भूमि में राजमती के भावों की परिवर्तित रेखाओं का बहाना कवि आसिक रूप में ही कर पाता है। राजमती अपनी सम्बन्धना पर केन्द्रित और निप्रसन्न की सापेक्षता में जीवित है। उसकी पीड़ा उसकी असमर्थता में अधिक काव्यमय हो जाती है। कवि उसकी अनुभूतियों के वर्णन का विधान रचनात्मक संस्पर्शों से ही करता है। इस निरूपण में शोक केतना के प्रति कवि अधिक भावपूर्ण है। राजमती कहती है —

अस्वीय जनम काई दीवड़ महेस ।

अवर जनम पारख पया रे नरेस ।

रानि न सिरजीय रोम्झी ।

पयह न सिरजीय बठलीय गाइ ।

बनपड़ काली कोइली

हुं बइसती भंवा नइ कपा की बास ।

मपती दाप बीबोरझी ।

इणि रुप मूरह अबसाबी बाल ।

इसके अन्तर्गत राजमती पण्डित से प्रिय के पास सन्देश भेजती है। यह संदर्भ दूत काव्य की परम्परा में आता है। अतः 'बीसखदेव रासो' 'सन्देशकाव्य' भी है। आन्तरिक सापेक्षता की दृष्टि से 'बीसखदेव रासो' 'मेष दूत' तथा 'संदेश रासक' की परम्परा की कृति है। परन्तु 'बीसखदेव रासो' की प्रस्तावना 'मेषदूत' के समान व्यापक परिपार्श्व पर नहीं है। 'सन्देश रासक' और 'बीसखदेव रासो' इन दोनों में सन्देश नायिक भेजती है। परन्तु कथाकाल की दृष्टि से 'मेषदूत' 'सन्देश रासक' और 'बीसखदेव रासो' में एक रूपता दिखती है। 'बीसखदेव रासो' के बिरह-वर्णन से सम्बन्धित छन्द कथा सूत्र से स्वतंत्र होकर भी अपनी साधारण संक्षिप्तता में पूर्ण लगने है। समस्त अनुभवों के व्यतीत हो जाने पर भी प्रिय अब नहीं आया तो राजमती को सन्देश-बाहक का आधार ग्रहण करना पड़ता है। वह सन्देश के माध्यम से कहती है 'मेरा मधुवीरन हीन हो

रहा है। परन्तु मैंने जीवन पर मर्यादा का बन्धन लगा लिया है। इस बन्धन को अखण्ड करने में राजन की पराजय हुई थी। गारी के कारण राम ने सैतु बन्धन तोड़ा था। इस काल में राजमती अपनी व्याधा ही प्रस्तुत नहीं करती अफ़िद्वीसस्यदेव के विवेक की भी बाधित करती है। राजमती प्रिय को पन भिखती है। सखियों पन पाने को उत्सुक हैं। वह पन में उन सन्दर्भों की खोज करती है जिनसे प्रिय की अनुमूर्तिमें उद्गीत हों। सन्देश प्रदान करते समय राजमती उत्कण्ठित है और साथ ही साथ संकापुर्ण भी है। और वह सन्देश बाह्य को सन्देश भी करती है। उससे किन्तु सिष्टाचार एवं आग्रह प्रदर्शन करने का उपदेश लेती है। सन्देशबाह्य प्रिय का अभिज्ञान (पहिचान) प्रकटा है। अभिज्ञान लेते हुए करती है—

श्रुद्धा वेदर नइ उषहारि।

एह गोरड प्रिय प्रीय सामसर।

सीस तिलक प्रियु ननइ रे विह्वल।

उरि चौकड कडि पाठसर।

अंशर रे जाइउ कडि नमसाइ।

साया माहि पिछाविजइ।

पंथिया प्रीय छइ एह सहिनाय।

सन्देश पाकर बीसस्यदेव बर झूटा है। राजमती श्रुति करती है। वह अर्जुन के समान श्रुति करती। उसने धृषाप कहा किया है। नव पयो बरों को राज के रूप में कर किया है। नाम्य के उपसंहार में संयोग के विषयों के उन्मासित वेमव के वर्णन होते हैं। राजमती का सम्पूर्ण श्रुति और उसका उपासम्भ बीसस्यदेव को आकर्षण और उत्साह प्रदान करता है। संयोग-वमव की सादरता इस अंश का विशेष निमोजन है।

राजमती के श्रुति और संयोग के अनुभवों की रक्षा से इस कृति का उपसंहार होता है। वर्णन विमल का वेमव इस अंश में विशेष उल्लेख के रूप में प्रस्तुत है—

झूठा बज उछपट झूठा ठाव ।
 ठमकि ठमकि बपि मेरुहीय पाइ ।
 मखिर चासिउ प्रीय कह ।
 सुकठ भवन मरीम कबोळ ।
 संजत करि सेजइ बडी ।
 ठठइ मुगुमी सरिछी करइ किछोळ ।

'झूठा का कुपट्टा है और झूठा का ही ठाव है । ठमक-ठमक कर वह पैर रखती है । वह प्रियतम के मन्दिर को जा रही है । उसने श्वेत चल्म कटोरे में भर किया है । सजा कर के वह शीश्या पर आ गई—और वहाँ वह सवसुषवती कस्तोस करने लगी ।

बीसलदेव रासो की ऐतिहासिकता

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'बीसलदेव रासो' को बीसलदेव की सामयिक रचना कहा है । गौरीधरहर द्वीराचन्द्र बोम्हा इसे बीसलदेव की समकालीन रचना नहीं मानते । बोम्हा जी इसे हमीर के समय की रचना मानते हैं । 'बीसलदेव रासो' में प्रस्तुत ऐतिहासिक नाम जाये हैं—

- (क) बीसलदेव ।
- (ख) राजमती ।
- (ग) भोजराजपरमार ।

बीसलदेव को विग्रहराज का पर्वपराधी माना गया है । बीसलदेव तृतीय का समय वि० सं० ११५० माना गया है । विग्रह राज क्षत्रुर्ष का समय सं० १२१०-१२२० माना गया है । विग्रहराज तृतीय की रानी का नाम राजदेवी था । अतः यह अनुमान समायो जाता है कि नरपतिनासह ने राजदेवी को ही राजमती के रूप में स्वीकार किया है । भोजपरमार का समय वि० सं० १११२ (सं० १०५५) 'बीसलदेव रासो' का सम्बन्ध विग्रह राज तृतीय से कमता है ।^१ यदि इस निर्णय को स्वीकार कर लिया जाय तो कुछ अन्य समस्याय उत्पन्न होती हैं ।

१—गौरीधरहरद्वीराचन्द्र बोम्हा—नागरीप्रचारिणी पत्रिका अथ ४४ पृ० १९५

‘बीसलदेव रासो’ में आए हुए ऐतिहासिक स्वान विग्रहराज तृतीय के परचात् अस्तित्व में आए। उदा०—

कइ अबमेर बसह रे मुनास ।

बहुभाषी कृति सिक्क सिनवार ॥

अबमेर का निर्माण सन् ११०८ में अबयरान ने किया था। जेसलमेर ११५५ सन् ई० में अस्तित्व में आया। ‘बीसलदेवरासो’ के अनुसार मड़ोवर सोरठ टोंक जामि बीसलदेव को शत्रु के रूप में मिले थे। परन्तु वे स्वातंत्र्य के अधिकार में नहीं थे। बीसलदेव की उड़ीसायात्रा भी ऐतिहासिक नहीं है। इतिहास के आधार पर इस कृति की प्रामाणिकता का निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है।

‘बीसलदेव रासो’ एक काव्यग्रन्थ है इतिहासग्रन्थ नहीं। इसकी सम्बन्धना ऐतिहासिक नहीं है। कवि ने प्रथमसम्बन्धना को ही अपना मुख्य उद्देश्य माना है। अपने इस काव्य को अधिक प्रभावपूर्ण बनाने की दृष्टि से वह ऐतिहासिक व्यक्तियों से इसकी कथा का सम्बन्ध स्थापित करता है। इतिहास इसमें गौण है। अतः इतिहास की दृष्टि से इसकी प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता पर विचार करना विशेष वैज्ञानिक और जसोबी नहीं होगा।

बीसलदेव रासो की भाषा

विभिन्न उपलब्धप्रतियों के आधार पर यह संकेत मिलता है कि ‘बीसलदेव रासो’ की भाषा परवर्ती मराठ्टु काव्य की है। मेरी धारणा है कि काव्य ‘रासल काव्यप्रतियों’ के समान इस कृति का विकास मौखिक परम्परा से हुआ है। अतः इसमें भाषा की एककता के प्रति आग्रह नहीं प्रकट किया जा सकता। कविपय विद्वानों की धारणा है कि यह सोरठहवीं शताब्दी की रचना है। परन्तु यह निर्णय ‘बीसलदेव रासो’ के ‘काशी नागरीप्रचारिणी’ सभा के संस्करण के आधार पर किया गया है। यह प्रति सुसम्पादित नहीं है। डॉ० माता प्रसाद मुन एच डॉ० तारक नाथ अग्रवाल के संस्करण अधिक सुसम्पादित हैं। अतः भाषा के अध्ययन के लिए इन्हीं संस्करणों का आधार ग्रहण किया गया है। संक्षेप में ‘बीसलदेव रासो’ की भाषागत विशेषतायें निम्नलिखित हैं।

(क) प्राचीन भारतीय धार्य भाषा की संयुक्तस्वर ध्वनियाँ मध्य कालीन भारतीय धार्य भाषाओं में एक स्वर में परिवर्तित हो गईं। मध्यकालीन भारतीय धार्य भाषा के द्वितीय पर्व में स्वर-मध्य स्पर्शव्यञ्जन ध्वनियों के कुल हो जाने से उद्भूत स्वरों के कारण पुनः संयुक्त स्वर संस्थापित होते हैं। अपभ्रंश बहुत प्रारम्भिक भाषुक्तिक भारतीय धार्य भाषाओं में इस प्रकार के मध्य विकसित संयुक्त स्वर मिलते हैं। 'बीसल्लव रासो' में भी इस प्रकार के रूप मिलते हैं। उदा०

अइ=नोद भेइइ पारइ उरर मंडार ।

अउ=एक वन्तउ मुख मलमलइ ।

(ख) कतिपय सन्दर्भों में आवि स्वर-स्रोत के उदाहरण भी मिलते हैं। उदा० भोज राज तपउ मिथ्यउ छइ विमान बहु गर बैठा छइ भगवानि ।
[छइ का विकास क्रम इस प्रकार है प्रा० भा० मच्छति ७ अप० मच्छइ ७ बीसल० छइ]

(ग) अनुस्वार और अनुनासिक में भेद नहीं माना गया है।

(घ) मध्यवर्ती अनुनासिक के स्थानपरिवर्तन के नियमित उदाहरण मिलते हैं। उदा —

ठोइ=ठार्व

मूइ=मूर्ध

(ङ) घग्-स्व विभक्तिपरक और प्रत्ययपरक इन दोनों स्वरों में मिलते हैं।

(च) कर्ता कर्म एक वचन पुष्टि स्वरान्त प्रातिपदिक-उदात्त होते हैं। यह अपभ्रंश की परम्परा का ही विकसित रूप है—उदा० राउ तनउ इत्यादि।

(ज) बहुवचन प्रत्यय के लिये ओ का प्रयोग किया गया है। इसका विकास प्राचीन भारतीय धार्य भाषा के एवी बहुवचन—आनाम् से हुआ है।

उदा०—सगुण सुमाषसौ सीपिम्यो रास ।

(झ) अपादान के लिये-यी-याकी,-अ आवि परसर्गों का प्रयोग मिलता है।

उदा० मुरण यी आविया मुरह विमान ।

कइ म्हाणू दूठउ सिरजबहार ।

अधिकरण के लिए सविमलिक प्रयोग-अह मिश्रता है उवा० सुप्याह मोह्य वेकता । बेस मछावह भयत रे उवाह । परसर्गीय प्रयोग के अन्तर्गत माहें, मोहि के प्रयोग मिलते हैं उवा मम माहें हरपियत राजकुमारि । गोवस माहि जिसत परिठिय मोबिब ।

अपभ्रंश और अबहट्ट में सम्प्रदान अपादान सम्बन्ध और अधिकरण के लिए-आहु, -आई -इ के प्रयोग मिलते हैं । 'बीसछदेव रासो' में भी इनका प्रयोग इन्हीं अपों में होता है । उवा -कानह कुम्बक भिगमियह, भायरे हिरणी मनह बिचार । अछह बिहुला किम बिबह माछ ।

सम्बन्ध के लिए तणत का प्रयोग मिलता है—उवा० राजमती तणत रत्न यत बिबाह । अधिकरण के लिए-ए का सविमलिक प्रयोग भी मिलता है—उवा० वरमाहे मम माहे मस्तक माहे इत्यादि । करण कारक एक वचन के लिए हि के रूप भी मिलते हैं उवा० पवनहि दीबछत नाहि वसह (पवन से दीपक नहीं जलता इसे अधिकरण के रूप में ग्रहण करते हुए प्रस्तुत सर्व सिद्धा जा सछता हैं—पवन में दीपक नहीं जलता है) । करण के अर्थ में-इ रूप भी प्रयुक्त मिलता है—तह तुठी असर पुइह ।

कर्म-सम्प्रदान के लिए-मह रूप मिलता है—उवा०—कह अबमेरि नह मय करो । दीन्ही सोपारीम नह हरपियत राय बमाह नू बीबह छह बाइबह ।

संख्यावाचक—जे (दो) नासह बपावह वे कर ओहि । डूबह, बीबह, इत्यादि । सर्वनाम—मुम्, म्हा (म्हा परि संभरि उग्रहह) । मू, मो हत अम्हउ अम्हारउ, तजें तु, तूँब तुजम्, बारउ ।

सहायक क्रिया—छह, बह नर बठा छह अकवाप्ति

प्रथम पुरुष वर्तमान एक वचन में क्रिया-अज से निर्मित होती है ।

उवा० बीनबठे तोहि लम्बोवर, जठनि करउ तुम् पावण्ड ।

समास्य वर्तमान के रूप अपभ्रंश और पुरानी राजस्थानी के अनुसार ही हैं—उवा० करजें, निनबउ करहुँ ।

करअहि, करसि करहु ।

करह गितइ बोसह, करीहि ।

कर्मबाध्य के लिए—ईश ईश इन्द्र के रूप मिलते हैं। 'प्राहृतपैयम्' में इन रूपों के उदाहरण संकलित हैं। उदा०—यहूतह फरह बीजह बाइजउ। मातार्थ के लिए जो इन्हीं रूपों के प्रयोग मिलते हैं—तास्तु भयह मुमिम्यो सहु कोह।

परमास रासो—'दास्तुखण्ड' को ही 'परमासरासो' का समीपवासी माना गया है। इसे 'सोक माया' या 'बीर योत' भी कहा गया है।^१ आचार्य रामचन्द्रगुप्त इसे "बैलेड" (ballad) की कोष्ठि की रचना मानते हैं। 'परमास रासो' प्रमाणिक रचना के रूप में उक्तव्य नहीं है। इस सम्बन्ध में अपने इतिहास में विचार करते हुए आचार्य रामचन्द्र गुप्त ने लिखा है 'ऐसा प्रसिद्ध है कि काश्मिर के राजा परमास के यहाँ जयनिक नाम के एक भाट ने जिन्होंने महोदये के दो रेश प्रसिद्ध बीरों—भास्तु और उरल (उरपसिह)—के बीर चरित्र का विस्तृत वर्णन एक बीर यीतात्मक काव्य के रूप में लिखा था जो इतना सर्वप्रिय हुआ कि उसके बीर यीतों का प्रचार क्रमशः सारे उत्तरीय भाग में विशेषतः उन प्रदेशों में जो कन्नौज साम्राज्य के अन्तर्गत थे हो गया। जयनिक के काव्य का आज कहीं पता नहीं। पर उसके आधार पर प्रचलित भीत हिन्दी भाषी प्रांतों के गीत-गीत में सुनाई पड़ते हैं। ये गीत भास्तु के नाम से प्रसिद्ध हैं और बरसात में गाये जाते हैं।^२ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने निर्यास में गुप्त जी का ही आधार ग्रहण किया है 'इस काव्य में पृथ्वीराज रासो के समान ही जयनिक लिखित परमास रासो नामक एक ग्रन्थ का नाम मिलता है। कहते हैं कि काश्मिर के राजा परमास (पर जर्हि देव) के यहाँ जयनिक नाम के एक भाट ने जिन्होंने महोदये के दो रेश प्रसिद्ध बीरों—भास्तु और उरल के चरित्र का एक बीर काव्य लिखा

१—'जयनिक' (पृ० १२३०) का यह बीर उस प्रधान एक भीत काव्य माना जाता है।—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।

२—हिन्दी साहित्य का इतिहास The Lay of Alha Introduction (by Grierson) के अनुसार जयनिक परमास का जौजा था। उनका यह निर्वय प्रस्तुत पंक्तियों पर आधारित है—

यह विचार्य मस्तुनारानी तुल्य बोलि लीगु प्रसिद्धार।

तुल्य बुढावा जयनाथक का भने जौन बन्दे करार।

था ।^१ 'बीर काव्य संग्रह' की भूमिका में डॉ० उदय नारायण तिवारी ने संकेत किया है 'पृथ्वीराज रासो' में एक महोबा-खण्ड है । वह परमाज रासो के नाम से भी प्रसिद्ध है । वस्तु स्थिति यह है कि चार्ल्स इस्मिथ ने मौखिक परम्परा के आधार पर इसका सम्पादन सन् १८६५ में कराया था । इसके पहले कहीं तक मुझ ज्ञात है, 'परमाज रासो' की कोई हस्तलिखित प्रति नहीं मिलती है । इसका मौखिक संस्करण गण-जगुबाब सन् १८८५ में इण्डियन एंथिक्वेरी में भी प्रकाशित हुआ । (देखिए—Indian Antiquary Vol xiv 1885 page 209-235) । इसका प्रकाशन अंग्रेजी के बेंलेड काव्य-रूप में भी हुआ है । (देखिए—Calcutta Review Vol xii xiii 1875 78) । संवत् ११७६ में 'नागरी प्रचारिणी सभा' (काशी) ने इस ग्रन्थ को प्रकाशित किया । डॉ० श्यामसुन्दर दास ने इसका सम्पादन किया है । सम्पादकीय भूमिका में श्याम सुन्दर दास भी ने लिखा है बिल प्रतियों के आधार पर यह संस्करण सम्पादित हुआ है । उनमें यह नाम नहीं है । उनमें 'अन्यत्र पृथ्वीराज रासो' का महोबा खण्ड लिखा हुआ है । किन्तु वास्तव में यह 'पृथ्वीराज रासो' का महोबा खण्ड नहीं है—बल्कि उसमें वर्णित घटनाओं को लेकर—मुख्यतः 'पृथ्वीराज रासो' में दिए हुए एक वर्णन के आधार पर—लिखा हुआ एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है । यद्यपि इस ग्रन्थ का नाम मूल प्रतियों में 'पृथ्वीराज रासो' दिया हुआ है पर उसके नाम से प्रकाशित करना लोगों को भ्रम में डालना होगा । अतएव मैंने इसे 'परमाज रासो' नाम देने का साहस किया है । देखिए—'परमाज रासो' भूमिका (पृ० ३ ४) । परन्तु अपने वर्तमान रूप में यह 'पृथ्वीराज रासो' के अन्त में संकलित महोबा खण्ड का स्फांतर ही समझा है । इस संदर्भ में 'पृथ्वीराज रासो' तथा 'परमाज रासो' के अन्तिम अन्तों की तुलना की जा सकती है । दोनों में साम्य है । डॉ० माता प्रसाद गुप्त ने इस साम्य की ओर स्पष्ट संकेत किया है । (देखिए—हिन्दी साहित्य—द्वितीय खण्ड—पृष्ठ १२७) । इन समस्त विवेचनाओं से वस्तुस्थिति का स्पष्टीकरण नहीं हो पाता ।

१—हिन्दी साहित्य १९५२।५३ देखिए—हिन्दी महाकाव्य का स्वर्ण विकास

सोकवीजन में प्रचलित आत्मानों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि इसका विकास सोकमामाओं या लोकपीठों की परम्परा पर विकसितरीत काव्यपरम्परा का अनुसरण करके हुआ है। लोक नायारमक काव्यों की निम्नलिखित प्रमुखतायें 'परमास रासो' या 'बास्व जण' में मिल जाती हैं।

(१) यह गेय गाथा है। (२) इसमें चमत्कारप्रदर्शन पाण्डित्यप्रदर्शन और अङ्कण का उल्लास है। यद्यपि डॉ० चम्पू नाथ सिंह ने^१ यह कहा है कि इसका प्रधान उद्देश्य मनोरंजन है नैतिक उपदेश चरित्र-मुबार पाठ्यपुस्तक आदि उसके उद्देश्य नहीं है। फिर भी बीरमावता को बाधित और पुष्ट करना उसका अपर्यय लक्ष्य है। परन्तु उसका यह निष्कर्ष उचित नहीं है। राष्ट्रीय संविधान और बीरमावता की पीठिका पर ही इसका विकास हुआ है।

परमास रासो की वृत्ति

प्रस्तुत वृत्ति में पृथ्वीराज और परमास के संबंधों की कथा प्रमुख पीठिका के रूप में ग्रहण की गई है। परन्तु परमास की कथा इतिहास की अपेक्षा लोक जीवन से ही संश्लेषित है। 'प्रबन्ध चिन्तामणि' और 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में भी बयचन्द और परमास के संबंधों का साहित्यिक उल्लेख मिलता है। डॉ० चम्पूनाथ सिंह ने परमास से सम्बन्धित निम्नलिखित तथ्यों का निर्देशन किया है—

१—परमास (परमास) ऐतिहासिक व्यक्ति है जिसने दीर्घकाल तक शासन किया था।

२—वह बयचन्द का स्वतन्त्र करवाता सामंत नहीं बल्कि स्वतन्त्र साम्राज्य का अधिपति था। 'कोप काकाप्रिय' 'अबन्ध कोप प्रसाद' आदि उसकी बनेक उपाधियाँ थीं।

३—बयचन्द ने उस पर एक बार आक्रमण किया था किन्तु बार में उसे उसका मैत्रीसम्बन्ध स्थापित हो गया था।

४—वह सम्भवतः अधिक बूढ़ नहीं था इसके विपरीत वह बिकसित और कायर था।

१—हिन्दी महाकाव्य का स्वल्प विकास पृ० ३३३।

५—बह बीरों का सम्मान कछा बा और दूसरे राजाओं के बीर सामर्थ्य को बुझाकर अपने यहाँ रखता था। सम्भवतः इसका कारण यह था कि वह स्वयं युद्ध से डरता था।

६—बह काव्य प्रेमी था उसका महाकाव्य महादेव स्वयं कवि था।

७—पृथ्वीराज से उसका युद्ध हुआ था जिसमें वह पराजित होकर नाम मया और अपनी राजधानी कालिंजर में जाकर सिपा।

८—शिला सैन्धों से इस बात की पुष्टि होती है कि पृथ्वीराज राज से उसका युद्ध सन् ११८२ में हुआ था जिसमें वह पराजित हुआ था। पर उसके बाद भी वह कालिंजर में शासन करता रहा। सन् १२०३ में कालिंजर पर मुसलमानी आक्रमण के समय उसकी मृत्यु हुई थी।^१

‘परमास राघो’ (आल्ह खन्) में इन घटनाओं का उल्लेख मिल जाता है। परन्तु लोक जीवन में विकसित होते रहने के कारण इसमें निम्नवरी कथाओं का भी मिश्रण पर्याप्त मात्रा में होता रहा है।

आलोच्य कृति की कथानकसंरचना पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करना न्यायसंगत न होगा क्योंकि यह किसी एक कवि की कृति नहीं है और इसका संरक्षण और सम्पादन त्रुटि आधुनिक है। परन्तु अपने मूल रूप में यह छपकवाभूमि पर आधारित एक मेरुकाव्य के रूप में विकसित हुआ है। वह एक नावाचक है जिसमें एक ही परिवार के कुछ व्यक्तियों—धासहा ऊनक इन्वत्त मस्तमान—को प्रधान पात्र बनाकर तथा अन्य बीरों—सैयब तासहन, जाली रागा देवा जगदिक कला—वारी आदि को उनका सहायक बनाकर अनेक नायकों जोड़ दी गई हैं।^२

इस प्रकार इस रचना में विभू लक्ष्मता और अव्यवस्थित विकास-सूत्र का उद्गता स्वभाविक है। इस कृति का मूल्यार्जन महाकाव्य के स्तर में भी किया गया है। यह प्रयास अधिक न्यायसंगत नहीं है। निम्नलिखित महाकाव्य की अपेक्षा इसे विकसलशील काव्य कहना ही अधिक उचित होगा। इसके रूप

१—वही पृ० ३४७

२—देखिए हिन्दी महा काव्य-स्वरूपविकास पृ० ३७५।

नियोजन में किसी क्रम-बद्ध योजना का प्रयास नहीं मिलता है और न इसमें महाकाव्य की संक्षिप्तता ही मिलती है । डॉ० सम्भूतनाथ सिंह ने इसके विकास की चार अवस्थाओं की कल्पना की है जो विशेष महत्वपूर्ण है । इसका उल्लेख आवश्यक है—

(क) भास्व खण्ड का मूल्याप — इस अवस्था में बुद्धेयखण्ड के साहित्यिक प्रबन्ध काव्य के रूप में इसकी रचना हुई ।

(ख) छोक्यापा में रूपान्तर — साहित्यिक स्वरूप से लोक गानाओं में रूपान्तर ।

(ग) विकास की तीसरी अवस्था — साहित्यिक रूपान्तर (१९००-१८०० ई०) । 'महोबा समयो' और बृहत् साहित्यिक रूपान्तर 'परमाक रासो' (महोबा खण्ड) ।

(घ) विकास की चौथी अवस्था — बास्वईक्षिपट द्वारा सन् १८६३ में इसका संग्रह और सम्पादन । इसमें वैदिक मुद्रों का वर्णन है और आज यही मूल भास्वखण्ड के रूप में स्वीकृत है ।^१

मेरी व्यक्तिगत धारणा है कि 'भास्वखण्ड' या 'परमाकरासो' अपने मूल रूप में लोक-गाथा की मीठात्मक परम्परा में पल्लवित हुआ है और उसे साहित्यिक रूपान्तर देने की चेष्टा अति आधुनिक है ।

विश्वके पुष्टों में अवश्रंश काव्य में प्रयुक्त कथामकरकर्मियों की चर्चा की गई है । अपनी पूर्व काव्यपरम्परा के समान 'परमाक रासो' में भी कथामक कर्मियों का विशेषपूर्ण प्रयोग मिलता है । इनमें पूर्वजन्म की स्मृति रूप-मुक्त से प्रेम की अनुभावना पशु-पक्षियों से उत्पन्न भेदने और रूप परिवर्तन से सम्बन्धित कथामकरकर्मियों के प्रयोग विशेष रूप में दर्शनीय हैं ।

भाषा की दृष्टि से इसे बेंचबाड़ी की रचना माना गया है । परन्तु अपने वर्तमान रूप में यह बेंचबाड़ी की रचना नहीं है । म्रिय के समान इसके भाषा रूप में भी मान्य परिवर्तन हो गया है । इसकी भाषा अति आधुनिक है । यह

‘बासू छन्द’ या ‘बीर छन्द’ की हति है। उदाहरण के लिए कठिपय पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

जसे जुनुझी औ गुजराती जना जसे विजायत क्यार ।
 छट छट छट छट तेना बाजे बोले छपक-छपक तसबार ।
 पैरछ के संग पैरल मिरिगै औ असबारन से असबार ।
 होरा के संग होरा मिरिगै हाबिल झड़ी दाँत से दाँत ।
 तेना जमकै बरबाग के कटि कटि गिरै सुनस्वा ज्वाग ।
 सात कोस लौ जसे सिरोही चारो ओर होय जमसाग ।

×

×

×

मज मर छाती पृथ्वीराज की अब नैनन में बरे मछाछ ।
 सखि के पृथ्वीराज ठाढ़े भए, मानहु इन्द्र अलाढ़े बाय ।

×

×

×

सवा तरैया ना बन फूले पाये सवा न सावन होय ।
 स्वर्ग मड़ेया सब काहूँ को पारो सवा न बीरे कोय ।

हम्मीर रासो—‘हम्मीर रासो’ शीर्षक किसी स्वतंत्र ग्रन्थ की उपलब्धि अभी तक नहीं हुई है। ‘प्राकृतपौषम्’ में हम्मीर सम्बन्धित आठ छन्द संकलित हैं। इन छन्दों में इनके रचयिता के नाम का कोई उल्लेख नहीं है। प्रचलित चारणा यह है कि इन छन्दों के रचयिता (और हम्मीर रासो के रचयिता) घागबर थे। घागबर के नाम से एक आसुबोध ग्रन्थ भी प्रसिद्ध है। ‘शिव सिंह सरोज’ में इनके चन्द का बराबर माना गया है। इसके अनुसार घागबर को हम्मीर काव्य और ‘हम्मीर रासक’ का कृतिकार भी माना गया है। भाचार्य रामचन्द्र शुक्ल ‘प्राकृतपौषम्’ के पदों को ही ‘हम्मीर रासो’ का मूल रूप मानते हैं।^१ परन्तु शुक्ल जी ने इसके लिए प्रमाण नहीं दिया है। घागबर के पितामह का नाम राजव था। वे हम्मीर के आधय में थे। उनके कठिपय पद्य ‘घागबर पद्यति’ में संकलित हैं। यदि घागबर को हम्मीर का समकालीन माना जाय तो इन छन्दों की रचना वि० सं०

१३२० के निकट हुई होगी। 'प्राकृत पंचकम्' के त्रिन छन्दों का उल्लेख किया गया है उनमें दो छन्दों में बज्रल का उल्लेख आया है। उदा०

पिबत दिङ् सन्नाह् बाह् उप्पर पक्खर वह ।
 बंधु समन्ति रम बसत सामि हम्मीर बज्जलह ।
 उड्डुल्ल अप्पह् भमत जणारिज् धीसह् बारत ।
 पक्खर पक्खर ठल्लि पक्खर अप्पह्कल्लत ।
 हम्मीर कज्जु बज्जल भमह् कोणाहल्ल मुह् मुह् बसत ।
 सुक्खाय सीस करवाल दह् ठेजि कक्खेर बीज्जबसत ।

'भुजाओं पर पक्खर देकर मैं दङ्ग सन्नाह् बारण कर हूँ। स्वामी हम्मीर का बज्जल लेकर, बन्धुओं से बिना लेकर युद्ध के अन्तराल में प्रवेश कर रहा हूँ। मैं नम में बुलड़ रहा हूँ। शत्रुओं के शीघ्र पर कङ्क बास रहा हूँ। और पक्खरों के उपयोग से मैं पर्वत को गिरा रहा हूँ। बज्जल का कथन है कि हम्मीर के कार्य के लिए वह क्रोधानल में आ रहा है। सुखान पर लङ्क बासकर श्रीधामि में आ रहा हूँ।

डीह्ठा माण्णि विट्ठि मह् भुण्णिय मण्ण सरीर ।
 पुर बज्जला मंतिवर बण्णिय बीर हम्मीर ।
 बण्णिय बीर हम्मीर पाज्जमर मेहण्णि कंणह् ।
 दिग्गमज्जह् अंधार भुल्लि मूरह् रण म्भेण् ।
 विपमवमह् अंधार आणु सुत्ताज्जक मोत्ता ।
 इरमरि बमसि विपक्खि मारज्ज विट्ठी म्हु डोला ॥

'डोल पर आकाश कर हम्मीर ने विट्ठी में स्लेखों को मूर्छित किया है। पुर-रसा हैतु मंतिवर बज्जल को रखकर बसा। उसके प्रस्थान से मेडिमी कम्पित हो गई। शिवाओं में अन्धकार हो गया। रम से सूर्य छिप गया। शिवाओं और नम में अन्धकार छा गया। हम्मीर कुरखान का ओल ले आया। विपक्षियों का दहन कर हम्मीर ने विट्ठी में विजयोद्घास निरान्ति किया। इस चन्दर्न में यह प्रलप जल्पन होता है कि य पञ्चजल के हैं या पाण्डुर के हैं। आचार्य रामकृष्ण गुप्त की यह व्याख्या है कि इनमें पञ्चल (विट्ठी बीर विजय) की प्रशंसा है। परन्तु राहुल साहस्रनाम की यह व्याख्या है कि ये बज्जल

कवि के हैं।^१ जिनमें जम्बस का उल्लेख नहीं किया गया है उनके विषय में राहुल बी ने अपना सम्यक् प्रकट किया है। पर्याप्त प्रमाणों के अभाव में इस विषय में स्पष्ट निर्णय नहीं किया जा सकता है। यद्यपि डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के 'आज या जम्बस'^२ शीर्षक लेख का आधार ग्रहण करते हुए डॉ० माता प्रसाद गुप्त ने यह कहने का प्रयास किया है कि जम्बस हमीर का भंजी या और इन पक्षों में उसका ही सम्बन्ध है परन्तु इससे वस्तुस्थिति का स्पष्टीकरण नहीं हो पाता। 'धाङ्ग' पर पक्षि की भाषा अधिक व्यवस्थित नहीं है। जो उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए गए हैं उनमें भाषाव्यय सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी का है। अतः भाषा की दृष्टि से इस रचना की प्राचीनता का समर्थन नहीं हो पाता।

सुमान रासो—'सुमान रासो' का प्रथम उल्लेख सिबसिंह शरोच' में मिलता है। इसके कवि है दत्तविजय। चितौड़ में तीन कुमार हो चुके हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की यह धारणा है कि विदेह्य कृति का सम्बन्ध द्वितीय कुमार से है (वि० सं० ८७० १००)। ऐसी धारणा है कि यह प्राचीन कृति है। परन्तु इसकी प्राचीनता का समर्थन नहीं किया जा सकता। इसकी जो प्रतिलिपियाँ प्राप्त हैं उनमें राजा संग्राम सिंह द्वितीय (सं० १७१०-१७३३) तक के ऐतिहासिक सम्बन्ध वर्णित हैं। मेवाड़ के कुमार बंस की कथा के होते हुए भी ऐतिहासिक अनुकेतना और भाषा की दृष्टि से यह अठारहवीं शताब्दी की रचना है। भौतीकाच मेनारिया इस समस्या का स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं 'वि (दत्तविजय) उपान्यासीय भेत धानु धान्तिविजय के शिष्य थे। इनका असली नाम दत्तविजय था, पर बीछा के बाद बदलकर बीछतविजय कर दिया गया था। हिन्दी के मित्रागो ने इन्हें मेवाड़ के राजा कुमार (सं० ८७०) का समकालीन होना अनुमानित किया है जो वस्तुतः है। वास्तव में इसका रचनाकाल सं० १७३० से लेकर १७६० के मध्य तक पड़ा है,^३ इस दृष्टि से एक अर्थ यहाँ दिया जा रहा है। भाषा की दृष्टि से इसकी प्राचीनता इस अर्थ द्वारा वर्णित हो जाती है।

१—हिन्दी काव्य भाग पृ० ४४९ ४४३।

२—हिन्दी अनुसूचित वीप चैत्र सं० २०११ पृ० १।

३—राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १०६।

सिंह बिलोड़ न भाविक सावध पहिखी तीर ।
 जबे बाट रति बिरहिणी छिज सिम बनर्षी सीर ॥
 सखियो पिन साहिबा पाखी छिरिय न बेइ ।
 पंथी बाल्या पीअरे घुरल रो संदिह ॥^१

विजयपाल रासो—‘विजयपाल रासो’ के रचनाकार गल्हसिंह माट है ।
 इनके विषय में हमें विसेष ज्ञान नहीं है । ऐसा अनुमान किया गया है कि ये विजय
 पट्ट के शासक विजयपाल के भावित माट कवि थे । इतिहास की दृष्टि से यह
 रचना समु १०४३ की होनी चाहिए । परन्तु अपने वर्तमान स्वरूप में यह सोसहवीं
 शताब्दी की रचना है । इस दृष्टि के केवल बयासीस सूत्र उपलब्ध हैं । इसकी
 दृष्टि से यह बीरकाव्य के अन्तर्मत की रचना है । विभवानुमो ने इसे वि० सं०
 १९३५ की कृति कहा है^२ । इस सम्बन्ध में समय-समय पर इसकी प्रामाणिकता
 अप्रामाणिकता पर विचार किया गया है । हिन्दी साहित्य के गुरु इतिहास के
 पास एक सख्त शोध; अध्याय चार के लेखक ने यह कहने का प्रयास किया है कि
 ‘विजयपाल रासो’ के जिस विजयपाल से हमारा परिचय है उसकी वृत्ति कृति की
 आधार पीठिका नहीं है । वह दूसरा विजयपाल है । इसने कई नामक वीर को
 पराजित किया था । इसके प्रपौत्र विजयसिंह के एक सिलालेख का उल्लेख डॉ
 हबारी प्रसाद द्विवेदी ने किया है । वह इस प्रकार है —

विसमिध गोल उतिस भरित विमल पवित्तोगाम ।
 अरपड़ पड़यो संसिद्धय इबडो भुवाध ॥
 इबडो पीट परिछियउ अतिय विजयपामु ।
 बीजे काइउ रणि विविजित लह भुवन पामु ।

× + × ×

जेनिभ भुजर योइइह की अ अविभं भारि ।
 विजयसीह किय संहभुय पीरिख बह संसारि ।^३

१—इसलिए नागरी प्रचारिणी पत्रिका—सं० २००६ पृ० ३३६ ।

२—गल्हसिंह ने विजयपालसिंह तथा अंमराबा के संभवों का वर्णन इस काव्य
 में किया है । परन्तु यह रचना वि० सं० १९३५ के समय की है ।
 विभवानुमोद भाग १ पृ० २०७।३ हिन्दी साहित्य का गुरु इतिहास पृ० ३२ ।

मुमुक देवह पञ्च पञ्चि पञ्चि अक्षित समम् ।

विजयसीह विजयि करि आरम्भिज सुख समम् ॥

इस अंश में 'विजयपासु' तथा विजयसीह' नाम आए हैं। इसकी भाषा उत्तरवर्ती अवलुब्ध तथा आरम्भिक हिन्दी के सन्धि काष्ठ की है। परन्तु इससे 'विजयपासु रासो' की रचनाविधि तथा उसकी प्रमाणिकता का स्वल्प स्पष्ट नहीं हो पाता है। अथा०

बुरे जुड़ बापव पंग जरह । पछि कर ठेय चह्यौ रजवरह ।

हंकारिय जुड़ बुहं बल गुर । मनी गिरी सीध जसम्भरि पूर ॥

हलौ बिल होक बडी बल मदि । मई बिल ऊकत कूक प्रसिद्धि ।

परस्पर तोप बहै बिकराळ । गजें गुर मुम्नि घरम्प पताळ ॥

इस उद्धरण से आलोच्य कृति की प्राचीनता पर स्पष्ट प्रकाश पड़ता है। निम्नलिखित यह पद्यही सतावरी के बाद की ही रचना है।

पृथ्वी राज रासो—हिन्दी के आदिकाव्यीन काव्य-ग्रन्थों में 'पृथ्वी राज रासो' एक विशिष्ट रचना है। 'रासक काव्य' परम्परा में प्रस्तुत अन्य काव्यरूप तथा अन्वयैवम की दृष्टि से आरम्भ से ही विशेष आकर्षण का केन्द्र रहा है। इसके रचयिता चन्दबरदाई माने गए हैं। लोक जीवन में इस प्रकार की भाषना प्रचलित है कि चन्दबरदाई पृथ्वीराज के मित्र और राज कवि थे। उन्होंने 'पृथ्वीराज रासो' की रचना की। इसमें शृङ्गार और वीररस की प्रधानता है। गोरी ने पृथ्वीराज को बन्दी बनाया। चन्द पृथ्वीराज के साथ मकनी गया। 'पृथ्वीराज रासो' की पुष्टि चन्द के पुत्र बल्लभ ने की—

पुस्तक बल्लभ हत्य है चरि पञ्चन नृप काज ।

रघुनाथ चरित इनुमत्त कृत मूपनीच उद्धरिय बिनि ।

प्रविराज मुखस कवि अंशुल चन्द नन्द उद्धरिय लिनि ।

इन अंशों की प्रमाणिकता स्थापित नहीं हो सकी है। अतः इन अंशों में लोक किंवदन्तियों का ही विशेष आधार ग्रहण कर लिया गया है। चन्दबरदाई के लिए चन्द बलिह्व का प्रयोग भी मिलता है। इस सन्दर्भ में प्रसन्न यह उत्पन्न होता है कि क्या बल्लभ चन्दबरदाई के पुत्र थे और उन्होंने 'पृथ्वीराज रासो' की पुष्ट

लिया था। अब तक की उपलब्धियों के आधार पर हम इस प्रकार का निर्णय नहीं ले सकते। 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में पृथ्वीराज और जयचन्द से सम्बन्धित चार छन्द्य संकलित हैं। इस छन्द्य के सम्पादक श्री मुनिजिनविजय ने चन्दबलिरूप को इनका रचयिता माना है। और इन्हीं के आधार पर 'पृथ्वीराज रासो' की प्रमाणिकता की ओर 'प्रस्ताविक वक्तव्य' में संकेत करते हुए उन्होंने स्पष्ट निर्णय दिया है कि अपने मूल या आदि रूप में यह जयचन्द की रचना है। इस संदर्भ में धागे बिचार किया गया है। यहाँ बल्लभ के सम्बन्ध में संकेत किया जा रहा है। 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के चार छन्दों को मुनिजिनविजय ने चन्दबल्लभ माना है उनमें दो बल्लभ कवि के हैं। इसका निर्णय इनमें प्रमुख 'बल्लभ' नाम से ही हो जाता है। उदा०—

(क) बिहि कनक तुलार पाकरस जसु हय ।
 छऊ दसइन मयमत बलि गजनि महामय ।
 बीस कनस पायक सफर फाख जमुदर ।
 लुसहु जब बसुमान संख जु जाणइ तौह पर ।
 छतीस सनक नराहिबइ बिहि क्लिबिजो हो किम मयउ ।
 जयचन्द न जाणउ 'बल्लभ' कह गयउ कि भूड कि बरि गयउ ।

(ख) बल्लभनु बल्लभ देख तुह दुसइ पमाणउ ।
 बरणि बसनि उदसइ पड़इ रामहु मगजमो ।
 कैसु मनिहिन संकियउ मुकहु इक्करि सिरि सखिजो ।
 तुल्यो सो हर धनहु धूलि जसु छिम तबि मनिमो ।
 छल्लुसुहनिउ रेनु बसणि सम मुकनि बल्लु छल्लुसुछणि ।
 बल्ल इनु बिनु भुयनु बलि सहस नमन किम परि मिहइ ।

'मागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासो' के संस्करण में इनमें से केवल एक छन्द मिलता है (प्रथम)। परन्तु 'पृथ्वीराज रासो' की अन्य प्रतियों में इनका उल्लेख कहीं नहीं मिलता है। परन्तु हम सम्भवों से यह संकेत मिलता है कि 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में आए 'चन्दबलिरूप' और 'बल्लभ' समकालीन थे। परन्तु बल्लभ चन्दबलिरूप के पुत्र थे और उन्होंने 'पृथ्वीराज रासो' को चन्द

बरबाई के पश्चात् पूरा किया इस सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रमाण की प्रस्तावना नहीं की जा सकती है ।

इस प्रकार 'पृष्णीराज रासो' की प्रामाणिकता पर विभिन्न दृष्टियों से विचार करने वाले विद्वानों के मतों का यहाँ विस्लेषण किया जा रहा है । प्रथम वर्ग के अन्तर्गत वे ऐकिक आते हैं जिन्होंने इस कृति को प्रामाणिक माना है । इनमें पंडित मोहनलाल पंढ्या पं० मधुराप्रसाद दीक्षित (इन्होंने जिस संस्करण का सम्पादन किया है उसे काहीर संस्करण कहते हैं) तथा स्वामसुन्दर दास हैं ।

डॉ० ब्रूस्टर डॉ० मोरीसंकर हीराचन्द ओझा मुष्मी देवीप्रसाद तथा कमिराज स्वामस दास द्वितीय वर्ग के अन्तर्गत आते हैं । इसी वर्ग में मोठीलाल मेमारिया भी आते हैं । इनके अनुसार 'पृष्णीराज रासो' अप्रामाणिक कृति है ।

तीसरा वर्ग 'रासो' की प्रामाणिकता पर विस्वास करते हुए उसके वर्तमान स्वप्न को निम्नलिखित मानता है । मुनि विनविजय द्वारा सम्पादित 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में संकलित 'पृष्णीराज और जयचन्द प्रबन्ध' से यह वर्ग प्रेरित है । 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में जो छन्द्य संकलित हैं वे अपभ्रंस की रचनाएँ हैं । इस वर्ग के अनुसार पृष्णीराज 'रासो' अपने मूल रूप में अपभ्रंस की कृति है । इसकी भाषा 'प्राकृतपगजम्' की भाषा रही होगी । इस सन्दर्भ में आगे कहीं की जायगी ।

रासो के उद्भावनाएँ तथा इसकी प्रतियाँ

तथा इसकी प्रसिद्धी सम्पूर्ण स्थिति पर विचार करने के पूर्व यह अपेक्षित है कि 'पृष्णीराज रासो' के वर्तमान आकार और उसकी विभिन्न प्रात प्रतियों का विस्लेषण यहाँ कर लें । अपने वर्तमान रूप में यह हिन्दी के आधिकांश साहित्य का प्रथम चरण प्रबन्ध काव्य है और इसे हिन्दी का प्रथम महाकाव्य भी माना गया है । 'रासो' के सम्बन्ध में जिसी बारणाएँ प्रचलित हैं उनमें से ही दृष्टियाँ प्रमुख हैं । प्रथम के अनुसार 'पृष्णीराज रासो' बाह्यवी छताम्बी की रचना है । दूसरी दृष्टि के अनुसार यह सोमहवीं-सगहवीं छताम्बी की रचना है । इस पर हम आगे के पृष्ठों में विचार कर रहे हैं । यहाँ हम रासो की विन्न विन्न प्रतियों पर विचार करेंगे । उपर्युक्तप्रतियों की समष्टि की दृष्टि से 'पृष्णीराज रासो' के निम्नलिखित स्वान्तर मिलते हैं —

(क) पृथक् स्वान्तर—इसमें सम्पूर्ण संख्या ९९ ९९ तक है । इसमें समग्र सोलह हजार पद्य तथा अनुष्टुप छन्द हैं । अतीत हजार श्लोक हैं जिन्हें

ग्रन्था-ग्रन्थ भी कहा गया है। यह पाठ या अन्तर के आधार पर डॉ० स्वामिभर दास तथा श्री मोहनलाल विष्णुलाल पन्ना ने काशीनामरी प्रचारिणी सभा के संस्करण का सम्पादन १९१० में किया।

(ब) मध्यम अन्तर—इसमें समस्त संख्या बालीस और मतासीम के मध्य है। इसमें दोहजार पच और पैंतीस भी स्लोक हैं। मधुरा प्रसाद टीलिन का संस्करण इस अन्तर पर ही आधारित है।

(ग) लघु अन्तर—इसमें लगभग उन्नीस समस्त, दो हजार पच और पैंतीस भी स्लोक हैं।

जहाँ तक मुझे ज्ञात है इस अन्तर के आधार पर अभी तक किसी प्रति का सम्पादन नहीं हुआ है।

(ङ) लघुतम अन्तर—इसमें लगभग ठेक सौ स्लोक हैं दो हजार पच हैं।

‘राजस्थान भारती’ में इसका प्रकाशन हुआ है (राजस्थान भारती अंक १ भाग ४ से इसका प्रकाशन आरम्भ हुआ है)^१ लघुतम के अन्तर्गत व्यापक रूप में लघु में उपलब्ध है। लघु और मध्य के अन्तों में भी समता मिलती है। मध्य के अन्त यह में उपलब्ध है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि लघुतम अन्तर ही सत्तो का मूल रूप है^२ और इसके अन्तर्गत यह भी कहा जाता है कि परवर्ती काल में यह के अन्तर ही मध्य लघु और लघुतम रूप धारण करते गये।^३ डॉ० माता प्रसाद मुत की यह धारणा है कि लघु में दो हुई संख्याएँ ही मूल पाठ के अधिक निष्कर्ष हैं। यह निष्कर्ष उन्होंने बला बल संख्याओं के आधार पर किया है। उनकी प्रस्तावना है, ‘यदि ध्यान दिया जाए तो ज्ञात होगा कि प्रायः उन सभी प्रसंगों में जहाँ बलाबल सूचक संख्याओं

१—विषय सूचना के लिये देविका (क) प्रती अभिलेखन ग्रन्थ-पुष्पीराज रासो की विविध बाचनाएँ पृ० १३० (ख) राजस्थान भारती भाग ३ अंक २ १९१९ पृ० ११। (ग) विमल ज्ञान—भाग ३८ अंक ६ दिसम्बर १९४६, पृ० ३९५।

२—जाहदा—राजस्थान भारती अंक १ भाग ४।

३—द्वितीय नाटिका—हजारी प्रसाद द्विवेदी—६२।

के विषय में तीनों पाठों में मन्तर है। सन्धु पाठ की संख्याओं से एक अपवादों को छोड़कर जो अनेक कारणों से सम्भव है, सर्वत्र सन्धु है, मध्य की इसी प्रकार मध्य है और गृह्य की इसी प्रकार गृह्य है। मध्यम पाठ की संख्याओं कहीं कहीं पर तो सन्धु की है और कहीं कहीं पर गृह्य की है। उदाहरणों के लिए निम्न लिखित उल्लेखों को लिया जा सकता है —

१ गृह्य ४५ २०२ तीस सन्धु तोलार सन्धु गेबर बस यज्जहि ।

मध्य १३ १ ।

सन्धु ३ कवित्त १ सहस्र बीम ।

२ गृह्य ४५ २०२ वसह सन्धु पयबसह पुरुष बस धन ति रज्जहि ।

मध्य १३ १ सत्त सन्धु पयबसमुत्त " ।

सन्धु ३ कवित्त १ ।

३ गृह्य ११-७२३ आसम रावन सन्धु हस्ति अमुत एक भट सन्धु ।

मध्य ३२ २५ ।

सन्धु २ दोहा ३० " असिय सहस्र ।

इसलिए वास्तविकता यह प्रतीत होती है कि सन्धु में वी हुई संख्याओं ही मूल पाठ के निकटतम हैं मध्य गृह्य की उत्तरोत्तर अधिकाधिक प्रसिद्ध है। परन्तु परिणाम यह निकलता है इन तीनों पाठों में सन्धु मूल के सबसे अधिक निकट है। 'रासो' के आरम्भ में एक दोहा मिलता है। इसका भी मूल्यांकन डॉ० बस ने किया है। सन्धु०

सहस्र सत्त नख सिल सरस आदि बन्त गुनि रेपु ।

बटि बसि मरहि को पड़े रूपन मोहि म विरेपु ।

इस दोहे के आधार पर भी वे यह निष्कर्ष निकालते हैं कि सन्धु अपान्तर ही मूल रासो के अधिक निकट है।

इस प्रकार प्रतियों के आधार निर्णय की दृष्टि से भी 'पुष्पीराज रासो' की प्रामाणिकता की स्थापना के प्रयास हुए हैं। इस दृष्टि से 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में संकलित पुष्पीराज और बचचन्द से सम्बन्धित प्रबन्धों का उल्लेख किया

मया है । इस में स तीन नामरी प्रचारिनी समा के 'पृथ्वीराज रासो' के संस्करण में मिल जाते हैं । तुम्हना के लिए उन्हें यहाँ प्रस्तुत किया जाता है ।—

अगह बाणु पडुबोमु जु पई कई बासह मुक्कओ
उर भीतरि लइहठि बीर ककल तिर पुकुकुठ ।
धीअ करि संधीत म मइ सुमेसर नंदन
एह सु गहि बाहिमओ लणइ लुरइ संभरि बन ।
कुह छडि न जाई इह मृगिमठ बारइ पलकठ लज मुलह ।
नै बाणत थंद बलहिठ कि न बि सुठइ इह फलह ।

पुरातन प्रबन्ध संग्रह पृष्ठ २७३ ।

एक बाण पडुमी नरेसु के कैमाछह मुक्कौ ।
उर अपर बहरयो बीर ककल तर बुक्कौ ॥
बियो बाण संधान हुन्नी सोमेसर नंदन ।
गाडौ करि निग्रहौ पनिष गड्यौ संभरि बन ।
बल छोरि न जाइ बमागरी गड्यौ गुन गहि बमागरी ॥
इम अपे थंद बरहिया कहा निमट्टे इन प्रत्यौ ।

पृथ्वी राज रासो १४६६ २३६ ।

अगह म गहि बाहिमओ रिपुराखलव कल,
कुह मंगु मम ठबओ एह बंधुप (प) मिनी बमाक ।
महनामा सिद्धबठ अइ सिमिबठ बुगभाई ।
बपइ बरबलिह मरुम परमवाकसर मुगभइ ।
पहु पडुबिराम सई अरि बनी सर्वभरि मठजइ संभरिमि ।
कईबास बिआस बिमट्टविषु मच्छिबंभि बठबौ मारिसी ।

पुरातन प्रबन्ध संग्रह, पृष्ठ २७६ ।

अगह मयह बाहिमो बब रिपुराई पयंक ।
कूरयत बिन करो मिले बंधु बे बंधर ॥
बो सहनामा मुनी एह परमारण मुगभ ।
अपर थंद बिरह बियो बोई एह न बुगभे ॥
प्रबिराज मुनवि संभरि बनी इह संभलि संभरि रिम ।
कैमाग बरिण्ड बनीठ बिन मरुम बंध बंधो मरमि ।

पृथ्वीराज रासो २००० ७४४ ।

इस छन्द को सम्मुख रखते हुए ही मुनि जिननिबन्ध ने चन्दबरवाई को देव्य भाषा प्राकृत का कवि माना है। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इन्हें हिन्दी परम्परा के आदि कवि की अपेक्षा अपभ्रंश-परम्परा का अन्तिम कवि माना है। 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के जो अंश उदाहरण में दिए गए हैं उनकी भाषा अबहदु है। इस प्रकार द्विवेदीजी की प्रस्तावना में मैं निगम संशोधन करना चाहूँगा। चन्दबरवाई अबहदु-परम्परा के आदि कवि हैं। इस प्रकार इन्हें हिन्दी के आदिवास के कवि के रूप में स्वीकार करने में भी कोई संशय नहीं होना चाहिए।

अगर 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' और 'पृथ्वीराज रासो' के छन्दों में भाषा विषयक अन्तर का उत्प्रेक्षित किया गया है। और यह अन्तर उसके विकसनशील स्वभाव की ओर संकेत करता है। डॉ० माता प्रसाद मुस ने इस छन्द में भी संका व्यक्त की है। इस प्रसंग में दो प्रश्नों की ओर संकेत करते हुए वे लिखते हैं^१—

१—प्रबन्धों में चंद द्वारा पृथ्वीराज या जयचन्द को सम्बोधित करके कुछ कथन कहे गये हैं, क्या इसीलिए मान लिया जाए कि चंद पृथ्वीराज का समकालीन और उसका राज कवि था ?

२—क्या उद्धृष्ट छंदों की भाषा का स्वरूप इतना निश्चयात्मक माना जा सकता है कि उसके आधार पर चन्द की अवसी रचना की प्रशंसा से अज्ञात किया जा सकता है ? डॉ० मुस ने स्वयं इन प्रश्नों के समाधान के द्वारा स्थिति का स्पष्टीकरण करना चाहा है। प्रथम प्रश्न का उत्तर देते हुए उनका यह भाष्य है कि इन प्रबन्धों पर विश्वास करना उचित नहीं है। ये प्रबन्ध कल्पित हैं। इनके आधार पर यह निर्णय नहीं किया जा सकता है कि चंद पृथ्वीराज का समकालीन या उसका राज कवि था। इस विषय में मेरा मान्य यह है कि चन्द पृथ्वीराज का समकालीन जन्मे ही न रहा हो परन्तु इन प्रबन्धों की प्राचीनता पर शंका की सम्भावना नहीं होनी चाहिए। पृथ्वीराज से सम्बन्धित प्रबन्ध पृथ्वीराज के समय में जबवा उसके पदचार् उत्कास ही अस्तित्व में आ चुके थे। द्वितीय प्रश्न का समाधान करते हुए उनका यह कथन है कि देव्य

प्राकृत में रचनायें पृथ्वीराज के अनेक वर्षों पश्चात् तक होती रही हैं। अतः इस प्राकृत में होने के कारण ही इसकी प्राचीनता प्रमाणित नहीं होती है। विचार करके दखें तो इस प्राकृत एक भ्रामक या भ्रान्तिजन्य है जिसकी मूल अनुप्रेषणा सम्भवतः डॉ० माता प्रसाद मुत्त प्रहण नहीं कर सकें हैं। इस प्राकृत के विपरीत साहित्यिक प्राकृत का भी उत्सन्न मिलता है। अब हम यह कहते हैं कि इन प्रबन्धों की रचना इस प्राकृत में हुई है तो इसका तात्पर्य यह है कि ये रचनायें अपने मूल की साक्षात्भाषा में हुई हैं। इस कथन का स्पष्टीकरण इस रूप में किया जा सकता है कि प्रत्येक वर्ष में भाषा के दो रूप मिलते हैं। प्रथम—जनभाषा का रूप द्वितीय—साहित्यिक भाषा का रूप। अपभ्रंश या मगधुट्ट में भी भाषा-स्वरूप के दो रूप मिलते हैं। अतः अब हम वर्तमान सन्दर्भ में इस प्राकृत का उत्सन्न करते हैं तो हमारा तात्पर्य जनभाषा से ही है। अतः इन प्रबन्धों की रचना अपने मूल की साहित्यिक भाषा से विपरीत जन भाषा में हुई है।

डॉ० गुप्त ने यह कहा है कि इस प्राकृत में रचना हम्पीर और उसके पश्चात् भी होती रही है। 'प्राकृत पेंसलम्' की भाषा को वे अपने कथन के प्रमाण में प्रस्तुत करते हैं। परन्तु 'प्राकृत पेंसलम्' अथवा सिद्ध हेम शम्भानुशासन' में भाषा की एक रूपता नहीं है। इनमें प्रस्तुत तीन साक्ष्योक्त से संकलित हैं। अतः इनमें भाषा का विकृतनमील स्वरूप ही मिलता है। अतः इनके आधार पर भाषा की एक रूपता के प्रति श्राव्य नहीं प्रकट करना चाहिए। 'प्राकृत पेंसलम्' में संकलित हम्पीर सम्बन्धी छन्दों की भाषा भी इस प्राकृत इस अर्थ में है कि ये छन्द अपने रचनाकाल की जन भाषा में रचित हैं। हम्पीर सम्बन्धी छन्दों की भाषा और 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' या 'अयचन्द्र प्रबन्ध' की भाषा में अन्तर है। अतः डॉ० गुप्त का यह संकेत कि इनमें भाषा का अन्तर नहीं है उचित नहीं है। इन दोनों की भाषा में काव्य का अन्तर स्पष्ट है। हम्पीर सम्बन्धी छन्दों की भाषा 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' के भाषात्मक परवर्ती काव्य की भाषा है। दोनों छन्दों की भाषा के उदाहरण प्रमाण के लिए यहाँ दिए जाते हैं।

ढोह्ला मारिअ छिह्लि मह मुच्छिअ मेअ सरीर ।
 पुरअअता मंतिअर अस्मि वीर हम्मीर ।
 अस्मि वीर हम्मीर पाअअर मेइनि अंगइ ।
 विअ भगणह अंगार अस्मि मूअह रअ अंगइ ।

प्राकृत पैगलम् ।

इसके अतिरिक्त 'हम्मीर रासो' नामक एक और रचना है जिसके कृतिकार जोधराज हैं। यह सन् १७२८ की रचना है। अयकान्त सूरि ने भी 'हम्मीर महाकाव्य' की रचना की है। यह कृति पन्द्रहवीं शताब्दी की मानी जाती है। इसमें छन्द संख्या एक हजार है। इसकी भाषा 'प्राकृत पैगलम्' में हम्मीर सम्बन्धी शब्दों की भाषा से भी विकसित होती है। उदाहरण —

बई सील अंग परे पार होई ।
 मनी बइ मी नाप सम्यंत सोई ॥
 अटारी अंग अंग हीसंत पार ।
 मनी नारि मुआ कअयो पा निवार ॥

हम्मीर रासो । छन्द १०३ ।

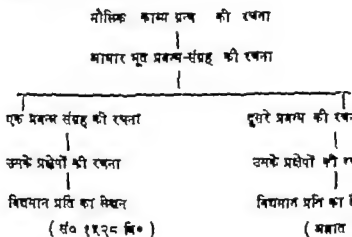
'धूम्वीराज प्रबन्ध' की भाषा देखिए—

सह नामा सिखबउ अइ सिमिखबउ बुगभाई ।
 अंगइ अइ अस्मि मंगअ परमअतर सुगअइ ॥
 पहु पहुअिराय अंगअरि पनी अंगअरि अंगअइ अंगअरि ।
 अंगअरि अंगअरि अंगअरि अंगअरि अंगअरि अंगअरि ॥

पुरातन प्रबन्ध संग्रह । २७६ ।

'धूम्वीराज प्रबन्ध' को संग्रहों में मिलता है। बाह्य समानता होते हुए भी अंदरों और बाह्य नियोजन की दृष्टि से इन दोनों में तुरन्त भेद भी है। इन दृष्टि को सम्मुख रखते हुए डॉ० माता प्रसाद कुश ने इसके विकास-क्रम-स्वरूप

का संकलित किया है जो इस प्रकार है—



अतः डॉ० गुप्त की यह धारणा है कि मौखिक काव्य-ग्रन्थ की रचना विद्यमान प्रति के संस्करण के बीच चार पीढ़ियों का अन्तर है, और प्रत्येक पीढ़ी के लिए पचास वर्षों के अन्तर को स्वीकार करते हुए उन्होंने सन् १२७१ 'गृष्मीराज रासो' का रचनाकाल स्वीकार किया है। यह समय गृष्मीराज के समय से १०० वर्ष पश्चात् पड़ता है।

'गृष्मीराज रासो' के जिस विकास क्रम की कल्पना डॉ० गुप्त ने की है, वह योजना-बद्ध है। 'अलिखित रासो' के विकास-क्रम के लिए भी इसी प्रकार की योजना उन्होंने प्रस्तावित की है। किसी भी काव्य विधा काव्य भाषास्वरूप या विशिष्ट काव्य की विकसनशीलता किसी पूर्वनिर्धारित अवलम्बित नहीं होती। इस आधार से समस्या का समाधान सम्भव न हो पाया की विकसनशीलता के विभिन्न स्तरों के क्रमनिर्धारण के आधार पर विकास-अवस्थाओं का निर्धारण हो सकता है। इस क्रम का आग्रह कर यदि 'गृष्मीराज रासो' का सम्पादन हो सके तो बलु स्थिति का किन्हीं तक स्पष्टीकरण हो सकता है।

‘पृथ्वीराज रासो’ के आदि रूप और उसकी प्रामाणिकता की कल्पना उसमें प्रयुक्त छन्दों के आधार पर भी की गई है। यह विश्वास प्रकट किया गया है कि चम्बरदाई ने अपने ग्रन्थ के आरम्भ में ही यह संकेत कर दिया है कि उनकी कृति कतिपय विविध छन्दों में ही लिखी गई है। उदा०—

छन्द प्रबंध कवित्त जति साटक गाह गुरुत्व ।

लुग बुद मन्त्रिण भंडिपहि फिगल जमर भरम्भ ॥

मधुरा प्रभाव बीजिल ने इस कथन का स्वीकरण करते हुए कहा है—
‘छन्द अर्थात् एक ही छन्द के समाना नारायण कपुतागच इत्यादि छन्दों को प्रबंध पृथ्वीराजजी के चरित्र-संयोजन को कवित्त—उत्प्रेक्षा रूपान्ति कवि-कल्पना को यति (जति) बिशम तथा साटक वर्णवृत्त धातु’क विकीकृत आदि छन्दों को तथा गाथा आयौगीति अपवीति आदि तथा द्वयर्ष स्तौत्यात्मक वर्णन को इस रासो में स्थान है।’ सम्पादक की यह धारणा है कि इन्हीं वृत्तों में ‘पृथ्वीराज रासो’ की रचना हुई है। परन्तु इस कथन का स्पष्ट अर्थ यह है कि ‘रासो’ की प्रबन्धात्मकता में ‘छन्द’ ‘कवित्त’ ‘साटक’ (घटुक) ‘गाथा’ और ‘बोहा’ (गुरुत्व) आदि वृत्तों का प्रयोग है। इस अर्थ की ग्रहण करते हुए कविराज मोहनसिंह ने यह निष्कर्ष निकाला है कि इन्हीं छन्दों में मूल ‘पृथ्वीराज रासो’ की रचना हुई है।^१ इन निष्कर्षों को स्वीकार नहीं किया जा सकता। ‘पृथ्वीराज रासो’ में ‘रासक-काव्य विधा’ के छन्द जति व्यापक रूप में प्रयुक्त हुए हैं। इसके साथ ही साप संयुक्त के छन्दों का भी प्रयोग इस कृति के वर्तमान रूप में मिलता है (फिगल जमर भरम्भ)। अतः इन छन्दों के आधार पर ‘पृथ्वीराज रासो’ के आदि रूप की कल्पना सम्भव नहीं है। इस सम्बन्ध में आवश्यक तथ्यों की सभी पृथ्वीराज रासो की सन्दर्भ-संशोधना के अन्तर्गत की गई है।

‘पृथ्वीराज रासो’ की प्रामाणिकता पर विचार करने की परम्परा इतिहास के संदर्भों तक ही सीमित रही है। इस दृष्टि से ‘पृथ्वीराज रासो’ की प्रामा

१—असली पृथ्वीराज रासो (प्रथम भाग पृ १४) : बेसिए—हिन्दी महाकाव्य का स्वर्ण विकास पृ० १२१ ।

२—इस सूत्र की ग्रहण करके वे ‘पृथ्वीराज रासो’ का सम्पादन कर रहे हैं—
राजस्थान विद्यापीठ ।

बिम्बता पर विचार करने वाले आलोचकों की दृष्टि इतिहास-सम्मत और इतिहास विपरीत तथ्यों तक ही सीमित रही है। परन्तु 'पृथ्वीराज रासो' का अध्ययन साहित्य के अन्तर्गत हम काव्य-ग्रन्थ के रूप में करते हैं। अतः काव्यात्मक अनुभूति के स्वयं में इसकी प्रामाणिकता का विवेक्षण अपेक्षित है। इस स्वयं को ग्रहण करते हुए हम आगे के पृष्ठों में विचार करते हैं। अभी इतिहास के आधार को ग्रहण करने वाले आलोचकों की भावनाओं की कहीं और विवेक्षण किया जा रहा है।

स्यामसुन्दर दास 'पृथ्वीराज रासो' को प्रामाणिक इति मानते हैं। इस विषय में उनका 'हिन्दी का आदि कवि' शीर्षक लेख विशेष महत्वपूर्ण है।^१ इस लेख में निम्नलिखित निष्कर्ष ध्यान देने योग्य हैं—

(क) जन्मवरदाई के अनुसार पृथ्वीराज का जन्मकाल संवत् १११५ ई। उनके पोट जाने का समय संवत् ११२२ ई।

(ख) संवत् ११५१ में उनका कलौज-मरण हुआ।

(ग) कदाचिद्विद ने साधे उनका अन्तिम युद्ध संवत् ११५८ में हुआ था। 'जय-काठ इ नसीरी' के अनुसार यह अन्तिम युद्ध हिजरी ५२८ (सं० १२९८) में हुआ था। इस प्रकार जन्मवरदाई की तिथि और 'नसीरी' की तिथि में २० वर्षों का अन्तर पड़ता है। इस अन्तर का समाधान उन्होंने 'आत्म्य संवत्' की कल्पना करके किया है।

हस्तलिखित पुस्तकों के अनुसंधान में मोहनकाल विष्णुलाल पण्ड्या को भी प्राचीन 'पट्टे' तथा 'परवाने' उपलब्ध हुए हैं। इनमें स्थान-स्थान पर अूपिकेश नामक व्यक्ति का उल्लेख मिलता है। वह जय या और पृथा के विवाह में समर सिंह को श्रेष्ठ में दिया गया था। पृथाबाई ने उन चार व्यक्तियों का उल्लेख किया है जो इनके साथ बिलौड़ आये थे। उनका उल्लेख 'पृथ्वीराजरासो' में भी मिलता है यथा—

धीपत साह मुजान देत जम्मह संम सिमो ।

बक मोहित गुच्छम दाहि जप्पा रुप सिमो ॥

रिपिकेन रिप बहू दाहि धनन्तर पर सोहे ।

चन्द मुतन कनि बहू अमुर मुर नर मन मोहे ॥

आर 'आनन्द संघ' का उल्लेख किया गया है। इस सम्बन्ध में विचारकों की यह धारणा है कि सम्भवतः पृथ्वीराज ने 'साय' संघत् चलाय की कल्पना की हो। 'आदि पर्व' में चण्डबरदाई ने लिखा भी है—

एकादश से पञ्चद्व विग्रह त्रिभि जुम सुत ।

पठिय साक प्रचिराज को लिख्यो विप्र पुन सुत ॥

इसी सम्बन्ध में एक अन्य मत् की वर्ण अवधि है। चण्डबर के पूर्व से लेकर चण्डबर तक उनकी परम्परा में नब्बे वर्षों की अवधि जाती है। चण्डबर से कटुता होने के कारण इस अवधि की गणना सम्भवतः पृथ्वीराज के सम्बन्ध में नहीं की गई है।

अथ स्वाम सुन्दरदास और भिय बन्धुओं ने 'पृथ्वीराज रासो' को पूर्ण प्रामा भिष माना है। इतिहास-सम्पत् आन्तियों के लिए वे निम्नलिखित कारणों का उल्लेख करते हैं—

(क) सम्भवतः चण्ड ने अपने स्वामी का वसिष्ठयोक्ति पूर्ण प्रताप-कथन किया हो। कवि के लिए यह स्वाभाविक भी था। (ख) जो आन्तियाँ विरित होती हैं वे वास्तव में आन्तियाँ नहीं हैं क्योंकि 'जावरी प्रचारिणी सभा' की ओर से प्रकाशित कुछ ताल्काविक परवानों पढ़ों से उनकी पूर्ति हो जाती है। विचियों के अन्तर के लिए भियबन्धुओं ने यह संकेत किया है कि रासो के सम्बत् विग्रह सम्बत् से नब्बे वर्ष कम हैं। यह अन्तर सभी प्रतियों में मिलता है। इसका कारण यह है कि 'पृथ्वीराज रासो' में साधारण सम्बत् का प्रयोग नहीं किया गया है। यह वह सम्बत् है जो वर्तमान सम्बत् से नब्बे वर्ष पीछे पड़ता है। यह प्रस्तावना अति विचित्र अर्थात्वातिक और उल्लेखित है। यह इस वर्ग के समर्थकों को निखी भी रूप में शक्ति नहीं प्रदान कर पाता है।

(ग) 'पृथ्वीराज रासो' के वर्तमान स्वरूप में अरबी-फारसी की शब्दावली व्यापक रूप में प्रयुक्त है। इसके आधार पर भी आलोच्य कृति की प्रामाणिकता स्थापित करने का प्रयास किया गया है। इस संकेत का निदान करते हुए उन्होंने यह कहने का प्रयास किया है कि योरी से लगभग पौने दो सौ वर्ष पहले महामुख गजनबी भारत में आया था। गजनबी से प्रायः तीन सौ वर्ष पहले ही सिन्ध-मुल्तान पर मुसलमानों का अधिकार हो चुका था। पंजाब भी मुसल मानी संस्कृति से प्रभावित हो चुका था। चण्ड काहीर का निवासी था अथ वास्यावस्था से ही अरबी और फारसी के शब्द उसके मस्तिष्क में आचुके थे।

यह निष्कर्ष भी सबल प्रमाणों के आधार पर स्पष्टीकरण की अपेक्षा रहता है। 'पृथ्वीराज रासो' में अरबी-फारसी के शब्दों की संख्या अति व्यापक है। और किसी एक निश्चित काल-अवधि में विदेशी भाषा के शब्दों की यह व्यापकता सम्भव नहीं है। यह कृति इस विद्वानों द्वारा जिस काल की रचना स्वीकृत है उस काल की भाषा में अरबी-फारसी का इतना जीवन्त प्रभाव सम्भव नहीं है। उस युग की अन्य कृतियों में 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा का यह स्वरूप परिष्कृत नहीं होता है। किसी भाषा में विदेशी भाषाओं के शब्दों का पर्याप्त मात्रा में आगमन कालक्रम से होता है। इसके अतिरिक्त विदेशी भाषा का कोन सा शब्द किसी अन्य भाषा में किस समय आया इसका भी निर्णय भाषा-स्वरूप के अध्ययन के द्वारा हो जाता है। इस दृष्टि से भी यह स्पष्ट निर्णय हो जाता है कि 'पृथ्वीराज रासो' में अरबी-फारसी के शब्दों का व्यापक मात्रा में आगमन अनेक काल-स्तरीयों में हुआ है। इस दृष्टि से यह भी स्पष्ट होता है कि अपने वर्तमान स्वरूप में आलोच्य कृति किसी एक कवि अथवा किसी एक काल प्रबन्धि की रचना नहीं है।

'पृथ्वीराज रासो' की अप्रामाणिकता पर विचार करने वाले आलोचकों ने भी इतिहास की स्वरूपा का ही आधार ग्रहण किया है। बंगाल से 'रायल एशियाटिक सोसाइटी' द्वारा 'पृथ्वीराज रासो' का प्रकाशन हो रहा था। मुरारीदास और स्वामिन्याय ने इस कृति की प्रामाणिकता पर सन्देह प्रकट किया। इनके सन्देह से अनुप्रेरित हो कर और जयानक के 'पृथ्वीराज विजय' के विस्लेषण से पूर्णतः निश्चित होकर बृह्हर ने भी इस विश्वास का प्रतिपादन किया है कि 'पृथ्वीराज रासो' एक अप्रामाणिक रचना है। इनके निष्कर्षों से प्रभावित होने के कारण 'एशियाटिक सोसाइटी' ने इसका प्रकाशन स्वर्णित कर दिया।

काश्मीर के कवि जयानक की रचना 'पृथ्वीराज विजय' एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। अपने वर्तमान रूप में यह अपूर्ण है इसमें केवल बारह सर्ग हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि यह कृति संवत् १२४६ में लिखी गई है। इस ग्रन्थ के बारहवें सर्ग में यह संकेत मिलता है कि काश्मीर का एक कवि (सम्भवतः जयानक ?) पृथ्वीराज के बज्जार में आया है। वहाँ उसको सम्मान मिलता है और उतका परिचय राजकवि तथा सामन्त पृथ्वी मट्ट से कराया जाता है। यह अनुमान किया जाता है कि यह घटना पृथ्वीराज की मृत्यु के कुछ ही समय (दो-एक वर्ष) पूर्व हुई होगी। इसके बारहवें सर्ग में पृथ्वीराज को राज का अवतार कहा

गया है। इसके अनुसार तिलोत्तमा ने गंगा तटवर्ती किसी विशेष स्थान पर राजकुमारी के रूप में अवतार लिया था। इस वर्णन के बाद प्रति खण्डित है।

डॉ० बूल्हर ने 'पृथ्वीराज विजय' का विरलेख किया। इस विरलेख के अनुसार जयानक पृथ्वीराज का सम्कासीन था। जयानक ने जाहानों का भी वर्णन प्रस्तुत किया है उसकी प्रामाणिकता इतिहासग्रन्थों और सिंहासेखों से स्थापित हो जाती है। 'पृथ्वीराज रासो' में वर्णित कृत्यों और सिधियाँ इतिहास विपरीत पड़ती हैं। इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय यह है कि कतिपय विचारकों ने 'पृथ्वीराज विजय' के आधार पर ही 'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता का संस्थापन किया है। जयानक का परिचय पृथ्वीराज के राज कवि पृथ्वी भट्ट से कराया गया। जयानक ने इसका संस्केष किया है। इस वर्ष के जासोचको को यह कारण है कि पृथ्वीभट्ट जम्बरबाई का ही नाम था। परन्तु इस निर्वय के लिए उनके पास कोई सापेक्ष प्रमाण नहीं है। इन जासोचको की यह भी कारण है कि 'पृथ्वीराज विजय' में जिस तिलोत्तमा की चर्चा मिलती है वह जयचन्द की पुत्री संयोजिता ही है। 'पृथ्वीराज विजय' की प्रति खण्डित है। कत इन विचारकों का यह अनुमान है कि जाये तिलोत्तमा (संयोजिता) और पृथ्वीराज के विवाह का वर्णन रहा होगा और सहाबुद्दीन के साथ पृथ्वीराज के संघर्षों का भी वर्णन उसमें अनिवार्य रूप से रहा होगा। यदि ये निष्कर्ष सत्य हैं तो 'पृथ्वीराज विजय' की तिलोत्तमा और पृथ्वीराज रासो की 'संयोजिता' एक ही व्यक्ति हैं। दोनों ग्रन्थों में नाविका को अप्सरा के अवतार के रूप में स्वीकार किया गया है। इस संदर्भ में मेरा विचार जाग्रह यह है कि 'पृथ्वीराज विजय'

१—पृथ्वीराज विजय की हस्तलिखित खण्डित प्रति डॉ० बूल्हर को सन् १८७१ में बारासीर में प्राप्त हुई थी। इसमें जेलराज की टीका भी संलग्न है। डॉ० बूल्हर तथा जेम्स मारीसन् ने इसका अध्ययन लिया है। देखिए Proceedings of the Royal Asiatic Society of Bengal April 1893 Extract Number of the Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society 1877

की सम्पूर्ण प्रति जब तक उपलब्ध न हो जाय तब तक इस प्रकार का कोई निर्णय नहीं लिया जा सकता है ।

‘पृथ्वीराज विजय’ के बिलम्ब से ‘पृथ्वीराजराधा’ की प्रामाणिकता या अप्रामाणिकता की संस्थापना सम्भव नहीं है ।

सन् १२०० के लगभग कास्मीर के कवि और वाक्याय कपरम का उल्लेख मिलता है । इनके एक ग्रन्थ ‘विमर्शिना’ का उल्लेख मिलता है । इस ग्रन्थ में ‘पृथ्वीराज विजय’ का स्पष्ट उल्लेख मिलता है । अतः ‘पृथ्वीराज विजय’ की रचना इस समय तक हो चुकी थी ।^१

प्रसिद्ध इतिहासकार और पुरातत्त्ववेत्ता श्री गौरीशंकर हीराचन्द बाम्ना ने ‘पृथ्वीराज रासों’ की आन्तरिकता का मूल्यांकन इतिहास के मूलमूलम तथ्यों के

१—देखिए—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० १६१ ।

२—पृथ्वीराज विजय का विभाजन इस प्रकार है—प्रथम सर्ग—पुरुष कर्मियों—कास्मीकि व्यास आदि की कदना के पश्चात् पृथ्वीराज की मोरन गाथा का वर्णन । द्वितीय सर्ग—मूल मण्डल से बाह्यमान (चौहानों के वारि पुत्र) का अवतरण बामुदेव का जन्म वर्णन । तृतीय सर्ग—बामुदेव वर्णन (साकम्परी भीम की उत्पत्ति की कथा) बामुदेव का वहाँ प्रस्थान । चतुर्थ सर्ग—और पञ्चम सर्ग—बामुदेव का वध वर्णन अजयराज का वर्णन । षष्ठ सर्ग—अजयराज के पुत्र अर्जुनराज का उल्लेख । अर्जुनराज की दो रानियों—सुषमा और कंचन देवी का उल्लेख । सुषमा के तीन पुत्रों में विग्रहराज की कीर्ति वर्णन । कंचन देवी के पुत्र सोमेस्वर का उल्लेख ।

सप्तम सर्ग—कुमारपाठ का वर्णन । सोमेस्वर और कर्पूरदेवी के विवाह की कथा । अष्टम सर्ग—पृथ्वीराज की जन्म कथा । नवम सर्ग—कम्पूरदेवी के शासन का वर्णन । कादम्बरबास की प्रतिमा की वर्णन । दशम सर्ग—पृथ्वीराज के विवाह की कथा । पृथ्वीराज के मुठों का वर्णन । एकादश सर्ग—गोरी और कादम्बरबास के वध संघर्ष का वर्णन । भीमदेव द्वारा मोरी की पराजय की कथा । पृथ्वीराज की प्रणय-उद्भावनाओं में उद्योग के अन्तर्गत उसकी चित्रशाला का सौन्दर्य वर्णन । द्वादश सर्ग में बबानक का परिचय इसके पश्चात् की प्रति खण्डित है—विशेष सूचना के लिए देखिए—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृष्ठ १६१ ।

गया है। इसके अनुसार तिलोत्तमा ने गंगा तटवर्ती किसी विशेष स्थान पर राजकुमारी के रूप में अवतार लिया था। इस वर्णन के बावद प्रति सन्निहित है।

डॉ० ब्रूस्टर ने 'पृष्णीराज विजय' का विश्लेषण किया। इस विश्लेषण के अनुसार जयानक पृष्णीराज का समकालीन था। जयानक ने चौहानों का जो वर्णन प्रस्तुत किया है उसकी प्रामाणिकता इतिहासग्रन्थों और शिलालेखों से स्थापित हो जाती है। पृष्णीराज रासो में वर्णित बटनामें और त्रिविधों इतिहास विपरीत पड़ती हैं। इस सन्दर्भ में विशेष उल्लेखनीय यह है कि कतिपय विचारकों ने 'पृष्णीराज विजय' के आधार पर ही 'पृष्णीराज रासो' की प्रामाणिकता का संस्थापन किया है। जयानक का परिचय पृष्णीराज के राज कवि पृष्णी भट्ट से कराया गया। जयानक ने इसका उल्लेख किया है। इस वर्ग के आलोचकों की यह धारणा है कि पृष्णीभट्ट जयवरदाई का ही नाम था। परन्तु इस निर्णय के लिए उनके पास कोई सापेक्ष प्रमाण नहीं है। इन आलोचकों की यह भी धारणा है कि 'पृष्णीराज विजय' में जिस तिलोत्तमा की चर्चा मिलती है वह जयचन्द की पुत्री संयोगिता ही है। 'पृष्णीराज विजय' की प्रति सन्निहित है। अब इन विचारकों का यह अनुमान है कि जाने तिलोत्तमा (संयोगिता) और पृष्णीराज के विवाह का वर्णन रखा होगा और सहायदुरीन के साथ पृष्णीराज के संपर्कों का भी वर्णन उसमें अनिवार्य रूप से रखा होगा। यदि ये निष्कर्ष सत्य हैं तो 'पृष्णीराज विजय' की तिलोत्तमा और पृष्णीराज रासो की 'संयोगिता' एक ही व्यक्ति हैं। दोनों ग्रन्थों में नायिका को अप्सरा के अवतार के रूप में स्वीकार किया गया है। इस सन्दर्भ में मेरा विनम्र आग्रह यह है कि 'पृष्णीराज विजय'

१—पृष्णीराज विजय की हस्तलिखित सन्निहित प्रति डॉ० ब्रूस्टर को सन् १८७५ में काश्मीर में प्राप्त हुई थी। इसमें जेलराज की टीका भी संलग्न है। डॉ० ब्रूस्टर तथा जेम्स मारीसन ने इसका अध्ययन किया है। देखिए Proceedings of the Royal Asiatic Society of Bengal April 1893 Extract Number of the Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society 1877

की सम्पूर्ण प्रति जब तक उपलब्ध न हो जाय तब तक इस प्रकार का कोई निर्णय नहीं किया जा सकता है ।

‘पृथ्वीराज विजय’ के विनयम से ‘पृथ्वीराजरासो’ की प्रामाणिकता या अप्रामाणिकता की संस्थापना सम्भव नहीं है ।

सन् १२०० के लगभग काश्मीर के कवि और व्याख्यानकारण का उत्पन्न मिश्रता है । इनके एक ग्रन्थ ‘विमर्शिना’ का उल्लेख मिलता है । इस ग्रन्थ में ‘पृथ्वीराज विजय’ का स्पष्ट उल्लेख मिलता है । अतः ‘पृथ्वीराज विजय’ की रचना इस समय तक हो चुकी थी ।^१

प्रसिद्ध इतिहासकार और पुरातत्त्ववेत्ता श्री मोरीसकर हीराचन्द्र ओझा ने ‘पृथ्वीराज रासो’ की आन्तरिकता का भूस्थानक इतिहास के सूक्ष्मतम तत्वों के

१—देखिए—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० १६१ ।

२—पृथ्वीराज विजय का विभाजन इस प्रकार है—अथम सर्ग—पूर्व कवियों—बास्मीकि व्यास आदि की कल्पना के पश्चात् पृथ्वीराज की गौरव गाथा का वर्णन । द्वितीय सर्ग—सूय मण्डल से चाहमान (चौहानों के आदि पुत्र) का अवतरण बामुदेव का जन्म वर्णन । तृतीय सर्ग—बामुदेव वर्णन (राक्षसगिरी भीम की उत्पत्ति की कथा) बामुदेव का बहौ प्रस्थान । चतुर्थ सर्ग—और पञ्चम सर्ग—बामुदेव का वंश वर्णन अजयराज का वर्णन । षष्ठ सर्ग—अजयराज के पुत्र अर्जोराज का उल्लेख । अर्जोराज की दो रानियों—सुपदा और कंचन देवी का उल्लेख । सुपदा के तीन पुत्रों में विश्वराज की कीर्ति चर्चा । कंचन देवी के पुत्र सोमेश्वर का उल्लेख ।

सप्तम सर्ग—कुमारपाल का वर्णन । सोमेश्वर और कर्पूरदेवी के विवाह की कथा । अष्टम सर्ग—पृथ्वीराज की जन्म कथा । नवम सर्ग—कमूदेवी के शासन का वर्णन । काश्मिरास की प्रतिमा की चर्चा । दशम सर्ग—पृथ्वीराज के विवाह की कथा । पृथ्वीराज के मुठों का वर्णन । एकादश सर्ग—गोरी और काश्मिरास के मध्य संघर्ष का वर्णन । भीमदेव द्वारा गोरी की पराजय की कथा । पृथ्वीराज की प्रणय-उद्वाहनाओं में उद्गीर्ण के अन्तर्गत उसकी चित्रपाला का सौन्दर्य वर्णन । द्वादश सर्ग में अजयराज का परिचय इसके पश्चात् की प्रति छण्डित है—विशेष सूचना के लिए देखिए—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० १२३ ।

मानव्य पर किया है। उनकी यह चारणा है कि वि० सं० १९४० में रचित 'हम्मीर काव्य' एक प्रामाणिक कृति है। प्रस्तुत कृति के स्वप्न पर हम विचार कर चुके हैं। इस रचना में चौहानों को अग्निबन्धी नहीं माना गया है। 'पृथ्वीराज रासो' में उन्हें अग्निबन्धी माना गया है। इस अन्तर के आधार पर अपना निष्कर्ष प्रमाण करते हुए वे कहते हैं 'इससे सात होता है कि उस समय तक 'पृथ्वीराज रासो' प्रसिद्धि में नहीं आया। यदि 'रासो' की प्रसिद्धि हो गई होती तो 'हम्मीर महाकाव्य' का लेखक उसी के आधार पर बसता।

गौरीदास हीराचन्द ओझा ने कुम्भसगढ़ किले का उल्लेख किया है। महाराजा कुम्भकर्ण ने वि० सं० १२१७ में इसका निर्माण किया। कुम्भ स्वामी के मन्दिर में पाँच छिन्नासेखों पर श्लोकों में अपने समय तक के मेवाड़ के शासकों का विस्तृत वर्णन है। इस सन्दर्भ में इतिहासकार ने दो प्रमुख तथ्यों की ओर संकेत किया है—(क) समरसिंह ने पूषा (पृथ्वीराज की बहन) के साथ विवाह किया था इसका यहाँ कोई उल्लेख नहीं मिलता। (ख) समरसिंह गौरी के साथ युद्ध में मारा गया इसकी स्मृति इन छिन्नासेखों में नहीं होती है। इसके समानान्तर महाराजा राजसिंह के राजसमुद्र के तटस्थ के गौरी बाँध पर स्थापित पचीस छिन्नासेखों पर उत्कीर्ण महाकाव्य को ओझाजी ने प्रस्तुत किया है। इसके तृतीय सर्ग में समरसिंह और पूषा के विवाह का उल्लेख है। समरसिंह का गौरी द्वारा बंध हुआ इस बटना का भी उल्लेख यहाँ मिलता है। इन दो बटनाओं की प्रामाणिकता के लिए इस महाकाव्य में 'पृथ्वीराज रासो' में वर्णित इन बटनाओं को साक्षी रूप में ग्रहण किया गया है। अतः निष्कर्ष रूप में इनकी मान्यता है कि पृथ्वीराज रासो की रचना कुम्भसगढ़ किले की स्थापना (वि० सं० १२१७) के पश्चात् और राजसमुद्र तटस्थ के निर्माण (१७३२) के पूर्व होगी।

इस प्रकार ओझा जी भी इतिहास के सन्दर्भ से ऊपर नहीं उठ पाते।

सं० १९३४ में मुर्जन हाड़ा की प्रसिद्धि में लिखित मुर्जन चरित महाकाव्य का उल्लेख पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता की स्थापना में किया जाता है। यह

बत्तीस सर्गों की कृति है। इसके अनुसार साहमान या बहमान ब्रह्मा के यज्ञकृष्ट से प्रकट हुए हैं (सर्ग सात)। इसके दसवें सर्ग में कान्यकुब्जेश्वरी के साथ पृष्णीराज की प्रेमकथा के साथ-साथ मकेन्द्यों के इन्हीं बार पराजित होने का उल्लेख है। अन्तिम संघर्ष में पृष्णीराज की पराजय के साथ-साथ उसका वन्दी होकर यज्ञभी जाना भी वर्णित है। उसके नेत्रहीन होने की कथा भी यहाँ मिलती है। कन्द कवि के गवनी जाने के उल्लेख के साथ-साथ राजबेभी बाण द्वारा गोरी के बप का भी उल्लेख है। इस सुन्दर में इस साथ की ओर संकेत दिया जा सकता है कि 'सुजन बरि' में वर्णित ये ब्रह्मायें 'पृष्णीराज रासो' से ही ग्रहण की गई हैं अतः 'सुजन बरि' के आधार पर प्रामाणिकता-संस्थापना की चेष्टा निरर्थक उपयोगी नहीं सिद्ध होगी। क्योंकि 'सुजन बरि' महाकाव्य में वर्णित ब्रह्मायें बीकानेर कोर्ट में मूरखित 'पृष्णीराज रासो' की प्रति में उपलब्ध घटनाओं के अनुसार ही हैं।

मोती साक मेनारिया की यह संस्थापना है कि चण्ड नाम का कोई कवि पृष्णीराज का सामयिक या परन्तु उसने 'पृष्णीराज रासो' नाम की कोई कृति लिखी है इसमें संदिग्ध है। उन्होंने 'रामलक्ष्मण' या 'पावनी रा सूर' की तरह पृष्णीराज से सम्बंधित किसी लघु काव्य की रचना की या उसकी प्रशस्ति में कतिपय फुटकर पदों की रचना की। 'बाह-ने-बकवरी' में सूर दास की कृति 'साहित्य सङ्घरी' का उल्लेख मिलता है। इसके एक पत्र में सूत्रास ने अपने को चंद का बंराज कहा है। इस कथन पर किसी बजात कवि की टीका भी मिलती है।

प्रथम ही पृथु यय ते मे प्रकट बहमुत्त वय ।
बहु राव विचार ब्रह्मा राजु नाम अनुप ॥
पाव यय वैभी दियो सिव भारि सूर मुख पाय ।
कहो दुर्गा पुत्र तेरो भयो बरि बधिकाय ।

पारि पायन सुरत के सुर संहित अस्तुति कीन ।

तामु बंस प्रसंस में भो चन्द्र बास नवीन ॥

भूप पृथ्वी राज वीन्हों दिन्हें प्यासा देस ।*

इस ने इस शक्ति को ग्रहण किया था सकता है कि चन्द्रबरवाई माट या मट्टवंध के थे । 'पुरातन प्रबंध' संग्रह में भी चंद्र को माट या मट्टबाति का कहा गया है । 'महिम्न पुराण' के प्रस्तुत अंश को आधार मान कर भी सुरदास और चन्द्र को मट्ट बाति का कहा गया है—

सुरदास इति होय कुम्भसीलाकार कवि

सम्मुखे चन्द्र मट्टस्म कुम्भे बातो हरि प्रिय ।

'साहित्य संहरी' की प्रामाणिकता पर निर्णय नहीं हो सका है । 'चन्द्र चन्द्र वर्णन की महिमा' का उल्लेख 'रासो' की प्रामाणिकता संस्थापना हेतु कतिपय सम्दर्भों में किया जाता है । परन्तु 'चन्द्र चन्द्र वर्णन की महिमा' की प्रामाणिकता पर हम निर्णय लेने में असमर्थ हैं । अतः आलोच्य सम्दर्भ में इसका उपयोग समस्या के निर्णय में विशेष उपयोगी नहीं होगा ।* इन सम्दर्भों से एक ही निष्कर्ष निकलता है कि चक्रवर्त के समय तक 'पृथ्वी राज रासो' और चन्द्रबरवाई का व्यापक प्रचार हो चुका था । परन्तु यह प्रचार छोटे-अनुभूतियों के माध्यम से ही बिना रूप में हुआ कम रहा है । 'रासो' की प्रामाणिकता या उसके मूल रूप का इन सम्दर्भों से कोई परिचय नहीं मिलता ।

इस प्रकार 'पृथ्वी राज रासो' का विस्तृत इतिहास की पीछिका पर किया गया है । और किसी निष्कर्ष पर पहुँचने की अपेक्षा समस्या और गुम्फित होती गई । 'रासो' की विवेचना हिन्दी साहित्य के इतिहास के अन्त

१—वैशिष्ट्य—हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० २५२ । परन्तु लेखक ने इस उद्धार के मोट का उल्लेख नहीं किया है, जिससे इसकी प्रामाणिकता का प्रश्न उत्पन्न होता है ।

२—चन्द्र चन्द्र वर्णन की महिमा की त्रिविध प्रति का उपयोग किया गया वह ऐतिहासिक सोसाइटी बंगाल में मुरलित है । यह किसी प्रतिनिधि की प्रतिनिधि है ।

जो इतिहास द्वादश वंश में होती गयी है। विद्वानों के लिए यह अत्यन्त
 वांछनीय कि बाल-वृद्धि के रूप में इसकी समस्त समस्तियों का विचार करने।
 निम्न निम्न प्रतिष्ठों का मापान्तर द्वादश वंश इसकी जगह के विभिन्न लोगों के
 लक्षण का वर्णन करने। आधुनिक युग में इन्हीं मन्त्रों के ब्रह्मण वर 'पृथ्वी
 राज राजों' के स्वयं और उसी आनादित्यता का विचार किया गया है।
 'पुनः पृथ्वी' में इस सत्त्व की चर्चा की जा रही है।

'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' की मूद्रिका में मुद्रित-विषय न 'पृथ्वी राज राजों
 के काव्य-जन सम्बन्धी वैज्ञानिक विचार वाग्वों की सक्ति-रूप-संयोजन
 उल्लिखित की है। 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के पृष्ठ संख्या ८६ ८८ ८९ का सम्पर्क
 दृष्ट करने हुए उन्होंने कहा है कि चन्द्र एक ऐतिहासिक व्यक्ति है 'पृथ्वीराज
 के समकालीन थे। उस पृथ्वी राज के वैज्ञानिक-वर्णन के लिए ऐतज्य प्राकृत
 भाषा में एक काव्य की रचना की थी जो 'पृथ्वी राज राजों' के नाम से विख्यात
 हुआ। 'प्रबन्ध चिन्तामणि' 'प्रबन्ध कोश' तथा 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में संकल्पित
 प्रबन्धों द्वारा पृथ्वी राज से सम्बन्धित घटनाओं की पुष्टि होती है। मरुगुप्त
 की इति 'प्रबन्ध चिन्तामणि' के 'सुंदर मुमट' प्रबन्ध में पृथ्वी राज और गोरी के
 मध्य २७ युद्धों का उल्लेख है। इस मन्दिर में राजेश्वर सूरि रचित 'प्रबन्ध कोश'
 (पृ. १८५) विशेष उल्लेखनीय रचना है। इसके 'बन्धु पाठ प्रबन्ध' के अनु-
 सार पृथ्वी राज ने गोरी को बीज बार बन्दी बनाया और उन्हें मुक्त कर दिया।
 अन्तिम बार गोरी ने पृथ्वी राज को पराजित कर उनका वध किया—

परिचित बार बड़-बड़ सहाय रीति सुराज्य मोटा पृथ्वी राज निष्ठा।
 इसमें जयचक्र और पृथ्वी राज सम्बन्धित प्रबन्ध गी हैं। इन में पृथ्वी राज से
 सम्बन्धित इतिहास-सम्मान लक्षों की पुष्टि तो होती है। परन्तु इन प्रबन्धों में उन
 लक्षों का वर्णन 'पृथ्वी राज राजों' के साथ रूप और उसकी भाषा
 के स्वयं निष्कर्ष में विशेष सहाय्यी है। इन प्रबन्धों की ओर अर्पित करने हुए
 यह कहा गया है कि इनमें दो 'अन्तर्बहिर्' के और दो 'अन्त' के हैं। इसमें
 यह स्पष्ट जाना है कि 'पृथ्वी राज राजों' अपने मूल रूप में इन्हीं लक्षों में रचित

अपभ्रंश-अवशुद्ध की कृति है। 'चन्द्र बलिह्व' के अतिरिक्त बल्ह ने भी पृथ्वी राज से सम्बन्धित छन्दों की रचना की है। सं० १२६० तक पृथ्वी राज और धाहापुरीन के मध्य सात युद्धों के होने की अनुभूति प्रचलित हो चुकी थी। राजवैश्वर घुरि (सं० १४५) तक ये अनुभूतियाँ लगातार बर्धित हो गईं। तद्विषय यह कि समय-समय में लोक अनुभूतियों के आधार पर इसका विकास हुआ है। अतः वर्तमान रूप में समग्रता की दृष्टि से यह एक काम अपना एक कवि की कृति नहीं है। अपने वर्तमान रूप में 'पृथ्वी राज रासो' एक विपुलायतन काव्य ग्रन्थ है। और इसके कवि चन्दबरबाई का व्यक्तित्व भी विपुलायतन ही है। डॉ० दाधि भूषण दास गुप्त ने अपने 'वात्सीकि और काश्मिरास' शीर्षक निबन्धमें एक महत्त्वपूर्ण सत्य की ओर संकेत किया है। यद्यपि इनका यह संकेत 'रामायण' और 'महाभारत' के सन्दर्भ में है परन्तु 'पृथ्वी राज रासो' या किसी भी विक-समशील विपुलायतन काव्य के लिए यह बसन्त्य विषय महत्त्व रखता है। 'जैसे एक बीज बाल फलर को बेर कर स्फुरिक के समी फलर गोंधे जाते हैं अपना जैसे एक बीजकोप को अवलम्बन कर असंख्य कोपो के समवाय के फल स्वरूप बीज पैदा बनता है, उसी तरह उस काव्य में एक विशेष प्रतिभा को कन्द्र में रक्त कर छोड़ी बड़ी सभी प्रतिभाएँ एक साथ गठित होती थी। वात्सीकि-रचित रामायण अपना व्यास रचित महाभारत का अध्ययन करने पर यह प्रतीत होता है कि कई बिनो या कई वर्षों में किसी एक विशेष कवि के द्वारा ये वृहत्काय काव्य नहीं रचे गये। जैसे लक्ष्मी की मूर्त प्रतिमा के लिए विपुल बाग़र बाहिनी की कर्मनिपुणता बलिग सागर पर विद्यास हेतु कन्य निर्माण में समर्प हुई थी उसी प्रकार वात्सीकि तथा वेदव्यास की प्रतिभा को अवलम्बन कर उस काम के छोटे-बड़े असंख्य कवियों की साक्षिर-साक्षना लेकर रामायण-महाभारत का काव्य संकलन सड़ा हुआ। ऐसे छोटे-बड़े अनेक कवियों को आत्मसात् कर लेने के कारण विपुलायतन रामा यण और महाभारत के कवि भी विपुलायतन हैं।' मेरा विमर्श आग्रह है कि चन्द्रबलिह्व की प्रतिभा का भी आधार ग्रहण कर अनेक कवियों की साक्षिर-साक्षना

(त्रिपेक्षे लोक-कवि की प्रतिमा भी सम्मिलित है) के कण्ठस्वरूप ही 'पृथ्वीराज रासो' का वर्तमान स्वरूप सम्भव हो सका है। यही कारण है कि विपुलायतन 'पृथ्वीराज रासो' का कवि भी विपुलायतन है। इन कवियों में केवल बहू ही अपनी कविप्रतिमा का संरक्षण कर सके हैं। चन्द्रवर्धन ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। परन्तु इसकी कविप्रतिमा में इनके परिवर्ती कास में अनेक अलौकिक और अतिहासिक तत्वों का समावेश होता रहा है। अतः 'पृथ्वीराज रासो' के वर्तमान स्वरूप में चन्दरसई क कविस्वरूप के मूल अस्तित्व की संस्थापना सम्भव नहीं है। 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में जो छप्पन मरुचित हैं वे निश्चय ही एक विशेष कवि की रचना हैं। परन्तु 'पृथ्वीराज रासो' को पढ़कर यह लगता है कि यह एक कवि अथवा युग विराट की रचना नहीं है। इस वृहत्काय काव्य में एक व्यापकयुग-जीवन की अन्तरेतना का अंकन स्पष्ट रूप में दृष्टिगोचर होता है। यह युग जीवन जिस में उत्तरभारत के पश्चिमी प्रायद्वीप को समग्रता उद्भूत होकर जीवन के गरवा एक पद्यतक पर नव अंकुर के लिए साक्षात् दृष्टिगोचर होती प्रतीत होती है। आन्तरिक व्यक्तियों और बाह्य संघर्षों को बहुत करन वाली मानवता विरवास और आस्था के साथ आधी युग के मरुत्यों में अपने अवचतन में ही संलग्न थी। एक विशाल जनजीवन का जीवन-इतिहास 'पृथ्वीराज रासो' में संकलित है। यही कारण है कि यह काव्य-कृति अपनी उदात्तारिमा की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है। 'पृथ्वीराज रासो' का मूल्यवान् आधिकारिक साहित्य की काव्य प्रवृत्तियों और काव्य-रूपों के अध्ययन में विशेष महत्त्वपूर्ण होगा। इन दो तत्वों का आचार ग्रहण कर हम इसके मूल रूप की कल्पना कर सकते हैं अथवा इसका मूल रूप के निकट पहुँच सकते हैं। 'पृथ्वीराज रासो' से सम्बन्धित अध्ययन की इस विधा की ओर ध्यान आकर्षित करने का सर्वप्रथम प्रयास डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने किया है।'

सर्वप्रथम हमारा ध्यान कविराज मोहन सिंह की प्रस्तावना की ओर जाता है। उन्होंने 'रासो की अनिव्यक्तता विधा का आचार ग्रहण करते हुए इसकी प्रमाणिकता-संस्थापना की विष्टा की है। उन्होंने प्रस्तुत अंग उद्भूत करने हुए

कहा है कि इन्हीं छन्दों में 'पृथ्वीराज रासो' का मूल स्वरूप रचा गया होगा—

छन्द प्रबन्ध कवित यति साटक माह कुहल

सबु मुठ मंथित जडि यह, पियस जमर भरतब ।

इसके अनुसार कवित (पद्यगीत) साटक (साङ्गिक निरूपित) गाथा (भाषा) और बोधा आदि छन्दों में ही मूल रासो की रचना हुई है । परन्तु 'पृथ्वीराज रासो' रासक-काव्य-परम्परा की कृति है । 'रासक-काव्य विधा' में प्रयुक्त समस्त प्रकार के छन्दों का प्रयोग इस कृति में हुआ है । इसके अतिरिक्त जिन छन्दों को यहाँ 'रासो' का मूल माना गया है उनमें प्रस्तुत 'पृथ्वीराज रासो' की कतिपय वृत्तिमाँ प्रस्तुत या अप्रामाणिक हैं ।

ऊपर यह कहा गया है कि 'पृथ्वीराज रासो' रासक काव्य-परम्परा की कृति है साथ ही साथ इसकी प्रकृति निरन्तरशील भी रही है । अप्रभ स काव्य विधाओं की समग्रता इसके निरन्तरशील स्वरूप में प्रतिबिम्बित है । गेय-नृत्य रासक काव्य की भूमिका से वद्वन्धित होकर इसने चरित और कथा की अनुपेक्षा को भी व्यापकपूर्ण ग्रहण किया है । अप्रभ स काव्य-रूपों की समग्रता इस पृष्ठ काव्य ज्ञान के संयोजन में द्विधाशील सम्यगी है । काव्य-रूपों की व्यापकता के साथ साथ अभिव्यक्तता प्रणाली की व्यापकता भी यहाँ विशेष रूप से देखने को मिलती है । अप्रभ स के जिन व्यापक काव्य रूपों की चर्चा विस्तृत पृष्ठों में हो चुकी है उनकी संक्षिप्तता 'पृथ्वीराज रासो' में मिलती है । इसी प्रकार छन्दों के जति व्यापक प्रयोग की दृष्टि से भी 'रासो' आधिकारिक की प्रतिनिधि रचना है । निम्नके पृष्ठों में यह संक्षिप्त किया गया है कि रासक-काव्य-वारा में कास-क्रम से चरित या कथा तत्त्व का भी समावेश किया गया । अतः 'पृथ्वीराज रासो' 'रासक काव्य' के साथ-साथ 'चरित काव्य' भी है । इस प्रकार यह निर्णय किया जा सकता है कि अपने आरम्भिक रूप में 'पृथ्वीराज रासो' कतिपय छन्दों में गीत-नृत्य-परक रहा होगा । और इसका प्रचार जन-जीवन में हुआ होगा और इस प्रचार के समानांतर

१—राजस्थान भारती भाग १ अंक २ ३ मुम्बई-अक्टूबर १९४६ पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता पर पुनर्विचार ।

जैसे साहित्य का भी मही मोरना भी हुई होगी। अब आवश्यकता इस बात की है कि हम 'पृथ्वीराज रासो' के उन अंशों को देखें जिनमें 'रासक-काव्य' के सशक्त विद्यमान मिलते हैं। 'पृथ्वीराज रासो' में कतिपय संकेत मिलते हैं जिनके आधार पर यह निर्णय करने का प्रयत्न जायज होता है कि इस कृति का आदिकवि नीति-नृत्य तत्त्वों से समन्वित रहा होगा।

उदाहरण—

बल नीम अक्षर सुरंग पाट कहु मुख निधि मंत्रिय ।

मुर विकास जारी सु मुन्य अक्षरस गौरव निधिय ॥

आदिपर्व समय प्रथम सू० ४० ।

पृथ्वीराज रासो के ये तत्त्वों से परिपूर्ण होने का संकेत प्रस्तुत अक्षरों में भी मिलता है—

मंत्र सति क या मंत्र भूप अर्पण सप्येवम् ।

मुने भवन मुन एह बान भद्रा करि देख्य ।

तक बिल करि माय भाव मायम्ह पावय ।

अरु हीन कन हीन अरुह मन मायम् ।

पिण्ड प्रमाण बहु भक्ति वृत्ति रस रूपक मन्त्र मन्त्र सरय ।

बरादाय भाव रसमा रसिक परचि परचि प्रीति पावे सुरस ॥

समयो १८ २२४ ।

अथर्वि ने अंध परवर्ती काष्ठ में 'पृथ्वीराज रासो' में सम्मिश्रित किए गए हैं परन्तु इससे यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि 'पृथ्वीराज रासो' के विकास-स्वरूप निर्माण में 'रासक-काव्य' स्वल्प के योगदान ने अवश्य सहयोग प्रदान किया है।^१ आरम्भिक पृष्ठों में यह भी कहा गया है कि दसवीं-ब्याहों शताब्दी तक 'रासक-काव्य' विधा में प्रबल काव्यों की रचना भी होने लगी थी और इस परम्परा का पूर्ण विकास 'पृथ्वीराज रासो' में मिलता है। अब 'रासक-काव्य' विधा की गम्यता की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' उद्यत प्रयोग प्रधान मेघ रूपक के अन्तर्गत आता है। जिनमें युद्धों के वर्णन के साथ-साथ प्रेम-सीताओं का भी अनुयोग मिलता है। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी 'पृथ्वीराज रासो' में उसका 'रासक-

१—बेनिप — हिंदी महाकाव्य का स्वल्प विकास ।

कहा है कि इन्हीं छन्दों में 'पृथ्वीराज रासो' का मूल स्वरूप रचा गया होगा^१—

छंद प्रबन्ध कवित यति साटक माह गुरुत्व

सबु बुद्धं मन्त्रित बन्धि यह, सिंगल बमर मरत्व ।

इसके अनुसार कवित (पटुप्पी) साटक (सादूस मिट्टीधित) माहा (गाथा) और बोहा आवि छन्दों में ही मूल रासो की रचना हुई है । परन्तु 'पृथ्वीराज रासो' रासक-काव्य-मरम्परा की कृति है । रासक-काव्य विधा में प्रमुक्त समस्त प्रकार के छन्दों का प्रयोग इस कृति में हुआ है । इसके अतिरिक्त विन छन्दों को यहाँ 'रासो' का मूल माना गया है जिनमें प्रस्तुत 'पृथ्वीराज रासो' की कतिपय वृत्तियाँ प्रसिद्ध या अप्रामाणिक हैं ।

अगर यह कहा गया है कि 'पृथ्वीराज रासो' रासक-काव्य-मरम्परा की कृति है साथ ही साथ इसकी प्रवृत्ति निम्नस्तरीय भी रही है । अथवा रासक-काव्य विधाओं की समग्रता इसके निम्नस्तरीय स्वरूप में प्रतिबिम्बित है । येय-नृत्य रासक काव्य की भूमिका से पद्धति होकर इसने चरित और कथा की अनुवैठना को भी आवश्यकपूर्वक ग्रहण किया है । अथवा रासक-काव्य-रूपों की समग्रता इस गुरु काव्य छन्द के संमेलन में क्रियाशील लगती है । काव्य-रूपों की व्यापकता के साथ साथ अभिव्यक्तता प्रकाश की व्यापकता भी यहाँ विशेष रूप से देखने को मिलती है । अथवा रासक के विन व्यापक काव्य रूपों की चर्चा निम्न छन्दों में हो चुकी है उनकी संस्मृतता 'पृथ्वीराज रासो' में मिलती है । इसी प्रकार छन्दों के अति व्यापक प्रयोग की दृष्टि से भी 'रासो' आदिकाल की प्रतिनिधि रचना है । निम्न छन्दों में यह संकेत किया गया है कि रासक-काव्य-आरा में काल-क्रम से चरित या कथा छन्द का भी समावेश किया गया । अतः 'पृथ्वीराज रासो' 'रासक काव्य' के साथ-साथ चरित काव्य भी है । इस प्रकार यह निर्णय किया जा सकता है कि अपने आरम्भिक रूप में 'पृथ्वीराज रासो' कतिपय छन्दों में अति-नृत्य-मरम्परा रहा होगा । और इसका प्रचार जन-जीवन में हुआ होगा और इस प्रकार के समानांतर

१—राजस्थान भाषा, भाग १ अंक २ ३ मुम्बई-जनवरी १९४६ पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता पर पुनर्विचार ।

देवके साहित्य का भी मही योवरा भी हुई होगी। वत बावस्थिता इस बात की है कि हम 'पृथ्वीराज रासो' के उन अंशों को देखें जिनमें 'रासक-काव्य' के सज्जन विद्यमान मिलते हैं। 'पृथ्वीराज रासो' में कविपद् संकेत मिलते हैं जिनके आधार पर यह निर्णय करने का प्रसंग प्राप्त होता है कि इन कृति का आदिकव्य गौदि-श्रुत्व उत्तरो स समन्वित रहा होगा।
उदाहरण—

बल नीम बभ्रुव मुरंग पाट कहु गुरु बिधि मंडिय ।

गुरु बिराज बारी मुमुक्षु उदिरम गौरव निघडिय ॥

आदिपर्व सम्य प्रथम सू० ४० ।

पृथ्वीराज रासो के वेग उत्तरो से परिपूर्ण होन का संकेत प्रस्तुत अवलोकन में भी मिलता है—

मंथ ललिक बा मंथ कुल अण्णत उण्णवम ।

मुने मथन मुन एह बान मग्गा करि वैवज ।

एक चित्त करि भाव भाव मायस्सु पावस ।

अण्ण हीन जन हीन सुबहु म्म गावस ।

निमिज प्रमाण बहु भोति भूति, एह कपेक कव म्म सरस ।

अक्षय भाव रक्खा रसिक परबि परबि प्रीति पाव गुरस ॥

सप्तमो सू० २२४ ।

यद्यपि वे अंश परवर्ती काल में 'पृथ्वीराज रासो' में सम्मिलित किए गए हैं परन्तु इससे यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि 'पृथ्वीराज रासो' के विकास-क्रम निर्णय में रासक-काव्य स्वरूप के वेपथुत्व में अवश्य सहयोग प्रदान किया है।^१ आरम्भिक पृष्ठों में यह भी कहा गया है कि इसी-आखिरी शाखा की एक रासक काव्य विधा में प्रकृत काव्यों की रचना भी होन लगी थी और इस परम्परा का पूर्ण विकास 'पृथ्वीराज रासो' में मिलता है। वत रासक काव्य-विधा की समग्रता की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' अत्यंत प्रयोग प्रमाण वेग कपेक क अन्तर्गत आता है। वित्तमें सुखों के वधन के साथ-साथ प्रव-लोकाओं का भी अनुप्रेष मिलता है। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी 'पृथ्वीराज रासो' में उल्लेख करते हैं—

१—वर्णन — द्वितीय महाकाव्य का स्वरूप विकास ।

काव्य प्रकृतियों की ओर संकेत करते हुए इसे 'सन्देश रासक' के सगरमें में देखने की जगह बताते हैं। परन्तु इस स्वस पर इन दो कृतियों के मूल अन्तर की ओर संकेत कर देना भी आवश्यक है। (क) 'सन्देश रासक' एक निश्चित कवि और एक निश्चित काल की रचना है। 'पृथ्वीराज रासो' की रचना में कम्बरवादी के अतिरिक्त परवर्ती काल के अनेक कवियों का सहयोग है। इस प्रकार यह एक निश्चित काल-कवि की रचना नहीं है। (ख) 'सन्देश रासक' की प्रकल्प-वर्गी काव्य है, इसमें कथा तत्त्व मौल्य है। परन्तु 'पृथ्वीराज रासो' में कथातत्त्व प्रधान है। इस 'पृथ्वीराज रासो' के उस रूप की कल्पना करें जिसमें यह आकार में या काव्य-रूप की दृष्टि से 'सन्देश रासक' के आकार से मिल नहीं रहा होया। उस रूप में भी मूर्तों की अन्तर्भूतता इसकी अनुप्रेरणा रही होगी। परन्तु 'सन्देश रासक' और 'पृथ्वीराज रासो' में निम्नलिखित दृष्टियों से समानता मिलती है।

'सन्देश रासक' और 'पृथ्वीराज रासो'—इन दोनों कृतियों में काव्य-आरम्भ करने की विधा एक ही है। दोनों ही कृति के कृतिकार अपने पूर्व के कवियों की काव्य प्रतिभा को समन करते हैं अपनी कवि प्रतिभा की लज्जा का प्रकाशन करते हैं। (देखिए इस पुस्तक की पृष्ठ संख्या ११२)। इस विषय में वर्तनीय यह है कि यह विधा अपभ्रंस की प्रायः समस्त काव्य-कृतियों में अपनाई गई है। अपभ्रंस-अवहट्ट की काव्य-कृतियों में कथा-काव्य-कृतियों या चरित-काव्य कृतियों का आरम्भ दो व्यक्तियों या पशु पक्षियों की बातों से होता है। बातों में यह क्रम प्रायः सम्पूर्ण कृति में किसी न किसी रूप में निरन्तर चलता है। पिछले पृष्ठों में इस ओर संकेत किया जा चुका है। 'पृथ्वीराज रासो' में बातों के माध्यम से कथा-क्रम की प्रस्थापना नियमित रूप से मिलती है। कतिपय स्थानों का यह निश्वास है कि सम्भवतः 'पृथ्वीराज रासो' का मूल रूप इन्हीं गीतों में लिखा गया होगा।

—देखिए—हिन्दी साहित्य का आदि काल—और सब ध्यान तो यह बात से धिक्काना नहीं चाहता कि यह बात मेरे मन में समझी हुई है कि जब काव्य प्रकल्प-वर्गी के संसार के रूप में लिखा गया था और जितना जस इस बात के रूप में है उतना ही वास्तविक है।

प्रथम समयों में 'कर्म स्तुति' 'कर्म स्तुति' के परचात् पूर्व कवियों की स्तुति और उच्छिष्ट संज्ञा कवन गाथा है—

प्रथम भुंजयी भुजारी ग्रहंत । जिने नाम एक अनेक गहन ।
 पुती सन्मय देवत बीबतेष । जिने निस्व राक्षसों बलीमंत्र सेस ॥
 जब केव बम हरी किली माखी । जिने ग्राम साग्राम संसार साखी ।
 लूती मारती व्यास मारत मारखी । जिने जल पारण्य सारण्य साखी ॥
 जब सुकसेव परी खल पाय । जिने कठरपी अन्न कुवस पाय ।
 भर रूप बंधन्य श्रीहृष साह । नसे राय कंठ जिने पद हार ॥

X X X X

जबह्व बट्ठ कबी कविराम । जिने केवसे किलि गोविन्द गाव ।
 गुर सख कबी छट्ट चंद कबी । जिने बसिय देखि सा भय हूखी ॥
 कबी किली किली सकली सुदिली । जिने की उच्छिष्ट कबी चंद भरखी ।

सं० १२०। क० ॥३॥ पृ० ११

और इसके परचात् ही कवि पद की स्त्री शंका करती है । और उत्तर-प्रत्युत्तर में कथा प्रवाहित होती है । इस प्रकार संवाद रूप में कथा-योजना को प्रस्तुत रूप देखा देखने को मिलती है—

(क) बारम्ब में रात्रि के समय कविपत्नी पृथ्वीराज की कीर्तिकथा के समित्सार वर्णन का अनुरोध करती है ।^१

(ख) कथा की संवादात्मक योजना पुनः पाँचवें समय में है । यहाँ संवाद गुरु-शुकी के मध्य होता है—

गुकी कहै गुरु संसरी कहौ कथा पति प्राप्त ।

पृथु भीरो भीमन पथु किय हृष केर विराम ॥

(ग) पृथ्वी राज के तीव्र विवाहों से सम्बन्धित कथा की प्रस्तावना गुरु-शुकी संवाद के माध्यम से हुई है । बारहवें समयों में गुकी गुरु से इच्छिरी के विवाह

१—विद्यापति की कीर्तिकथा के समान रासों में भी प्रत्येक अध्याय के बारम्ब में—और कथाचित् मध्य में भी—गुरु और गुकी की बात बीज उगमें अवसर रही होमी—हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ० १८ ।

१—गुरु गुरु यह लीलावती के कवि कौमुद के समान ही है—वही पृ० ६७ ।

की कथा पृथ्वी है । और तैरहवें में शुक्र-शुकी का उल्लेख नहीं मिलता परन्तु इसका अर्थ—

शुकी-शुकी ने अतिरिक्त 'पुत्र' 'पुत्री' की बातें बानी है (देखिए पृथ्वीराज रासो का सैंतीसवाँ समय) । 'शुक्र' 'शुकी' की या 'पुत्र' 'पुत्री' की बातों में उनके थोटा-बूटा-रूप की प्रधानता कतिपय जगहों तक बनी रहती है । परन्तु इन विशेष विधा के प्रयोग में अपभ्रंश की अन्य कृतियों में विविध रूपता मिलती है । थोटा-बूटा के रूप में कथा प्रस्तुत करने वाले तत्त्वों के अतिरिक्त कतिपय स्थानों में ये पात्र कथा के अर्थ या पात्र के रूप में आते हैं । ये कथा की मुख्य खिलना में भाग लेते हैं और कथा को गतिशीलता प्रदान करते हैं । यह परम्परा काव्य में कबि ही बन गई थी । इस दृष्टि से 'पृथ्वी राज रासो' का विवाहसिंहासन समय विशेष रूप से दृष्टव्य है । यहाँ शुक्र-शुकी पृथ्वीराज और संयोगिता की प्रणय-संवेदना के बाह्य का रूप धारण करते हैं । 'शुक्र' मनुष्य का रूप धारण कर पृथ्वीराज के पास संयोगिता का सन्देश लेकर जाता है । इस प्रकार की आयोजना बायसी के 'पद्माक्ष' में मिलती है जहाँ शुक्र कथा के मुख्य पात्रों में अपना विशेष स्थान रखता है । इसकी जहाँ पद्माक्ष की विशेषता के अन्तर्गत की गई है । कथा में पात्र होने वाले पात्र के रूप में शुक्र का प्रयोग अपभ्रंश की कतिपय कृतियों में निम्नलिखित रूप से हुआ है । इस सन्दर्भ में 'करकण्ड चरित' का उल्लेख किया जा चुका है । (देखिए पृ० २१) । इस दृष्टि से 'पृथ्वी राज रासो' में अपभ्रंश की काव्य-कृतियों और कथानक-कृतियों का प्रयोग निम्नलिखित रूप से हुआ है ।

इन्हीं स्थानों का आचार ग्रहण कर डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी की यह धारणा है कि इन प्रसंगों में ही रासो का मूल रूप रहा होगा ।^१ द्विवेदी जी ने जिस निरन्तरात्मक रूप से यह निर्णय किया है उसमें संदिग्धता या संशय की भी सम्भावना है । परन्तु इसका समर्थन अति विस्वास के साथ किया जा सकता है कि इन प्रयोगों के माध्यम से 'पृथ्वी राज रासो' के वादिक स्वभाव की सम्भावित धारणा की जा सकती है । डॉ. द्विवेदी ने इसी सन्दर्भ में एक अन्य समझावना

की ओर संकेत किया है। उक्त अनुमान है कि अपने मूल रूप में 'पृथ्वीराज रासो' समय 'सांस्कृतिक' युद्ध बद्ध कथा या ओर इसकी कथा वस्तु के अन्तर्गत केवल तीन बातें रही होगी (१) नायक की प्रेम क्रीडा (२) कन्या हरण (३) धनुः पराजय ।^१

निम्नलिखित पृष्ठों में यह कहा गया है कि 'पृथ्वीराज रासो' का अध्ययन-काव्य ग्रन्थ के रूप में ही विशेष उपयोगी होगा क्योंकि अपने पूर्व की (अपभ्रंश) काव्य निमाओं की मूल चेतना पर इसका विकास हुआ है। अपभ्रंस की वे कृतियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं जिनमें कथा के संयोजन का सम्बन्ध इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तियों से है। इनमें इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तियों पर कालौकिक तथ्यों का आरोपण निरन्तर मिश्रित है। इस आरोपण से इनकी रचना साहित्य के परिपार्श्व को स्पर्श करने लगती है। 'पृथ्वीराज रासो' में पृथ्वीराज के व्यक्तित्व पर तथा अन्य सम्बन्धी व्यक्तियों के व्यक्तित्व पर इस प्रकार अनेक काव्यनिरूपण तथ्यों का आरोपण मिश्रित है। इसी सत्य की ओर संकेत करते हुए डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है 'वस्तुतः इस क्षेत्र में इतिहास को ठीक आधुनिक अर्थ में कभी नहीं किया गया है बराबर ही ऐतिहासिक व्यक्ति को पौराणिक या काव्यनिरूपण कथानायक बनाने की प्रवृत्ति रही है। कुछ में देवी शक्ति का आरोप करके पौराणिक बना दिया गया है जैसे—राम बुद्ध कृष्ण आदि और कुछ में काव्यनिरूपण रोमांस का आरोप करके निम्नवर्गीय कथाओं का आभय बना दिया गया है जैसे उदयन विक्रमादित्य और ह्राक। आसानी के लक्षणसे रासो के पृथ्वीराज में-सध्य और कल्पना का—ऐक्य और कल्पना का—अद्भुत योग हुआ है।' तात्पर्य यह कि काव्यनिरूपण कथा-अंशों के निरन्तर संयोग होते रहने के कारण 'पृथ्वीराज रासो' के ऐतिहासिक स्वरूप पर आक्षेप-या पक्ष मचा है। फलस्वरूप पृथ्वीराज के ऐतिहासिक व्यक्तित्व की नैसर्गिकता यहाँ अति आधिक्य रूप में ही उल्लेख होती है।

१—हिन्दी साहित्य का आदि काल पृ० ७२ ।

१—हिन्दी साहित्य का आदि काल—चतुर्थ अध्याय-पृ० ७७

स्वयं-स्वयं पर यह संकेत किया गया है कि अपने वर्तमान रूप में 'पृथ्वीराज रासो' का स्वयं अपभ्रंस के चरित काव्यों के समान यहाँ भी निजन्वरी विस्वासों और अभिप्रायों का अति व्यापक प्रयोग हुआ है। निजन्वरी कथाओं का प्रयोग रुद्रि रूप में संस्तुत प्राकृत और अपभ्रंस काव्यों में नियमित रूप से हुआ है। मुख्यतः अपभ्रंस का कवि तो चरित काव्यों की रचना में कथानक रुद्रियों का प्रयोग वैदिक रूप में करता है। इस उत्पत्ति में 'करकण्ड चरित' का संस्करण किया जा चुका है। (वेदिक-पु० २० २१) भारतीय साहित्य में शुक चारिका (तोता मीना) से सम्बन्धित कथानक रुद्रि का प्रथम। यह प्रयोग तीन दृष्टियों से हुआ है—(क) कथा के कहने वाले छोटा के रूप में (ख) कथा की गति को अग्रसर करनेवाले सन्देश वाहक के रूप में (ग) कथा के रूढ़ियों को जोड़ने वाले अनपराध मेरिया के रूप में। इस ओर संकेत किया गया है कि 'पृथ्वीराज रासो' में शुक-सुकी के माध्यम से ही कथा की प्रस्तावना की गई है।^१ बड़ा-भोटा के रूप में यहाँ इनका प्रयोग तो हुआ ही है इसके अतिरिक्त किसी विशेष विन्दु से कथा को अग्रसर करने का प्रयास भी इनके द्वारा किया गया है। पृथ्वीराज

१—हिन्दी साहित्य का विकास-पु० ८२ पृथ्वीराज रासो में प्रयुक्त इस विधा का पूर्ण रूप बालमट्ट की 'काव्यचरी' में मिलता है जहाँ शुक-सुकी के माध्यम से कथा कहलाई गई है। डॉ० विवेकी ने बमरक के सतरावें एक मोहक श्लोक प्रस्तुत किया है—'व्यति ने छत पर प्रेमावाप किया कम्बल धुक सब सुनता रहा। प्रातःकाल छस बिठानी के सामने उसने उन बाक्यों को पुहराता शुक किया। बबू ईरान। उसे तुल्य एक बुक्ति शुक गई। काम के कर्मपूज में पद्मराज मणि का दुकड़ा था। उसे लेकर उसने शुक के सामने रखा और वह बाबास मूर्ख ने उसे बाहिम-यत्न समझ कर बीच मारी। बचन उसका बन हुआ और धजा बिहूना लक्ष्म ने शान्ति की खाँस की—व्यत्योर्निधि बरस्तोय इमुकेनाकर्मि' व्यासः

तस्यातर्बुद्धमिषी निमरत भुल्लंघ तार वबू।

कनीचं विव पद्मराम दकल विदस्य बज्जना पुरो।

की हात्ती प्रकरोति दहिम फल इयानेन बाबास।

और पद्मावती विवाह के सम्बन्ध में और इक्षिणी विवाह के सन्दर्भ में शुक-युक्ती प्रयोग इसी रूप में किया गया है। अतः 'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता पर विचार करते समय इन बिशिष्ट कथानक-कृतियों पर अनिवार्य रूप से विचार करना होगा। इसके अतिरिक्त 'पृथ्वीराज रासो' में निम्नलिखित कथानक कृतियों का प्रयोग विशेष रूप से दर्शनीय है—

(क) पुष्प-राज की परम्परापूर्ण कथानक कृतियाँ—मृत के मूल से पृथ्वीराज ससिधता के रूप-सौन्दर्य का वर्णन सुकता है। वह उस पर मुग्ध होता है। ससिधता के लिए सिद्ध पूजन की विरपरिचित प्रणाली का प्रयोग इस सन्दर्भ में मिलता है। इस आकांक्षा-पूर्ति के लिए उसे स्वप्न में बरवान मिस जाता है।

(ख) सन्देश बाहक के रूप में हंस-रूपोत्पत्ति से सम्बन्धित कवि का प्रयोग भी भारतीय लोक-जीवन में निरन्तर हुआ है। 'नैपथ' में स्वयं हंस की कल्पना की गई है। पृथ्वीराज रासो में मन्थर्व हंस का रूप धारण करता है। और वह 'नैपथ' के हंस के समान ही हो जाता है। वह ससिधता के निकट पहुँचता है। वह उसके हृदय में पृथ्वीराज के प्रति आकषय उत्पन्न करता है।

(ग) अन्य कृतियों में सिद्ध परिवर्तन सांकेतिक भाषा पूज्यम की स्मृति भविष्य सूचक स्वप्न कथा हरण कथन्य मुक्त इत्यादि विषय इष्टम्य हैं।

इस प्रकार काव्य-कृति की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता उसके आदि रूप और उसके विकसतशील स्वरूप की प्रस्तावना जिन मूल वृत्तियों के आधार पर की गई है उनका विस्लेषण इन पृष्ठों में किया गया। 'पृथ्वीराज रासो' की मूल काव्यात्मक अनुकेतना को सम्मुख रखते हुए डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अति निरवधारक शब्दों में यह कहने का प्रयास किया है कि, 'संयोजिता बाह्य प्रसंग निर्वहिय रूप से मुख रासो का सर्वप्रथम अंग था।' अपनी विवेचना में इस सत्य की ओर भी उन्होंने संकेत किया है कि इसक वर्तमान रूप में अनेक प्रसिद्ध अंग भी समाविष्ट हुए हैं। इसके अतिरिक्त शुक चरित से सम्बन्धित अंग को भी द्विवेदी जी ने मूल रासो का अंग माना है। 'रासक काव्य' के उपसंहार की विभाकी सम्पूर्ण रखते हुए भी द्विवेदी जी ने इसके आदिम की बख्शना की है। 'रासक काव्यो' कि यह सामान्य प्रवृत्ति है कि

उसका जन्म सुखान्त (मिथान्त) होता है । 'सम्येस रासक' या 'बीससमेव रासक' को उदाहरण रूप में ले सकते हैं । इसका जन्म मिथान्त-मुख में होता है । ऐसी सम्मानना की गई है कि 'पृथ्वीराज रासो' का मौखिक स्वरूप भी सुखान्त रहा होगा । इस दृष्टि से विचार करते हुए छिमेरी जी ने कहा है 'संयोजिता के मिथान्त के बाद कवि का उद्देश्य पूरा हो जाता ही सक्त जान पड़ता है । शुक परित्त के द्वारा इक्ष्मी का हृदय शान्त करना भी संभव ही है ।' छिमेरीजी की यह चारणा भारतीय काव्य में निहित व्यापक जीवन-दृष्टि पर अवलम्बित है । भारतीय काव्य-दृष्टि सुखान्त रही है । अतः 'पृथ्वीराज रासो' के कवि की दृष्टि भी सुखान्त ही रही होगी । अपनी विवेचना में 'सम्येस रासक' की समाप्ति विधि के अतिरिक्त 'मिश्रकृत' के समापन की विधि का भी उल्लेख छिमेरी जी ने किया है और तो और कालिदास को भी निरुद्ध का समुद्र छेड़ कर केने के बाद मिथान्त कटा देने को उदाहरण होना पड़ा था —

भूखा वार्ता बह्वर कवितां बनेद्योऽपि सद्यः
 शप स्यान्तं धरम हृदयं संविद्यायास्तकोप ।
 संयोज्येतां विपश्चित् सुखो दम्पती हृष्टचित्ता
 भौमनिष्ठा मन्त्रितमुखं भोजयामास शस्वत् ॥”^१

ऐसी ही समाप्ति 'पृथ्वीराज रासो' की रही होगी ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि छिमेरी जी ने पृथ्वीराज रासो के आदि स्वरूप और उसके प्रमाणिक अंश की कल्पना अति व्यापक सम्बन्धों को ग्रहण करते हुए की है । उनकी विवेचना का आचार ग्रहण कर हम 'पृथ्वीराज रासो' के मौखिक रूप तक पहुँच सकते, इसमें सन्देह है । परन्तु उन्होंने चिन्तन के लिए एक

सुस्पष्ट और व्यापक बराबर उत्पन्न किया है। इसका वाधार ग्रहण कर नवीन कथ्यों की उद्भासना सम्भव हो सकेगी।^१

काव्य-कृति के रूप में 'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता और आदि रूप पर विचार करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अपने आरम्भिक रूप में पृथ्वीराज रासो उच्चतम प्रयोग प्रधान मसुदा-युक्त गेय रूपक था। उसमें कथाओं के अंशों के अतिरिक्त 'रासो' के भी अंश थे। अपभ्रंश काव्य-रूपों की सामूहिकता पर इसका विकास हुआ है। इसके स्वरूप—निर्माण में अपभ्रंश के रोमांचक शैली के काव्यों ने विशेष सहयोग प्रदान किया है। युद्ध और प्रेम के समन्वित रूप के अतिरिक्त लोक गायकों और वीर गीतों का भी निरंतर योग होता रहा है। अतः इसमें प्रकल्प कथा और आख्यायिका के तथ्यों का समावेश नैसर्गिक ही है। इस प्रकार—

१ 'पृथ्वीराज रासो' के 'रासो' काव्य-शैली में निबद्ध था।

२ इसमें इतिहास और कल्पना का मिश्रण है।

३ 'रासो' भी 'कीर्तिका' की भाँति संवाद में लिखित रहा होगा। साथ ही साथ कीर्तिका के समान इसमें बीच-बीच में कान्त परक गद्य भी रहा होगा।

४ 'रासो' में अनेक कथागत कथियों का व्यवहार हुआ है।

५ मूल रासो के प्रामाणिक अंश निम्नलिखित माने जा सकते हैं—

(क) आरम्भिक अंश (ख) इक्ष्वाकु विवाह (ग) सचिबता का संवर्धन विवाह (घ) योग्यता पादार्थ द्वारा राजाधिराज का पकड़ना (ङ) संयोगिता का अन्त विवाह और इक्ष्वाकु और संयोगिता की अतिरिक्तता और उनके समन्वयता।^२

१—विशेषज्ञों ने अपने निष्कर्षों के आधार पर 'पृथ्वीराज रासो' के एक रूप का निर्धारण किया है। इसे उन्होंने संक्षिप्त 'पृथ्वीराज रासो' की संज्ञा दी है। यह अन्वयन इस विवरण के साथ किया गया है कि अन्वयनदाई की मूल रचना इसके समीप ही रही होगी। देखिए—संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो सम्पादक :—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी और डॉ० नामवर सिंह—प्रकाशक साहित्य अकादमी प्रयाग।

२—देखिए—संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो की भूमिका।

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी के इन निष्कर्षों को आबाखील मानते हुए डॉ० मत्ताप्रसाद गुप्त ने यह कहा है कि 'पृथ्वीराज रासो' की कथा का संवाद रूप में होना इस विषय में कोई निस्संशङ्गीय आचार नहीं है कि इसका मूल रूप संवादों में ही रहा होगा। उदाहरण स्वरूप पेंतालीसवें समयों में संवोमिता के अवतार ग्रहण करने की जो कथा है वह भी युद्ध-सुकी संवाद के रूप में है किन्तु इसे द्विवेदीजी ने स्वतः प्रक्षिप्त माना है। इसके अतिरिक्त डॉ० मत्ताप्रसाद गुप्त का द्वितीय आप्रह्व यह है कि रासो-परम्परा में संवाद रुढ़ि व्यापक रूप में प्रचलित नहीं थी। 'बीरसख देव रासो' में इस विधा का प्रयोग नहीं मिलता है। इस सम्बन्ध में मेरा निवेदन यह है कि संवाद रूप में कथा प्रस्तुत करने की विधा भरत-काव्यों में ही विशेष रूप में देखने को मिलती है। जयप्रसाद की इस विधा में बहुत सम्मान है 'पृथ्वीराज रासो' का आरम्भिक अंश इसी शैली में रहा हो तो यह आश्चर्य की बात नहीं। 'कीर्तिछटा' 'पद्मावत' और 'रामचरित मानस' में इस शैली का प्रयोग इस विश्वास की शक्ति देता है। जहाँ तक 'बीरसख देव रासो' का सम्बन्ध है यह भरत काव्य नहीं है। यह संक्षिप्त किमा वा चुका है कि इसमें कथा-अंश का विशेष महत्त्व नहीं है। इसके अतिरिक्त 'पृथ्वीराज रासो' के निरसमाशील स्वरूप की अवहेलना हम नहीं कर सकते। परवर्ती काल में अन्य कृतियों के साथ-साथ संवादात्मक शैली में भी इसके निरसमाशील स्वरूप का संरक्षण किया है। अतः संवादात्मक अंशों में प्रक्षिप्त अंशों का रहना भी नैसर्गिक ही है।

द्विवेदीजी ने 'पृथ्वीराज रासो' में प्रयुक्त कथानक कद्वियों के आचार पर जो इसकी प्रामाणिकता स्थापित करने का प्रयास किया है। इस पर आपत्ति प्रकट करती हुई डॉ० मत्ताप्रसाद गुप्त ने कहा है इन कद्वियों का आचार निरना छाया है वह स्वतः द्विवेदीजी के इन शब्दों में प्रकट होना—परवर्ती काल में जिन लोगों ने उसमें प्रक्षेप किया वे अन्य की इस प्रवृत्ति को जानते थे। इसीनिष्ठ प्रक्षेप करने वालों ने चुन चुन कर के कथानक कद्वियों और काव्य-कद्वियों का प्रयोग किया है।^१ विशेष ध्यान देने की बात यह है कि जयप्रसाद के कथा और भरत काव्यों में काव्य-कद्वियों और कथानक कद्वियों का निमिश्रित प्रयोग हुआ है।

‘पृथ्वीराज रासो’ के आदि रूप में कतिपय कथामय-उद्दिष्टों का प्रयोग सम्भव नहीं है। साथ ही साथ इन्हीं कथामय उद्दिष्टों के आधार पर ‘पृथ्वीराज रासो’ के वर्तमान स्वरूप का आकार निर्मित हुआ है। इस संकेत का प्रतिपाद नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि द्वितीय श्रो ने ‘पृथ्वीराज रासो’ के आदि स्वरूप और प्रामाणिक अंश की कल्पना अति व्यापक संस्करणों को ग्रहण करते हुए की है। उनके संकेतों का आधार ग्रहण कर हम ‘पृथ्वीराज रासो’ के मूल रूप तक पहुँच सकते हैं, इसमें सन्देह है। परन्तु उन्होंने विस्तृत के लिए एक स्पष्ट और व्यापक आशय व्यक्त किया है। इसका आधार ग्रहण कर नवीन पाठ्यों की सम्भावना सम्भव हो सकती है।

संयोजिता स्वयंवर और कईमासक निश्चय ही ‘पृथ्वीराज रासो’ के प्राचीनतम अंश हैं। संयोजिता स्वयंवर की विधि के विषय में हम निश्चित नहीं हैं परन्तु कईमासक की विधि निश्चित की जा सकती है। ‘पृथ्वीराज निश्चय’ के रचनाकाल तक इसका व्यक्तित्व प्रभावशाली था। कईमासक के लिए हम सन् ११६२ को ग्रहण कर सकते हैं। जब ‘पृथ्वीराज रासो’ का आदि रूप इसी रूप या इसके तत्काल पश्चात् ही रचा गया होगा। ‘पुरातन प्रबन्ध संग्रह’ में जो अंश उपलब्ध हैं उनकी भाषा हैम व्याकरण में संकलित अंशों की भाषा से अधिक विनम्रतवीक है इस हेतु ही डॉ॰ माताप्रसाद मुखर्जी सन् १४०० को ‘रासो’ का प्रणयनकाल माना है।

पृथ्वीराज रासो का काव्य सौन्दर्य

‘पृथ्वीराज रासो’ एक विपुलायुक्त काव्य है। इसमें एक विशिष्ट युग का जीवन-स्वरूप अंकित है। अपनी विवेचना में इस युग को निरन्तर ध्यान में रखा—होया कि यह अपने वर्तमान आकार में किसी एक कवि की कृति नहीं है। कविचन्द्र की प्रतिभा का अवलम्ब ग्रहण कर अनेक कवियों की प्रतिभा ने पृथ्वीराज रासो के ‘काव्य सौन्दर्य’ का गूँथार किया है। ‘पृथ्वीराज रासो’ एक वर्णनात्मक या इतिवृत्ति प्रधान काव्य है। परन्तु इतिवृत्तियों के मध्य अनेक—चरित्रचित्रों में एतत्पर्यन्त अनुसंधानों का वैचारिक सौन्दर्य मिलता है।
(Narrative Poetry) अप्रत्यक्ष काव्यों की बहुलता है।

विभिन्न परिपास्यों से वर्णन की प्रेरणा ग्रहण करता है। इस प्रेरणा में लोक-जीवन के स्पर्शों का आभास ग्रहण करता है। लोक-संस्कारों की अनुभूतता के संरक्षण में भावों का साधारणीकरण करता है। श्रुतार की उसमयी भूमिका का निर्माण करता है। कपविमल और वर्णन की स्तिम्बता स्वनिष्ठ संस्पर्शों पर सापेक्ष-रूप प्रारण करती है। साम्यविधान के आचार पर प्रभाव की अवस्थिति स्थापित होती है। अतु वर्णन का अति व्यापक सौन्दर्य 'पृथ्वीराज रासो' में मुखरित मिळता है। इस अंकन में प्रकृति उद्दीपन रूप में प्रयुक्त है परन्तु प्रकृति चित्रों की संक्षिप्तता भी यहाँ विशेष रूप से दृष्टव्य है। 'पृथ्वीराज रासो' में प्रेम श्रुतार के साथ ही साथ युद्धों के अनेक सम्बन्धों का अंकन है। इस प्रकार यह बीरसाधारण्य काव्य भी है। अतः युद्धों के वर्णन के अवगति स्वयम् इस कृति में उपलब्ध हैं। उत्साह संवर्धन एवं युद्धभेदता के अनेक स्तरों का अन्वेषण यहाँ मिळता है। उदात्त भोज तथा सैनिक धर्म की निष्ठा की व्यापकता का उत्कृष्ट अनेक अव्यवस्थियों में हुवा है।

'पृथ्वीराज रासो' के आदि में इसमें प्रयुक्त श्लोकों की संख्या का उत्कृष्ट इस प्रकार हुआ है—

सप्त सहस्र गवः सित सरसः सकल आदि भुगि दिव्य ।

बट बट मत्त कोऊ पड़ी मोहि पूसन ग वसिष्ठ ।

सं० एक । अन्व २० ।

और— सप्त सप्त सकल सरस गुन सुन्दर बहु वित ।

ते पुस्तक कवि चन्द की दिय माता बहुवित ।

सं० १७।६।१०

परन्तु 'जागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासो' में सूत्रों की संख्या सोलह हजार तीन सौ छ है। यहाँ पर बहु संकेत कर देना आवश्यक है कि प्रामाणिकता और सूत्रों की संख्या के मूल स्वरूप के सम्बन्ध से ऊपर उठकर ही 'पृथ्वीराज रासो' के काव्य सौन्दर्य का अध्ययन साहित्य के सम्बन्ध में विशेष महत्वपूर्ण होना। जाने वर्तमान आकार में 'पृथ्वीराज रासो' एक वृद्ध काव्य रचना है। रासो के कवि की निम्नलिखित उक्ति विशेष ध्यान देने योग्य है—

उक्ति धर्म विसाक्षस्य राजनीति गर्व रम ।

यद् भाषा पुराणं च कुरानं कश्चित् मया ।

इस प्रकार 'रासो' में धर्म सम्बन्धी उक्तियाँ हैं नवरस से परिपूर्ण काव्य सौन्दर्य है राजनीति के तत्त्व हैं भाषा की व्यापकता है पौराणिक भाषागत है और इस्लाम-सम्बन्धित विधेयताएँ हैं । यह कथन यद्यपि छेपक के रूप में है परन्तु इससे 'पृथ्वीराज रासो' की सम्पूर्णता और उसकी गरिमा का बोध होता है ।^१

इसी प्रकार इस कृति के उपसंहार में भी इसकी समग्रता का वर्णन निम्न सितित पंक्तियों में किया गया है—

सुरत बाह विष्यान मान । नाटकक मेय विद्या विधान ।

बाहुरी मेद बचनहू विसास । मति करम नरम रस हास राम ।

×

×

×

बौवल नरम काल विवेक । रस भाष मेय विष्यान नेक ।

पौराण सुकस रूप अण्व माय । मारण्य अण्वरे अन्ताय ।

कलि काव्य रस प्राहास रंग । बचनिय स्रग् मुग्धे मुग्धेय ।

पिण्ड रस रसानि वैलास मति । मंतन मुर्मत आमास अति ।

समय ३८ २२३ ११ ।

इस प्रकार 'पृथ्वीराज रासो' एक वर्णनप्रधान काव्य है जिसमें घटनाओं की प्रधानता है । इसमें वस्तु-वर्णन अति व्यापक रूप में हुआ है । इसके अन्तर्गत पौराणिक कथाओं का वर्णन हुआ है ।^२ वस्तु वर्णन के अन्तर्गत नगर और देश

१—इस दृष्टि से पृथ्वीराज रासो की तुलना महाभारत से की जाती है । महाभारत के विषय में कहा गया है 'यन्म भारते तन्म भारते' । पृथ्वीराज रासो के विषय में भी यह कथन स्वीकार किया जा सकता है । हेतु— हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास-मृ० २२१ ।

२—होली कथा दीपनाम्निका कथा । होली कथा के अन्तर्गत डूँडा (डोडा) रादासी की कथा का वर्णन । यह कथा 'मविष्य पुराण' की कथा से प्रभावित लगती है । पृथ्वीराज ने चन्द्र मे कार्तिक मास में होनेवाले दीपनाम्निका पर्व के प्रति विज्ञाता प्रकट की । कथा संख्या २ के छन्द मंत्र्या १ ३४ तक हम पर्व में निहित पौराणिक सन्दर्भों की बर्चा है ।

वर्णन में कवि की प्रतिभा का विशेष उन्मयन देखने को मिलता है। इस सन्दर्भ में पट्टनपुर (पूर्व में नरेश भीमदेव चासुक्क की राजधानी समझो १८)। पुष्पीपत्र की बिहारी का वर्णन देखिए।

सुख निरुपम बोधपं जमल तट्ट सोधपं ।
तहा सु बाग बन्धनं बने सु गुल्ल अन्धनं । छ १।
समीर तासु बासपं फलं सु फुल्ल रासपं ।
बिरज्य बेकि उबंरं सुरपं पान बनर त्थ
जु केसरं कुमं कुमं मधुप्य बास तं भ्रमं ।
बनार दाप पत्तनं सु ल्हा पति बिहिय छ ७ ।

बिहारी इन्द्रपुरी के समान है। मगाड़ों के उद्बोध से नगरी निर्धारित है। बिहारी का वैभव अतुलनीय है। मोती और मालिक्य से वहाँ के हार वस्त्रमय भयमग करते रहते हैं—

पुरि बुम्भिय पन्थ निघान बुरे, पुर है प्रधिराज कि इन्द्रपुरं ।
प्रथमं बिबियं बिस्वियं कहनं प्रह पीरि प्रसादपना सतनं । ११
× × × ×
पथि ललिय नीमिय मानक्यं रतनं वतनं मनस्विय क्यं ।
सुम बिहिय हट्ट सुनेर मधै करि बंत मिळंत मिरंत सभै छ १ ।

समझो ११ में कन्नौज का वर्णन है। समय १७ में वजनी का वर्णन है। नगर वर्णन के सन्दर्भ में कवि पनपट्ट का वर्णन करता है। कवि जीवन की समग्रता के चित्रण के अन्तर्गत एक-एक सूक्ष्म तत्वों का संकलन करता है। वर्णन की स्पष्टता के मध्य भावों के तीव्र आशयों के संस्पर्शों की प्रियात्मकता के माध्यम से गू गार के अविच्छिन्न रूप की अन्तारणा करता है।

उदाहरणस्वरूप पट्टनपुर के वर्णन में कवि केवल स्पष्ट चित्रों की उद्भावना नहीं करता बल्कि जीवित तथा गत्यात्मक सौन्दर्य का अंकन करता है। पनपट्ट पर जब भलेबासी तहशियों के वर्णन में कवि उनके रूप-व्यापार और प्रभाव का संक्षिप्त वर्णन करता है—

भरे जू कुंमयं पनं इछा सु पानि भंगनं ।
असा जनेक कुंजनं - । छ २१ ।

सरोवर समानं परीत रंज जातय ।

बतक सार संमय बनेक हुंत कम्मय । १७ ।

मर सुतीर कुंभय

अरु काम रम्यय सु वसरी समप्पय । सं० ४२ १८

अपुराबों के रूप साक्ष्य और यौवन-बैभव से द्योदित बाछामें कामदेव के रज से सरोवर के पतकट पर उतखी हैं । इस सरोवर में हृद्य रमज कर रहे हैं ।

‘पृष्णीराज राखी’ में सुमार के सर-रत्न रूपों का बैभव बिलसा है । इसमें प्रेम की तितोला है और यौवन-बैभव की गरिमा है । इसमें ऐसे बनेक मुडों के वर्णन हैं जिनकी उद्भासना प्रलय की अनुभूतिमा पर आधारित है । मुडों की उद्भासना तो प्रलय की आकृष्ट संविदना पर आधारित है पृष्णीराज राखीरा के सौन्दर्य का वर्णन कट हाय सुनता है । इस सन्दर्भ में पृष्णीराज के उद्भूत मनोभावों के विजय का अनुप्रणय वर्णन का विशेष बैभव है । प्रकृति व व्यापारों और परिवर्तित रूपों के साथ-साथ पृष्णीराज की मनोव्यथा की विविधता विशेष रूप से दर्शनीय है । समयों २५ के १५ ४५ छन्दों में बर्ण और सरत् के वर्णन हैं । इन वर्णनों की विराप्ता यह है कि प्रकृति के संस्क्रिष्ट रूप नियोजन के साथ उसके उद्गीर्ण व्यापारों का प्रसार भी होता चलता है । मेघों के बैभव की छाया में समुद्र उद्गीर्ण होकर बोल रहे हैं । पर्वतों की पी की छत से लम और घखी प्रतिबलित है बल के कज बली के अरुण पर गिर रहे हैं । पृष्णीराज राखीरा की स्मृति में अपने अतिव्यस और अतिव्यस को ठिरोहित कर चुके हैं । (सं० १५) बर्णों की समाप्ति होती है राखी का बल कगारों से नीचे उतर गया निर्मल राखी अपनी कलाओं के साथ आकाश में खिले लला सरत् के आगमन ने पृष्णीराज का मन उद्भूत कर दिया ।

भोर सोर नहुँ ओर छटा आसाइ बरिष नम ।

बल दाहुर भिगग्न छत बासित रंजत गुम ।

नील बल बसुमतिप पक्षि आस न अस्तक्षि ।

बंद बसु विग्नद घर बसुमतिगु रक्षिष ।

बरपत बूत बन मेघ सर तब सुभौन बह्व भुंवरि ।

मन हंस भीर भीरज मुतन इप पृष्ठ भरन करि ।

बन परा बंषि तम मेघ ध्याय । बामिनिय दमकि बामिनिय जाय ।

बोसंत मोर गिरवर सुहाय । बासिग रटत पिहू और छाह ।

‘पृथ्वीराज रासो’ के कवि ने प्रकृति वर्णन की एक विशिष्ट विधा का प्रयोग किया है। ‘सन्देश रासक’ में जबका ‘बीसछवेन रासों में प्रकृति वर्णन विप्र कम्म की भूमिका से हुआ है। परन्तु आलोच्य कृति में संयोग की भाव भूमि से विप्रकम्म की सम्पादना के अन्तर्गत प्रकृति का अंकन उद्दीप्त विधा के रूप में हुआ है। उदाहरण स्वल्प पृथ्वीराज संयोमिता की प्राप्ति हेतु प्रस्थान करने के पूर्व इक्षिणी के पास निवा देने जाते हैं। यह वसंत ऋतु है। इक्षिणी आश्चर्य प्रकट करती है। वसन्त विप्रकम्म के सिद्ध नहीं है। उसमें संयोग के उत्पन्नित स्वल्प का बोध ही मुख्य है। वसन्त के उद्दीप्त स्वल्प के द्वारा वह विप्रकम्म को रोकने का प्रयास करती हुई कहती हैं—

गवरी खं ब फुसिअ करंन रपनी रिष बीसं ।

मैवर भाव मुल्ले भ्रमन्त मकरन्त बरीसं ॥

बह्व वात उज्ज्वलति मोर बति विरह् अवनिय किय ।

कुह कुईत कस कंठ पव रावस रति बगिब ।

पय कायि प्रावपति बीगबी माह नेह मुम्भ चित्त पणु ।

विग विन अवधि जुम्भन बटै कन्त वसन्त न पम कणु सं१०

पृथ्वीराज वसन्त के इस बोध में अपने प्रस्थान को स्पष्ट कर देता है। वीर्य में वह रानी पृथ्वीराजी से विदा देने जाता है। उसी रानी की वीर्य के बचन के माध्यम से विप्रकम्म में भावी स्वल्प का विप्र प्रस्तुत करती है। पृथ्वीराज अपनी यात्रा पुनः स्पष्ट करते हैं। वहाँ में पृथ्वीराज इन्द्रावती से विदा देने जाते हैं। इस आश्चर्य के माध्यम से कवि ने वहाँ के उद्दीप्त व्यापारों से वहाँ का संश्लिष्ट विम्व विधान करता है और साथ ही साथ उन व्यापारों के प्रभावों का भी अंकन करता है।

बन गरबै घरहुरै पम्भ निर रति निर है ।

सबल सरोवर पिम्भ द्विपौ ततल्लन वन पट्ट ॥

जब बहुत बरपत प्रेम फन्सही निरखर ।

कोकिल सुर उधरें मंग एहरत पंच सर ॥

बाधुरहु मोर शशिनी रसय अरि बरतव वातक रट्य ।

पावय प्रबस बालम न बसि बिरहु अगिनि तन तन बट्य ॥

इस प्रकार ऋतु वर्णन की एक विधि का प्रयोग 'पृथ्वीराज रासो' के बन्धु वर्णन के अन्तर्गत विशेष भावार्थक संस्पर्शों के साथ हुआ है। शाह हुमन और शिखर के चित्रों की उद्भावना भी उद्गीतन की व्यापक सम्भावनाओं के साथ हुआ है।

'पृथ्वीराज रासो' में शृंगार के अनेक मोहक सन्तप्त निम्नांकित हैं। संयोग शृंगार के भावक संस्पर्शों के साथ-साथ भावति और रूप-सौन्दर्य के पाद्य स सम्बन्धित स्वभावों को परिवर्तित करने का रसात्मक प्रयास इस कृति की सम्मुखता के शृंगार में विशेष रूप से सहस्रोपी है। शृंगारचित्र में मन्त्र शिखर वर्णन के अनेक स्थलों से कृति में भावपूर्ण स्वभावों का उन्मेष होता है। इच्छिनि पृथा इन्द्रावती तथा सन्दर्भ में आए अन्य नारी पात्रों के रूपांकन के प्रयास कवि प्रथिमा को चरित्र से मण्डित करते हैं। उदाहरण स्वरूप हुंसावती के शृंगार वर्णन से एक अंग यहाँ उद्धृत है—

जु कैस मुक्ति संजुरें ससी सराह बो लरे
मनीष बास साध ज्यो कि कन्ह कासि मासि ज्यो ।

उपमम नैन ऐन सी मनो कि मन मोन सी ।

क्यों मिसंग जानयो सत्तम बिन मानयो ।

जु जेहरी जराद की मूरत मर पाद की ।

निर्तब मड गुबिय प्रबास रय पुम्बिय ।

कि काय रम्य बरक ए, कर्तति एहि बरक ए ।

उलटि रम जमन करी मुनास विपुन ।

पं० १६१ १६७ १७० १७०

'पृथ्वीराज रासो' में मृदु और प्रेम कर्षण और प्रणय के अंग कुमरे को मति देते बज्जते हैं। मृदु की विनीतिका में प्रणय की बुद्धिनिवाये बसती है। और मृदु मृनि में मर रहे हैं, जीवन की मरतावा अति यथाव और कट सरय के मय

में सम्मुख है। बिनाश के प्रत्यक्ष में प्रणव का सहास बाधित है। संयोगिता और पृष्ठीराज का मिश्रण इस संघर्ष के मध्य ही होता है। पृष्ठीराज ने संयोगिता को जिस रूप में देखा उसका विवरण देखिए—

कूँबर उप्पर सिंघ सिंघ उप्पर बोज पन्नाय ।
पन्नाय उप्पर भूग भूय उप्पर ससि सुम्माय ।
ससि उप्पर इक कीर कीर उप्पर भूग दिठ्ठी ।
भूग उप्पर कोवड संघ कंरप्प बम्पूठी ।
बहि मयूर महि उप्परह हीर सरस हेमन पर्यो ।
सुर भुवन धंरि कवि बंद कहि सिद्धि बो पे राजन् पर्यो ॥

पृष्ठी राज राखो' बीरगाथात्मक काव्य है। इसमें युद्ध के अगणित आकर्षण पूर्ण वर्णन मिलते हैं। उत्साह संघर्ष तथा युद्ध-वैतनात्मे अनेक स्तरों का वर्णन इस कृति को काव्य-गरिमा से मण्डित करते हैं। युद्ध गाथाओं में युद्ध के मध्य सहास और ओज के अगणित सन्दर्भ देखने को मिलते हैं। देखिए—

मचे हुक हुकं बहै सार भार
बमकं बमकं करार करार ।

×

×

×

×

समकं सनकं बहै बाग भार
हुकं हुकं बहै सिस मेस ।
कुंठे कूक कूटी मुरतान डाल ।
बन्दी योग माया सुर बप्पबान ।
बहै बट्ट पट्ट उप्पट्ट उप्पट्ट ।
कुंठट्टा करे बप्प बप्प उतट्ट ।
बडकं बजे सैन सैन सुबट्ट ।

वीर रस की व्यञ्जना के लिए शृंगारमूकक तथा रति विषयक लम्मायें यहाँ बलम को बेमब प्रदान करती हैं। उत्साह और रति दो परस्पर विरोधी भाव हैं। परन्तु रति के माध्यम से उत्साह का वर्णन विरोधाभास के अन्तराल से शक्ति रसवत्ता और प्रभाववत्ता को संक्षिप्तता का संस्पर्श प्रदान करता। उदा०—

जु धूर्तर घमस्कर्यं किं बाहुरं सुमह्यं
 बुद्धी उपमम मेत्यं मुद्गाग वाम के'र्य ।

इस प्रकार पारस्परिक विरोधी भावों के साम्यम से प्रभाव की अवस्थिति आलोच्य दृष्टि में एक निश्चित वर्णन प्रणाली के रूप में प्रयुक्त है। युद्ध प्रधान दृष्टि होने के कारण यहाँ रौद्र की व्यापकता मिश्रणी है। युद्धों के प्रसंगों में 'वीर रौद्र' तथा वीररस के सम्मिश्रित रूप मिलते हैं। इन रसों में स्वाधी भावों के परिपाक का कार्य आसम्भन-उद्दीपन या अनुभावों से सिद्धा गया है। युद्ध वर्णन के सन्दर्भ में अनुप्रासाभाव उत्पन्न करने वाले अनेक सन्दर्भ भी मिलते हैं—

मरं मुह रटं सहं भयं डोरं
 भेद बहुली मेघ मेघन बारं ।
 बुमै मुक्ति सीधं मटे लोह छत्कै
 उमै बानिभूर्त महामन हक्कै ।
 छिमै रुड बिन मुह रस रौघ छबे,
 मने ममरं नट्ट बिघा कि नाबै ।

स्वक-स्वयं पर वीर विरोधी निर्बल और मानस के संस्पर्श भी मिलते हैं। कदम रग के अन्तर्गत 'सत्री' होने वाले हस्त उन्मिष्यन्तीय है परन्तु प्रभाववन्ता की दृष्टि से इनकी समाप्ति छाँट में होती है।

इस प्रकार काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से 'धृष्णीराज रासो' में लोक काव्यधेसी और अर्धवृत्त काव्य विधा इन दोनों का आचार मिलता है। गृ मार को बैभव युद्धों की भीषणता से इस काव्य की अन्तस्चेतना जीवित है। वस्तु वर्णन और भाव व्यञ्जना इन दोनों दृष्टियों से यह एक अति प्राणवन्त रचना है। इस दृष्टि की प्रेयसीमता अति उपाध है। भाव संस्पर्शों के साधारणीकरण की दृष्टि से इसकी अभिव्यञ्जना विधा इस दृष्टि को स्वाचित्य का अनुमान देती है। अस्कार वमर की दृष्टि से और द्रुपद-वन्तों की दृष्टि से 'धृष्णीराज रासो' का महत्त्व कम नहीं है। इन दो दृष्टियों के मानदण्ड के अनुसार 'धृष्णीराज रासो' पर विचार यहाँ किया जा रहा है।

महाकाव्य की साम्प्रदायिक परिभाषाओं के अनुसार 'धृष्णीराज रासो' के महा काव्यत्व का सुस्पष्टीकरण सम्भव नहीं है। इस सत्य की ओर संकेत किया जा चुका

है कि आलोच्य अन्य किसी एक कवि की संस्मिष्ट रचना नहीं है। इसका विकास अनेक सन्दर्भों में हुआ है। परन्तु परवर्ती काल में इसका स्वल्प संशुद्ध अछूत महाकाव्यों के संस्पर्शों से भी हुआ है। अतः इसके वर्तमान रूप में संशुद्ध प्राकृत और अपभ्रंश महाकाव्यों की प्रबल कृष्टियाँ सम्मिश्रित रूप में मिली हैं। अशुद्ध महाकाव्य सर्ग-बद्ध होते हैं। परन्तु इस परम्परा के विपरीत 'रासो' पूर्व 'समय' और प्रस्ताव में विभक्त है। अनेक स्थलों पर 'पर्व' का भी प्रयोग किया गया है। अशुद्ध महाकाव्यों के समान इसकी कथा का सन्तुलन नाटकीय चरित्रों के अनुक्रम नहीं है। अपभ्रंश महाकाव्यों में सर्गों के दीर्घक के लिए 'प्रस्ताव' का प्रयोग किया गया है। पृथ्वीराज रासो में भी यत्र 'प्रस्ताव' का प्रयोग किया गया है, उदाहरण 'शक्तिता वर्णन प्रस्ताव'।

'पृथ्वीराज रासो' के आदि पूर्व अथवा प्रथम सर्ग में मङ्गलाचरण के छन्द है। इसके लघु रूपांतर की प्रति में 'वसाकटार वर्णन' के अन्तर्गत ही मङ्गलाचरण है। अनेक अपभ्रंश काव्यों में दोष्ट पुरुषों का स्तवन मिलता है। पृथ्वीराज रासो में इस प्रथाकी का प्रयोग मिलता है। संवाद रूप में कथा लिखने की विधा परम्परा महाभारत रामायण और अपभ्रंश की कृतियों की विशेषता है। आलोच्य कृति में भी यह विधा ग्रहण की गई है। इसकी बर्णना की जा चुकी है। इस कृति के वस्तु निर्देश में प्रतिपाद्य विषय का स्पष्टीकरण भी किया गया है। यहाँ पृथ्वीराज रासो के गुण उसके महत्व उसकी व्यापकता उसकी स्मृति सत्ता और उसके उत्तम ज्ञान का उत्प्रेष मिलता है। यहाँ 'पृथ्वीराज रासो' की कथा का संक्षेप भी वर्णित है। इस प्रकार वस्तु निर्देश तथा भूमिका की दृष्टि से इस कृति में अपभ्रंश काव्य-कृतियों की प्रमुखताओं का निर्वाह मिलता है। अपभ्रंश के काव्य के छन्दों के समान इस कृति में भी एक ही समय के अन्तर्गत विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया गया है। आलोच्य कृति का विकास अपभ्रंश के रासक काव्यों के अनुसार हुआ है। इस प्रबल काव्य में अल्प रासक रासो अठपई, चर्चरी कवित्त सटुक, गाथा बोहा आदि छन्दों का विशेष रूप में प्रयोग हुआ है। वही बर्निक वृत्तो मात्रिक वृत्त के अतिरिक्त मिश्रित छन्दों का भी प्रयोग हुआ है। प्रथम वर्ष के छन्दों की संख्या प्रायः तीस द्वितीय वर्ष के छन्दों

की संख्या लगभग बत्तीस और निम्न छन्दों की संख्या ६ के लगभग है। इस प्रकार अपभ्रंश के कवचक-बद्ध काव्य-ग्रन्थों में प्रयुक्त प्रामाण्य समस्त प्रकार के छन्द 'पृथ्वीराज रासो' में मिल जाते हैं।

भूमि रासक प्रचलित-मुसक और चरितकाव्य रहा परन्तु अपने आधुनिक रूप में यह एक भारतीय महाकाव्य है और कविवर्य विचारकों ने इसे विकसगधीत महाकाव्य भी कहा है। अतः अलङ्कार महाकाव्य का कथानक-संगठन यहाँ सम्भव नहीं है। विकसगधीत महाकाव्यों के समान इसका कथानक में भी अन्विष्टि नहीं है। इसमें एकलक्षित कथानक एक-दूसरे से स्वतन्त्र हैं। इस दृष्टि में भीमन के बाह्य रूपों का ही चित्रण प्रमुख रूप में हुआ है। इसमें पौराणिक और रोमाञ्चक—इन दोनों उन्मूलों का समानेष्ट हुआ है। मामूली कथा और विस्मयनायक ने महाकाव्य के नामक का धीरोदात्त और बलरोदात्त होना माना है। छन्द के अनुसार उसे एकलक्षित होना चाहिए, अर्थात् उसमें प्रमुखता, मध्यस्थता और उत्साह-प्रतिष्ठा अपेक्षित है। इसमें वर्ण वर्ण और काम प्राप्ति का आग्रह होना चाहिए। अतः भारतीय आचार्यों के अनुसार 'पृथ्वीराज रासो' के नायक पृथ्वीराज में आवश्यक गुण नहीं हैं। उसमें मर्यादा सीमा और लोकहित की भावना नहीं है। 'पृथ्वीराज रासो' सामन्ती युग का काव्य है। सामन्ती बीरों में नैतिक भावनों के प्रति आग्रह नहीं मिलता है। अतः पृथ्वीराज में सामन्ती चरितकाव्य के नायकों के सम्पूर्ण गुण मिल जाते हैं। 'पृथ्वीराज रासो' में चरित्र-वैविध्य नहीं है। यह धीर्य पराक्रम और वल्लभा का काव्य है। अतः इसकी संकीर्णता है। परन्तु घटनाओं के निरूपण में यहाँ संतुलन नहीं है। इसमें अनुप्रास, उद्गार उद्गेषा रूपक आदि अलंकारों ने सर्वाधिक प्रयोग हुए हैं। भीमराज के प्रसंग में ओज और शृंगाररस के प्रसंग में माधुर्य युगों के प्रयोग इसकी काव्यात्मक अनुप्रेक्षा को उत्कर्ष प्रदान करते हैं।

अनेक युग की पूर्ण अमिष्यता इस दृष्टि में विद्यमान है। सामन्ती युग के सामाजिक संयोजन को स्वयं-योजना यहाँ मिल जाती है। राज्य की स्वतन्त्रता के संस्थाओं के वर्णन भी अनेक स्थलों पर मिलती है।

पृथ्वीराज रासो की भाषा

‘पृथ्वीराज रासो’ के भाषा-स्वरूप में विविधरूपता है। यह अनेक बार कहा गया है कि यह किसी कवि विशेष या युग विशेष की कृति नहीं है। अतः इसकी भाषा में अनेक भाषा-स्तरों के रूप मिलते हैं। अपने मूल रूप में यह अवहट्ठ की रचना है। परन्तु समग्रता की दृष्टि से इसमें पश्चिमी प्रदेश में दक्षिण से चोखुहरी सताग्री के मध्य की भाषा के विकसितधीन स्वरूप के रस हो जाते हैं। इस ही भाषा की कतिपय विशेषताओं का उल्लेख किया जा रहा है।

(क) प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के सप्त-मध्य की संयुक्त व्यञ्जन ध्वनियों मध्य काशीन भारतीय आर्य भाषा में समोद्भूत हो जाती हैं और पूर्व की वीर्य स्वर ध्वनि कानु हो जाती है। परन्तु आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में (पञ्जाबी और सिन्धी के अतिरिक्त) समोद्भूत ध्वनियाँ सरल हो जाती हैं और पूर्व की सप्त स्वर ध्वनि वीर्य हो जाती है। इस दृष्टि से ‘पृथ्वीराज रासो’ के कतिपय वंशों की भाषा मध्यकाशीन भारतीय आर्य भाषा के अतिनिष्ठ है।

बुझ > बुम्भ हस्त > हस्त्र

मार्ग > मम्भ राजि > रति^१

(ख) सप्त मध्य संयुक्त व्यञ्जनों के मध्य स्वरागम की प्रक्रिया मध्यकाशीन भारतीय आर्य भाषा में ही दृष्टिपोषक होने लगी थी। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के कतिपय विभागों में इस प्रक्रिया का व्यापक प्रसार हुआ है।

उदाहरण—

सम्भ > सभ्र बम्भ > बम्भ रत्त > रत्त^१

१—इस सन्दर्भ में ‘बंदरबाई और उनका काव्य’ नामक ग्रन्थ में डॉ० बिपिन बिहारी द्विवेदी ने ‘पृथ्वीराज रासो’ की भाषा पर जो विचार प्रकट किया है उस ओर मैं विद्वानों का ध्यान आकर्षित करना चाहूँगा। डॉ० द्विवेदी भारतीय आर्य भाषाओं के विकास-क्रम की प्रवृत्तियों की वैज्ञानिकविधा से अनभिज्ञ थे कथते हैं। उनके ग्रन्थ के एक उद्धरण से इस कथन का समर्थन किया जा सकता है—‘वैदिक भाषा में संयुक्त वर्ण का पूर्वस्वर ह्रस्व पाया जाता है यथा—रोदसीप्रा=रोदसिप्रा (श्रुत्येव १०=८८१)’

(ग) धब्ब-मध्य स्वर-लोप या स्वर-संकोचके उदाहरण भी मिलते हैं—

मगर > मघ भमिनी > भमी

(घ) स्वर-मध्य स्पर्श व्यक्तियों के लोप के बाव उदाहरण स्वरों के मध्य 'य'

भुक्ति के व्यापक उदाहरण उपलब्ध होते हैं—

प्रा०

नमर > मजर > मयर

सागर > साभर > सायर

सोर > सोख > सोग

(ङ) सर्वनाम—उत्तम० एक वचन में है।

मध्यम० एक० तुंहि, तुम तुम्ही।

(च) कर्ता के लिए साविभक्तिरु—ह का प्रयोग।

उदा०—थाप बियौ तापसहु, अकनि करनी सुमवतिरि।

(छ) परसर्गीय सम्बाधनी—सम=करण कही भूत प्रभिराज सम।

कही कांति सम कंठ।

अधिकरण—माँझ, मग्ग, मग्गार।

उपमात्र माँझ बसि गए जाप नर नारी छजा गई फागुन मास मग्गार।

सम्बन्ध-केरा केरी बौरि सब अंज बहुमान केर निरी दिष्टि सों दिष्टि
बहुमान केर।

(ज) संख्या वाचक —बहु=वह गुना बल साधि।

अमात्र—अमत्र और प्राकृत में भी यह नियम मिलता है पात्र=पत्र, रात्रि=रति साध्य=सुग्ग, इस लक्षण की अनुपस्थिति से निर्मित शब्द रासो में भी वर्तमान मिलते हैं उदा० भूम > भुम्य कार्य > कज—देखिए—
'अनवरदाई और उनका काव्य' पृ० २८८ : वस्तुतः जिस प्रकृति की बर्णना यहाँ हुई है। त्रिवेदी ने की है वह मध्यकासीन भारतीय आर्य भाषा की प्रकृति है जिसके आधार पर मध्यकासीन भारतीय आर्य भाषा प्राचीन भारतीय आर्य भाषा से प्रकटित हुई है। डॉ० त्रिवेदी इसे भी वैदिक भाषा की प्रकृति मानते हैं। उनके द्वारा प्रस्तावित भाषा की विवेचना की जासोचना एक स्वतन्त्र विषय है।

व्यापि=व्यापि प्रकार विरिय बन बाल । बीजगानी बीस=२४
बीस गुम ३२ ।

(क) क्रिया — अकार्य के लिए—इ का प्रयोग मुख्यतः आर के
अर्थ में—सुगहि राज प्रविराज विप्ल रक्तीय करिय गुप ।
सुगहु प्रविराज राजमत ।

हेमचन्द्र ने दो प्रकार के अपभ्रंश-रूपों की बर्णना की है —

(क) सिष्ट जन की अपभ्रंश भाषा इसका प्रयोग जैन भाषार्थों द्वारा हुआ
है (ख) ग्राम्य अपभ्रंश । भाषा वैज्ञानिकों की यह धारणा है कि 'सन्देश
रासक' ग्राम्य अपभ्रंश में लिखित एक कृति है । परन्तु वस्तुतः यह अवहट्ट की
रचना है । इस सन्दर्भ में यह कहा जाता है कि सन्देश रासक और 'पृष्णीराज
रासो' एक ही काल की कृतियाँ हैं । अतः 'पृष्णीराज रासो' का आदि रूप
अवहट्ट में सर्जित हुआ है । इस धारणा की पुष्टि 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में संरक्षित
'पृष्णीराज प्रबन्ध' और 'हमचन्द्र प्रबन्ध' की भाषा के स्वस्व से हो जाता है ।
इससे 'पृष्णीराज रासो' की भाषा का आदि स्वस्व का परिचय मिल जाता है ।
इसमें अपभ्रंश—अवहट्ट के संक्रान्ति काल की भाषा का रूप मिलता है ।

अपभ्रंश—अवहट्ट उच्चार-बहुला भाषा है । 'पृष्णीराज रासो' की भाषा में
उच्चार-बहुला भाषा के रूप मिलते हैं—जरा णहुबीसु, वणु, कंभवसदित । इस
प्रकार के प्रयोग 'पृष्णीराज रासो' की भाषा के विभिन्न स्तरों में मिलते हैं ।
'पृष्णीराज रासो' की भाषा की निम्नतम सीमा अवस्था में उच्चार रूप का प्रयोग
अन्य विशेष की मात्रा या लय-पूर्ति हेतु भी होता है ।

'पृष्णीराज रासो' की भाषा में संज्ञा के निम्नलिखित कारकीय प्रयोग
मिलते हैं—

(१) सविमर्शिक प्रयोग—इसके अन्तर्गत संज्ञाओं के वे रूप आते हैं जिनमें
प्राचीन भारतीय आर्य भाषा की संज्ञाओं की निम्नलिखितों के अवयव मिलते हैं ।
जरा० के सिर सुगहि समप्पिहौ ।

(२) अनुविभक्तिक प्रयोग

(३) कारकीय प्रयोग ।

(४) परस्त्रीय प्रयोग ।

परवर्ती अपभ्रंश-व्यवहृ में केहि, रेसि तजेन होतो करेब केर, मगिम्ह, सब सरिब, माझ भादि परसर्गों का प्रयोग मिलता है । नृप्पीराज रासो में भी इन समस्त परसर्गों का प्रयोग मिलता है ।

रासोकाम्य की परम्परा सोमबीं सचहबीं सताम्बी तक मिलती है । इसके अनन्तरत दयासकवि का 'राणा रासो' (सन १६१८ ई०) कुम्भकर्ण का 'रतन रासो' (सन १६१८-१६२४), त्वागठ लौ जान कवि का 'कायम रासो' (१६२४) राज डूंगरजी का 'छबवास रासो' (सन १६५३) कीर्ति मुन्बर का 'माकन रासो' अन्य उत्प्रेक्षणीय रचनायें हैं ।

काव्यरूप और भावयोजना की दृष्टि डोला मादरा बूहा एक महत्त्वपूर्ण कृति है । भाषा की दृष्टि से यह हिन्दी की कृति नहीं है । परन्तु हिन्दी की कतिपय आदिकालीन कृतियों की आन्तरिकता इस रचना में अपत्यम्ब हो जाती है । यह एक प्रेमाप्ययानक काव्य है और इसकी संविष्टा 'बीसछेब रासो' से मिलती है । 'बीसछेब रासो' के समान इस कृति की कथा अति शीघ्र है । परन्तु बीसछेब रासो की कथा में एक शृङ्खला मिलती है । 'डोला माद रा बूहा' मुख्यतः काव्य है । इस कृति का मूल रूप सोरठ पीठों के रूप में रहा है । काव्य-रूप से विकसित होकर इसने साहित्यिक रूप धारण कर लिया । 'डोला माद-रा बूहा' को एक नवीन रूप देने का प्रयास कवि कुसुमसाम (जैन कवि) ने किया । दोहों के मध्य स्थान-स्थान पर चउपई की योजना कर उन्होंने इसका नामकरण 'डोला माद चउपई' रखा । पश्चिमी भारत में—पंजाब, राजस्थान गुजरात में—डोला और मादम्बी की प्रचलना के इस काव्यरूप के अनेक उदाहरण मिलने हैं । प्रेमाप्ययानक काव्यों की रुढ़ियों इस कृति में व्यापक रूप में प्रयुक्त हैं । मादम्बी के लिए डोला सिंहल की यात्रा करता है । विप्रलम्भ वर्णन और अनेक वर्णन की दृष्टियों से भी यह प्रेमाप्ययानक काव्यों के निरूप की कृति है । इन्हीं दृष्टियों में हिन्दी के आदिकालीन साहित्य के साथ डोला माद-रा बूहा का सम्बन्ध उत्पन्न है ।

कोरियासी'—तुम दो रानियों का परित्याग नहीं कर पा रहे हो, और मैं सिन्धी नगर का राजा था मैंने सात शत रानियों का परित्याग किया है। अपना विधेय परिचय देते हुए वे कहते हैं—

‘आत्मन्वरि नृपति आत्मन्वर वरा
श्री आदिनाथ कहिय उपदेश’^२

अब यह संकेत किया गया है कि कच्छ या कानूपा आत्मन्वर के शिष्य न। इसका संकेत कानूपा के निम्नलिखित कवन में भी मिलता है—

प्राप्ति करिब आत्मन्वरि पाए।
प्राप्ति न राहुन मोरि पण्डियाभाये ॥

एक अन्य अंश में शहर की स्मृति करते हुए कच्छ ने कहा है—

बर गिरि सिद्धर उत्पन्न मुनि
पबरे बहि किन्न पाव
पठ सो छंदिष पम्पाननेहि
करि बर बुरिब बास।

‘आत्मन्वर नामक महामेव है विरि के घिसर का उज्जीव कमल है। यह साधकों की चरम उपलब्धि है। जहाँ शहर पाद ने बास किया था। इस अंश में ‘आत्मन्वर’ को प्रतीक रूप में ग्रहण किया गया है। ‘बौद्ध धाम और दोहा’ तथा ‘वर्णवर्णनिमित्तक’ के अनुसार कानूपा वापासिक थे। अब इस परम्परा के

१—In India however instead of being a purely medical science it developed theological speculations and already in fairly old medical texts we find references to the view that Siddhi or perfection can be attained by making the body immutable with the help of Rasa—Obscure Religions cult Pages 251

२—मे हस्तिनापुर के पुस्तकाली राजा बृहद्रथ की बहानि से उत्पन्न हुए थे अतः इनका नाम आत्मन्वराय पड़ा। इनका सम्बन्ध आत्मन्वर पीठ से रहा है। सिन्धी परम्परा के अनुसार मे ब्राह्मण थे।

अनुसार वास्तव्य का भी कापालिक होना निश्चित होता है। किन्तु वास्तविकता क्या है इस विषय में स्पष्ट प्रमाणों के अभाव में हम निष्कर्ष देने में असमर्थ हैं।

मत्स्येन्द्र नाभ को नेपाल में जबलोहितेश्वर बुद्ध का अवतार माना गया है। तन्नामोक के अनुसार इनका नाम मत्स्येन्द्र था। ये 'कौस्तुभान निर्णय' नामक ग्रन्थ के रचयिता थे। कौस्तुभान निर्णय में इनके लिए मत्स्येन्द्रनाभ पाद मत्स्येन्द्र-पाद मीन पाद तथा मत्स्येन्द्र पाद आदि नामों का उल्लेख मिलता है। अनुश्रुतियों के अनुसार ये मछली मारने वाली जाति के थे यही कारण है कि उन्हें 'मत्स्यवन' भी कहा गया है। इस सम्बन्ध में कतिपय लोक कथाएँ प्रचलित हैं। एक कथा के अनुसार कार्तिकेय ने शास्त्र पुराकर समुद्र में डाल दिया। उसे एक मत्स्य खा गया। शिव ने मत्स्य का रूप धारण कर समुद्र में प्रवेश किया और इस विधि से उन्होंने शास्त्र का उद्धार किया। एक अन्य परम्परा में इस कथा का रूपान्तर मिलता है। इसके अनुसार क्षीरोप समुद्र में शिव अपनी शक्ति से तम्र साधना पर बाठीलाप कर रहे थे। मत्स्येन्द्र नाभ ने मत्स्य के रूप में इस ज्ञान को गोप्य होकर सुना। इस प्रकार एक ही कथा के भिन्न-भिन्न रूपान्तर मिलते हैं।

यहाँ स्पष्ट रूपों में यह कहा जा सकता है कि इन लोक कथाओं से आलोच्य सम्प्रदाय के स्वस्व का स्पष्टीकरण नहीं हो पाता है। वास्तविकता यह लगती है कि शिव और मत्स्य जिस कथा के पात्र हैं वह किसी विशिष्ट सिद्धान्त की लक्षितिकता को आत्मसात् किए हैं। दर्शन की प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तावित करने की प्रथा इस देश की एक विशिष्ट प्रणाली है। लोक जीवन में पहुँचकर यह प्रस्तावना जब विशेष प्रसार पा जाती है तो उसका दर्शन तत्त्व विविध हो जाता है और अभिव्यक्त स्वस्व ही प्रथम पा जाता है। मेरी अपनी धारणा है कि मत्स्येन्द्रनाभ से सम्बन्धित समस्त लोक प्रचलित कथाओं की रचना में इस प्रवृत्ति ने कार्य किया है। मैं 'कौस्तुभान निर्णय' के आधार पर ही इस निर्णय पर पहुँचने के लिए साहाय्य होता हूँ। 'कौस्तुभान निर्णय' में यह स्पष्ट उल्लेख

१—महा महोपाध्याय श्री हर प्रसाद शास्त्री इसे महीं रानावरी की रचना मानते हैं। प्रबोध चन्द्र शर्मजी इसे प्यारहवीं शताब्दी की रचना मानते हैं।

मिलता है कि सिध सिद्ध रूप में भूतल पर अवतीर्ण हुए । पार्वती से एक बातों में वे कहते हैं —

महं सो भीमरो देवि कै वसुतर्ष मया कृतः
आकृष्य तु तदा मत्स्यं सक्तिं बालं समीकृतः
मत्स्योदरन्तु ततस्कोट्य गृहीतञ्च कुक्कामभं
वदन्ति विविता लोके पद्मवो ज्ञान वक्षिता

इसी सन्दर्भ में मत्स्यरूप में सिध द्वारा 'धाक उधार' की कथा मिलती है । यही पर यह संक्षिप्त मिथता है कि कैवर्त होकर सिध ने कौल का उधार किया । अमिताभ पुत्र ने रागास्त्रम् बाकम् का उल्लेख करते हुए लिखा है—

रागास्त्रं घन्नि विभाव कीर्षम् यो बाक माताम कितान वृत्तिम् ।

कळोम्मितम् बाहूपने वकार स्तान्ने स मण्डन विमु प्रसन्न

वस्तु स्थिति यह है कि 'कौलज्ञान' में मत्स्य और मत्स्येन्द्र प्रतीक रूप में ही प्रयुक्त हैं । अमिताभमूक्त अर्थ पर्वर्ती काक में ही ग्रहण किया गया ।

नाग-पंथ का इतिहास और इसके प्रवर्तकों तथा आचार्यों की बीकमी और उनकी साधना-विद्या का स्वरूप स्पष्ट नहीं हो पाता । इस साधना-मार्ग की रूप योजना का परिचय लोक अनुभूतियों से ही मिलता है । मत्स्येन्द्र नाग नाग पंथ के प्रथम लौकिक आचार्य माने गए हैं । इनको मीननाथ भी कहा गया है । परन्तु 'हठयोग प्रदीपिका' में मत्स्येन्द्रनाथ और मीननाथ का उल्लेख दो स्वतन्त्र व्यक्तियों के रूप में हुआ है । 'योग' 'सम्प्रदायविच्छिन्ति' नामक ग्रन्थ में मीननाथ को मत्स्येन्द्रनाथ का पुत्र कहा गया है । विभिन्न ग्रन्थों से यह ज्ञात होता है कि मत्स्येन्द्रनाथ का व्यक्तित्व अति प्रभावशाली था और नागपंथ के संगठन में इनका विशेष योगदान रहा है । तिब्बती अनुभूतियों में भी मत्स्येन्द्र नाथ से सम्बन्धित अनेक कथाएँ मिलती हैं । यहाँ भी मत्स्येन्द्र नाथ के समानान्तर मीन नाथ का उल्लेख मिलता है । परन्तु यहाँ मीन नाथ को मत्स्येन्द्रनाथ का पिता कहा गया है । सिद्ध साधना-मार्ग के आदि सिद्ध सूरिपा का उल्लेख किया जा चुका है । सूरिपा और मत्स्येन्द्र नाथ को एक ही व्यक्ति के रूप में भी कठिपय पम्पराओं में ग्रहण किया गया है । 'मत्स्य' और 'सूरि' को पर्यायवाची शब्द मान कर इस प्रकार का निर्णय लिया गया है । इस प्रकार 'सुह' 'रोहित' या 'ओहित'

से विकसित धर्म माना गया है। तिब्बती परम्परा में सुई के लिए मत्स्यान्नाद (मछली की बेंतड़ी खाने वाला)। परन्तु इससे वस्तु स्थिति का स्पष्टीकरण नहीं हो पाता है। मत्स्येन्द्र के लिए 'मच्छन्नापाद' का भी प्रयोग मिलता है। मत्स्येन्द्र नाम जिसके चार पुस्तकों बहुस्त्रीतंत्र कुक्षानन्द और आतकारिका में इनके लिए 'मीनस्य', मच्छेन्द्रपाद, मत्स्येन्द्र और मच्छिन्नपाद आदि नामों का उल्लेख मिलता है। 'कोष्ठ ज्ञान निर्णय' में इनके लिए मच्छन्नापाद मच्छेन्द्रपाद मत्स्येन्द्र पाद और मीनपाद आदि नामों का प्रयोग मिलता है। हर्षसाह साक्षी की यह धारणा थी कि ये कृतियां नहीं छटावरी की हैं। परन्तु प्रबोधचन्द्र बागधी का निर्णय है कि ये कृतियां म्याह्वरी छटावरी के मध्य भाग की हैं। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मत्स्येन्द्र नाम का समय नहीं छटावरी से लेकर म्याह्वरी छटावरी के मध्य पड़ता है।

वास्तविकता यह है कि मीनताप और मत्स्येन्द्र नाम एक ही व्यक्ति हैं। तंत्रालोक के भाष्य से इस विश्वास की पुष्टि होती है। कायकर्म में ब्रह्मपूज मही को लोहित भी कहते हैं और उस प्रणेत को लोहित प्रवेश भी कहते हैं। अब इस देश के बासी होने के कारण मत्स्येन्द्र को सुरेपाद या सुरसा कहा गया होगा^१। तिब्बती अनुसूचियों में यह कथा भी प्रचलित है कि कौलागम के प्रचार हेतु मत्स्य के त्वर से स्वयं शिव ने कौबर्त के रूप में अवतार लिया था। मीन नाम को सहज सिद्धि का प्रथम आचार्य भी माना गया है। सहज सिद्धि से ही नाम पंच का सूत्रपाठ होता है। सुरेपा बखयानी सिद्ध थे परन्तु मीन या मत्स्येन्द्र बखयानी साधक नहीं थे। अतः मत्स्येन्द्र और सुरेपा दो भिन्न साधना पाराओं के आचार्य थे। परन्तु तारानाथ ने इसका स्पष्ट उल्लेख किया है कि मत्स्येन्द्र 'कष्ट बीप' के निवासी थे और य 'कोष्ठ मार्ग' के अनुयायी थे। तागनाथ ने इस और स्पष्ट धारों में संकेत किया है कि सुरेपा ने मोहिनी पद्धति का प्रारम्भ किया था। अतः इस संकेत के आधार पर मत्स्येन्द्र तथा सुरे एक ही व्यक्ति लगते हैं। परन्तु सुरेपा और मत्स्येन्द्र के नाम से प्रस्तावित रचनाओं में भिन्न भिन्न साधना विधा का उल्लेख मिलता है। सुरेपा प्रभृति मार्गी य। मत्स्येन्द्र

१—रोहिण>लोहित>साहिब>सीरज>सुरे।

२—आपराध - बखयानी मञ्जिर—पृ० १०

निवृत्ति मार्गी थे। सिद्धों ने सूरिपा को 'मत्स्येन्द्रावतार' कहा है। बहुत सम्भव है इस कारण ही परवर्ती काल में 'मत्स्येन्द्र' और 'सुरि' को एक ही व्यक्ति के रूप में ग्रहण करने की भावना विकसित हुई हो।

'कौत्सज्ञान निर्णय' की भूमिका में डॉ० प्रबोधचन्द्र बागची ने यह संस्थापना की है कि मत्स्येन्द्र नाब और 'सूरिपाव' एक ही व्यक्ति थे। अपने निर्णय के लिए उन्होंने निम्नलिखित कारणों का उल्लेख किया है—

[क] तिब्बती परम्परा के अनुसार सूरिपा आदि सिद्ध थे। भारतीय परम्परा के अनुसार मत्स्येन्द्र आदि सिद्ध थे।

[ख] सूरिपा का सम्बन्ध छत्रपीठा से था। 'हठयोग प्रदीपिका' के अनुसार मत्स्येन्द्र का सम्बन्ध भी छत्रपीठा से था 'श्री आश्विनाथ मत्स्येन्द्र छावरानन्द शेरव' ।

[ग] सूरिपा और मत्स्येन्द्र दोनों ही कीर्तन थे। सूरि का अर्थ है सोहित रोहित या मत्स्यराज और यह मत्स्येन्द्र का पर्यायवाची है।

[घ] तिब्बती में सूरि का अर्थ होता है Naktopa—अर्थात् मत्स्येश्वर भारतीय मत के अनुसार मत्स्येन्द्र का जन्म मत्स्य कं छत्र से हुआ था 'कौत्सज्ञान निर्णय' में भी इसका उल्लेख मिलता है।

राजमोहन नाथ ने इस समस्या का समाधान एक अन्य रूप से किया है। उनके अनुसार मत्स्येन्द्र नाथ दो हुए हैं। एक मत्स्येन्द्र नाथ हठयोग और नाथ सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। दूसरे थे बौद्ध सहजिया तान्त्रिक धर्म के प्रवर्तक जिन्हें सूरिपा भी कहा गया है। डॉ० कल्याणी मल्लिक ने इस निष्कर्ष की ओर संकेत करते हुए कहा है 'उद्दिष्टान्त के राज कर्मचारी सोमा बौद्धधर्म में दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् सूरिपा के नाम से इसलिए विख्यात हुए कि वे उद्दिष्ट प्रवेश के थे। सूरिपाव सहज धर्म का प्रचार करते और बोद्धा में रचना करते। वे जब मत्स्येन्द्रनाथ ने कौत्सज्ञान निर्णय की रचना की परन्तु नाथ सम्प्रदाय के इन प्रवर्तक मत्स्येन्द्र नाथ समुद्र-बासी थे और परवर्ती काल में मारी के पोथ में बाधित हुए। नाथधर्म के प्रवर्तक मत्स्येन्द्र नाथ और सहज धर्म के प्रचारक सूरिपाव-मत्स्येन्द्र नाथ को राजनाथ महाशय ने इस रूप में प्रस्तुत किया है।

(क) मत्स्येन्द्र (मीननाथ) —नाथधर्म के आदि गुरु ।

(क) मत्स्येन्द्र नाथ (कुरिया)—दोहा और कौसजान रचयिता गढ़
मत्स्येन्द्र नाथ ।^१

मत्स्येन्द्र नाथ से सम्बन्धित अनेक कथायें प्रचलित हैं । इनमें कतिपय भौतिक और अतिप्राकृतिक कहानियाँ भी हैं । नेपाल में प्रचलित एक कहानी के अनुसार मत्स्येन्द्रनाथ ने अपने शरीर की रक्षा का भार गोरक्षनाथ पर डालकर एक मृत राजा के शरीर में प्रवेश किया और वे उसकी रानी के माया-वास में आबद्ध हुए । गोरक्षनाथ ने उनके अजेय शरीर में प्राण संचार कर उनकी रक्षा की । इसी प्रकार की एक कथा योगी सम्प्रदाय विष्णुति में मिलती है । गिरनार पर्वत पर महासिद्ध के रूप में निवास करते हुए मत्स्येन्द्र सिंहल द्वीप की रानी के माया-वास में बद्ध हुए और इनसे परशुराम और भीतराम नामक पुत्र उत्पन्न हुए इस कथा में गोरक्ष द्वारा ही मत्स्येन्द्र का उद्धार होता है । कर्लीबन में मत्स्येन्द्र पतन की कथा तो अति प्रसिद्ध इस कथा में भी गोरक्ष द्वारा ही मत्स्येन्द्र नाथ का उद्धार होता है । नेपाली अनुभूति के अनुसार मत्स्येन्द्र नेपाल के रहस्य थे । गोरक्षनाथ से पंचाब से होकर नेपाल में आए थे । पशुपति नाथ के मन्दिर के निकट निवास कर उन्होंने सौंभ धर्म का प्रचार किया । तिब्बती अनुभूति में

गोरक्षनाथ बौद्ध इन्द्र चार्किर थे । सौंभधर्म इन्होंने बाघ को ग्रहण किया । कौसजान निर्णय में मत्स्येन्द्र नाथ को मृङ्गीपाद भी कहा गया है । गोरक्षनाथ का उत्प्रेक्ष्य यहाँ बौद्ध रूप में हुआ है । आपने धर्म का परिपालन कर व बौद्ध धर्म में दीक्षित हुए थे । यही कारण है कि नेपाल के गोरक्षनाथ अग्रस्त थे । परन्तु मत्स्येन्द्रनाथ की उपासना व कर्तव्य के रूप में करते रहे । बौद्ध ग्रन्थों में भीतराम के पदों का उत्प्रेक्ष्य मिलता है । इस प्रकार मत्स्येन्द्र बौद्ध सम्प्रदाय का आचार्य ही लगते हैं ।

‘कौसजान निर्णय’ मत्स्येन्द्रनाथ चन्द्ररीप के निवासी थे । यह स्थान काम रूप के निबट है । इस ग्रन्थ में मत्स्येन्द्रनाथ के पतन की कहानी का उल्लेख नहीं है । यहाँ इन्हें कौल योगी कहा गया है । एक अन्य श्लोक के अनुसार मत्स्येन्द्रनाथ का जन्म-स्थान बंम हैच था य वाङ्गन य और इनका नाम विष्णु कर्मा

था । 'गोरख पुराण' में मत्स्येन्द्र नाथ का उल्लेख मिलता है । स्कन्द पुराण की एक कथा के अनुसार मत्स्येन्द्र का जन्म अशुभ काल में हुआ था, फलस्वरूप इनके माता पिता ने इनको समुद्र में डाल दिया । मत्स्य के भाष्यम से उन्होंने योग प्राप्त किया और शिव ने उनका उद्धार किया । सत्रहवीं शताब्दी के एक विद्वान् केन्द्र के अनुसार योगी श्रेष्ठ मत्स्येन्द्र नाथ सक्ति के उपासक थे बौद्ध उन्हें भोके-स्वर कहते थे और उनका सम्मान वे अवलोकितेश्वर के रूप में करते थे । भोके-स्वर या भोक्नाथ इनके अन्य नाम थे । वे परम तपस्वी और इन्द्र जाद्विक थे । इनका मुख्य मन्त्र था 'ओ ममि पन्ने हुम्' । मंत्र की दृष्टि से वे सिद्धों की परम्परा में आते हैं ।

नाथ-यंत्र पर विचार करते हुए विद्वानों ने इन समस्त कहानियों का उल्लेख किया है । परन्तु इनके भाष्यम से क्या निष्कर्ष निकलता है इस ओर किसी की भी दृष्टि नहीं गयी है । ये कहानियाँ एक दूसरे में मिश्रित हैं । इनसे किसी स्पष्ट निष्कर्ष की उपलब्धि सम्भव नहीं है । परन्तु इन कहानियों में कतिपय सांकेतिक अर्थ भी विद्यमान हैं । जिनसे निम्नलिखित निष्कर्षों के प्रति मैं आग्रहशील होता हूँ ।

ऊपर वर्णित विभिन्न कहानियों में यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि मत्स्येन्द्र नाथ बौद्ध-साधक थे । गोरखनाथ भी मूल रूप में बौद्ध थे । परकीर्ती काल में उन्होंने नाथ-यंत्र में परिवर्तन ली । उनके द्वारा मत्स्येन्द्र के उद्धार की कथा भी स्वतन्त्र-स्वतन्त्र पर मिलती है । इसका संकेत ग्रहण करते हुए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कहा है 'मत्स्येन्द्रनाथ कभी योग मार्ग के प्रवर्तक थे और फिर संन्यास एक ऐसे साधना में सम्मिलित हो गए जिसमें स्त्रियों के साथ अवाध संसर्ग मुख्य बात थी—सम्भवतः यह वाममार्गी साधना थी ।' परन्तु इस निर्णय को एक अन्य रूप में ग्रहण करने का प्रलोभन बाधित होता है । सामन्तियों की समझता की दृष्टि से दो निष्कर्ष की सम्भावना बाधित होती है । नाथ-यंत्र के मत्स्येन्द्र और गोरख बौद्ध-यंत्र के मत्स्येन्द्र और गोरख से भिन्न थे । इस सम्बन्ध में राज मोहन नाथ के विचारों का उल्लेख किया जा चुका है । गोरखनाथ का उल्लेख करते हुए उन्होंने दो स्वतन्त्र व्यक्तियों की कल्पना इस रूप में की है—

(क) गोरक्षनाथ—नाथ धर्मी काया साधना के नेता ।

(ख) नथ गोरक्षनाथ—रमण बज्र—सहस्रिया धर्म के प्रचारक—इनका सम्बन्ध गोपीचन्द और मयनाबती से था ।^१ परन्तु इन समस्याओं के आधार पर मैं एक अन्य रूप में सोचने के लिए बाध्यपित होता हूँ—मत्स्येन्द्र और गोरक्ष दोनों ही अपने मूल रूप में सहज सम्प्रदाय के थे । सम्भवतः मत्स्येन्द्र गोरक्ष के गुरु थे । दीव-धर्म में बीकित हो जाने के पश्चात् सम्भवतः गोरक्ष की अनुप्रेरणा से मत्स्येन्द्र शैव या नाथ सम्प्रदाय में आए । गोरक्षनाथ द्वारा मत्स्येन्द्र के उद्धार की कथा बहुत सम्भवतः गोरक्षनाथ की अनुप्रेरणा में मत्स्येन्द्र के नाथ सम्प्रदाय के आचमन की कथा हो ?

नाथ सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव काल

नाथ मार्ग के प्रवर्तकों के समय के विषय में ज्ञान प्राप्त करने का कोई निश्चित साधन हमारे पास नहीं है । ऐतिहासिक तथ्यों की दृष्टता में इस संबंध में हम कोई निश्चित निर्णय नहीं ले सकते । परन्तु विविध कहानियों और जन श्रुतियों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मत्स्येन्द्र और गोरक्ष का समय गवीं शताब्दी का मध्य भाग हो सकता है । गोरक्षनाथ और नाथ-धर्म के अन्य साधकों की हिन्दी या भोज भाषा में जो रचनाएँ उपलब्ध हैं वे सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी की हैं इनमें नाथ के विविध-स्तरों का मिश्रण मिलता है । इनके विषय में आगे विचार किया गया है । यहाँ यह संकेत कर देना ही पर्याप्त होगा कि इन रचनाओं द्वारा नाथ मार्ग के प्रवर्तकों का समय निर्धारण सम्भव नहीं है । बालनवरनाथ गोरक्षनाथ और कृष्णपाद समसामयिक थे । सिद्ध-साहित्य के अन्तर्गत कान्हू (कृष्णपाद) पर विचार करते हुए हमने उनका स० ११२२ माना है । अब मत्स्येन्द्र और गोरक्ष यदि इनके समकालीन थे तो इनका समय भी यही मानना होगा । परन्तु आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी इनका समय नहीं शताब्दी का मध्य भाग मानते हैं नाथ मार्ग के आदि प्रवर्तकों का समय नहीं शताब्दी का मध्य भाग ही उचित जान पड़ता है । इस मार्ग में इसके पूर्ववर्ती सिद्ध भी बाद में बनकर उत्पन्न हुए हैं और इसलिए गोरक्षनाथ के सम्बन्ध में ऐसी बातें

इत्युक्तमर्थे चतुर्ष्वीति जिनको ऐतिहासिक तथ्य मान लेने पर सिद्धि-सम्बन्धी गलतफहमी खड़ा हो जाता है ।^१

‘गोरक्षनाथ की मोट्टी’ में गोरक्ष और कबीर के मध्य बाप-बेटा का उल्लेख मिलता है । यहाँ गोरक्षनाथ ने अपने को मत्स्येन्द्र का पुत्र और बादिनाथ का पौत्र कहा है ।^२ कबीर का समय सोमह्वरी शताब्दी है । अतः यदि गोरक्ष को कबीर का समसामयिक माना जाय तो मत्स्येन्द्र और गोरक्ष का समय सोमह्वरी शताब्दी है । परन्तु यह निश्चरित मान्य नहीं है । क्योंकि कबीर के नाम से प्रचलित एक पद में यह भी संकेत मिलता है कि कबीर उनके अनेक वर्षों पूर्व हो चुके थे । गोरक्ष के सिष्य मृगा सर्पों के बेबता माने गये हैं । राजस्वान्त में यह प्रसिद्धि है कि पञ्चगवी के साथ युद्ध करने में उनकी मृत्यु हुई थी । जगन्मूर्ति के अनुसार ये राजवंशी थे और बहुरपीर नाम से विख्यात थे । उनकी मृत्यु फीरोजशाह द्वारा हुई । इन दोनों कथाओं के अनुसार गोरक्ष चौदहवीं शताब्दी में हुए थे । बाबा फरीद के साथ गोरक्षनाथ का नाम समुक्त किया जाता है । फरीद का समय सन् १२४४ ई० है । शान्तेवरचित ज्ञानेश्वरी में नाम योगियों का उल्लेख मिलता है । इनके अनुसार मत्स्येन्द्र और गोरक्ष का समय सन् १२४४-१२६ के मध्य पड़ता है । गोपीचन्द्र गीत भर्तृहरि पियळा कहानी ज्ञानेश्वरी गुह-परम्परा के अनुसार मत्स्येन्द्रनाथ और गोरक्षनाथ का समय ढावध शताब्दी है । ऐसा कहा जाता है कि नेपाल के राजा नरेन्द्रदेव के समय गोरक्षनाथ नेपाल में आए थे । इस धारणा के अनुसार गोरक्षनाथ सातवीं-आठवीं शताब्दी में हुए थे । वस्तु स्थिति यह है कि नाथ-सम्प्रदाय का जन्मभूमि बौद्ध धर्म के पतन के

१—नाथ सम्प्रदाय—पृ. ५४ ।

२—इस प्रकार की भावना गोरखबानी में संकल्पित कल्पित पदों में भी मिलती है—

बादिनाथ माटी मन्त्रिन्वरनाथ पुता पट पवी मबीका गोरख बबभूता

पृ० ८८ १

रस कुस बहिर्गईसा रहि गइ होई, मगल महिप्रनाथ पुता भोग न होई

पृ० ८६

साथ प्रारम्भ होता है। बौद्ध धर्म का पतन मुसलमानों के आक्रमण के पूर्व ही प्रारम्भ हो जाता है। यह कम बारहवीं शताब्दी तक चलता है। अथ नाथ धर्म का आदिर्भाव और उत्थान इसी काल-अवधि में होता है। मत्स्येन्द्र और गोरक्षनाथ इसी अवधि में हुए जाते हैं। डॉ० मोहन सिंह गोरक्षनाथ को नहीं शताब्दी का मानते हैं। Francis Young Husband के अनुसार जिस समय उत्तर भारत में हिन्दू, जैन बौद्ध, मुसलमान ये समस्त धर्म प्रभानवा प्राप्ति के लिए संघर्ष कर रहे थे उस छद्म काल में ही मत्स्येन्द्र और गोरक्षनाथ का प्रादुर्भाव हुआ था। इसका समय नवीं-दशवीं शताब्दी का मध्य है। Nirgun School of Hindu Poetry में डॉ० पीताम्बर दत्त बकुमाल की यह मान्यता है कि गोरक्षनाथ दशवीं शताब्दी में अवतरित हुए थे। उन्होंने हिन्दू-मुसलमान में एकता स्थापित करने का प्रयास किया था। मज्जारकर के निदर्शों के अनुसार मत्स्येन्द्र नाथ बारहवीं शताब्दी के थे। डॉ० प्रबोधचन्द्र बामशी ने 'रस रत्न समुच्चय' नामक ग्रन्थ का उल्लेख किया है। इसके रचयिता ने अपने को बागुमट्ट कहा है। और इनके अनुसार इस ग्रन्थ का रचनाकाल छठवीं शताब्दी है। इस ग्रन्थ में गोरक्षनाथ और शिष्यनाथ का उल्लेख मिलता है। इसके अनुसार गोरक्ष नाथ का समय छठवीं शताब्दी है। परन्तु आचार्य प्रफुल्लचन्द राय ने डॉ० बागशी की मान्यता का खण्डन करते हुए कहा है कि 'रस रत्न समुच्चय बागुमट्ट की रचना नहीं है। यह चौदहवीं शताब्दी का ग्रन्थ है।

इस प्रकार नाथ-सम्प्रदाय के प्रादुर्भाव काल और उसके प्रवर्धनों के समय का उचित निर्धारण सम्भव नहीं हो सका है। मत्स्येन्द्रनाथ गोरक्षनाथ आदि का स्वयं निश्चयरी कहानियों पर ही अधिक अवलम्बित है।

नाथपन्थ के साधकों की परम्परा

नाथपन्थ के साधकों की सूची अनेक स्वान्तरी के साथ उपलब्ध है।

पूर्वपतीकाल (८) आदिनाथ।

पार्वती (मत्स्य रूप में मत्स्येन्द्रनाथ का धरण)।

गोरक्षनाथ।

पैनीनाथ।

शिवशिलाधर।

ज्ञानेश्वर ।

सावित्रदानन्द ।

परवर्तीकाण्ड (३) निम्नम्बर—कृष्णचैतन्य ।

राजव चैतन्य ।

केवल चैतन्य ।

बालाजी चैतन्य ।

लुकाराम ।

बह्मिनी बाई ।

‘ज्ञानेश्वरी’ के अनुसार इस परम्परा का स्वरूप इस प्रकार है—

संकर ।

|

पार्वती—मत्स्येश्वरनाथ का शोपनप्रवेश । मत्स्येश्वरनाथ के साथ

|

सतगुरु गीपर्वत पर विष्णुनाथ श्रीरंगी का साक्षात्कार ।

|

मोरङ्गनाथ ।

|

मेमीनाथ ।

|

निपुत्तिनाथ ।

|

बालदेव ।

नाथपरम्परा बारह पंक्तों में विभक्त है । इसे बारहपंथ कहते हैं । ऐसी धारणा है कि विष्णु ब्रह्म नाथपंथियों को बोरल ने बारह पंथों में विभक्त किया ।

१ सतनामी पंथ या सतनाथी पंथ (मुनेश्वर) २ बर्बनाथी पंथ (कृष्ण प्रवेश) ३ राजनाथी पंथ—(प्रवर्तक-सन्तोषनाथ-गोरखपुर) ४ कपिलान्ती (मंगा सागर) ५ नटेश्वरी या छदमनाथी (गोरखा टीला), ६ बेराथी (प्रवर्तक बटुहरि-राताईवा) ७ नाथनाथी (पावनापर्वत—जोषपुर) ८ बाईपंथ (प्रचारिका विमलादेवी घोरसाकुई स्थान) ९ गंगानाथ पंथ (बयवार-मुस्नाछपुर) १० बयनाथ पंथ (जम्नाला), ११ पावछदम (प्रवर्तक श्रीरंगी नाथ इन्द्रप्रस्थ), १२ राजल या नाथनाथीपंथ । एक अन्य

परम्परा के अनुसार ये नाम इस प्रकार हैं—सुतनाथ रामनाथ, धरमनाथ
 कृष्णनाथ हरियानाथ गंगानाथ बैराग्य, राबस या नामनाथ बालभरिया
 बार्हस्पत्य कपिलानी और पञ्चनाथ ।^१ यह सूची किसी विविष्ट प्रमाण पर आधा
 रित नहीं है । अनुष्ठानों की अनुप्रेषणा ही इसमें प्रधान है । परन्तु हमें एक
 संकेत मिलता है । गोरक्षनाथ एक ऐसे व्यक्तित्व के प्रतिनिधि हैं जिसने अपने
 युग में प्रचलित समस्त नाममायीय साधना-आराधनों का विरोध किया । इनके
 द्वारा एक स्वस्थ साधना-पद्धति का प्रस्तावन हुआ । इन्होंने योगमार्ग और शैव
 मार्ग का समन्वय किया और सिद्धों का प्रतिरोध किया । गोरक्ष ने अपनी
 साधना में तीन बौद्ध ब्रह्मण्य कापस्तिक कौल आदि मठों का समन्वय
 किया ।

मत्स्येन्द्रनाथ : जिसके पृष्ठों में मत्स्येन्द्रनाथ की बीबनी और उसके
 व्यक्तित्व की खोज हो चुकी है । इसका सम्बन्ध 'योगिनी कौल मार्ग' से था ।
 ये ब्रह्मैत साधिक मार्ग के संस्थापक थे । 'तंत्राखोर' में मत्स्येन्द्रनाथ की उल्लेख
 किया गया है । 'भीम भैरव या 'गोरक्षविजय' में कबली जन से मत्स्येन्द्रनाथ
 के उद्धार की कथा से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि वे प्रवृत्तिमार्गी थे ।
 गोरक्षनाथ उनको निवृत्तिमार्ग की ओर आकर्षित करते हैं ।

भीमनाथ जसि गेह कवकिर बैद्य

करछिये बैद्य ब्रूयति जब प्रजा

स्वी राखा हए से बे स्वी हए राखा ।

१—यह प्रसिद्धि है कि शिव द्वारा बाण्ड पर्वों का प्रवर्तन हुआ और गोरक्ष द्वारा
 भी बाण्ड पर्वों का प्रवर्तन हुआ इन पर्वों में संघर्ष हुआ । इसके निम्नान्वेष
 इन्होंने शिव के १ पर्वों और अपने १ पर्वों के संयोग से गरीब बाण्डपंथ
 की स्थापना की जो इस प्रकार है—शिव-सम्प्रदाय —मुन्न (कण्ड) के
 कठनाथ देवावर और रोहक के वासनाथ अफगाणिस्तान के गौबल,
 पंथ या पंक मारवाड़ केवल गोपाल या राम के सन्तोषनाथ तथा बास
 गोपाल नाथ । गोरक्ष सम्प्रदाय —हैलनाथ, आर्द्र पंथ के जोसीनाथ आर्द्र
 नाथ कपिलानी मारवाड़ का बराण्य पंथ और रतननाथी जयपुर के पावननाथ
 बड़नाथ महावीर । द्वितीय साहित्य तृतीय मध्य ७ १ ।

कृष्णपाद (गोपीचन्द पीत के कम्पूपा) तथा मीननाथ (मत्स्येन्द्रनाथ) रचित
 चर्चा पर उपलब्ध हैं। अतः यहाँ तक एक स्पष्ट ऐतिहासिक परम्परा मिलती
 है। इसके आगे की परम्परा स्पष्ट नहीं हो पाती है। बाळम्हरीपा (हाकिपा)
 और गोरखनाथ मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य थे। मत्स्येन्द्रनाथ तथा हाकिपा की रचनायें
 माधवी जपत्र छ-अबहुट में तो उपलब्ध हैं, परन्तु गोरखनाथ की रचनायें माधवी
 जपत्र छ-अबहुट में उपलब्ध नहीं हैं। ऐसी भी धारणा है कि हाकिपायान और
 मासीपायान गोरख के शिष्य थे। ये शोध थे। गोरख की प्रेरणा से वे माधवप्रदाय में
 दीक्षित हुए। विम्बरी साहित्य में यह वृत्तान्त मिलता है। यहाँ मासीपायान को
 हाकिपा कहा गया है। प्रचलित कहानियों के आधार पर डॉ० सुकुमार सेन का यह
 निष्कर्ष है कि मैसावरी क्षेत्र तांत्रिक की और हाकिपा की साधना-धर्म्मिनी थीं।
 मयमावरी का उत्कल गोरखनाथ की शिष्या के रूप में हुआ है। इस रूप में निष्कर्ष
 यह निकलता है कि मत्स्येन्द्र का सम्बन्ध किसी न किसी रूप में ताम्रगार्गी
 साधना से रहा है। परवर्ती काल में गोरखनाथ की प्रेरणा से वे तावप्रदाय की
 ओर आकर्षित हुए। ये कामरूप में साधना करते थे। 'कौत्तज्ञान निर्णय' 'अकुल
 बीर ठा' 'कुलानन्द' और 'बाग कारिका' बादि इनकी रचनायें हैं। निम्न
 निम्न कहानियों और यत-मतान्तरों से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि तांत्रिक
 बामाचारी साधनाओं को लेकर मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ (दुस शिष्य)
 में मतभेद हो गया था। 'गोरख विजय' और 'मीन चेतन' नामक कृतियों
 में वर्णित मत्स्येन्द्र के पतन और उनके उद्धार की कथा में इस ओर स्पष्ट संकेत
 मिलता है। 'गोरखबानी' में संकलित कतिपय रचनाओं से भी यही ध्वनि
 निकलती है। उदाहरण—

सुगौ ही मझिन्द्र गोरख बोले वयम पबन कहै हेका ।
 निरति करी नै नीका मुनिग्यो तुम्है सतगुर मैं चेला ॥ टेक ॥
 कांयनी बहता जोग न होई मय मुय परछे केला ।
 पहाँ उपबै तहाँ छिरि आबै च्यंतामनि चित एला ॥

गुह्यबी ऐसा करम न कीजे ताबें जमी महारस छीजे प्रेका॥
 विषसँ वाधनि मम मोहै राति सरोवर सोपै ।
 बाणि बूझि रे मूरिष सोया भरि भरि बाधी पोपै ।
 नदी तीरे बिरया मारी सग पुरया भक्ष्य जीवन की आसा
 मननै बपन मेर पिसि पड़ई तापे कंष बिनासा ।

गोरखबाणी पृ० ११७ ।

इन बंधों से यह स्पष्ट होता है कि गोरखनाथ मत्स्येन्द्रनाथ को साममार्गीय विचारधारा से मुक्त करने में प्रयत्नशील रहे हैं। 'गोरख बाणी' में 'मछीन्द्र गोएय बोध' के अन्तर्गत 'मछीन्द्र' और 'गोएय' की बातें संकलित हैं। गोरख नाथ अपने गुरु मत्स्येन्द्र नाथ से शिक्षा प्राप्त करते हैं और मत्स्येन्द्रनाथ उनकी शिक्षाओं का उत्तर देते हैं। सदाहरण के लिए कवियम अंश यहाँ दिए जा रहे हैं—

गोएय—स्वामी कौन भरि जन्म कौन भरि मूर कौन भरि काल बजावै तुर ।

कौन भरि पंच तत्व समि रहै । सतगुरु होइ मु बुझ्या कहै ।

मछीन्द्र—अबन् मनिबरिबन् पवन नर तुर ।

मुनि भरि काल बजावै तुर ।

स्वान भरि पंच तत्व समि रहै ।

सतगुरु होइ मु बुझ्या कहै ।

गोरखबाणी पृ० १८८ ।

'मछीन्द्र गोरख बोध' में जो अंश संकलित हैं वे अति आधुनिक हैं। इन अंशों की भाषा बड़ाखड़ी शताब्दी की है। परवर्तीकाल में मत्स्येन्द्र और गोरख के नाम से वे संकलित की गयी हैं।

गोरखनाथ गोरखनाथ मध्य-युग के महत्त्वपूर्ण धार्मिक नेता के रूप में प्रतिष्ठित हैं। और अनेक ग्रन्थों से यह स्पष्ट होता है कि अपन ब्रह्म मत्स्येन्द्रनाथ द्वारा प्रशिक्षित गौडमार्ग का उन्होंने परिष्कार किया। 'हठयोग प्रदीपिका' के अनुसार गोरखनाथ हठयोग के मात्मयोग आचार्य थे। उनके उपदेशों में योगतन्त्र तथा योग तन्त्र इन दोनों का सामग्र्यत्व निकला है। प्रत्यभिज्ञावर्तन कायासाधना और योग परम्परा के मार्गत्रय में उन्होंने आधुनिकता का गठन किया। गौडमार्ग के

प्रति गोरक्षनाथ विशेष आग्रहणीय थे। प्राचीन रत्नेश्वर सम्प्रदाय से भी वे प्रभावित थे। हिन्दी में गोरक्षनाथ के नाम से जो साहित्य मिलता है उसमें बनेक-कमता है और परवर्ती काल में विभिन्न साधना प्रणालियों का योग होता रहा है। विद्य सम्प्रदाय की ठानिक विचारधाराओं के अतिरिक्त हिन्दू साधना के विविष्ट तत्वों का समावेश भी इनकी रचनाओं में मिलता है। गोरक्षनाथ ने संस्कृत में भी रचनाएँ की हैं। इन रचनाओं से यह प्रमाणित होता है कि गोरक्षनाथ द्वारा प्रस्तावित नाथ सम्प्रदाय मुख्यतः लैङ्ग-दर्शन पर विशेष रूप से आधारित रहा है। 'गोरक्षबानी' की भूमिका में डा० पीताम्बरदास बड़म्बास ने गोरक्ष-रचित निम्नलिखित ग्रन्थों का उल्लेख किया है।

(१) उषवी (२) पत्र (३) सिध्दा हरसन, (४) प्रायश्चित्तको (५) मरवी शोष (६) आत्मबोध (७) अर्जुनाभा योग (८) पद्मह विधि (९) सप्तवार (१०) मघीन्द्र गोरक्ष बोध (११) रोमावली (१२) ज्ञान विसृक् (१३) ध्यान चौकीसा (१४) पंचमाभा (१५) गोरक्ष कपेध गोष्ठी (१६) गोरक्ष वच गोष्ठी, महादेव गोरक्ष गुह्य (१७) विष्ट पुराण (१८) ब्रह्मबोध (२०) जापी मौरावली (२१ गोरक्ष) (२१) नवग्रह, (२२) नवरात्रि (२३) ऋषि पारलूया (२४) एह रास (२५) ध्यान नामा (२६) आत्म बोध (२७) वच (२८) निरंजन पुराण (२९) गोरक्ष वचन (३०) ईश्वरी वैकुण्ठा (३१) मूल गर्भबिम्बी (३२) रत्नापी बापी (३३) गोरक्ष वच (३४) ज्ञान मुद्रा (३५) लौकिक सिद्धि, (३६) पटवहारी (३७) पंच अग्नि (३८) अष्टचक्र, (३९) अवलि विसृक् (४०) काफिर बोध।^१ गोरक्षनाथ की निम्नलिखित संस्कृत रचनाएँ प्रसिद्ध हैं—

(१) अमलस्क, (२) अमलेश धासनम्, (३) बबलू गीता (४) गोरक्ष कर्म (५) गोरक्ष कौमुद (६) गोरक्ष पीठा (७) गोरक्ष चिन्त्रिषा (८) गोरक्ष पंचम (९) गोरक्ष पद्धति (१०) गोरक्ष सतक (११) गोरक्ष बाल्य (१२) गोरक्ष संतति, (१३) चतुरशीत्यात्मन (१४) ज्ञानप्रकाश सतक (१५) ज्ञान सतक (१६) ज्ञानामृत योग (१७) नाडी ज्ञान प्रदीपिका (१८) शोष चिन्तामणि

(१९) योग मार्तण्ड, (२०) योग बीज शास्त्र (२१) योग शास्त्र (२२) योग सिद्धान्त पद्धति (२३) श्रीनाथ सूत्र (२४) सिद्ध सिद्धान्त पद्धति, (२५) हठ योग (२६) हठसंहिता ।

हिन्दी-रचनाओं के अन्तर्गत जिन कृतियों का उल्लेख किया गया है उनको प्रामाणिकता सन्दिग्ध है । ज्ञाने वर्तमान रूप में ये कृतियाँ उपर्युक्त भठारखुर्ी प्रणाली की हैं । इनका संरक्षण मौखिक परम्परा में होता रहा है । 'गोरखबानी' की भूमिका में इस सत्य का उल्लेख डॉ० पीठाम्बर दत्त बड़प्पास ने भी किया है । 'हिन्दी के ग्रन्थों की हस्त लिखित प्रतियाँ बहुत प्राचीन नहीं हैं । जो कुछ मिलती है विक्रम की उपर्युक्त भठारखुर्ी पृष्ठी के इधर की है । ' परन्तु इन रचनाओं में नाम-पन्था के वर्णन और उनकी सामना प्रणाली के विभिन्न रूप सन्निहित हैं । मौखिक परम्परा पर निरूपित होने के कारण इन कृतियों के भाषि रूप का स्वतन्त्र निर्धारण सम्भव नहीं है । पुरानी रचनाओं में परिवर्तन-परिवर्धन के साथ-साथ गोरखनाथ और अन्य नामों के नाम पर परवर्तीकाल के योगियों द्वारा स्वतन्त्र रचनाओं का भी समावेश होता रहा है । नाथ-योगियों की अमणदीकृता के कारण देश के विभिन्न भागों में ये रचनाएँ कार्यक्रम से भिन्न भिन्न रूपधारण करती गई हैं । स्वाय विभिन्नता के कारण इनमें अपागत विभिन्नताएँ भी मिलती हैं । अतः निश्चयात्मक रूप से यह नहीं कहा जा सकता है कि गोरखनाथ से सम्बन्धित या अन्य नाम योगियों के नाम से प्रचलित रचनाएँ किन्तु आद्यस की भाषा में अपन भाषि रूप में लिखी गई ।

गोरखनाथ की रचनाओं से भाष्यत्व के वर्णन और उसकी सामना प्रणाली के निश्चयात्मक रूप का संस्मापन भी सम्भव नहीं हो पाता है । सिद्ध साधना पद्धति, कापान्तिक साधना पद्धति और तांत्रिक विचारमाध्यों के निर्माण के सामूहिक रूप यहाँ उपलब्ध होते हैं । ऐसी स्थिति में गोरखनाथ के साहित्य में कतिपय साधनागत विषयों के कारण यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि सिद्धदर्शन और नाथ संप्रदाय के वर्णन में मौखिक अन्तर क्या है ? वस्तुतः इस पद्धति के स्वयं संयन्त्र की दृष्टि से गोरखनाथ की कृतियों में सामागर्गिय विचारधारा के प्रति विरोध भाव दिग्गता है । कल्पना यह निष्कर्ष देता पड़ता है कि अपने

युग में प्रचलित समस्त शाखना पद्धतियों का किसी न किसी रूप में गोरखनाथ ने समन्वय अवश्य किया है। इसकी चर्चा आगे के पृष्ठों में नाथ सम्प्रदाय के वर्णन और उसकी शाखनापद्धति के अन्तर्गत की जाएगी। यहाँ गोरखनाथवादी में संकल्पित रचनाओं से गोरखनाथ से संबंधित पदों में व्यक्ति विविध भाव रूपों की सांकेतिक चर्चा ही मनेष्ट होगी।

गोरखनाथ के पद्यों में शून्यसाधना की विद्या के प्रति विशेष आग्रह मिलता है। उदाहरण

बसती न सूर्य सूर्य न बसती भ्रम भ्रमोचर ऐसा।

गमन सिपर यहि बाळक बोधे ठाका नाँव बछुगे कैता।

‘जो बस्ती नहीं सूर्य में रहता है और पुनः जो सूर्य में नहीं अस्तित्व बस्ती में रहता है वह भ्रम और भ्रमोचर है। गमन सिपर पर वह बाळक बोधता है उसका नाम क्या रखोगे? वस्तुतः इस अंश में सूर्य का संबंध नावतत्त्व से स्थापित किया गया है और नाथ विष्णु के अन्तर्गत शिव और शक्ति की कल्पना की गई है। ध्याति रक्षित ने क्षमको ब्रह्म कहा है। उषि परमतत्त्व के रूप में स्वीकार किया है—

शून्य मिति न वस्तुम्यं सूर्य मिति ना भवेत्,

उभयम् नोभयम् चैव प्रज्ञातर्प तुकम्पते।

नाथ पूर्णता का चेतक है। इस ओर संकेत करते हुए कहा गया है—

अन्त शून्यो वहि सूर्य सूर्य कुम्भ इवाम्बरे

अन्त पूर्णो वहि पूर्ण कुम्भ इव अर्धवे।

कबीर में इसी भाव की व्यञ्जना मिलती है—उदाहरण०

बल में कुम्भ कुम्भ में बल सो बाहर भीतर पानी

कुम्भ कुम्भ बल बलहि समाना यह ठत कुम्भे मियानी।

गोरखनाथ की रचनाओं में सबर का प्रयोग-स्मरण स्पष्ट पर मिलता है।

वस्तुतः यह सुरति का पर्यायवाची है जिसे जनाहद नाद की संज्ञा भी दी गई है।

नाथ से प्रेरित होकर अन्त में चित नाद में ही समाविष्ट हो जाता है। तब न नाद रहता है न विष्णु। उदाहरण —

सबरहि तामा सबरहि कूँबी सबरहि सबर बयाया।

सबरहि सबर घु परया हुआ सबरहि सबर सनाया ॥

गोरक्षनाथ 'शून्य' के सावक थे। 'शून्य' को विविध ढंगों में इन्होंने ग्रहण किया है। एक स्थल पर अपना विषय शून्य के व्यापारी के रूप में करते हुए वे कहते हैं—

सहज गोरक्षनाथ वणिज कराई पंच बस्तद गव माई ।
सहज सुभाषी बाहर स्याई, मेरो मन उड़ियानी आई ॥
छुहट हाट अन्हें वणिजारा, सुनि हमारा पसारा ।
केस न जाणी देग न बासी एटा वणिज हमारा ॥

गोरक्षनाथ 'सहज' का वाणिज्य करते हैं। (इस वाणिज्य में) पांच बैल (पञ्चेन्द्रियाँ) नव माय (नवरत्न) हैं। इनके सहज के बराबर (निवासस्थान) में आकर मेरा मन उड़ियामानस्य में आ गया। मैं छुहट हाट का व्यापारी हूँ। शून्य का मैंने प्रसार (व्यापार) किया है। मेरा व्यापार ऐसा है जिसमें आपान प्रदान की आवश्यकता नहीं है। 'शून्य समाधि' या 'सहज समाधि' के अन्तर्गत ब्रह्माणि के अवस्थित होने का भी उल्लेख गोरक्षनाथ में मिलता है—

विपिन हमारी डीडी पाके अग्नि बरे मुखतानी ।
ऐसे हम ओगेसर तियमा प्रयन्था पर निबर्नी ॥

ज्ञान से संस्पृष्टित आत्मा की क्रियात्मकता को आखेटक के व्यापारों के माध्यम से प्रेषित करने की एक निमित्त विधा का प्रयोग सिद्धों की रचनाओं में मिलता है। गोरक्षनाथ की रचनाओं में भी इस विविष्ट अभिव्यञ्जना प्रजाती का प्रयोग मिलता है। इस सन्दर्भ में अचेतन मनको वे 'शून्य' के रूप में चित्रित करते हैं। ज्ञान से अचेतन मन के हनन की प्रक्रिया को कणक-खोली में उपस्थित करते हुए गोरक्षनाथ कहते हैं—

आई सो भील पारखी हाथ नहीं पाई व्यक्तों मूय दाँत न काही ।
हयो हयो मूषली धुन्ही न ठही, बंटा मुर जिहां माव नाही ॥
भीलई जिहां तालियौ बाँज मन ही मूषली बैबिरी प्रमाय ।
हयी हयी मूषली बैपियो बाग धुन्ही बाग न सी सर ताँज,
भीलई माँदपी रांगी मूषली आँधी टाँपी ।

बरन बिहूनी मुखनीं जान्यो सीस सीम मुप बाइन जाके ।
मनव गोरखनाथ मछिखनी पूठा मार्यो मूग मया अबधूता ॥
पाहि हिमाची ने कोई बूझे ता बोगी कौ सुमुबन सुझे ।

ऐसा भीम पारवी है जिसके हाथ नहीं हैं, बहर्पावों का पंगु है । उसके मुख में दाँव नहीं हैं । उसके पास धनुष भी नहीं है फिर भी उसने मूग को मार डाला । मूगको अधिकार में करने के लिए उसके पास बाधक भी नहीं है । झोंक के लिए उसके पास कोई नाव नहीं है । बाण ने मूग को बेध दिया वह मर गया वह मर गया । जो बाण उसने मारा था वह बाण नहीं था । भीष्मी धायल मूग को से आई । उसके सिर और पूछ नहीं है । मत्स्येन्द्र के शिष्य गोरख कहते हैं मारा हुआ मूग अबधूत हो गया । इस प्रहेम्बिका को जो समझे उसके लिए त्रिमुबन बोधवन्म होया ।

गोरखनाथ की रचनाओं में वराम् द्वार का उत्कीर्ण मिलता है । इस द्वार पर सायक बनाइत नाव सुकता है । यहाँ 'नाव' और 'बिन्दु' के संयोग से सायक बनाइत नाव के साय तादात्म्य स्थापित करता है । धूम्य मण्डल के लिए आकाशतल का प्रयोग करते हुए गोरखनाथ ने उसे धितल से परिपूर्ण भागा है । उन्होंने यह विश्वास प्रकट किया है कि धितल में ही निर्वाण निहित है । शिखों की साधना में 'चन्द्रमा' और 'सूर्य' के समस्त का उत्कीर्ण किया जा चुका है । गोरखनाथ की रचनाओं में भी 'सूर्य' और 'चन्द्रमा' के मिश्रण की जगह मिलती है ।

गोरखनाथ 'उकटी साधना' को जगह करते हैं । पवन को उकट कर बहुरंग में समाहित करने से बाक-कम (कदा ?) का साक्षात्कार होता है । 'उत्स्था पवनो ययन समोई तब बाक-कम परसिप होई' । 'उत्थ' के घर 'अस्त' जाने से (मूलाधार स्थित सूर्य को अस्त में जाने से) 'हीम' (चन्द्रमा) के घर (बहुरंग) पवन का सम्मिलन करने से बँबा हुआ हाथी (मन) अपनी छाया में आ जाता है । बाह्य कला को छोले, सोलह कला का पोषण करे, इस प्रकार चार कलायें सिद्ध होती । इससे अन्त कला पूर्ण होती । सिद्ध साधना में सायक चार कलाओं का पात कट्या है —

बारा कला सोपे सोसा कला पोपे

चारि कला सारै अमन्त कला बीबै ।

भोरसनाथ की रचनाओं में 'अनाहद नाद' का उल्लेख मिलता है । इस सम्बन्ध में 'उन्मनी अवस्था' की भी चर्चा की गई है । जो असाध्य की साधना करते हैं भग्न को अनाहद नाद से गर्भित करते हैं उन्मनी समाधि कमाते हैं पवन को प्रत्यार्पित कर सुषुम्ना में समाहित करते हैं और अमृतपान करते हैं वे ब्रह्मज्ञानी हैं । भोरसनाथ ने अपनी साधना में प्रमुख प्रतीकों का स्पष्टीकरण भी किया है —

पोइस नाकी चन्द्र प्रकास्या हारस गाड़ी मान ।

सहस्र नाकी प्राण का मेला बहौ असंख कला शिवधान ॥

सोबह कलापूर्ण नाकी में (ईडा) चन्द्रमा का प्रकाश है हारस में (पिगला) में मानुषा सहस्र नाकी (सुषुम्ना) में प्राण का मूल निवास है बहौ असंख्य कलावासे शिव का निवास है ।

अबबू ईडा मारय चन्द्र भणीबै प्यंभुला मारण धान ।

सुषुम्ना मारय बाणी बोलिण्डु निम भूख अस्वान ॥

ईडा नाकी को चन्द्रमा कहते हैं । पिगला को मानु कहते हैं, सुषुम्ना को सरस्वती कहते हैं । इन तीनों का उद्देश्य मूल स्थान (ब्रह्मरंज) है ।

चौरंगीनाथ : तिब्बती परम्परा में के अनुसार 'चौरंगीनाथ' भोरसनाथ के गुरु बार्दे थे । चौरंगीनाथ के नाम से जो रचनाएँ उपलब्ध हैं उनमें भी इस चारणा की स्वीकृति मिलती है । चौरंगीनाथ लिखित 'प्राण संकली' नामक रचना प्राप्त हुई है । यह मुख्यतः एक मध्याह्न है । यह अपने वर्तमान रूप में एक संक्षिप्त ग्रन्थ है परन्तु निम्न रूप में यह ग्रन्थ उपलब्ध है उसके अनुसार चौरंगीनाथ राजा चाकबाह्वन के पुत्र मन्त्रप्रनाथ के पिता और भोरसनाथ के गुरुमाई थे—

उदा०—सत्य बरन्त चौरंगी नाथ । बादि अंतरि मुनी शिवांत ।

चाकबाह्वन परे हमारा वनमन्त्रपति सति मांभूर बोलीला ।

विमाठा व उनके साथ पारम्विक व्यवहार किया जा । इनको पंहु बना दिया जा । इस बार संक्षिप्त करते हुए दूहोने कहा है 'ईअम्लारा भन्ता चाकठ, पाप

कल्पना नहीं हमारे मने हाव पौन कटाय, रसाह कायका निरंजन बने सोप
 संताप बने परमेव सममुख वेपीसा थी मछरनाथ पुस्तैव नमस्तकार करीसा
 नमाइका माया' २।२०७ । जोरबीजन में इस प्रकार की धारणा है कि
 चौरंगी के पिता बंन प्रवेश के पास राजा देवपाल के तृतीय पुत्र थे । पंजाब में
 प्रचलित विभिन्न कहानियों के अनुसार चौरंगीनाथ पूरन मगत का ही बूढ़ा नाम
 था । सिक्खों की परम्परा को यदि हम आधार मानें तो चौरंगीनाथ का समय नबी
 छताब्दी का उत्तरार्ध है । 'हृदययोग प्रदीपिका' में चौरंगीनाथ का उल्लेख आदि
 नाथ के साथ मिलता है —

श्री आदिनाथ-मस्त्येजनाथ शावरानाथ मैरवा-

चौरंगी-मीन-बोरभ विहवाछ विहवाछ ।

अन्य नाथसाधकों के समान चौरंगी ने अपने युग के प्रतिविम्बेन आस्थाभाव
 की व्यञ्जना की है । मोरसनाथ के समान ही 'प्राण' अपाण' के अर्थ में इनकी
 रचनाओं में 'अन्नमा' और 'सूर्य' का प्रतीकारमक अर्थ ग्रहण किया गया है ।
 समाधि में इनके समत्व की जगह की गयी है —

अन्न अस्माग बुईका जागे रवि अस्मान बुईका सोनै इह जोग भग्याछ
 बोळिये । इह के समान बोळिये । नाथ साधना में मूखाचार को 'उदय गिरि' कहा गया
 है । सहस्त्रार में अन्नमा है इसे 'अस्तमिरि' या 'हैम ग्रह' कहा गया है । अन्नमा
 जब सूर्य की चार कक्षार्धे प्राप्त कर लेता है तो यह उसके उदय की स्थिति होती
 है । मोरसनाथ की रचनाओं में इस स्थिति का उल्लेख मिलता है—'उद्रे ग्रहि
 अस्त हैम ग्रह पवना मेळा बाधिछे हस्तिवमिन्न छाल मेळा' । चौरंगीनाथ की
 रचनाओं में भी इसी भाव का उल्लेख मिलता है—

'पूर्व भागे उदयगिरि बसे, पश्चिमभागे अस्तमिरि बसे बादर कुने हैमगिरि
 बसे मेरति कुने कनेर गिरि बसे । — नाम सिद्धों की बानियाँ । ४० । ईड़ा
 पिम्का और सुपुम्मा को पंथा यमुना और सरस्वती के कम में अम्रित करछे हुए
 पवन-माड़ी के सिध् इन्होंने 'भरखा' का प्रयोग किया है ।

'जिम्या इप्यज पाछे बंगा बसे, जिम्या बामे पाछे यमुना बसे मय्य जिम्या
 सरस्वती बसे, पवन माड़ी मरखा बसे । नाम सिद्धों की बानियाँ ८०।२०५ । प्राण

कैली' की माया सगहरी घवाही के पूर्व की नहीं है। इस इति की माया में पूर्वी प्रभाव पयेष्ट है परन्तु इसकी रचना पश्चिम प्रदेश में ही हुई है।

चर्पटीनाथ चर्पटीनाथ गोरखनाथ के शिष्य थे। इनका उल्लेख 'रोदनर सिद्ध' के रूप में भी मिलता है। तिब्बती परम्परा के अनुसार ये मीनपा के शिष्य थे। इस प्रकार इनका उल्लेख सिद्धों की परम्परा में भी मिलता है। ये 'चतुर्भुज' नामक ग्रन्थ के लेखक हैं। इस ग्रन्थ का ब्याख्यार तिब्बती भाषा में भी मिलता है। उपर्युक्त ग्रन्थों से यह स्पष्ट मिलता है कि ये मुख्यतः बौद्धायानी साधक थे। नाथपंथ में ये बाद की दीक्षित हुए थे। इनके नाम से जो रचनावें उपलब्ध हैं उनकी भाषा अधिक प्राचीन नहीं है। नाथभूमि तथा श्यामाप्रभाजी इन दोनों ही इष्टिों से इनकी रचनाओं में नवीकृत नहीं है। गोरखनाथ की रचनाओं में यम-तन्त्र का व्यापक संस्पर्श मिल जाते हैं। परन्तु चर्पटीनाथ की रचनायें काव्यतत्त्व से दून्य हैं। नाथ पंथ के बर्तन और सिद्धान्त निरूपण की स्पष्टता इनकी रचनाओं में मिलती है। उदाहरण :—

अथर्व मृत दुबारे बंध सगाह
पवन पछटे गयन समार्ह।
नाथ बिन्दु दोठ अगपिर होई
अद्विष्ट पुरिष्ठ द्विष्ट ठब बोई।

× × ×

ईशसि यम विषम करि बंध,
सक्ति करि रवि अपरिहरि जन्मा
रैपि विषत रस चरपट पीया
पूटे तेल म बुझे पीया १५६।१८७

गोपीचन्द्र : गोपीचन्द्र बंगाल के पालबंग से सम्बन्धित थे। गोपीचन्द्र मयमावती और बंगाल के राजा मालिकमन् (मृ १०६४) के पुत्र थे। मयमावती की हार्द्रिता की शिष्या थी। अपनी माया की प्रेरणा में गोपीचन्द्र नाथपंथ में दीक्षित हुए थे। 'वासीधर सन्धात' में सम्बन्धित अनेक कहानियाँ लोक जीवन् में

प्रसिद्ध हैं। इनके नाम से सम्बन्धित 'सबरी' उपद्रव है। मयनाबती की अनुप्रेषा का उल्लेख निम्नलिखित अंश में मिलता है।

राज लखेवा रे घुटा पाट लखेवा
लखेवा हस्ती बोड़ा।
सति सति भावत मैनाबती
कहि मैं जीवन बोड़ा ॥१७४८॥

गोपीचन्द-मयनाबती संवाद में भी मयनाबती की प्रेरणा प्रत्यक्ष प्रकट हो जाती है।—

सोळा से राखी बारा से कन्या
बंगाल बेघ बड़मोगी।
बारह बरस हमकू राज करने माता,
पीछे हुंघा योमी।
माता कै छपरेस करि,
लखिला बैस बंगाल
गोपी चन्द गुरु के सरने
मेयल भवा काल

गोपीचन्द के बिबोध में उनकी रानी के विप्रसम्भवत मनो माओं का परिचय भी कतिपय अंशों में मिल जाता है। इस सम्बन्ध में राखी और गोपीचन्द के मध्य बातचीत सम्बन्धी पर भी मिलते हैं—

बहुड़ी ने बाहुड़ी गोपीचन्द राजा
बहुड़ी बीलावर भाबोबी
मंझुवा नी भोजन मन बित्ता हो राजा
भाव भगति सु पायबबी।
× + × +
पालिक निहा माई रे राजी
माई मनि राज न भाई बी
भोग भुषित मो राज हम्हारी
अविचक केमू पाने जी।
× × × ×

खगर बन्धानी मड़ी बघाऊँ,
 सोना ना तुम्ह बुन जी,
 कही ली छा ना पत्र बड़ाऊँ
 सीना ना सीमी नार जी ।

× × + ×

मपन मंडल में मड़ी हमारी
 चंद सूरजा तुन जी
 सहज सीतना पत्र हमारे
 कलह सींगी नार जी

भरवरी (भरवहरी) गोरक्षपी शास्त्रा के अन्तर्गत बेरागपी एक विशेष शास्त्र
 है । इसके प्रवर्तक भरवरी माने जाते हैं । इस प्रकार किम्बन्ती है कि ये मयनाबती
 के भाई और उज्जैन के शासक थे । मयनाबती का विवाह माणिकचन्द से हुआ था ।
 इस आधार से ये प्यारहवीं शताब्दी के हैं । भाब सम्प्रदाय में इनका विशेष महत्व
 है । इनकी रानी का नाम पिगला था, और अपने राज्य का परित्याग कर ये
 गोरक्षपी में दीक्षित हुए थे । इतिहास लेखकों की यह भी धारणा है कि ये
 संस्कृत ग्रन्थ 'भैरव्य शतक' के लेखक एवं वाक्यपदीय के रचनाकार थे ।
 इतिहास (१७८-१११ ई०) इनके ग्रन्थों से परिचित था । ज्ञानसागर ने इन्हें भीष
 माना है । परन्तु इतिहास के उल्लेखों से यह स्पष्ट होता है कि 'वाक्यपदीय' के
 लेखक भावार्थ के गोरक्षनाथ से भिन्न व्यक्ति थे । इनके नाम से प्रचलित रचनाओं
 की भाषा सत्रहवीं शताब्दी के पूर्व की नहीं है ।

जगद्गुरु

अबधू जल विन जेबल-जेबल विन मयूर
 कोइल बोले कंठ विना
 चल विन मृग, मृग विन वारव
 एक घर बेधे पंच बना ।

× × ×

जोगी भरवरी भरमि न मूछा
 तलि नर डीबी छनरि करि पूछा ।
 दोह दोह छम्पी चुगति करि बासी
 जोगी भरवरी बीरै चुप चारी ।

नागा अरजन्ध (नागार्जुन) : नागपन्थ के नामार्जुन सिख सम्प्रदाय के नागार्जुन के भिन्न हैं। परन्तु इस मास्यता के लिए हमारे पास यथष्ट प्रमाण नहीं हैं। धावनमाळा के अनुसार ये छत्रपाद और कृष्णाचार्य के समसामयिक थे। प्रबन्ध 'किस्तामवि' में एक कथा नागार्जुन से सम्बन्धित मिलती है। इसके अनुसार ये पादस्मिस्तूरि के शिष्य थे। नागनाथ नामक एक नाथ साधक की जहाँ प्यारही छठान्दी में भी मिलती है। परवर्ती काल में इन्हें ही नागार्जुन के रूप में प्रसिद्धि मिली। नागा अरजन्ध का सम्बन्ध रसेस्वर सम्प्रदाय से भी था। घोरलपन्थ की पारसनाथी बौद्धात्मा के ये भावि आचार्य भी थे। इनके नाम से प्रचलित रचनाओं में से कुछ ग्रंथ यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

बाक तैं बाप छतपनी,
 बाप कभी नहीं आई ।
 बाप बाक जब परचा मया ।
 बाप मैं बाक समाई ॥

× × ×

आपा भेटिला छतपुह पापिका,
 न करिवा बोम चुगति का टेला ।
 उममन डोरी जब पैचीका
 छब सहज ओति का मिला ।

कजोरी : कजोरी मायनाथ (नामा अरजन्ध ?) के शिष्य माने गये हैं। यह भी विद्वत्स किता जाता है कि सिख कनूफा का ही दूसरा नाम कजोरी था। बहुत सम्भव है कृष्णा कन्हवा या कनूफा के लिए परवर्ती काल में कजोरी पाद नाम का प्रयोग हुआ हो। नागपन्थ के अन्तर्गत एक बामारण पंथ भी है कजोरी

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। इस प्रकार उन्होंने नाथ साधना में काममार्गी साधना के कतिपय तत्त्वों के योग से एक नवीन पन्थ बनाया। इनके नाम से प्रचलित एक बोद्धा-संस्कृत मिश्रता है। इनकी शिष्या मेसछा ने 'मेसछा' नाम से इसकी टीका संस्कृत में की थी। इनकी रचनाओं से कुछ उदाहरण यहाँ लिए जा रहे हैं—

कहाँ उगे कहीं अचबे
कहाँ मु रेगि बिहार
पूछे कगोरी सुनि हो नागा भरबन्ध ।
पिछ छूटे प्राँन कहीं समाई ।

× × ×

मगयी मेरा बीज बिजोबी ।
पबना बाड़ि लगाई
केतम राबक पहरे बैठे
मृगा सेत न लाई ।

घोड़ाचौली : 'इत्योम प्रदीपिका' में घोड़ाचौली का उल्लेख मिलता है। यहाँ इनकी जन्मी काठजमी साबक के रूप में की गयी है। इस ग्रंथ के अनुसार इनका समय बाहूबी सताही पूर्व पड़ता है। ये मत्स्येन्द्रनाथ की परम्परा के साबक थे। 'सोई सोई सास ससास बोछं बोड़ा चौली मछिर का बास। हिन्दी में इनकी जो रचनाएँ उपलब्ध हैं उनके आधार पर इनके व्यक्तित्व का ऐतिहासिक मूल्यांकन सम्भव नहीं है। इनकी रचनाओं से कतिपय अंश यहाँ लिए जा रहे हैं—

यी मोरप्रनाथ पन्थ का मेव,
अनंत सिखा मिलि पायो मेव
पाया मेव भई प्रसीत
अनंत सिखा मैं गोरखनाथ असीत ।
बोछं सिम बोड़ाचौली
हयें पवी पेज का मुरा
गगन मण्डल में रहनि हमारी
बाबै बनहत दुरा ।

परबत सिद्ध : परबत सिद्ध के विषय में हमें कुछ विवेक ज्ञात नहीं है। इनके नाम से 'मृगोक्त पुराण' नामक एक ग्रंथ रचना उपलब्ध है तथाहरण-स्वरूप इस पुस्तक से एक अंश यहाँ प्रस्तुत है—प्रथिमी प्रमाण—सुमेरु पर्वत ऊपरि सुवर्ण मई है। पारजात कबलात गज विराजत है। प्रमाण पड़े एक है। ऐसे सुमेरु पर्वत दक्षिण सिंहा आगे बनू बिछ है। तिसु रिछ कावेता कु कु बिचि बिस्वाह है।

इन नाम साधकों के अतिरिक्त कतिपय अन्य नाम साधकों की रचनायें 'नाथ सिद्धों की बातियाँ' में संकलिप्त हैं। इनमें अथर्वपाछ दूधकीमछ खोर बसबी प्रमुख हैं।

दर्शन और भावपद्धति

सिद्ध साहित्य के समान नाथपन्थी साहित्य की धारणा भी साम्प्रदायिक भिन्न धारा का प्रतिफलन है। अतः इस पन्थ के साहित्य में काव्यात्मक सम्भावनाओं की अपेक्षा दर्शन के उन्मेष की नैसर्गिकता ही सम्भव हो सकी है। नाथ सम्प्रदाय की चतुर्ता के अतिरिक्त इसने अपने पूर्ववर्ती एवं समकालीन साधनाधाराओं के प्रभावों को भी ग्रहण किया है। सिद्ध साहित्य के समान यहाँ भी बौद्धतन्त्रका प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। हिन्दु साधना के प्रभावों के अतिरिक्त नाथपन्थी साहित्य में योगमूलक भावनायें भी मिलती हैं। कायात्मिक साधना के कतिपय तत्त्व भी यहाँ प्रतिबिम्बित हैं। ध्यात्मिकता की दृष्टि यह शैवधर्म से सम्बन्धित है। अतः शिव-शक्ति की धराधना से सम्बन्धित अंश यहाँ नैसर्गिक रूप में उपलब्ध हो जाते हैं। शिव-शक्ति के अभिन्नत्व की भावना यहाँ मिलती है। शक्ति के तीन स्वरूपों का उल्लेख यहाँ मिलता है—(१) चित्त शक्ति (२) माया शक्ति (३) जीव शक्ति। नाथ पन्थ में चित्त शक्ति और जीव शक्ति के स्वरूप विस्लेषण का अग्रक्रम मिलता है। इसी सन्दर्भ में शिवशक्ति के सम्मिलन से सृष्टि के सृजन का उल्लेख भी मिलता है उनके समत्व की व्यक्तता मिलती है। शिव विस्व का निर्बिकार तत्त्व है। शक्ति जब चित्त रूप में अवस्थित रहती है उस समय 'सृजन' और 'रक्षा' प्रक्रिया क्रियात्मक रूप में रहती है। और इस सन्दर्भ में इच्छा को शक्तिरूपा कुमारी के रूप में कल्पित किया गया है। मनुष्य के शरीर में इस शिव-शक्ति के संयोग को परा ज्ञान, इच्छा क्रिया, कृष्णस्थिती तथा मातृका-रूपों में ग्रहण किया

गया है । गोरक्षनाथ ने अपनी रचनाओं में शिव-शक्ति के इसी रूप की प्रस्तावना की है—

शक्ति हरी रज भासे शिव कपी अंश ।
 बाण्ड कछा रज भासे, सोलह कछा अंश ॥
 चारि कछा रवि की बे सति चरि भाषै ।
 ती सिख-सत्की संमि होवै अन्त कोई न पावै ॥

गोरक्षबानी पृ० १००।१ ।

अर्थात्—रज शक्ति है और बिन्दु शिव है इनके समत्व से सृष्टि सम्भव है । इस सन्दर्भ में साधक ने चन्द्रमा और सूर्य के समत्व का भी उल्लेख किया है जो शिव शक्ति के समत्व के समान ही है । साधनात्मक प्रक्रिया से मन को अधिष्ठाता चक्र में समाविष्ट करने से मन की स्थिति शिवत्वपूर्ण हो जाती है । मन की समाधि अवस्था को उन्नमनी अवस्था कहते हैं । शक्ति को माया-रूप भी माना गया है । शक्ति के साथ संयुक्त होने पर परमस्वत्व अभिषिक्त होता है और पंच भूतात्मक शरीर की सृष्टि होती है । गोरक्षनाथ क निम्नलिखित पद में इसी तथ्य का वर्णन किया गया है —

यहु मन सजसी यहु मन सीब यहु मन पौच तत्त का जीब ।
 यहु मन से जे उन्न मन रहै ती तीन लोक की बाठां कइ ॥

गोरक्षबानी पृ० १८।५० ।

बाधुनिरोध कर काया-साधना की प्रक्रिया हठयोगियों में विद्यमान है । रसेस्वर दर्शन में पारद के सहयोग से काया सिद्धि का उत्प्रेक्ष्य निरन्तर विद्यमान है । बौद्ध सम्प्रदाय से प्रसिद्धि विभिन्न धाराओं में भी काया साधना की प्रथा प्रचलित थी । इस सन्दर्भ में काया साधना से सम्बन्धित अनेक धाराओं में लेखरी मुद्रा का भी उल्लेख विद्यमान है । इन विधा से परिचित साधक कामरूपी होता है । वह चन्द्रमा के अमृत का पान करता है । त्रिके शरीर में चन्द्रमा स्थित है उनके लिए काया-साधना अनिवार्य है । योगी मन्त्र द्वार अवलम्ब करता है बाधुनिरोध कर आत्मध्यान में लीन होता है । इन प्रकार नाययोगी वायु को बांधता है और 'अन्न बाधनी' का पान करता है । नाभि प्रदेश में अधिपति सूर्य है । इसकी स्थिति मूलाधार में भी मानी गयी है

ताम्र में अमृतात्मा जन्म है (इसकी स्थिति सहस्रवार में भी मानी गई है) । जबोमुख होकर जन्ममा अमृत प्रवाहित करता है सूर्य ऊर्ध्वमुखी होकर उस अमृत का पान करता है । विपरीत साधना या उच्छ्ठी साधना द्वारा साधक अमृत रसा करता है । गोरक्षनाथ ने निम्नलिखित वंश में इस ओर ही संकेत किया है—

गगन मण्डल में ऊँचा कुनो तहाँ अमृत का बासा ।

सुपुरा होइ सो भरि भरि पीवै निबुरा बाइ गियासा ॥

मो० बा० २।२३ ।

या

उच्छ्ठीत नारद पस्तंत ज्येद, बार्द के घर चीन्हति ज्येद ।

सुनि मण्डल तहाँ नीमर भरिया बंद सुख तहाँ अनमन भरिया ।

गोरक्ष बानी २०।२५ ।

सूर्य नाड़ी में पवन तीव्रमामी होता है जन्म नाड़ी में उसकी कति स्थिर हो जाती है । जब स्वास बाहर निकलती है तब सूर्य नाड़ी चपलती है ।

बबभूईडा मारन जन्म भयीनै प्यमुला मारण मार्ग ।

सुपुमना मारण बाबी बोसिये भिय मूख अस्वान ॥

गोरक्ष बानी ३३।२३

पवन को उच्छ्ठीकर गगन में समाविष्ट करने से (सहस्र बर कमल) बास रूप प्रकट होता है परम उत्पन्न प्रकट होता है । उदय के घर अस्त करने से, जन्ममा के घर में पवन के संयोग से बंधा हुआ मन अपने एह में आ जाता है—

उच्छ्ठीया पवनां मदन समोद तब बास रूप परतपि होई ।

उदै ग्रहि बस्त हैम ग्रहि पवन मेला बंधिलै हस्तियनिज साक मेला ।

गोरक्ष बानी ३१।८२ ।

कायासाधना के अन्तर्गत सहस्रसमाधि या सूर्यसमाधि का उत्प्रेक्ष्य मिळता है । सिद्धों ने भी सहस्र समाधि या सूर्य समाधि का उत्प्रेक्ष्य किया है । सहस्र समाधि में शिव-शक्ति के संयोग की कल्पना की गई है । इसी समाधि की जहाँ गोरक्षनाथ ने प्रस्तुत बंस में की है—

विपदि हमारी डीन्ही पाई अगनि बसै मुस्तान ।

ऐसे हम बोगेस्वर निपनां प्रमटया पय निबान ।

बाध न निरुद्ध बूढ़ न बळकै सहज अंगीठी भरि भरि रांघे ।

मिथ समाधि योग अग्यासी तब युद्ध परधै सांघे ।

गोरख बानी २१८।४३ ४४ ।

नामि का अक्षोभाग शक्ति का निवास है । यह क्रियाशील और परिवर्तनशील है । यह प्रवृत्ति मूलक है । ऊर्ध्वनाम शिव का स्थल है । यह निवृत्ति मूलक है । यह विग्रहमय है । शक्ति सर्व के समान कुञ्जस-रूप में है । महाभाग 'मूर्धारकार' में इसका प्रयोग परावृत्ति के लिए हुआ है । वहाँ इसकी वर्षा उल्टी साधना के अर्थ में भी हुई है ।

नाक्षर्य में सहज समाधि के अन्तर्गत उल्टी साधना का उल्लेख इन्हीं अर्थों में किया गया है । यहाँ हिन्दु-तन साधना का प्रमाण भी ग्रहण किया गया है । उदा०

उलटिया पर्वन पट चक्र बधिया
ताये सोहै सोपिया पांघो ।
चर सूर बोळ निब बरि राप्पा
ऐसा अक्षय विनासी ॥

गोरख बानी ३६।१०५ ।

सहज समाधि के अन्तर्भ में शरीर में अरुण उरुष अवस्थाओं का उल्लेख मिलता है । वस्तुतः ये दबाव की दो सीमारें हैं जो मूलाधार चक्र और सहस्रार चक्र के रूप में व्यञ्जित हैं । इसी स्थिति का वर्णन करते हुए साधक ने कहा है —

अरुधे आठा उरुधे परं काम हणध जे ओषों करे ।

तवै अर्त्यगन काट माया, ताका बिखनू फराने वाया ।

गोरख बानी ७।१७ ।

'योक्मिनी कोल ज्ञान निषय' में अथ ऊर्ध्व में हृत्-रमण का उल्लेख मिलता है । अथ में बिन्दु जागृत कर ऊर्ध्व की ओर प्रेरित करने के कारण ही साधक को ऊर्ध्व गेठम कहा गया है । अर्थात् अपने इसा द्वा-पान्ता रूप पुनः ।

अरण-उरधि निबि धी उगार्द, मधि मुनि में बँटा बार्द ।

मनबादा की शक्ति बार्द कर्बन देगनाथ पगमनि पार्द ।

गोरख बानी २८।१७ ।

स्वाध की धरम (मूलाधार) से उरध (सहस्रार) में स्थापित करने से ये साधक त्रिकुटी में (मध्य) समाविष्ट होता है । इस स्वस पर ब्रह्मत्व का सम्पर्क मिश्रता और परम गति की उपलब्धि होती है ।

अरधंद कमल उरधंत मध्य प्रांग पुरिस का बासा ।

ब्राह्मस हंसा उरुठि बसंगा तब ही बोलि प्रकासा ।

मो० बा० २६ ८ ।

अरध-कमल से ऊपर उठकर प्राग्भायु जब उरध-कमल में समाहित हो जाती है तभी आत्मा ऊर्ध्व गामी होती है और परम ज्योति प्रकट होती है । नाथ पंथ में मूलाधार (अरध) में स्थित कुण्डलिनी रूप में बताया गई है । ऊर्ध्व में शिव का वास माना गया है । उसे कैलाश भी कहा गया है ।

सहस्र समाधि के सम्बन्ध में समाधि पीठों की चर्चा मिलती है । सिद्धों में आसम्भर कामरूप ओडियान तथा श्रीहट्ट बासि तंत्र पीठों का उल्लेख मिलता है । इसकी पची की जा चुकी है । नाथपंथ में इन पीठों को देहस्व माना गया है । यहाँ उडियान पीठ की स्थिति स्वाभिष्ठान चक्र में मानी गई है । 'हठ योग प्रदीपिका' में उडियान शून्य के द्वारा सुषुम्ना को बाधित करने का उल्लेख मिलता है । इस प्रसङ्ग में प्राण का उल्लेख महालय के रूप में किया गया है । नाथ सम्प्रदाय में इस विशिष्ट विचारधारा का स्वरूप मिलता है ।

नाथसाहित्य में शून्य-साधना की प्राप्ति अनेक रूपों में व्यक्त मिलती है । इस चारा में ब्रह्मवाक के शून्यतत्त्व शून्य वाकियों की शून्यप्राप्ति को भी समीकृत कर लिया गया है । शून्यता को नैरात्म देखी माना गया है । ब्रह्मवाणी प्रतीक में शून्यता और कल्याण प्रज्ञा या उपाय अपवा प्रभु ब्रह्म के रूप में एकीकृत हैं । यहाँ इनके युक्त मिश्रण की भी कल्पना की गई है । इस मिश्रण प्रतीक को नाथ सम्प्रदाय में शिव-शक्ति के मिश्रण के रूप में ग्रहण किया गया है । इसे प्राण-अपान या ईडा पियला के समीकरण का रूप भी कहा गया है । सुषुम्ना का उल्लेख मध्य मार्ग के रूप में हुआ है । ईडा पियला के समीकरण से कुण्डलिनी बाधित होती है पट चक्र के भेदन के पश्चात् साधक की स्थिति आधा चक्र के ऊपर हो जाती है । कुण्डलिनी सहस्रार में स्थित शिव के नाथ

आसिगल बढ हो जाती है। इसे सहज बना या महाबला कहा गया है। वायु के निरोध से मन भी निरुद्ध हो जाता है। मन के स्वभावतः स्थिर हो जाने को धम्मनी भाव कहा गया है। नाभपरम्परा में शून्य को इन्हीं कथों में सहज किया गया है। परन्तु शून्य का सम्बन्ध यहाँ 'नाम' से भी स्थापित किया गया है जिसकी मूल प्रेरणा हठयोग है। नाभ से ही सृष्टि का प्रसृष्टन होता है इसीमें सृष्टि का सम्यक् हो जाता है। इस प्रकार के शून्य को परमतत्त्व परमज्ञान और परमस्वभाव भी कहा गया है। उस परम तत्त्व का परिचय देने हुए साधक कहता है—

मुनि न अस्पृह स्वयं तर्ही पुजा मुनि किनु अनह्व गाबै ।

बाही बिगु पठुप पठुप बिन साइर पवन बिन भू गा छाव ॥

गोरखबानी पृ० १०१।३ ।

बहु न शून्य है न स्पृह है और न उसकी उपासना होती है और बहु बिना धन्य के अनाहत नाद की गर्जना करता है। बहु बिना बाटिका का पुण्य है और बहु पुण्य के सौरभ का बिना पवन के प्रसार कर रहा है जिससे भूय मकरा रहे हैं। इसी प्रकार परम तत्त्व को शून्य का पर्यायवाची मानते हुए साधक कहता है—

बसती न मुन्यं सुन्यं न बसती भगम भगोवर ऐसा ।

मयन विपर यहि बासक सोभे ताका माँव परहुगे बैगा ॥

गोरख बानी पृ० १।१ ।

बहु निरंजन शून्य है बहु अपने में सम्पूर्ण है। सृष्टि के आदिमार्ग और तिरोभाव का कारण शून्य है। बहु अपना कारण स्वयं है—

मुनि ज माई मुनि ज बाप । मुनि निरंजन आपै आप ।

मुनि कै परचा भया मयीर । निहृबक ओगी गहर भंभीर ।

गोरख बानी पृ० ७१।७।१ ।

गिठों ने चार प्रकार के शून्य का उल्लेख किया है। हठयोग प्रदीपिका में भी चार शून्य का उल्लेख मिला है। प्रथम तीन को घट परिचय और निष्पत्ति के स्तरों के रूप में सहज किया गया है जिसका उल्लेख गोरखनाथ की निम्न लिखित रचना में मिला है—

जरबे सोनां उरबे सोनां गप्पे सोमम् सोनां ।

सीमि सूर्य में रहतीं जाने ता पति पाप न पुनी ॥

गोरख बागी पृ० १२।४ ।

इनके उपर सहजसूत्र की अवस्था है जिसे सहज समाधि का पर्यायवाची भी माना गया है । इस स्थिति का वर्णन नाथ साहित्य में तीन जगों में हुआ है ।

(१) शून्य की गहना के उत्प्रेक्ष के रूप में ।

(२) 'अन्न' और 'सूर्य' के समापन के वर्णन के रूप में ।

(३) सहज समाधि के रूप में ।

उवा० अभावसु कै घर मिल मिल जन्मा

पुनिम कै घरि सूर ।

माघ कै घरि ब्यंढ गरबे

बाबंत अनहद दूर ।

सकल नाथ पछलत ब्यंढ

बाई कै घरि भीक्षुसि ब्यंढ ।

सुनि संखल तहाँ मीकर भरिया

अंद सुरजि सि उनमनि रहिया ।

गोरख बागी पृ० २ । १५४ १५ ।

'सहस्रार' में अमृत आवक अन्नमा है । अमृत के साग का मूलाधार स्थित रवि सोपन कर बैठा है । अतः यह अभावसु की स्थिति है । रवि को बार कला को प्राप्त कर लेने के पश्चात् रवि का प्रभाव विविध हो जाता है । अन्नमा-पुनर् प्रभावशाली हो जाता है । माघ बिन्दु का योग होता है । शून्य में अनाहत माघ ध्वनित होता है । रवि और अन्न के संयोग से उम्मीदवस्था आती है । शून्य-सम्बन्ध (अक्षरार्थ) में अमृत का निर्भर करता है । माघ उल्टा जाता है । यह छटि का निर्माता बन जाता है । नीचे आता हुआ बिन्दु ऊर्ध्वमग्न करता है । निम्नलिखित पंक्तियों में इसी सहज समाधि का वर्णन किया गया है—

विपिन हमारी डीबी पाके अविनि बने मुक्तान ।

ऐसे हम ओलेस्वर निपनी प्रगट्या पं निवीन ।

गोरख बागी २१८।४३ ।

वाक न निष्ठै बृंह न षष्ठै, सहस्र बंधीठो भरि भरि राखे ।

सिख समाधि योग ब्रह्मासी सब मुद परखे साधे ।

मोरख बाणी॥

कायासाधना और सहस्रसमाधि के अन्तर्गत पीठों का भी वर्णन किया गया है । सिख साहित्य की विवेचना में इसका उल्लेख किया जा चुका है । नाग पन्थी साहित्य में इन पीठों को सिद्धों से मिलन रूप में ग्रहण किया गया है । नाग साधक इन्हें खरीर में ही अवस्थित मानता है ।

माध्यम में संखिनी को सर्व के रूप में ग्रहण किया गया है जिसका मुख दसवीं द्वार है । यही निरंजन का वास है । इस दसवें द्वार को अक्षरेश भी कहा गया है । इस द्वार पर साधक बाधभी जोरता है, धन्य जोरता है । मोरखनाथ ने इसी का उल्लेख करते हुए कहा है 'दसवीं द्वार निरंजन उन्नत बासा सबदहि उलटि समाना । नाग सम्प्रदाय के साधकों में अपनी रचनाओं में 'सबद' का प्रयोग किया है । वस्तुतः इस सबद का प्रयोग इन्होंने 'नाग' के अर्थ में किया है । इस 'सबद' को 'मुरति' के पर्यायवाची-रूप में भी ग्रहण किया गया है । नागपंथी सबद को मुरतियोग के रूप में देखता है । इससे सहस्र समाधि मिलती है । अतः सबद या नाद और मुरति की साधना अनिवार्य है । इसके माध्यम से निरात्म्य की अवस्था आती है । यह अनाहत नाद है । 'नाग' के प्रभावित बिन्दु अन्त में नाद में लीन हो जाता है । तब न नाद की स्थिति रहती है न बिन्दु की । यही नाद सबद या नाद को जागृत कर उससे अन्तर्मुखी करने की प्रक्रिया को 'साक्षात्करण की संज्ञा दी गई है । दसवें द्वार में नाद या परम-ब्रह्म लोभन की विषा को वाधा खोलने की संज्ञा दी गई है—

सबदहि ताका सबदहि कोषी सबदहि सबद जगाया ।

सबदहि सबद धूं परखा हुआ सबदहि सबद समाया ॥

मोरखबानी ॥२१०॥

धन्य में परतमम निहित है । नाग सुदृष्टिमान में सहयोगी है अतः मूल या अविच्छिन्न तक पहुँचने के लिए धन्य अनिवार्य है । इसी धन्य या 'नाद' के रहस्य का उत्पादन मुख-बन्धों में होता है । यह (धन्य) स्थूल है और वार (धन्य) सूक्ष्म है ।

नाथ सम्प्रदाय निवृत्ति मुख्य पंथ रहा, अतः यहाँ सृष्टि संयम और इन्द्रिय नियंत्रण के प्रति प्रबल आग्रह मिळता है। गोरखनाथ तथा अन्य नाथ शास्त्रों की रचनाओं में नारीत्वाम की भावना तो मिळती ही है। साथ ही साथ नारी के प्रति अति भूषण और उपासकी भावना भी मिळती है। यहाँ नारी को 'सर्पिणी' बाथिनी' इत्यादि अद्विष्ट और असाधारण छन्दों से सम्बोधित किया गया है।

पुरुषी ऐसा काम न कौनै ठापै ब्रमी महारस सीनै ।

बिबसै बाथिनि मनमोहै रास सरोवर सोपे ॥

बाणि बुझि रे मूरवि छोया भरि भरि बाथनी पोपे ।

मयी सीरे बिरया नारी संमै पुरपा, जलन बीजन की वाधा ।

मन्यै उज्ज्व मेर पिसि पड़ई, ठापै कंठ बिनाधा ॥

गोरखनाथी पु० १३७ ।

इस सम्प्रदाय में धुब की विशेष महत्त्व दिया गया है। वह भूमि का स्वस्व मानता है उसके आचरणों के अनुसार के प्रति विशेष आग्रह प्रकट किया गया है। जीवन में संयम और आचरण के प्रति निष्ठावान बनने का आग्रह प्रकट किया गया है।

काव्य सत्य और अमिथ्यञ्जना प्रणाली

मायस्य के साहित्य में काव्य की अन्तर्लेखना नहीं मिळती है। अपने सिद्धान्त के तत्त्वों के निरूपण की भावना ही इसमें प्रबल है। अतः रामायण कृतियों की दृष्टि से रसात्मक अनुभूतियों की दृष्टि से, इस कर्म के साहित्य में भावनाओं का उत्कर्ष सम्भव नहीं हो सका है। साधना के सिद्धान्तों के प्रकटीकरण या उसके स्वस्व-निरूपण और विश्लेषण के लिए यहाँ गोपन बाथी का आचार स्वीकार किया गया है। इस गोपन बाथी के सन्दर्भ में परिभाषिक या प्रतीकयुक्त छन्दों का विशेष महत्त्व है। मायस्य में बाथी के 'धूम' और 'अस्मू' रूपों का उल्लेख मिळता है। परा पस्पन्ती मध्यमा और वीररी के समान ही यहाँ भी बाथी के चार रूपों का उल्लेख मिळता है —

चार बाथी बोलिय घर भीतर ते कोय कोय ।

सृष्ट, संयम सुपाइ, अतीव ॥

बापी सम्बन्धी 'बीजासरो' तथा 'मंजूरो' की बारादा यहाँ भी विद्यमान है—उँ, बी र, सौ रौ ह्री क्ली । इनसे आरण, मारण, बलीकरण उखाटन आर्कषण स्तम्भन और मोहन ये सात विधियाँ मिलती हैं ।

प्राकृतिक व्यापारों के अप्रस्तुत विधान के अन्तर्गत प्रकृति के विभिन्न अंगों को प्रतीक रूप में यहाँ चित्रित किया गया है । कमल नदी विवेणी घाट आदि के प्रयोगों में एक विशिष्ट अर्थ का नियोजन मिळता है । प्रस्तुत भावना या चित्रात्मक निरूपण के लिए वस्तु-सापेक्ष अप्रस्तुतों के प्रयोग की विधा यहाँ मिलती है । उदा०—

तठबेसी छो तठबेसी छो अबधू गोरखनाथ जांणी ।

बाळ म मूळ पुत्रुन महीं धाया बिराबि करै बिन पांभी ॥

काया कुंजर तेरी बाड़ी अबधू सतगुरु बैठ रपांभी ।

पुणिय पाणसी करै बाणिपांवी मीकै बाळो बरि बांणी ॥

गोरखबापी पृ० १०६ १०७३

इस अंश में साबक ने ज्ञान के विकास और प्रसार की भावना को व्यञ्जित करने के लिए 'वेति' के अप्रस्तुत विधान का आयोगन किया है । और प्रकृति के विशिष्ट व्यापार के माध्यम से ज्ञान के प्राबुर्भाव और प्रस्तार की सुख और अपूर्ण भावना को स्पष्ट और मूर्त व्यापार विधान द्वारा सम्पादित किया है ।

नाथ सम्प्रदाय में संयम और इन्द्रिय एवम् आत्मनिग्रह के प्रति प्रबल आग्रह व्यक्त किया है और इस सन्दर्भ में नारी के परिचाय और दाम्पत्य जीवन के प्रति चेष्टा पाव व्यक्त किया गया है । परन्तु साधना-मूलक अनुभूतियों और इससे प्राप्त आत्ममुक्त को व्यक्त करने के लिए यहाँ दाम्पत्यजीवन-स्वल्प को आत्मव्यञ्जना के माध्यम के रूप में ग्रहण किया गया है । ऐसे सन्दर्भों में रति भावना और संयोग गृहार के वर्णन भी मिलते हैं । उदा०—

एक सतगुरि अपने परिपायों अबडा बाळ कुंजारी ।

महिन्द्र प्रसार भी गोरप बोल्पा जाया ना भी टारी ॥

गोरख बापी पृ० १०६।१ १६।

इस अंश में साबक ने बाळ कुमारी से अपने परिचाय का उल्लेख किया है ।

वस्तुतः साबक का यह चयन है कि बाळ कुमारी (जाया) ने सतगुरु ने परिचाय

रा दिया । बहु माया का पति हो गया । माया उसकी बसवर्तिनी हो गई ।
 ३. सन्तों में ज्ञान के विरामपूर्व स्वरूप के प्रस्तावन के लिए अनुराग पूर्ण
 मस्तुओं का प्रयोग इस काव्य-महिमा का मञ्जु बन जाता है । ज्ञान-अनु-
 त में भी रसात्मकता होती है । और रसात्मक घरातल से प्रस्तावित
 अन्य मन्त्र तत्वों से संस्पष्टित रहते हैं । नाथ साधनों की वाकियों में स्वत-
 ल पर इस प्रकार के सन्दर्भ मिल जाते हैं । उदा०—

ध्यान गुह दोऊ तूबा बम्हारे, मल्ला बेठनि डाँडी ।

उनमनी ताँती बावन कागी यहि बिधि तूझी पाँबी ॥४॥

ज्ञान और गुह ये मेरे दोनों तुंबे (तम्बूरे) हैं मल्ला इस तम्बूरे की डाँडी है ।
 पर उनमनी अवस्था के तार कौ हैं, वो बच रहे हैं । तारों की ध्वनि से तूझा
 घेड़त हो गई । इस अर्थ में उनमनी अवस्था का वर्णन है । परन्तु संगीत
 जन्मी अप्रस्तुतों का विधान यहाँ व्यापार-साम्य की अपेक्षा प्रभाव साम्य की
 ओर है विशेष महत्वपूर्ण है । संगीत में भावों के शोचन की सक्ति होती है ।
 जन्मी अवस्था में व्यक्त नाथ से साधक के भावकल्प का शोचन हो जाता है ।
 तब समाधि में बाकली बनाने का उत्प्रेक्ष्य स्थितियों में मिलता है । और इस
 दर्म में बाकली बनाने की विधा को रूप में अंकित किया गया है । नाथ
 प्रभाव में भी अमृत को बाकली कहा गया है । और बाकली बनाने तथा पात-
 ल के सापेक्ष व्यापार के माध्यम से अमूर्त व्यापार को मूर्त रूप देकर उसके
 बाकली करण का प्रयास किया गया है—

ईसीस बड़ा ड भाठी बिबावे पीबत सब मतिबाज

मनसा कछालिनि भरि भरि देखै आछा आछा मर ना प्यार ।

अमृत दापी भाठी भरिबा, ता सबे गुह फलोत्सा ।

मन महुबा तन बाहुबा कनासपटी अठारे मोत्या ॥१॥

अमर गुठा मैं मन बरि प्यारें बैस्या मासय बासी ।

बेठनि राखबहु बरि आक्या, गुण जुन काबो तासी ॥२॥

इस सन्दर्भ में इक्कीस प्रहोड में भट्टी चुबाने का उत्प्रेक्ष्य किया गया है ।
 (अमृत ज्ञान) पीकर योगी मत्वाला रहता है । नैरात्म को यहाँ कछालिनी
 रूप चित्रित किया गया । मन 'महुबा' के रूप में तथा तन 'मट्टी' के रूप में

अंकित है। ब्रह्मरूप (अमर युद्ध) में भासत लगाकर दोषी अथवा अविचल भाव से इस मन्दिर का पान कर रहा है।

प्रकृति के विविध व्यापारों के अप्रस्तुत प्रयोग के अनेक अंग इस धारा के साहित्य में मिलते हैं। ज्ञान के अङ्कुरित होने के अमूर्त व्यापार को निरूपित करने के लिए यहाँ वर्षा और कृषि के संक्षिप्त व्यापार-विधान का प्रयोग मिलता है। उदाहरण—

उत्तर देश में मेह बढ़करा दक्षिण अक्षय छाया ।
पूरुब देश की पाणिग बिछुटी पश्चिम क्षेत्र में पामा ॥१॥
वन पवना धोरी ओ तबो छतरी छाँटीका समभावो ।
दया धर्म ना बीज अभावो इभी परि पेने जावो ।

निछुटी या ब्रह्मरूप के लिए यहाँ उत्तर देश स्वाधिष्ठान के लिए दक्षिण दिशा इसा विगता के लिए पूरुब देश और सुपुम्ना के लिए पश्चिम क्षेत्र का प्रयोग किया गया है।

नाम साधकों ने अपनी साधनाधारा की श्रेष्ठता के समर्पण में अन्य धर्मों तथा साधना प्रणालियों की कटु आलोचना भी की है। गोरक्षनाथ एक स्थल पर बल्लभ पुण्य की उपलब्धि की वर्षा करते हुए सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कल्मियुग में समानता या अमानता देखते हैं। त्रेता में राम ने रामायण की घटनाओं की रचना की जिसमें अज्ञानी के समान मर और जन्म संपर्प कर के समाप्त हो गए। द्वापर में कौरव और पाण्डवों ने संपर्प किया। कल्मियुग में यह संपर्प पूर्णतः वैयक्तिक रूप धारण कर गया अतः ध्यान के माध्यम से निरात्मक अथवा काया ही सर्व युगों में सर्वप्रसूत है (देखिए—गोरक्ष बाणी—२६।१२३)। इस पत्र में अहिंसा दत्त की श्रेष्ठता के प्रति प्रबल आग्रह मिलता है। गोरक्षनाथ ने एक स्थल पर कहा है—

धीर सीध ना संनै बासा ना बधि खारया रे बर मासा ।

पाव न पाठिबा ईस गोवं, बरंत गोरपनाथ निहारि घोष ॥२२५॥

धीर में धिक् का बास है धीर का भाव माना सिध के दाँव जाने के समान है।

करा दिया । वह माया का पति हो गया । माया उसकी बदवर्तिनी हो गई । ऐसे सन्दर्भों में ज्ञान के विरागपुर्ण स्वरूप के प्रस्तावन के लिए अनुराग पूर्ण अभस्तुतों का प्रयोग इस काव्य-गरिमा का मन्त्र बन जाता है । ज्ञान-अनुभूति में भी रसात्मकता होती है । और रसात्मक बराबर से प्रस्तावित ब्रह्मन् मधुर तत्वों से संस्पर्शित रहते हैं । नाच साधकों की बाधियों में स्वतन्त्र पर इस प्रकार के सन्दर्भ मिल जाते हैं । उदा०—

ध्यान गुह बोझ तुंका बम्हारे, ममता केतनि डांड़ी ।

उनमनी तांती बाबन छाबी यहि बिधि तुप्या पांड़ी ॥४॥

ज्ञान और गुह ये मेरे दोनों तूजे (तम्हारे) हैं ममता इस ठँकुरे की डांड़ी है । इस पर उम्मीनी अवस्था के तार कने हैं जो बन रहे हैं । तारों की ध्वनि से तुप्या लक्षित हो गई । इस अंश में उम्मीनी अवस्था का वर्णन है । परन्तु संगीत सम्बन्धी अभस्तुतों का विधान यहाँ व्यापार-साम्य की अपेक्षा प्रभाव साम्य की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है । संगीत में भावों के शोषण की शक्ति होती है । उनमनी अवस्था में अनहत नाच से साधक के भावकर्म का शोषण हो जाता है । सहज समाधि में बाबनी बांधने का उल्लेख सिद्धों में मिलता है । और इस सन्दर्भ में बाबनी बनाने की विधा को रूपक में अंकित किया गया है । नाच सम्प्रदाय में भी अमृत को बाबनी कहा गया है । और बाबनी बनाने तथा पान करने के साधक्य व्यापार के माध्यम से अमूर्त व्यापार को मूर्त रूप देकर उसके साधारणीकरण का प्रयास किया गया है—

ईकीस बहुत भाठी चिमावे पीबत सब मतिबाल

मनवा कलाखिनि भरि भरि देखै आछा आछा मर ना प्यार ।

जगुत बापी भाठी भरिया, ता मने गुह भुकोखा ।

मन महुमा तन पाहुवा बनाउपठी बठारे मोस्या ॥१॥

अमर गुफा मैं मन भरि प्यारें जेस्या आसन बाबी ।

केतनि राबस यह भरि जास्या, धुप धुग लागो तासी ॥२॥

इस सन्दर्भ में ईकीस वहाँ के भट्टी बुझाने का उल्लेख किया गया है । इसे (अमृत नाच) पीकर योगी मनुवाला रहता है । गैरात्म को महाँ कलाखिनी के रूप चित्रित किया गया । मन 'महुमा' के रूप में तथा तन 'महुदी' के रूप में

बंधित है। ब्रह्मलोक (अमर मुखा) में वासन स्नाकर मोती अक्षर, अविषय भाव से इस मन्दिर का पान कर रहा है।

प्रकृति के विविध व्यापारों के अप्रस्तुत प्रयोग के अनेक अंश इस धारा के साक्षर में मिलते हैं। ज्ञान के अंकुरित होने के अमूर्त व्यापार को निरूपित करने के लिए यहाँ कहीं और कृपि के संस्मिष्ट व्यापार विमान का प्रयोग मिलता है।

उदाहरण—

उत्तर देस में मीह बड़का दलिन आबल छावा।

पूरुब देस की पाणिम बिछूटी, पश्चिम क्षेत्र में पाया ७१॥

मन पबना धोरी जो तबो, सतनी सोतीड़ा समधाबो।

दया बर्म मो बीब ममाबो, इपी परि पेने बाबो।

किछुटी या ब्रह्मलोक के लिए यहाँ उत्तर देस, स्वाभिष्ठान के लिए दक्षिण बिधा, इला विपत्ता के लिए पूर्व देस और सुपुम्ना के लिए पश्चिम क्षेत्र का प्रयोग किया गया है।

पाव साबकों ने अपनी साधनाधारा की श्रेष्ठता के समर्पण में अन्य बर्मों तथा साधना प्रवाहियों की कटु आलोचना भी की है। गोरखनाथ एक स्थल पर ब्रह्म पुत्र की उपलब्धि की बर्ची करते हुए सत्ययुग, त्रेता द्वार पर और कल्मसुस में समानता या अभिजाता देखते हैं। त्रेता में राम ने रामायण की घटनाओं की रचना की जिसमें अज्ञानी के समान गर और बन्दर संघर्ष कर के समाप्त हो गए। द्वार में कौरव और पाण्डवों ने संघर्ष किया। कल्मसुस में यह संघर्ष पूर्णतः वैयक्तिक रूप धारण कर गया, अतः ज्ञान के माध्यम से निराकम्ब अवस्था का आचार ही सर्व युगों में सर्वश्रेष्ठ है (देखिए—गोरख बाणी—२६।२२३)। इस पद्य में बहिष्ता तत्त्व की श्रेष्ठता के प्रति प्रबल भाव है। गोरखनाथ ने एक स्थल पर कहा है—

जीव जीव ना संवे जावा ना बधि छाहवा रे हर माया।

पाव न पातिवा इस मोत, बर्त गोरखनाथ सिद्धारि पौठ ७१२१७

जीव में जिव का बाध है जीव का बाध माना जिव के बाध जाने के समान है।

विरोध मूलक बर्तनकार के द्वारा उल्टबासियों की बिना सिद्धों की रचनाओं में विशेष आकर्षण है। नाच साहित्य में भी उल्टबासियों का व्यापक प्रयोग मिलता है। इस बिना में विरोधी धर्म-उपमानों का प्रयोग किया गया है। इसके साथ-साथ विरोधी धर्म के आरोपण प्रभासी के द्वारा भी उल्ट बासियों की रचना की गई है—

गोरखनाथ ने इसे उल्टी 'बरबा' कहा है।

नाच बोले अमृत बाणी बरियेकी कंवकी मीनमा पाणी । टेक ।

माङ्गि पडरबा बाधिले पंठा पसे बसामा बजिले ठंटा । १ ।

कठबा की डाकी पीपल बासै मुसा के सबह बिलइया नासो २ ।

बडे बटाता बाकी बाट सोबे छुकरिया डोरे पाट । ३ ।

हुकिले कुकर भुकिसे थोर, काढे धनी पुकारे डोर ।

ठगड़ बेड़ा नगर मझरी तछि गामरि ऊर पणिहारी ।

मवरी परि बुरहा धूपाइ पोबन हारा को रोटी खाइ । ५ ।

कामिनी बसे बंसीठी तापे बिचि बेसंहर बर बर काँपे । ७ ।

एक जु रडिया रखी बाई, बहु बिवाई सासु बाई । ८ ।

नयरी को बाकी पाणी कुई जाने उल्टी बरबा गोरख गावै —

बागी पृ १४१ १४२

'नाच अमृत-मूर्ध बाणी बोछटा है। कंवकी बपी करती है, बच भीप रहा है। पाङ्ग पङ्ग है लूँटा उसमें बंसा है, बसामा बसता है ठंड बजता है कंव की डाक पर पीपल निवास करता है मुह के बन्ध से बिल्ली का नाच हो रहा है, बटोही बल रहा है परम्पु मार्ग बर गया है छुकरिया पर बाट सो रही है कुत्ता बोरी के लिये पुवा है थोर मूझता है। लकड़ी पड़ी है बुरहा मुँवाँ बे रहा है, मवरी नीचे है पणिहारी ऊपर है, कामिनी बल रही है बंसीठी ताप रही है। बनानेवाली को रोटी खा रही है बहु सास को जन्म बेटी है। नयरी का पानी कुँवाँ में जाता है, गोरखनाथ उल्टी बची गाते हैं। इस अर्थ में विरोध मूलक संदर्भों का नियोजन है परम्पु इसमें भावों की अन्तरिक एकता है। यह एकता ही इन उल्ट बासियों का मुख्य सौंदर्य है। कंवकी मानसिकता को ज्ञान की बपी कर रही है। परदबा अविबेकी मन है। यह भावा का नाच का

पूरा है। सामान्य भवत्वा में अचेतन मन माया के लुटे में बंधा रहता है परन्तु ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् माया चेतन मन के अधीन हो जाती है। (यही लुटे का पहरना में बंधना है) ऊँट अचेतन मन है। जिसपर हमारा अपना बनाहूत माया का आघात पड़ रहा है। कौत्ता दुष्ट मन का प्रतीक है। ज्ञान उपलब्धि के पश्चात् ज्ञानानुभव (पीपल) का निवास बन जाता है। ज्ञान-उपलब्धि के पश्चात् मन (मूसा) के शहर से माया (बिछी) का नाश हो गया। बटोही बळता है (ज्ञान का साधक), और ज्ञान की उपलब्धि के पश्चात् मार्ग का अन्त हो जाता है, जिसे मार्ग के पक जाने की संज्ञा दी गई है। जयताप में बलने वाला मन (मयरी) ज्ञान की उपलब्धि के बाद सान्निध्य हो गया है, माया (चूल्हा) बल स्वयं जल रही है।

आत्मा पनिहारिण है। कुष्मिणी वह वागर है जो ब्रह्मरंध्र में ऊपर या मयी है। ब्रह्मसाक्षात्कार के पश्चात् माया (कामिनी) जल रही है और बीजात्मा (बंसीठी) ताप रही है।

कनक के माध्यम से साधना की विविध विधियों का प्रकाशन इस धारा के साहित्य की अभिव्यक्तता प्रणाली का एक अन्य गुण है। काया-साधना के अन्तर्गत शरीर की व्याख्या नगर के रूपक द्वारा की गई है। जहाँ शरीर को नगर माना गया है। चेतन मन कोठवाल है। काया का कोट ३६० पहरों से (हृदियों से) निर्मित है। जनहर नगर की मटिका है जिसे चेतन मन सभी ब्रह्मसाक्षात्कार करता है जहाँ परम ज्योति के दो दीपक जलते हैं। (देखिए गोरखबानी —गुप्त १२० १२१)।

विद्वत् साहित्य के सन्दर्भ में संख्या भाषा की पक्षों की जा चुकी है। संख्या भाषा के प्रयोग की विधा नाथ सम्प्रदाय से सम्बन्धित साहित्य में भी पुरवर्त विकसित मिलती है। इसमें अभिव्यक्त अर्थ की जपेता प्रतीकात्मक या दृश्यता मूक अर्थ का ही विशेष महत्व है। नीचे नाथ साहित्य में प्रयुक्त संख्या भाषा से सम्बन्धित कतिपय दृष्टों का संप्टीकरण किया जा रहा है—

घण्ट

सामान्य अर्थ

संख्या अर्थ

माप

माप

घड़ी, गैराल्पा

उषा०—आकाश की घेत बाछा बापा के दुहावतरेन बिहाय ।

गिवनि मंडल में गाय विषाई कागद रही बमाया ।

मो० बा० १८६ ।

मुप

मृप

अम में आचक मल ।

अमल मोरपनाय मंछिनी पृठा मादूयो मृष भया अवभूता ।

मो० बा० ११६ १२० ।

धीम कया हविमे रे प्यंड बारी । मारिजे पंच मू मृगया ।

मो० बा० पुष्ट ७३ ।

मुर्बंगम

मुर्बंगम

मुर्बंगम का स्वामी साबक

उषा० ऐसा मुर्बंगम ओमी करे, बरती छोर्ये अम्बर भरे ।

सर्पिणी नागिनि

सर्पिणी नगिनि

माया ।

कहीं निरंजन वासा कछीं कहीं काळी नागिनी मीकक बरहीं मो० बा०

१९९ ।

मारी स्त्रीकरीं निरमल बल पैठी

माती माती स्त्रीकरीं बसो बिधि धारे

मो० बानी पु० ११६, १४०

मुर्बंगम

मुर्बंगम

बायु

ज्यू ज्यू मुर्बंगम जाय जाई सुखी बोटि नहि गरज रहारै । मो० बा० ६३ ।

अहेरी, पारखी

अहेरी पारखी

आत्मा साबक ।

जाईसी मीक पारखी हाथ नहीं प्युझों गुप बात न काहीं ।

मो० बा० ११६ ।

मेघ

मेघ

कल्या, बुध ।

उत्तर मेघ में मैंह बकला बनिब आंचक छाया ।

हंस

हंस

आत्मा प्राण बायु ।

पंच अमृत मोरी पावकरी रे हंसा पकल दुबाई को ।

हंस पकल अ फूल पेटा मोसै मदी पतिहारी । २ ।

मोरबानी ६३ ।

मीन मीन वायु आत्मा ।

इह ज्य सीगभि नम ज्य बार्न । बेष्वा मीन गगन अस्वान ।

४२ १२७ ।

कोयल मोरो माँवो बास्यो, गगन मछली बगछो बास्यो ।

१२९ २ ।

सिंह सिंह मायाप्रसिद्ध मन ।

मर्स्या बपड़ी सिंह ने बेरे । मृतक बसू शूद्रक उचरे ।

गो० ब० १३२ ।

आपस हीं स्वयं बाब आपस हीं मार्य । गो ब० १३६ ।

बाबिनी बाबिनी माया ।

बाबनी उवाया बाबनी निपाबा बाबिनी पाकी काया । गो० ब० १४४ ।

अन्य

बाब सम्प्रदाय की रचनामें 'सबरी' 'पर' 'होहा' 'सोरठा' और 'बीमार्य' में रचित है । गोरखनाथ ने 'फटपरी' में भी रचनायें की हैं इसका उल्लेख गोरखनाथ ने स्वयं किया है —

बाबिनाथ माटी मस्तिननाथ पूता, फटपरी भभीसै गोरख अबभूता । ८८ ।

परमेश्वर के स्वरूप की व्याख्या करते हुए भी गोरखनाथ ने 'छापी' और 'छन्द' का उल्लेख किया है ।

ॐ कार निठकार सुद्धिम न अस्मूल पैड़ न पत्र फसै नहि फूल ।

बाल न मूख न बूढ़ न बेका, छापी न छन्द मुक नहीं बेका । २ ।

गोरख बानी ।

इस प्रकार 'छापी' और 'सबरी' इस काव्यधारा के अति प्रिय छन्द् हैं । 'गोरखबानी' में गोरखनाथ की रचनाओं का विभाजन 'सबरी' और पर इत्यादि के आधार पर हुआ है । 'नाथ सिद्धों की बाबियों में संकल्पित रचनायें भी 'सबरी' और 'पर' में बनी हुई हैं । उदाहरण—

बस नंदन में जेना बूझै तहाँ अमृत का बासा ।

उमुच होई नु जरि भरि पीबे निपुन बाई सिवासा ॥

गोरखबानी पृ० १।२३

काया ठरवर भाकड़ बिच डालें पानै भरनै लिच लिच ।

कल्यै कल्यै वह दिशि बाइ ठिस कारण कोई सिव नवाई । २।

नाथ सिद्धों की बानियाँ

चरपट नाथ की की सखरी पृ० २५ ।

यहाँ समस्ततुल्यियों के साथ होइ के प्रयोग की एक विशेष बिधा मिली है । प्रस्तोतरी के सन्दर्भ में बोहा और चौपाई का प्रयोग किया गया है । वाञ्छोध्य सन्दर्भ की रचनाओं का एक व्यापक अंश यहाँ में रचित है, और इनमें राम रामियों का भी निर्देश मिलता है । 'गोरख बानी' के पद 'राम रामरी' 'राम बसावरी' 'राम रामरी' आदि स्तोत्रों में मिलते हैं । (देखिए गोरखबानी पृ० ८३—१५८) । नाथ सिद्धों की बानियों के पद भी 'राम गुड' 'राम रामरी' 'राम कलकंदी' 'राम धनासी' 'राम रावंगरी' आदि के अनुसार बर्णित हैं । कतिपय सन्दर्भों में श्लोक का प्रयोग भी मिलता है । उदा०—

मंथी उवाच—अही म्यांकी महा मूनी ।

अष्ट अंश मत्स्य जेम्न ॥

दिम अरथ कंठ भाषा ।

कृष्ण ध्यान हो लोखरी । १।१३७।

नाथ सिद्धों की बानियों मसीखी का श्लोक १०५ ।

पादकुसुम से निकसित प्यार छन्द का प्रयोग भी गोरखनाथ तथा अन्य नाथों की रचनाओं में मिलता है—

भरै न पारा बाबै गार, सतिहर सुर न बार बिचार । १ ।

पवन मोटिका रहनि कलाध मक्षिपक अंतरि गगन कबिलास । २।

पायकनी डीबी गुनि कड़ाई कंचन गोरखनाथ मसीख बतवाई ॥

गोरखनाथ बानी पृ० १६११६७।

भाषा

हिन्दी में नाथसम्प्रदाय की रचनायें 'गोरखबानी' और 'नाथ सिद्धों की बानियाँ' में संग्रहीत हैं । इन रचनाओं की भाषा किसी विशेष युग की प्रतिनिधि भाषा नहीं है । इनमें किसी विशेष अंश की भाषा का स्वरूप-बोध नहीं

झी होता है। इन रचनाओं की भाषा अधिक विकसलशील स्वरूप में है। अतः इनसे माया के प्राचीन स्वरूप का बोध नहीं हो पाता है और आधुनिक भारतीय कार्य भाषा के पूर्वी तथा पश्चिमी, इन दोनों अक्षरों के भाषा-रूपों के उदाहरण इन रचनाओं में मिल जाते हैं। अपने वर्तमान रूप में इस सप्रवाय का साहित्य बोलनाच तथा अन्य भाषा साधकों की मूल रचना नहीं है। लोक जीवन में इसका विकास मौखिक परम्परा में होता रहा है। इसके विभिन्न-वर्ण करने का प्रयास सत्रहवीं शताब्दी में किया गया। इस के मिल मिल अक्षरों में मौखिक रूप में विकसित होने के कारण इसमें भाषा की विविधरूपता नसगिक रूप में सिद्धमान है। इन रचनाओं में भाषा की प्राचीनता के प्रति आग्रह नहीं किया जा सकता है। बनेक विद्वानों की यह चार्णा है ये रचनाएँ पूर्वी अक्षर (मागधी से प्रसूठित) की भाषा में रचित हैं, परन्तु इस सम्बन्ध में इस प्रकार का निश्चया तक निर्णय नहीं किया जा सकता है। आलोच्य भाषा की निम्नलिखित महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं।

(१) शब्द के धारि में आए हुए संयुक्त व्यञ्जनों के सरलीकरण की प्रक्रिया—उदा० बाफला < स्वापला बसटी बापता बापी मो बा, विति < सिद्धि पित विहूणा मूठा बोपी० मो० बा० १६ १०६।

(२) (i) अक्षर-संकोच और (ii) अक्षर-संप्रसारण (Syllabic contraction and Syllabic expansion) के उदाहरण इन रचनाओं की भाषा में पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं—उदा० अर्पण < आर्णिगन तत्रे अर्पण काटे माया मो० बा० ७ १७। कंठ्य < कन्ठ्य काम श्रेय बापी पूर्ण कीया कंठ्य कीया कपूरे गो० बा० (iii) अविघन्तर < अघ्यन्तर ठसि अविघन्तर पर निर्वाण मो० बा० विराधि < वृद्धि : पृथुप महि विराधि मो० बा० १६।

(३) इस भाषा-मै-डा-की, प्रत्ययों का प्रयोग मिलता है। ये प्रत्यय गोरखेनी अक्षर व और अक्षर में भी प्रयुक्त हुए हैं। प्राचीन व आधुनिक राजस्थानी के ये विशेष प्रचलित प्रत्यय हैं—उदा० गोरख बापुडा बोले अमृत बापी रे सामुही पाऊनई बहुही हिहोले पणन मण्डकी बगले प्राप्ती इत्यादि।

काया छरवर नाकड़ बिछ बाजें पाने भरलै निछ निछ ।

कसमै कसमै बहु विधि जाइ, सिउ कारण कोई सिउ नवाई ।२।

नाच सिद्धों की बानियाँ

वरपट नाच भी की छक्की पृ० २३ ।

यहाँ समस्तगुणियों के साथ दोहे के प्रयोग की एक विशेष विधा मिलती है । प्रस्तोतरी के सन्दर्भ में दोहा और चौपाई का प्रयोग किया गया है । वामोप्य सन्दर्भ की रचनाओं का एक व्यापक बंध यहाँ में रक्षित है, और इनमें राम रामियों का भी निर्वहन मिळता है । 'गोरख बानी' के पद 'राम रामणी' राम बसाबरी' 'राम रामगरी' आदि शीर्षकों में विमल है । (देखिए गोरखबानी पृ० ८३—१२८) । 'नाच सिद्धों की बानियों' के पद भी 'राम बुड 'राम रामणी 'राम कस्समड़ी' 'राम बलासी' 'राम राबंगरी' आदि के अनुसार बर्णित हैं । कतिपय सन्दर्भों में स्तोत्र का प्रयोग भी मिलता है । उदा०—

गंभी उवाच—अही प्यागी महा भूमी ।

बड़ बस बस सेज ॥

किम बरष कंठ पाजा ।

कूँज ध्यान हो ज्येस्वरी ।१।६३७।

नाच सिद्धों की बानीयों भरीयौ का स्तोत्र १०४ ।

पादकुलक से विकसित पवार छत्र का प्रयोग भी गोरखनाथ तथा अन्य नाचों की रचनाओं में मिलता है—

मरै ग पारा बाजे नाच, ससिहर सूर ग बाब विबाब । १ ।

पवन बोटिका रहुँपि अकास मह्यस अतरि गमन कबिलास ।२।

पायलनी डीपी मुनि चढ़ाई कर्षत गोरखनाथ मझिह बटाई ॥

गोरखनाथ बानी पृ० ३६ १३६७

भाषा

द्विती में नाचसम्प्रदाय की रचनायें 'गोरखबानी' और 'नाच सिद्धों की बानियाँ' में संयोजित हैं । इन रचनाओं की भाषा किसी विशेष युग की प्रतिनिधि भाषा नहीं है । इनमें किसी विशेष अक्षर की भाषा का स्वरूप-बोध भी

नहीं होता है। इन रचनाओं की भाषा अधिक विद्वत्प्रधान स्वभाव में है। इन
इनसे भाषा के प्राचीन स्वरूप का बोध नहीं हो पाता है और आधुनिक दार्ष्टान्तिक
भाषा-भाषा के पूर्वी तथा पश्चिमी, इन दोनों अंशों के सम्पर्क के उदाहरण
इन रचनाओं में मिल जाते हैं। अपने वर्तमान रूप में इस सम्पर्क का स्पष्ट
बोखनाम तथा अन्य नाम सापकों की मूल रचना नहीं है। एक ही रूप में इसका
विकास मौखिक परम्परा में होता रहा है। इसके कतिपय करने का प्रमाण
सामग्री एतासी में दिया गया। इस के निम्न निम्न अंशों में संक्षिप्त रूप में
निर्दिष्ट होने के कारण इसमें भाषा की विविधरूपता नैसर्गिक रूप में विद्यमान
है। इन रचनाओं में भाषा की प्राचीनता के प्रति आग्रह नहीं किया जा सकता
है। बल्कि विद्वानों की यह धारणा है कि रचनाएँ पूर्वी अक्षर (मागी) से
प्रस्तुति) की भाषा में रचित हैं, परन्तु इस सम्बन्ध में इस प्रकार का निष्कर्ष
एक निर्णय नहीं लिया जा सकता है। आलोच्य भाषा की निम्नलिखित महत्वपूर्ण
विशेषताएँ हैं।

(१) सत्र के आदि में आए हुए संयुक्त व्यक्तियों के सरस्वतीजी की प्रशिक्षण—स्वतः वापना < स्वापना जखटी वापना वापी मो, वा, रिडि < रिडि यित बिहणा मुठा बोगी। मो० वा० १६१०६ !

(२) (i) अक्षर-संकोच और (ii) अक्षर-संप्रसारण (Syllabic contraction and Syllabic expansion) के उदाहरण इन मन्त्राओं की माया में पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं—उदा० अत्यंत < आतिष्ठ - अतः
अत्यंत काटे माया गो० बा० ७१७। अंत्य < अन्त्य काय अंत्य अन्त्य
बुना बीषा अंत्य बीषा अन्त्य गो० बा० (iii) अमिअक्षर < अमिअक्षर, अमि
अमिअक्षर पर निमीय यो० बा० विपदि < इति : पुनर अन्त्य अन्त्य
गो० बा० ३९ ।

(१) इस भाषा-मै-का-की प्रत्ययी का प्रयोग निम्ना १। २ प्र-
योगों में अत्यन्त और बहुधा में भी प्रयुक्त हुए हैं। प्राचीन ४ भाषा-
प्रत्ययी के ४ विधेय प्रचलित प्रत्यय हैं—उदा० योग्य का- ४१ ४२
बाकी रे घामुडी पावनके बहुकी दिहीने गल मकान ४३ ४४
इत्यादि ।

(४) बहुवचन के लिये नियमित रूप से-आँ प्रत्यय का प्रयोग आठोच्य भाषा में मिलता है। इस का प्रयोग दक्षिणी हिन्दी तथा पूर्वी पंजाबी में भी मिलता है। उदाहरण—बीटवाँ परबत डोसा रे बबधु, बायाँ बाप बिडारपा बी, सुसहँ समवाँ सहरि मनाई मुवाँ बीठा मारपा बी, बीरख कई गुरू केँ सववाँ तु ही बड़न हाराबी। यो० बा० १३४,

(५) संज्ञाओं के मूक तथा विकृत रूपों में सन्निभितिक या संवोधात्मक रूप भी यहाँ मिलते हैं, परन्तु वे प्रयोग अति अल्प और सीमित मात्रा में हुए हैं। इन प्रयोगों में भाषा के कतिपय प्राचीन रूप देखने को मिल जाते हैं। उदा०—
 केरे न सास्ने, कलेरे न कुरावे पुस्तके न बवाँ बाई यो० बा० पु० ३०। (यहाँ-ए अधिकरण कारक का सन्निभितिक प्रयोग है)। सवरे बिबाई ऐसा मुहम्मद पीर (ऐं करण कारक का सन्निभितिक प्रयोग है)। बरबै जाता छरबै धरे (सम्प्रदान अधिकरण), इकोतर से पुरिया गरकहि बाई। —(हि सम्प्रदान का सन्निभितिक प्रयोग है)।

(६) संज्ञा के परस्त्रीय प्रयोगों में आ परस्त्री विशेष महत्त्व का है। यह परस्त्री मराठी का है। और यहाँ इसका प्रयोग सम्बन्ध कारक के लिये होता है। उदा० पापाव बी बैझी, पापाव आ बैवठा। १३१। बायँ बयि सोइवा बमवा भोक्किवा यो० बा० १६। सम्बन्ध के लिये नाँ परस्त्री का प्रयोग मिलता है। अपने मूक रूप में यह युबराती का परस्त्री है। उदा० अनेक जनम नाँ पाखि छूटै जयंत पीरख बवाली। यो० बा १०१। यन्त योरखनाथ मझिन्न नाँ पूता यो० बा० १२०। चन्द्र मुर भी मुंदा कीम्हीं। यो० बा० ११०।

(७) सर्वनाम रूपों के अन्तर्गत जम्हें माँहरा जम्हारे, तुम्हें भावि प्राचीन रूप हैं। उदा० छुछूट हाट मम्हे बपियरा, १०५ माँहरा बोवी १०५ व्यान गुरू बोऊ तूँवा जम्हारे सतगुरु जम्है परिनाय्याँ बबका बाक कुंवारी १०६। जेजनि मुसा निरंजन चुका तुम्हें लीवाँ साहिब बालीरे १३२। आ तब बार न पार, ३३। ताव बिबाय विमुक्त सुम्हें ३। कृष्ण—कृष्ण हनकू भात पुलावे कीज पपलै पाई।

(८) संज्ञावाचक विशेषणों में निम्नलिखित रूप विशेष उल्लेखनीय हैं—
 बबवे, बारा, इकवीस एकदसि चारि, उदा० बबवो पापा जसमान पंजवे

वरा असमान ७१ २५५, बार कबा सोये सोला कबा पोये, इकबीस सईस
पटसा बाहु, पवन पुरिय अपमाछी २५।१ । नव पंड पुयी इकबीस मां ही, एका
हति एक तारी । १७ । बारि महावर बारह बेसा । १३३ । मूदकी जुप व्यापि
तै बाई । अठ्ठासी सइसन रपीसर कंरप व्याप्या असाधि बिपनु की मामा ।

(१) क्रिया रूपों के अन्तर्गत-अ भविष्य का प्रयोग यहाँ निपजित रूप में
हुआ है । इसी प्रकार भूतकाल के क्तिप्-स रूप का प्रयोग भी आलोच्य भाषा
की एक प्रमुक्तता है । इन दो दृष्टियों से इस संदर्भ की भाषा पूर्वी भाषाओं के
निकट की है । उदा०-अ भविष्य, हँसिबा खेकिबा रहिबा रंग काम कोष न
कजिा संभ । हँसिबा, खेकिबा माइबा गीठ, थिड़ करि राखा अपना भीत ।
रंग बिन बसिबा, अकिनबिन बसिबा । १८ । हबकि न बोकिबा डबकि न बसिबा
बीरे बजिा पाव । ११ २७ । भूतकाल के क्तिप्-का प्रत्यय का प्रयोग
बन मुसब दोठ सनमुख रासिबा रस भुस बहिमईका रहि गईका सारं । ८५।१
बैर सूरब दोळ नवन बिभुका, भईका बीर अंबारं । पृ० २६४ । कामाकड़
भीतिसे बीरस बबबूता । १३४ ४ ३२ ।

आरम्भ में इस प्रत्यय का प्रयोग केवल भूतकाल के क्तिप् होता रहा परन्तु
काल-क्रम से इसका प्रयोग वर्तमान के अर्थ में होने लगा था । गोरखनाथी
और 'नाथ सिद्धों की बानियाँ' में इस प्रत्यय का प्रयोग भूतकाल और वर्तमानकाल
इन दोनों के क्तिप् मिलता है ।

(१०) पश्चिमी अञ्चल में प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के इप्प भविष्य से
विकसित-ही रूप का प्रयोग (भविष्य के अर्थ में) होता है । पूर्वी पञ्जाबी बखिनी
झिरी तथा प्राचीन राजस्थानी में इस रूप से विकसित-स भविष्य का प्रयोग
मिलता है । इस दृष्टि से आलोच्य भाषा पश्चिमी प्रभाव से संस्पष्ट है ।
उदा० बिहिपर बैर सूर बहि जय तिहि बरि होसी बजियारा मुक मुनि
बिना न बाजसी ये हुप्यो बड़ रोम । ७४।२३५ । बिबबा नारी नौ संभ करेस्यो
तो रोम रोम नरक पड़ी स्यो री । पौ० बा० १२१ ।

(११) सहायक क्रिया के रूप में अछ का प्रयोग भी इस भाषा में
मिलता है । उदा० झिनु आछे अछय को तहाँ राम अछे न पुराई । ६ २५ ६२ ।
नवन तिवर आछे, अंबर पानी मरंता मडां लोकां मरन न बाणी । ८१।१ ।

सक्ति स्त्री रत्न भाष्ये, शिव स्त्री भाष्ये, बाह्यकला रत्न भाष्ये सोलह कला
अथ १००।११।

(१२) प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के कर्म बाण्य का विकास हिन्दी तथा
अन्य आधुनिक आर्य भाषाओं में कर्तृबाण्य के रूप में हुआ है। आलोच्य
साहित्य की भाषा में यह विधा सम्पूर्ण रूप से विकसित मिलती है। उदा०
अबबू ईस्वर हमारे चेसा मनीबे मछीद बोस्मिए गाठी।

विद्यापति

आदि कासीय साहित्य में विद्यापति के काव्य का विषय महत्त्व है। एक
शृंगार कवि के रूप में इनकी क्वालि लोक-भाक्त और साहित्य के विद्वार्थियों
को आकर्षित करती रही है। इन्हें 'मैमिस् कोकिज' और 'अमित्र बपरेब' की
उपाधियाँ से आब भी सम्मानित किया जाता है। विद्यापति की रचनाएँ
संस्कृत में हैं अथवाट्ट में हैं और वेस्य भाषा (मैमिस्) में हैं। मैमिस् की रत्न
भाष्ये शृंगार मूलक है और इन पर 'गीत गोविन्द' 'गाहा सप्तसई' तथा 'अमर
छतक' का प्रमेष्ट प्रभाव मिलता है। गौड़ीय वैष्णव शक्ति से सम्बन्धित साहि-
त्यिक रचनाओं के आद्य-महा के रूप विधान में विद्यापति के पदों ने भी महत्त्वपूर्ण
योगदान दिया है। 'कृष्ण कर्णामृत' और 'वीरगोविन्द' के पदों के समान
विद्यापति के पदों ने चैतन्य की शक्तिभावना का उन्मेष किया है। विद्यापति
के पदों की भाषा मैमिस् है परन्तु कृष्ण-साहित्य के अध्ययन के ऐतिहासिक संदर्भ
में विद्यापति के पदों की उपेक्षा अन्याय है। कृष्ण-साहित्य की परम्परा
और उसके क्रमिक विकास के संदर्भ में हिन्दी के अन्तर्गत इनका अध्ययन
अपेक्षित है।

विद्यापति के नाम से प्रचलित पदों की संख्या अति व्यापक है। अपने वर्त-
मान रूप में वे पर किसी एक कवि की रचनाएँ नहीं हैं। बनेक कवियों के भाव
योग से वे वर्तमान आकार धारण कर सके हैं। विद्यापति नामक कवि का प्रथम
उल्लेख 'सुबुक्ति कर्णामृत' नामक ग्रन्थ में मिलता है। इस ग्रन्थ में विद्यापति
रचित पाँच श्लोक मिलते हैं। जिस विद्यापति की खोज हम कर रहे हैं वे कर्म
देव के समकालीन थे। कर्चंदेव परिचमी बंगाल और बीरभूमि के अधिपति थे।

इन्के पदवाचु अनेक कवियों ने विद्यापति का उपमान ग्रहण कर रचनायें की हैं । इस प्रकार के उल्लेख मिलते हैं कि परवर्ती कास में 'पन्कार' या 'मीतकार' के स्थिय विद्यापति की उपाधि का प्रयोग होने लगा था । इस प्रकार विद्यापति के नाम से जो पद उपलब्ध होते हैं उनमें मैथिली कवियों के अतिरिक्त बंगाली तथा नेपाली परकृतियों के पद भी सम्मिलित हैं । अठारहवीं सताब्दीके मध्य बंगाली विद्यापति नामक एक कवि ने 'पाँचासी काव्य की रचना की थी । प्रियदर्शन ने विद्यापति के पदों का जो संग्रह किया है उसमें कवि विद्यापति जयराम के अनेक पद संगृहीत हैं । इस प्रकार विद्यापति के नाम से उपलब्ध पदों में 'नव जयदेव' 'अमिनव जयदेव' आदि नामों का भी उल्लेख मिलता है—उदा० 'कान्द रूप सिरि मित्र सिंह माएन कवि अमिनवजय देवा' न० ७७ १२

अपवा

'राजा शिव सिंह भूप नारायण कवि अमिनव जयदेव ।' न० १८ ।

कतिपय पदों में 'कविस्वर', और नव कवि सेखर' आदि नामों का उल्लेख भी मिलता है—यथा

अनह विद्यापति नव कवि सेखर

पशुबी बोसर कहौ

साह हुऐने भूय सम नागर

माजति पैलिक जहाँ ।

ऐसे ही अन्य पदों में 'रायसेखर' 'कवि बहम' आदि नामों का भी उल्लेख मिलता है ।

जिस 'मैथिल कोटिल विद्यापति' की खोज हम कर रहे हैं वे 'सुक्ति वर्णा मृत' के विद्यापति से भिन्न थे । अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से उन्हें हम विद्यापति प्रियीम की संज्ञा देते हैं । विद्यापति का जन्म बिहार के दरभंगा जिले के अन्तर्गत बेनीपट्टी के मिसपी ग्राम में हुआ था । विद्यापति का सम्पर्क अपने समय के अनेक राजाओं से था । इन सब के सम्मुख में विद्यापति ने पबौस किया है । परंतु अपने विषय में वे मोन हैं । सन् १८०६ में Indian Antiquary में जॉन बीप्ल ने विद्यापति पर एक लेख लिखा । इन लेख में इन्होंने यह प्रस्तावना

की कि विद्यापति का मूक नाम बसन्त राय था । और उनके पिता का नाम ब्रह्मानन्द राय था । वे बाढ़ के बाह्यज और बघोहर बिले के कर्म बरके निवासी थे । राय कृष्ण मुखोपाध्याय ने १८७५ में 'बैंग इर्शन' में बीम्स की स्थापना का वर्णन करते हुए यह कहा कि विद्यापति बिबिका निवासी थे और राजा ध्रुव सिंह के समासक थे । अपने निर्वय में परिवर्तन करते हुए बीम्स ने इस निबन्ध का अङ्गरेजी रूपांतर १८७५ के Indian Antiquary में प्रकाशित किया । सन् १८८१ में प्रियर्सन ने Maithili Chrestomathy नामक ग्रन्थ में विद्यापति की बंशावली का प्रकाशन किया । नेपाल दरबार में हुज्जामुब मिश्र के 'ब्राह्मण सर्वस्व' की एक प्रतिलिपि प्राप्त हुई है । इससे विदित होता है कि ई० सन् १४६० में इस ग्रंथ के लिपिकार श्री कृष्ण ने 'सप्रक्षिप्त मुखोपाध्याय भिक्षु ब कुल कुमुदिनी के चन्द्र स्वल्प ब्रतिपत्र के निष्कट सिंह स्वल्प सन्वरित एवं पवित्र श्री विद्यापति महाशय के पास अध्ययन किया ।

विद्यापति के पिता गणपति ठाकुर राय गणेश्वर के समा पवित्र थे । परन्तु विद्यापति की बन्धुति और कर्म संबन्ध के विषय में ज्ञान प्राप्त करने का हमारे पास निस्वयम्भक्त साधन नहीं है । विद्यापति ने अपनी एक पद में देवसिंह की मृत्यु और देवसिंह के राज्याभिषेक का उल्लेख किया है । यथा—

अन्त रंजन कर लललल परबद्ध

सक समुद्र कर बकिनी सती ।

चेठ कारि छठि बेठा निबिजो

बार बेहण्ड बाइ कती ।

देव सिंह ब पुहुनी जहू

मडाका मुर राज सक ।

हुहु मुर ठाम निम्बे बब लोचन

तपन हीम बब तिबिर जक ।

× × × ×

१ निधुनाब—हरादित्य—कमौदित्य—देवास्त्रि बीरेश्वर—अकवत—
गणपति हरपति—रतिबर—रघु—विस्नाथ—पीठान्तर—बीज नामि—
तुका—एकनाथ—नैय्या—लजीलास—बहरी नाथ ।

(२०८)
 विद्यावह कइवर एहु मावय
 मागव-मन खानव मओ ।
 सिंहासन सिबसिंह बहट्टी
 उछनै बौरस बिहरि गओ ।

‘पुस्य परीसा’ का चन्द्र कवि कृत मैपिछी अनुवा ।

इस अंग में यह संकेत मिलता है कि कश्मिर संवत् २१३ याके १३२४
 १४०२ में देव सिंह की मृत्यु हुई, और सिबसिंह गद्दी पर बैठ । ऐसी धारणा है
 कि सिबसिंह उस समय ५० वर्ष के थे । विद्यापति सिबसिंह से दो वर्ष बड़े थे ।
 इस आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि विद्यापति का जन्म सन १३५० ई०
 में हुआ था ।

विद्यापति का सम्बन्ध ओइनवार बंध के राजाओं के साथ था । इनमें कीर्ति
 सिंह और सिबसिंह के साथ विद्यापति का विशेष स्नेह था । कीर्तिसिंह काव्य
 और नगा प्रेमी थे । कवि ने इसका उल्लेख ‘कीर्तिसत्ता’ में किया है । यथा—

येहे येहे कसौ काव्य भोटा तस्य पुर-पुरे ।
 देखे-देखे रस जाठा दाठा जगत दुर्लभ ॥
 भोतुजात बरौगस्य कीर्तिसिंह महीपते ।
 करोहु कबितु काव्य मय्य विद्यापति कवि ॥

‘कस्मियुम’ में यह-यह कवि हैं काव्य के भोटा नगर-नगर हैं । रसजाठा
 रस-रस में हैं, (परन्तु) जगत में दाठा दुर्लभ हैं । कीर्तिसिंह काव्य के भोटा
 रसमर्मज्ञ और वागशील हैं काव्य रचना में समर्थ हैं । विद्यापति उनके लिए
 काव्य-रचना करते हैं । ‘कीर्तिसत्ता’ की रचना तिथि के समय विद्यापति की
 वायु क्या थी, इसका संकेत नहीं मिलता है । कीर्तिसिंह के पिता राय मधोदर
 की मृत्यु तिथि का उल्लेख ‘कीर्तिसत्ता’ में मिलता है ।

कलखन सेन नरेस सिद्धिज जने पण्य पंचनै ।
 तं मनुमासहि पठम पण्य पञ्चमी कहिअने ।
 रजपुत्र असमान बुद्धि विरहम बसे हारन ।
 पास बहनि बिमबाति राए गणेश्वर मारन ।

‘जब सद्यस्य सेन संवत् का २५२^१वाँ वर्ष लिखा गया उसी वर्ष मधुमास के प्रथम पक्ष की पञ्चमी को राज-जोभी असहान ने बुद्धि, बल और विक्रम में राजा गणेश्वर से पराजित होकर, उनके निकट बैठ विस्वासघात कर उनकी हत्या करली’। इस संदर्भ से यह स्पष्ट है कि स० सं० २५२ या ई० सन १३६१ को गणेश्वर का बध हुआ। गणेश्वर की मृत्यु के पश्चात् ही कीर्तिसिंह ने अधिकार भार ग्रहण किया। इस युगा के समय विद्यापति की आयु पचाह्न वर्ष की रही होगी। इस आयु में ‘कीर्तिसत्ता’ ऐसी रचना के प्रणयन की सम्भावना ही नहीं हो सकती है। यदि विद्यापति के जन्म की प्रस्तावित तिथि को हम स्वीकार करते हैं तो यह निश्चय होता है कि कवि ने ‘कीर्तिसत्ता’ की रचना बहुत बाद में की होगी। ऐसा अनुमान किया जाता है कि ‘कीर्तिसत्ता’ की रचना के समय विद्यापति की आयु पचीस वर्ष की रही होगी। इसके लिए प्रस्तुत आधार दिए गए हैं। (क) प्रथमतः उन्होंने अपने को लेखन कवि कहा है—

एवं संपर साहस प्रमत्त प्रालम्ब कव्योदयां
पुण्यासि त्रिधाघातोंके तरणी कीर्तिसिंहो सुप ।
माधुर्य प्रसक्तस्वधी मुग्धयो विस्तार सिद्धा सबी
यावद्विस्मिरन्त लेखन कवेर्विद्यापते ।

विद्यापति ने इस अंश में अपने को ‘लेखन कवि’ कहा है। बाजोचकों की यह चारणा है कि सम्भवतः उनके लेख-कृत की आयु समाप्त होने के कारण उन्हें

१ श्री मनेन्द्रनाथ मुनि ने विद्यापति के पद में उल्लिखित छन्दनाम और सकारण को एकत्र कर समन्वित किए बिना ही लिखा है ‘स० सं० २८१ अथवा १४१२ में सिव सिंह बही पर बैठे’। ‘विद्यापति कथावली मृत्तिका पृ० २।

महामहोपाध्याय उमेश मिश्र ने सनका जन्म २४१ स० सं० (१३६०) मृत्यु स० सं० ३२७ स० सं० ३२७ (१४४६) के पश्चात् माना है। विद्यापति ठाकुर पृ० ४८।

लेखक कहते थे। परन्तु इस प्रकार के स्पष्टीकरण से वस्तु स्थिति का निरास सम्भव नहीं है। (२) द्वितीयतः तरुण सुसभ दम्भ प्रकाश करके उन्होंने इस काव्य की रचना में कहा है—वासुदेव और विद्यापति की माया—इन दोनों को दुर्बलों का उपहास नहीं लगता। वह वासुदेव परमेश्वर शिव के शिर पर घोमायमान होता है यह विद्यापति की माया निश्चय ही विरम्भ जनो को मोहित करती है। इस सम्बन्ध में यह कहा गया है कि तरुण-सुसभ दम्भ प्रकाशन हेतु ही इस प्रकार की छक्ति कवि ने की है। परन्तु यह निष्कर्ष बहुत वैज्ञानिक और मूल्यवान नहीं है। यदि हम सम्बन्धित सम्बन्ध के अनुसार इस संघ पर विचार करें तो स्थिति अधिक स्पष्ट होगी। विद्यापति संस्कृत के भाषार्थ थे। संस्कृत में उनकी अनेक रचनाएँ उपलब्ध हैं। शोक-जीवन के काव्य के लिए शोक माया ही अधिक उपयोगी होती है इस सत्य से वे परिचित थे। उस समय शोक माया में रचना करना विशेष साहस का काम था। यह ध्यान देने योग्य वच्य है कि 'राम चरित मानस' की रचना के समय मोक्षामी तुलसीदास के सम्मुख मायाविषयक यही इन्द्रावली स्थिति थी। 'कीर्तिस्तुति' की रचना के समय विद्यापति के सम्मुख सामान्य जनजीवन था। यही कारण है कि विद्यापति के लिए यह अपेक्षित हो गया कि शोक-माया में रचना करने के कारण का स्पष्ट उल्लेख करें। इस उल्लेख में उनकी विनम्रता आत्मविश्वास और लोकभाषा की अनिवार्यता के स्वर मुखरित हैं।—यथा,—

वासुदेव निजावइ भाषा ।

बुहु नहि सयइ दुजन हाता ॥

ओ परमेश्वर हर शिर सोहइ ।

ई निघइ नाबर मन मोहइ ॥

का परबोपबौ कवय मनाबनो ।

हिमि बीरस मय रस सय लाबनो ॥

पद मुरठा होइनु महु माया ।

ओ बुझिअ सो करहि पयसा ॥

मरमा बुझइ बुनुम रम कब कमाइ छल्ल ।

तजन पर ओबबार जन दुजन नाम मरम ।

सकल्य बापी बुद्धल मावह
पाठन रस को मम्म न पावह । २०।
शेसिक बमना सब जन मिट्ठा
तं तैसन बम्पओ बबहट्ठा ।

कीर्तिस्तता पट्टन १ ।

इस प्रकार यह ग्रीक आयु की रचना है। अपने पिता गणेश्वर की हत्या के प्रतिशोध के लिए कीर्तिसिंह को बोनपुर के मुख्याम इब्राहीम साह की सहायता लेनी पड़ी। यह १४०१-१४४० के मध्य बोनपुर का शासक बना। जब कीर्तिसिंह ने इसी अवधि में इब्राहीमसाह की सहायता प्राप्त की होगी। यदि इतिहास इसे प्रमाणित करता है, तो 'कीर्तिस्तता' की रचना विद्यापति न ५०-५१ वर्ष की आयु में की थी।

'कीर्तिस्तता' में वर्णित 'पद्म पम्पवे' के स्वरान्त स० सं० २५२ को जयसवाल ने बस्तीकार किया है। उनका कहना है कि यदि इसका वर्ष स० सं० २३२ छिया जाय तो गणेश्वर की मृत्यु सन १३७१ में हुई।

गणेश्वर की मृत्यु के पश्चात् कीर्तिसिंह ने असह्याग के विपरीत इब्राहीमसाह से सैनिक सहायता प्राप्त की थी। यह बटना सन् १४३३ की है। बोनपुर की स्थापना सन १३२४ ई० में हुई। इब्राहीम साह सन ई० १४०१-१४४० तक बोनपुर का शासक था। गणेश्वर का जब इसी अवधि में हुआ होगा। परन्तु 'कीर्तिस्तता' के अनुसार यह बटना १३७० ई० सन की है। जब जयसवाल का यह संकेत है कि समस्त संदर्भ पर विचार करने से विधियों में संनति नहीं बैठती है।

इस समस्या पर एक अन्य दृष्टि से विचार किया गया है। इसका उत्प्रेषण इस प्रसंग में आवश्यक है। कीर्तिस्तता में बोनपुर का जो वर्णन उपलब्ध है वह इस प्रकार है—

तं जाने पैसिखन नमर छो बोनपुर ठमु नाम
लोबन कैरा बट्ठा लच्छी के बिसराम ।

अर्थ

पैसिखनठ पट्टन बाद मेसस बजोत मीर पचारिबा
पासान कुट्टिम भीति भीतर छू उप्पर डारिमा ।

(जो नापुर) की मेसज को यमुना का पानी प्रासादित कर रहा था अथवा नगर जो यमुना के बच से प्रासादित था, सुन्दर देवता के समान लग रहा था। इस संदर्भ में आया हुआ नगर बोनपुर नहीं अस्तित्व दिल्ली है। 'कीर्तिचिह्न' बोनपुर के मुल्तास इब्राहीम शाह के निष्ठ नहीं अस्तित्व दिल्लीके पाषाण फिरोज शाह तुघलक के निष्ठ सहायता के लिए गये थे। 'कीर्तिछा' में 'इब्राहिम शाह' 'इब्राहिम शाहि' 'इमराहिमशाह' 'इमराहिमशो' आदि रूपान्तरों का प्रयोग मिलता है। यह व्यक्ति विशेष की अपेक्षा एक सम्प्रदाय विशेष की संज्ञा है। प्राचीन सन्दर्भों से भी इसकी पुष्टि होती है।

अस्ति कस्मिन् राजा सकेन्द्रो बभूवर्षि-
योगिनी पुरमात्माय यो भुङ्क्ते सकलां महीम्
सर्वं सागर पर्यन्तां वसी चक्रे नराधिपान्
महामुद मुर बाधो नाम्ना धुरो-निगमयतु ।

अथवा

भावीं मातृ पाप उन्मियारा, विवि नीमी जो मंगल वारा ।
नयत अस्मिनी मंगल चन्दा । पंच बना जो सग्न मन्दा ।
योगिनि पुर दिल्ली बड़ जाना । साह सिकन्दर बड़ मुसताना ।

ईस्वर बास 'सत्यवती कथा' । १३१८ ।

इस प्रकार कीर्तिचिह्न तुमलक की सहायता के लिए दिल्ली गये थे। इतिहास से यह सूचित मिलता है कि ई० सन् १३०२ में तुमलक मिलाया जाया भी था। उस समय कीर्तिचिह्न कुमारपालस्या में थे। इसका उल्लेख 'कीर्तिछा' में स्पष्ट मिलता है।

पामे अति दुमको कुमार
हरि हरि सबे सुमर । ६० ।

बाली छन्द (मध बहला) ।

ततो मे कुमारो पश्यत बजारी
अहि लप्य बोरा मर्जना हू रात्री ।

कीर्तिछा द्वितीयपट्टक ।

इस प्रकार की भारता प्रचलित है कि शिवसिंह की अनुप्रासना से विद्यापति ने 'पुरुष परीक्षा', 'गौरव विजय' और 'कीर्ति पताका' आदि कृतियों का प्रथम किया। शिवसिंह के पिता देवी सिंह की मृत्यु अगस्त संवत् २१३ तक सं० १३२४ (चैत्र कृष्ण पक्षी) को हुई, और उसी दिन शिवसिंह ने राज्यभार ग्रहण किया। शिवसिंह ने साढ़े तीन वर्ष (या तीन वर्ष २ महीने) तक शासन किया। सन् १४०६ के अगस्त महिषा पर बौद्धुर तथा बंगाल के मुखमन्त्रियों के आक्रमण हुए। पराजय की सम्भावना देखकर शिवसिंह युद्धभूमि से पलायन कर गए। इस प्रकार की अनुभूति महिषा में प्रचलित है कि शिवसिंह के पलायन के बत्तीस वर्षों पश्चात् विद्यापति ने शिवसिंह को स्वप्न में देखा। यथा—

सपन देखक हम शिवसिंह भूप
 बतिस बरस पर सामर रूप
 बहुत देखस गुरुजन प्राचीन
 बाब भेम्भूँ हम आमु बिहीन
 समुट समुट निम लोचन नीर
 करहु काक न राजनि नीर
 विद्यापति सुनति क प्रस्ताव
 त्याग के करुन रसक स्वभाव ।

इस प्रकार विद्यापति अपनी मृत्यु निकट देखने लगे। इसके अनुसार विद्यापति सन १४१७ तक जीवित थे। परन्तु इसके पश्चात् भी विद्यापति के जीवित रहने के यथेष्ट प्रमाण मिलते हैं। मैसूर दरबार पुस्तकालय में ब्राह्मण सर्वस्व नामक कृति की हस्तलिखित प्रतिलिपि सुरक्षित है। इसके मूल लेखक हतायुध मिश्र हैं। विद्यापति के एक छात्र स्वर्ण ने इसकी प्रतिलिपि की थी। सोमेश्वर ने मूल कृति से इसकी तुलना करके इसका पाठ-शोधन किया था। स्वर्ण ने अपने आचार्य विद्यापति के लिये श्री धर्म का प्रयोग किया है। प्राचीन काल में केवल जीवित व्यक्ति के लिए श्री धर्म के प्रयोग की प्रथा थी। स्वर्ण छ० स० १४७ सन १४६० में विद्यापति से सिता ग्रहण कर रहे थे। उस समय उनकी आयु ८० वर्ष से अधिक थी।

जों सहीहुदा ने सन १४९० तक विद्यापति का जीवन-काष्ठ-स्वीकार किया है। जों सुमत्र म्हा सन १४९१ ई० तक विद्यापति को जीवित रहना स्वीकार करते हैं। 'विद्यापति-प्रदावली' (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्) के सम्पादकों ने सन १४९० तक विद्यापति को जीवित रहना स्वीकार किया है। उन्होंने अपना निष्कर्ष देते हुए कहा है, 'बाह्यम सर्वत्र' के अन्त-उद्धरण के आधार पर निश्चित रूप से यह प्रमाणित होता है कि महाकवि विद्यापति सं० सं० १४९१ तक जीवित थे। परन्तु यहाँ भी विद्वानों ने सं० सं० को ईसवी संवत् में परिवर्तित करने में मूल की है। कारण पहले कहा जा चुका है कि विद्यापति ने 'अनन्त रत्न कर कल्याणन रत्न' एक समुह कर अग्रिमि सत्तो लिखकर लखनवाड़ा और सकार को एक मूख में पिरो दिया है, तथा अपने समय के लिए लखनवाड़ा का विवाद समाप्त कर दिया है। परन्तु उपर्युक्त विद्वानों का ध्यान इस ओर नहीं गया। अतएव किसी ने सं० सं० १४९१ को १४९० किसी ने १४९१ स्वीकार किया जो सर्वथा असंगत है। वास्तव में विद्यापति के अनुसार एक संवत् के साथ दिखाकर गणना करने से सं० सं० १४९१ में १४९० ई० होती है। (विद्यापति परावसी भूमिका पृ० १३)। अतः इनके अनुसार विद्यापति का जीवन काष्ठ १४९० ई० में समाप्त होता है।

विद्यापति ने अनेक पदों से नगरतगाह का उल्लेख किया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि विद्यापति का सम्बन्ध किसी न किसी रूप में नगरतगाह से था। परन्तु बिना नगरतगाह का उल्लेख विद्यापति ने अपने पदों में किया है उनके विषय में हमारे पास कोई स्पष्ट सूचना नहीं है। यथा—

बालन लोनुम बचने होतए हुसि

अग्रिम बरति अनि तरद पुनिम सति

अपन्न रूप रजोतना ।

बादने देलति मयराज पदनि मा ।

काजेर रज्जित बरत मयन बर

मदर मिश्रक अनि मयन बयन दल ।

आन मेक मोहि गौम रजोनि अनि

हुष निरि कल भरे मांसि जाणनि अनि ।

कवि शेखर भक्त अपभ्रंश रूप देखि

राज नसरत शाह मजलि कमल मुनि ।

नसरत शाह सन १५२१-१५२८ तक बंगाल के शासक थे । अतः यदि इस पर को हम विद्यापति की रचना मानते हैं तो विद्यापति का जीवन कास सन १५२०-१५२१ तक मानना पड़ेगा । इस प्रकार विद्यापति की आयु १७१ वर्ष की होगी । यह सम्भव नहीं लगता है । अतः यह पर आलोच्य विद्यापति की रचना नहीं लगता । यह पर 'राजतरंगिणी' में संकेतित है और इसकी समाप्ति 'इति विद्यापते' से हुई है । एक अन्य पर 'अब कवि शेखर' के नाम से मिलता है । यह पर भी नसरत शाह से सम्बन्धित है । अतः इस पर से भी विद्यापति की जीवनी के किमी अंश का स्पष्टीकरण नहीं हो पाता है । इसे आलोच्य विद्यापति की रचना स्वीकार करने में संकोच होता है ।

इस पर को सम्मुख रखकर विद्यापति की जीवनी पर एक अन्य दृष्टि से विचार किया गया है जो अधिक उर्ध्वसूक्त और वैज्ञानिक सम्यक्ता है । सन १५८८ में फिरोज शाह का पीप एंड फ्लेड्ड का पुत्र गंगासुरीन तुमकन (छिपीय) नदी पर बठा । पारम्परिक विमेर होने के कारण उसने शिवसिंह को बन्दी बनाया । शिवसिंह के मिता देवीसिंह ने उन्हें मुक्त कराने के लिए विद्यापति को दिल्ली भेजा । यह घटना १५९४-९५ की है । उस समय गंगासुरीन का माई नाडीसूरीन या नसरत शाह नदी पर था । विद्यापति ने नसरत को प्रभावित

शिवसिंह ने विद्यापति के संरक्षण में अपने परिवार को नैपाल की तराई में छतरी के राजा पुरादित्य 'मिरिणारावण' के पास राजबनौली भेज दिया । पुरादित्य के आग्रह पर विद्यापति ने छिन्ननावली की रचना की—सर्वादित्य तनूजस्य द्रोणवार महीपतेः । गिरिनारायणस्याहो पुरादित्यस्य पाण्डायन । अल्प भुक्तोपदेशाय कौतुकाय बहुमुदाम् । विद्यापतिस्मसांप्रीत्यै करोति । छिन्ननावली ।—छिन्ननावली, श्लोक १२ ।

विद्यापति ने 'छिन्ननावली' की रचना सन १५०८ में तथा 'भीमदुभागवत' की प्रतिक्रिया सन १५१८ में की थी । इस प्रकार अवश्य बारह वर्षों तक विद्यापति राजबनौली रहे । दिल्ली का शासन नहीं है शिवसिंह की पत्नी लक्ष्मी देवी करती रही ।

क्रिया । नसरत ने सिवसिंह को मुक्त किया । बादशाह नसरत ने विद्यापति को 'कवि राखर' की उपाधि दी । यही कारण है कि नसरत से सम्बन्धित पदों में विद्यापति ने 'कवि खेखर' का प्रयोग किया है ।

विद्यापति की आयु के निर्णय में नरसिंह देव के कलशाब्दादिग्रन्थों का भी उल्लेख किया जाता है । इसकी स्थापना 'मयास्त्रिण' नाम से सूर्य की प्रतिष्ठा हेतु हुई थी । इस उल्लेख का निम्नलिखित अर्थ व्याप्त होने योग्य है ।

पृथ्वी पति त्रिबहरो नव (विह-जा)-सी
बाधी बिपेत्त नपुंसकत्व कीर्ति राशि-

× × × ×

उमेठ मासे यकाये सदास्वमदगाहिठै मिरा
बुद्ध वारकीय चन्द्र इत्त वाकेतामिपछानि ।

अंशम नाम पति के अनुसार 'सदास्वमदगाहिठै' का अर्थ हुआ—
४८—१, अस्म=७, वरम=१३ अर्थात् १३०५ सकाब्द या १५२३ ई० । नरसिंह देव के द्वारा विद्यापति का बलिष्ठ सम्बन्ध था । इनकी संबंधी भीरपती के लिए विद्यापति ने 'बाल वाक्यावली' की रचना की । अतः इस अवधि में विद्यापति के जीवन चलने में संदेह नहीं होता है ।

विम विम विचारकों के अनुसार इन पृष्ठों में जो विवेकनाये हुई है उन्हीं हम सही निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने में सक्षम हैं । अध्ययन की पुष्टि की दृष्टि से विम विचारकों के मत का संक्षेप यहाँ प्रस्तुत है ।

महाबहोपाध्याय उमेश मिश्र विद्यापति का जन्म सं० सं० २४१ अर्थात् १३६० ई० के लगभग मानते हैं । अपनी स्थापना के लिए वे निम्नलिखित कारण देने हैं—

(क) विद्यापति के पिता वनपति ठाकुर महाराज यनेस्वर सिंह के समाधि स्थल : उनही जगह में वे अपने पुत्र की श्रद्धा करने लगे । महाराज यनेस्वर की मृत्यु १५२२ सन्मन्व संवत् में हुई थी । विद्यापति की आयु उस समय कम से कम १०-११ वर्ष की अवस्था रही होगी । वस्तु इस प्रकार के विषय के लिए विषयी कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं देने ।

(क)

राजगद्दी ।

की गारन

(ग)

की सिमि

मय बह

(विशिष्ट-

की

२३२ स

मिष्टापी

बर्ष की

की छा

हृद । २

हृद की

जगुमान

हुमा हं

४

सं० २

।

१३२)

भावेर

राम्य

की ।

पत्नी

१ १४१८ में शोमबर के अधिपति पुरावित्त के आग्रह में रावबगौली में इन्होंने 'सिक्तावलि' की रचना की।

७ १४२८ में 'मायक' की अनुकृति की।

८ १४३०-४० के बीच पद्म सिंह और सिक्तावली के नाम से एक पद्य और 'श्री सर्वस्वसार' तथा 'गंगा बागपावली' की रचना की।

९ १४४०-६० ई० के मध्य 'विमाय सागर' 'दान बागपावली' और 'पुष्पमणि वरमिणी' की रचना की।

१० सन् १४६० ई० में स्मृति के अध्यापक के रूप में ब्राह्मणसर्वस्व का अध्यापन किया।

आचार्य रामकृष्ण मुकुन्द ने अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में विद्यापति के समय का निर्धारण करते हुए यह कहा है कि विद्यापति सिद्धसिंह के अति निकट सम्पर्क में थे। सिद्धसिंह का राज्याभिषेक सन् १४०३ के लगभग हुआ। अतः विद्यापति की जन्म तिथि १३६०-६३ के मध्य निर्धारित होती है।
विद्यापति की रचनायें

(क) कीर्तिछा — इस कृति की भाषा 'अबहुत' है जिसे विद्यापति ने 'बेसिम बगना' कहा है।^१ अलतान ने कीर्तिसिंह के पिता राय कयेस्वर की इरफा कर सिद्धि पर अधिकार कर लिया। कीर्तिसिंह और बीरसिंह ने जोनापुर के मुस्तान की सहायता से अलतान से विद्रोह का प्रविषोष किया तथा सिद्धि का बहार किया। यही इस कृति की कथा है। काम्य-रूप की दृष्टि से यह प्राकृत-अपभ्रंश के चरित कान्धों की परम्परा की कृति है।^२ विद्यापति ने इसे 'पुष्प कहानी' कहा है—

१ सकल बापी बुझन जावह।

पाठ अरु को मम न पावह।

देखि बगना सब जन मित्र।

त तैसन बगनी अबहुत।

कीर्तिछा प्रथम पदम् ।

२ 'इस प्रबंध में ध्यान देने की बात यह है कि विद्यापति की कीर्तिछा में उक्त समय के देस भाषा साहित्य के गुणानुसार मूलक चरित-कान्धों के अनेक लक्षण मिलते हैं यह पुस्तक उक्त युग के गुणानुसार मूलक चरित कान्धों में सब से अधिक प्राथमिक है। हिन्दी साहित्य का आदिकाल। पृ० ६४।

(क) विद्यापति के प्रधान आश्रयदाता शिवसिंह ५० वर्ष की अवस्था में राजगढ़ी पर बैठे। अतः सनका जन्म २४३ सन्मम संवत् में हुआ। यह भी सोचो की वारणा है कि कवि विद्यापति उनसे दो वर्ष बड़े थे।

(ग) 'कीर्तिकाव्य' में विद्यापति ने अपने को 'शेखर कवि' कहा है। अतः वे कीर्तिसिंह और कीरसिंह की वास्यावस्था के साथी (शेखर के योग्य) रहे होंगे। अतः यह अनुमान होता है कि विद्यापति २३२ सन्मम संवत् में १० वर्ष के थे। (बेसिए—विद्यापति ठाकुर पृष्ठ—४६ ४७)।

श्री गोनगाव और शिवनन्दन ठाकुर के अनुसार विद्यापति का जन्म काल २३२ सन्मम संवत् या १३६१ ई० है। उनकी प्रस्तावना है 'किंवदन्ती है कि विद्यापति शिवसिंह से दो वरस बड़े थे। राष्ट्रामिषेक के समय उनकी आयु २० वर्ष की थी। इस किंवदन्ती के अनुसार २३३ सन्मम संवत् में विद्यापति की उम्र ३२ वर्ष की थी और उनकी मृत्यु ६० वर्ष की उम्र में हुई। उनकी प्रथम पुस्तक 'कीर्तिकाव्य' की रचना २३२ सन्मम संवत् के समय हुई थी। इस समय विद्यापति कम से कम बीस वर्ष के रहे होंगे। इस प्रकार अनुमान से मालूम पड़ता है कि विद्यापति का जन्म लगभग २३२ सन्ममसंवत् में हुआ होगा। (बेसिए—महाकवि विद्यापति पृष्ठ ३८ ३९)।

डॉ० निजानविहारी मजूमदार के अनुसार विद्यापति का जन्म-समय स० सं० १६१ (१३८० ई०) है। अपने निर्णय के लिए वे निम्नलिखित कारण देते हैं —

१ बबामुद्दीन और नसरत शाह-सम्बन्धित पदों की रचना विद्यापति ने १३६३ ६६ के मध्य की थी।

२ सन् १४०० ई० के लगभग विद्यापति ने नैमिवारण्य निवासी देवीसिंह के आदेश से 'भू पञ्जिमा' की रचना की।

३ १४०२ १४०४ ई० के मध्य इब्राहीम ने कर्तिसिंह को मिर्जा का राज्य दिया। उसी समय विद्यापति ने 'कीर्तिकाव्य' की रचना की।

४ १४१० ई० में विद्यापति के आदेश से 'काव्य-प्रकाश विवेक' की टीका की गई।

५ १४१० १४१४ ई० के मध्य शिवसिंह के राज्यकाल में उन्होंने दो सौ पदों की रचना की।

६ १४१८ में होम्बर के अधिपति पुराहित के आश्रय में राजकीर्ती में उन्होंने 'किष्किनाथकि' की रचना की।

७ १४२८ में 'माकस' की अनुकृति की।

८ १४३०-४० के बीच पद्म सिंह और विस्वास देवी के नाम से एक लक्ष और 'श्री स्वस्वतार' तथा 'बंन बास्याबड़ी' की रचना की।

९ १४४० ई० के मध्य 'विभाग धार', दास बास्याबड़ी और 'दुर्गायति तरंगिणी' की रचना की।

१० सन् १४६० ई० में स्मृति के व्यापक के रूप में बाह्यस्वस्व का व्यापन किया।

बाबाई रामचन्द्र धुल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में विद्यापति के समय का निर्धारण करते हुए यह कहा है कि विद्यापति क्रिस्तिह के अठि शिकट वर्षों में थे। क्रिस्तिह का राज्याभिषेक सन् १४०३ के सम्मेलन हुआ। अतः विद्यापति की जन्म तिथि १३२०-२३ के मध्य निर्धारित होती है।

विद्यापति की रचनाएँ

(क) कीर्तिलता — इस कृति की भाषा 'अवहट्ठ' है जिसे विद्यापति ने 'देसिल बज्जा' कहा है।^१ अवहट्ठ ने कीर्तिसिंह के पिता राम गम्बर की हत्या पर विमर्श कर बिकारा कर लिया। कीर्तिसिंह और बीरसिंह ने बोनपुर के मुठान की लड़ाई से बज्जान से भिन्न का प्रतिशोध लिया तथा विमर्श का उत्तर दिया। बड़ी इस कृति की रचना है। काव्य-रस की दृष्टि से यह प्राकृत-जगन्नाथ के अति काव्य की परम्परा की कृति है।^२ विद्यापति ने इसे 'पुष्प कहानी' कहा है—

१ लक्ष्म बाबी मुहम्मद जादद।

पाउँल रस को मन्त्र न पावइ।

देसिल बज्जा ठह जग सिद्ध।

तं लैल बज्जी अवहट्ठ।

कीर्तिलता प्रथम वस्त्र।

२ 'इन प्रबंध में क्या है की बात यह है कि विद्यापति की कीर्तिलता में उस समय के देश भाषा साहित्य के सुमानुवाद मुक्त चरित-काव्यों के अनेक लक्षण मिलते हैं, यह पुष्ट हो उस युग के सुमानुवाद मुक्त चरित काव्यों में एक के अतिरिक्त बाकी है। हिन्दी साहित्य का आधिकारिक। पृ० ६४।

पुष्प कहाणी हौं कहूँ बसु परपावे पुन ।

सुनत सुभोजन सुमनजन देवता बाद सुपन ।—कीर्तिछता—प्रथम प्रस्तव ।

इस प्रकार 'कीर्तिछता' एक ऐतिहासिक चरितकाव्य है । अपभ्रंश चरित काव्यों के कतिपय तरह इस कृति में उपलब्ध हो जाते हैं । थोटा-बक्का के माध्यम से कथा कहूँ की परम्परा अपभ्रंश चरित-काव्यों की प्रमुख विधा है । इसका उल्लेख पिछले पृष्ठों में हो चुका है । 'कीर्तिछता' में भी कथा थोटा बक्का की बाती के माध्यम से प्रस्तावित और विकसित है । भूमी प्रस्त करती है और उत्तर में भूय कथा कहता है । तथा

‘भूमी पुष्पद भिय सुन की संसारहि सार’ ।

भूय उत्तर देता है—‘भामिनि बीजन मानसबो बीर पुस्त बख्तार’
अर्थात् ‘भामिनि ! मान के साथ बीजित रहना और बीर पुस्त का जन्मलेना ।’
भूमी(पुनः) निन्नासा करती है—‘बीर पुस्त कह बमिजद नाह न बम्पद नाम,
नह सँझावे फुर कहसि हजो बाकबुदन काम’—नाम यदि कहीं बीर पुस्त बम्पा
हो तो आप नाम क्यों नहीं केते ? यदि कस्ताह पूर्वक कहैं तो मैं सुनकर रुत
होऊँ ।’ भूय पुनः उत्तर में कहता है—

पुस्त हुजुर्त बकिरावे बासु कर कम पसीज

पुरिस हुजुर्त रकुतनज केन बसे रावण मारिज ।

पुरिस मगीरज हुजुर्त केने बिम कुछ छडरिज,

परसुराम बर पुरिस केने कतिज कम कजिज ।

अब पुस्त परमसो राय सुद किर्तिसिंह बजबेसुज

जे सपु सगर सवहि पसव्य बीर छडरिज बुज ।

‘पुस्त राजा बलि हुए, जिनके जाये विष्णु ने हाथ फँकाया । पुस्त रामचन्द्र
हुए, जिन्होंने शक्ति से रावण का वध किया । पुस्त राजा मगीरज हुए जिन्होंने
अपने क्रुद्ध का छटार किया । परसुराम पुस्त ने जिन्होंने शत्रुओं का नाश किया ।
और पुस्त राजपेष्ट मनेसर के पुत्र कीर्तिसिंह हैं जिन्होंने शत्रुओं का नाशमर्ग
कर मुद्धमूमि में अपने पिता का प्रतिशोध किया । इसके परचाय कथाक्रम से
चलती है । द्वितीय सूचीय और अनुबं प्रस्तवों में क्रमशः इसी रूप में भूमी प्रस्त करती

है, तथा उत्तर में खुद कहा कहता है। इसके परचातु कवि सम्मेलन प्रसंसा और दुर्जन निन्दा करता है।

ते मोघ भक्तमो निरुद्धि गए महसमो कल
बल खेका सुत दुसिहूद मुखन परसह सल

× × ×

बनसजो बिसहर निरु नमद अमिज निनुकह बल
सम्मान बिसह मनहि बने निरु करिज सब कोए
मेम भङ्गना नुगह बह दुम्मान बौर न होए।

'यदि मेरा साधारण काव्य क्याति प्राप्त करते तो वह मेरा लीलाव्य है
जब इसे लीला-कौमुद की वस्तु समझ कर इसकी निन्दा करने। मुखन इसकी
प्रसंसा करने। निपहार निप अङ्गलित करता है। बलवत्ता समुत्त बपरी करता है।
सम्मान सब को निरु समझ कर सब की धुपकामना करता है। मेरी मुक्ति का
अनुधाटन करने वाला दुर्जन मेरा शत्रु नहीं है।'

'कीर्तिष्ठा' में पद्य के अतिरिक्त पद्य का प्रयोग भी किया गया है। अतः
इसे संस्कृत के पद्य काव्य के सम्बन्ध की दृष्टि भी कह सकते हैं। अथवा इसके
रोहा, एता, कपल छन्दों के अतिरिक्त इसमें कीर्तिष्ठा, मुर्जन प्रपाठ, आदि छन्दों
का प्रयोग हुआ है। इस दृष्टि में संस्कृत और प्राकृत के मेल भी मिलते हैं। इन
दृष्टियों से यह आधिकारीय साहित्य की प्रतिनिधि रचना है।

अपनी रचना के अन्तर्गत काव्यों की अपेक्षा 'कीर्तिष्ठा' पूर्णरूप से
इतिहासचरित्र है। युद्ध का साक्षात् जीवन इस दृष्टि में प्रतिबिम्बित
है। राम कनेवर की मृत्यु के परचातु विविता में अन्धबन्धा जायई। इसका
कलेत्र दल अंत में मिलता है —

अनुद एक गए नेता बोरें कपूरि बर स्तिमज।
दान नीमजनि पहिअ बग्न मग्न पन्थ सिमजिज।
अक्यर रम दुग्गनिहार गदि कं दुल मनि विगारि मर।
विधुति निरोद्धि वल गुणे रा पन्थ बने लण गदें ॥

मनेस्वर की हत्या के परचातु बसन्तान को परिचाप हुआ । उसने मनेस्वर का राज्य उनके पुत्रों को देना चाहा । परन्तु सत्रु की हत्या ने अपनी प्रतिष्ठा नहीं मानते थे । माता मंत्री तथा अन्य गुरुजनों ने राज्य को स्वीकार करने का उपदेश दिया, परन्तु राजकुमारों के सम्मुख एक मार्ग था—

माता भजह ममतामह मन्त्री रजह नीति ।

मगधु मिहारी एकक पह बीर पुरिस को रीति ।

मान किहूना भोजना सतुक देवस राज ।

सरज पइठे बीसला तिमिठ काबर काज ।

‘कीर्तिसत्ता’ आदिकाशीन साहित्य में बीर काव्य-आरा की प्रतिनिधि रचना है । विद्वानोंने इसे विद्यापति की प्रथम रचना के रूप में स्वीकार किया है । परन्तु काव्य-रूप, अधिव्यञ्जना प्रभावी और भाषा के आधार पर यह कवि की प्रौढ़ कृति है ।

(स) कीर्तिपताका कीर्तिसत्ता के समान यह कृति भी महाभट्ट की रचना है । इसकी एक खण्डित प्रति नैपाल दरबार पुस्तकालय में सुरक्षित है । अतः इसके सम्पूर्णरूप पर विचार करना सम्भव नहीं लगाया । इस कृति का मुख्य संदेश छवि सिंह का कीर्तिवर्धन सक्तता है । संस्कृत श्लोक के अतिरिक्त इसमें नव के अंश भी मिलते हैं । शिव तथा मनेछ की बन्ना के परचातु कृति आरम्भ होती है—

पण्डित मण्डकि बडवुषे भीषय कीर महेन ।

बाभी महुन महुन रस रिजठ सुजन सबहेन ।

कवि ने छवि सिंह का मद्यवर्धन बिन पंक्तिओं में किया है समस्त एक अंश यहाँ दिया जाता है—‘बम्म ऐसी व्यवहार लोक नहि, नहु पर केव । सबको बर ठग्याह पकटि बनि बन्मिब । बाहर बाने इन्ह । बारिह सगोपरि पडी सन्मिब ।

” इस रचना में श्रुतार कतिपय का आकर्षक है । मद्यवर्धन के परचातु निम्नलिखित अंश है—

एवं भीतिवसिह देव रूपते सज्जाम्भारत यतो

मापन्ति प्रतिपत्तनं प्रतिविष्टं प्रत्ययनं सुमुख ।

(ग) गोरखविजय : यह एक अंक की नाट्य कृति है । इसके कथोपकथन संस्कृत और प्राकृत में हैं । नील मैमिनी में हैं । इस कृत की मूळ भाषा भूमि गोरख-मत्तवेन

कथा है। सर्वनामी अष्टावर की कथा से नाटक का आरम्भ होता है। इसकी एक मात्र उल्लिखित प्रति मैसाल-बारबार-पुस्तकालय में सुरक्षित है। बारह पत्रों में यह प्रति लिखित है। उनमें १-७ संख्या के पत्र नहीं हैं। ८, ९, ११, १२ पत्रों में एक-एक पंक्ति ही है। (देखिए विद्यापति परावली, पृ० ७३)।

'सूर्यकिर्मा' 'पुस्तक परीक्षा' 'सिद्धनामनी', 'देवसर्वस्वधार' 'दानवाक्या-वली' 'सूर्य मणि तरंगिणी', 'महापराक्रम' 'वर्षहृत्प' 'अभिषेकवली' आदि विद्यापति की संस्कृत की रचनाएँ हैं। 'सूर्यकिर्मा' की रचना देवसिंह की माता से मैसालारूप में हुई। 'पुस्तक परीक्षा' 'पञ्चमर्तन' और 'हिन्दोपदेश' आदि के सम्बन्ध की रचना है। इस ग्रन्थ का प्रथम स्वसिंह की प्रेरणा से हुआ था। 'सिद्धनामनी' में पत्र-चैतन्य बरिपाटी का आदर्श प्रस्तुत किया गया है। 'देव सर्वस्वधार' की रचना मधुसिंह की पत्नी विस्वासेवी की अभिषेका से हुई। 'पंचा दानवाक्य' में ब्रमा के स्मरण-कीर्तन से सम्बन्धित रचनाएँ हैं। 'सूर्यमणि-तरंगिणी' में सूर्योत्थन सम्बन्धी रचनाएँ हैं। 'वर्षहृत्प' में पर्वों का विधान है। 'अभिषेकवली' एक नाटिका है।

(५) परावली — विद्यापति के परावलीग्रन्थ में प्रचलित है। परावली काव्य में विद्यापति की माया-सौखी के अनुसरण पर अनेक पदों की रचना हुई है। अतः इन पदों में से विद्यापति के पदों को पृथक् कर लेना सरल नहीं है। विद्यापति के परावली लोककण्ठ से संरक्षित हैं। मैसाल और विपिना से जो प्रतिष्ठा उपलब्ध हुई है उसका अनुलेखन विद्यापति के अनेक पदों पर पाया हुआ है। अतः इन पदों की माया और उनके स्वयं में अनेकप्रकार मिलती है। परन्तु कविपद हस्तलिखित प्रतियों प्राचीन हैं, तथा इनके आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि इनके लिपि-रक्षक करने की योजना विद्यापति के निष्ठ-परावली काल में हुई होगी। इन पदों में माया का प्राचीन रूप भी उपलब्ध हो जाता है। नीचे मूलग्रन्थों अथवा और सम्पादकों का उल्लेख किया जाता है।

(६) मैसाल परावली — यह परावली मैसाल बारबार पुस्तकालय में सुरक्षित है। इसकी लिपि प्राचीन मैसाली है। इसमें विद्यापति के अतिरिक्त अन्य कवियों के पर भी संरक्षित हैं। अनेक पदों में किसी कवि के नाम का उल्लेख नहीं मिलता है। जो कुछ भाग में इनके आधार पर 'विद्यापति वीनि लय'

(Or The Songs of Vidyapati Motilal Banarasi Da. १९१४), का सम्पादन किया है। इनके पूर्व नगेन्द्रनाथ भुत और खड्गेबन मिश्र तथा बिमानबिहारी मजूमदार ने भी विद्यापति-पदावली का सम्पादन किया है।

(क) विद्यापति के पदों का एक संकलन 'राममठ-पदावली' के नाम से विख्यात है। राममठपुर (बरभंगा) से प्राप्त होने के कारण यह प्रति इस नाम से विख्यात है। यह प्रति अश्विष्ठ है। पत्र संख्या १० के पूर्व का अंश उपलब्ध नहीं है। अन्तिम पत्र की संख्या १२१, और अन्तिम पत्र संख्या ४१८ है। (ग) विद्यापति के पदों का एक संग्रह 'तटैनी-पदावली' के नाम से विख्यात है। नगेन्द्रनाथ भुत ने अपने सम्पादन में इसका प्रयोग किया है। मैसूरी कवि सीतल कृष्ण 'रायतरंगिणी' में विद्यापति के ११ पत्र संकलित हैं। 'विद्यापति-पदावली' के प्रथम सम्पादक नगेन्द्रनाथ भुत ने अपने संस्करण में इन पदों का प्रयोग किया है।

महाप्रभु चैतन्य के अनुयायियों ने कीर्तन के रूप में विद्यापति के पदों को विस्तार दिया है। वैष्णव पदावलिओं में विद्यापति के पदों के कुछ न कुछ अंश उपलब्ध हो जाते हैं। 'पदामृत समुद्र' 'पदकल्पतरु', 'संकीर्तनामृत' तथा 'कीर्तनात्म' आदि संग्रहों में विद्यापति के पद उपलब्ध हो जाते हैं। परन्तु वैष्णव पदावलिओं में उपलब्ध विद्यापति के पद नेपाल या मिथिला की प्राचीन पांडुलिपियों में नहीं मिलते हैं।

विद्यापति के पदों का भावपक्ष

विद्यापति के पदों की मुख्य संवेदना 'शुक्लार-गुच्छ' है जिसमें शुक्ल रात्रिका लौकिक आत्मजन के रूप में ही प्रकीर्ण है। बाह्य-लोकोत्तरी शताब्दी में शुष्क-काव्य में एक नवीन भावधारा की उद्घाटना अयदेव द्वारा हुई। अयदेव के 'गीतपोथि' में राधा-शुक्ल की प्रेमलीलायें लौकिक बरातक पर प्रस्तुत हुई हैं। इन पदों की परम्परा संस्कृत में नहीं मिलती है। यह अप्रसन्न-अबहुत काव्य में विकसित लोककाव्य-रूप है। अयदेव ने संस्कृत में इस लोक-काव्य-शैली का अभिनव प्रयोग किया है। अठ बीति प्रिय की दृष्टि से अयदेव समस्त आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के साहित्य के आदि कवि हैं। अयदेव की राधा-शुक्ल विषयक

१ अयदेव बाह्य-लोकोत्तरी शताब्दी उत्तरार्ध में हुए थे। ये बंगाल के मेन बंस के अन्तिम राजा लक्ष्मण सेन के राजकवि थे।

गीति कविता का अग्रगण्य ग्रन्थ कर दिखी, बंधन, मैत्रिकी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में राधा-कृष्ण सम्बन्धी गीति कविता-धारा प्रस्तुति हुई ।

इस दृष्टि से विद्यापति के काव्य में राधा-कृष्ण सम्बन्धी भावना का जो स्वस्म मिश्रता है उसकी एक पूर्ण परम्परा है । इनके पदों में कृष्ण-रासिका के अलौकिक स्वस्म का भंग्य है । इस प्रकार की निरवधारक भारवा बनाने में हम असमर्थ हैं । परन्तु हम इतना विश्वास के साथ कह सकते हैं कि विद्यापति का काव्य एक पूर्ण परम्परा का विकसित रूप है जिसका बराबर सर्वथा लौकिक है । वेदमय धर्म, दर्शन और साहित्य में भी राधा-कृष्ण की प्रेमलीलाओं के वर्णन का एक निश्चित रूप मिश्रता है । आकस्मिक मत्तों के नीचों में भी कृष्ण रासिका की प्रणय संवेदना का मान मिश्रता है । साय-ही-साय हाक के संकल्पन 'गाहा सत सई' में राधा-कृष्ण की प्रेमलीलाओं से सम्बन्धित अंश मिलते हैं । 'कवीश्वर वचन समुच्चय' में राधा-कृष्ण विषयक कतिपय पद संछेदित हैं । इन पदों में व्यञ्जित भाव, रस और अभिव्यञ्जना विधा के दर्शन हम परमर्त्य काव्य में केवल विद्यापति में ही नहीं बल्कि उनके परचात् के अन्य कवियों में भी पाते हैं—उदा०

कौश्लं हारि हरिः प्रयासु पवनं साक्षामृतेनात्र किं
 कृष्णोऽहं दयिते विमेषि सुतरां कृष्णं कथं वातर ।
 मृषेऽहं मधुसूदनो ब्रज कटां ठामेव पुष्पासना—
 नित्यं निर्वचनी कृतो दयितया ह्रीनो हृदि पातु व ।

वर्षाद—हार पर कौन है 'हरि' (कृष्ण, बन्दर) । 'उपवन में जाओ साक्षा मृग की यहाँ क्या आश्चर्यकृत है ? 'हे दयिते । मैं कृष्ण हूँ । अतः और भय क्या रहा है, कवि कृष्ण कहीं कैसे हो सकता है ? 'हे मृषे, मैं मधुसूदन हूँ (मधु कर हूँ) 'अतः पुष्पित कटा के पास जाओ' । शिवा के पास इस प्रकार निर्वचनी इस होकर अजित हरि हमारी रक्षा करें । इसके अतिरिक्त अनेक ग्रन्थों में रासिका-कृष्ण की प्रणयलीलाओं से सम्बन्धित पदों में पार्श्वीय शृङ्गार का रसात्मक स्वरूप प्रत्यक्ष होता है ।

मयान्धरो भूर्न । व सन्नि नितिकामेव रजनीम्
 बहु स्थापन स्थापिति निपुण मयामयिस्तु ।

न दृष्टो माय्यीरे तटमुचि न गोवर्धनमिरे

न काश्मिन्दुया (कूट) न च निबुल कुञ्जे मुरगिषु ।

अर्थात् सन्नि मीने सम्पूर्ण निष्ठा उस धूर्त की खोज की—वह इस स्थान पर हो सकता है उस स्थान पर हो सकता है । निःसन्देह उसने अन्य गोपी के साथ अभिसार किया है । मुरगिषु को मीने बट कुल के नीचे नहीं देखा काश्मिरी के कुल पर भी नहीं देखा केतस कुल में भी नहीं देखा । इस प्रकार लीलाशुक दिस्वर्गमल ठाकुर की कृति 'कृष्णकव्चीमृत' नामक ग्रन्थ में राधा-कृष्ण की प्रणय लीलाओं का बर्णन कौकिल बरातल पर मिलता है । बाण्डवी छताव्दी में भीमरदास की कृति 'सद्युक्तकव्चीमृत' में कृष्ण-राधा की प्रणय सम्बन्धी रचनायें हैं । विद्यापति पर इन दोनों ग्रन्थों का प्रमाण परिलक्षित है । इनके अतिरिक्त जयदेव के काम्य में कृष्ण नायक और राविका नायिका के रूप में प्रतिस्थापित हैं । यही यही, जयदेव के समकालीन अन्य कवियों में भी इसी प्रकार की भाव भूमि मिलती है । जमापतिवर हरण गोवर्धनाचार्य आदि समकालीन कवियों में एक ही प्रकार की भावभारा मिलती है । उदाहरण के लिये जमापतिवर से एक अंश यहाँ प्रयुक्त किया जा सकता है—

छबुल्लिचकने कयापि नयनोन्मेषे कयापि स्मित—

ज्जोत्स्नाविष्णुरिते कयापि निद्रितं सम्भावितस्याप्यनि ।

बर्षोद्भवेदहस्तावहैलवितयभीमाशि पञ्चामने

छाँठ कानुमयं जयन्ति पतिषा कंसद्विषो दृष्टय ।

कटिपय गोपी मौहो छे, कटिपय गोपी नयनो छे कटिपय गोपी मुस्कान की चम्रिका प्रसारित कर कृष्ण का स्वागत कर रही है । 'कबीर बचन समुच्चय' में और 'सद्युक्तकव्चीमृत' में अनेक सन्दर्भ मिलते हैं, जिनमें राधा-कृष्ण की प्रणय लीलाओं के सन्दर्भ में बचन-मंगिमा के उदाहरण हैं ।

कस्सं जो निधि केसव सिरसिबै कि नाम गर्वामे

मर घीरिछाँ कुनै पितुवत पुनस्य कि स्वाधिह ।

चट्टी बन्धमुली प्रयच्छसि न मे कुराही बटी रोहिणी—

मिस्व गोप बहूहितोरतया दुतस्योः हरि पातु वा ।

अर्थात्, 'इस निविड़ निगा में तुम कौन (बाएँ) हो' ? उत्तर, मैं केन्द्र हूँ
'(केन्द्र मुक्त) केन्द्रों के हेतु अभिमान क्या ? 'सुमुखि मैं दूर हूँ' । (स्लेप—गुरु का
पुत्र) 'यहाँ पिता के पुत्र नाम से पुत्र का क्या हित, 'हे कन्द्रमुखी मैं बन्दी हूँ
(स्लेप—कुम्भ कार) 'तुम्हारे तुम मुझे घट दुग्ध-नाम क्यों नहीं देते ?' गोप-बन्धुओं
के उत्तर से विभिन्न कृष्ण तुम्हारी रक्षा करें । इस प्रकार आत्मीय छायांनी तक
प्रेमबलक और शृंगार प्रधान कविताओं में राधाकृष्ण लौकिक आनन्दजन के
रूप में ही ग्रहण किये गये । विद्यापति के पदों में इसी मूल भावना को ग्रहण
किया गया है । इस प्रकार की कवन संश्लेषा विद्यापति के पदों में भी मिलती है ।

चित्त परम्परा की कथा हम कर रहे हैं उसमें राधाकृष्ण सम्बन्धी पदों में
आध्यात्म का स्वर ही प्रधान है, इस प्रकार के निर्णय में संकोच होता है । 'कृष्ण
कर्णामृत' में बर्ण भावना के दर्शन यत्र-तत्र मिल जाते हैं परन्तु अपरेख के 'गोप
योनिज' में इस प्रकार की भावना नहीं मिलती है । अपने काव्य के प्रारम्भ में
अपरेख ने कहा भी है —

यदि हरिस्मरणे सरस मनो

बदि बिकास कलागु कुतूहलम् ।

मधुर कोयल कात पदावली

शृंगु तया अपरेख सरसवीम् ।

'यदि हरि-स्मरण से मन सरस-मुक्त रहना चाहते हैं, तथा यदि बिकास-कलाओं
के प्रति उत्सुकता हो तो अपरेख की भावना की कोमलकाव्य पदावली सुनें ।'
तार्क्ये यह कि अपरेख में 'विकास-कलागु-कुतूहलम्' की भावना ही अति वेग
वान है । विद्यापति के काव्य में भी 'विकास-कुतूहल' की भावना की प्रकृति है ।

अतः अपनी पूर्व परम्परा के अनुसरण में ही विद्यापति की भावनाओं
ने गुण रूप धारण किया है । इस प्रकार विद्यापति के काव्य में राधा-कृष्ण के प्रेम
की भावना का विकास अपरेख के नाट्यम से ही हुआ प्रकट है । इनमें आध्या-
त्मिक या अलौकिक व्यष्टि के निररीत लोक जीवन में शृंगार लीलाओं
को आदर्श पदार्थ की संस्थापना मिलती है । राधाकृष्ण की शृंगार-लीलाओं
के नाट्यम से आध्यात्म व्यष्टि की प्रत्यक्ष एवं शृंगार भावना के अंतर की प्रकृति
'अवकाशक' और 'पाहा सत्तर्क' में अतिविश्लेष मिलती है । अतः संश्रुत

और मोहल वाङ्मय की समग्रता को आत्मसात् करते हुए विद्यापति ने राधा-
हृन्मय से सम्बन्धित पदों की रचना की है। श्रुति-मार्ग भाषना की दृष्टि से विद्यापति
के पदों को तीन वर्गों में विभक्त करते हैं।

(१) प्रथम वर्ग के अन्तर्गत वे पद आते हैं जिनमें परकीया प्रेम निरूपण की
बंछा मिलती है। राधा इन पदों में परकीया के रूप में गृहीत है।

(२) द्वितीय वर्ग में भागवत प्रेम सम्बन्धित पद आते हैं। आलोचकों की
यह धारणा है कि विद्यापति के काव्य की मूल भावना इन्हीं पदों में व्यक्त है।

(३) तृतीय वर्ग उन पदों का है जिनमें आध्यात्मिक प्रेम का वर्णन है।
इस वर्ग में विद्यापति को भक्त कवि के रूप में ही देखा गया है। प्रियसंग ने^१
विद्यापति की विवेचना एक भक्तकवि के रूप में ही की है। विद्यापति के काव्य
की विवेचना के अन्तर्गत्त में मोक्षदायक बुद्ध ने विद्यापति के पदों में राधा और कृष्ण
को बीजात्मा और परमात्मा का प्रतीक माना है। विद्यापति के निम्नलिखित
पद की व्याख्या के पश्चात् वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं—

रबलि काजर बस भीम मुबंणम

कुल्लि पड़ए पुरवार ।

मरब तरब मम ऐसे बरिब बग

संसय पड़ बरिसार ।

बल बैबल फलि, हित कब मानस बलि

नेपुर न करए रोड ।

सुमुखि पुषी तोहि, सख्य कहसि मोहि

सिनेह कएए दुर बीच ?

इस अंश में वर्णित पद की व्याख्याओं को आलोचक ने आत्मा के सम्मुख
सम्बन्धित सांसारिक बाधाओं का प्रतीक माना है। परन्तु इस प्रकार के विस्तार

1 But his (Vidyaptis) chief glory consists in his matchless sound (Padas) in the Mathuri dialect dealing allegorically with the relation of soul to god under the form of love which Radha bore to Krishna—Modern Vernacular Literature of Hindustan pp. 910

से वस्तुस्थिति का स्पष्टीकरण सम्भव नहीं है। वस्तुतः बहु अभिसारिका का वर्णन है। इस प्रकार के वर्णन में अध्यात्म के दर्शन की भावना आरोपित वस्तु होती है। अभिसारिका वर्णन के सन्दर्भों में प्राचीन कवियों में निरन्तर इस प्रकार की भाव प्रकीर्णता मिलती है। ऐसे अनेक सन्दर्भ मिलते हैं, जिनमें अभिसार के लिये उत्सुक राधा (नामिका) अनेक विघ्न-बाधाओं का अतिक्रमण करती है। यथा—

मार्गे पकिनि लोबहाम्पतमसे निःसम्ब संचारकं
गन्तव्या दयितस्य मैत्र्य वसन्तिर्मुपे चेति हृत्वा मतिम् ।
बाबागुप्तमुपुरा कल्लतेनाभ्यास मेमे भूयं
कृष्णास्तम्बपरस्थिति स्वयमेव पन्थातमम्यस्यति ।

कवीश्वर वचन समुच्चय

नामिका सोचती है—पंक्तिन पथ पर मेरे की कालिमा के आचरण से निःसम्ब बन करके प्रिय के सहर्ष बाधा होना इस प्रकार मुझा गुरुर को बुझों तक उठाकर गपनों को हाथों से छिया कर, कष्ट से पथों को नियन्त्रित कर मार्ग बल्लभे का अभ्यास कर रही है। इस प्रकार अभिसार से सम्बन्धित पदों को एक निश्चित परम्परा मिलती है। अनेक पदों में बहुत समय के मध्य रात्रिका दुर्गम पथ की किन्तान करते हुए भी अभिसार के लिये जाती हैं। इस प्रकार के सन्दर्भ को ग्रहण करते हुए विद्यापति अभिसार की ओर अग्रसर होमेवाली नामिका राधा) का रूप वर्णन करते हैं और उसने मनोभावों का अंकन करते हैं। अभिसारिका के लिये पथ की मोक्षीयता अपेक्षित है। विद्यापति की नामिका अपने को गोपन रखने की चेष्टा में विरोध प्रकार के प्रसाधनों को पारण करती है। वह गुरुरों का परिचाय कर करती है, पीठ वस्त्र धारण कर करती है, तथा अभिसार को जाती है—

गुरुर रचना पछिर देख
पीठ वसन है पुनति विधि देख
द्विधित बिलम्बे होएत हास
नहि पर होएत कान्हूत पास
यमन करह सनि बल्लभ देख
अभिसार होएत सति दधि न दगरेह ।

कवि अबिसारिका के मनोभावों और आन्तरिक व्यापारों का बहान करती है।
अभिसार भावों से प रपुनी नामिका के छाससापूर्ण हृदय-गत भावों का बहान
विद्यापति ने नैसर्गिक रूप से किया है। अनुराग से प्रेरित और मरण से आकर्षित
नामिका का विषय प्रस्तुत अंश में देखिए—

गुनन मन पगारि परन जभों

मुनरि सतरि बलकि

अम्बर सकल विभूषन गुनर

धनरि तिमिर सामरी

कैनु कतही पय जलहि न पारिष

जलि मसि बुझि भमरी।

अभिसार के क्रिये उत्सुक नामिका मानसिक विद्या में है। वह देखती है कि
सति मन में आ गया है। उसके मन की अभिसार-भावना चञ्चित होने लगती
है। अभिसार भावना से उत्सुक होकर मामरी बङ्गराज से अपना रूप कर रही
है। उत्सुकता से पश्चिम विद्या की ओर रू-रू कर बैठी रही है। मार्ग में उसकी
गोपनीयता मंजु हो इस हेतु वह नूपुरों को पदों में डक कर रही है। वह
स्वयंभू आचरण चाल कर रही है। यथा—

चरण नूपुर उपर सारी

मुनरि मेसल करे निवारी

अम्बर सामर वैह म्भारि

जलहि तिमिर-पय समारि।

१९४२१९

अभिसार में निरन्तर होने पर सखी विज्ञासा करती है—

बहि ठोरा नहि कन नहि जलकाय

परेक अलग कते देख निजासा।

सतर में नामिका कहती है—

करबोरि पैस्या परि कहनि बिली

बिसरि न हकबिए पुनरि सिरिटी।

प्रथम पहर राति रमसे बहुला

दोसर पहर परिजन निन्द मेला

निन्द निरुपतइत केक अबिरात

ताबत उपलब्ध नन्दा परम कुन्दाति।

अविचार के सन्दर्भ में सस्त्रियों दूती की भूमिका बरण करती है। प्रेममूर्च्छा काय में दूती प्रसंग का कक्षियत प्रयोग सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय में किसी न किसी रूप में स्पष्ट होता रहा है। ऐसे अनेक सन्दर्भ मिलते हैं जिनमें नायिका की ओर से दूती नायक के निकट जाकर नायिका की व्यक्त अवस्था का वर्णन कर, उसे नायिका की ओर आकर्षित करती है। 'पाहा सतसई' तथा इस संदर्भ की अन्य कृतियों से इस प्रकार के अनेक सन्दर्भ प्रस्तुत किये जा सकते हैं।
उदा०—

य मूर्च्छति दीहसार्धं न क्वचि विरं न होति किमिमांशो ।

बल्लाभी पाभी बाणं बहु बल्लाहो न तुमम् ॥

अर्थात् (को)कीर्ण निःशवास नहीं होती है, बिलम्ब तक नहीं छोटी है जिन को काया विरह में (धीन) नहीं होती वे भाव्यवती हैं—ऐसी लारियों के कृप्य तुम बल्लभ नहीं हो। इस प्रकार दूती प्रसंग से प्रकट-व्युत्पन्नता और विरह निवेदन की प्रथाओं की एक सुनिश्चित परम्परा मिलती है। अपने पदों में विद्या वति इसी परम्परा के कवि हैं। विद्यापति की एक दूती नायक के सम्मुख नायिका की अवस्था का वर्णन कर के उसमें रति भाव बाण्ट करती है 'बपी की राति है और (बह) कोमल कामिनी है। अन्धकार भय उत्पन्न कर रहा है। धार्य निपाचरों से पूर्ण है, बपी अनवरत हो रही है। हे माधव बहु प्रथम परिचय से डरती है। अतः स्वयं जाकर बसे बैसिए, और अनुकूल व्यवहार करिए। बीज में मदावह रूप धारण कर समुद्रा लगी प्रवाहित है। बहु किस प्रकार उसे बार कर आ सकती है ? मुरत उस और सुषेठन बहुर—वे सभी उसके लिये उदाहणीय हैं। मन में वे सारी बातें समझ कर भी तुम मुमुक्षी के विमुक्त हो रहे हो ? तुम्हारे मन में लगना नहीं आ रही है ? मधु को स्वयं अनुकर के बपीन बाते बैसा है ?

बारिह कामिनि कोमल कामिनि

दास्य अति अन्धकार

बह निपाचर सहजे सम्भर,

मन बर जल बार ॥ प्र० ४

माधव प्रथम नेहे से बीसी

गए अपनीहि से बबलोक्ति
 करिख संसनि रीति ।
 अति मयामुनि जातर बजुनि
 कैसि कए अवति पार
 सुख रस सुखेन बासमु
 ता पति संख बहार
 एत गुनि मेन बिमुख सुमुखि
 तोह मने नहि जाय
 कतए बैपछ मधु अपने
 बा मधु कर समाज ॥
 मने निघापटी व्याधि ॥२॥

इस सन्धर्म के अनेक पदों में नायक की दूती नामिका में नायक के प्रति
 आकर्षण और रतिभाव बाधित करती है । एक सन्धर्म में दूती कहती है 'अप्य
 कलावती युवतियाँ हैं, परन्तु वह तुम्हें ही धुरे प्राण की तरह मानता है ।
 तुम्हारे दर्शन के बिना वह काम-मात्र भी जीवित नहीं रह सकता है । वह
 कितनी बारुन मरन-व्यथा सहन करेगा ? बरी युववती और पुष्पवती रमणी
 सुनो ! निश्चय मत करो बसन्त ऋतु की रात छोटी होती है । नीच परि
 जान, तुम्हारे खरीरका बर्न अन्धकार में अन्धमा या बिभ्रत उरेंगे हो । तुम्हारा
 भुज पूर्ण अन्धमा के समान है । जैसेते हुए अन्धमा का अमृत पान बकौर करेगा ।

कत अघ युवति कलामति जाने
 तोहि मानए अनि होसरि पचने ।
 पुन बरसत बिनु छिन्नो न बिबह
 बारुन मरन केरन कत छहह । प्र० ० ।
 सुन सुन गुनमति पुनमति रमणी
 न कर निश्चय जोति मधुक रमणी ।
 सामर बम्बर तनुक रङ्गा
 विमिर निश्चयो सधि तुलित उरेंगा ॥
 सपुन सुबाकर जानन ठीप ॥

विदुषः अविज्ञः हृदि बन्धः बहोरा ।

मनसि विद्यापति इत्यादि । ॥६॥ १५ ।

इस प्रकार की अनेक उक्तियाँ संस्कृत और प्राकृत काव्यों में उपलब्ध हैं । विद्यापति इन उक्तियों से जल्दी भाँति परिचित थे । अपने पदों में इनका प्रयोग इन्होंने अति मृदु रूप में किया है । अतः अभिचार तथा दुष्टी प्रसंग में विद्यापति पूर्णतः लौकिक बरातस पर अवस्थित हैं । 'समुक्ति-कर्मामृत' में 'शिवसामिन्तर' 'शिवीरामिन्तर' 'क्योत्सवामिन्तर' आदि से सम्बन्धित श्लोक मिलते हैं । विद्यापति इन सन्तों से संस्पृष्ट हैं । उनकी नायिका बलौकिक राविका नहीं है । अतः इस प्रकार के वर्णनों पर अति मायमा के आरोपण से विद्यापति के काव्य की मूल वैजना का स्वरूप स्पष्ट नहीं हो सकता । इसके अतिरिक्त इस प्रकार के निष्कर्ष से इस विद्यापति को उन सन्तों से अलग कर लेते हैं जिनका तत्काल विद्यापति के ऐतिहासिक मूल्यांकन की दृष्टि से इन पृष्ठों में किया गया है ।

विद्यापति शृंगार के कवि हैं । 'कविवचन समुच्चय' 'मुखापिवावली' 'समुक्ति-कर्मामृत' 'भुक्ति मुक्तावली' और 'धाम्तर पदति' के श्लोकों में वर्णित धारों के अनुरूप विद्यापति के पदों में गारी-सीमर्य और शृंगार की मात्र योजना मिलती है ।

'माहा ललवई', 'कविवचन समुच्चय' 'मुखापिवावली' 'भुक्तिमुक्तावली' तथा 'धाम्तर पदति' में नायिका की बरा सन्धि के अनेक वर्णन मिलते हैं । विद्यापति के पदों में अतः उच्च के बिना इन रचनाओं में उपलब्ध बरा सन्धि के बिना ही मिल नहीं है । तुलना के लिए यह श्लोक देखें—

एते बास्वदेवः कुमुदबन्धुः सावधुः
बवाडीलेबास्या सज्जमुपममुन्निद्रिपनिनु ।
अस्मा भ्रूहली बलति बयनं बर्षाद्वरं
इतं बर्षं मुखा बलिपतिवित्रं योगिपतिवत् । पतागन् ।

एही सन्दर्भ में विद्यापति के कविता पदों की सम्बन्धित किया जा सकता है ।

सेसब थापु बहीरि केवावस
 बीनने गहस पास
 जेबो किछु बनि बिछ्छ बोछए
 से सेबो सुधासम भास ॥
 बीनन सेसब खेबए कागस
 छावि बेहे मोर ठाम
 एत बिन रस ठोड़े बिरसल
 बबहु गहि बिराम ॥
 मने बिद्यापति इत्यादि ४१६।

सद्यस्नाता के वर्णन में बिद्यापति स्वरूप वर्णन के माध्यम से स्नाता का संस्कार्य
 निर्वाकन करते हैं। इस वर्णन में स्मृकता और मौसकता ही सर्वदृष्टियों से
 प्रमुखता धारण कर गई है।

कामिनि करए सनाने
 हेरइते हृदय हरए पधवाने ।
 किछुर कसए बसबारा
 मुख सखि बरे बनि रोबए बबाराय । प्र० ।
 तितकबसम तनु मावू

मुनिहुक मानस मनपब जागू । इत्यादि । ११८।२७२

इस पद के साथ निम्नलिखित पंक्तियाँ तुलनीय हैं—

पतनिभम्बपूरुषा नृत्तानुस्तिष्ठाए सामसंगीए ।

बलबिन्दुएहि चिहुरा बजन्ति बन्धस ब मएण ॥६॥४५॥

बाह्यासत्तई ।

बिद्यापति के पदों में बीरता मुग्धा प्रकम्पा लबोका लंछिता वासक
 सज्जा विप्रसज्जा माफिनी आदि से सम्बन्धित वर्णन मिलते हैं। तस्फी के प्रेम
 बाह्यत्व के वर्णन में पार्ष्णीयता है। इस बिह्वल्य आकुञ्चता और बन्धकता के
 अनेक वर्णन इनके पदों में मिलजाते हैं। विदेश पर प्रियतम के कौनसे के दिलो
 की गचना नासिका कटती है। यणमा की सुविधा के सिंगे बहू मिति को बिह्वल
 करती है—

कातिक अक्षयि करिय पिब मेह ।

सिद्धार्थ काकि मीति मरिगेह ॥

नामिका संकेत पाकर निमिषतः स्वान पर जाती है । परन्तु स्वान को मृता पाकर वह स्नान हो जाती है । वह कोकिल का सम्यक् सुनकर और चन्द्रमा के मय से कमल को भर कर स्नान करती है । अस्त-मस्त बसना होकर विद्याओं में उगमत्त बूमती है । भाग्य वृद्धा जिक्रे हैं सीरम फँस रहा है । तबीन मञ्जरियाँ प्रसूटित हैं । कोमल पंचम राम अलाप रही है । इस प्रसंग में प्रोपितमर्तु का समय की गणना कर रही है । अमर मकरन्द पान कर रहे हैं और वर्तमान पतिजों को प्रेम-प्राप्त में बन्ध कर रहा है । प्रिया का प्रिय दूर देश में है, प्रिया का मन जागृत है । नामिका दूसरे के नाश्वर्य से सन्देश भेजने का विचार करती है परन्तु वह सोचती है कि पक्षिक के द्वारा सन्देश भेजना उचित नहीं, कारण वह सन्देश को भूल सकता है । इस प्रकार के मनोभावों को व्यक्त करने वाली अनेक पद हैं । इनमें प्रकृति का वर्णन उद्दीपन रूप में हुआ है । कोकिल-समूह कञ्जरम कर रहा है । काहल बज रहा है । मञ्जरियों पर अमर मुञ्जार कर रहे हैं । कुबो का वातावरण रसात्मक हो गया है । नामिका का मन स्नान है । प्राण निमिष के पार प्रिय के समीप है परन्तु स्वप्न का प्रतिबन्ध है । बिरहिणी के मरण निमित्त शत्रुता प्रकट हो गया है । एक पद में वसन्त की रात का वर्णन है । कामदेव प्रभावतमकम्प वारण कर रहा है । हंसगामिनी प्रतिस्मिन् स्निग्ध रहती है । वलिप एवम उद्ये पराजित करता है । अक्षर-मुञ्जार विषाद बढ़ा रहा है, और अमृत के समान कान्तिवासी मृत्यु के निकट पहुँच रही है । बिरहिणी मार्ग देख रही है । प्रिय अक्षयि भूल गव । उसके जपन-बकोर संचारहीन हो गए । निन्दुर बुद्ध की मीति सुवती प्राण लेकर पार करती है । कामिनी प्रिय की बिरहिणी हो गई प्रिया वैचक प्रिय की कहानी यह गई । एक पद में विदेह ममनेहो जागृत प्रिय से आग्रह करती हुई प्रिया कहती है पावन से भयभीत हूँ । मेरी की बनी में टिमरा अवलम्ब ग्रहण करूँगी । मेरे सुन्दर मुपट्ट । जिसके मापार पर बबनी पर में रहती है वह बने विदेह आय ।

इस प्रकार विद्यावति के पदों में गुणार की चारा अनेक रूपों में प्रवाहित है । गुणार कभी संयोग के सम्बन्धों में और कभी विद्राग्ध के सम्बन्धों में अपनी अभिव्यक्ति पा जाता है ।

कविपय पदों में नायिका बचन-बक़्ता का आचार ग्रहण कर रति आकर्षण और स्नेह आचरण करती है। एक पर में नायक को आकर्षित करने की भावना से नायिका कहती है 'मैं बकेली हूँ, स्वामी नाँव में नहीं हूँ। बत-स्वान देने में मुझे संघम हो रहा है। पड़ोसिन के निकट रहने पर अम्वत्र स्वान बिसा देती। हे पणिक। अपने मार्ग आओ। नगर में अम्वत्र स्वान सोन लो। बीच में प्रान्तर है। सन्ध्या का समय है। परदेस में अविष्य को देखकर रहमा बाहिए। नम में मेघ हैं रात का रहस्य है जो करता है उसका निर्णय कर लो।' यथा—

हमें एकछीर पिबतम नहिं गाम

तेँ तरतम अछइते एहि ठाम।

अन्तहु अन्तहु करैतहु बाव

दोसर न बैसिअ पखउसिआओ पाउ। इत्यादि।

१९८१२२७।

आत्मन्वन की जेष्टाओं के वर्णन तथा मित्रन जेष्टाओं के वर्णन-सम्बन्ध में विद्यापति संयोग वर्णन के अन्तर्गत नायक-नायिका के रूप का विधान करते हैं। वे आत्मन्वन की जेष्टाओं के अति सजीव रूप का भूत विधान करते हैं। इस प्रबंध में वे नायिका का मल बिह्व वर्णन भी करते हैं। परम्परागत उपमानों द्वारा वे संविकष रूप विधान करते हैं। एक अंग के वर्णन के लिए कवि अनेक उपमाओं का प्रयोग करते हैं। परन्तु इनके उपमान परम्परा से प्राप्त उपमान ही हैं। इस क्षेत्र में नवीन उद्भावनाएँ नहीं मिलती हैं। मुख के सौन्दर्य वर्णन के लिए कन्ना, मुकुर कनक अक्षर के लिए बिम्बक प्रवाल विद्रुम-पस्वन नेत्रों के लिए बाहुम फल चारंग कुरमिनी लक्ष्मी, स्वजन, कुन्तलों के लिए चारंग भ्रमर, वल्लभ, जाति परम्परा-गृहीत उपमान ही सम्मुख आए हैं। विप्रसम्भ के अन्तर्गत पूर्व राग भाग प्रवास के सम्बन्ध विद्यापति के पदों में पदोक्त भाषा में मिल जाते हैं। पूर्व राग में नायिका स्वप्न में नायक को देखती है उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होती है। उसको रोमांच हो जाता है। स्वप्न में ही वह समीप मुख का अनुभव करती है।

सपने दीपक हरि लज्जत रङ्गे

पुलके पुलक ठनु बाधु अगङ्गे

बधन मोराए अघर रस कला

निहि अवधान कान्ह कहा मेला गङ्गु०॥

का बालि नीन्द मालति बिहि मोरा

न मेले सुख सुख कायक जोरा । २१२।३३५

मान-बधन के पत्नी में नायिका के कलने का वर्णन है । नायक बिछ में दुःखी हो जाता है । सखियाँ नायिका से नायक के दुःखों का वर्णन करती हैं । छाप ही छाप नायक भी कल्ला है । सखियाँ नायिका के दुःख का निवेदन करती हैं । यथा—

छोहे कुलमति रति कुलमति मारि

बाहुँ दरखने मुलत मुरारि ।

उचिताहु बोछरते भवे अवधान

संसय मेकलहु तनिहुँ परान । १४०॥

मुबारि श्री कहुन कहुते काव

छोर नामे परहु सजो बाव । १४१।१२२ ॥

नायक से नायिका की अवस्था का वर्णन करते हुए सखी कहती हैं—

अपमहि हृदय पेन अपबाए ।

पेनक अङ्कुर मलाह बहाए ॥

× × ×

मावक कके बिसरलि बर मारि ।

बड़ परिहर धुन होय बिचारि ॥

× × ×

काजरे राहु उरन मित काव ।

बिन मलय पुन मलय बाहुँ न दत्तादि । १४२।२२३॥

प्रवास-वर्णन में बिद्यापति की भावनायें अधिक गहिरासीन लगती हैं । रस सन्दर्भ में कवि नायिका की मनोभावनाओं की कोमलता अनुभूतियों को वर्णन करते हैं । नायिक के वर्णन व्यापारों के संक्षिप्त वर्णन द्वारा कवि

करण की सम्भावना को व्यापक बनाते हैं। एक पक्ष में इस प्रकार का वर्णन है कि नायिका को यह विश्वास था कि प्रिय सबसे कह कर बिदेस जायगा। परन्तु नायक उसे निश्चित ही छोड़कर बछा गया, नायिका इस असम्भावना से विभ्रान्त है।

सुनि भरमे राहि सिजामे जाएव कहि

कोप कहए नीन्द नेकी।

जागि उठिस बनि बैसि सेव सुनि

हरि बोलहते निज पेसी। प्र० १।१२५।२११

विद्यापति प्रकृति के कवि नहीं हैं। प्रकृति विषय कवि का उद्देश्य भी नहीं है। कवि अपने पक्षों में प्रकृति का बंजन उद्दीपन रूप में ही ग्राम्य करते हैं। नायिका के विरह-वर्चन के सन्दर्भ में प्रकृति के विविध व्यापार उसकी अनुभूतियों और विरह-संवेदना को तीव्र करते हैं। नायिका में अनिष्टार मान जाग्रत करने के लिए सखी वसन्त के रसमय वातावरण का वर्णन करती है। नायिका से मान-परिचाग कर संयोग मुख के प्रभोजन को जाग्रत करती है। यथा—

होमिन्त मुख कलरव

काहस बाहर बाजे

मन्जरिफुल मधुकर गुजरए

स सुन कुन्व रयाव ।

× × ×

विरहिनि जन मरन काल तउ

बंछत मउ पिरुवाव प्र० १।१६।

वसन्त की रचनी में प्रियकी स्मृति जाती है। प्रिय वसन्त रचनी में संयोग का बचन देकर बचा था। परन्तु वह नहीं आया। कोवळ पंचम स्वर में गा रही है। बिसाजों में सङ्कार स्थित गये हैं जन्ममा से राजि घबस हो उठी है। तब पर भक्ति युक्ति है। इस सन्दर्भ में नायिका का मन विरह के जावेन से उल्टि हो उठता है। यथा—

बसन्ती रबनि रङ्गे पसटि यपति उङ्ग

परस रमस पिआ पस कही।

कोकिल पञ्चम गान लीलाओ न सुबन्ध जाच

उतिम बधन ब्यभिचर नही । छ ।

×

×

×

मो वलि पल्लवे मुर उति गेसा न

साइर मजर मिसा बलि उजिर मिसा

विद्यापति जन इत्यादि १४१।१२

विद्यापति की नायिका एने अन्धकार में अधिसार करती है । जसपा जसपा के रहा है रात कम्बल प्रसारित कर रही है विधुत प्रकाश से हो कभी कभी मार्ग लोच मर के लिए आलोकित हो जाता है और कामदेव के इस मोहक प्रस्ताव का नायिका स्वागत करती है । इस प्रकार गुरुवार के उद्योग और निबोध इन पद्यों के अन्तर्गत विद्यापति ने प्रकृति के उद्दीपन स्वरूप को ही ग्रहण किया है । मधुमृष्टि और भावना की तीव्रता के लिए इस प्रकार के वर्णनों का विशेष महत्व है । अतः बिजाति के पानों में बिम्बविधान और प्रकृति के संतुलित चित्र नहीं मिलते । नायक और नायिका को आत्ममग्न तथा आधाय रूप में ग्रहण कर उन्होंने गद्य छिन्न का वर्णन प्रकृति के उपादानों द्वारा किया है । यथा—

हरि रिपु रिपु प्रभु जनक से बलिनी

सुलगा जन रमनी ।

विभुषासन सम बधन सोहाबोल

बमलासन सम यमनी ॥५०॥

×

×

×

बटन बसन मुख देखिइ लीला मुख

बदक नयन बकोरा ।

हेरिउहि मुन्दरि हरि जन गए देखि

हर रिपु बाहुन मोरा ॥

उरपि जनक मुख सिन्दुर लीलाबोल

हामे देखि गन कानी । इत्यादि १४३।२०॥

रूप के रूप विनय में भी बलि एने ही उपादानों का प्रयोग किया है ।

ए सति वेसति एक अपरप

गुमदत मानति सप्त सप्त ।

कमस जुगल पर चोदक मास ।

तापर उपमस तदन तमास ।

× × ×

तापर चंचक संजत से जोर

स्वर सौपति भापक गोर ।

अपने कथ के संश्लेष में विद्यापति ने अप्रस्तुत विधान का प्रयोग किया है । नायक और नायिका के रूप विजन और उनकी सूक्ष्म भावनाओं को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए कवि ने वस्तु-सापेक्ष और वस्तु निर्भर इन दोनों प्रकार के अप्रस्तुतों का प्रयोग किया है । विद्यापति के पदों में रूप विजन, भाव-वर्णन और परिस्थिति-अंकन इन समस्त संश्लेषों में सन्धारक और अर्थात्कारों का विस्तृत प्रयोग मिलता है । अर्थात्कारों का प्रयोग प्रायः वस्तुनिष्ठ ही है । सन्धारकों में अनुप्रास समक और स्तव्य के प्रति कवि विशेष आग्रहीक हैं । अनुप्रास के माध्यम से कवि अपने पदों में ध्वन्यात्मकता और संमेलनात्मकता की सृष्टि करता है । अर्थात्कारों में उपमा उत्प्रेक्षा अतिशयोक्ति, विरोधाभास यथार्थत्व व्यतिरेक पर्यायोक्ति, एकावली असंगति तत्पुन आदि विशेष रूप से वर्णनीय हैं । बाष्पेरक्य और उक्ति वैचित्र्य की दृष्टियों से विद्यापति के कविपद पर अत्यन्त सुन्दर नज़र पड़े हैं । बाष्पेरक्य के अन्तर्गत वचन-संमिश्र के माध्यम से झुपी नायिका और नायक के अनोखापन को समझाने का प्रयास करती है और फिर एक दूसरे को सम्यक् देकर उनके संबोध की भूमिका निर्वहण करती है । इस संदर्भ में निम्नलिखित पद की व्याख्याप्रभावी ध्यान देने योग्य है—

सुख सिन्दूर किन्तु चान्दने निहुरे इन्दु ।

तिनि कहि गेल तिहके ।

विपत्ति अविचार अमिन्न बसए बार

अनुस कएल अछके गधु०३

माधव सेटसि फहाइल बेरी ।

आबर हरलक पुकिजो न पुसुसक

बगुर सखीजन मेखी ॥
 केतिक दस आए बम्पक दस आए
 कबरी बोएकक जानी ।
 बन्दे कुहुमे भङ्गबधि कएक
 समय निरे समानी ॥

मनइ बिद्यापति इत्यादि ॥२४१॥३४०॥

व्यर्थ नामक ने सिन्दूर बिन्दु से सूर्य और चन्द्र से चन्द्रमा का अंकन किया ।
 इन के माध्यम से अपने जाने की तिथि का संकेत किया । (सूर्य और चन्द्रमा अमावस्या
 में एक राशि पर आते हैं) । नायिका ने अंगुष्ठ की मुद्रा से नायक को आमन्त्रित
 किया । (तब में अंगुष्ठ की मुद्रा से आवाहन किया जाता है) । केवड़ा के पत्र में
 चम्पा का पुष्प संयुक्त कर नायिका ने देय-सजा की । (केवड़े के पत्र में कष्टक
 होते हैं) । चम्पा के निकट प्रसर लगी जाता) । इस प्रकार नायिक ने नायक को
 सूचित किया कि परित्यक्ति प्रतिकूल है । अंगुष्ठ-चन्द्रो से अपराध रचकर पुन
 नायक को अमावस्या को जाने का संकेत किया ।

इस प्रकार विद्यापति की व्यक्तता प्रामाण्य में मादों की अभिव्यक्ति विशिष्ट
 कर्णों में हुई है । इसमें भावपत्र और कथापत्र का समन्वित रूप मिलता है ।
 इसकी भाषा में निरमयता और संगीतात्मकता के तत्त्व पूर्णतः निर्योजित
 हैं । छन्द-पद्यियों में व्यंग्यार्थ बोधक पदों के अनेक रूप इनके काव्य में उपलब्ध
 होते हैं ।

विद्यापति आपुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य में पञ्च-रागपद के प्रतिस्थापक
 कवि हैं । इनके पद देव हैं और इनमें गीति-तत्व की समग्रता मिलती है । स्वर
 संगीत और राग-संगीत में दोनों तत्व इनके कर्णों के विद्यमान हैं । स्वर-संगीत
 और भाव-संगीत के समन्वित स्वरूप में ही इनके भाव संरिचष्ट अभिव्यक्ति प्राप्त
 करते हैं । इनका संगीत मादोत्रक में सहयोगी है । विद्यापति के गीतों में वैयक्तिक
 मादों की छीजता है । प्रत्येक पं में नायिका या नायक के मनोमादों की
 व्यप्युर्णता की अभिव्यक्ति मिलती है । पीतिकाव्य में रागात्मक अनुभूति और भाव
 प्रकटता प्राप्त रूप में विद्यमान रहती हैं । विद्यापति के गीत पं तो रागात्मक
 अनुभूतियों की अनुमेला हैं । सास्त्रीय तत्वों के साथ-साथ विद्यापति ने लोकगीतों

की व्यक्तता विधा का प्रयोग भी अपने पदों में किया है। कथात्मक शीतों की छिन्नविधि के साथ-साथ लोक-गीतों की सरलता स्वाभाविकता, भावमयता और स्वच्छन्दता इनके पदों में सहज श्रुमार के रूप में विद्यमान हैं। इस दृष्टि से वे जयदेव की गीति-कला से विषय प्रभावित हैं।

विद्यापति ने शिव-शारंगी-सम्बन्धित पदों की भी रचना की है। आगे पदों की ऐसी चारण है कि इन पदों में विद्यापति की सेवाभावना व्यक्तित्व है। परन्तु इन पदों की विवेचना के लिए इनको पूर्व-परम्परा और इनके ऐतिहासिक स्वल्प का उत्सेह अपेक्षित होगा। भारतीय साहित्य में आठवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी के मध्य ब्रितनी श्रु गारात्मक कवितामें किसी भी समय राधाकृष्ण की प्रेम-लीलाओं से सम्बन्धित भावधारा की प्रधानता रही है। साथ-ही-साथ कवमीनारामण की आत्मबल रूप में ग्रहण कर श्रु गार मूकक रचनामें भी हुई। राधा कृष्ण की प्रेमलीला के समान हर-श्री की प्रेम कोला से सम्बन्धित श्रु गार कविताओं की एक निश्चित परम्परा मिलती है। कामिदास ने इस सम्बन्ध की रचनामें की है। जयदेव के युग में शिव-शारी को अवलम्ब बनाकर श्रु गार प्रधान रचनामें की गई है। यह परम्परा विद्यापति के पदों में भी संरक्षित मिलती है। विद्यापति के पदों में कृष्ण राविका या नायक-नायिका के श्रु गार वर्णन में काव्य की एक परम्परा का विकसित रूप मिलता है। मक्ति-वत्स की संस्थापना की अपेक्षा इन पदों की गाव-संविधान का परम्परा के सम्बन्ध में मूल्यांकन साहित्य के इतिहास में अपेक्षित है। यही स्थिति शिव-शारंगी-सम्बन्धित पदों की भी है। इन पदों की अन्तर्व्येपना का स्वल्प विकास ऐतिहासिक परम्परा पर अवलम्बित है। यथा—

आगे अकामिक आपस बेपसारी
भीमि मुनुति अए बकिल कुमारी ॥१॥ ॥
मिथिमा न कैह बडावए रिसि
बबल निहारए बिहुषी हूँसी।
ए ठमा रसि उङ्गे निकहि बसली
ओहि ओविधा देनि मुवसि पल्लवी।
दुर कर गुरुवन अरे बेपसारी
कों विठ्ठिबोसए रावकुमारी।

कैमो बोल वेदए देहे बनु काहु
 कैमो बोल मोन्दा मालि (न) काहु ॥
 कैमो बोल बोगि माहि देहे बनु माली
 हुनु किमो नए बर बिबमो भवानी ।
 मनइ विद्यापति भनिमउ सेवा
 बन्दलदेवि पति बैसल सेवा ।

॥२१॥१३३३॥॥

बतिबि योपीरेयबारी भाकसिक भा गया । कुमारी गौरी निम्ना देने बली ।
 यौरी पूर्ण रूप से स्वस्य श्री परानु योगी को देखकर मुग्ध हो गई । छवियाँ
 कहुती हैं कि यौरी को योपी को समर्पित करदो सम्भवत इससे वह भैरवा या
 बाप ।

विद्यापति की माया

विद्यापति की पत्नी की माया में देखती से पन्द्रही राजास्त्री पूर्ण रूप
 की मैमिली का बन उपलब्ध है । मध्यकाशीन भारतीय भाष्य माया में विरचित
 मनीन संयुक्त स्वर यहाँ मूर्तित हैं । (१) उदा० बरसन ठरसन पुदरन परत
 सिनि तउलल इत्यादि ।

(२) प्राचीन भारतीय भाष्य माया की शब्दमध्य-क-मन्नि विद्यापति की माया
 में- में परिवर्तित मिलती है । उदा० गार (गं० गल) गार (गल) ।

(३) प्राचीन भारतीय भाष्य माया की भाषि य-मन्नि यहाँ ब-में परिवर्तित
 होगी मिलती है । उदा० बउवन (यौवन) पुप (पुप) बभना (भुना) ।

(४) संज्ञाओं के कारकीय प्रयोग के तीन बन मिलते हैं । (क) सविमलिक
 (ग) परवर्णीय (घ) प्रातिपत्तिक । उदा०—निवाएँ देत काम (कर्ता) बिलएँ
 सहुन बिरज गन मोरा (करण), जलरहि रागज दुहुनि लाम ।

प्रातिपत्तिक प्रयोग—कन भनन, भनन भनन कम (बर्ग) न मुन बभन
 (बभिकरण) ।

(५) सम्बन्ध कारण के निरूपण के का केग, केर, आदि परस्पर प्रयुक्त
 हुए हैं । उदा० पर नहुँ दोसर केरा नागरि जन केर बहुत निदान । सर्वनाम कों
 क माप की कि कों का प्रयोग होता है । स्वार्थ प्राप्ति-क-का प्रयोग सम्बन्ध

के अतिरिक्त अन्य कारकों में होता है। उदा० नामक वस्तु बोझिय गमार, भागक बोझिय गोप गमार, इत्यादि।

(१) मध्यम पुरुष और अन्य पुरुष के भविष्य आकार्य हेतु इहिति, ईहह, उवा हह का प्रयोग मिलता है, उदा० रतिहिति बोहह, बुमिहह, होहह। मूतकाल-क से निर्मित होता है। भविष्य के लिए व का प्रयोग होता है। उदा० अनूनय मोरि बुमिहह, रासमि बुमो काव।

(७) सहायक क्रिया के रूप में अस् और वच रूप प्रयुक्त हैं। उदा—गेस अस् अस्मिन्, अस्मि, इत्यादि।

अमीर झुसरो —अमीर झुसरो हिन्दी के कवि माने गये हैं। इनका नाम अब्दुल हसन था।

हिन्दी-इतिहास-लेखन के सन्दर्भ में इन्हें बड़ीबोली का आदि कवि या प्रथम कवि कहा गया है। इनका समय सन् १२२३ १३२३ ई० माना गया है। ये निजामुद्दीन औलिया के शिष्य थे। इनका सम्बन्ध दिल्ली के गुलाम खिस्मी और तुबकक इन तीनों बंधों से रहा है। ये अरबी-फारसी के पण्डित थे साथ ही-साथ हिन्दी के रचनाकार भी थे। एक स्वच पर इन्होंने कहा है—

तुर्क हिन्दुस्तानिमम मन हिन्दी घोयम बवाब
बु मन तुष्टिए हिन्म अर रासत पुर्सी
बे मन हिन्दी पुर्स ता मय गोयम।^१

झुसरो की एक स्वीकारोक्ति मिलती है—

१ अमीर झुसरो हिन्दी को स्नेह से देखते थे। एक स्वच पर उन्होंने कहा है 'मैं बूढ़ पर था। अरबी तरह सोचने पर हिन्दी (हिन्दी) भाषा फारसी से कम नहीं ठाठ हुई। सिवाय अरबी के जो प्रत्येक भाषा की मोर और सबों में मुख्य है, रई और कम की प्रचलित भाषायें समझते पर हिन्दी से कम मान्य हुई। अरबी अपने में दूसरी भाषा को नहीं मिलने देती -- हिन्दी भाषा भी अरबी के समान है, क्योंकि उसमें भी मिश्रण के लिए स्थान नहीं। मसनवी किरामुस्सारीन—हिन्दी साहित्य भाग २—पृ० ३२३ से उद्धृत।

‘जुबने बंद मगमें हिन्दी मजरे दोस्तां कराया गुदा अस्त । इस सम्दर्भ में प्रयुक्त हिन्दी’ शब्द के अर्थ को बलि व्यापक रूप में ग्रहण करना होगा । निश्चय ही हिन्दी के वर्तमान प्रयोग से मिला अर्थ में सुसरो द्वारा यह शब्द प्रयुक्त है । सुसरो ने इसका प्रयोग ‘बनाने हिन्द (जिससे वह परिचित था) के अर्थ में किया है । सुसरो के नाम से जो रचनायें उपलब्ध हैं उनमें ‘शास्त्रिकबारी’ अर्थात् फारसी हिन्दी की दो) पहेलियाँ मुकतियाँ, दो सुझने तथा पत्रों प्रचलित है । ‘शास्त्रिकबारी’ की कविपद्म पंक्तियाँ देखिए—

शास्त्रिक बारी सिरबन हार
बाहिर एक बदा कप्यार
रसूल पंगम्बर जान बसीठ
यादो दोस्त बोखो बो ईठ ।
× × ×

बया बिरादर भाव र भाई
बन घाम मान्तर बैठ री भाई
मुसक काफूर अस्त कस्तूरी कपूर
हिन्दवी जानन्द दादा और छकर
मूय बूहा युव बिल्ली मार बार
सो जगो रिख बहिन्दी ।

‘शास्त्रिकबारी’ की एक भी प्रति सोलहवीं शताब्दी के पूर्व की नहीं प्राप्त है । प्रतियों में उपलब्ध मापा-रूप ठीक-ठीक छत्रपती का नहीं है । इस प्रकार की प्रस्तावना भी की गई है कि ‘शास्त्रिक बारी’ प्रसिद्ध बमीर सुसरो की कृति नहीं है । बर्होमीर के समय (१५१७ एडी ई०) एक अन्य बमीर सुसरो का उत्पन्न मिश्रण है । ये संपीनकार, पायक और विद्वान थे । इन दोनों व्यक्तियों को एक व्यक्ति के रूप में इतिहास लेखकों ने ग्रहण किया है । देखिये पंजाब में जून् १००१७० रोपनी । बर्होमीर बालीन बमीर सुसरो के परचातु भी पाए हैं । अपने कल्प के प्रमाण हेतु बमीर सुसरो के नाम से प्रचलित रचनाओं के विविध स्तों को प्रस्तुत कर रहा है —

पहेलियाँ—

छरहर से एक ठिरिया छहरी, जगने बहुत रिझाया
बाप का ससने नाम जो पूछा बाबा नाम बताया ।
बाबा नामकिता पर प्यारा, बूझ पहेली योरी ।
'बमीर कुसरो' यों कहे अपने नाम न बोली ।
निबोरी ।

ससुने—

बनार क्यों न बसा—

बबोर क्यों न रखा—बाना न बा ।

पण्डित क्यों पियासा बबहा क्यों ज्वासा—सोटा न बा ।

इन जंघों की भाषा आधुनिक है । इन्हें हम तेरहवीं सताब्दी के बमीर कुसरो की रचनायें नहीं कह सकते हैं । कुसरो के नाम से प्रचलित कवियों में अनेक सन्ध ऐसे मिलते हैं जिनमें फारसी और हिन्दी की पंक्तियों का मिश्रण है । यथा—

जे हास मिशकी मकुल तपाफुल बुराय नीना बनाय बतियाँ ॥
फियावे हियरी न बामे ऐ बी । न केहु काहे अगाम खतियाँ ॥
दाबाने हियरी बराब न् जुस्त न रोखे बसछत नु बझ कोटह ।
सखी मिया को जो मैं न देखूं तो कैसे काटू अंधेरी रतियाँ ।

वीर काव्य

अपभ्रंश और अवहट्ट में वीर-काव्य उपलब्ध होते हैं । 'राजक काव्य' और 'चरित काव्यों' में शृंगार और शान्त रसों के साथ-साथ वीररस से सम्मिश्रित स्वर्ण भी मिलते हैं । स्वयंभू के 'रिट्ठनेमि चरित' (रिट्ठनेमि चरित या 'हरिवंशपुराण') में वीर भावना का स्वल्प अनेक स्थानों में मिलता है । पुष्पदन्त के 'महापुराण' या 'विशरिष्ट महापुरिष बुबासंकार' में शृंगार और शान्त के अतिरिक्त वीर रस की छेदछता पर अनेक उल्लासपूर्ण वर्णन मिलते हैं । बौद्ध धर्म से सम्बन्ध रचनाओं में बामुदेवों तथा प्रतिबामुदेवों के युद्ध-संदर्भों में वीर रस का व्यापक स्वल्प मिलता है । धनपार के 'मण्डविमल नङ्गा' के द्वितीय सर्ग की रचना वीर रस की भावभूमि पर हुई है । बलक कवि की कृति, 'हरिवंश पुराण' में शान्त और कदम्ब के साथ-साथ वीर रस के पयाँत प्रसंग मिलते हैं । अपभ्रंश कविकाव्यों में मुख्यतः

‘असह्य चरित’ (पुष्पस्त) ‘सकलविधि निबन्ध काव्य (नमनन्वी) ‘करकण्ड चरित’ (मुक्तिमकामर) इत्यादि रचनाओं में बीर रसात्मक सौन्दर्यपूर्ण स्वयं वर्णित माना में मिलते हैं। परन्तु इन रचनाओं में बीर रस का समाहार घात में होता है।

अपभ्रंश मुक्तकों, व्याकरण और ध्वन्य-धर्मों में उपलब्ध उदाहरणों में विभिन्न भावों के साथ-साथ बीर साधारण ध्वन्य मिलते हैं। ईश्वरचन्द्र ‘सम्मानुपासन’ तथा ‘अनानुपासन’ व माहृत्यैकम् आदि कृतिपों उदाहरण के लिए प्रस्तुत की जा सकती है। प्रबन्ध चित्रामणि में ऐतिहासिक पुरुषों से सम्बन्धित प्रबन्धों में भी इन प्रकार के वर्णित स्वयं मिलते हैं। इस प्रकार हिन्दी में बीरकाव्य का स्वयं अपभ्रंश के बीर काव्यों के अनुकूल ही है। इस प्रकार का विस्लेषण किया जाता है कि संस्कृत काल से विकसित बीर काव्य बारा का परम्परागत विकास हिन्दी में हुआ है। इसका सम्बन्ध कम ‘दिव्यल और ‘पिबल’ इन दोनों ही प्रकार की काव्य-बाराओं में हुआ है।

बीर काव्य पाठ के अन्तर्गत ‘प्रबन्ध’ और ‘मुक्तक’ इन दोनों बाराओं का विकास हुआ है। प्रबन्ध-रचना में ‘महाकाव्य और ‘अष्ट काव्य’ दोनों स्वयं उपलब्ध होते हैं। आधिकारिक के अन्तर्गत बीरकाव्य-बारा से सम्बन्धित विन कविपों और उनके काव्यों का उल्लेख किया जाता है उनकी सभी ‘रासक काव्य’ की विवेचना के अन्तर्गत हो चुकी है। इनमें सर्वप्रथम मङ्गेश्वर (११६८ ई०) का स्मरण किया जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इन्होंने ‘अपकन्द प्रकाश नामक ग्रन्थ की रचना की थी जिसमें अपकन्द की बीरगाथाओं का वर्णन किया गया है। यह कृति उपलब्ध नहीं है। विद्याधर बपालदास नामक चारण की कृति, ‘राठोड़ा री रदाठ’ में इसका उल्लेख मिलता है।

इस परम्परा के दूसरे कवि अपकन्द हैं। इनका समय ११७३ ई० माना गया है। इनकी रचना ‘अपका राठो पा ‘आसू घण्ड’ है। इस कृति की विवेचना ‘राठो बाण्य’ के अन्तर्गत में की जा चुकी है। देखिये पृष्ठ १०१।

अधुकर—(११८३ ई०) ऐसा विश्वास प्रबल किया जाता है कि अपकन्द की कीर्ति-वर्णन की अनुश्रवण से इन्होंने ‘अप मण्डू अप चरित्रा की रचना की है। बाल्य यह ग्रंथ अभी तक प्राप्त नहीं है।

विद्याधर (बिज्जाहूर)—ये बयबन्ध राठौर के मन्त्री थे। राष्ट्रकूटों के इतिहास में इनके विषय में कुछ संकेत मिलता है। 'प्राकृत पेंपळम्' में इनके नाम से कतिपय छन्द मिलते हैं। वीर रस के सम्बन्ध में इनकी पंक्तियों का महत्त्व है। यथा—

मज भञ्जिब बंगा मंयु कस्मिा ठैस्मिा रण मुक्कि बळे ।

मख्ठठाभिठ्ठा छम्मिब कठ्ठा छोरठ्ठा मज पाव पळे ॥

बंपारण बंपा पम्पब भंसा बात्पा ओत्पी बीब हुरे ।

काधीसर राया किजत पभाणा बिज्जाहूर मज मंति बरे ।

प्राकृत पेंपळम् पृ० १२६ ।

डों० मोलासंकर व्यास ।

शार्ङ्गधर—(१३६३ ई) —ये हम्मीर के समासद राजबंदेब के पुत्र थे। ऐसी मान्यता है कि शार्ङ्गधर ने 'हम्मीर रासों' के अतिरिक्त 'हम्मीर काव्य' नामक ग्रन्थ की भी रचना की थी। 'प्राकृत पेंपळम्' में इनकी कतिपय रचनायें उपलब्ध हैं। 'शार्ङ्गधर पद्वि' नाम से इनका एक सुमाप्ति संग्रह है। इसमें शायर गल्प हैं। ऐसी भाषा मिश्रित संस्कृत श्लोक भी यहाँ मिलते हैं। यथा०—

मून बारस खाइ खेह पसरी निभाज छम्ब बार ।

छम्ब पाड़ि कुटालि तोड़ि हल्लिखौ एवं भजस्पुदुमटा

भुठे गर्व मरा मनालि छहसा रे कंठ मेरे कहे ।

कंठे पाग निवेश बाह सरभं बी मल्लदेवं विमुम् ।

वीर काव्य मूलतः वीर प्रचलित मूलक रहा है। इसका विकास प्रबन्धकाव्य और वीरगोष्ठों के माध्यम से हुआ है। वीर गीतों का विकास मौखिक परम्पराओं में होता रहा है। प्रबन्धों और वीर गीतों में युद्ध के सम्बन्ध में प्रेम की शृंगार मूलक अनुकेतना निरन्तर विद्यमान रही है। नायिका के रूप-सौन्दर्य का आकर्षण युद्ध की अनुप्रेरणा होता रहा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस ओर संकेत किया है। 'रासों' को 'वीर नाचात्मक काव्यविधा' के रूप में जो स्वीकृति मिली थी वह अवैज्ञानिक है इस ओर संकेत किया जा चुका है। यह कारण भी ठीक नहीं कि 'रासों' के रचयिता माट और बारण थे। वीर काव्य की भाषा विषयक समस्या की ओर संकेत करते हुए यह भी कहा गया है कि वीर काव्यों की रचनायें 'दिगम्ब' और 'पिंपळ' में हुई हैं। दिगम्ब

की कविता राजस्थानी छोड़-माया भी सिंगल बन मिश्रित राजस्थानी । परन्तु इस प्रकार की भारमा में भी परिवर्तन करना होगा ।

वार्तिकालीन साहित्यिक विचारों में भाव-संविधान की दृष्टि से ही भीर काव्यों के आधार पर एक स्वतन्त्र काव्य धारा का वर्गीकरण हो सकता है । परन्तु काव्यरूपों की दृष्टि से इनका समावर्तन क्या-काव्य और भरिज-काव्य के अन्तर्गत हो हो जाता है । अतः इसके लिए स्वतन्त्र वर्गीकरण का सिद्धान्त विरोध उपोषी नहीं होता । 'मल्लि काव्य' तथा 'रीति काव्य' के अन्तर्ग में भी भीर काव्यों की रचनाओं व्यापक स्तर पर हुई हैं । उदाहरण स्वल्प—वेणु की 'रत्नावली' 'भीरसिंह भरित' 'बहुभीरु जस बन्धिका' मल्लिधाम की 'काठ 'कलितललाम' कृतमति मिय की 'संघाम सार' मूयण की 'निबन्धन मूयण' 'मूयण ह्वाय' 'मूयण जहाज' आदि कृतियाँ विरोध उत्प्रेक्षनीय हैं । इनके काव्य-स्वरूप और भाव-भोजना पर भागों के पृष्ठों में विवेचना की गई है ।

मुल्ला दाऊद कृत पदावली (पंदावली)

मुल्ला दाऊद कृत 'पंदावली' प्रेम-कथा-मूलक कृति है । इस कृति का ऐतिहासिक महत्व है । यह तुलुवन संमल और बायसी के प्रेमात्मक काव्यों की पूर्ववर्ती रचना है । मुल्ला दाऊद अल्तावदीन खिलजी के समकालीन थे । 'पंदावली' की रचना इन्होंने सन् १३७० में की थी । प्रेम-कथा-काव्य-परम्परा की इस आरम्भिक कृति का मूल्यांकन आदि कालीन साहित्य में विरोध महत्व का विषय है ।

मुल्ला दाऊद के विषय में विमलबन्धुओं ने लिखा है 'मुल्ला दाऊद' अमीर तुसरो का समकालीन था । उसका कविता-काठ संवत् १३२८ के लगभग था । उसका मूलक और रचना को प्रेम-कथा हिन्दी में रची । यह ग्रन्थ हमारे देखने में नहीं आया । हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों को मुल्ला दाऊद और उनके ग्रन्थ 'पंदावली' का, परिचय था । परन्तु हिन्दी को यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हो सका था । सत्य अमृत हूँ ने अक्षर के समान 'अक्षरार उक्त-अक्षरारके' नामक इतिहास ग्रन्थ की रचना की थी । इस ग्रन्थ से यह ज्ञात होता है कि दाऊद के यह ग्रन्थ अंग्रेजी विराम दिखी थे । य प्रसिद्ध विरामी सत्य हजरत अमीरखान बखी की

बड़ी बहन के पुत्र थे। कठ बाऊ का सम्मान बिस्ती-संत-परम्परा की बिस्ती धावा से था।

अब गबे टियर से यह बात होता है कि ७११ हिजरी में मुस्लाबाऊ ने 'बन्दावन' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इस ग्रन्थ की रचना फिरोजशाह के समय (हिजरी ७५२-७६०) में हुई थी। इसका उल्लेख मुल्ता बाऊ ने 'बन्दावन' में किया है। 'बन्दावन' में जिस रूप में उन्होंने अपना परिचय दिया है उसके अनुसार वे इकमर के निवासी थे। यह नगर बंगा के किनारे बसा था। अब के प्रादेशिक गबे टियर तथा रायबरेली-नजे टियर में इस नगर की जगहों की गई हैं। इनसे यह निश्चित होता है कि बिस्ती के सुकतान इस्तुतिमिश्र के घासन काल में यह नगर उल्लिखित था। उसके समय यहाँ मजबूत बरकतीग रहा करते थे। फिरोजशाह तुगलक के समय यह इस्लाम धर्म का केन्द्र था। बाऊ ने बारम्ब में परिचयात्मक रूप में जो कुछ कहा है वह इस प्रकार है—

साहि फिरोज बिस्ती सुकतानू। बीना साहि बबीर बन्धामू॥

इकमर नगर बसे नवरना। ऊपर कोट तले बहि गंगा॥

धरमी सोम बसहि मयबन्ता। सुन बाहक मायर बसबन्ता॥

मलिक बयों पुत चबरन भीरू। मलिक मुबारिक तहाँ सै भीरू॥

इस प्रकार मुस्लाबाऊ मलिक बयों के पुत्र मलिक मुबारिक के पुत्र थे।

'बन्दावन' के रचना-काल का सम्बन्ध करते हुए बाऊ ने लिखा है—

बरिस छात से होई इकपाठी। तिहि बाह कवि घरसैर भाठी॥

एक कव्य प्रति में यह उल्लेख इस रूप में मिलता है—

बरस छात से हूये उन्पाठी। तहिवा यह कवि घरसैर अमाठी।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि इस ग्रन्थ का प्रचलन हिजरी ७७१ ७५१ (सन् १३५०-१३७०) के मध्य हुआ था।

'बन्दावन' की कथा की मूल संवेदना है बन्दा और लोरिक की प्रेम-कथा। कथा-अस्तावन्ता की दृष्टि से तथा वर्णन प्रणाली की दृष्टि से यह सूफी प्रेमात्मिक काव्यों के अनुरूप की दृष्टि है। परन्तु इसकी कथा मौलिक है। जायसी अपना अन्य सूफी कवियों के प्रेमात्मिक काव्यों के समान इसकी मौलिक कथा पर अलौकिक तत्वों का आरोपन नहीं है। काव्य रूप की दृष्टि

से यह कहकर सीटी की रचना है। गोबर महर और पटरानी छूटरानी की कथा चौद का विवाह बाछू बर्ष की अवस्था में बाबन नामक बाछू से हुआ। उसकी मायु समय बार या पाँच बर्ष की थी। चौद के लिए इस प्रकार के परि संयोग का कोई बर्ष नहीं था। वह अपनी निछू-कथा जब अपने परिवारों में व्यक्त करती है तो उसे निर्वासन मिलता है। उसकी माँ उसे धरण देती है। एक बाजिर चौद का रूप देखकर मुहिन होता है। वह नगर-नगर चौद के निछू-गीत गाता प्रमथ करता है। उसके गीत के माध्यम से रामा स्वयन्द चौद के रूप-सीमर्य का संलिष्ट प्रभाव प्राप्त करता है। स्वयन्द चौद को प्राप्त करने हेतु राम महर पर मान्यता करता है। अपनी पराजय सम्मुख देखकर राम महर छोरिक से सहायता की याचना करते हैं। छोरिक स्वयन्द को पराजित करता है। चौद छोरिक पर मुग्न होती है। इसका पश्चात् कवि जन्दा-छोरिक की प्रपन-कथा विविध रूपों में प्रस्तुत करता है। जन्दावन की जिनगी प्रतिर्पा उनसम्भ है के सभी लक्षित हैं। अतः इसकी कथा की समाप्ति विधि पर कुछ कहने में हम असमर्थ हैं।

‘जन्दावन’ का आरम्भ कवि ने हिन्दी में उपलब्ध विभिन्न प्रेमा-स्वामिक काम्य के समान ही किया है। यथा—

पहिल मावईं सिरजन्दावा । तिन सिरजा इह देख बपारा ।
सिरजसि बाली और अकामू । सिरजसि मँदर औ कविलायू ।

सिरजसि चौं मुख ठजियाय । सिरजसि सरग मखत का भारा ।
सिरजसि घाँह सीव औ बूपा । सिरजसि किरतन और सकपा ।

सिरजसि मेघ पवन बंधकारा । सिरजसि बीनु कर बमभारा ।
आकर समे नितियमी कहैत एक सो पाइ । ६।

हिय बहरे मन हुकूतें डूबर बिज न समाइ । ७।
कवि मुस्ताफाऊ की बर्णन प्रपाठी अति मोहक है। रूप विनय क सन्दर्भ

में कवि संलिष्ट बिज विधान करता है। प्रस्तुत अंश में कवि न चौद का बर्णन किया है, देखिए—

हम देवन दून दूमाग जाव । बमक बमक पनि बाठ उगाव ।
अनक अनक वो बाली पता । बमक बमक जनु मुपति भरा ।

बड़ी बहन के पुत्र थे। अतः शाब्द का सम्बन्ध बिस्फी-संत-परम्परा की बिस्फी शाखा से था।

अब बगटियर से यह ज्ञात होता है कि ७११ हिजरी में मुस्ताबाब्द ने 'बन्दाबन' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इस ग्रन्थ की रचना फिरोजशाह के समय (हिजरी ७१२-७१०) में हुई थी। इसका उल्लेख मुस्ताबाब्द ने 'बन्दाबन' में किया है। 'बन्दाबन' में जिस रूप में उन्होंने अपना परिचय दिया है उसके अनुसार ये इल्हास के निवासी थे। यह नगर बंगा के किनारे बसा था। अब बगटियर के प्रादेशिक बगटियर तथा रायबरेली-बगटियर में इस नगर की कबाँ की गई है। इनसे यह निश्चित होता है कि बिस्फी के सुस्तान इस्तुतिमिस के शासन काल में यह नगर सम्पत्तिहीन था। उसके समय वहाँ मकसूम बरकशीन रहा करते थे। फिरोजशाह तुगलक के समय यह इस्लाम धर्म का केन्द्र था। शाब्द ने आरम्भ में परिचयात्मक रूप में जो कुछ कहा है वह इस प्रकार है—

साहि फिरोज बिट्टी सुस्तानु। बीना साहि बबीर बखानु॥

इल्हास नगर बसै नवरमा। ऊपर कोट तले बहि गया॥

बरमी लोग बसहि भवबन्ता। गुन गाहक नामर बसबन्ता॥

मलिक बयौ पुट उबरन थीर। मलिक मुबारिक तहाँ के भीर॥

इस प्रकार मुस्ताबाब्द मलिक बयौ के पुत्र मलिक मुबारिक के पुत्र थे।

'बन्दाबन' के रचना-काल का उल्लेख करते हुए शाब्द ने लिखा है—

बरिस सात सै होई इस्वासी। तहि बाह कबि सरसैत भासी॥

एक बय्य प्रति में यह उल्लेख इस रूप में मिलता है—

बरस सात सै हूँ उन्मासी। तहिया यह कबि सरस अभासी।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि इस ग्रन्थ का प्रणयन हिजरी ७७१ ७८१ (सन् १३३०-१३७०) के मध्य हुआ था।

'बन्दाबन' की कथा की मूल संवेदना है बन्दा और मोरिक की प्रणय-कथा। कथा प्रस्तावना की दृष्टि से तथा वर्णन प्रणाली की दृष्टि से यह सूफी प्रेमाभ्यासक काव्यों के अनुरूप की कृति है। परन्तु इसकी कथा लौकिक है। नामसी अथवा अन्य सूफी कवियों के प्रेमाभ्यासक काव्यों के समान इसकी लौकिक कथा पर अलौकिक तत्वों का आरोपण नहीं है। काव्य-रूप की दृष्टि

से यह कवचक धोकी की रक्ता है । बोर महर और पटरानी फुहरानी की कन्या चौद का विवाह बारह वर्ष की अवस्था में बाबत नामक बाबक से हुआ । उसकी आयु सप्तम बार या पाँच वर्ष की थी । चौद के लिए इस प्रकार के पति संयोग का कोई अर्थ नहीं था । वह अपनी विरह-व्याध अब अपने परिवर्तों में व्यक्त करती है तो उसे निर्वीर्यन मिलता है । उसकी माँ उसे दारुण देती है । एक वाजिर चौद का रूप देखकर मुस्ति होता है । वह नगर-नगर चौद के विरह-भीत वाता प्रमथ करता है । उसके पीठ के माध्यम से राजा कम्बन्द चौद के रूप-सौन्दर्य का संश्लिष्ट प्रभाव प्राप्त करता है । कम्बन्द चौद को प्राप्त करने हेतु राम महर पर बाध्यता करता है । अपनी बराबर सम्मुख देखकर राम महर क्षौरिक से सहायता की याचना करते हैं । क्षौरिक कम्बन्द को बराबर करता है । चौद क्षौरिक पर मुग्ध होती है । इसके पश्चात् कवि चन्दा-क्षौरिक की प्रथम-कथा विविध रूपों में प्रस्तुत करता है । चन्दावन की जिसनी प्रतिमा उपलब्ध है वे सभी सन्निवृत्त हैं । अतः इसकी कथा की समाप्ति निम्न पर कुछ कहने में हय असम्भव है ।

‘चन्दावन’ का आरम्भ कवि ने हिन्दी में उपलब्ध विभिन्न प्रेमा-व्यासक काव्य के समान ही किया है । यथा—

पहिले पावकें सिरजगद्वारा । जिन सिग्या रह देवस बयारा ।
 सिरजसि परती और भक्तानु । सिरजसि मँदर औ कनिकागु ।
 सिरजसि चौद मुद्व जवियारा । सिरजसि छरय नसत का धारा ।
 सिरजसि चौह छीर औ मूपा । सिग्यसि क्रिस्तम और सकपा ।
 सिरजसि मैप पवन अँपकाप । सिरजसि बीजु करे जमकारा ।
 बाकर छये सिरियमी कहैत एक सो गाइ । ६।
 द्विप पवरी मन हुह्वै दुसर बिठ न समाइ । ७।

कवि मुस्ताबाद की वर्णन प्रयासी अति मोहक है । रूप चित्रण के सम्बन्ध में कवि संश्लिष्ट विषय विधान करता है । प्रस्तुत अंश में कवि ने चौद का वर्णन किया है, देखिए—

हँस बैरन ठुम ठुमरन आवइ । जमक जमक पनि बाठ उठावइ ।
 धनक धनक पौ परती परा । जमक जमक बन नुपति भरा ।

धरु मल्लान से चौंका जायद । जानों की तरि बेयु छयायद ।
 सर भुईं धरध चौंर धरि पाळ । नान हूँ न काबेर नाळ ।
 पागे धूर मेन भरि चौंरौ । नीन काहिं दुइ ठरुना मांरौ ।
 कल्ल चौंर बिठ छागा मन हूँ उतर न काठ ।
 पौयहिं हाथ न फूँचे हूँ-हूँ रोयद राठ ।

ऊपर यह उल्लेख किया गया है कि अन्वयन 'कड़वक सूची' का काम्य है । प्रत्येक कड़वक में पौंच यमक है । प्रत्येक कड़वक का समाप्त एक पंता से होता है । यमक में मात्राओं का क्रम ११ १५ है । पंता में मात्रा-क्रम में मिलता है । किसी में ११ ११ मात्राओं का क्रम है किसी में ११, १२ और किसी में १२, ११ मात्राओं का क्रम है ।

'अन्वयन' की जिसी प्रतिपौ उपलब्ध हैं वे सभी सन्धिष्ठ हैं । इस रचना की उपलब्ध प्रतिपौ का विवरण इस प्रकार है—

(१) रीसेम्बस की प्रीत—यह मैगिस्टर के रीसेम्बस पुस्तकालय में सुरक्षित है ।

(२) बम्बई प्रति—ग्रिन्थ ऑफ वेस्स म्यूजिक में सुरक्षित है ।

(३) पंजाब प्रति—यह प्रति इस समय लाहौर विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में सुरक्षित है ।

(४) बीकानेर प्रति—यह प्रति बीकानेर में राकठ चारखत के पास सुरक्षित है ।

(५) काशी प्रति—

भविष्य (काव्य) काल

[४] सन्त साहित्य

सन्त साहित्य का स्वल्प चित्रलेखन

निम्न भाषाधारा पर प्रकटित जो काव्य-धारा हिन्दी में प्रकटित हुई उसका विभावन आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ज्ञान मार्गी तथा प्रेम मार्गी इन दो मार्गों में किया है। ज्ञानमार्गी शास्त्रा के कवियों को 'सन्त', तथा उनके साहित्य को 'सन्त साहित्य' की संज्ञा मिली है। प्रेम-मार्गी शास्त्रा के अत्यंत मर्मज्ञ, कुसुमन भावशी आदि सुझी कवियों की रचनामें जाती है। इस मार्ग के साहित्य-स्वरूप पर आगे विचार किया गया है। सन्त साहित्य मल्लि-युग के पुरुषार्थ का साहित्य है, तथा दक्षिण भारत और उत्तर भारत की धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा दिली अथवा राजनैतिक अनुप्रेरणाओं को समन्वित कर इस धारा का साहित्य संश्लिष्ट रूप धारण कर सका है। ऐतिहासिक स्पष्टता की दृष्टि से इस सम्प्रदाय से सम्बद्ध साहित्य का स्वल्प निम्नोपलब्धी सताष्टी में होता है और इसके आवर्तक सन्त कबीर माने जाते हैं। सन्त कबीर का जन्म सन् १३१५ (संवत् १४२३) में माना गया है। जन्मपन की मुखिया की दृष्टि से हम सन्त कबीर के साथ ही इस धारा के साहित्य के जन्मद्वार को सम्बद्ध कर लेते हैं। परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि सन्त साहित्य की अनुप्रेरणा कबीर के अनेक वर्षों पूर्व ही सृजनात्मक रूप धारण कर चुकी थी। क्रिया प्रक्रिया के संदर्भों में युग-जीवन की विविध परिस्थित गेहानों ने इस काव्य-धारा में एक संश्लिष्ट रूप धारण किया। सिद्धसाहित्य की परम्परा का प्रत्यक्ष क्रियात्मक और प्रतिक्रियात्मक इन दोनों रूपों में नाय साहित्य में हुआ। इस परम्परा का विकास जरूरी काल में संत साहित्य के रूप में हुआ। आगे की विवेचन और विस्तार्यन प्रस्तुत है, उससे इस चक्रव्य का स्पष्टीकरण हो जावेगा।

साधारणतः 'सन्त' का साहित्यिक अर्थ होता है बुद्धिमान पवित्रात्मा अथवा बोधकाय अर्थात्। यह साधु और महात्मा के अर्थों में भी इन शब्द का प्रयोग मिलता है। इस प्रकार की धारणा भी प्रचलित है कि ब्रह्मानन्द-मय्यन् अर्थात्

ही संत है 'सुखं ब्रह्मानन्दारम्भं विद्यते तस्य'। अमरपद में 'सांत' के लिए इस शब्द का प्रयोग मिलता है। यह संस्कृत 'सन्' का बहुवचन है, जिसका प्रयोग हिन्दी में एक वचन के लिए होता है। इसका प्रयोग परम तत्व के लिए भी होता है, जो स्थिर है। 'पाहुड़ बोहा' में 'सन्त' का परिचय इन शब्दों में दिया गया है, 'धनु निरंजन सुखि सिध तहि किम्बध अनुराध'। एक साखी में कबीर ने संत का परिचय इस प्रकार दिया है—

निखेरी निहकामता साईं ऐसी नेह ।

बिचियों सँ थारा रहै संतन के अंग एह ।

कबीर संवावसी ।

श्रीस्वामी तुलसी दास ने भी संत के लक्षणों की बचन करते हुए कहा है—

सबकै ममता तान बढोरी ममपद मनहि बाँध नर डोरी ।

उपर इस ओर संकेत किया गया है कि हिन्दी में निर्गुण भक्ति-परम्परा के अन्तर्गत कबीर और उनके अनुयायियों को निर्गुणपन्थी और उनके काव्य को 'निर्गुण साहित्य' की संज्ञा मिली है। इनके लिए ही 'सन्त' शब्द का प्रयोग किया जाता है। हिन्दी के पूर्व संतकाव्य की एक स्पष्ट परम्परा मराठी साहित्य में उपलब्ध होती है। मराठी में 'बेठुस' या 'बारकरी' सम्प्रदाय के साधकों के लिए 'सन्त' संज्ञा का व्यवहार किया जाता है। इस सम्प्रदाय में 'निर्गुण' के प्रति विशेष भावना प्रकट मिलती है। इस परम्परा में ज्ञानदेव, नामदेव, तुकाराम आदि संतों का विशेष स्मरण किया जाता है। कबीर और उनके अनुयायियों के लिए 'सन्त' की संज्ञा सम्भवतः मराठी-परम्परा से ही ग्रहण की गई है। कबीर रामानन्द के शिष्य थे। रामानन्द ने निर्गुण ब्रह्म की जो कल्पना की है उसमें यह बरा-बर से युक्त है। उन्होंने जिस निर्गुण की कल्पना की है वह इत-अत इस दोनों तत्वों से परिपूर्ण है। वह मौनिक ब्रह्म है। इस प्रकार रामानन्द का ब्रह्म मौनिक साधना और वैशान्तिक विचार द्वारा के अनुकूल है। हिन्दी के संत साधकों ने इन्हीं विचारों का अवलम्ब ग्रहण कर अपनी चिन्तनधारा और अपने भावबोध का निवृत्त किया है। साध-साध इनमें ज्ञान भक्ति और वैराग्य इन तीनों के प्रति समन्वयात्मक दृष्टि भी मिलती है। यहाँ इ तात्त्व अस्मत्निरंजन निर्गुण ब्रह्म की उपासना स्वीकार की गई है। बौद्धदर्शन, बौद्ध दार्शनिकता, द्वायवाद विज्ञान

बाब चौब दर्शन तथा प्रतिजिज्ञा दर्शन इस भावबारा की साधना और इससे सम्बन्धित साहित्य में उपलब्ध हो जाते हैं। डॉ० पीताम्बर दत्त बड़म्हाळ ने सन्तों के मतों को 'निर्गुण पंथ' और सन्तों को 'निरावृत्तियाँ' कहा है। परन्तु परशुराम बस्तु ने इस पर आपत्ति करते हुए यह संकेत करते हैं कि बड़म्हाळ के निर्णय से यह संकेत भिन्न है कि इसके अनुयायी परम तत्त्व को केवल निर्गुण ही मानते हैं। परन्तु बस्तुस्थिति यह नहीं है। कबीर इत्यादि सन्तों ने निर्गुण और सगुण से किसी अनिर्वर्तनीय व अज्ञेय शिष्टु अनुभवयोग्य को परम तत्त्व माना है। यथा

आके मुस माया नहीं गाही न रूप कुरूप ।

पुरुष बास ते पातरा ऐसा तत्त अनूप ॥

जिसके मुख नहीं है माया नहीं है वह पुरुष की सुगन्धि से भी गुरुत्व केवल अनुभव में ही परिवर्तित हो सकता है संभरण कर सकता है। यही का है कि कबीर को कहना पड़ा—

भाये नहीं त बहुत दरी, हलका नहीं तो झूठ ।

मैं का जानौं राम कूँ, मैनन कबहुँ न दोठ ।

इस प्रकार का विस्वास प्रकट किया जाता है कि महाभारत मंत्राय ब्रह्मयाम तथा तांत्रिक बौद्ध साधना के आधार पर जो साधनात्मक और साहित्य पाठों विकसित हुईं उनके विपरीत प्रतिजिज्ञात्मक रूप में भावपन्थ और साहित्य का विकास हुआ। भावपन्थ की परवर्ती श्रुतता ही संतमत परन्तु बस्तु-स्थिति को अति व्यापक रूप में देखना होना। भाव-सम्यक् मत में व के उद्देश्य तत्त्वों के प्रति आग्रह है, जो सम्भवतः छिद्रों में नहीं है। इस प्रकार निर्णय से ही स्थिति का समाधान नहीं हो जाता है। बौद्ध के विचलन के समय ही हीनयान महायान, मन्त्रयान और सङ्ख्ययान के समान एक सम्प्रदाय के अस्तित्व का संकेत मिलता है जिसे ध्यानसम्प्रदाय नाम से स्थापित किसी थी। इस सम्प्रदाय में मन्त्रयान संनयान, सङ्ख्ययान प्रस्तावित जीवन-स्वरूप के विपरीत गुण, सात्त्विक जीवन-मानकों के आग्रह प्रकट किया गया है। मुने देना शक्यता है कि 'भावपंथ' और 'संत' दली भावबारा के परवर्ती रूप हैं। ध्यान सम्प्रदाय में विषय-वामवाओं ने छन्दों का आग्रह विद्यता है।

ही सन्त है, 'सुखं ब्रह्मानन्वात्मकं विद्यते मत्स्य'। वम्भपर में 'संत' के लिए इस शब्द का प्रयोग मिलता है। यह संस्कृत 'सन्' का बहुवचन है, जिसका प्रयोग हिन्दी में एक वचन के लिए होता है। इसका प्रयोग परम तत्त्व के लिए भी होता है, जो नित्य है। 'पाहुड़ बोहा' में 'सन्त' का परिचय इन शब्दों में दिया गया है, 'छंनु निरंजन सुखि सिठ तहि किम्बत बनुराठ। एक छाही में कबीर ने संत का परिचय इस प्रकार दिया है —

निरखेरी निहकामता सार्ह सेती नेह ।

वियियों सुं प्यारा रहे सन्तन के बंग एह ।

कबीर उभावली ।

श्रीस्वामी तुकसी दास ने भी सन्त के लक्षणों की कभी कभी कुछ कहा है—

सबकै ममता ताब बटोरी ममपद मगहि बांध बर बोरी ।

अगर इस ओर संकेत किया गया है कि हिन्दी में निर्गुण भक्ति-परम्परा के अन्तर्गत कबीर और उनके अनुयायियों को निर्गुणपन्थी और उनके काव्य को निर्गुण साहित्य की संज्ञा मिली है। इनके लिए ही 'सन्त' शब्द का प्रयोग किया जाता है। हिन्दी के पूर्व सन्तकाव्य की एक स्पष्ट परम्परा मराठी साहित्य में उपलब्ध होती है। मराठी में 'नवठूस' या 'बारकरी' सम्प्रदाय के साधकों के लिए 'सन्त' संज्ञा का व्यवहार किया जाता है। इस सम्प्रदाय में निर्गुण के प्रति विशेष आस्था प्रकट मिलती है। इस परम्परा में ज्ञानदेव नामदेव तुकाराम भावि संतों का विशेष स्मरण किया जाता है। कबीर और उनके अनुयायियों के लिए 'सन्त' की संज्ञा सम्भवतः मराठी-परम्परा से ही ग्रहण की गई है। कबीर रामानन्द के शिष्य थे। रामानन्द ने निर्गुण ब्रह्म की जो कल्पना की है उसमें यह बरा-बर से मुक्त है। उन्होंने जिस निर्गुण की कल्पना की है वह ईश-ईश्वर इन दोनों तत्वों से परिपूर्ण है। वह यौगिक ब्रह्म है। इस प्रकार रामानन्द का ब्रह्म यौगिक साधना और वैश्वान्तिक विचार द्वारा के अनुकूल है। हिन्दी के सन्त साधकों ने इन्हीं विचारों का अवलम्ब ग्रहण कर अपनी चिन्तनचारा और अपने भावबोध का नियमन किया है। साध-साध इनमें ज्ञान भक्ति और वैराग्य इन तीनों के प्रति समन्वयारमक दृष्टि भी मिलती है। यहाँ इताईठ अक्षतनिरंजन निर्गुण ब्रह्म की उपासना स्वीकार की गई है। बौद्धधर्म, बौद्ध धार्मिकवाद, धर्मवाद विज्ञान

बाब, सब दर्शन तथा प्रतिमिता दर्शन इस भावधारा की साधना और इससे सम्बन्धित साहित्य में उपलब्ध हो जाते हैं। डॉ० पीताम्बर दत्त बड़ध्वास ने सन्तो के मार्ग को 'निर्गुण पंथ' और सन्तों को 'निर्गुनिया' कहा है। परन्तु परशुराम बलुबेदी इस पर आपत्ति करते हुए यह संकेत करते हैं कि बड़ध्वास के निर्णय से यह संकेत सिद्धता है कि इसके अनुयायी परम तत्व को केवल निर्गुण ही मानने से। परन्तु बलुबेदी यह नहीं है। कबीर इत्यादि सन्तों ने निर्गुण और सगुण से पर किसी अतिवर्धनीय व अज्ञेय किन्तु अनुभवगम्य को परम तत्व माना है। यथा—
 जाके मुक्त माया नहीं माही न रूप नुकर ।
 गुरुप बास ते पातरा ऐसा तत्त अनुप ॥

जिसके मुक्त नहीं है माया नहीं है वह पुण्य की सुपत्ति से भी मून है केवल अनुभव में ही परिबद्ध हो सक्ता है संभार कर सक्ता है। यही कारण है कि कबीर को कहना पड़ा—

माटी कहाँ त बहुत डरौ इसका नहूँ लौ मूठ ।
 मैं का बापौ राम कूं, मनन सबहुँ न लौट ।

इस प्रकार का विश्वास प्रकट किया जाता है कि महापात्र संन्यासियों का बापों विरुद्ध हुई उनके विपरीत प्रतिक्रियात्मक रूप में गहनता से उनके साहित्य का विकास हुआ। नाथपंथ की परवर्ती गुरुवादी सन्तों के उदात्त तत्वों के प्रति बाग्रह है जो सम्भवतः हिन्दु धर्म के इस प्रकार निर्णय से ही स्थिति का प्रमाण माना जा सकता है। परन्तु बलुबेदी की स्थिति को ब्रह्म व्यापक रूप में देखना होगा। बलुबेदी के विपरीत के समय ही इतिहास महापात्र संन्यासियों के नाम से स्नाति मिली थी। इस सम्प्रदाय में संन्यास का अर्थ ही संन्यास ही है। यथा—
 नाम से स्नाति मिली थी। इस सम्प्रदाय में संन्यास का अर्थ ही संन्यास ही है। यथा—
 बाग्रह प्रकट किया गया है। यथा—
 इसी भावधारा के परवर्ती रूप हैं। यथा—
 उनके का बाग्रह मिलता है।

ध्यान सम्प्रदाय में वैदिक जीवन की सापेक्षता और जीवन के गार्हस्थ्यिक स्वरूप के प्रति विशेष विश्वास प्रकट किया गया है। नाकसावकों में गार्हस्थ्यिक जीवन की अवहेलना मिलती है, परन्तु सन्तों ने इसके प्रति विश्वास प्रकट किया है। कबीर ने अष्टि दृष्ट सन्तों में कहा है 'बसिए नाम बसिए अनु' यर्थात् नाम का बाप करिए और अन्न का बाप करिए। ध्यान सम्प्रदाय में स्वानुभूति-परक ज्ञान को ही विशेष प्रथम मिला है। 'लंकावतार सूक्त' में 'स्वयं सबेद्य ज्ञान' की कसौ की गई है। 'ध्यान सम्प्रदाय' ने इस 'स्वयं सबेद्य ज्ञान' सिद्धान्त को ग्रहण किया है। कबीर तथा अन्य निर्गुण सन्तों में भी 'स्वयं सबेद्य ज्ञान' की कसौ मिलती है। कबीर ने इसी सन्दर्भ में कहा है 'पाछे जाया जाइ बा छोड़ बेर के साबि भाये' यों सतगुरु मिला बीपक दीया हाव। साबना की अनुभूतिपूर्ण भावयोजना के अनेक सम्बन्धों का जो स्वरूप सन्तों में उपलब्ध है, उसकी पूर्ण रूप-योजना ध्यान सम्प्रदाय की अभिव्यक्ति प्रकाशी में अवस्थित मिलती है। कबीर ने मन की दो स्थितियों अथवा अवस्थाओं का उल्लेख किया है, 'इन मन' और 'उन मन'। ध्यान सम्प्रदाय में इस प्रकार की चारणा प्रचलित है कि सापेक्ष व्यक्तिगत मन ही निरपेक्ष और समष्टियुक्त मन हो जाता है। साबना की उच्च भूमि पर सापेक्ष मन निरपेक्ष हो जाता है। व्यक्तिगत मन को अनन्त निरपेक्ष मन में मिलाने की प्रक्रिया को 'उन्मनी अवस्था' कहते हैं। सन्तों ने इस प्रकार की उन्मनी अवस्था की कल्पना की है। कबीर ने इसी क्रिया को व्यक्त करते हुए कहा है—

मन लावा उन मन सौ समन पहुँचा जाव ।
मन लाया उन मन सौ उनमन मनहि बिक्रम ।
कूँ जिकिया पाणिजा पाबी कूँ बिलम ।

अथवा

मन बीया मन पाइये मन बिनु मन महि होय ।
मन उनमन उस बँड जूँ अनल बकासां बोई ।
उठत बँठत कबहुँ न मिसरे, ऐनी ठारी जागी ।
कहै कबीर यह उनमन रहनी, सो परमट कर माई ।

इस प्रकार सान्त चेतना को अनन्त चेतना में मिलाने की प्रक्रिया को ध्यान सम्प्रदाय में उन्मनी स्थिति कहा गया है। कबीर इत्यादि ने इसी उन्मनी अवस्था

की बर्बादी की है। व्यास सम्प्रदाय में इसके प्रकट और अप्रकट इन दोनों रूपों की परिवर्तना की गई है। कबीर ने इस भाव-संविदना को ग्रहण करते हुए कहा है कि 'जन्म' अवस्था अप्रकट है, परन्तु सहज समाधि में वह प्रकट हो जाती है। यथा—

सखो सहज समाधि मली

बहुँ बहुँ डोळो सोइ परिकरमा को मुख करौ सो सेवा

× × × ×

कह कबीर यह जनमन रखी यह परपठ कर बाई।

कबीर तथा अन्य मन्तों की रचनाओं अंगों में बर्णीकृत मिलती हैं जैसे 'गुरु देव को अंग' 'गुरुमित्र को अंग' 'गुरु को अंग' 'परमा को अंग' 'तु को अंग', इत्यादि। कुछत्रोप में इस छन्द का प्रयोग 'कारण' के अर्थ में किया है। इस सम्बन्ध में 'विभूत मन्त्र' की ओर संकेत विशेष महत्वपूर्ण होया। इस छन्द के द्वितीय परिवर्तन में 'अंग' का अर्थ 'मुख' की बर्बाद मिलती है। 'प्राक्निषिष्ट' में ऐसे अनेक सम्बन्ध मिलते हैं, जिनमें अङ्गों से साक्षी देने की विधा का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इस प्रकार के अति स्पष्ट प्रयोग व्यास सम्प्रदाय में मिलते हैं और इस सम्बन्ध में यह संकेत दिया जा सकता है कि कबीर इत्यादि की रचनाओं में यह प्रयोग इस पूर्व परम्परा से ही अवलम्ब हुआ करता है। उदाहरण—

गिरावरी निहकामता बाई सेती नेह।

विधियां सुं मारा रही सन्तति का अव एह॥

यस रथा के छिप छपावत में 'स्मृति' का उल्लेख किया जा। ऐसे सम्बन्ध मिलते हैं जिनमें से अपनी 'स्मृति' और 'अस्मृति' अवस्थाओं का उल्लेख करते हैं। मन्तों में स्मृति का प्रयोग स्मृति के पर्यायवाची रूप में किया है। 'प्रज्ञावारिजा' की अनुशासना का विकास मन्तों में किया है जिसके अन्तर्गत 'गुरु' के प्रति बिद्विग बावर्दग पाव प्रकट किया गया है। 'हिंदी' और 'जापी' में इनका प्रयोग मिलता है। इसकी बर्बाद हो चुकी है। 'प्रज्ञा' को 'अंग' का पर्याय माना गया है। यह ज्ञान-धार के समान अज्ञान को छिपित करती है। मध्यकालीन मन्तों में इनका प्रयोग मिलता है और यहाँ 'तब' को 'प्रज्ञा' या 'अंग' का पर्यायवाची माना गया है, यथा—

सतगुरु छाँचा सूरिबों सबर जु बाप्पा एक ।
 जागत ही मैं मिल गया पढ़्या कछेने छेक ।
 सतगुरु भारा बाग भर बरि करि सुखी मूठि ।
 अग उचाड़े कागिमा गई वसा नूँ फूटि ।

सन्तों की भाव बारा और अभिव्यक्तता प्रणाली सिद्धों और नाथों की रचनाओं से बलिष्ठ रूप में सम्बन्धित है । भाव भाषा, प्रतीक विधान और अन्य विशिष्ट पारिभाषिक शब्दों की दृष्टि से हम सिद्धों-नाथों और सन्तों में एक मूलका का विकास देखते हैं । इसके साथ-साथ रामानन्द के उद्घोषों से उत्तर भारत में बौद्धिक भक्ति की जो रूप-मोहना प्रस्तुति हुई, उसका यथेष्ट प्रभाव सन्त-मत के स्वरूप संगठन पर पड़ा है । इस प्रकार मूल रूप में हम यह स्पष्ट देखते हैं कि उत्तर भारत में सन्त सम्प्रदाय की पीठिका निर्मित करने में अनेक गणबादों ने योगदान दिया है । बख्शाली साधकों की विचारधाराओं की प्रतिक्रिया में प्रस्तुति नाथपर्य की अनुभूति का योग यहाँ स्पष्ट मिळता है । महाराष्ट्र में प्रचलित विठ्ठल सम्प्रदाय की प्रेमासक्ति भावना का संस्पर्ध भी यहाँ उपलब्ध हो जाता है । रामानन्द द्वारा प्रतिपादित और उनके प्रभाव से बाह्यत अर्द्धतवाद और विशिष्टार्द्धतवाद की चिन्तन बारा का भी आंशिक समावेश यहाँ मिळता है । सूफी साधना बारा की रहस्यवादी निमूठि भी यहाँ पड़ीत है । इस प्रकार संतमत ने बौद्धदर्शन के अन्तर्गत उपलब्ध धनिकवाद दूम्यवाद, विज्ञानवाद तथा धर्मवर्णन और प्रतिभिज्ञा दर्शन के विभिन्न ठरकों को आत्मसात् किया है । कापाकिक और रसेस्वर साधना-बाराओं से भी यह मत प्रभावित है । साधना सम्बन्धी शब्दों के अन्तर्गत 'नाद' 'विष्णु' 'उन्मनी' आदि का बलिष्ठापक प्रयोग सिद्धों और नाथों के समान सन्तों ने भी किया है । तन-मन-साधना एवं वर्णन से सन्त विशेष प्रभावित थे । इतना होते हुए भी सन्तों की साधना और उनके काम्य का स्वरूप सिद्धों और नाथों से भिन्न था । उदाहरण स्वरूप राम को स्वीकार करते हुए भी उन्होंने उन्हें 'दसरथ सुत' से भिन्न माना है—

दसरथ सुत छिहुं सोरु बबाला, राम नाम का मरम न बाता ।

इसी दृष्टि से सन्तों ने पूर्व-परम्परा से प्राप्त 'मूय' 'तहज समाधि'

‘साधना’ आदि स्त्रियों का भवत्वाग करने अनुसूत किया है। इन सर्वत्र में कबीर से सम्बन्धित सन्त बापू के एक बोहे का उल्लेख यहाँ अवशिष्ट लगता है—

निपुन बापू को किया समाधु, तब ही बने कबीरा साधु।

सुईकी राह खोज सब छाड़ी हिन्दू के करनीठे पुनि म्यारी। दाहू।

(बेबिए—हिन्दी साहित्य की भूमिका प्र० पृ० ३७)। इस प्रकार कबीर साधना की उस मात्र भूमि की प्रस्तावना करते हैं जहाँ धर्म-जाति और वर्ण भाषा की सम्भावना समाप्त हो जाती है। इस प्रकार की अनुपेक्षा सम्प्रदाय की सम्प्रदाय के निर्माण में निरन्तर प्रियाधीन रही है।

हिन्दीसाहित्य में सन्त-मठ का जो स्वल्प विकसित हुआ है उसके स्वल्प पटल का आधिक्य खेप रामानन्द को है। रामानन्द से प्रदीप्त होकर ही कबीर ने निपुण सन्त-मठ का स्वल्प-विधान किया। मठ के इस स्वल्प का इन्होंने विस्तार दिया। इस प्रकार की भावना भी मिलती है कि धर्म का प्राथमिक दायित्व में हुआ, रामानन्द द्वारा उत्तर भारत में उसका संस्थापन हुआ सन्तद्वीप-मठगणों में उसका प्रसार कबीर द्वारा हुआ।

मछी दाबिइ अगरी साध रामानन्द।

परपट किया कबीर ने सन्त दोष नव सन्त।

रामानन्द की पिप्प परम्परा में रैदास कबीर, पद्मा देवी पीता भवानन्द, गुडानन्द, बाधानन्द, मुरमुरानन्द, परमानन्द, महादेव, कबीर भी रामानन्द की शर्मा की जाती है।

सन्तों की परम्परा

सन्त-परम्परा के इतिहास-विवरण के सम्बन्ध में ‘गीता बोधि-कार’ अथर्व का नाम आदि सन्त के रूप में प्रस्तावित किया जाता है। इस प्रकार की भावना मिलती है कि अथर्व सद्गुरुत्व से प्रभावित थे। ‘आदि ग्रन्थ’ में अथर्व के नाम से दो दो पंक्तियाँ मिलने हैं जिनमें से प्रथम में रामानन्द का उल्लेख है। महा-बाब के नाम-साब मन-बदन-कर्म से ही पात्रे-बाणी धर्म का भी उल्लेख मिलता है। दूसरे पंक्ति में नाम भूमि इन प्रकार है कि धर्म का स्वल्प दम और दाम

से घेष्ट है। कतिपय सन्दर्भों में यह संकेत मिलता है कि इनके 'गीतगोविन्द' में वर्णित राधा-कृष्ण सहस्रपात्रियों की साधना में उपलब्ध 'प्रज्ञा' और उपाय' के पयौबवाची है। परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। कतिपय विचारकों ने इन्हें निम्बार्क सम्प्रदाय का अनुयायी माना है। वास्तविकता यह है कि जयदेव सन्त परम्परा के अन्तर्गत नहीं आते हैं। जिस जयदेव के पदों का संकलन 'आदि ग्रन्थ' में मिलता है, वे 'गीतगोविन्दकार' से भिन्न थे। इसका निर्णय जयदेव के नाम से प्रचलित निम्नलिखित पद की भाषा से हो जाता है —

अब छत मेरिया, नाथ सब पूरिआ सूरसत ओइसायसु कीआ ।

अबक बस तोड़िया अबस बसु बापिया अपक बड़िया तहा बापत पीया ।

मग बासिगुण आदिबसरीआ । तेरी दुविधा हसरि संमानिया (छांउ १) ।

वरवि कत अरमिया सरवि कत सरभिया । ससस कत ससकि संमनि आइआ ।

बवति बँदेत कत रमिया बहसु निरवानु सिन कीन पाइआ ।

[मुद्रण्य साहित्य पृ० ११०६, ११२१, समुत्तर ।]

इस प्रकार हम हिन्दी-सन्तपरम्परा के सन्दर्भ में हिन्दी के पूर्व मराठी में उपलब्ध सन्तपरम्परा और हिन्दी सन्त-परम्परा के परवर्ती पंजाबी सन्तों की परम्परा का सम्बन्ध आवश्यक समझते हैं। इस दृष्टि से ही मराठी और पंजाबी परम्परा के साधकों और कवियों की जड़ी यहाँ की जा रही है। महाराष्ट्र में नाथ सम्प्रदाय की विविध धाराओं से सम्बन्धित साधना-परम्पराओं का उत्प्रेक्ष्य मिलता है। नाथ सम्प्रदाय के समानास्तर यहाँ 'महानुभाव सम्प्रदाय' का अन्वेषण होता है। मराठी में सन्तमत की परम्परा यहीं से आरम्भ होती है। हिन्दी में उपलब्ध सन्त मत का पूर्व रूप भी यहाँ उपलब्ध हो जाता है। इसके प्रवर्धक चक्रधर थे। इनका समय सन् १२१३ ई० के निकट पड़ता है। इनकी रचनाओं में प्रस्तावित भाव पक्ष का स्वल्प कतिपय संघों में हिन्दी-सन्तों की रचनाओं के भाव-मत्त के समान ही है। उपा०—

मूख स्थानी मिठ बन्ध बोधो हो कोई ना काण कतार्ई ।

गुह बचने उड़ियाया हड़ बन्धार्ई ने बीना बचक नाही ।

मुठी बंभी म्बिर होई जेने तहमी पाई ।

सो परी मोरो बेरी आपणां काई ।

×

×

×

पनि पंचामृत पावें जन हो बावटी आप जान स्वामी ।

पण पुरो हो मनिस्विर करो हो बन्ध में सीबा भान ।

आवा गमन हुई न बारो बुझि राखो जपन ये ।

म्हारिए बाबा निवारो निवारो हो मित्रे न पायो पाई ।

जैसे निरंजन लोको करी हो मान-जमान होन्ही नाहीं ।

—हिन्दी की मराठी सन्तों की शैली ।

महापद्मसिंह सन्त-परम्परा में सन्त सधना का नाम विशेष भावर के साथ दिया जाता है । नामदेव ने अपनी रचनाओं में इनका उल्लेख किया है । परन्तु इनकी बीवनी, इनकी रचना-मध्यामी और साधना प्रणाली के विषय में सामग्री उपलब्ध नहीं है । सधना या सधना नामक एक अन्य साधक की कहीं मिलती है परन्तु वे सिन्ध के निवासी थे तथा वे नामदेव के समकालीन थे ।^१

इस सन्दर्भ में बारकरी^२ सम्प्रदाय का उल्लेख अपेक्षित है । इसके प्रवर्तक संत पुंडलिक थे । इनका समय सन् ११२० के लगभग आता है । इस पंथ की मातृवृत्त्य भी कहते हैं । इसके विकास का इतिहास पाँच कालों में इस रूप में विभक्त किया जाता है—(क) मल्ल पुंडलिक से संत ज्ञानेश्वर तक (ख) संत ज्ञानेश्वर और नामदेव (१२७०-१३३०) तक । (ग) संत ज्ञानदास और संत एकनाथ (१३३०-१४८८) तक । मल्ल विरोमणि मुक्ताम और संत तिलोत्ताराम (१३८८

१ नामदेव से इनका परिचय एकोय की कवरा में हुआ था । यहाँ वे सन्त-परम्परा में द्रोणित हुए थे—इसलिए उत्तर भाग की सन्त परम्परा ।

पृ०—१०० ।

२ बारकरी का सन्दर्भ है बारी (बाबा) बरी (करनेवाला), परन्तु महापद्म में पार्थिव दृष्टि से उसे बारकरी कहते हैं जो पंडरपुर स्थित श्रीविठ्ठल मूर्ति का उपासक है और जो आषाढ़ तथा एकादशी को पंडरपुर की विमिन यात्रा करता है ।

१७२०) । तब संत महीपति और उनके परचाव (१७६०) तक । यह सम्प्रदाय मूर्खतयाव को मानता है । व्यापक निर्गुण और निराकार के प्रति आस्थावान होते हुए भी उसके सगुण रूप पर भी यहाँ विश्वास मिश्रता है ।

संत ज्ञानेश्वर संत ज्ञानेश्वर का जन्म सन् १२७५ (यके ११६७ आषाढ मघ ८ को) पैठा से चार कोस पर गोदावरी के उत्तर किनारे आपे पाँच में हुआ था । संत ज्ञानेश्वर और नामदेव इन दोनों ने एक साथ उत्तर भारत की यात्रा की थी । इसका उत्कृष्ट नामदेव रचित 'तीर्थीवलि' के ५६ अंशों में है । इसकी मृत्यु अश्वि सन् १२६९ है । इन्होंने 'माभार्य वीरिका' (ज्ञानेश्वरी) 'अमृतामृत' 'हरिपाठ के अंग' इत्यादि रचनाएँ की हैं । 'ज्ञानेश्वरी' श्रीमद्भगवद्गीता की टीका है । ऐसा विश्वास प्रकट किया जाता है कि उत्तर भारत में भ्रमण करते समय इन्होंने हिन्दी में भी कतिपय पदों की रचना की थी । यथा—

सब बट देखो मानिक मीना,
कैसे कहूँ मैं काछा बबका ।

× × ×

निर्गुण ब्रह्म भुवन से प्यारा ।

पीपी पुस्तक भए अपारा ।

कोरा कागज पढ़कर जाय ।

तेना एक और देना दोय ।

× × ×

निर्गुण बाठा कटौ हतौ ।

सब भुय बन में जाय हित ।

सदा सर्वदा मज्जक होय ।

तेना एक न देना दोय ।

एक अन्य उदाहरण —

छोई कच्चा बे नहीं गुह का कच्चा

हुनिया तबकर बाक रमाई, बाकर बैठे बन मों ।

सेवरि मुहा बजासत मों ध्यान परत है मुत मों ।

धीरप करके उम्मार छोई, बागे ज़ुमति मो सारी ।

हकूम निवृत्तिका आनेस्वर को लिनके ऊपर जाना ।
 सवुपुठ की हुना भई तब आपहि आप विखाना ।
 ये रचनायें (किसी भी रूप में) नामदेव की नहीं हो सकती हैं । इनका
 प्रचलन नामदेव के नाम से बहुत बाद को हुआ लगता है । इनकी माया
 अगरबी घताबी के परभाव की है ।

संत नाम देव (१२७०-१३५०) —संत नामदेव बारकरी सम्प्रदाय के
 सप्युतम प्रचारक थे । उत्तर भारत में कबीर का जो स्थान है वही स्थान महा
 राष्ट्र में संत नामदेव का है । इनका जन्म सन् १२७० में गरसी बाहुमधी नामक
 ग्राम में एक वर्षी कुल में हुआ था । बिल्डम-मछि इनके परिवार की विशेष
 मछि-मिवा थी । आनेस्वर के साथ इन्होंने उत्तर भारत की यात्रा की थी ।
 पंडरपुर के मन्दिर के महाद्वार पर ८० वर्ष की आयु में इन्होंने समाधि ली थी ।
 गुरु नामक तथा गरसी मेहता ने इनकी मछि की महत्ता स्वीकार की है और
 इनके व्यक्तित्व-उद्घाटन में अनेक पदों की रचना की है । यथा—

पूर्व पंडरपुर मोझर । बाहुमधी धामी सर्वक गाय ।
 उई बाँधी मुसठाम सभाम ॥

नामदेव गाय संजीवन करे । तो तुलसी माता कंठ पर ।
 ते नामदेव गी जिवाडी गाय । एवा समरन बंभुष्ट राय ॥

—गरसी मेहता ।

इस प्रकार की किम्वदन्ती है कि संत नामदेव ने लगभग १००० 'अमंत्रों' की
 रचना की है । ये अमंत्र 'नामदेव की गाथा' नामक ग्रंथ में संक्षेपित हैं ।
 'गुरु ग्रंथ साहिब' में नामदेव के ६५ पद संकलित हैं । 'गुरु ग्रंथ साहिब' का संकलन
 नामदेव के समाधिस्थ होने के लगभग छह सौ वर्ष पश्चात् हुआ है । अतः इस
 संकलन के पदों को नामदेव के मूल पदों के रूप में हम नहीं स्वीकार कर सकते ।
 इन पर पंजाबी का प्रबल प्रभाव मिलता है । राही बोखी कदमापा तथा अन्य
 पूर्वी कविताओं के अंश इनमें जगल्ल हो जाते हैं । संत नामदेव संत आनेस्वर के
 दिव्य विरोधा तोषर से दीक्षित हुए थे । और बीजा के परभाव के बोध-मार्ग की
 ओर आकर्षित हुए । नामदेव के नाम से प्रसिद्ध रचनाओं में से कुछ अंश यहाँ

प्रस्तुत हैं । वस्तु-स्त और अमिष्यंजना प्रधासी, इन दोनों ही दृष्टियों से ये रचनायें हिन्दी-संत-रचनाओं के अनुकूल हैं—

अबधु मधु निराकार सहि अनहत बेनु बजाऊ गो ।
इहा पिंगला अड्ड मुबमना पडनै बौधि एहाउमो ॥
चंद्र मुरख दुई सम करि राखत कस्य ज्योति मिळि जाऊँधों ॥

अपवा —

अम अनहत सूर उबारा, तह दीपक बसे छाँसारा ।
गुहपर छाबी जानिआ अनुनामा सहज समानिआ ।

अपवा राम भैरव—

मैं बछरी मेरा रामु भठाक ।
रवि रवि ठाकठ करठ सिगाक ॥
भले निदठ भले निदठ भले निदठ लोमू ।
तनु मनु राम पियारे जोमू ॥

इसकी तुलना कबीर-रचित 'हरि मेरो पित मैं राम की बहुरिआ' अपवा 'दुबहिन गावहु मंगलवार, हम बर जाए राबा राम मतार' सीर्यक पदों से की जा सकती है । गामरेव 'नाम स्मरण' के प्रति आग्रह व्यक्त करते हैं । अपनी वाचियों में बुर की महिमा का वर्णन करते हैं । 'उम्मी अपवा' में उपलब्ध 'अय-मोय' का वर्णन करते हैं । उम्मी अपवा' और 'अमल गाव' का विस्तार कबीर और अन्य संत सावकों में उपलब्ध होता है । उसका स्वयं गामरेव की रचनाओं में मिल जाता है । पंडरपुर की बिट्ठक प्रतिमा को गामरेव ब्रह्म के व्यापक स्वयं के रूप में सम्मान देते थे । कबीर ने इनकी परम्परा के अनुकूल ही अपने अनेक दोहों में 'बिडुला' का प्रयोग व्यापक ब्रह्म के लिए किया है—

गोबुल नाइक बिडुला मेरो मन जायी तोहि रे ।
बहुतक सिन बिभुरे भए, तेरी औसरि भावे मोहिरे ॥
मन के मोहन बिडुला बहुमत जायडु तोहि रे ।
वरन कमल मन मानिआ, और न भावे मोहि रे ॥

—कबीर

संत एकनाथ (सन् १५३३-१५६६) संत एकनाथ का जन्म दक्षिण काशी केज्ज में संत भानुदास के कुछ में सन् १५३३ में हुआ था। ये भानुदास के पीछे थे। इनके पिता सूर्यनारायण थे, और उनकी माता का नाम इक्षिमयी था। इनका जन्म मूल गजप में हुआ था। इनका उल्लेख एकनाथ ने इस प्रकार किया है, 'मूल की मूल में ही एकनाथ ने जन्म ग्रहण किया। यह मूल गजप ऐसा था पड़ा कि मैंने दोनों को निर्मूल कर दिया। उन्होंने गजप की शान्ति की सो वे स्वयं ही शान्त हो गए।' ^१ इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'बतुःस्तोत्री भागवत', 'हस्तमासक' 'भामन्द सहुरी' 'गामनामवत' 'ज्ञानेश्वरी का संशोधित पाठ' 'भाबार्च रामायण' 'श्रवण'। एकनाथ के नाम से सम्बन्धित कतिपय हिन्दी रचनाएँ भी उपलब्ध हुई हैं।

हिन्दी में सन्त-परम्परा

कबीर — हिन्दीसाहित्य में सन्त-काव्य धारा का स्पष्ट और स्वतन्त्र स्वरूप कबीर द्वारा संस्थापित होता है। कबीर युग चिन्तक युग-उन्मायक और पछे इन विभिन्न भूमिकाओं में अपने व्यक्तित्व का प्रसार करते हैं। अपने एक दोहे में उन्होंने कहा है—

तुम्ह जिन जानों पीत है, पटु निज बड़ा बिचार
केवल कहि समुझाव्या भावम साधन सार रे।^१

अर्थात्, इन गीतों में भावार्थकता की अपेक्षा ब्रह्म-सम्बन्धी कबीर की अपनी माननायें व्यक्त हैं, जो बारमानुमति द्वारा ही उपलब्ध हैं। कबीर ने एक व्यापक मानवतावादी आदर्श की सम्भावना को अपने सम्मुख रखा है। इस आदर्श में उन्होंने जीवन के पर्यात्मक सौन्दर्य को परिवर्द्ध किया है। इनमें 'बहुजन हिताय' और 'बहुजन सुखाय' की मानना नैसर्गिक रूप में सहायित हो उठी है। इनका परिचय इस अर्थ से मिल जाता है।

हरिजी यहै बिचारिया सानी कहै कबीर।

भी सागर में बीज है ये कोई बगड़े तीर।^२

सम्भवतः उनकी साक्षियों से भवभाव में बड़े व्यक्तियों को जीवन का छट पिक था यह बिचार उनही भावना का वेद-दण्ड है।

१ दैगिए—मराठी का भक्ति साहित्य पृ० १२०।

२ कबीर उपासनी पृ० ८०-पद २।

३ कबीर उपासनी पृ० ४६ आरप की ओर।

कबीर का व्यक्तित्व मध्यकासीन साधकों में अनेक दृष्टियों से आकर्षणपूर्ण रहा है। नायादास ने कबीरदास का जो परिचय दिया है उससे उनके मानसिक गठन का परिचय मिल जाता है—

कबीर कानि राखि नहीं बर्णायम पटवरसनी ।

भक्ति विमुख जो बर्म मुख अघरम करि मामो ।

योग बय्य जत बान भजन बिनु तुच्छ दिखायो ।

हिन्दु गुरक प्रभाम रमैनी सबही साखी ।

पक्षपात नहि बधन सबही के हित की भाखी ॥

आकड़ बहा हूँ बगल पर मुख देखी नाहिम मनी ।

कबीर कानि राखी नहीं बर्णायम पटवरसनी ॥६०॥ (१५४) १

कबीर ने विरोधों के बीच जन्म लिया और विरोधों के मध्य ही वे विकसित हुए। ऐसा विश्वास किया जाता है कि कबीर का जन्म विजया ब्राह्मणी के गर्म से हुआ था, और उनका पाकन-पोषण मुसलमान बुजारे गीर के वहाँ हुआ था। इस जन प्रचलित भावना में कितना सत्य है इसका निर्णय करना सरल नहीं और यह आश्चर्य भी नहीं है। परन्तु इससे यह संकेत अवश्य मिलता है कि उनके व्यक्तित्व का निर्माण विरोधी तत्वों और संस्कारों से हुआ था। वे विरोधी परिस्थितियों के मिहन-बिन्दु पर अवतीर्ण हुए थे। मुसलमान उन्हें मुसलमान नहीं मानते थे हिन्दु उन्हें उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे। समग्रता की दृष्टि से हम यह कह सकते हैं कि उनके व्यक्तित्व का विकास ऐसे वातावरण में हुआ, जिसमें हिन्दुओं और मुसलमानों में प्रतिस्पर्धी की भावना उच्च रूप धारण करती जा रही थी। पण्डितों की कटिवादी दृष्टि, ज्ञान की परिमा से मण्डित उनका व्यक्तित्व और शिष्ट की भावना की चरम सीमा उनके सम्मुख थी। दूसरी ओर सामाजिक स्तर पर परिष्कार अधिष्ठा का मयाबह रूप था। योग-भावना के समानांतर भक्ति-भावना प्रचलित थी। समुक्त भक्ति और निर्मुक्त भक्ति इन दोनों का प्रभावपूर्ण अस्तित्व था। इस प्रकार अपने मूल में प्रचलित समस्त मान्यताओं की

प्रतिश्रुतिवा स्वीकार करते हुए कबीर ने अपने पद का निर्माण किया और अपने अनुसूय सत्य पर उन्होंने सर्वत्र निश्वास किया ।

कबीर जीवन में आत्मा रखने वाले साधक थे । उनकी साधना और भक्ति का अङ्कुरण इसी आत्मा का प्रतिफलन था । यही कारण है कि उनमें भक्ति, ज्ञान अनुराग विराग आकर्षण और विकल्प इन समस्त तत्वों के समन्वय की सहृदी चेष्टा विद्यमान है । योग की साधनात्मक प्रक्रियाओं से प्राप्त प्रसाद जीवन की सापेक्षता में ही उपलब्ध हो सकता है इसका निश्वासपूर्ण प्रस्तावन इस पद में निकला है —

संतो सहज सहज समाधि भली ।
छाई ते मिलन भयो ना निम ते मुरत न भन्य भली ।
जौन न मूढ़ कान न कबू काया कष्ट न धारू ।
कुले नैन में हँस-हँस देखू, सुन्दर रूप निहारू ।
कहू सो नाम मुनू सो मुमिरन जो कछु करू सो पूजा ।
मिरह सघाम एक सम देखू भाव मिटाके हुआ ।
जहँ-जहँ जाके छोई परिकरमा जो कछु करू सो सेवा ।
जब सोके तब करू दण्डकट पूजू और न देवा ।
घर निरखर मनुजों राधा मखिन बचन का त्यागी ।
ज्यठ बैठत कबहू न बिसरे ऐसी ठारी सापी ।
कई कबीर यह उम्मत रहनी छोई परपट कर गार्ई ।
मुल-मुल के इक परे परम मुख ठैहि में रहा समार्ई ।

कबीर : हुजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० २४६ ।

संत कबीर की बीबनी का निर्धारण अनुपुत्रियों के आधार पर ही होता रहा है । अतः उनकी प्रामाणिक बीबनी अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी है । कबीर कभी इन्हें सत्यपुरुष मानते हैं । उनकी यह धारणा है कि सत्यपुरुष का ठेग काशी के सहज ठानाब में संभव है । यद्यपि वेठ गुरी सोमवार को मरजित हुआ था । नीरु पुन्नाई की स्त्री को पुण्य के पद पर पौड़ा हुआ आसक मिला था । (देखा — 'कबीर चरित्र बोध' पृ० ६ की बेट्टेदेवर देव बम्बई संवत् १८९३) । कबीर का परिवार 'प्रसव बाटियात' नामक ग्रन्थ से भी प्राप्त होता है ।

पीपा, सेन रेवास, के साथ कबीर का भी सम्बन्ध इस ग्रन्थ में मिलता है। वहाँ इन्हें रामानन्द का शिष्य कहा गया है। इस ग्रन्थ में नीरू और नीमा का भी उल्लेख मिलता है। अपने बाबाय्य रामानन्द के साथ कबीर ने उत्तर भारत का व्यापक भ्रमण किया था, इसकी बर्णना भी यहाँ मिलती है। (देखिए स्वामी रामानन्द और प्रसंग पारिभाषा :—संकर दयाशु श्रीवास्तव हिन्दुस्तानी १९३२)। कबीर पंथियों में इनके जन्म से सम्बन्धित निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध है।

जीवहु छी पञ्चन साठ मए, कन्नवार एक ठाट ठए।

बेठ मुबी बरसामत को पूरनमासी प्रकट मए।

अनन्तदास ने अपनी रचना 'कबीर साहब की परचई' में कबीर का विस्तृत उल्लेख किया है। इनका समय पन्द्रवीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। इनका भावि मौन सन्त रेवास के पश्चात् हुआ था। इस ग्रन्थ में कबीर की जीवन-स्थिति का उल्लेख नहीं है परन्तु इससे कबीर के जीवन के कतिपय पक्षों पर प्रकाश पड़ता है —

१ वे काशी के जुलाहा थे।

काशी बसे जुलाहा एक हरि भवति की पकड़ी टेक।

२ वे गुरु रामानन्द के शिष्य थे।

गुरुम भवति कबीर की नीन्ही परबा जोस्या बछ्मा बीन्हीं ॥

भाव बड़े रामानन्द गुरुपाया। जा मन मरण का भ्रम समाया।

३ सिकन्दर शाह काशी में आया था। उसने कबीरदास पर आस्था प्रकट किया था।

साह सिकन्दर काशी आया। काशी मुल्ला के मनि धाया।

कई सिकन्दर ऐसी बाटा। हूँ तोहि देपू पोखिय जाटा।

पाऊल संक स मॉने मोरी। अब देपू सांघी कपामति तोरी।

बौंझो पप मेरहो बंजीरु। लें बोरपो गंगा के नीरु।

४ कबीर ने ६२० वर्ष की आयु पाई थी।

बाळ फौं बोपा में बयो। बीस बास तैं चितन भयो।

बीस सऊ कम कीनी मयती। ता पीछे पारि है मुच्छी।

इस रचना के यह स्पष्ट होता है कि बीस वय की अवस्था में इन्हें धर्म-ज्ञान मिला था। जो वर्ष तक इन्होंने मक्ति का प्रचार किया इसके पश्चात् इनकी मृत्यु हो गई।

अनुसूचक ने 'भार्गव-ए-अकबरी' (संवत् १९१३) में कबीर का उल्लेख किया है। इस ग्रन्थ के अनुसार कबीर मुहावित (मठ तबाही) थे। इस ग्रन्थ में इसका उल्लेख मिलता है कि मुवा भवन के अन्तर्गत रतनपुर में इनके दो मजार हैं। मृत्यु के पश्चात् मुसलमानों द्वारा इनके शव का दफनाने और हिन्दुओं द्वारा बाढ़ने का उल्लेख मिलता है। पर भाषाकोश सम्प्रदाय से कबीर के आदिमार्ग काल का परिचय नहीं मिलता है। संत कबीर की जीवनी के निर्धारण-हेतु 'पुरुष ग्रन्थ साहिब' का संदर्भ दिया जाता है। सिद्धार्थ के पीछे यह भी अर्जुनदेव ने इसका सम्पादन किया था। इस ग्रन्थ में कबीर के 'राग' और 'यमोक्त' संग्रहित हैं। परन्तु इनसे कबीर के जन्म का उनके आदिमार्ग काल का परिचय नहीं मिलता। कतिपय संस्करणों में अनेक छन्दों ने कबीर का उल्लेख किया है।

यथा —

१ नाम छोड़ा कबीर बुझाहा पूरे गुरसे पाई। (नामक सिरी राम)।

२ नामदेव कबीर ठिकोचनु सचना सीमु ठरे।

कहि रविदासु सुनतु रे संतहुं हरिबीर ते समे ठरे।

(यमक रविदासी राग भासा)।

इस संदर्भ में यह विस्मय भी प्रकट किया गया है कि कबीर कायक के समकालीन थे। कबीर के राग बौद्ध (४) तथा राग घेरठ (१८) संस्था के ८०

१ इस ग्रन्थ का उल्लेख हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों के संक्षिप्त विवरण के पृष्ठ ८७ पर किया गया है। हस्तलिखित ग्रन्थ का नम्बर १२८ है। इसका संवत् १९१७ (१९००) है। इसके दो भाग हैं जिनमें पोषा और रंदास की जीवनीयों हैं। इनके नाम ही कबीर की जीवनीयों हैं। अतः इस ग्रन्थ में उल्लेखित कबीर का जीवन-परिचय भी अनुसूचियों पर आधारित है। डॉ० रामधुमार वर्मा ने विश्व प्रति का उल्लेख किया है। इसका प्रतिलिपि नाम है संवत् १९४२ (७५ १७८३)। 'यह बापू हजार भौ' के मुद्रित का एक अंश है। ईसापूर्व हिन्दी साहित्य का भाषाकोशनामक इतिहास द्वितीय संस्करण पृ० २२६ २१०।

भी प्रमाण स्वल्प दिए जाते हैं। प्रोफेसर बी०बी० राय ने अपने 'सम्मन्नाथ' सीर्यक ग्रंथ में इसका उल्लेख करते हुए कहा है 'गुरु मानक जो कबीर के साथ भी मौजूद था और जिसने बहुत सी तात्वीमी बातें अपने भावि ग्रन्थ में इतिबास की, सन् १४६० ई० (१५४७) में अपनी तात्वीमी केनी गुरु कीं सो कबीर का उससे थोड़ी भूत मौजूद होना भी मुमकिन है।' इस वक्तव्य से बाकोष्य विषय का स्पष्टीकरण नहीं होता है। कारण यह कहा जा चुका है कि 'भावि ग्रन्थ' एक संग्रह ग्रंथ है, जिसका संकलन गुरु अर्जुनदेव ने संवत् १५५१ में किया था। मानक ने कबीर का साक्षात्कार किया था इसका विश्वासपूर्वक समर्थन नहीं किया जा सकता। इस ओर संकेत करते हुए परधुराम कर्तुर्वेदी ने लिखा है 'भावि ग्रंथ केवल गुरु मानक की ही रचना न होकर एक संग्रह ग्रन्थ है, जिसमें गुरु मानक कबीर भावि के वतिरिक्त उन विद्वत् पुरुषों की भी रचनाएँ संग्रहित हैं जो गुरु मानक के पीछे हुए थे और जिसका संग्रह काल वास्तव में पाँचवें गुरु अर्जुनदेव (१५५०-१५६३) के समय सं० १५५१ में बतलामा जाता है। गुरु मानकदेव १५, १६ साल की अवस्था में अपने पिता की बाढ़ा से मारी बाठा के साथ व्यापार करने निकले थे। उस समय छाहोर के मार्ग में जो गूँघे छाबुओं का बच्चाड़ा था औरकाला के पास मिठा था वह कबीर पत्थियों का ही रहा होना तथा वे सोच अपने मठ के प्रचारार्थ दूर-दूर तक फेंक गए होमि और इस प्रकार अत्यन्त कम से कबीर साहेब के सिद्धान्तों द्वारा उनका प्रभावित हो जाना कोई असम्भव बात नहीं। देखिए—उत्तरी भाग की सप्त परम्परा—पृ० ७१४।

नामावास के ग्रन्थ 'मक्तमाज की टीका' का अवलम्ब ग्रहण कर कबीर की जीवनी के निष्पत्ति का प्रकल किया जाता है। 'मक्तमाज की टीका' संवत् १७०२ में लिखा गई। यहाँ दो तथ्यों की ओर संकेत किया गया है —(१) कबीर सिक्न्दर लोदी के सहकालीन थे। सिक्न्दर लोदी ने उन पर अत्याचार किया था। (२) कबीर रामानन्द के शिष्य थे। यदि इन दोनों तथ्यों का काळ-निर्धारण हो सका तो कबीर के आविर्भावकाल का कुछ पचरिय हूँ मिल सकता है।

प्रायः समस्त इतिहासकार कबीर और सिक्न्दर लोदी को समकालीन मानते हैं। परन्तु यहाँ तक भुल जात है सिक्न्दर लोदी और कबीर से सम्बन्धित बटना का सर्वप्रथम उल्लेख अनन्तदास इष्ट 'कबीर साहेब की परिचई' में मिलता

भी प्रमाण स्वरूप दिए जाते हैं। प्रीफेसर बी०बी० राय ने अपने 'सम्प्रदाय' शीर्षक ग्रंथ में इसका उल्लेख करते हुए कहा है 'गुड नामक जो कबीर के बाद भी मौजूद था और जिसने बहुत सी ठासीमो जाते अपने जाति ग्रन्थ में इतिबास की, सन् १४६० ई० (१५४०) में अपनी ठासीम ऐनी शुरु की सो कबीर का सबसे बड़ी मुश्त मौजूद होना भी मुमकिन है। इस सम्बन्ध से आलोच्य विषय का स्पष्टीकरण नहीं होता है। कारण यह कहा जा चुका है कि 'जाति ग्रन्थ' एक संग्रह ग्रंथ है जिसका संकलन गुरु अर्जुनदेव ने संवत् १५५१ में किया था। नामक ने कबीर का साक्षात्कार किया था इसका लिखासपूर्वक समर्थन नहीं किया जा सकता। इस ओर संकेत करते हुए परमुराम ज्युर्वेदी ने लिखा है 'जाति ग्रंथ केवल गुड नामक की ही रचना न होकर एक संग्रह ग्रन्थ है, जिसमें गुरु नामक कबीर, जाति के अतिरिक्त उन सिख गुरुओं की भी रचनार्य संग्रहीत हैं जो गुरु नामक के पीछे हुए वे और जिसका संग्रह काल वास्तव में पाँचवें गुरु अर्जुनदेव (१५२०-१५६९) के समय सं० १५५१ में बतसाया जाता है। गुरु नामकदेव १५, १६ साल की अवस्था में अपने पिता की बाढ़ा से भाई बाला के साथ व्यापार करने निकले थे। उस समय जाहोर के मार्ग में जो भूले साधुओं का बजाड़ा था ओरकाला के पास मिला था, वह कबीर पत्नियों का ही रहा होगा तथा वे लोग अपने मठ के प्रचारार्थ दूर-दूर तक फैल गए होंगे और इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से कबीर साहेब के सिद्धान्तों द्वारा उनका प्रभावित हो जाना कोई असम्भव बात नहीं। देखिए—उत्तरी भारत की सप्त परम्परा—पृ० ७१४।

नामादास के ग्रन्थ 'मक्तमास की टीका' का अवसम्भ ग्रहण कर कबीर की जीवनी के निर्धारण का प्रयत्न किया जाता है। 'मक्तमास की टीका' संवत् १७०२ में लिखा गई। यहाँ दो तथ्यों की ओर संकेत किया गया है—(१) कबीर सिक्न्दर लोदी के सहकासीन थे। सिक्न्दर लोदी ने उन पर स्थापार किया था। (२) कबीर रामानन्द के शिष्य थे। यदि इन दोनों तथ्यों का काम निर्धारण हो सका तो कबीर के आधिभौतिककाल का कुछ पचरिय होंगे मिल सकता है।

प्राक् समस्त इतिहासकार कबीर और सिक्न्दर लोदी को समकालीन मानते हैं। परन्तु यहाँ तक मुझे ज्ञात है सिक्न्दर लोदी और कबीर से सम्बन्धित घटना का सर्वप्रथम उल्लेख अनन्तदास कुल कबीर साहेब की परिचर्च में मिलता

४ बिस्मू—	History of the Rise of the Mohamden Power in India	सन् १४८८ १५१७ (संवत् १५४२ १५७४)
५ मेकालिफ	Sikha Religion	सन् १३९८ १५१८ सिहासनासीन (संवत् १४२३ १५७२ सन् १४८८ (संवत् १५४२)
६ कैवट—	Kavir and the Kavir Pantha	सन् १४४० १५१८ सन् (संवत् १४९७ १५७२) १४९९ संवत् १५२३ बीनपुर गमन
७ स्मिथ—	Oxford History of India	१४४०-१५१८ सन् १४८९ (संवत् १४९७ १५७२) १५१७ (संवत् १५४९-१५७४)
८ भण्डारकर	Vaisnavism, Saivism and minor Religious System	सन् १३९८ १५१८ सन् १४८८ (संवत् १४२३ १५७२) १५१७ (संवत् १५४९ १५७४)
९ ईस्वीप्रसार	New History of ईसा की पञ्चाब्दी India	सन् १४८९ १५१७ (संवत् १५४९ १५७४)

इस प्रकार प्रमुख इतिहासकारों के अनुसार विक्रमर खीरी का समय सन् १४८८ ८९ से सन् १५१७ (संवत् १५४२ ४३ से १५७२) तक माना गया है। और इस सम्बन्ध के अनुसार कबीर का समय भी यही रहा होगा। (देखिए—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—पृ० २३६)। परन्तु इस सम्बन्ध में एक अन्य सत्य की ओर हमारा ध्यान आटा है। बस्ती जिले के मयहर नामक स्थान पर बामी नदी के तट पर बिजली खाँ ने कबीर की समाधि बनवाई थी। यह घटना सन् १४२० (संवत् १२०७) की है। इस प्रकार कबीर की निधन तिथि इस सन् या संवत् को मानना चाहिए। विक्रमर खीरी का समय कबीर के निर्धारित समय के अकृति बर्य कहावत पड़ता है। अतः इन सम्बन्धों से वस्तु स्थिति का स्पष्टीकरण नहीं हो पाता है। डॉ० रामकुमार बर्मा ने इसके

समाधिमान है। एक प्रस्ताव निम्ना है। उनकी भावना है कि सन् १४५० में स्थापित समाधि कबीर का मरणाधिक नहीं है। इसके विपरीत यह उनका स्मृति चिह्न है। जिसकी शी ने कबीर के जीवनकाल में ही इसका निर्माण किया था। जिदाई शी ने १२७ वर्ष पश्चात् इस स्मृति चिह्न का उद्धार किया और अन जीवन में यह कबीर की समाधि के रूप में प्रचार पा गया। (हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० २१७)। डॉ० वर्मा के निष्कर्ष का कोई प्रामाणिक आधार नहीं है। कबीर और सिकन्दर खोरी को समकालीन सिद्ध करने के लिए ही विद्वान सेक्टर ने इन प्रकार की कल्पना की है। बाव भी कबीरपदियों में एक विशेष प्रथा मिलती है। साधक अपने जीवनकाल में ही अपनी समाधि की व्यवस्था कर लेते हैं, और मायु प्यसीत कर उस घूमि में धरीर-स्थाप्य करते हैं। मय्या धरीर छूटने पर कहे उसमें समाहित कर दिया जाता है। बहुत सम्भव है कि अपने जीवनकाल में ही अपनी आत्मभूमि मय्यह में कबीर ने अपनी समाधि की व्यवस्था कर ली हो। और जीवन का सम्पूर्ण प्राप्त कर लेने के पश्चात् उसमें समाधि के ली हो। परन्तु स्मृत समाधि के निर्माण के १२७ वर्षों पश्चात् कबीर अपनी समाधि में समाहित हुए, इसके लिए हमारे पास प्रमाण नहीं है। लोक-जीवन में प्रचलित अनुष्ठानों और इतिहास की अस्पष्टताओं से इस समस्या का निदान सम्भव नहीं है।

मेरी धारणा की तर्कितिक प्रामाणिकता कबीर के निम्नो-सम्बन्धी लोक-जीवन में प्रचलित मान्यता में मिल जाती है। 'कबीर कसौटी' नामक ग्रन्थ (रचना काल संवत् ११४२, पत्रक लैङ्गातिह कबीर पन्नी) में कबीर की मृत्यु से सम्बन्धी एक दोहा उपलब्ध होता है 'संवत् ११४२ के पद्यतय विवा मय्यह को रीत। मायमुदी एकादसी, रत्ने पल में पवन' (कबीर कसौटी भूमिका पृ० १४)। 'एक रचना में इसका भी उल्लेख किया गया है कि, 'भी कबीरजी काशी में एक ही रीत बरत रहकर मय्यह गए।' काशी से माय गुरी एकादसी दिन बुधवार, सं० १५७२ को उन्होंने मय्यह के लिए प्रस्थान किया था और उही दिन वहाँ से चतुर्धर काशी से मय्यह तक की 'एक मंजिल' की दूरी तय की वहाँ पहुँचकर

१—पी पद्मनाभ बगुबेनी-वसती भाग्य की संत परम्परा से यह सूचना ग्रहण की गई है। इसलिए पृ० ७१० पृ११

जिंसी संत की एक छोटी कोठरी में जो वर्तमान जामी मरी के किनारे की छेदकर बाहर जोड़ ली बाहर से ठाका बन्द कर दिया और एक मछोकिंग प्लानि में साब सत्य लोफ सिधार गए ।^१ यदि हम इस कथन की प्रामाणिकता सिद्ध कर सके तो कबीर का जन्म या आविर्भावकाल संवत् १४२५ मा सम् १३६८ होया । ठासी ने भी अपनी कृति 'इस्वार व-का किठोरात्पूर ऐहूई ऐहूस्तानी' (सं० १८६६) में इस बोहे की ओर संकेत किया है । और परवर्तीकाल में इस विषय पर विचार करने वाले आलोचकों ने इसे प्रामाणिक मान लिया है ।^२

कबीर को मृत्यु तिथि को प्रस्तावित करने वाले आचार्यों में आचार्य अतिथि मोहन सेन और डा० पीताम्बर दत्त बड़म्बास का उल्लेख आवश्यक है ।

इनके अनुसार कबीर का मृत्यु संवत् १५०५-७ (सम् १४४८-५०) है । इनका जन्म-संवत् १४२२ (सम् १३८६) है । इस प्रकार इनकी चारणा है कि जिसकी लौ ने इनकी मृत्यु-समाधि निर्मित की थी । अतः इस सन्दर्भ में प्रस्तुत हो विचार धारामें सम्मुख आई ।

(क) प्रथम धारा इनका जन्म काल संवत् १४२५ (सम् १३८६) मानती है । इसके अनुसार इनका मृत्यु-काल संवत् १५७५ (सम् १५१८) है । ३२ वर्ष की अवस्था में इनकी समाधि निर्मित की गई (सन्तों की परम्परा के अनुसार) । समाधि निर्माण के ७५ वर्ष पश्चात् कबीर समाधिस्थ हुए ।

(ख) द्वितीय धारा (प्रथम धारा के अनुसार) इनका जन्मकाल संवत् १४२२ (सम् १३८६) में मानती है परन्तु मृत्यु तिथि के रूप में १५०५-७ (सम् १४४८-५०) स्वीकार करती है । इसके अनुसार कबीर की मृत्यु ९१ वर्ष की आयु में हुई । परन्तु जिसकी लौ कबीर के अनुयायी ने अपना सन्तोंने कबीर की समाधि बनवाई इसकी पुष्टि किसी ऐतिहासिक आचार से नहीं होती है । पीताम्बर दत्त बड़म्बास इनका जन्मकाल संवत् १४२७ में मानते हैं और इनके अनुसार इनकी

१—बेस्टकाड मैकालिफ़, बालम्बर प्रसाद अम्बरहिंस डॉ० भंडारकार, फर्गुहर, श्यामसुन्दर दास रामचन्द्र शुक्ल इसे ही ग्रहण करते हैं । मण्डारकर श्यामसुन्दर दास इनकी आयु १२० वर्ष मानते हैं । बेस्टकाड और अम्बरहिंस, फर्गुहर उनका जन्म काल सं० १४६७ मानते हैं ।

आयु ७८ वर्ष की थी। इस प्रकार इनके अनुसार कबीर की मृत्यु सम्वत् ११०१ में हुई थी। परन्तु विद्वान् केवल ने अपने निर्धारण का कोई कारण नहीं दिया है।

इस प्रकार कबीर की जन्मतिथि या उनके आदिमौर-काल का निर्णय हम नहीं कर सकते। विभिन्न अनुपुष्टियों और ऐतिहासिक तथ्यों से यह संकेत मिलता है कि कबीर का जन्म संवत् १४११ या १४१६ में हुआ था। श्री परमुराम चतुर्वेदी डॉ० बड़बवाल के अनुसार ही खोजते हुए कहते हैं। यदि सांकेतिक रूप में वे संवत् १४२१ को कबीर का जन्म संवत् मानते हुए कहते हैं 'यदि आनन्द दास की परवर्ती सामाजिक मान ली जाय और उसके वैयक्तिक का एतदनुगामी कथन भी साथ निकल जाये तो इस विषय में 'तीस बारस है जेठन जयो' के सहारे हम उनके जन्मकाल के लिए संवत् १४११ इ० १४२१ से शक्ति और बँसा होने पर कबीर साहब मैथिल कवि विद्यापति (सं० १४१७-१५०१) के समसामयिक हो जायेंगे। ऐसी रचना में इस अवस्था की भी पुष्टि होती हुई थीय पड़ेगी कि आशाम के प्रसिद्ध मठ कवि संकर देव (सं० ११०१ ११२१) ने अपनी उत्तरी भारत की दृश्य वर्णना सीमा यात्रा (सं० ११४० ११४२) के अनुसार पर कबीर साहब की स्मरणिके भी वर्णन किए थे। इससे—'उत्तरी भारत की सन्त परम्परा', पृष्ठ ७३३। कबीर के व्यक्तित्व का प्रभाव उनके परभाव भी इस रहा। अन्तः परवर्तीकाल में उनकी ओरती के साथ अनेक अलौकिक अलंकारों भी सम्बन्ध होती रही है। शिखर कोरी का प्रयोग कबीर के जेठ ठकी के विषय होने की बात, उनके घर के स्थान पर कमान-फूल की प्राप्ति, इसी सम्पत् की फलाने हैं। कबीर रामानन्द के शिष्य थे। रामानन्द की निधन तिथि ई संवत् १४०७। ऐसी भी सम्पत् की जाती है कि रामानन्द की मृत्यु के समय कबीर लगभग २० वर्ष की आयु के थे। ऐसी स्थिति में कबीर का आदिमौर संवत् ११८७ में हुआ होगा। श्रीगंगा इत बड़बवाल ने रामानन्द की निधन तिथि के लिए संवत् १४४७ की स्थापना की है। इन अनुसार में कबीर का आदिमौरकाल संवत् १४२७ है।

कबीर की मिथ्या तिथि

कबीर के आदिमौर काल व स्थान ही उनके निर्वाचकाल का निर्णय की माग्य नहीं हो पाया है। विविध प्रकार की विवरणियों और लोक-जीवनमें

प्रचलित अनुकथाओं का आचार ग्रहण कर विद्वानों ने उनकी निम्न तिथि के निर्धारण का प्रयास किया है।

निम्नलिखित दोहों में कबीर की मृत्यु तिथि का संकेत मिलता है—

(क) संवत् पञ्चहसो पांच सौ मगहर क्रियो गौल।

बगहन सुबी एकादसी, मिमो पौन में पौन ॥

(ख) संवत् पञ्चसौ पञ्चतरा क्रियो मगहर को पौन।

माघ सुबी एकादसी, रत्नौ पौन में पौन। (कबीर-बलभुति)।

(ग) संवत् पञ्चसौ उन्हतरा हाई।

सतगुरु बडे उठ हंसा म्याई। (बर्मदास-दाबदा पंथ)।

(घ) पञ्चह सौ सनबास में मगहर कीनो गौल।

बगहन सुबी एकादसी मिमो पौन में पौन। (नक्त माछ की टीका)।

प्रथम दोहों के अनुसार कबीर की मृत्यु संवत् १५०५ में द्वितीय के अनुसार संवत् १५७५ में, तृतीय के अनुसार १५९६ में और चतुर्थ के अनुसार १५४६ में हुई। इन विभिन्न संवत्‌ओं में संवत् १५७५ के प्रति विद्वान अधिक आकर्षित हैं। परन्तु उनके इस आकर्षण के लिए इतिहास-सम्मत ठप्प सम्मुख नहीं आ सके हैं इस ओर संकेत किया जा चुका है। इसके परचात् संवत् १५०५ को इनका मृत्यु काळ मानने वालों का ठक अधिक बहानात्मक झकटा है। परन्तु बनेष्ट प्रमाण न मिलने पर इस सम्बन्ध में भी निश्चयात्मक निर्णय नहीं किया जा सकता है। डॉ० रामकुमार बमौ सन्त कबीर का जन्म काळ संवत् १४३३ (१५६८) और निधन-संवत् १५५१ (सन् १४६४) मानते हैं।^१ इसप्रकार वे कबीर की आयु ६९ वर्ष मानते हैं। परन्तु अपनी मान्यता के समर्थन में वे प्रमाण नहीं प्रस्तुत करते हैं।

जन्म-स्थान

सन्त कबीर के जन्म-स्थान का निर्णय भी अभी तक सम्भव नहीं हो सका है। इस सम्बन्ध में दो विचारधारामें प्रमुख रूप में सम्मुख आई हैं। प्रथम के अनुसार कबीर का जन्म बस्ती जिले के अन्तर्गत मगहर नामक स्थान में हुआ था। अपना जीवन समाप्त कर मगहरमें ही कबीर ने समाधि ली थी। दूसरी

के अनुसार कबीर का जन्म काशी में हुआ था। अपनी जीवकथा का समाप्त कर उन्होंने मगहर में समाधि ली थी। एक अन्य ग्रन्थ के अनुसार कबीर का जन्म बाजयण्ड के बेरहूर या बेरहूर पोखरा नामक ग्राम में हुआ था। इस एक अन्य प्रकार की धारणा विकसित हो रही है। इसके अनुसार सन्त कबीर का जन्म बिहार के मिथी स्थान में हुआ था। कबीरदास ने अपने कतिपय वर्षों में मगहर का उत्सव किया है। इनके आधार पर यह निश्चित होता है कि इनका जन्म मगहर में हुआ था। 'नृत्त जन्म साहिब में कबीर के नाम से संक्षिप्त एक पत्र में इसका उत्सव मिलता है—

छोरे बरोसे मगहर बसिओ मोरे वन की लख बुझाई।

पहिले दरसन मगहर पाइयो पुनि काशी बसे आई।

इस वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि कबीर का जन्म मगहर में हुआ था और काशी में वे बाद की जाये थे। काशी उनकी साधना भूमि थी। परन्तु विद्वानों ने इस सम्बन्ध में आपत्ति व्यक्त की है। इनके अनुसार 'दरसन पाइयो का जन्म जेना नहीं अपितु ज्ञान-दर्शन प्राप्त करना है।' इनके अनुसार कबीर का जन्म काशी में हुआ था। काशी से ज्ञान प्राप्त करने हेतु वे मगहर आए और ज्ञान प्राप्त कर वे पुनः काशी छोड़ गए। इसके परन्तु जीवन-अवधि की व्याप्ति-जेना पर वे पुनः मगहर आ गए थे। इस प्रकार की प्रस्तावना सम्भावित नहीं लगती है। मगहर किसी भी समय आर्थिक या सांस्कृतिक केन्द्र नहीं रहा है। ऐसी स्थिति में कबीर ने मगहर जाकर ज्ञान प्राप्त किया होगा, यह मानना उचित नहीं लगती है। वास्तविकता यह है कि कबीर मगहर में जाये थे। काशी उनकी साधना भूमि रही है। कबीर के नाम से प्रचलित निम्नलिखित दोहे में इसी सत्य का उत्सव मिलता है—

छोरे बरोसे मगहर बसिओ मोरे वन की लख बुझाई।

छहिले दरसन मगहर पाइयो पुनि काशी बसे आई।

जब वन के निपरीत देखे भी वर्णन मिलते हैं, जिनमें काशी का उल्लेख कबीर के जन्म-स्थान के रूप में मिलता है। यथा, 'काशी में हम बसत गए हैं

रामानन्द बिताए । वास्तविकता यह है कि इस संदर्भ में प्रस्तुत दोनों उद्धरणे कबीर के नहीं हैं । कबीर के परचाए इस प्रकार की अनेक किंवदंतियों का विकास हुआ है, जिनमें से अधिकांश कबीर के नाम से सम्बद्ध हो चुकी हैं । कबीर के परचाए दो मतों का विकास निकला है । प्रथम मत उन्हें मगहर का मानता है, द्वितीय मत उन्हें काशी का । अतः समस्त सम्प्रदायों एक दूसरे में इस प्रकार भ्रमिष्ठ हो चुकी है कि उनमें से वास्तविकता का निर्धारण सम्भव नहीं लगता है । हमारे पास इतिहास-सम्मत दृष्टान्त नहीं हैं जिनके आधार पर हम स्पष्ट निर्णय ले सकें । परन्तु किंवदंतियों और अनुभूतियों की आन्तरिक अनुभूतना में इतिहास की सापेक्षता अति दीर्घ रूप में विद्यमान रहती है जिसका आधार ग्रहण कर हम वास्तविकता के कुछ निकट पहुँच सकते हैं । उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर मैं इस विचार की ओर आकर्षित होता हूँ कि कबीर का जन्म बस्ती बतपद के अन्तर्गत मगहर नामक स्थान में हुआ या अथवा उनके जीवन का आरम्भिक काल मगहर में ही व्यतीत हुआ या । सम्पूर्ण बस्ती बतपद का विकास मुसलमान-काल में हुआ है । मगहर मुसलमानों की मुख्य बुजार्हो की बस्ती है—असमय चार सौ वर्ष प्राचीन । ये पुराण हिन्दू धर्म से परिवर्तित समते हैं और ऐसी स्थिति में कबीर का मगहर में जन्म लेना असम्भव नहीं लगता है । परन्तु काशी से सम्बन्धित विचार द्वारा का समाधान किस प्रकार हो ? बहुत सम्भव है नीक और नीमा सम्प्रदायवादीयों के साथ काशी से मगहर आये हों । उनके मगहर जाने के पूर्व ही काशी में उनके पुत्र कबीर का जन्म हो चुका या । इसके विपरीत यह भी सम्भव है कि नीक और नीमा मगहर से व्यवसाय के सम्बन्ध में काशी आए हों और कबीर उनके साथ आए हों । उत्तरचाए नीक और नीमा काधो-बासी हो गए हों ।

डाक्टर मोदिन्द त्रिपुजायत मगहर को ही कबीर का जन्म-स्थान मानते हैं । परन्तु बस्ती स्थिति मगहर के विपरीत वे काशी स्थित मगहर की कल्पना करते हैं । इस प्रकार वे काशी और मगहर के सेव को समाप्त करने का प्रयास करते हैं । परन्तु अभी तक काशी के अन्तर्गत किसी मगहर के अस्तित्व की श्रुति हमें उपलब्ध नहीं है । अतः इस प्रकार की प्रस्तावना का कोई अर्थ नहीं है । त्रिपुजायत के अनुसार 'मगहर में मुसलमानों की बस्ती अधिक है कोई आश्चर्य

नहीं कि कबीर इन्हीं जुगहाओं के घर बसल हुए हों ।' इस निष्कर्ष से किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए । परन्तु इस निष्कर्ष पर का० सरलाग्र सिंह आपत्ति करते हैं । उन्होंने कतिपय विज्ञापनों को है । वे इस प्रकार हैं—(१) इच्छे यह निष्कर्ष कैसे निकाला जा सकता है कि उक्त स्थान का बगहर नाम कबीर का सपकासीन है ? (२) वहाँ कबीर के जन्म के पहले से ही सुसज्जमान रहते थे ? (३) कबीर का जन्म किसी सुसज्जमान के घर में हुआ था ? (४) वह इसी स्थान का जुगहा था । हो सकता है यह बगहर कोई नई बस्ती हो और कबीर के बाद जुगहा लोग वहाँ आकर बसे हों और अपने स्थान को महत्व देने के लिए कबीर से सम्बन्धित बगहर के पीछे बगहर नाम रख दिया हो ।' विद्वान डॉक्टर महोदय का विचार प्रयास करते हुए मेरी एक विज्ञप्ति है । उनके पास क्या ऐसे प्रमाण हैं जिनके आधार पर वे अपनी आपत्तियों का समर्थन कर सकें ? उनके पास इस प्रकार का एक भी आधार नहीं जिसके अद्वयत्व से वे यह सिद्ध कर सकें कि वर्तमान बगहर कबीर का सपकासीन नहीं था । कबीर के पहले वहाँ जुगहा नहीं रहते थे इस निष्कर्ष का भी आधार उनके पास नहीं है । वहाँ तक उनके जुगहा होने का शक है । इस विचार का लक्षण नहीं दिया जा सकता । जय से अपना संस्कार से किसी न किसी रूप में कबीर का सम्बन्ध जुगहा प्राप्ति में रहा है । लोगों को यह बताना है कि कबीर बगहर के प्रति दमनित जातिविष नहीं थे कि वह स्थान उनकी जन्मभूमि थी बल्कि एक बराबर मानवीय भवेद्योग्यता उन्हें जीवन में व्यापक बराबर प्रदान कर रही थी । इस भावना के कारण ही कबीर न बगहर का स्तवन किया है । कुछ इनो प्रकार की अनुमति से दमित होकर विद्वान डॉक्टर न दोषपूर्ण निष्कर्ष प्रदान करते हुए लिखा है 'मैं समझता हूँ कबीरदास ने अपनी लक्ष्मियों में बगहर की सभी इच्छित नहीं की है कि वह स्थान उनका जन्म-स्थान था, परन्तु इसलिए कि बगहर पर बोने हुए निर्मूलक वर्तक को जन्म विद्या के निर सद्भावाहने हैं । इससे इस निष्कर्ष पर पहुँचना अनुचित नहीं कि कबीर द्वारा की गई सभी में सदा भावना की सम्पत्ति न होकर यदि वह अन्तर्द्वारा की अनुमति कारिणी शक्ति की उपार्जन मान है ।' इस शक्ति से एक विज्ञप्ति है । बगहर के स्थान अनेक ऐसे स्थान हैं जो अत्यन्त

ही कर्मकृत माने जाते हैं। कबीर ने इन स्वार्थों के उच्चार का प्रयास क्यों नहीं किया ? मगह (मगध) बौद्धों का केन्द्र रहा है। सामान्य जन-जीवन में उसे अपवित्र माना गया है। बौद्धों का केन्द्र होने के कारण यह हीन-मावना से उपेक्षित रहा है। परवर्ती काल में मगह और मगहर को एक ही भाव देने को भ्रान्ति बाण्डत हुई, और मगह की अपवित्रता का आरोपण माहर पर हुआ— यह आरोपण नैसर्गिक भी है।^१

कबीर का जन्म जुलाहा जाति में हुआ था। उनकी वाणियों में ऐसे भी सम्बर्ध मिलते हैं, जिनमें इन्होंने अपने को 'कोरी' भी कहा है। यथा —

(क) जाति जुलाहा मति की भीर हरवि हरवि गुन रमै कबीर ।

क० घ० पद २७० ।

(ख) परिहर काम राम कहूँ बीरे, सुन सिख बन्धू मोरी ।

हरि की नाम धर्म पद दाता कहै कबीरा कोरी ॥

क० घ० पद ३४६ ।

तथा 'हम बरि सुत तनहि नित तागा' आदि संकेतों से यही निष्कर्ष मिलता है कि कबीर जाति से या व्यवसाय से जुलाहा थे। कबीर के समकालीन रैदास धन्ना आदि सगुं जुलाहा मानते हैं। गुन अमरवास जनकदास राजब तुकाराम की रचनाओं से यह स्पष्ट होता है कि कबीर जुलाहा जाति के थे। 'सबीनसुस मसफिया' 'बलिस्ताग ए-मजहिब' अनुराग सागर', कबीर कसौटी' आदि रचनाओं से भी इस विश्वास को पोषण मिलता है कि कबीर जुलाहा-जाति से सम्प्रगित थे। रैदास ने एक बंस में कहा है कि कबीर के कुल में ईश का त्यौहार मनाया जाता था। उनके कुल में दोल सहीब तथा पीरों का सम्मान था। गोबब भी इनके परिवार में होता रहता था।

१—कबीर के जन्म-स्वान की ओर संकेत करने वाले बंसों में निम्नलिखित बंस विशेष प्रचलित हैं—

पहुंसे दरसन मगहर पायो पुनि कासी बसे आई ।

या

पहुंसे दरसन कासी पायो पुनि मगहर बसे आई ।

जाके ईति बकरीदि निज पकर, बप कर मानिये सेप सहिद पीरा ।

बाप बैसी करी पूत ऐसी बरी नाम नम लंड परसिप कबोरा ।

सबैवी—अजत प्रताप, पद २२ ।

इस प्रकार के अनेक सम्बन्ध मिलते हैं, जिनसे यह स्पष्ट होता है कि कबीर का सम्बन्ध किसी न किसी रूप में मुसलमानी संस्कार से अवश्य था ।

भाषार्थ हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर की जाति का विशेषतः इतिहास के मन्दर्म में दिया है । वे उनकी जाति का सम्बन्ध प्राचीन 'युमी' या 'योगी' जाति से स्थापित करते हैं । अपना निष्कर्ष देते हुए वे कहते हैं 'यदि यह अनुमान सत्य है तो इकता के साथ कहा जा सकता है कि कबीर वास्तविक जुलाहा जाति में पालित हुए थे वह पृच्छप पुरत पड़ने के योगी बैसी किसी आश्रम-अष्ट जाति से मुलज्मान हुई थी या अमी होने की राह में थी । देखिए कबीर पृ० ११ ।

फिर यह संकेत दिया गया है कि कतिपय सम्प्रदायों में कबीर ने अपने को 'कोरी' भी कहा है 'कई कबीरा कोरी' या 'सूनी मूल निजामे कोरी । यह अनुमान लगाया गया है कि कबीर प्राचीन कोरी जाति के थे । यह जाति कासा नर से जुलाहा जाति में स्थापित हो गई थी । मुगलमान होने के पूर्व यह जाति योगियों की अनुयायिनी थी^१ । इन मन्त्र का समर्थन हजारी प्रसाद द्विवेदी भी करते हैं । ऐसा जान पड़ता है कि यद्यपि कबीर वास्तविक युग में जुलाहों न मूल जमाने के सहज कर किया था पर साधारण जनता में तब भी कोरी नाम से परिचित थे । कबीर वास्तविक जुलाई के स्वामी और उस्तादों में कई जगह जुलाहा के स्थान पर कारी नाम दिया है^२ । कबीर जिन जाति के थे उनका धार्मिक पीपी अवस्था जूनी नाम से प्रसिद्ध था । इस प्रकार का विवरण दिया जाता है कि वे योगी पहले नाम कपी थे जो मूलतः बौद्ध धर्म के अनुयायी थे । वर्ण-व्यवस्था में इनका विरासत नहीं था । इनकी जीविका का साधन कपड़ा बुनना था । मरने के पश्चात् वे दाह संस्कार उत्पन्न और गाढ़कर इन दोनों विचारों से कले थे । कबीर के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि उनका मृत्यु के

१ इतिहास पीनाम्बर दत्त बड़जाल पोष प्रसाद पृ० १२५ ।

२ कबीर हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० १ ।

परचात् कुछ पूछ बच रहे थे किमें जाये को हिन्दुओं ने बताया और जाये को मुसलमानों ने गाड़ दिया । योगियों में प्रचलित शत्रु-संस्कारकी प्रथा और कबीर के शत्रु-संस्कार की विधा में साम्य मिलता है । अतः इसमें सन्देह नहीं कि कबीर का सम्बन्ध प्राचीन युगी जाति से था^१ ।

कबीर के व्यक्तित्व में परस्पर विरोधी संस्कारों (हिन्दू-मुसलमानों) का सम्मिश्रण मिलता है । इस प्रकार के संस्कार कबीर को किसी निश्चित परम्परा से प्राप्त हुए लगते हैं । अपने विस्मयनों में डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी और डॉ० पीताम्बर बस बड़प्पास ने इन्हीं मिला मिले परम्पराओं की ओर संकेत किया है । श्री परशुराम चतुर्वेदी ने इस सम्भावना की ओर संकेत करते हुए कहा है 'बहुत सम्भव है जुगी कहुकामेबाकी जाति पहले नाथ मत की अनुयायिनी रही होगी और ऐसी अनेक जातियों ने मुसलमानी प्रभाव में जाकर कहीं-कहीं सामूहिक रूप में बर्मांतर ग्रहण किया होगा । हम तो यहाँ तक कहेंगे कि काशी एवं मगहर के साथ विशेष सम्बन्ध रखने वाले कबीर साहब का कुछ यदि क्रमशः सार नाथ एवं कुशी मगर जैसे बौद्ध तीर्थों के आस-पास निवास करने वाला बौद्धों या उनके द्वारा प्रभावित हिन्दुओं में से ही किसी का मुसलमानी रूप रहा हो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं । हो सकता है कि उसमें सूत कातने व बुनने की शिल्पिका भी पूर्व समय से बैसी ही बची आ रही हो' ।

इन निष्कर्षों की वैज्ञानिकता पर सन्देह नहीं किया जा सकता है । कबीर की रचनाओं की अन्तर्द्वेषता का विस्मयन इस प्रकार के निर्णय का समर्थन करता है । कबीर के व्यक्तित्व विस्मयन से यह स्पष्ट होता है कि उनमें एक विशिष्ट

१ 'अपराध में योगियों को कहीं समाधि दी जाती है और कहीं नहीं इनका अग्नि-संस्कार भी किया जाता है । मेरा अनुमान है कि सचमुच कबीर शत्रु को (जिपुता बिले के वर्तमान योगियों की भाँति) समाधि भी दी गई होगी और अग्नि-संस्कार भी किया गया होगा । कबीर पृ० ११ । अग्नि-संस्कार के परचात् बचे हुए अस्म को भी पूछ कहते हैं । बहुत सम्भव है कि योगियों में प्रचलित इस प्रथा के अनुसार कबीर का अग्नि-संस्कार हुआ होगा और उनके बचे 'कृम' का विभाजन हुआ होगा, जिस पर मगहर में मस्जिद और मस्जिद का निर्माण हुआ होगा ।

२ उत्तर भारत की संत परम्परा, पृ० १२० ।

संस्कार और शिक्षा का संयोग था। उनकी विभक्त्यन्तर्गत परम्परापूर्ण है। इस परम्परापुत्र शिक्षा को आत्मसात करने के पदार्थ उन्होंने इसका प्रयोग जीवन के संघर्ष में किया था। कबीर साक्षात् वा परोक्ष रूप से रामानन्द के शिष्य थे। राधा कृष्ण से उन्हें राम की साधना मिली थी। परन्तु रामानन्द की वैष्णव साधना का प्रयोग कबीर ने एक विशिष्ट रूप में किया। ऊपर के विवेचन से यह संकेत मिलता है कि कबीर का प्राधुनिक जिस बाढ़ में हुआ था उसपर कोई प्रभाव किसी न किसी रूप में विद्यमान था। कबीर में भी ये संस्कार मिलते हैं। अतः कबीर ने राम के साथ अपने पूर्व प्रभावों को सम्मिश्रित कर एक विशिष्ट प्रकार की साधना बुझि और कृष्ण-वारा तथा ब्रह्म-स्वरूप का संकलन किया। इस प्रकार कबीर वैष्णव मार्ग पर संस्कार करते हैं, परन्तु उनका उद्देश्य है बौद्धों का निर्वोध। अतः उनका ध्यान वैष्णव है परन्तु साथ बौद्ध है। गोरखनाथ की दृष्टि भी यही रही है। नाथानुसंग ने माध्यामिक कारिका में कहा है 'न सत् न तत् न तदवत् न चापनुपगमम्'। गोरखनाथ ने इसे बत्ती साधना का आधार मानते हुए कहा है 'बसतीन धुनै सुनयन बत्ती मयन अपोचर ऐसा यवन सिपर पर बात कबोला ताका नाम बरोये कैसा। इस प्रकार गोरखनाथ ने धूम्र को एक व्यक्तिस्व प्रदान किया। गोरखनाथ ने 'ताका नाम बरोये कैसा' के माध्यम से उसके नामकरण का पल उठाया। कबीर ने उसका नामकरण किया 'राम'। अतः कबीर की सिद्धा बर्तगत और संस्कार-मूर्धन्य थी। और इसमें सन्देह नहीं रह जाता कि कबीर जिस बाढ़ में अवतरित हुए थे वह विभिन्न साधना प्रभावों से युक्त बौद्ध साधना के परि वर्तित रूप से संसृजित थी। ऐसी स्थिति में डॉक्टर राम कुमार शर्मा के निष्कर्ष को भी अस्वभाविक नहीं माना जा सकता, 'कबीर के सिद्धा ऐसी जुलाहा बाढ़ के होने को सुलभमान होने हुए थी जो पियों के संस्कारों से सम्पन्न थे तथा दगनामी गन्धर्व में दीक्षित होने के कारण पोछाई नहलाते थे। इन मोसाद्यों पर नाथ पंथ का विशेष प्रभाव था'।

१ उक्त कबीर, पृ० ११। डॉ. शर्मा की यह धारणा एन.ए. ट्रेडिंग पर बाबा गि लपनी है जिसका सीधे यह है कि मोसाई दगनामी भेद से नहीं रही थी जोर नहीं बँचक होते हैं—देखा *Castes and Tribes as Represented at Banaras-87*

डॉक्टर सरनाम सिंह ने अपनी कृति 'कबीर एक विवेचन' में कबीर की वांछि विषयक समस्या का निदान करना चाहा है। परन्तु वे अपने गन्तव्य तक पहुँचने में असमर्थ रहे हैं। वस्तु की संस्थापना की अपेक्षा भाचार्य शिवेरी की संस्थापना के वर्णन में ही विद्वान् लेखक संलग्न हैं।

कबीर की वांछि पर विचार करनेवाले विद्वानों को सरनाम सिंह चार मठों में विभक्त करते हैं। [क] डॉक्टर स्वाम सुन्दर दास का मठ [ख] डॉक्टर बड़वाल का मठ [ग] डॉक्टर हजारी प्रसाद शिवेरी का मठ जिससे डॉक्टर राम कुमार बर्मा अधिकोद्य सहमत प्रतीत होते हैं। [घ] डॉक्टर त्रिमुखायत का मठ जिसको परमुराम चतुर्वेदी का समर्थन प्राप्त है। इसके पश्चात् इनका शोचालोक निर्णय सम्मुख आता है। इनमें से डॉक्टर स्वामसुन्दरदास का मठ कोरी किंवदन्ती पर आधारित है, अतएव प्रमाणी के अभाव में उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है। दूसरा निष्कर्ष डॉ० बड़वाल का है जिसके निष्कर्ष में अधिक तर्क-संगत प्रयास है। डॉ० बड़वाल से त्रिमुखायत डॉ० राम कुमार बर्मा और श्री परसु राम चतुर्वेदी सहमत हैं। किन्तु डॉक्टर शिवेरी ने कबीर की वांछि के सम्बन्ध में मापाविह की भौति बड़े कौशल से काम किया है। परन्तु उन्हीं इस गवेषणात्मक विवेचना से कबीर की वांछि पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। कबीर दास की 'मा हिन्दू मा मुसलमान' बाणी छल्ल ने तो केवल हिन्दू और मुसलमान जातिमें से बहिष्कृत किया जा किन्तु हजारी प्रसाद शिवेरी के पालित धर्म के प्रयोग ने तो विचारे कबीर को योगी मा जुगी जाति का भी नहीं रहने दिया। उन्होंने अपने एक ही वाक्य में प्रकट नहीं होने दिया कि कबीर समुक्त जाति में उत्पन्न हुए थे। बार-बार पढ़ने पर उनके यहो धर्म मिल सके।

१ कबीर दास जिस जुलाहे बंध में पालित हुए थे, वह इसी प्रकार के नाथ भगवान्‌की गृहस्थ योगियों का मुसलमानी रूप था।

२ कबीर दास जिस जुलाहे जाति में पालित हुए थे वह एकाध पुरुष पहले की योगी जैसी किसी अष्ट जाति से मुसलमान हुई थी या धमी होने की राह में थी।

३ कबीर दास इसी मन् धर्मान्तरि लोगों में पालित हुए थे।

इस प्रकार की विवेचना से समस्या का समाधान नहीं हो सकता । डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी की विवेचना और उनके निष्कर्षों के ऐतिहासिक स्वल्प को डॉ० इस्लाम सिद्द ग्रहण नहीं कर सके हैं । कबीर जुलाहा या इच्छा विरोध किसी विचारक से नहीं किया है । परन्तु कबीर का जुलाहा होना हमारे लिए उन्ना धात्वक नहीं है । जितना कि भारतीय धर्म-साधना में उन्ना स्थान निर्धारण । कबीर मध्यकालीन धर्मसाधना के समन्वित रूप में । बौद्ध तथा हिन्दू संस्कारों से संस्पृष्ट अनेक जातिओं और उपासकों का प्रादुर्भाव काम-कर्म से मिलता है । समय बाक्य इनमें से कतिपय जातिमें इस्लाम-धर्म ग्रहण करती हुई निकली है । कबीर इसी प्रकार की एक जाति में उत्पन्न हुए थे । इस समय की भार ही बाबाय द्विवेदी ने उक्ति किया है । इस प्रकार कबीर की साधना सम्पूर्ण रूप से भारतीय है । इस प्रकार द्विवेदीजी का निरुक्त अधिक व्यापक इतिहास सम्मत और व्यापक सम्भावनाओं से परिपूर्ण है । 'पामित्य' शब्द के कारण डॉ० इस्लाम सिद्द की जाति नहीं होगी चाहिए । द्विवेदी जी की यह स्पष्ट धारणा है कि कबीर का काम जुलाहा या मुसलमान परिवार में हुआ था । यह परिवार अपने मूल रूप में भारतीय है । भारतीय धर्म-साधना के विविध तत्वों का संरक्षण उनमें मिलता है । इन्हीं तत्वों के सम कबीर के व्यक्तित्व का निर्माण हुआ था । कबीर के विचारों की बोधन भूमि को दृष्टि में उन्नी जाति का निर्धारण भी आवश्यक हुआ है । अपने गहन-अन्त के परभाव डॉ० इस्लाम सिद्द डॉ० द्विवेदी की मान्यता के साथ स्वर मिलकर कहते हैं । इससे हमारा मन यह है कि कबीर जुलाहा जाति में उत्पन्न हुए थे उनके कर्म का मुख्य कोरी जाति से जिन पर भारतीय का प्रभाव था, अवसर रहा था । इसका उनके मध्य पर पूर्व भारतीय संस्कार बन हुए थे, जिसकी अनिवार्य कबीर के व्यक्तित्व में प्रमाणित है, तथा जिससे लोग में शाश्वत का प्रभाव सहामक था ।^१

कबीर की जाति के सम्बन्ध में डॉ० सोमिन प्रियदास का विचार यहाँ विचारणीय है ।—

१ कबीर राम ज्योती श्री जगदीशजी की सम्मानित मने थे ।

१ कबीर एक विवेचना गूठ ४० ।

२ कबीर का कोरियों से कोई सम्बन्ध नहीं मिला। कबीरवास की यह प्रवृत्ति थी कि वे जिस वर्ग और जाति के लोगों के सामने जाते वे प्रायः उसी व्यक्ति की भाषा में विचारों को व्यक्त करते थे। कबीर ने कोरी खज का प्रयोग इसी प्रवृत्ति से प्रेरित होकर किया है। जुलाहा का सम्मान और कोरी ही हो सकता है। कोरी जाति का सूचक न होकर केवल व्यवसाय का सूचक है।

३ किन्हीं कुछ प्रमाणों के अभाव में कबीर का सम्बन्ध गुसाईं जाति से भी स्थिर नहीं किया जा सकता है।

४ कबीर जुलाहा जाति के ही रहें। कबीर की हिन्दू विचारधारा को स्पष्ट करने के लिए रामानन्द का विध्यत्व पर्याप्त है।

डॉ० मोहिन्द्र त्रिगुणाचल ने विचारकों की मान्यताओं को अस्वीकार किया है परन्तु वे अपनी मान्यता के लिए स्पष्ट या अस्पष्ट प्रमाण नहीं देते हैं। अतः उनकी मान्यता विवेचना की अपेक्षा नहीं रखती है। एक सन्दर्भ में कबीर ने अपने पिता को 'बहु गुसाईं' कहा है —

बापि बिछाछा मेरो कीन्हा । सेव गुलाबी मुनि अमिनु बीन्हा ।
 त्रिगु बापु कउ मगहु बिसारी । बापे ब्रह्मा न बाबी हारी ।
 बलि तिमु बाबै बिनि हउ बाइया । पंचासे मेरा संयु जुकाइया ।
 पिता हमारो बहु बोसाई । त्रिगु पिता पक्षि हउ किउ बाई ।
 सति मुरु मिनि तो मारग बिछाइया । बसत पिता मेरे मन भाई ।

गुरु ग्रन्थ साहिब राग बासा ३।

इससे यह निश्चित होता है कि पिता ने कबीर को ब्रह्म का ध्यान किया। उनकी कृपा से कबीर पञ्चेन्द्रियों से मुक्त हुए। इस सन्दर्भ को ग्रहण करते हुए भी परशुराम कतुबेजी लिखते हैं परन्तु कबीर साहब के अपने पिता के लिए प्रयुक्त शब्द 'बहु गुसाईं' सब से यह भी सूचित होता है कि वे बहुत बड़े विद्वानों का शरीर रहे होंगे और उनका प्रभाव अपने पुत्र पर एक साधारण पिता का था ही न होकर इन्हें सांसारिक प्रपञ्चों से अलग कर इन्हें यथार्थ के प्रति उन्मुख कर देने का भी रहा होगा^१। वस्तुस्थिति यह है कि इस सन्दर्भ में कबीर ने अपने अन्त्यात्म पिता की ओर संकेत किया है। अन्तिम पंक्ति से इसका स्पष्टीकरण हो

जाता है। 'सुत' मृत के मार्ग-प्रदर्शन से बच्चा पिता की उपस्थिति हुई। मृत 'पिता' हमारा बहुत बोवाह' और 'बच्चा पिता' इन दोनों में भेद नहीं है। 'बहु बोवाह' के आधार पर कबीर की जाति का निर्धारण भी सम्भव नहीं है। परम तत्व को या मृत्यु को 'पिता-माता' के रूप में बाप मायकों ने भी स्वीकार दिया है।

'मुनि ज भाई मुनि ज बाप मुनि निरंजन भाई बाप।

मुनि के परबे गया सरीर निहृषल जोणी गहिर यमीर ॥

गोरखवासी २३१/७३ ।

कबीर ने अपने पिता के विषय में कहीं उल्लेख नहीं किया है। इसी प्रकार अपनी माता के विषय में भी वे मौन हैं। परन्तु कबीर के नाम से प्रचलित कतिपय रचनाओं में इसकी माता की चर्चा मिलती है। कबीर अपनी जीविका के प्रति उदासीन रहते थे; कबीर विषय में विश्राम करने लगे थे। यह उनके परिवार के लिए पिता का विषय था। कबीर और उनकी माता के मन को बाधित मय मेद या उमका उल्लेख नीचे दिये सन्दर्भ में मिलता है —

जिहि छठि कोरी मायहि भाई, कीपत पीठ पाओ,
तामा बाता बसु न मुझे हरि हर रह लपटिओ।
हमार कुछ करने राम कहिओ बप की माता भई निपुटे
तब ते मुख न भाओ।

पुष्ट बन्ध साहिब राम विवाचन ॥ ४२ ॥

इस प्रकार का विवाचन किया जाता है कि कबीर के पुत्र रामानन्द थे। रामानन्द अपने पुत्र के सर्वोच्च धार्मिक नेता सुधारक और धार्मिक पुत्र थे। मायी से उन्होंने अपना सन्देह-अस्वास्थ भी किया था। परन्तु कबीर ने रामानन्द के विप्लव का नहीं उल्लेख नहीं किया है। कबीर पंथियों के दो वर्ग मिलते हैं। प्रथम हिन्दू कबीर कबीर इसके अनुसार कबीर रामानन्द के शिष्य थे। द्वितीय मुसलमान कबीर कबीर, जिसके अनुसार कबीर देव लक्ष्मी के भूतदूत थे। डॉ० फण्डाकर तथा डॉ० मोहन सिंह के अनुसार रामानन्द कबीर के पुत्र नहीं थे। बाबाई द्वारा प्रचार दियेने ने कबीर को रामानन्द का शिष्य माना है। क्या विचारकों की भी यही धारणा है। अपने मन के अर्थरत्न के लिए वे शिष्य निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ लेते हैं—

कासी में हम प्रकट भये हैं रामानन्द वेताम ।

समरथ का परवाना लाये हंस उबारन आए ।

यह बंश कबीर का है इसका समर्पन नहीं किया जा सकता । कबीर ने अपनी छावना के लिए बेधन भूमि को ग्रहण किया है । बध्मनों के प्रति उन्होंने अपनी आस्था भी प्रकट की है—

मेरे संधी बोइ जयाँ एक बेधन एक राम ।

बो है बाटा मुक्ति का वो सुमिराये नाम ।

अतः कबीर का सम्बन्ध रामानन्द से किसी न किसी रूप में रहा है, इस पर अविश्वास नहीं किया जा सकता है ।

प्रसिद्ध इतिहास कार डॉ॰ रामप्रसाद मिपाठी और बेस्टफ्ट ने 'कबीर बहुतक असफिया' का आधार ग्रहण करते हुए इस मत का प्रतिपादन किया है कि कबीर खेख तकी के शिष्य थे । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी इसी मत का प्रतिपादन किया है—

मानिक पुरहि कबीर बसेरी । मरहति मुनी खेख तकि केरी ।

ऊनी मुनी बीन पुर बागा । भूँती मुनि पीरन के नामा ।

रामचन्द्र शुक्ल सिन्धी-साहित्य का इतिहास ठैरहवाँ मुद्रण । पृ ७८ ।

'कबीर बहुतक असफिया' में लिखा है खेख कबीर बीलाहा खेख तकी के उत्तराधिकारी और बेछे थे—उनकी मृत्यु सन् १५२४ में हुई । उनके पीर खेख तकी सन् १५७३ में मरे थे खेख तकी नाम के दो सुछो पीर प्रसिद्ध हैं । एक का सम्बन्ध कड़ा मानिकपुर से था और दूसरे का सम्बन्ध धूसी से था । प्रथम का सम्बन्ध मूफियों के चिरितया समग्रदाय से था । वे कबीर के समकालीन नहीं थे । अतः कबीर का इनके साथ किसी प्रकार के सम्पर्क की सम्भावना नहीं हो सकती । बीजक की आठवीं रसिनी में किसी खेख तकी का उल्लेख मिछता है ।

नागा नाच नचाव के नाचै मर के खेख ।

घट घट अविनासी बहै, सुनहु तकी तुम खेख ।

इस उदाहरण की पंखाबसी में गुह शिष्य का भाव व्यञ्जित नहीं होता । इसमें नाच-बिबाद की बातना मिलती है । परन्तु इस सम्बन्ध का आधार ग्रहण कर कृद् भी निर्णय नहीं लिया जा सकता है । भूँती के भेष तकी का सम्बन्ध मूफियों

के मुहुरावरी नम्रदाय से था। उनका मृत्युकाल म० १३०० बनगया जाता है।
अतः कबीर का इनके शिष्यत्व का प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता।

'गुरु ग्रन्थ साहिब' में संकलित एक पदके अनुसार कबीर गोमती-तीर निवासी किसी पीठाम्बर पीर के प्रति आस्थावान् थे। वहाँ की धारा उनके लिए हज यात्रा के समान पवित्र थी।

हज हमारे गोमती तीर।
जहाँ बसहि पीठाम्बर पीर ॥
बाहु बाहु दिया गुरु पावता है।
हरि का नाम मेरे बन पावता है ॥
नारद सारन करहि लबासी।
पानि बठी बीबी कबला वाली ॥
बंटे माया बिहूना रामु।
सहस्र नाम से से करत सकामु ॥
कहन कबीर राम गुन गावत।
हिनु लुक्क बाउ गुममावत ॥

गुरु ग्रन्थ साहिब जी राम आवा पर १६।

इन शब्दों का आशय ग्रहण कर कुछ विचारक यह कहना चाहते हैं कि बहुत सम्भव है कबीर पीठाम्बर पीर से दीक्षित हुए हों। वास्तु यह शंका बिल्कुल प्रायश्चित्त है, इसका निर्णय कर लेने के पश्चात् ही इस प्रश्नावली पर विचार दिया जा सकता है। अपनी रचनाओं में अनेक मन्त्रों में कबीर अपने गुरु को नमन करते हैं। परन्तु वे गुरु के रूप में किसी विशेष व्यक्ति का उल्लेख नहीं करते हैं।

बलिहारी गुरु आपनै लो हाड़ी नै बार।

त्रिभि नामुपि तें देवता बरख न लायी बार।

कबीर ग्रन्थावली मारती २।

अने नाम विवेक पर अपन राम की न गुरु के समकक्ष मानने हुए कबीर कभी कह नहीं सकते हैं—

बहु कबीर मैं सो गुरु पादमा

जाया नाउ विवेक ४।

गुरु ग्रन्थसाहिब; राम गृन्थ, पद ३।

कबीर के काव्य का दर्शन और भावपक्ष

सत्य कबीर की आलोचना सत्य भक्त और धार्मिक नेता के रूप में हिन्दी साहित्य के सन्दर्भ में होती रही है। कबीर भक्त से विभक्त से और चिन्तक से। उनके काव्य में उनका जीवन-दर्शन उनकी चिन्तन विधि और उसकी साधना विधि प्रतिबिम्बित है। भावनाओं की दृष्टि से उनके काव्य को हम तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथमवर्ग में उनकी साधना विधि की आन्तरिकता का अंकन मिलता है। उनकी भक्ति-विद्या के मूल स्वरूप के दर्शन इस वर्ग की रचनाओं में मिल जाते हैं। इस सन्दर्भ के अन्तर्गत साधना विद्या की निशिष्ट प्रणाली का परिचय मिलता है। पारिभाषिक शब्दावली और अनिश्चितता विद्या की निशिष्ट प्रणालियों के विविधस्वरूप यहाँ उपलब्ध हो जाते हैं। इस वर्ग की रचनाओं में उनके चिन्तन के वैयक्तिक स्वरूप के दर्शन होते हैं। इस सन्दर्भ में वे 'राम' की खोज करते हैं ऐसे राम की प्रस्तावना करते हैं, जो पुष्प की सुगन्धि से भी सूक्ष्म है। जिसके मुख नहीं है भाषा नहीं है जो न स्थान है और न कुक्ष्यदाग है। वह मन-वाणी से अगम और अगोचर है वह केवल अनुमूर्ति में ही आ सकता है। उसके स्वरूप रूप की कोई कल्पना सम्भव नहीं है। उसके स्वरूप-वर्णन में कबीर अपनी अधमर्चता का परिचय देते हुए कहते हैं—

भारी कहौ त बहु डरौ हसका कहुँ तो मुठ ।

मैं का जानू राम कुँ नैनु कबहुँ न वीठ ।

स्वप्न मेलों से उसके स्वरूप की कोई कल्पना नहीं की जा सकती है। वह तो गुणों का मुख है जिसका स्वाद मूँदा प्राप्त करता है परन्तु जिसके मुख की वह व्यञ्जना नहीं कर सकता है—

अबक कहाँभी प्रेम को, कछु कही न जाई

फूँ केरी सरकरा बँडे मुसकाई ॥१६॥१५॥१२ ।

वह अलख निरंजन है। वह अमय पद का दाता है। यथा—

परिहर काम राम कहौरे सुम सिख बन्धू मोरी ।

हरि को नाम अमै पद दाता कहै कबीरा कोरी ॥

इस प्रकार कबीर के परम आराध्य हैं राम। राम की बन्धना से अनेक रूपों में करते हैं। उन्होंने रामनाम के स्मरण के प्रति विद्योप आस्था भाव की व्यञ्जना की है। नाम-स्मरण ही उनकी भक्ति का मैसूर्य बनाता है और कबीर इस

सन्दर्भ में वैष्णव भक्ति के तट को संस्पृष्ट करते हुए कहते हैं । ये मारवी भक्ति का उत्प्रेषण भी करते हैं—‘भक्ति मारवी रिदै न आई’ अथवा

भक्ति मारवी भगम सरीरा

इहि बिधि भक्तिहि कहै कबीरा । १८३।२७८।

अपने राम का सम्बन्ध वे निर्गुण और निराकार से भी स्थापित करते हैं । अल्ताह क बप को वे अपने राम में समाहित कर लेते हैं । उनका राम उनका अल्ताह है वा रिज और ब्रह्माण्ड में एक समान है । अतः नाम-स्मरण पर भक्ति आस्था प्रकट करते हुए वे कहते हैं—

मेरा मन मुमिरं राम कूं मेरा मन रामहि भाहि ।

अब मन रामहि छूँ छाँ लोख न्याये नाहि ।

कबीर के अनुसार राम का नाम त्रिलोक का तार है । उसके ध्यान तादात्म्य स्थापित करने के पञ्चाश्व व्यक्ति जीवन में रहते हुए भी जीवन-मुक्त हो जाता है । राम को वे रसायन का पयौम मानते हैं । इस रसायन का ध्यान साधारण काम नहीं है । इसके लिए सर्व-अस्त्रियाँ की आवश्यकता पड़ती है ।

राम रसायन प्रम रस पीबत बबिक रसास ।

बबीर पीबय दुलस है मयि सीस कसास । ‘रस की धीन’ ।

यह राम सर्व-व्यापी है । मृग की कलहुरी नाभि में रहती है, परन्तु अपने शरीर में ही कलहुरी के अस्तित्व का बोध मृग को नहीं होता । ऐसे ही राम पर धर्म में व्याप्त है परन्तु हमारे अस्तित्व का बोध व्यक्ति को नहीं होता^१ । हमने में जिस प्रकार बुनबी है उसी प्रकार घट में घासिक है । हम पुनबी के अस्तित्व का अनुभव करते हैं इसी प्रकार ‘घासिक’ के अस्तित्व की अनुभूति भी हम कर सकते हैं परन्तु उसे बेस नहीं सकते हैं^२ । राम से मिलन की बलवती अजिजापा के आगारन को कबीर संवरण नहीं बन पाये । राम के दर्शन

१ कलहुरी कुहरल बन मृग दुई बन भाहि ।

ऐसे बन पर राम है दुमियाँ देने नाहि ।

२ जू नैतु मैं पुनतो नूँ घासिक पर नाहि ।

मुरिय लोख न आगरी बाहिर दरनि जाहि ।

के लिए कबीर की अवस्था बिरहिनी के समान है। मृत्यु के पश्चात् उनके दर्शन का महत्त्व ही क्या ?^१ राम के पास पत्र लिखने की बख्शी भी भिखाया उनमें बाधित होती है। अपने शरीर को बचाकर धार करके मसि बनाना कर, करक की केशरी बनाकर राम का नाम लिखकर वे राम के पास मेवने के लिये उत्सुक हैं जाकायित हैं।^२ राम के दर्शन के लिए साधना के अन्त साधों की आवश्यकता है। उसका निवास-स्थान ब्रति सुख है। वहाँ बीटी का प्रवेश नहीं हो सकता राई के रखने के लिए वहाँ स्थान नहीं है। उस स्थान पर केवल पवन का अवलम्ब ग्रहण कर पहुँचा जा सकता है। ऐसे धरातल पर पहुँचकर राम की अनुभूति हो सकती है।^३

कबीर राम को मुजादीत मानते हैं। वे सत रज और तम से परे हैं। कबीर की धारणा है कि वह गुण और निर्गुण दोनों के अस्तित्व की सम्भावना से विभूषित है। वह गुण में ही निर्गुण है, निर्गुण में सगुण है। यद्यपि उसे अजर और अमर कहा गया है परन्तु इस परिमाप से उसके अस्तित्व का, उसके गुणों का बोध नहीं हो पाता है। उसकी उचित परिमाप यह हो सकती है कि वह अकाल और अमय है। वह पिण्ड और अणुओं में समाहित है पर पिण्ड और अणुओं से परे है। वह काल की अवधि में परिवर्त नहीं है। उसका न आदि है न अन्त। वह अमृत और सगुण से परे है। अजर और अमर, ऐसे विशेषण उसके लिए उपयुक्त नहीं हैं—

सँती जोखा कासूँ कहिए।

गुण में निरगुण निरगुण में गुण है

बाट अङ्गि क्यों बहिये ॥ टेक ॥

१ बिरहिनि ऊठे बी पड़े दरसन कारनि राम ।

मूँबा पीसै बहुरे, सो दरसन किहि काम ॥

२ यहू ठग बाछी मसि करौ किछी राम का नाउं

केशरि कर्ह करक की निखि निखि राम पठाउं । १२७

३ वहाँ न बीटी बड़ि सके राई ना टहराई

मन पवन का गम नहीं वहाँ पहुँचे आय ।

धरत अरु कय सब कोई बसब न कयसो जाई ।
 नाति सस्य बरस नहि जाके, परि परि रह्यो सवाई ॥
 प्यंढ ब्रह्मांड कयै सब कोई जाके जाति अरु मन्त न होई ।
 प्यंढ ब्रह्मांड छाहि जे कविए, कही कबीर हरि सोई ॥ १५० ॥

यह बसब निरंजन है । उसे कोई देख नहीं सकता है । यह निर्मय और
 निराकार है । यह न दृश्य है न स्पर्श है न उसके रूप है, न रस है । यह द्रष्टि
 और ब्रह्मद्रष्टि दोनों के परे है । उसका कोई वर्ण नहीं है वह अवर्ण्य है, इस पर हम
 अपना मन्त्रम नहीं दे सकते । उसका न जाति है, न अन्त है न मध्य है । उसका
 वर्णन नहीं किया जा सकता । वह अकल्प्य है । इस अपरम्पार का न जन्म होता
 है, न उसका विनाश होता है । उसके वर्णन की कोई युक्ति हमारे पास नहीं है ।
 यदि उसका वर्णन करें तो उसकी सम्पूर्णता वर्णन में नहीं आ पाती । वह स्वयं
 ही उपमेय है और स्वयं ही उपमान है । उसके गुणों के कल्पन और धारण से कुछ
 मिलता है और परमार्थ होता है ।^१

१ बसब निरंजन सगै न कोई ।
 निर्मये निराकार है सोई ॥
 गुनि अवबुल, रूप नहीं रेला ।
 द्रिष्टि ब्रह्मिष्टि द्विष्यो नहि देला ।
 बरस अवरस कय्यो नहीं जाई ।
 लख अतीत बन रह्यो सवाई ॥
 जाति अन्त जाहि नहीं मये
 कय्यो न जाई जाहि अकये ।

अपरम्पार उपमै नहि बिनसै
 लुपति न जानिये कबिये नैमै ।
 जम कबिए तम होत नहीं, जम है लैना ना-
 बदन गुनन गुन जाये अरु परमारन होय ।

कबीर ने अपने राम के लिए योगित्व केवल और मायब आदि नामों का प्रयोग भी किया है। परन्तु उनका राम निरंजन है। वह कम रेश में परिवर्त नहीं है। अमर की स्पृष्टता जिन तत्वों से रक्षित है, वह उन सबसे पर है। वह समुद्र की गहिराई से भी अधिक गम्भीर है और पर्वत की उन्नता से भी उन्नत है। वस्तुतः उनका अस्तित्व समुद्र, शिपर, गहन और धरती के अस्तित्व के पूर्व का है। रवि सृष्टि अस्तित्व में नहीं आये थे पवन का संचार नहीं हुआ था नाद और बिन्दु का प्रसृत्य नहीं हुआ था काक और काया का अस्तित्व नहीं हुआ था इनके पूर्व से ही 'रामराम' का अस्तित्व है। उस राम के निहृद नहीं हैं। सुखा और बिपा उसके गुण नहीं हैं ऐसा राम बट बट में परिभ्रात है। वह मेघ विवर्जित है वेद विवर्जित है पाप-पुण्य विवर्जित है, ज्ञान-भ्याग विवर्जित है स्वस-मुस विवर्जित है—उनका राम ऐसा अगुणम तत्व है।^१ उनका राम उनका रहिमान उनके हृदय में है।

पूरब विसा हरी का बासा पछिम अछह मुकामा ।

दिल की कोखि बिछे दिल भीतरि इहां राम रहिमाना ॥

कबीर के राम परम तत्व हैं। उनका राम 'अमृत तत्व' का पर्यायवाची है। उससे अमरत्व की प्राप्ति होती है। संसार मर्त्य है पर वह परम तत्व चिरजीवी है और कबीर जी चिरजीवी है। कारण वे राम की अमरता के अंग

१ गोखले दू निरंजन दू निरंजन दू निरंजन राया

तेरे कम नाहीं रज नाहीं मुखा नहीं माया प्रेक॥

समर नहीं शिपर नहीं बरती नहीं गगता ।

रवि सृष्टि बोट एकै नाहीं बहत नाहीं पवना ।

नाद नाहीं व्यंज नाहीं काक नाहीं काया ।

जब तैं जस व्यंज न होते तब तूही राम राया ॥

जप नाहीं उप नाहीं जोग भ्याग नहीं पुखा ।

सिख नाहीं सक्ती नाहीं देव नहीं हुआ ॥

कम न जुग न स्वांग अजरजन वेद नहीं व्याकरता ।

तैरी गति तूही जोनि कबिरा वो सरना । २१२।१३२ ।

है। शास्त्र मर्त्य हैं सन्त अमर्त्य हैं कारण सन्त 'रामरसामन' का पान करते हैं। सन्त की मृत्यु तो तभी होगी जब राम की मृत्यु होगी।

हम न मरे मरिहैं संसारा हंस कूं नित्या क्रियाबन्धनहारा ॥४६॥
जब न मरी मरने मन माना ठेई मूष जिनि रांस न जाना।
साकल मर सल जन कीबैं मरि मरि रांस रखाइल पीनै।
हरि मरिहैं तो हमहूँ मरिहैं हरि न मरे हंस काहे कूं मरि हैं।
कहै कबीर मन मनहि मिछावा अमर नए सुख सागर पावा।

परावली ४३०।१११।

साधना की परमभूमि पर पहुँच कर कबीर अपने को राममय देखते हैं। इस भूमि पर पहुँच कर कबीर अनुभव करते हैं कि मैं समष्टि में हूँ, समष्टि मुझ में है, 'मैं' सबल मैं औरनि में हूँ सब मेरी विष्णु विष्णु विष्णुमात्र हो। यह स्थिति महा समाधि की स्थिति है। इस स्थिति में कबीर त्रिगुणों से ऊपर उठ जाते हैं, वे राम-पर की प्राप्ति करते हैं 'त्रिगुण रहित फल रसि हम राखल सब हमरो नाउ राम राइ हो। राम की अनुभूति 'महाराज' के समान है। इस रस का पान करने वाला योगी है। यह महाराज अमृत-रस है। इससे संसार की सुष्णा छविग्र होठी है। उनका राम गून्व का पर्यायवाची है जिसकी जगन्नि गमन-मण्डल में ही सम्भव है—

अवधू गवन मग्न सर कीबैं।
अमृत छरै मरा मुर जपै बंक नालि रस पीबैं ॥४७॥

×

×

×

यनवाँ जाँ दरीबैं बैंग मगन मया रसि लाया।
कहै कबीर त्रिप संता माहीं सबद अनादुर बाया। १७।७०।

राम की अनुभूति बाणी पान की अनुभूति के समान है। राम-रस-पान में कबीर का मन मउबाला है। यह उपासक उम्मीदों अवस्था में ही हो सकती है। उमा। स्थिति में गमन-मण्डल में कबीर राम के महाराज का पान करते हैं। कबीर न राम-नाम से सम्बन्धित पदों में राम के अनेक रूपों और सम्बन्धों को बर्णन है। राम-नाम की मरिमा और उगा। मरिमा का परिचय देते हुए कबीर ने एक पं. में कहा है—

अब गहि रामनाम भविनासी । हरि तबि बिमरा कतहुँ कै जासी ।
 कहाँ बाइ तहाँ होहु पतझा अब बलि बरसि समझि बिप छझा ॥
 राम नाम सय साय सुखीन्ना । भिजूनी कीट समझि मन बोझा ।

×

×

×

इच्छा के मजघाबरे बोझित राम अवार । कही कबीर हरि धरन गहू,
 मोख-भुर बिस्तार । बीबक रौनी ।

इस चन्दन में मुख्य प्रश्न यह है कि कबीर के राम का वास्तविक स्वरूप क्या है ? कतिपय आलोचकों की यह धारणा है कि निर्गुन और सगुन के प्रति परम्परा से प्राप्त विचारधारा के अनुरूप ही कबीर अपने राम की कल्पना करते हैं । गुणों में सगुणवाद और निर्गुनवाद, इन दोनों रूपों पर समान रूप से चर्चा की गई है । सगुण-यप के माध्यम से यहाँ निर्गुन के निकट पहुँचने की सम्भावना प्रस्तावित की गई है । कबीर तथा अन्य निर्गुनवादी सन्त पुराणों से अनुप्राणित हैं । (देखिए हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास पृ० २००) । परन्तु इस प्रकार का निष्कर्ष भ्रामक है । कबीर पुराणों की परम्परा में नहीं आते हैं । इसका स्पष्टीकरण जाने के विन्मेष्य से हो जाता है । कबीर उपनिषद् के अनुयायी भी नहीं हैं । धाम ही धाम कबीर ने अति स्पष्ट शब्दों में कहा है कि उनके राम निर्गुन के समुल अवतार नहीं थे । उन्होंने नर रूप धारण कर लीला नहीं की थी । ब्रह्मण के बर ब्रह्म लेकर उन्होंने राबन को पराजित नहीं किया था । उनके राम कृष्ण-रूप में भी अवतरित नहीं हुए थे । वन रक्षा हेतु उन्होंने गोवर्धन पर्वत भी धारण नहीं किया था । उन्होंने न तो वामन-रूप धारण कर बलि को छुड़ा था और न उन्होंने बाराह रूप धारण कर पूष्पी को अपने बाँतों से उठाया था ।^१ इस प्रकार राम के निर्गुन और सगुन इन

१ ता साक्षिककेक सावी साबा दुस-मुक मेटि राहो अनाया ॥

ना बसरब बरि औतरि माबा ना संका का राब संताबा ॥

देवै कृन् न औतरि जाबा । ना बठवै के मोद बिसाबा ।

×

×

×

जाँबन होय नहीं बलि छलिया घरनी बेद सेन छबिया ।

दोनों स्वस्वों की सम्मानना को कबीर अस्वीकार करते हैं। इसी प्रकार कबीर को बड़तबारी और एकेस्वरबारी सिद्ध करने का प्रयास भी किया जाता है। परन्तु कबीर अड़ैतबाद या एकेस्वरबाद की सीमा में परिवर्तन नहीं होना है। वास्तविकता यह है कि सप्त तम और रज इम तीनों गुणों से अतीत तत्व को वे निर्गुण मानते हैं। इस सत्य की ओर संकेत करते हुए भाषार्थ इजारी प्रसाद द्विवेदी अपना निष्कर्ष देते हुए कहते हैं 'इसी त्रिगुणातीत, ईशान्वित ब्रह्मदान भाषाभाष विनिर्मुक्त, अकृत, अगोचर अगम्य प्रेम पारावार मगवान् को कबीर दास ने निगुण राम' कहकर सम्बोधन किया है। वह समस्त तत्वों से भिन्न है फिर भी सर्वभय है, वह अनुभवक न्यय है,—केवल अनुभव से ही जाना जा सकता है। इसी भाव को बताने के लिए कबीर ने बार-बार 'गुंन का गुड़' कह कर उसे माद किया है'^१

इन मपस्त विवेचन विषयों में वस्तु-स्मिति का स्पष्टीकरण नहीं हो पाता। कबीर की भावधारण का मूल्यांकन उनकी रचनाओं की ऐतिहासिक परम्परा में ही अधिक उपयोगी और वैज्ञानिक होगा।

यदि हम ध्यान दें तो यह स्पष्ट होता है कि कबीर ने जिस राम की कल्पना की है, वह बोझों का गुप्त है। इस गुप्त को मिटों ने और उनके पन्थात् नाथ साधकों ने जानी विस्तार-वारा के अनुसार प्रस्तावित किया है। यदि कबीर की रचनाओं को गुप्तता से देखें तो इस कथन का स्पष्टीकरण हो सकेगा। कबीर 'राम' के विविध कर्तों की कक्षा करते हैं। परन्तु उनके मूल्यत्व की ओर संकेत करना वे नहीं मूकने। विविध प्रस्तावनाओं के पन्थात् वे इसी मन्द्य पर लौट कर आते हैं। वे स्पष्ट कहते हैं कि लोह राम को हठरप-मुन के रूप में देखता है परन्तु उसके वास्तविक स्वभाव से परिचित नहीं हो पाता है, वह 'रामनाम के नम' को समझ नहीं पाता है। रामनाम का नम क्या है? वह गुप्त है जिसकी जाणनि गहन-गहन में ही सम्भव हो सकती है। लोह-भावस में

उनके राम के प्रति उसी प्रकार की जिज्ञासा भावना है जिस प्रकार की जिज्ञासा भावना भगानी के मन में राम के प्रति थी —

राम को बचन नृपति सुत सोई । की अन्न अमग अन्न गति कोई ।

× + × ×

औ नृप ठनव तो क्या किमि नारि बिरहें मति भोरि ।

वेचि बरित महिमा सुनत अमति बुडि अति मोरि ।

उत्तर में शिव कहते हैं—

राम सखिबानन बिनेसा । नहि तहें माह निरा सन सेसा ॥

सहज प्रकासरूप भगवाना । नहि तहें पुनि बिम्बान विहाणा ॥

राम के समुद्र-स्वापार की कथा के मन्दर्म में गौस्वामीजी उनके निर्गुण स्वरूप और पूर्ण ब्रह्मत्व की ओर स्वस-स्वक पर संकेत करते कहते हैं। 'मुह' की जिज्ञासा को मूस करते हुए लक्ष्मण उसकी संकाओं का समाधान करते हैं :—

सोवत प्रमुहि निहारि निपावू । मयल प्रेम बस हृदय बिपावू ॥

तनु पुसकित जसु कोवन बहई । बचन सप्रेम अन्नन सन कहई ॥

× × × ×

मातु पिता परिजन पुरबासी । छाता सुसीम बाय अइ बासी ॥

जोनबहि बिजुहि प्राग की माई । नहि सोवत तेइ राम मोसाई ।

लक्ष्मण उसकी संकाओं का समाधान करते हुए कहते हैं—

राम ब्रह्म परमात्म कया । अविमल अलम्ब अनादि अनूपा ॥

सकल बिकार रहित मलमेदा । कहि नित नेति निरूपहि बेदा ॥

रामचरित मानस अयोध्या काण्ड ।

इस प्रकार गोस्वामी जी के राम निर्गुण निराकार हैं। यही उनके राम का वास्तविक स्वस्व है। इसी प्रकार कबीर ने भी राम के विविध रूपों के उसी प्रकार के पश्चात् स्वस-स्वक पर संकेत किया है कि उनका राम 'निरंजन' है, वह अमृत-रस है उसकी अनुमति सहज समाधि में ही होती है। इस प्रकार कबीर जिस राम की कल्पना करते हैं वह शुद्ध है। राम के साथ दुग्ध को सम्बद्ध कर कबीर ने अक्षि और योग का समन्वित रूप प्रस्तुत किया है। बीड़ों के दुग्ध को व्यक्तित्व प्रदान करने का अर्थ मानवी दृष्ट करने का अर्थ, मोरल नाथ

को है। उन्होंने दूध के मानवीकरण करने की भावना से एक निबन्ध प्रकट की :—

बसठी न दूध न बसठी अगम अपोचर ऐसा ॥
मयन सिपर पर बासक बोले ताका नाम भरोगे कैसा ।

कबीर ने 'मयन सिपर' पर बोले वाले 'बासक' के लिए 'राम' नाम की प्रस्तावना की। इस प्रकार कबीर ने दूध का नामकरण किया।

कबीर ने अपने राम के स्वल्प प्रस्तावन के लिए भक्ति का अवलम्ब ग्रहण किया है। वैष्णव भक्ति निम्न भक्ति अपना इस्लामी एवेस्वरवाद को

कबीर ने साधन के रूप में ग्रहण किया है कबीर ने रामनाम का आधार ग्रहण किया है। परन्तु मोरखनाय के समान कबीर का सधम या उनका साध्य दूध है।

राम को 'दूध' से सम्बद्ध कर कबीर ने एक नवीन उद्घोषणा की है। कबीर ने अपने राम को अमृत-रस के रूप में देखा है। सहजसमाधि में सिद्ध और नाथ

साधक अमृत पान करता है। पदार्थिता या जलती साधना में कुछक्षिणी जागरण और प्राण-बापु के ऊर्ध्व-मन से साधक द्रव्य द्वारा को अवलम्ब करता है। बादलों

बाँधता है और उसका पान कर अजर अमर हो जाता है। सिद्ध और नाथ मत से सम्बन्धित साहित्य की विवेचना के सन्दर्भ में इसका उल्लेख किया जा चुका

है। असु, कबीर का राम इस अमर बादलों का पर्यायवाची है। इसकी प्राप्ति से सहज समाधि में करते हैं। कबीर के अनुसार रामनाम के रस का पान

करने वाला साधक योगी है। इस रस की बनाने में 'चौद' और 'सूर्य' को भट्ठी करना पड़ता है। सुमुग्धा को पान करना पड़ता है। इस अमृत-मग्न से मुग्धा

रागिण्य होती है। इस रस के पान के फल का केवल अनुभव किया जा सकता है परन्तु इसका वर्णन सम्भव नहीं है। इस रस का पान केवल सहज-समाधि का

अवस्था ही कर सकता है। एक अंग पर में कबीर 'सहज दूध' में 'राम-रस' के पान करने की कर्षा करते हैं।

१. कोई पीने रे रस राम नाम का जो पीने को जोगी रे।
मंगो सेवा करी राम की ओर न दूरा योगी रे ॥१६॥

मदु रस तो सब फोका मया बस अपनि परितारी रे।
ईसर योगी पीवन लावे राम तबी बरिबारी रे।

'राम रस' का पान सिव सनकादिक करते बसे आ रहे हैं परन्तु इससे उनकी वृत्ति नहीं होती। इसा पिपका को मट्टी में परिवर्तित कर अक्षरत्रय में अग्नि प्रज्ज्वलित करने का उत्सेह करीर करते हैं। बसवें द्वार को 'ससिहर' और सूर' से बन्द करके उसमें ताछी लगाने का उत्सेह करते हैं। गंगा में नीर के प्रत्यावर्तित होने से अमृतधार का प्रसृष्टन होता है। इस रस-पान की प्रक्रिया में धुत गागिनि (कुम्भकीर्णी) बाण्ट हो उठती है। परन्तु सतगुरु से ज्ञान प्राप्त कर ही सहज भूय में इस रस का पान किया जा सकता है।^१ इस प्रकार करीर न जिस राम की कल्पना की है वह 'रसामन' और 'अमृत-आम' का पर्याय नहीं है। सिद्धों और नाथों ने भूय मन्त्र' में जिस 'निर्भर' की कल्पना की है उस 'निर्भर' से करीर का राम मिल नहीं है। 'अनह' की किगरी बज रही है। बीरनाथ में ली लगी है। मफ मन्त्र में सींगी बज रही है। वहाँ बि-स्थान पर निराकार का क्रम विजय हो रहा है। वहाँ कनक-कण्य से अमृत-रस का निर्भर प्रवाहित है। पवन-प्यासा में साबक इस रस का पान कर रहा है। करीर उस रसामन को 'राम रसाइन' की संज्ञा देते हैं।^२ करीर ने

बैद सूर दोह माठी कीन्हीं सुपमनि पिपका लागी रे।
अमृत कू पी सांजा पुरधा मेरी पिपका भागी रे।
यहु रस पीबै गुना बहिका ताकी कोई न बूझे सार रे।
कहि करीर महारस मंहगा, कोई पीबैया पीबण द्वार रे।

१. बोको माई राम कू बुझाई

इहि रस सिव सनकादिक माटे, पीबत अबहुँ न अबाई।
इसा प्यमुला माठी कीन्हीं बहू अगिनि पत्तियारी।
ससिहर सूर द्वार बस मुदे, लागी ओव जुय तारी।
मनि मति बाका पीबै राम रस बुझा कछु न मुझाई।
ससटी गंगा नीर बहि जाया, अमृत बार चुबाई।
पंच जाने सो संग करि छीन्हें बसत सुमारी लागी।
प्रेम पियाले पीबत लागे सोबत नामनि लागी।
सहज गुन मैं बिनि रस जाप्या सत गुरु ये मुधि पाई।
बास करिरा इहि रस माठा कबहुँ ज्यकि न बाई।

स्पष्ट धर्मों में कहा है कि राम-गुन की बेलि है। इस स्वयं को इस तत्व को मोरकनाथ भली भाँति जानते हैं। इस बेलि का कोई स्वरूप नहीं है। इसको कोई साक्षा नहीं है। बिना सिद्ध के हो वह यगन तक प्रचलित है। यह बेलि सहज की बेलि है यह पुष्पित होने लगी। सहज के स्वयं को समझाने बाबा गोपी ही रामबेलि के रहस्य को समझता है। इस राम की गति अज्ञात है। अब उसके रूप का बयान सम्भव नहीं है। कबीर स्वीकार करते हैं कि निर्द्वन्द्व राम वहाँ निवास करते हैं वहाँ कुछ है अपना वह स्वयं गूँथ है इसका ज्ञान उन्हें स्वयं नहीं है। कई कबीर वहाँ बहुत निर्द्वन्द्व वहाँ कुछ आहि की गूँथ।

इस प्रकार हम स्पष्ट देखते हैं कि कबीर बेल्मब विचारधारा के साथ बीड़ भावना को सम्बद्ध करते हैं। गूँथ को साकार रूप लेकर उसे अधिक सहज बोधगम्य और मानवीय बनाते हैं। भारतीय चिन्तन-धारा में जड़ित भावना की ही स्वतन्त्र विधायिका मिलती है। प्रथम बेदाश-सम्मत अज्ञातवाज द्वितीय बीड़ अज्ञातवाद या 'गूँथवाद'। कबीर इस द्वितीय वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। इस प्रकार कबीर ने ब्रह्माज्ञातवाद के साथ बीड़ज्ञातवाद को सम्मिलित किया है। ब्रह्माज्ञातवाद को परम उत्तराधिकारी में उसकी साधना मुक्त नहीं है। अपनी साधना के परम रहस्य को स्पष्ट करने हुए कबीर ने कहा है—

२ अण्ड गुण बनहर कीगरी बाज वहाँ दोरस नार स्या लागै ।
 नि अस्वान अन्तर मृग छाला यगन मण्डल सीपी बाज ।
 तहूँ एरु दुर्कान रख्यो है निराकार जन साजै ।
 यगन की माटी सीपी करि बूँपी कनक कलस एक पाबा ।
 तहूँ बुरे अमृत रस नीमर रस ही में रस बुबाबा ।
 अब तो एक अनुरम बाज पर, पवन विवाला साजा ।
 तीनि यवन में एहे जामी बहो कहा बने राजा ।
 बिनर जायि पण्डित परमोत्तम बहि बजार रसि राजा ।
 पट्ट दुनियाँ काँध भ्रमि भुजानी में राम रमान माना ।

भक्तपू गगन मण्डल पर कीर्तै ।

धमूत भरे सवा मुस छप्ये बंझनाछ रस पीरै ।ऐका।

मूछ बांझि सर गगन समानां सुपमन यो तन जायी ।

काम क्रोध बोळ भवा पसीता तहाँ जोगणीं जायी ॥

भनबी जाइ दरीवै बैठै मयल भवा रसि छागा ।

कई कबीर जिय संसा नांहीं ससइ अनाहुव जागा ।

पद्य ७०।२७ ।

जत कबीर का राम 'भूय' है, उनका राम 'निर्वाण' है जिसको उन्होंने ब्रह्मण्य भक्ति के आदर्शन के साथ सम्बद्ध किया है। परन्तु उद्देश्य उनका भूय है ब्रह्मण्य भक्ति नहीं। इसके सम्मापित कारणों पर सन्त साहित्य के समष्टियुक्त मूल्यांकन के अन्तर्गत विचार किया गया है। वास्तविकता यह है कि कबीर ने 'भूय मण्डल' में निवास करने वाले पुण्य का ध्यान किया है। बौद्धों ने निर्वाण को शीतल कहा है। उनका यह विश्वास है कि संसार अशुद्ध है और निर्वाण वस्तुतः इस अशुद्धता का दूसरा पक्ष है उसका शीतल होना ही निर्वाण है। कबीर की भक्ति इस निर्वाण से मिलन लब्धी है। उन्होंने अपनी भक्ति के शीतल स्वरूप की कल्पना की है कबीर इस भक्ति के स्वरूप की खोज करते हुए कहते हैं कि भूय में स्नान करने से तन की तपन समाप्त हुई और तन शीतल हुआ— 'तपनि नई शीतल भया अब यह किया मुनि अछमान। इस प्रकार कबीर की भक्ति का साम्य है सहज समता जिसे कबीर राम का पर्याय मानते हैं। यह एक मानसिक स्थिति है, अनुभूति है जिसमें सापेक्ष व्यक्तिगत मन निरपेक्ष और समष्टियुक्त हो जाता है। इसे मन की इन्द्रावीत अवस्था कहते हैं। गान्ध सम्प्रदाय ने इस प्रकार की अवस्था की कल्पना की है—'बुद्धिमा मेंटि सहज में रही ऐसा विचार मछिन्त्र कही। कबीर ने इसी के अनुकूल कहा है—

सहज सहज सब कोई कही सहज न बीसी कोइ ।

जिन्ह सहज हरिबी मिलै, सहज कहीजे छई ।

सहज सहज सब गये मुन बिठ कामिबी काम ।

एहमेव है भिन्नि रह्यो बात कबीर राम ।

कबीर ग्रन्थावली, छापी ४ ३ पृ० ४२ ।

कबीर ने ज्ञान विस्तार की प्रस्तावना के लिए भक्ति का व्यापार ग्रहण किया है। भक्ति के विभिन्न रूपों को कबीर ने समता के घरेलूतन पर ग्रहण किया है। कारण कबीर में अपने समाज को संयुक्ति और समन्वित करने का बलवर्ती प्रेरणा थी। सिद्धों में समाज-उत्थान की भावना नहीं थी। व्यक्ति और समिष्ट के सामासिक अनुबन्धों में हात्तात्म्य-संस्थापन की प्रस्तावना उनमें नहीं थी। वह उनका उद्देश्य भी नहीं था। सामाजिक स्तर पर उठकर कर जीवन को संयुक्ति करने का आग्रह उनका उद्देश्य नहीं था। उनके कुल का व्यक्ति अपनी विद्यालय भावना में अपनी माया का प्रतिबिम्ब उनकी रचनाओं में नहीं पाया था। नागरिक ने नवीन सम्भावनाओं की व्यापार भूमि प्रदान करवा बाधा। पञ्च पुण्य निहृति मायी होने के कारण उनमें निहृताता के विपरीत प्रतिव्यवस्थिक स्वर प्रभाव हो गया। गार्हस्थ्यिक मूल्यों की अवहेलना के कारण इन चारों को समाज की सावेष्टता में स्थान न मिल सका। समाज-उत्थान तथा पुनर्जीव की समन्वित करने की प्रस्तावना उसमें नहीं थी। कबीर मृत्यु और जन्म थे। अपनी पूर्वजन्मी विस्तारवादी में निहित जीवन के नियमात्मक तत्वों के दर्शन के कर चुके थे। जन्म जीवन के माप सम्बन्ध जीवन की समष्टि में जीवित रहन कभी भक्ति विद्या का व्यापार ही उनकी विस्तार वारा का व्यापक जन्म मकेमी उनके द्वारा ही के पुनर्जीवन को करने निवृत्त सा लगेने देने के समकल लगे थे।

ब्रह्म भक्ति का अवलम्ब कबीर ने अपनी विस्तार के माप जपनवा था। सामासिक ज्ञाने पुन के सब उपर्य व्यक्ति थे। ब्रह्म भक्ति की अवधारणा उन्होंने नाभाव्य मानव के लिए की थी। सामासिक के इस महान् जोर उठार व्यक्ति के कारण ही कबीर उनकी और आकर्षित हुए थे। कबीर ने ब्रह्मों के प्रति सम्मान भाव व्यक्त किया है।^१ वह कहा गया है कि कबीर ने 'नारदी भक्ति' की भी

१ (i) मेरे लीने होर जया एव ब्रह्म एक राख।

को है जगना मुनि का को मुनिरावे नाम। नामी ४।

(ii) ब्रह्म की दारी कनी का जन्म का बर दाउ। इत्यादली १३।

(iii) पाग, बाँधव सी जिनें बनो सिउ ब्रह्म।

अरु माग दे मनिवो जाना कि लोनाक। इत्यादली २३।

बर्षा की है। गारबी भक्ति में प्यारह प्रकार की आसक्तियों की बर्षा की गई है। इनमें कान्ता आसक्ति का भी वर्णन मिलता है। कबीर की रचनाओं में प्रेमासक्ति-भावना को व्यक्त करने वाली रचनाएँ हैं। 'रामानन्द' की एक रचना है 'बेधव मठाव्य मास्कर'। इस ग्रन्थ में ईश्वर और जीव के सम्बन्धों को पति-पत्नी (माया मनुष्य) के सम्बन्धों के रूप में व्यक्त किया गया है। कबीर की रचनाओं में इस भाव-बोधना से सम्बन्धित कतिपय पद मिलते हैं—

बुछहिम गावहु मंगल चार

हम पर आए हो राधा राम सतार । टेक ।

तन रति करि मैं मन रति करि हूँ पंचतत बराती ।

राम देव मोहि ब्याहन आए मैं बोकन मत माती ।

सरीर सरोवर बेरी करि हूँ, बड़ा देव उचार ।

रामदेव संगि भावरी मैं हूँ, बनि-बनि भाव हमार ।

गुर तेरीसुँ कौसिम आए, मुनिवर सहस जम्मासी ।

कई कबीर हम ब्याधि कहे हैं पुरिप एक अविनासी^१ । पद १ ।

एक अन्य पद में इस प्रकार की भावना मिलती है कि व्यापक अवधि के पश्चात् प्रिय के दर्शन होते हैं। प्रिया से मिलने प्रिय (राम) स्वयं आए हैं। मंगलाचरण के पश्चात् प्रिया ने राम रसामन से अपनी रचना पवित्र की। अविचार कक्ष स्नेह, मिष्ट और परिचय से आलोकित हुआ। प्रिया को संयोग-मुख मिला। प्रिया को इसका वीरव है कि प्रिय (राम) ने उसे सुहाग का अनुदान दिया।^१ एक अन्य पद में इस प्रकार के भाव व्यक्त है कि हरि मेरे प्रिय हैं मैं

१ आचार्य रामचन्द्र मुस्त ने कबीर को बेधवों की बहिष्ता और प्रपत्तिबाध से प्रभावित माना है—हिन्दी साहित्य का इतिहास। मण्डारकर कबीर को बेधव भक्ति परम्परा में म्नाते हैं। Vaishnavism and Saivism. 95 'रामानन्द' के प्रधान उपदेश अलख्य भक्ति को कबीर ने धारिदा स्वीकार कर लिया था। बाकी तत्त्व ज्ञान को उन्होंने अपने संस्कारों तथा और प्रिया के अनुसार एक नवीन रूप दिया था। कबीर २८। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ।

२ बहुत निमल में प्रीतम पाये ।

मान बड़े चरि बैठे जाये ।

मंगल चार मोहि मन राखी राम रसामन रहता चापौ ।

मनिवर माहि भया उजियारा छि मूठी अपना पीव सिपाय ।

मैं रमि राखी बे निबि पाई हमहि बड़ा बहु तुमहि बड़ाई ।

कई कबीर मैं कछु न कीन्हां, सखी सोहाम राम मोहि दीन्हां । पद २।

उसकी बहुलिया है। हरि बिना मेरा जी एक पल के लिए भी विधाय नहीं पाता।^१
 इन मन्त्रों के आधार पर यह निर्णय किया जाता है कि कबीर 'गारवी
 मन्त्रि' या रामानन्द की तत्ति पद्धति के अन्तर्गत आते हैं।

विरह निवेदन की इस तीव्रता के आधार पर कबीर के अधिकांश आलोचक
 यह निर्णय लेते हुए मिलते हैं कि कबीर न विरह भावना और उसकी व्यक्तता
 प्रणाली सृष्टियों से प्राप्त की है। कबीर में मायुर्ग भाव के तत्त्व मिलते हैं, विरह
 निवेदन की तीव्रता सृष्टियों की पद्धति के अनुसार ही लगती है। भारत में कबीर
 के पूर्व सूफी सम्प्रदाय प्रचलित हो चुका था। इस आधार को ग्रहण करते हुए
 डॉक्टर रामकुमार वर्मा ने अति विश्वास के साथ कबीर पर सूफीमत के प्रभाव
 को स्वीकार किया है।^२ परन्तु कबीर सूफी-साधना से प्रभावित थे यह एक
 विचारणीय प्रश्न है। वास्तविकता जो भी हो, परन्तु इतना स्पष्ट है कि सूफी
 साधना कबीर का साध्य नहीं है। वेमे ही जैसे वैष्णव भक्ति। सूफी तत्त्व या
 पक्ष तत्ति कबीर का अपस्तुत है। प्रस्तुत है कबीर का राग, कबीर का धृष्य।

मित्र साहित्य की विवेचना में कहा गया है कि बोधिचर्य की प्राप्ति के लिए
 'कण्ठा' और 'गुण्यता' के संयोग की कल्पना की गई है। महायान में 'कण्ठा'
 को 'उदाय' और 'गुण्यता' को 'प्रज्ञा' कहा गया है। महायानसूत्रालंकार में
 गुण्यता न गन्धर्वी के रूप में प्रकीर्ण है। बोधिचर्य हमने प्रकाश आलिंगन
 में परिचय करते हैं। 'अष्टयवस मण्ड' में गुण्यता को क्ली और कण्ठा को पति
 का में स्वीकार किया गया है। इनके विम्वन का वर्णन दाम्पत्य-सुख-संयोग के

१ हरि मेरा पीब माई हरि मेरा पीब
 हरि बिन रहि न सटे मेरा जोर निरा
 हरि मेरा पाव मैं हरि की बहुलिया
 राम कह मैं चुनक लहुलिया
 तिया म्यंगार मिलन के लोई।

जाटे न मिले रात्रा राम दमाई।

कबीर के विम्वन को पाई

कई कबीर भी जसि कहि जाई। ११७।

२ तिम्रो गण्धि का भाग्योबनामर इनिहाम गू०

माध्यम से किया गया है। इस मिशन को 'समरस-अवस्था' भी कहा गया है। गुरुपदा और कल्या के मिशन का मात्र साहित्य में शिव-शक्ति के मिशन के रूप में वर्णन किया गया है। इसे निरपेक्ष आनन्द भी कहा गया है। कबीर ने इसी प्रकार की समरसता की निरपेक्ष आनन्द की कल्पना की है। परम्परा से प्राप्त वर्चन-प्रणाली का प्रयोग करते हुए कबीर ने दाम्पत्य-गुण-साधन का प्रयोग किया है। अतः कहे कबीर हम आर्हि कैसे हैं पुरुष एक बनिासी में इसी। समरस या अर्द्धत अवस्था का वर्णन किया गया है। कबीर पर इस्लामी एकेन्दरवाद का प्रभाव भी देखा गया है। परन्तु कबीर जिस अल्पाह की कर्मा करते हैं, वह निरञ्जन है धूय है। वह समस्त संसार में है, समस्त संसार उसमें है। कबीर की पंक्तियों में ही—

सब हम आर्हि सकस हम माही।

हम ने और दूसरा नाहीं।

तीनि जोक में हमारा प्रसारा

आवागमन सब खेल हमारा।^१

कविपद आलोचकों ने कबीर की कतिपय रचनाओं में अर्द्धत में 'त' सिद्धांत के वर्णन किये हैं। इस प्रकार की भावना कास्मीरी शैव वर्चन में भी मिलती है। अतः इस वर्ण के आलोचकों की यह चारबा है कि कबीर कास्मीरी शैव वर्चन से

१ (क) सुफी-साधना में प्रेम-साधना के माध्यम से मनुष्य का ईश्वर में 'हक' हो जाना स्वीकार किया गया है। 'हाक' की स्थिति समाप्त हो जाने पर अर्द्धत स्थिति समाप्त हो जाती है। परन्तु कबीर की दृष्टि उससे भिन्न है जगत् परम उद्देश्य इन पंक्तियों में व्यक्त है—

मैं छोरे छोरे जाँझा तो मैं बहुरि न भीबल जाँझा।

×

×

×

जहाँ छूट कपास न पूनी तहाँ बसे एक मूनी।

उस मूर्ति सृष्टि समाज तो मैं बहुरि न भीबल जाँझा।

(ख) इस्लामी एकेन्दरवाद में अल्पाह का रूप है—सा इलाहे इल्लिहाह मुहम्मद ई-रसूल—अल्पाह का कोई अल्पाह नहीं वह एक मात्र परमेश्वर है मुहम्मद उनका रसूल है।

भी प्रभावित थे। कास्मीरी छंद दर्शन में यह भी प्रस्तावित है कि परम शक्ति सृष्टि-सर्वना में माया का आकार नहीं ग्रहण करती है। उसकी समस्त दर्शन बिना प्रत्यक्षिधारण में केन्द्रित है। परन्तु 'अ' ठ' या 'बहु' ठ' आवास्म भक्ति से कबीर का सम्बन्ध नहीं रहा है। अतः कास्मीरी छंद दर्शन के सम्पर्क में कबीर की विशेषता आरोपित बन्नु होयी। कबीर ने 'आरकरी सम्प्रदाय' के मन्त्रों का स्मरण किया है। इस सम्प्रदाय की भक्ति मानना ठे भी कबीर प्रभावित कल्पते हैं। मन्त्रों पर लक्ष्य की विचारों कह कर कबीर ने स्मरण किया है। इस वर्ग के शास्त्रक व्यवहार का भी विचार नहीं करते बल्कि मूर्तिभार का खण्डन भी करते थे। वे शास्त्र और साध्य में साधारण सम्बन्धों की कल्पना भी करते थे। इन दृष्टियों से कबीर और इन साधकों में साम्यता मिलती है। परन्तु आरकरी सम्प्रदाय के मन्त्र ज्ञान-मूढक अर्थतरक भक्ति के लिए सगुण उपासना पर भी अवलम्बित होते हैं। कबीर इन दृष्टि को स्वीकार नहीं करते हैं।

कबीर ने स्वयंभवेष्टज्ञान पर विद्वाह प्रकट किया है। वे स्वयंभवेष्ट ज्ञान की 'साधनी' ठेते हैं। 'स्वयंभवेष्टज्ञान' के लिए स्वानुभूति आवश्यक है। इसे वे 'परमा की धन' कहते हैं। इसी ज्ञान के आधार पर वे अपने 'साधन' के अस्तित्व की अनुभूति करते हैं। इस प्रकार कबीर की समस्त प्रस्तावना 'स्वयंभवेष्ट ज्ञान' पर आधारित है—

मुरति लमायी निरति में नरति रही निरपार
 मुरति निरति बरषा बसा ठह लूने म्यमं दुवार । २२।१७
 मुरति लमायी निरति में बजरा की है बाप ।
 लेख लमायी अनेक में मूं बाप की है बाप ।

इस प्रकार कबीर की समस्त प्रस्तावना स्वयंभवेष्टज्ञान पर आधारित है। वे वेद शास्त्र का प्रयास नहीं ग्रहण करते हैं। सारेष्ट ज्ञान के निरलेख ज्ञान में लब्ध हो जाने के बाद ही कबीर को आत्म निरत्यक लगते हैं। यह ज्ञान दर्शन और धर्मों पर आधारित नहीं है। इस ज्ञान को 'अत्य ज्ञान' कहते हैं। कबीर इसी अत्य ज्ञान के पुर्णारी हैं। इसी ओर ही बंझ जाने हुए कबीर ने विदु बरषा मुरति हो' का उल्लेख किया है।

कबीर में समाज-संरक्षण की भावना अति प्रबल है। साध-ही साध इन्होंने स्वयं सबिद्यज्ञान के आधार पर साधना की विविध भूमियों का वर्णन किया है। उनके साध साधाम्य स्थापित किया है। अपने ज्ञान के आधार पर समाज को विभक्त करने वाले तत्त्वों पर वे आघात करते हैं। वे छिद्रों की अवहेलना करते हैं। बौद्ध और धार्मिकों की निन्दा करते हैं। कबीर ने सर्व काशीन मानव को उन्नत जीवन दृष्टि दी है। उनके लिए सबसे बड़ा सत्य मनुष्य है। ब्राह्मण क्षत्र हिन्दू मुसलमान पण्डित-मुन्ना बौद्ध-बौद्ध-साधक, ये सभी मनुष्य के रूप में समान हैं। गस्त्रिय-गस्त्रिय मनुष्य को स्तब्ध करते हैं। कबीर वर्ग-भेद और वर्ण-भेद की भावना पर कठोरता से आघात करते हैं। आर्थिक विपन्नताओं के आधार पर मानव का मूल्यांकन नैतिकता के विपरीत है। कबीर की दृष्टि में जीवन के स्वस्थ मूल्यों से पतित मानवीय चेतना से शुभ्य व्यष्टि ही निर्बल है—जिनके हृदय में 'राम' नहीं वे निर्बल हैं।

निर्बल धार कोई न देखे। साध जतन करे ओहु बिद न बरेई।

जो निरबल सरबल के जाई। जाये बेटा पीठ फिराई।

× × × ×

निरबल सरबल बोलो भाई। प्रभु की कला न भेटी जाई।

कहि कबीर निर्बल है सोई। जाके हिरई राम न होई।

कबीर प्रस्तावना १०२। परिशिष्टि।

कबीर प्रस्तावना में संछ्छीत रचना में 'अज्ञान' में विभक्त है। 'अज्ञान' के विभाजन के ऐतिहासिक स्वरूप पर आगे विचार किया गया है। 'मन की बंध' शीर्षक के अन्तर्गत जो साहित्यी संछ्छीत हैं। उनमें मन के गुणात्मक स्वरूप की चर्चा कबीर ने की है—

मन बीसों मन पाइए, मन बिल मन नहि होइ।

मन छनमन उस अंड ज्युं अनस बकासा जोइ। १।

इस अंश में कबीर ने मन के दो रूपों का वर्णन किया है। प्रथम सापेक्ष मन और द्वितीय निरपेक्ष मन। सापेक्ष मन जब निरपेक्ष मन में समर्पित हो उठता है तो इस स्थिति को उम्मनी अवस्था कहने हैं। मन की विविध साधनारमक परिभूमियों की चर्चा करते हुए कबीर ने कहा है—मन की साधना

से ही मोरख नाब बनने व्यक्तित्व का निर्माण कर सके थे। मन-साधना से ही योगिन् की उत्पत्ति हो सकती है (१०)। पर मन की स्थिति कुछ विचित्र है। वह जस से भी पतला और घुस से भी अधिक खींच है और पवन से अधिक चंचल और झुलगायी है। ऐसे मापेस मन को कबीर ने निम्नोक्त रूप प्रदान दिया है, उसे जामा नित्र बना दिया है।

पांणी हीं तै पातला पूरै हीं तै भीम।

जम्ना बेमि उतावला सो सोठ कबीर कीन्ह। १२।

मन को अंग।

कबीर ने मन को मृग के समान देखा है। इस प्रकार के अनक प्रयोग विदों और भाषों की रचनाओं में भी मिलते हैं। बाया कमाल है ज्ञाननिर्घोष पंचनाम है। पारधी के समान मन-मृग पर आक्रमण कर कबीर उसे अपने अधिकार में करके परम दान्ति की उत्पत्ति करते हैं।

काया कर्म कर्मो ज्युं, पंचतल करि बाँध।

भातै तो मन मृग को नहीं तो दिख्या जाहि। १३। २६२। २६३।

‘माया को अंग’ के अन्तर्गत कबीर ने माया के स्वरूप की चर्चा की है। परम्परा से प्राप्त ‘माया’—विषयक धारणा से विभक्त कबीर की माया है। वस्तुतः ‘अंशज मूल’ ही माया है। उसका नामकरण के पातली पारिणी आदि संज्ञाओं से करते हैं।

माया मुई न मन मुबा भरि भरि गया सरीर।

जाता निजो मा मुई यो कहि मया कबीर। १४।

कबीर ने द्विधात्मक और मत्वात्मक बीजन-दर्शन की प्रस्तावना की है। ज्ञान-ग्रन्थों से ज्ञान प्राप्त करने की जरूरत प्रेम की महिमा शून्य है। परम तत्त्व प्रेम द्वारा ही उपलब्ध हो सकता है। ज्ञान की जरूरत प्रेम का मार्ग सारथ है बीज-गम्य है—

बोयी पड़ि-पड़ि जव मुबा पड़िन मया न कोइ।

एटै भातिर पीव का बड मु पड़िन हां १५। १४०।

जो ही ‘मन को अंग’ ‘माया को अंग’ और, ‘माया साया भूत का अंग’ में गौरीयन रचनाओं में दर्शन की व्याख्या मिलती है। इस प्रकार अंग की

साक्षी होते हुए कबीर अपने 'स्वयंस्वविद्यानाम' का वर्णन करते हैं। 'भक्ति के बंध' में ज्ञान भक्ति को कबीर तत्त्व कहते हैं। प्रेम भक्ति को दीप्त कहते हैं। कबीर इन रचनाओं में समाज-पक्ष के विपरीत साधना-पक्ष की बर्णना करते हैं। वे विशिष्ट सांकेतिक और प्रतीकात्मक दृश्यों का प्रयोग करते हैं, साधना की विशिष्ट उपलब्धियों का वर्णन करते हैं। छंदार के प्रयोगों से मन को मुक्त करने की भावना को सिद्धों और नाकों ने मन-मारने की संज्ञा दी है। इसे 'बीबित मृतक' अवस्था भी कहा गया है। हरि प्रेमी के लिए यह अवस्था एक अनिवार्य आवश्यकता है—

जीवत मृतक हूँ रहै तबै जगत की भास ।

तब हरि सेवा आपन करै भक्ति बुल पावै दास । १ ।

सिद्धों और नाकों ने साधक के लिए 'सूर' या 'पारखी' शब्द का प्रयोग किया है। बंधन मन को मारने वाले साधक को कबीर 'सूरज' कहते हैं—बही सूरज है जो मन का भ्रम करता है—

कबीर सोई सूरजो मन धुंमाई भुल ।

पंच पयासा पाकि कै हरि करै सब पूज । २ ।

सूरजतन को बंध । ३१ ।

गहन में बसाया बसता है निवास का निरंतर आवात पड़ रहा है जिस सूर में आत्म-बहिष्कार की अभिलाषा बसकटी है। बही इस संशय में भाग ले सकता है (१)। कबीर का मार्ग प्रेम का मार्ग है। यह प्रेम खेत में उत्पन्न नहीं होता है। हाट में इसका रूप विक्रय नहीं होता है। इसके लिए सिर का बहिष्कार करना होगा। सिर का बहिष्कार कर राखा प्रजा सभी इस प्रेम की उपलब्धि कर सकते हैं—

प्रेम न खेती नीफरै प्रेम न हाटि बिकाइ ।

राखा परखा जिस बने सिर है सो के बाइ । २१। २२ ।

भक्ति राम की बुझैली है इस मार्ग पर कापुष्य नहीं चल सकता। जिसमें शीघ्र समर्पित करने का आग्रह और धमका है। बही इस मार्ग पर चल सकता है। राम की भक्ति भक्ति की व्याख्या है। इस व्याख्या के साथ कौतुक करने वाला व्यक्ति दण्ड हो जाता है (२३)। साधक के लिए कबीर 'सती' शब्द का प्रयोग करते

है। सत्सी साधना सती के समान बढ़ होती है। प्रिय का नाम-स्मरण कर सती जलने के स्थिर प्राण त्यागल-हेतु निकसी। प्रिय का नाम मुक्ते ही अपनी मुक्ति धुसकर स्व को परित्याग कर बहु प्रिय में समाहित हो बठी। वस्तुतः यह एकाकार की स्थिति है, जिसे 'समरसता' की अवस्था कहा गया है।

सती जलन कूं नीकली पीव का मुपरि सनेह।
सबर मुक्त नीव नीकस्या भुलि गई सबदेह।
सती जलन कूं नीकली बित्त बरि एक न भेल।
तन-मन सौंपा पीव कूं सब अंतरि रही न भेल।

—मुरा तन की अंग। ३६ ३०।६३।

कबीर ने अपनी साक्षियों में 'सबर' शब्द का प्रयोग किया है। 'सबर' को जंग के अन्तर्गत की मात्सियों में विविध प्रकार की ज्ञानात्मक माध्यामों की कक्षा की गई है। यहाँ 'सबर' शब्द के व्योम के रूप में प्रयुक्त है। 'सबर' 'साधन' का प्रति रूप है। कबीर 'सबर' को ज्ञान की कहते हैं जिसमें ज्ञान पर आक्रमण करते हैं। सत्सु 'सबर' के ज्ञान के प्रयोग से ज्ञान की समाप्ति कछा है—

तन पुन साधा कुरिनी सबर बुझाए एक।
जायन ही में मिथि गया बह्या कपिने सेक। ३६।
गारा बहुत बुझारिया पीड़ पुकारे मोर।

जामी नाट सबर की रह्य कबीरा मोर। ३६।३८।

ज्ञान की मार से अहंकार का विनाश होता है। परम तत्त्व के साथ साधारण होता है। इसी सबर को कबीर 'हरि रत्न' भी कहते हैं।

ज्ञान-अवलम्ब के साधनों में कबीर ने बुद्ध को सर्व श्रेष्ठ स्थान दिया है। बुद्ध 'धम्म' के श्रवणों का अनुपादन करता है। कबीर ने बुद्ध को 'भुक्तों' कहकर सम्मान नाम व्यक्त किया है। बुद्ध 'सबर' के आभास से ज्ञान को प्राप्त करता है। मन में अज्ञान निगम अवस्थित रहता है जमरी प्रेरणा से ही ज्ञानी अवस्था की प्राप्ति होती है—

हमें न बोले ज्ञानी ज्ञान मेरवा पारि।

बड़े बजार भीतरि सिद्ध सत्सु के हबिबार। ३।२

दुःख की जंग।

इस प्रकार स्वयंसंवेद्यज्ञान की ओर गुरु ही संशान्ति करता है । गुरु की हिमा का उद्घाटन करते हुए कबीर ने कहा है—

बीपक बीया छेस भरि पाती दई अघट्ट ।

पूरा किया बिमाहुनी, बाहुरि न आवी हट्ट । १२

माया के दीपक पर नरपतंग के समान आकर्षित होता है । गुरु-ज्ञान में उद्बुद्ध और सचेतन प्राणी ही इस आकषण से अपनी रक्षा कर पाता है । साधना की उच्चतम भूमि पर पहुँचकर साधक यह अनुभव करता है कि गुरु श्री गोविन्द में अन्तर नहीं है । गुरु मेम का मेम है । उसके सिक्कन से ज्ञान का बीज अंकुरित होता है ।—

कबीर बारह प्रेम का भीबि गया सब अंग ।

अंतर भीगी बातमाँ हरी भई बराराइ । ३४

कबीर ने छसठी साधन का वर्णन किया । वर्णन की इस विशिष्ट विधा को छसट बाँसी कहते हैं । 'सिद्धों तथा 'नाथों' की रचनाओं में इस वर्णन विधा की प्रचुरता मिलती है । (विशेष पृष्ठ ४४ ४५ १९८) । अपनी पूर्ब परम्परा के अनुसार कबीर ने अपनी उल्टाबाँसियों की रचना विरोधी धर्म के उपमाओं तथा विरोधी धर्म के वाग्विषय के विविध प्रयोगों के माध्यम से की है । इसके अन्तर्गत असंयत पर योजना विरोधाभास विगाथन आदि के विशिष्ट प्रयोग मिलते हैं— यथा

कैसे नगरि करो कुटबारी,

पंचम गुरुय विषयन मारी ।

बैस बियाह गाइ भई नाँक

बछरा बूडे तीन्वो सोम ।

मझी बरी मापी छमिहारी

मास पठारि बीसह रतबारी ।

मुसा लेबन नाब सिक्किया

मीठक सोबै सांग पहरिया ।

निधि उठि स्वास स्वधै नू शूई

कई कबीर कोई बिस्सा धुमे ।

अपीत, अंबल पुष्प और अंबला गारियों से सजा परिपूर्ण है। ऐसे मकर की रक्षा कैसे की जाय। बस प्रवृत्त करता है नाम बध्या रखी है। बछड़ा सीनी सम्प्रा में दुहा जाता है। मरुड़ी मस्ती के घर दीड़कर जाती है। मैत्रक सोया है। सूर्य पहरा है छा है। प्रति दिन स्वास (शुवास) सिंह से जुम्मा है। कबीर कहते हैं कि इसका अर्थ निराले ही समझते हैं।

संज्ञा की रचनाओं में मन के दो रूपों की कल्पना मिलती है। प्रथम चेतन मन द्वितीय अचेतन मन। अचेतन मन के सिद्ध 'सिद्ध हाथ' का प्रतीकारणक प्रयोग किया गया है। प्रसोक्तपूर्ण वृत्तियों अहंकार और अज्ञान अचेतन मन की वस्तुतः हैं, जिनके द्वारा बहु चेतन मन (स्वात्) को अपने अधिकार में रखता है। ज्ञान उपलब्धि के पश्चात् चेतन मन इन प्रभावों से मुक्त होता है। यह अचेतन मन को अपने अधिकार में न लेता है। यही श्रुति का सिद्ध है 'जुम्हारा' है। याम इन्द्रियों का प्रतीक है। इन्द्रियों अज्ञान और अचेतना का प्रवर्तन करती हैं। ज्ञान के प्रसङ्ग से इन्द्रियाँ भटक हो उठी हैं वे अज्ञान और अचेतना का प्रवर्तन नहीं कर पाती। यही याम का बन्धना होना है। अब मन से चेतना प्रसङ्गित होती है। यही उक्त 'विमाना' (प्रवर्तन प्रक्रिया) है। चेतन मन से प्रवर्तित ज्ञान बढ़ता है। उक्त निरन्तर चेतना का स्वरूप होता है। यही चेतने का दुष्प देना है। संसार के प्रसोक्त मान के समान बने हैं। अब चेतन मन उनकी ओर आकर्षित नहीं होता। इन्द्रियों (विद्वत्) चेतन मन (मूख) पर आश्रित है। 'भीड़' (चेतन मन) विविध है। अचेतना (सर्व) उक्त आत्म-साध करने का प्रवर्तन नहीं करती।

सामना के कुछ तत्वों एवं परम तत्व के सम्बन्ध त्रिपौरुष से सम्बन्धित एकाम्रो के अतिरिक्त बहीर बस्ती एकनाओं में साक्षात्क कुरीतियों का सम्म बनने हैं। साक्षात्क कुरीतों पर आपाठ करने हैं। तृतीय वर्ग की एकनाओं में कानेपक के रूप में बहीर का अतिरिक्त सम्म बनता है।

बकीर पम्पावली में मंगुडीन बागियों वाली 'मकली' और 'रमैली' में बिछल हैं। रमैली में जोतारवों के सरबानु बोझ के घना वा जम तियोजित है।

यह अपभ्रंश की कड़वक सेही की काव्य विधा है। 'बीजक' की रचनायें 'बाबना' 'चौतीसा', 'सिपि' 'बार' 'चांवर' 'हिमोस' 'कहरा' 'बेसि' आदि में वर्णिकृत हैं। अनुमृति के रागात्मक तत्वों का वर्णन वे गेय पदों में करते हैं।

कबीर के नाम से प्राप्त रचनाओं की भाषा में एक कस्ता नहीं है। इनकी रचनायें मौखिक परम्परा में ही जीवित रही हैं।

काव्य-क्रम से इनमें ध्वन्य रचनाकारों की रचनायें भी सम्मिश्रित होती रही हैं। इस प्रकार समय के अनुसार इनके नाम से प्रचलित रचनाओं के आकार प्रकार में परिवर्तन होता रहा है। कबीर के 'बीजक' के टीकाकार बिचार दास ने 'बीजक' का आचार ग्रहण करते हुए कबीर की रचनाओं की भाषा को पूर्वी कहा है। (बिचारदास शास्त्री—बीजक बिरल टोका पृष्ठ ८३।) डॉ० रामकुमार बर्मन कबीर की भाषा का व्याकरण पूर्वीहिन्दी पर आधारित मानते हैं जिस पर पंजाबी के यथेष्ट प्रभाव को वे स्वीकार करते हैं। (सप्त कबीर—डॉ० रामकुमार बर्मन पृष्ठ २२)। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कबीर की भाषा को राजस्थानी-पंजाबी मिश्रित खड़ी बोली कहा है। इनका यह निष्कर्ष है कि 'रमैनी' और 'पदावली' की भाषा ब्रजभाषा और पूर्वी भाषा है (हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० ८०)। वस्तुस्थिति यह है कि इनकी भाषा में भिन्न भिन्न आधुनिक आर्य भाषाओं के रूप उपलब्ध हो जाते हैं। भाषा-स्तरों की अनेक रफ्तार के कारण ही इनकी रचनाओं को एक से अधिक व्यक्तियों की रचना समूह कहने के लिये हम आकर्षित होते हैं।

रचनायें

कबीर की रचनायें कबीर के बाद लिखित की गई हैं। इनके नाम से प्रचलित रचनायें 'सासी' 'सबरी' और 'रमैनी' शीर्षकों में वर्गीकृत हैं। इस प्रकार का विश्वास प्रचलित है कि कबीर दास के सिष्य धर्म दास ने सर्व प्रथम संवत् १५२१ में 'बीजक' नाम से उनकी रचनाओं का एक संग्रह तैयार किया था। परन्तु 'बीजक' की रचनाओं की भाषा के आधार पर इस मतवाद का समर्थन नहीं किया जा सकता। 'शुद्ध-ग्रन्थ साहिब' में संग्रहित कबीर की रचनाओं

की प्रमाणिकता सर्वोत्तम है ।^१ कबीर की रचनाओं से सम्बन्धित निम्नलिखित विवरणों प्रचलित हैं—

‘सहस्र ज्ञानमे जो छव साता । कुप परमान रमैनी भासा’ ‘अर्पात मुख-बर्ष के अनुसार कबीर ने सत्र सात छिमावने हजार रमैनीयों की रचना की है ।

सेन नाई — सेन नाई की जीवनी तथा उनके व्यक्तित्व का स्पष्ट निर्धारण नहीं हो सकता है । इनके विषय में अनेक जन धारणाएँ प्रचलित हैं । एक धारणा के अनुसार ये बिठूर के उपासक तथा वारकरी भक्ति-परम्परा के संस्थापक थे । एक अन्य धारणा के अनुसार ये रामानन्द के शिष्य थे । ‘गुरुप्रश्न साहिब’ में इनके नाम से निम्नलिखित पद संकलित हैं :

बुर दीप भुव सावि भारती ।

बारते बाठ कमसापति ।

मंगळा हरि मंगला ।

नित मंगल राजा राम राइ को ।

ऊठम बिजरा निरमल बापी ।

गुरी निरंजन कयसापति ।

रामा यति रामानंदु जाने

पुण परमानन्द बखाने ।

मगम मुरति मै तारि मोकिरे ॥

सैबु मर्षे अनु परमानंद । राम पनासरी ॥१॥

परम राम — परम राम कबीर के प्रमुख शिष्य थे । आयु में वे कबीर से कुछ ही वर्ष छोटे थे । ऐसा कहा जाता है कि संवत् १५२१ में उन्होंने कबीर

१ कापी नागरी प्रचारिणी तथा कौ बोर से डॉ० रामगुप्तर दास ने ‘कबीर सम्पादनी’ का सम्पादन किया है । इस सम्पादनी में संकलित ५० ‘शालिग्रह’, बोर २ ‘पद’ गुरु दान्य साहिब में भी मिल जाते हैं । परमुराम बगुर्गे ने न बबोर की रचनाओं की एक हस्तलिखित प्रति का उल्लेख किया है । इसे वे ‘आत्मार्ति’ की संज्ञा देने हैं । दूसरी पद धारणा है कि इस प्रति को थापा ‘कबीर सम्पादनी’ में संकलीत रचनाओं की भाषा में प्रतीय है । इसका तिथि बाल संवत् १८५५ है । जयसे कबीर के पदों की टीका भी की गई है ।

की रचनाओं का संग्रह किया जा । धर्मदास के नाम से प्रचलित ग्रन्थों में, 'सुख निधान' का विशेष महत्त्व माना जाता है । इनकी रचनाओं में से व्याहरण के लिए एक यहाँ प्रस्तुत है—

फगन पिय बंसी फेरि बजावो ।

धौबर बुफा में जठर दुख बुझा सो बंजन सिब नैन कगावो ।

ओ बंसी सुर मर मुनि मोहि, सो बंसी पिय मोहि सुनावो ।

आनो कूंभी खोखो ठाका, मोहनी मूरति मोहि दिखावो ॥

बरम बास बिनबे कर ओरी बरम कंबल ठरे मोहि समावो ॥

धना (धन्ना भगवत) —धना का जन्म संवत् १४७२ में (सन् १४३) माना जाता है । ये बाति के बाट बे, और राखपुताना के मिवासी बे । इन्हें रामानन्द ने दीक्षित किया था । 'मृद प्रबन्ध साहित्य' में इनके नाम से चार पर संगृहीत हैं । उनमें से एक पर व्याहरण रूप में यहाँ दिया जा रहा है—

भ्रमव छिरत बहु जलम मिळाने तनु, मनु, बनू गहि धीरे,
कासब गरु काम सुख राता मनि बिसरे प्रमु हीरे ।
बिजु फल मीठ कने मल बचरे चार बिचार न जानिया ।
गुन तें प्रीति बड़ी जलमोटी जलम मरल छिरि तानिया ।
जुगति आनि नहीं रिखे मिवासी जठर बाळ बम फेर परे ।
बिजु फल संवि मरे मल ऐसे परम पुरख प्रमु मल बिसरे ।
मिथाम प्रबेधु दुरहि धनु बीजा बिजानु मानु मन एक भए ।
प्रेम भगति मानी सुख जानिया लुपति बधामे मुक्ति भए ।
ओति समाए समानी बाई बछसी प्रमु पहचानिया ।
बने बनू पाइया बरबी बर मिळि बम सख समानिया ।

रायु बावा १ ।

पीपा —पीपा का जन्म संवत् १४८२ (१४२३) में हुआ था । ऐसी किंवदन्ती है कि पीपा बबरोल पट्ट के नरेछ बे । ये बारम्ब में दुर्ग के जपासक बे । रामानन्द से दीक्षित होने के पश्चात् ये 'निर्गुन साधना' की ओर आकर्षित हुए थे ।

कायत बैठा काइबत देखत काइबत बंनन बाठी ।
 काइबत पूर बीप नइबेरा काइबत पूबत पाठी ।
 काइया बहु छह छोजते नइनिधि पाई ।
 ना कसु जाइबो ना कसु जाइबो राम की होइआई ॥
 बी बइबत छोई पिइ बी साबे सो पाबे ।
 पीपा प्रमयै परम ठगु है छगु पुक हार सबाव ॥

राम बन सारोम १४

रेवास —ये काशी निवासी थे । इनका बाल्यनाम कास संवत् १४४३
 ११०३ के मध्य माना जाता है । निम्नलिखित ग्रंथ से इनकी रचना के स्वरूप
 का कुछ परिचय मिल जाता है—

मानी किआ मेरा झिया ठेरा ।

बैठे तरवर पंखि बसेरा ।

राखहु बंध उधारत नीचा । साढ़े तीन हाथ तेरी सीचा ।

बंक माल पाप तिर डोरी । इहु तनु होइबो भठम की डोरी ।

झंजे मंदर मुन्दर नारी । राम मान बिनु बाजी हारी ।

मेरी आति कमीनी पति । नमीलो बोछा जनब हुमारा ।

तुम सरपायत राका रामचंद्र । कहि रविनाथ बकारा ।

सन्त साछ राम :—लालशत सन्त सम्प्रदाय के अग्रगण्य 'लाल पन्थ'
 शाखा के संस्थापक थे । इनका जन्म बलवर के अर्धवर्ष पोसी घुन ग्राम में संवत्
 १३६७ में हुआ था । इनकी मृत्यु संवत् १७०३ में हुई । इनकी बापियों का
 एक हस्तलिखित संग्रह 'आल्लास की बिनाबनी दीर्घक से उल्लेख है ।

छठ हादू —जमि नाम गोपाल कृष्ण 'जयम शीला दाबी और शायरशाह
 इत 'मछ बासा' नामक कृत्रियों से दादुरनाम का परिचय मिलता है । इस
 प्रकार की बाराहा मिलती है कि दादुरनाम का जन्म संवत् १६०१ (वत् १३४४)
 में हुआ था और इनकी मृत्यु ज्येष्ठ शुक्ल ८ संवत् १९९० (वत् १९०३) में हुई
 थी । दादुर पन्थियों का यह विश्वास है कि इनका जन्म अररात में अरुनाचल
 नगर में हुआ था । दादुर पन्थियों के अनुसार यह अरुण-पुत्र थे । वरन्तु जन
 जीवन में इस प्रकार की मान्यता मिलती है कि वे मुनिपों मयलमान थे । इनका

मूक नाम बाळ्य था । बाबू की रचनायें 'साक्षियों' 'पबो' और 'बालियों' में विभक्त हैं । इनके सिध्यों में सन्तदास और जगन्नाथदास ने 'हरबे बाजी' दीर्घक से इनकी रचनाओं का संग्रह किया था । राजब साहब ने इनकी रचनाओं का संग्रह 'कंग बबू' नाम से किया है । नामरी प्रचारिणी समा ने इनकी रचनाओं का एक संग्रह प्रकाशित किया है जिसमें २६२३ साक्षियों और ४४३ पय हैं ।

बाबू परम तत्त्व को अपना आदि युक्त मानते हैं । इस कारण इनके पय को 'परम ब्रह्म पय' भी कहा जाता है । निस्तन-भारा और साधना विधि, इन दोनों दृष्टियों से वे कबीर के अधिक निकट पड़ते हैं । कबीर के समान वे परम तत्त्व को 'गुन्य', 'परमपय' या 'निर्माण' की संज्ञा देते हैं स्वयं सबिद्य ज्ञान में निष्वास करते हैं । परन्तु बाबू और कबीर में सूक्ष्म अन्तर है । कबीर आत्मप्रत्यय में निष्वास करते हैं और बाबू आत्मसमर्पण में । बाबू की रचनाओं से एक अंश यहाँ उद्धृत है—

अबहुँ न निरुधै प्राय कठोर ।

वरसत बिना बहुत दिन बीतै, सुन्दर प्रीतम मोर ।

बार पहर बाधु जुम बीठे रेनि गेबाई मोर ।

अवधि गए अबहुँ गहि आए कतहुँ खे बित मोर ।

कबहुँ नेन निरखि गहि देखे मारय पितवत मोर ।

बाबू अइसहि बाधुर निरीहनि बैसेहि कय बकोर ।

बाबू की मृत्यु के पश्चात् उनका पय काक क्रम से पाँच शाखाओं में विभक्त हो गया । (१) आत्मसा सम्प्रदाय (२) नाथा सम्प्रदाय (३) उत्तर कड़ी (४) विरक्त (५) बाकी । बाबू पन्थी समाज स्वामी एवं साधु, सेवक एवं गुरुत्व इन दो वर्गों में विभक्त रहा है ।

संत सुन्दर दास —सुन्दरदास बाबू के सिष्य थे । इनका जन्म जयपुर के बीसा नामक स्थान में संवत् १६३३ में हुआ था । इनकी मृत्यु संवत् १७४९ में हुई थी । वे सन्त राजब के समकालीन थे । राजब के साधकाधो में इनोंने साहित्य और दर्शन का अध्ययन किया था । इनके लिखित ३७ ग्रन्थों का उत्प्रेष्य मिलता है जिनमें 'ज्ञान समुद्र' का विशेष महत्त्व है । इसमें नवधा भक्ति अष्टावि घोष, साक्ष्यमय एक अष्टत ब्रह्म ज्ञान-सम्बन्धी रचनायें हैं । उदाहरण—

हिरे और बीरे और बीमे और,
 कीरे और कीलऊ बनूष पाटी पड़े है
 गुल और बेल और मेल और संग और
 वन और मन और जम्म माहि बने हैं ।
 हाव और पाव और सीमरू धवन और
 मल धिन रोम रोम कछई छो मई हैं ।
 ऐसी छो कटौगता मुनी न देपी कपल में
 मुग्ध कहत काहु वन हो क पड़े हैं ।

विरहिन उदाहरणों को संय संख्या ४७ मुग्ध उदाहरणों
 सन्त कवि रच्यव — रज्ज का वस्त्र संख्या १०१० माना जाता है ।
 इनका वस्त्रस्यान कवचुर स्थित लीलावेर भावक ग्राम है । यं वाति के पान य ।
 उनकी रचनाओं में के उदाहरण हेतु बहो एक उदाहरण है—

शीत समुर न ठाहुरै, इन्दी पंख बगल ।
 रज्ज रीठा सिंह छो बहो परै दख हस्त ।
 जब रज्ज धन जीत बदा, तनु वीरपन विनोस ।
 येनै पल्लव पपीण्डू, प्रत्यस्त आया देव ।
 भवम नैन मुख नाचिका सरिबभावध हार,
 रज्ज पीछे पल्लव का प्राण तिष्ठ सबहार ।

पापरी साहिबा — बाबरी साहिबा का समय संख्या १५६६ १५६७ माना
 जाता है । य बाहु-समवासीन थी जोर इन्होंने बाबरी सन्ध्याय का प्रदर्शन
 किया था । ये मापान्त्र की गिण्या थीं । इनकी रचनाओं का संग्रह 'पापरी साहिबा'
 भावक ग्राम में मिलता है । उदाहरण—

बाबरी बाबरी का कहिए मन हृदके पंथ परै निज भौदरी ।
 बाबरी जानहि सल्ल मुवान जिह्वे हरि मन हिए दगबाबरी ।
 बाबरी शूत मोदवी मूलन दे बरि जान बनत जगबाबरी ।
 गाँववा मोड़े देगारी प्रनु, बनि राबरी देनि मई मति बाबरी ।

मन्दूक दास — मल्लबाबा के कहिदो बहो मापरी में मन्दूक दास का
 मूल्य अनेक दण्डियों में उल्लेखनीय है । इनका संख्या १५६१ (मृ १५७४

मूख नाम बाळर या । दाडू की रचनायें साक्षियों ' भयो' और 'बालियों' में विभक्त हैं । इनके सिष्यो में सन्तदास और बयन्नाबदास ने 'हरबे बागी' सीपक से इनकी रचनाओं का संग्रह किया था । रजब साहब ने इनकी रचनाओं का संग्रह 'अप बपु' नाम से किया है । मामरी प्रचारिणी सभा ने इनकी रचनाओं का एक संग्रह प्रकाशित किया है जिसमें २६२३ साक्षियाँ और ४४५ पन्ने हैं ।

दाडू परम तत्व को अपना आवि गुरु मानते हैं । इस कारण इनके पन्ने को 'परम ब्रह्म पन्ने' भी कहा जाता है । चित्तत-बारा और साफ्ना बिधि, इन दोनों दृष्टियों से ये कबीर के अधिक निकट पड़ते हैं । कबीर के समान ये परम तत्व को 'सुख्य,' 'परमपद' या 'निर्मान' की संज्ञा देते हैं । स्वयं सविद्य ज्ञान में विश्वास करते हैं । परन्तु दाडू और कबीर में सूक्ष्म अन्तर है । कबीर आत्मप्रत्यय में विश्वास करते हैं और दाडू आत्मसमर्पण में । दाडू की रचनाओं से एक वंश यहाँ उद्भूत है—

अपहुँ ग निकसे प्राण कठोर ।

वरसल बिना बाहुत रिल बीते सुन्दर प्रीतम मोर ।

चार पहर चारहु जुन बीते रनि बेबाई धोर ।

बबधि गए बजहु गहि आए कलहुँ रजे बित मोर ।

कजहुँ नेग निरखि गहि देखे मारय चितवत तोर ।

दाडू बइसाहि बातुर विरीहनि बेसिहि कब कठोर ।

दाडू की मृत्यु के पश्चात् उनका पन्ने कास क्रम से पाँच साक्षात्कारों में विभक्त हो गया । (१) जाकसा सम्प्रदाय (२) नागा सम्प्रदाय (३) उठर गढ़ी (४) बिरक्त (५) बाकी । दाडू पन्नी समाज स्वामी एवं साधु, सेवक एवं गुरुत्व इन दो वर्गों में विभक्त रहा है ।

संत सुन्दर दास —सुन्दरदास दाडू के शिष्य थे । इनका जन्म बयपुर के चौसा नामक स्थान में संवत् १६२३ में हुआ था । इनकी मृत्यु संवत् १७४९ में हुई थी । ये सन्त रजब के समकालीन थे । रजब के साथ काफी में इन्होंने साहित्य और वर्तन का अध्ययन किया था । इनके लिखित ३७ ग्रन्थों का सन्मेष मिलता है जिनमें 'ज्ञान समुद्र' का विशेष महत्त्व है । इसमें नवधा भक्ति, आष्टाईय योग सांख्यमत एवं अष्टाठ ब्रह्म ज्ञान-सम्बन्धी रचनायें हैं । उदाहरण—

हिये और बीये और दीये और,
 कीये और कौनऊ मनुष पाटी पड़े है
 मुख और बीम और नेन और खैन और
 लम और नन और बग्न माहि कदे हैं ।
 हाव और पाँव और छीछहुँ धवन और
 नख प्रिय रोम रोम कजई सी मड़े हैं ।
 ऐसी सी कठोरता मुनी न दीपी जगत् में
 सुन्दर कहत काहु प्रब हो क मड़े हैं ।

निरहित बराहूनी को बग्न सबैवा ४७ सुन्दर दम्बावली
 सन्त कवि रज्जुशय :—रज्जु का जन्म संवत् १७१० माना जाता है ।
 इनका जन्मस्थान जयपुर स्थित घागाणेर नामक ग्राम है । वे बाली के पञ्चमे ।
 इनकी रचनाओं में से उदाहरण हेतु यहाँ एक उद्धृत है—

धीछ समुद्र न ठाहुरै, इन्दी पंच मयल ।
 रज्जु रीता सिद्ध खो जहाँ परे दय हल ।
 जब रज्जु बग्न जीत लदा समु दीरण बिदेख ।
 येन पल्लव जनीकई प्रत्यक्ष पाया देख ।
 जबन नेन मुख मासिका खरिबनाबन हार
 रज्जु बरीछे पल्ल का प्राण निण्ड जगद्गार ।

सायरी साहिबा —बाबरी साहिबा का जन्म संवत् १९१६ १९१२ माना
 जाता है । ये बाबू-सम्राजसीन की और इन्होंने बाबरी सम्राज्य का प्रवर्धन
 किया था । ये बाबाकन्द की शिष्या थीं । इनकी रचनाओं का संग्रह 'घण्ट सागर'
 नामक ग्रन्थ में मिलता है । उदाहरण—

बाबरी बाबरी का कवि, मन तुंके दण्ड मरै मित्र बाबरी ।
 बाबरी जानहि मन्त्र मुबारक जिहें हरि न्य दिय बाबाबरी ।
 बाबरी मुरत मोहनी मुरत दै करि गान जगत् लयाबरी ।
 बाबरी मोहै देहारी प्रभु, बलि राबरी बेनि मरै मनि बाबरी ।

सञ्जुक्त नाम —मन्त्रधार के कवियों और साधकों में सञ्जुक्त नाम का
 महान् महान् दण्डियों में सम्मिलित है । इनका जन्म संवत् १९१२ (मृ १२०६)

मूक नाम राजव बा । बाहु की रचनामें 'साक्षियों' 'परो' और 'वानियों' में विभक्त हैं । इनके सिष्यों में सन्तदास और जगन्नाथदास ने 'हरहे बाणी' शीर्षक से इनकी रचनाओं का संग्रह किया था । राजव साहब ने इनकी रचनाओं का संग्रह 'बंग बबू' नाम से किया है । नागरी प्रचारिणी सभा ने इनकी रचनाओं का एक संग्रह प्रकाशित किया है जिसमें २६२३ साक्षियों और ४४२ पद हैं ।

बाहु परम तत्व को अपना आदि गुरु मानते हैं । इस कारण इनके पन्थ को 'परम ब्रह्म पन्थ' भी कहा जाता है । चिन्तन-आरा और साधना बिधि, इन दोनों दृष्टियों से ये कबीर के अधिक निकट पड़ते हैं । कबीर के समान ये परम तत्व को 'सुख' 'परमपद' या 'निर्माण' की संज्ञा देते हैं । स्वयं संबंध ज्ञान में विश्वास करते हैं । परन्तु बाहु और कबीर में सूक्ष्म अन्तर है । कबीर आत्मप्रत्यय में विश्वास करते हैं और बाहु आत्मसमर्पण में । बाहु की रचनाओं से एक ध्येय यहाँ ध्युत है—

बजहूँ न निकसै प्राण कठोर ।

हरसना बिना बहुत पिन भीरै, सुन्दर प्रीतम मोर ।

चार पहर चारहुं चुग बीरै रेलि गँवाई मोर ।

अबधि गए अबहुं नहिं आए कतहुं छो जित मोर ।

कबहुं नैन निरखि नहिं देखे मारम चितवत तोर ।

बाहु अइसाहिं आतुर बिरीहनि बैसेहिं चख बकोर ।

बाहु की मृत्यु के पश्चात् उनका पन्थ काक ऋम से पाँच शाखाओं में विभक्त हो गया । (१) लालसा सम्प्रदाय (२) नाया सम्प्रदाय (३) उत्तर गढ़ी (४) बिरक (५) बाकी । बाहु पन्थी समाज स्वामी एवं धातु, सेवक एवं पुरुष इन दो वर्गों में विभक्त रहा है ।

संत सुन्दर दास —सुन्दरदास बाहु के सिष्य थे । इनका जन्म जयपुर के बीसा नामक स्थान में संवत् १६५६ में हुआ था । इनकी मृत्यु संवत् १७४६ में हुई थी । ये सन्त राजव के समकासीन थे । राजव के साथ कासी में रहते हुए साहित्य और दर्शन का अध्ययन किया था । इनके लिखित ३७ ग्रन्थों का सम्प्रेष मिलता है, जिनमें 'मान समुद्र' का विशेष महत्त्व है । इसमें गवना भक्ति, अष्टौप योग सांख्यमत्त एवं अष्ट त ब्रह्म ज्ञान-सम्बन्धी रचनाएँ हैं । उदाहरण—

घरनी दास — बरनी दास का जन्म छपरा के मामी पाँच में सम्बत् १६७३ में वसंतराम काकस के परिवार में हुआ था। इनकी मातृभाषा भोजपुरी थी। भोजपुरी के अतिरिक्त ब्रज भाषा में भी इन्होंने रचनाएँ की हैं।

प्रभु की अरु जिति मोहि बिचारो ।

असरन सरन अचम बन तारन कुल जुय बिछु विहारो ।

जहाँ जहाँ जगम करम बसि पायो, तहाँ अचम्बे रस छाए ।

पाँचहु के परपंच मुसतौ, बरत न ध्यान जहारो ।

अन्य धर्म रस मास निरस्त, नब तिल मुरति संवारो ।

यज्झा मुख बगिन कल कूम जहाँ बहनें तहाँ पति पाओ ।

बीज दरत दमास दया करि पुन ऐमुन न विचारो ।

बरनि नाहि जायो सरलायोत तखि लज्जा कनिगारो ।

सन्त कवि हरिया (विहार वाले) :—हरिया साहब का समय सम्बत् १७३६ १८३६ के मध्य माना जाता है। इनके पिता का नाम पीरु वर्मा था। ये कबीर के प्रति विशेष रूप से आस्थावान थे। इन्होंने एक स्मरण में कहा भी है—

ताहि सोनो को सोनहि कबीरा, भेठी निरस्त सीने बीरा ।

हरिया जानर, बीताई पुष्ट ह । हरिया द्रव्यावली ।

इन्होंने परम तत्व के निर्गुण स्वरूप के प्रति विदबास प्रकट किया है। इनके अनुसार निर्गुण समुच्च नहीं हो सकता और समुच्च निर्गुण नहीं हो सकता। हरिया न जिस तत्व पुष्ट की सम्पत्ता की है वह निर्गुण है।

इनके अनुसार त्रिगुण के चार स्वरूप हैं—

एक निर्गुन बोलता है भाई

प्यामी बन कुम्भे बरबाई ।

दोसर त्रिगुन पलन बहारी

बड़े अपम कोइ अन्न न पावै ।

तीसर त्रिगुन है निराकारा,

जाक भजे सरल संसारा ।

चोरा निरगत अचल है भाई

जहवाई अकरा जोति जराई ।

धनि ईशु पृ० । ३०५ ।

में कड़ा (प्रभाव) में हुआ था। मनुक पोस्वामी तुलसीदास के समकालीन थे। इनके पूर्व 'सूर सागर' का प्रबलन हो चुका था। अतः भाषा की दृष्टि से तुलसी के 'मानस' की अवधि और 'सूर के 'सूर सागर' की वज्र भाषा के आदर्श इनके सम्मुख थे। इनके ग्रन्थों में 'ज्ञान बोध' 'रत्न ज्ञान' 'मक्त बन्नावली' 'मक्त विश्वावली' 'गुह्य विद्या' 'असक्त बाघी और राम बीतार लीला' प्रमुख हैं। 'परम रत्न' की उपलब्धि इनकी साधना का प्रमुख श्रेय है। उसकी उपलब्धि चार साधना विधाओं के माध्यम से सम्भव है। ये हैं—देव-युजन नियम-पावन शास्त्रीय ज्ञान और अनिर्वचनीय पं की प्राप्ति। अन्तिम स्थिति में 'जगद्गुरु' ध्वनि साधक में प्रतिष्ठापित होती है। इसे वे सहज ध्वनि भी कहते हैं। इस ध्वनि का आचार ग्रहण कर साधक शून्य में समाहित होता है। उदाहरण—

मुरसिद मेरा जिस बरियार्ह, जिस गहि मन्दर खोजा।
जा अन्दर में छतर काबा मकतो तीसो रोखा।
सातो तयक बीछिया धामे भेद न होय बुवाई।
सम्भ कमर डाने निमाज में तर से बहूँ खोजाई।
दीम बपाज मुनी बबते तबते हिय में कुछ ऐसीं बसी है।
तेरो कहाय के जाते वहाँ मैं तेरे हित की पट खोज कसी है।
तेरोई एक मरोस मनुक को तेरे समान न दूखो बसी है
एहो मुरारि पुकारि कहौ जब मेरी हँसी नहीं तेरी हँसी है।

ज्ञान बोध ।

धारी साहब — धारी साहब बाबरी साहिबा की गिफ्ता कीर साहिबा के दिव्य थे। इनका जन्म सम्वत् १७२५ में दिल्ली में हुआ था।

हमारा एक असेहे पिय प्यारा है।

भट पट नूर, मुहम्मद साहब बाका सकल पमारा है।
औरह सबक बाकी रुस्तार्ह भिलमिल बोखि सिवारा है।
बैचमुख बैचुन अकेला हिन्दू तुलक सो ग्यारा है।
साई दरबैस दरग निज पायो सोई मुमसम सारा है।
जावे न जाय, मरे नहिं बीबै, बारी पार हमारा है।

घरनी दास — घरनी दास का जन्म छपरा के मानी बाँच में सम्बत् १६७३ में परसराम कामस्य के परिवार में हुआ था। इनकी मातृभाषा भोजपुरी की। भोजपुरी के अतिरिक्त ब्रज भाषा में भी इन्होंने रचनाएँ की हैं।

प्रभु की अब जिनि मोहि बिचारो ।

बनारस सन जवम बन तारन भुग भुग निरह तिहारो ।

अहं अहं जनम करम बसि पायो तहं अरुम नस साए ।

पाँचहु के परपंच मुनानो घरोड न भ्याम उबारो ।

अम्ब नर्म दस मास निरन्तर, नस विन मुरति संवारो ।

मग्या मूत्र अग्नि कल कल अहं अहं तहं पति पायो ।

दीर्घ दास ब्याल दया करि मुन ऐगुन न बिचारा ।

परनि मात्रि भायो सरनागति तजि लग्या कलिमारो ।

सन्त कवि दरिया (विहार वाले) — दरिया साहब का समय सम्बत् १७३१ १८३१ के मध्य माना जाता है। इनके पिता का नाम दीक बर्ही था। ये कबीर के प्रति विराग रूप से आस्थावान थे। इन्होंने एक स्तव में कहा भी है —

ताहि छोबो जो श्रोत्रहि कबीरा, बँटी निरन्तर लीज बीरा ।

दरिया सागर, चौलाई पृष्ठ है। दरिया श्रव्याबली ।

इन्होंने परम तत्त्व के निर्गुन स्वस्व के प्रति विराग प्रकट किया है। इनके अनुसार निर्गुन सगुन नहीं हो सकता और सगुन निर्गुन नहीं हो सकता। दरिया ने जिस सरय बुझा की कल्पना की है वह निम्न है।

इन्के अनुसार निर्गुन के बार स्वस्व है—बोझता पवन, निगरार और अचल ।

एक निर्गुन बोझता है भाई

प्यासी बन बूझो अरुपाई ।

दोना निर्गुन पवन कहाई

बई अगम कोइ अज न पाव ।

दोना निर्गुन है निगरारा,

बाके भजे नवज उगारा ।

बीदा निरग्न अचल है भाई

जहाँ जवत जोति बसाई ।

इसके अनुसार साधना के लिए ध्याना, भक्ति और ज्ञान तथा नागस्मरण अपेक्षित हैं। स्वयं सबिंद नाम पर चस्मा ठसमार पर चक्ने के समान हैं—

प्याल के मनु फगु बरे न कोई।

भार क्रियाग निछन बति होई ॥

जगम जपाह पाह किमि पावे। प्याल रक्त ॥१६८॥

नबीर के समान दरिया भी सुरति की चर्चा करते हैं। 'चन्द्रमा' और 'सूर्य' के सम-स्वरूप का वर्णन करते हैं। परम समाधि में 'सबद ध्वनि' की प्रति ध्वनि का वर्णन करते हैं। यथा—

मूल सब्द धुनि होत कबोप। सुरति बांनि राखे एक ठौर। १६९।

सूर बंद अब एक बर आवे। तबही बोरी से बिलमावे। १७०।

मूल सब्द धुनि होत चकारा। तहवाँ जाई करो पैठारा। १७१।

अहब कंबल के ऊपर मुला। सहस्र कंबल तहवाँ रह फुला। १७२।

दरिया सागर—बीमाई। पृ० १७।

बुद्धा साहब — इनका जन्मिर्माँव काक सं १६८१ ई। ये यारी साहब के शिष्य थे तथा गाजीपुर के अन्तर्गत भुङ्गुड़ा के निवासी थे। ये जाति के कुर्मी थे और इनका नाम बुझाकी राम था। इनकी रचना का उदाहरण इस प्रकार है—

पुरख बैस कर आपहुँ बंभना जापु भयल अबधूता ॥

अपरम्पार पार बहू बंभना आयो हमरे बर बंभना ॥

परम तत सै पुनि आपुही सरल गावे अनहद तताना।

सबुन, तमगुन, सतगुन सारल, हारल तन मन बीऊ।

गयन मन्त्रक में हरि रस चासल, बूझै बिरछा कीऊ।

निर्मल बन इक निर्मल गावस, स्वासा सर्वुन भावस।

अन बुद्धा नित स्वासहि गावहि सैत प्रकास समावस।

सहजोवाइ — इनका जन्मिर्माँव सं० १७४०-१८२० (१६८३-१७६३) में देहरा (राजस्थान, में हुआ था। ये जलनशाय की शिष्या थीं। इनकी रचनाओं में ये एक अंश यहाँ प्रस्तुत है—

सठ तजि माँब जगत संव राखो।

बेहि कारण बहु स्वामि कैसे है बीरासी ठनपरि बटि जाओ ।
 धर्म माहि मे जनम कियो मे एकहुँ बार मयी नहीं जाओ ।
 स्वारथ ही को उठि उठि जाये राम भजन परमारन जाओ ।
 सन्तन की टकसास बडो ना गुरु की हाट कबहु नहि जाओ ।
 बम द्वारे की लाज न मानी भक्त भविनि की सहि सहि जाओ ।
 चरनदास कहै सहजोबाई हरि की सगम बिना महि जाओ ।

दिया पाई —इसका भविर्भाव कालसं० १७४०-१८२० (१९८३ १७९३)
 ई० है । दियाबाई चरनराम की शिष्या थी और सहजोबाई का समकालीन थी ।

जान रूप की मयो प्रकाश भयो बनिषा तम को नास ।
 सुख पायो निब रूप भयेद सहजै मिने बीब को रोद ।
 बीब बह्य मोठर नहि कोय एके रूप सर्व पट सोय ।
 जग विवैत सूं प्यारा जान परम ब्रह्म रूप निर्माण ।

गुलाब साहब —गुलाब साहब बुद्धा साहब के शिष्य थे । ये गाजीपुर के
 पाणिपावाह परपना के रहने वाले थे । इसका भविर्भाव सं० १७१०-१८०० के
 मध्य जाना जाता है । कतिपय सन्तों के अनुसार वे भुइरुडा (गाजीपुर) के
 समीपवाह थे ।

(१) करने नीर कवन जल कहिये को समुत को धारी ।
 को है रूप नंपावत को है को है सजिस उबारी ।
 को है कीट पलम कोन है को है रूपति भिगारी ।
 को है बिअंटी हाति ब्रह्म है, को जन्म हो मारी ।
 कह गुलाब यह बुद्धि पको जिब निरखन को निरबारी ।
 सगुन हवा सस्त सरनागति सब मागर ते उबारी ॥

(२) गबर छनइ लयाबन हो पावन मुह रीति ।

गुलकि गुलकि मन भावन हो दरमी भ्रम धीनि ।
 धनन बरन पुरारी हो जिन मुनास बानी ।
 सो जन जमने बाचन हो मन मारंग पानी ।

परनदाम —पावनाग का भविर्भाव सं० १७९० विजयी में हुआ था ।
 इसका जन्म इला में मुलापर के घर में हुआ था । इनके दूध भुजनेर थे ।

मनक क्यों तक वे ब्रह्म मण्डल में निवास करते थे । ये हृदय भक्ति से भी प्रभावित हुए थे । इन्हें क्यामचरनबासाचार्य भी कहा जाता था । इनकी मृत्यु सं० १८३६ में दिल्ली में हुई थी । इनके १२ शिष्यों का उल्लेख मिलता है, जिनमें सहजोबाई और बयाबाई इनकी प्रमुख शिष्यायें थीं । ऐसी किंवदन्ती है कि मोहम्मद घाह भी इनके शिष्य थे । इनकी २१ रचनाओं में १२ प्रमाणिक मानी जाती हैं—'अष्टांग योग वर्णन' 'योग सत्येह सागर' 'सम्यक् तथा भक्ति सागर' इनकी विशेष रचनायें हैं ।

कौन कमल पर गुह बिराजे । के प्रकार बनहय बुनि बाजे ।
 के बासी है अन्धर तूरा । जानेना कोई साधू पूरा ।
 तीन गुण्य कहीं जीवा गुण्य । त्रित ही भूसे पड़ि अब कूय ।
 के कहिये क्या के द्वारे । भिन्न-भिन्न कहु मेरे प्यारे ।
 बलका कोटा कीबर होय । कहीं जमि का कहिये सोय ।
 इहा ज्वाल कहु कैसे जायै । किछ जासन से निजा भायै ।
 बहुतरि हवार जाठ सौ चौसठि मारी । इनका मेद बहुत है भारी ।

योग सत्येह सागर ।

भीखा साहब —भीखा साहब जाति के ब्राह्मण थे और मुन्नास साहब के शिष्य थे । इनका जन्म बाबमण्ड के मोहम्माबाद गोहना नामक स्थान में सम्वत् १७७० में हुआ था ।

सतगुरु ताबज सग द्विडोऊवा सुनठहि मन अनुराग ।
 मुझ्ठ पुनठ बचिर मन भावक बियरा बकिठ उठि जाग ।
 सुकठ बेतम किठ जावत अन्धर बुनि मन रातक ।

हरिया साहब (मारबाड़ के)—ये जति के मुनिमा थे इनका जन्म सम्वत् १७७३ में । बैतारन-मारबाड़ में हुआ था । इनकी रचना बबीर के जति लिखत पढ़ती है—

बाबल कैसे बिसरा जाई ।

यदि मैं पति संग रस लेसूंयी आया बरम सपाई ॥

सतगुरु भरे हुगा किन्हीं उत्तम बर पजाई ।

अब मेरे सौई को सरम पायेगी सैगा बरन लपाई ।

गरीबदास — गरीबदास जाति के बाट और छुहामी (रोहतास) के निवासी
 १। ये सत्य जग दास के समकालीन थे।
 मन मगन भया जब क्या पाव ॥

ये मुन इन्दीशमन करेना वस्तु भयोली छो पावै ।
 तिरछोकी की इच्छा छाड़, जग में बिचरी निर्द्वि ।
 त्रिगुटी महल में सेज बिछी है, हावस अन्दर छिप जावै ।
 सच्च ममोरम पूरन साहिब बहुरि नहीं मौजनु आवै ।
 गरीबदास सत्युस्य निरेही साचा सत गुठ दरसावै ।

बूझम दास — इसका जातिमान काल सम्वत् १७७० माना जाता है ।
 इनका जन्म सनेसी (कपनऊ) में हुआ था ।

तू काहे जग में भाया जो पै नाम से प्रीति न स्थापा रे ।
 सुला काम सबाद बनेरे मन से ही नहि बिचराया रे ।
 भोय बिकास बास निव बासर इत उत बिता भरमाया रे ।
 नई से जायो कहीं को जेई अल जोर नहि पाया रे ।

पलटू साहब — इनका जातिमान सम्वत् १८२० में हुआ था । ये मन्नाब
 गुजरात-दीसा के समकालीन और पीसा के शिष्य थे । ये फौजबाद के अमरपत
 पसाल पुर में उत्पन्न हुए थे । उन्होंने गुणधियों की रचना की है ।

समझि बुझि रन बहुत साबो सूब लड़ाई लड़ना है ।
 दम दम करम परे भागे को पीछे नाहि पछरना है ।
 सिध-तिथ पाव क्यों जो तन में रोत सेती क्या टरना है ।
 सबद रोचि समसेर जेर करि, उन पाँचों को परना है ।
 बाट पहर अतबार मुरत पर गच्छि नाहीं परना है ।
 चीन निहा साहिब के ऊपर निमरा हर सब डेरना है ।
 पलटू बिना रुठ के ऊपर, जब क्या दूसर करता है ।

मुन्टसी (गुरसी) साहब — नामाशान के 'मलमास' के जनमरण वर
 रायबगल बाहुन्बी ने वि० सं० १७७० (१७११ ई०) में 'मलमास' का
 प्रमनन रिया है । इनमें नामाशान के 'मलमास' में अष्टविंश मन्त्रों का वर्णन
 रिया गया है । इनमें निरंजनी पारा के बारह मन्त्रों का वर्णन है जिसमें गुप्ती
 नादक का भी उल्लेख मिलता है —

अब राबर्हि भाव कबीर की इस येठे महंत निरंजनी ।
 सपत्नी सुजगनाथ स्वामदास काहूँ अनुरागी ।
 ध्यान दास अब येम नाम जगजीवन त्यागी ।
 तुरखी पायो तल खानसो भयो उदासा ।
 पूरण मोहनदास जान हरिदास निरासा ।
 राबो' सत्रज सम मजि मामा जंजन मंजनी ।

तथा

सपत्नी जगनाथ स्वामदास काहूँ दास
 भये मजनीक अति मिथ्या मांनि पाई है ।
 पूरण प्रसिध भयो हरिदास हरि रत
 तुरखीदास पायो तल मीकी बन आई है ।
 ध्यान दास नाम अब जानदास राम कह्यो ।
 जमसो उदास हूँ के स्वासो स्वास आई है ।
 जगजीवन येम दास मोहन हिर्य प्रकास ।
 सुमुख निराह वृत्ति राबो मन आई है ।

राजबदास कुल—भक्तमाध ।

निरंजनी सम्प्रदाय और सत्त निरंजनी—पृ० १४ ।

डा० जमीरज मिश्र ।

इनका जन्म १९ वीं शताब्दी में हुआ था । ये सेरपुर के निवासी थे । डॉ०
 पीठाम्बर दत्त बड़म्बाक इनको गोस्वामी तुलसीदास का समकालीन मानते हैं ।
 अपनी मायता के पक्ष में उन्होंने जो प्रमाण दिया है वह विचारणीय है ।
 काशी नामरी प्रचारिणी सभा की खोज में तुलसी की 'बाणी' की एक हस्त
 लिखित प्रति का उल्लेख हुआ है । इसमें 'इतिहास समुदाय का भी उल्लेख मिलता
 है । इसके अन्त में इस प्रकार के सूक्त मिलते हैं—उमकी प्रतिमिति वि० संवत्
 १७४५ (१९०८ ई०) में उद्योदास के पिप्पलाल दास के पिप्पल तुरखी दास ने

की थी । इनकी रचनाओं का आकार-प्रकार अति व्यापक है । उपलब्ध रचनाओं के आधार पर इनके साहित्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया जाता है । ४२०२ साखी ४६१ पद (जिनमें २६ राम हैं) । चार ग्रन्थ—'ग्रन्थ बी जयरी' 'कारमी चार बीज संव' 'सायमुल्लखन ग्रन्थ' 'ग्रन्थ तत्वगुण मेव'—इसोक्त तथा पद्यी । १० डॉ० पीताम्बर दत्त बड़वाल ने इनकी रचनाओं का उत्प्रेक्ष इस प्रकार किया है —

‘इसी मुसाई की थी थी गुरमीदास की को कृष्ण सम्पूर्ण ॥

यस कृष्णकी संख्या ॥ साखी ४२०२ । परिकरन २०० । ग्रन्थ ४१ पद ४६१ । राम २६ । इसोक्त १८५ । सबही १०१ । संवत् १८२२ की कावक सुवि ३ बार सनीचर सिप्यते ।’ १० उदाहरण—

गणन मैं बानै अनहद बीन ।

मधुर मधुर माहीं माहीं मन मृग मयी तहाँ सीन लख ।

पौबी बकि बकि रहे तहाँ ही छिर न पयानी कीन ।

माना नाब बालन्य छर मैं परि मए जियै विहीन । १ ।

इतबत की बितबनि सब बूझी बित मारे भयो सीन । १ ।

बिछरे या बिरछी बुबाजी जिन बोलीन मस कीन । १ ।

बन गुरखी वा गुपकी बात हैं बहों तहाँ प्रत कही न ।

ते पूरब तबि पदिय आए, छिनही मसै यह बीन्ह ॥ ३ ॥

निरंजनी सम्प्रदाय बानी संग्रह—
राग बना की पृ० १३२ ।

१ इतिथी महाभारते इतिहास समुच्चये सैवीसयो अध्याय ३३ । इतिथी महारणे सम्पूर्ण समाप्त । मधु १७४२ नृपे माघ कार्तिक सुनी ७ बार सनी बासरे । नगर मांसार मुषाने मुममल्लु, सिपेत स्वामी बी थी थी थी १ ८ ऊपौराम बी को सिप्य स्वामीजी थी थी थी १०८ थी थी तात दानवी को सिप्य गुप्तीदान बाजे जितको राम राम ।

२ देनिए निरंजनी सम्प्रदाय और मंत गुरमीदास निरंजनी—पृ० १६ । ‘मिष बन्धु बिनोर’ के अनुसार इनके ग्रन्थ इस प्रकार हैं—‘नयना भट्टि बर्णन योग वैराग्य ग्रन्थ बीजयरी ग्रन्थ जग्गीधार बीज ग्रन्थ साधु गुणगव ग्रन्थ तत्र नून मेव ग्रन्थ । ३ बही पृष्ठ १६ ।

सिलधर्म में सन्त परम्परा —

मध्य युगीन सन्त साहित्य में गुरु नामक शब्द का योगदान सन्त कबीर के समकक्ष का है। उनकी भक्तिबारा में व्यक्ति और समष्टि इन दोनों के बीच निबन्धन के साधन मिलते हैं। कबीर के समान ही गुरुनामक ने व्यक्ति के लिए विवेक, ब्रह्म भक्ति और ज्ञान की अनिवार्यता का सम्पादन किया। समष्टि के लिए सबाचार संयम और धार्मिक जलमन की भावना का संस्थापन किया। हिन्दी साहित्य के इतिहास के सन्दर्भ में गुरुनामक को कबीर की भावनाओं का प्रचारक माना गया है। परन्तु वास्तविकता यह नहीं है। नामक का व्यक्तित्व कबीर के समान ही था। संघ भाव-बारा को गति प्रदान करने वाले व्यक्तियों के समान इनका व्यक्तित्व भी भक्ति का आधार-स्तम्भ है। इनकी बातियाँ 'गुरुग्रन्थसाहिब' में संग्रहीत हैं^१। 'गुरुग्रन्थ साहिब' में संग्रहित नामक की बातियों का क्रम इस प्रकार है—'सब्र' 'बष्टपदीयाँ' 'प्रेत' और 'बारा'। इनके अतिरिक्त भिन्न भिन्न राजरागिनियों के आधार पर भी इनकी बातियाँ वर्गीकृत हैं।

कबीर के ही समान ये स्वयं सच्चिदान' पर विश्वास करते थे। अपने दर्शन में नामक ने कर्म ज्ञान योग और भक्ति को समन्वित किया है। नामक ने परम तत्त्वको 'गुरु' या 'बाबी' कहा है। जैसे ही जैसे कबीर ने परम तत्त्व को 'राम' कहा है। यथा—'औं छतिनामु करता गुरुन निमज्ज निरबैर अकास मूर्ति अमूर्ती सैय - गुरु प्रसाधि=बहु एक है। सग्न बचवा बाबी है और इसी के द्वारा सृष्टि रचता है। बहु सत्त्व है। नाम है। उसके अस्तित्व का वाचक केवल नाम

- १ (क) नामक की बातियों का संग्रह डॉ. जयराम मिश्र ने 'नामक बाबी' नाम से किया है। (प्रकाशक—मिश्र प्रकाशण संघ, २१८)। (ख) 'श्री गुरु ग्रन्थ साहिब' के सिकत गुरुओं के सभी पदों के अन्त में 'महला' शब्द आया है। इस क्रम के निवारण हेतु महला के आगे क्रमांक भी है—महला १ (आदि गुरु नामक) महला २ (गुरु अंगर) महला ३ (गुरु अमर दास) महला ४ (गुरु रामदास) महला ५ (गुरु अर्जुन) महला ६ (गुरु तेगब बहादुर)—नामक बाबी—
डॉ. जयराम मिश्र—भूमिका।

है। उसके प्रत्यक्ष मुख में हैं—वह कर्तार है। पुण्ड्रियों का निर्माण कर उनके बीच निवास करने वाला है। महान् पौरुष और महान् शक्ति-युक्त है। वह समस्त शक्तियों का स्वामी है। वह मन से रहित है। बैर से रहित है। मूर्तिमान है। काम से रहित है। योगि के अन्तर्मन नहीं बाठा है। और त्रिपुटी से परे है। वह स्वर्गमू है वह प्राप्त होने वाला है। उसकी प्राप्ति मुझ कृपा से ही होती है^१। उदाहरण—

अनहरो अनहनु बाजे कम मुख कारे राम ।
मेरा मनो मेरा अनु राता काम निबारे राम ।
अनखिनु राता मनु बेरायी मुन मंसि बर पाइया ।
आरि पुरनु अपरम्यन निबाग सतमुरि अकनु कसाइया ।
आसनि बैसनि बिह नपाइनु छिनु मन राता बीचारे ।
बालक रते बेराकी अनहद कम मुख कारे ।

बालक बाली रातु बासा मइया १ ।

छँत मर १ ।

राम धनि कमलून-कमलून कम में अनहद रातु में प्रतिष्ठापित है। अनहद धनि में प्रतिष्ठापित राम मैं मेरा मन अनुरक्त हो गया है। राम मैं अनुरक्त मेरा मन बेरायी हो गया है। मन को शून्य अण्डल में निवास मिल गया है। मुख कृपा से यह निवास उपलब्ध है। शून्य तत्त्व अपने आसन पर स्थिर विराजमान है—नामक नाम में लिपेहित अनहद की रत्नमूल में अनुरक्त है।

गुरु अंगन — इनके पिता का नाम कंक और माता का नाम बया कूँवरि बा। इनका जन्म संवत् १२९१ (शुभ १२०४) में ज्योतिष बिले के 'मत्ता की सराय' नामक स्थान में हुआ था। गुरु अंगन की रचनामें 'गुरु अंगन साहिब' में पृष्ठा १ में उल्लेख है—

ओ सिह चाँई ना निरे सो सिर बीजे बारि ।

नामक जिनु पिबत बहि बिछा नाही सो दिवार के बारि ।

अमरहाम — गुरु अमरदास का जन्म बीछल शुक्ल १४ चैत्र १२३९ (शुभ १४०१) को हुआ था। इन्होंने गुरु अंगन से बीछा ली थी।

१—बैरागी माया निबिबान बने मुक्कनि निबान-बोहन सिह । गुरु

गुरु रामदास :—गुरु रामदास का जन्म सन् १५३४ में हुआ था । इनकी राजमा का केन्द्र सन्तोष सर था । इनकी मृत्यु सन् १५८१ ई० में हुई । गुरु ग्रन्थ साहिब में इनकी रचनायें महत्ता ४ में संप्रणीत हैं ।

मेरो सुन्दर कहहु मिछे किनु मसी

हरि के संत बसावहु भासा हम पीछ लागि मसी ।

पिमके बचन सुनाने ही मरै, इह जाक मसी है मसी ।

कटुरी मधुरी ठाकुर भाई ओह सुनरि हरि दुखि मिछी ।

एकौ प्रिय सखीआ सम प्रिय कीओ भावै पिर-सामखी ।

मानक मरीज किआ करे निचारा दूर भावै तितु राखि मसी ।

आदिग्रन्थ पृ० ३२७ ।

गुरु अमृतदेव —गुरु अमृतदेव गुरुराम राम के पुत्र थे । इनका जन्म सन् १५६३ ई० में गोइलबास में हुआ था । गुरु अमृतदेव ने अपने से पूर्व आदिर्भूत समस्त गुरुओं और सन्तों की रचनाओं का संग्रह किया है (१६०४) । संग्रह के अन्त में राजमाका भी बी हुई है । सन् १६०९ में इनकी मृत्यु हुई । इनकी सर्वप्रसिद्ध रचना 'मुखमनी' है । इसमें दस-दस पंक्तियों की अष्टपदियाँ हैं । इसके अतिरिक्त 'बाबन ब्राह्मरी' तथा 'बारामावा' आदि पद महत्ता ३ में संप्रणीत हैं ।

कबल गुण प्राप्तपति निरुठ मेरी भाई ॥१॥ २६:३३

बप हीन बुधि बल हीनी मोहि परदेउनि दूर ते भाई ।२।

नाहिन बरबु न खोजन माटी ॥

मोहि अनाज की करहु समार्ई ।२।

खोजत खोजत मई बेरामनि ।

प्रम बरसन बज हज फिण्ड तिसाही ॥३॥

बीन ब्यास ब्यास प्रम मानक

साज छंगि मेरि जकनि बुकाई ।७।

आदि ग्रन्थ पृ० २२७ ।

गुरु हरराय :—ये औरंगजेब के समकालीन थे । इनकी मृत्यु सन् १६९१ में हुई थी ।

गुरु हरकृष्णराय — गुरु हरकृष्ण राम गुरु हरराय के पुत्र थे । इनका जन्म
 सन् १६२६ में हुआ था । इनकी मृत्यु साठ वर्ष की अवस्था में हुई ।

गुरु तेग बहादुर :—गुरुतेग बहादुर सिक्ख धर्म के गुरु गुरु थे । इनका
 जन्म सन् १६२१ में जमशेदपुर में हुआ था । जाकार में इनकी रचनायें सीमित
 हैं । बापि ग्रन्थ में इनके केवल ११ पद्य (बर) और १७ दोहे संयोजित हैं ।
 इनकी बापियों का विषय है —

१ संसार की गस्त्रता ।

२ मानवीय सम्बन्धों का निष्मात्म ।

३ संसार के प्रति उदासीनता और ईश्वर विस्तार ।

मन की मन ही गाहि रही ॥

मा हरि बने न लीरव सेवे बोली कालि गही ॥१॥॥॥॥

पारा भीठ पुन रूप सम्पति मन पुरन सब मही ॥

अबर सबक मित्रिमा ए जानत भबनु रामु को सही ॥१॥॥॥॥

किरत छिछ बहूते जुप हारिबो मानस देह सही ॥

नामक बहूत निरन की बरीमा विमरत बड़ा नहीं ॥२॥॥॥॥

गुरु गोविन्द सिंह — गुरु गोविन्दसिंह सिक्ख धर्म के गुरु गुरु थे । इनका
 जन्म पटना में सन् १६६६ ई० में हुआ था । सिखा की मृत्यु के पश्चात् साठ वर्ष
 की अवस्था में ही वे पन्थ के गुरु निर्वाचित हुए । सिख सम्प्रदाय में धर्म के
 साथ राजनीति और समाजनीति इन दोनों बातों को सम्मिश्रित कर उन्होंने
 माने पन्थ को एक नवीन रूपांतर दी । इनकी सम्पूर्ण रचना सप्तम् ग्रन्थ, या
 'दनबो पाठसाह का ग्रन्थ' में संकलिता है । इस संग्रह में भक्ति-काव्य से सम्बन्धित
 निम्नलिखित वर्ग की रचनायें आती हैं—सन् १७३४ में जारी मनीमिह से दूसरा

सम्पादन किया । १—जापू, २—अकाल बसति ३—सुख सर्वे (बाबत
 सोत पने निनि बाबुर) ४—सुख विष्णु पद (रे मन पेयो करि लम्बाया) ।
 इनकी एक प्रसिद्ध कविता है बीबीज बीतार बर्नन । इन ग्रन्थ में इनकी भक्ति
 भावना के बाष्पविद्य स्वप्न का अंश मिलता है । इनकी मृत्यु सन् १७०८ में
 हुई । परमेश्वर का वर्णन करते हुए वे कहते हैं—

सुखम क्य न बरमा जाई

बिरख सक्महि कहौ बनार्ई । दधम ग्रन्थ, पृ० ४७ ।

मेर करो सुणै मुहि बाहि परीख निबाब न बूसर ठोसो ।

मूल धिमो हमरी प्रभु बाप न भूजन हार कहुँ कोऊ मोसो ।

ऐव करी तुमरी टिनके सम ही यह देखियत इव मरोसो ।

या कछ मै सम कास ह्वाम के भारी भुजान को भारी मरोसो ।

—दधम ग्रन्थ पृ० ४५ ।

पञ्चभिर्माण

कबीर बाब की मृत्यु के पश्चात् उनके नाम से कबीरवंश की संस्थापना हुई । इस पन्थ के माध्यम से उनकी बाणियों का संग्रह हुआ और उनके सिद्धान्तों का प्रचार हुआ । कबीर के परम शिष्य बर्मदास ने बर्मदासी सम्प्रदाय की संस्थापना मध्य प्रदेश में की । सूरत मोपाक ने काशी में काशी साखा की संस्थापना की । कबीरचौरा साखा इसी सम्प्रदाय के अन्तर्गत है । इस पंथ में समाधिनिर्माण की प्रथा १४ वें महत्त चरनदास के समय से आरम्भ हुई । इनके शिष्य राम रघुदास ने बीकनर के आचार पर 'पंच छन्वी' नामक ग्रन्थ की रचना की थी । जतीसम्झी साखा के प्रवर्तक बर्मदास हैं । कबीर चौरा के अन्तर्गत बिहार की बनौली साखा भी है । इस मठ के प्रवर्तक जगपाल गुप्ता हैं । इस साखा के सन्त 'बीकन-वाठ' में विशेष आस्था रखते हैं । इस परम्परा में १३ गुरु हो चुके हैं । कबीर पंथ की अन्य साखाओं में साहबदासी पन्थ ठकेसरी पंथ (बड़ौदा) प्रमुख हैं । अन्य कबीर बाग कबीर, हंस कबीर, मंथ कबीर, उदासी कबीर आदि नामों से भी अनेक पंथ प्रचलित हैं ।

राहु के बीकनकाल में बाहुसम्प्रदाय अपने चरम उत्कर्ष पर था । अतीव दृढ के समय में यह पन्थ शिर्क होने लगा था । इस परम्परा में रज्जब, प्रागदास मुन्दरदास आदि सन्तों का प्राबुलीब हुआ । इस पन्थ का प्रधान कैमर मरना में था । इस सम्प्रदाय की पाँच उपसाखायें हैं—१-साकवा, २-उत्तराड़ी ३-नागा ४-बिरख ५-ताली ।

नाग पंथ के संस्थापक सन्त लाल दास थे । इनकी बाणियों का

संस्कृत 'साधुदास की बेतावनी' में मिलता है। बाबरी पंथ का प्रसार दिल्ली और उत्तर प्रदेश के पश्चिमी अंशों में है। इस सम्प्रदाय का कम-पूर्व इतिहास नहीं मिलता है।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस परम्परा का प्रादुर्भाव गजीपुर (उत्तर प्रदेश) में हुआ। इस सम्प्रदाय को संवर्धित करने में बाबरी साहिब का विशेष योगदान है। पन्थ के प्रवर्तक यारी साहब ने इसका प्रसार किया। पीक साहब इस सम्प्रदाय के एक अन्य महत्वपूर्ण साधक हुए। बुआ साहब और गुआम साहब इसी परम्परा के अवर्धक जाते हैं।

बाबरी सम्प्रदाय के प्रवर्तक प्रामाण्य थे। इनका जन्म वामनाथ में संवत् १६७२ में हुआ था। गुजरात में इनकी कसब मासिक कृति मिलती है। इसके अतिरिक्त कसब में धरीक इनका एक अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस सम्प्रदाय पर वैष्णव भक्ति, विशेषकर कृष्णभक्ति का प्रभाव परिलक्षित होता है।

सतनामी सम्प्रदाय के प्रवर्तक बाबू पन्थी बनजीवन साहब माने जाते हैं। साधु सम्प्रदाय के संस्थापक बीरनाथ से इस सम्प्रदाय का सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। ऐसी धारणा भी मिलती है कि इस सम्प्रदाय की संस्थापना औरंगजेब के नाविक अत्याचारों के विरोधमात्र में हुआ था। सतनामियों ने सं० १७२९ में औरंगजेब के विरुद्ध विद्रोह किया था। वह वस्तुतः औरंगजेब के प्रति एक फिस्लान विद्रोह था। इस सम्प्रदाय में निराकार ईश्वर की उपासना होती थी। वे पूर्व की बुआ करते थे। यह सम्प्रदाय तीन शाखाओं में विभक्त है—मालीक शाखा, कोटवा शाखा और सतीश यारी शाखा।

बनीसरी शाखा के प्रवर्तक बरचीदास थे। इनके पचास नामाराम खनराध, बाबुमुन्द दास रामराध, सीताराम दास इरानन्द दास एवं संत

१—उत्तर भारत की सन्त परम्परा—पृ० ४०७।

२—इस सम्प्रदाय में सप्त मास काल विषं चम्पाकूटमाह र वैष्णव वर्धित हैं।

माघ को इन में नहीं जोड़ा जा सकता। होयूर के बाद इन चम्पाक वर्धित हैं। वर्ष बाबसा का वाक्य निरिद्ध है—जैन साहित्य मुरारि सिद्ध महीनिया पृ० १८।

रामदास इस धाखा के सावक हुए । इस सम्प्रदाय का मुख्य केन्द्र मोंडी (बिहार) है । इस पंथ की एक प्रमुख धाखा बीसा (बलिया) में है । इस धाखा के संस्थापक भैराम दास थे ।

शिवलारामजी सम्प्रदाय के संस्थापक शिवलाराम दास थे । इनकी बीबनी से सम्बन्धी सामग्री उपलब्ध नहीं है । इस सम्प्रदाय के प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं 'संत सागर' और 'संत बिदास' । परम तत्व के लिए इस पंथ में 'संत देश' या 'संत बिदास' की संज्ञा का प्रयोग होता है । संत प्रवेश एक आदर्शलोक है जहाँ परम तत्व का निवास है । उस परम तत्व का नैकत्व प्राप्त करना ही सावक का परम धर्म है । इस पंथ में परम तत्व निराकार और गुण रहित माना गया है । इस सम्प्रदाय के चार मठ हैं जिनमें चार धाम के रूप में स्वीकृति मिली है । ससना बहादुर पुर, मेरठपुरी और अन्वद्वार । इस सम्प्रदाय के अन्य सामकों में रामदास सदाशिव, लखन राम और मेहराव थे । ये शिवलाराम के शिष्य थे । इस सम्प्रदाय में दास को गाड़ा जाता है अपना जलामा जाता है या बस प्रवाह किया जाता है । इस पंथ से सम्बन्धित प्यारू ग्रन्थों का संस्केत मिश्रता है—'संत बिदास' ग्रन्थ 'भजन ग्रन्थ' 'संत सुधार' 'मुह अम्वास', 'संतचारी' 'संत उपदेश' 'समावसी' 'संत परबान' 'संत महिमा' और 'संत सागर' । 'सदास बवाब टीका' 'काल ग्रन्थ' जैसे ग्रन्थों का संस्केत भी कठिण सम्प्रदायों में मिलता है ।

अरणदासी सम्प्रदाय के प्रवर्तक अरण दास थे । इनका पूर्ण नाम अणजीत दा । इनका जन्म मेवात में सं० १७६० में हुआ था । इनके शिष्यों की संख्या १२ थी । अतः इनके अनुसार यह सम्प्रदाय १२ धाखाओं में विभक्त है । सद्गुरुवाई और दयावाई इसी सम्प्रदाय से सम्बन्धित थीं । अरणदास के नाम से २१ रचनाएँ प्रसिद्ध हैं । जिनमें 'आवरण महात्म्य' 'दान बीसा' 'मटकी सीसा' 'माखन बोरी सीसा' आदि ग्रन्थों का सम्बन्ध आसबू से है ।

संत रामचरण ने राम सनेहा सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया । इनका जन्म सोहो बोंब में सं० १७६३ में हुआ था । ये रामानन्द के सिद्धान्तों से प्रभावित थे । इनकी रचनाओं का संग्रह, 'स्वामी श्री बत रामनारायण जी महाराज की जन्मे'

बायी घीर्वज से प्रकाशित हुआ । इस सम्प्रदाय का प्रचार मुजरात बहुमदाबाद
सूत, बम्बई मसजिद और राबपुरात में पाया जाता है ।

निरंजन सम्प्रदाय—निरंजन पंथ सम्भवतः कबीर पन्थ से भी प्राचीन है ।
इसका प्रसिद्ध सहजवात ओटा नाम पन्थ के समानान्तर हुआ लगता है । कबीर
के पूर्व इस सम्प्रदाय का प्रचार बंगाल और उड़ीसा में व्यापक रूप में था । इस
प्रकार के विश्वास की प्रस्थापना की गई है कि सिद्धों में भी निरंजन-उपासना के
प्रमाण मिलते हैं—

तो मइ मय्य समुच्चहइ, हौ परमये पबीन
कोटिहि माहे एक कम होइ निरंजन बीन ।

निरंजन पन्थ में उपर्युक्त द्वितीय श्काओं की ओर सर्व प्रथम ध्यान डौकर
पीताम्बर रत्न बहुधातक न आकर्षित किया जा । निरंजन पंथ में ज्ञान और बलि
के समन्वय की कैप्ता मिलती है । इस सम्प्रदाय के साधना में प्रेम और योग का
समन्वय मिलता है । इस सम्प्रदाय के प्रमुख भक्तों में हरिदास, तुलसीदास,
देवदी, काङ्गदास, मोहनदास, जगन्नाथदास श्यामदास, आनन्ददास नाथ,
पूजा कामदास, और जदबीकलदास, इन बारह निरंजनियों का विशेष
विचार मिलता है । हरिदास अपने पंथ में हरिपुत्र्य कहलाते थे । इनके धर्मों का
प्रचलन समय १५२०-१५४० ई० के मध्य है । इनके ग्रन्थों के नाम इस
प्रकार हैं । 'अष्टपदी योग ग्रन्थ' 'ब्रह्म स्तुति ग्रन्थ' 'हरिदास पञ्च माहा' 'ईश प्रयोग
नामा ग्रन्थ' 'निरंजन मूल ग्रन्थ' 'राय तुंड' 'पूजा योग ग्रन्थ', 'तुलसी योग ग्रन्थ',
'तंदाव योग ग्रन्थ' । इस पंथ के अन्य साधकों में राम प्रसाद निरंजनी, स्वल्पदास
निरंजनी, और योगेश्वरदास निरंजनी विशेष महत्त्व के हैं । पन्थ निरंजनी पन्थ में
व्यापक रचना करन वाले ग्रन्थों में स्वामी हरिदास मेवादास और तुलसीदास
ही विशेष महत्त्व के हैं ।

निर पर्व से सम्बुद्धित सम्प्रदायी में जराही सम्प्रदाय निर्मल नामवाती
सम्प्रदाय, गुपरा छाही सम्प्रदाय सेवानवी सम्प्रदाय और अकाली सम्प्रदाय, ये
छा सम्प्रदाय प्रमुख हैं । प्रथम के प्रवर्तक नामक के पुत्र भी जन्म प । दूसरे के पर्व
की राजनीति से जन्म होता । द्वितीय पन्थ की स्थापना गुरु गोविन्द सिंह के समय

बीर सिंह द्वारा हुई थी। इन्होंने भी धर्म को राजनीति से स्वतंत्र रखा। तृतीय सम्प्रदाय के प्रवर्तक कुशियामा के भाई राम सिंह थे। इस सम्प्रदाय ने अपने को राजनीति से भी समन्वित किया था। सुपरा साही सम्प्रदाय की संस्थापना सुपरा साह ने की थी। सेवा पंथी सम्प्रदाय की संस्थापना कन्हैया नामक किसी व्यक्ति ने की थी। बकासी सम्प्रदाय की संस्थापना संवत् १७४७ में मानसिंह ने की थी। ईश्वर को ये बकास पुस्य कहते हैं। रजनीत सिंह के समय उनका प्रभाव केन्द्र बानसपुर था। इन्होंने निरन्तर राजनीति में सक्रिय भाग लिया है।

सन्त साहित्य का दर्शन और भाव पक्ष

सन्तों की साधना का परम उद्देश्य था इत भावना से ऊपर उठना। सत् असत् के द्वैत से निर्गुन और सगुन के द्वैत-भाव से तथा भाव और अभाव के द्वैत भाव से ऊपर उठना सन्तों का परम धर्म था। सन्तों यह बड़ विस्वास था कि इस स्थिति की उपसन्धि ज्ञान या प्रज्ञा से ही सम्भव हो सकती है। बौद्धों ने जिसे प्रज्ञा कहा है, सन्तों ने उसे ज्ञान के रूप में ग्रहण किया है।

कबीर की विवेचना के सम्बन्ध में कहा गया है कि सन्तों की साधना का परम उद्देश्य शून्य था, जिसे 'राम' के पर्याय रूप में उन्होंने ग्रहण किया है। वह निराकारम्ब है। परन्तु वह बड़ और स्थिर है। साधक का धर्म इस शून्य में ही स्थिर होगा है। शून्य-साधना कठिन है यह सामान्य जीवन की साधना नहीं हो सकती है। अतः इस ध्येय की उपसन्धि के लिए भक्ति को माध्यम रूप में उन्होंने ग्रहण किया है। इस प्रयास में वे अपनी साधना को सर्वसाधारण के लिए बोध योग्य बनाते हैं। नाम स्मरण का प्रस्तावना वे इसी भावना से करते हैं। इसी उद्देश्य को सम्मुख रखकर कबीर ने कहा है—

शून्य मरे, बजपा मरे, जनहुद हू मरि जाय।

नाम छानेही तर मरे कह कबीर समुझाय।

नाम से स्नेह करनेवाला संसार के परा-भरण से मुक्त पड़ा है। जल जल में स्थिर हो पाते हैं। उसके साथ तापरात्म स्वाधिक कर लेता है। इस तत्व की ओर संकेत करते हुए कबीर ने कहा है—

कहा ऊ भे है सूरज ऊ जई जई पानी पानी।

कह कबीर हम मयल न भई हैं, जिनकी मति टहरानी।

सन्तों ने जिस ज्ञान का आचार ग्रहण किया है जिसकी अनुसृष्टि पर उनका सम्पूर्ण दर्शन अवलम्बित है वह स्वामुमुति मूलक है। इस ज्ञान के सम्मुख वे घास्वीय ज्ञान की निम्न कोटि का कहते हैं। इस ओर ही संकेत करते हुए कबीर ने कहा है—

छाका जौंती ज्ञान की समुन्धि देखि नन माहि।

बिनु घास्वी संसार का भागरा छुटत नाहि।

बीजक ३५३। ३५५।

इस ज्ञान के आशेष को ही कबीर 'ज्ञान की जौंती' की संज्ञा देते हैं जिससे माया के बन्ध से परिच्छिन्न ब्रह्मज्ञान की टाटी (टट्टी) खसिष्ट होती है।^१ अतः अपने कर्म के संश्लेष में वे स्वर्गसंविद्य ज्ञान की साप्ती लेते हैं। सन्त जीवन की सद्गुण पद्धति में विश्वास करते थे। उनके सम्मुख जीवन का अनासक्ति मूलक जीवन दयन था। अनासक्ति भाव से जीवन-व्यापन करने की भावना बौद्ध धर्म में मुख्यतः महाभान में उपलब्ध होती है। इसे अनामोग धर्मा अपवा अस्पृश योग भी कहते हैं। इस प्रकार जीवन के प्रति सन्तों की इस निविष्ट दृष्टि की एक निमिषत परम्परा मिलती है। सन्तों ने ह्रौंठ भावना से ऊपर उठकर जिस सत्य को देखने का प्रयास किया है वह जीवन निरलेख नहीं है। वह हममें ही अवस्थित है वह हमसे भिन्न नहीं है—

कम्पूरी कुण्डलि बसे मूय हँदे बन माहि।

ऐसे बट-बट राम हैं बुनियाँ देखे बाहि।

कल्पायौ मूय को मय।

१ संतो बार्द बार्द प्यास की जौंती रे

अन्न की टाटी छर्ब उड़ाणी माया खै न जौंती। टेक।

जिउ जित की है मूंती मिरांनी मोह बपीदा मूला।

निम्ना छानि परी पर ऊरि, कुबकि का माँझा कूटा ॥

ओय बुननि करि संतो बापी निरखू बुने न पाँगी।

बूट बपन बापा बा निरक्या, हरि की पति जव बापी।

बापी पीछे ओ अरु बूझा प्रेम हरी जत बीया।

बड़े कबीर ज्ञान के प्रवर्णे उरित भया ठग बीना। १९।८३

ईश-वस्तु के परिवन्ध से उन्नत भूमि पर उसको अनुमति सम्मिल हो सकती है ।

हरे छाड़ि बेहसि गया, हुवा निरन्तर बास ।

कबल ब फूसा फूल बिन को निरपे निब बास ।

परमा की अंश ५ ।

उस सीमा के परे जिस असीम लोक की कल्पना संभव करते हैं वहाँ बिना बाध के कमल प्रस्फुटित होते हैं । वहाँ सागर नहीं है, धीप नहीं है और न स्वाति बूँद है । वह सूर्य धियर-गढ़ ऐसा है वहाँ मोती उत्पन्न होता है । अतः 'हृद का परिस्पाय कर बेहस' में प्रवेश करने के उपरान्त ही 'सूर्य-स्नान' सम्भव है । यह स्थिति 'इममन' को 'उनमन' में समर्पित कर देने के फलस्वरूप हो जाती है । इसे परिचय की स्थिति कहते हैं इस स्थिति में चन्द्रा बिना ही चन्द्रिका प्रसरित रहती है । इस चन्द्रिका में ही अलङ्कार निरन्तर के वर्तन होते हैं ।

मन कामा उग मन सों गहन पहुँचा बाई ।

देवमा बंद बिहूँवा बाँबिना तहाँ अलङ्कार निरन्तर बाय ।

इस प्रकार सन्तों ने जिस सत्य के प्रति वाञ्छा मात्र व्यक्त किया है वह निवेद्यारमक नहीं है परन्तु वह सृष्टि के समस्त विचित्रों से परे है ।

अपने कर्म के लिए सन्त अपने पूर्ववर्ती साधकों की भी साक्षी होते हैं । यथा

कामनि अंग बिरहल भया रत भया हरिनाह ।

साखी घोरस नाथ कबूँ अमर गए कलि माहि ।

साक्षी देने की वह परम्परा मात्र साधकों में भी मिलती है । अपने कर्म को अधिकारपूर्ण और यथार्थ रूप देने की भावना से सिद्धों में भी साक्षी (साखी) देने की परम्परा मिलती है ^१ ।

सन्तों ने जिस परमतरंग की कल्पना की है वह अजात है वह सब कालीन है । उसकी उत्पत्ति नहीं होती है, और न उसका विनाश होता है । परमतरंग के इस स्वरूप की कल्पना बौद्धों ने भी की है । इनके अनुसार परम सत्ता की स्थिति आरम्भ से ही रहती है । 'लंकावतार सूत्र' में इसे 'पूर्व कर्म स्थितता' कहा गया है । इसे पौराणिक स्थिति भी कहा गया है । वह परिवर्तन या विचार से प्रभावित नहीं होता ।

धरती पवन पवन नहीं होता, नहीं लोटा नहीं तारा ।

तब हरि हरि के मत होते कई कबीर विचारा ।

कबीर को विवेचना के सम्बन्ध में इसका जल्दबाजी किया गया है कि सत्ता ने 'नाम स्मरण' में अपना विश्वास व्यक्त किया है । नाम-अहिंसा और नाम-स्मरण के सम्बन्ध से वे जली नकि या साधना को संश्लेषित करते हैं । इसी ओर संकेत करते हुए कबीर ने कहा है—

मगहि मजन हरि नाँव है पूजा पुन अवार ।

मन्त्रा बाबा कर्मबी, कबीर मुमिराय सार पृ० ४०, मुमिराय ।

नाम स्मरण करते-करते मन नाममय हो जाता है । परन्तु वह नाम-स्मरण साधना पर ही अवलम्बित है । इसके लिये विविध कृतियों का निरोध समिधाय है । रामनाम-स्मरण मूकम बोरो पर बहने के समान है । नट तारो पर, मूकम बोरो पर बड़ कर कोलुह लिखाता है । यदि अपनी कला से च्युत होकर वह मिरता है तो यह उसके लिये समिधाय बन जाता है—

कबीर कठिमाई करी मुमिरता इणियाम ।

मूली ऊर नट बिद्या, विक ठ नाही ठाम ।

नाम बप से साधक नाममय हो जाता है, वह निरोध में समाहित हो जाता है ।

तू तू करठा तू धया, मुझ में रही न हू ।

बारी केरो बलि गई लिख देलौ जित तू ।

नाम-स्मरण नवबा बलि की भी एक विशेष विद्या है । इस नाम बप का संश्लेष करने हुए तुम्हरी ने कहा है—

नाम बपउ भव सिन्धु मुसाही

करउ विचार मुन मन माही ।

इसका सम्बन्ध ग्रहण करके कविज विचारको ने कबीर को इसी परम्परा में डालने का प्रयास किया है । परन्तु यन्त्र नाम-स्मरण-परम्परा की दृष्टि से केवल यह के विचार निकल है यह एक विचारणीय समस्या है । बीज बने में मन्त्राणि कविज जाग्राहो ॥ विचारर मुसाही नवनाम' में कुछ ॥ पुन विचार विन्या है । यहाँ 'नमः बलिज

बुढ़ाव' का स्मरण किया जाता है। इस प्रथा ने परवर्ती काल में एक प्रबल रूप धारण कर लिया। अतः यहाँ प्रश्न यह उठता है कि सन्तों में नाम-स्मरण की भावना के आवगमन का माध्यम क्या है, बेप्लव चिन्तनपारा या बौद्ध धारा ? वास्तविकता यह लगती है कि जो मिल मिल परम्पराओं से प्राप्त नाम-स्मरण की प्रथाओं का प्रयोग कबीर ने समन्वित रूप से किया है।

सन्तों ने मन की साधना पर विशेष विश्वास किया है। उन्होंने 'इनमन' और 'उनमन' की बड़ी प्रत्येक सन्दर्भ में की है। एक मन व्यक्तिगत और बाह्य है। दूसरा निरपेक्ष है। कबीर तथा अन्य सन्तों ने ऐसे मन की उपलब्धि के प्रति आप्रह्व व्यक्त किया है। जिसमें व्यक्तिगत मन समाहित हो उठता है। इस मन का स्व रूप ब्रह्म सनक सनमन ब्रह्म नामदेव आदि मक्तों को भी नहीं हो पाया था। यह निरपेक्ष मन भी हमसे अभिन्न है। उसका अस्तित्व हम से मिल गयी है। पोरख भरपरी और गोपीबन्धन इसके साथ साक्षात्स्व स्थापित कर चुके हैं। यह मन 'निरंजन' है जिसकी उपलब्धि कबीर तथा अन्य सन्तों को हो चुकी है—

ता मन कौं बोजहु रे माई, तन छूटे मन कहाँ समाई।

समक सनमन जै देव नामा, भवति करि मन उनहुँ न जाना।

×

×

×

गोरख भरपरी गोपीबन्धन, ता मन सौं मिलि करे क्लेश।

ब्रह्म निरंजन सकल सरीरा, ता मन सौं मिलि रह्या कबीर ३३।८८।

भक्ति की प्रचलित विचारों से उस मन का परिचय नहीं प्राप्त किया जा सकता है। सास्त्रों और अन्य आचार ग्रन्थों में इस मन के स्वरूप का वर्णन नहीं मिलता है। इसका परिचय ज्ञान और अनुभूति से होता है—

अप तप अंगम पुजा बरबा बीतिंग जन बीतना।

कागर लिखि-लिखि ब्रह्म भुक्ताना मन ही न न समाना।

कहै कबीर बोगी बर बंगम ए सब झूठी भासा।

मुह प्रसाद रटी चाबिग क्यू निहुरै भवति निबासा ३४।८८।

'उनमन' के साथ 'इनमन' का साक्षात्स्व 'गहन' में होता है। यह मन परम सत्य का स्वरूप है, यह निरंजन है। यह सकल शरीरों में परिध्यात है—

ब्रह्म निरंजन सकल शरीर, तामन सौं मिलि रह्या कबीर।

मन की साधना पर सत्तो ने विशेष बल दिया है। व्यक्तिगत मन अति बलि मंत्रित होता है। पल-पल में उसका स्वरूप परिवर्तित होता रहता है। मन की साधना को परावृत्ति साधना के रूप में सत्तो ने ग्रहण किया है। 'मन रे मनहि समाजा, अपवा 'मन उलटा बहिया मिरया' के माध्यम से इस परावृत्ति साधना या उलटो साधना की खोज की गई है। बौद्ध दर्शन के अन्तर्गत 'छानिक विज्ञान बोधी' दर्शन एक विशिष्ट दर्शन-दृष्टि है। इसके अनुसार चित का उदय लज्ज-लज्ज होता है और उसका लय भी लज्ज-लज्ज होता है। चित की जो बदलाव एक पल में रहती है वही दूसरे लज्ज में नहीं रह जाती। उसका अस्तित्व काटे हुए कबीर ने कहा है—

कबीरा यह मन कत गया, जो मन होता कसिह ।

इंगरि बूठा मेह प्यु गया निवासा बालि । मन की अंग २२ ।

संत साहित्य में 'मुरति' और 'निरति' की खोज विशेष आकर्षणपूर्ण है। मुरति को निरति में समोह्य होने की खोज मिलती है। निरति को निरात्मक कहा गया है। मुरति निरति में समाविष्ट हो जाती है। तब अन्त में सदा जाता है—

मुरति समाधी निरति में निरति रही निरपार ।

मुरति निरति परवा गया, तब गुन स्वयं दुवार २२।१२ ।

मुरति समाधी निरति में, अज्ञा माई बाप ।

कैल समाधी अन्त में मू बापा माई बाप । २२ । १२

अगम मुरति नेत्रु चितलाई । मुरति कबल रह मुरति नमाई १७।१२
बहिया प्रभाबसी ।

पौष ठगु ठहो रेसु बितेया । पल-पल कटिह अनुपम येवा ४७।१६

तामें निरति मुरति की बानी तामें निरतु माया की घानी । ४९

बौद्ध धर्म में 'स्मृति' शब्द की खोज मिलती है। यही इस शब्द का प्रयोग बादल अवस्था या आवकता के अर्थ में हुआ है। परन्तु काव्य में 'मुरति' का प्रयोग 'स्मृति' के ही प्रयोग में किया जाने लगा। शब्दों के पूर्व योग्यताय से इन शब्दों का प्रयोग इन्हीं अर्थ में किया है। 'मुरति यही नवा बिलि साधी पूजी हावि न होई।' शब्दों और शब्दों के लिए मुरति स्मृति केनवा जागना और पल मावि है। योग्यताय के नाम से मरदीन रचनाओं में 'मुरति' के प्रति आकर्षित रहने का आग्रह मिलता है—

बुद्धाय' का स्मरण किया जाता है। इस प्रथा ने परवर्ती काल में एक प्रबल रूप धारण कर लिया। अतः यहाँ प्रसन्न यह उठता है कि सन्तों में नाम-स्मरण की साधना के आगमन का माध्यम क्या है बौद्ध चिन्तनधारा या बौद्ध धारा ? वास्तविकता यह समझती है कि दो भिन्न भिन्न परम्पराओं से प्राप्त नाम-स्मरण की प्रणाली का प्रयोग कबीर ने समन्वित रूप से किया है।

सन्तों ने मन की साधना पर विशेष विश्वास किया है। उन्होंने 'इनमन' और 'उतमन' की कभी-प्रत्येक सन्तर्म में की है। एक मन व्यक्तियुक्त और चापेक्ष है। दूसरा निरपेक्ष है। कबीर तथा अन्य सन्तों ने ऐसे मन की उपलब्धि के प्रति आग्रह व्यक्त किया है जिसमें व्यक्तियुक्त मन समाहित हो उठता है। इस मन का स्व रूप बोध सगुण सनन्दन ब्रह्म नामधेय आदि भक्तों को भी नहीं हो पाया था। यह निरपेक्ष मन भी हमसे अभिन्न है। उसका अस्तित्व हम से भिन्न नहीं है। पोरख भरचरी और गोपीचन्द इसके साथ वादात्म्य स्थापित कर चुके हैं। यह मन 'निरंजन' है जिसकी उपलब्धि कबीर तथा अन्य सन्तों को हो चुकी है—

ता मन कौ बौद्धहु रे भाई, तन छूटे मन कहाँ समझै।

सगुण सनन्दन जै वेब नामाँ, भगति करि मन सज्जै न जागा।

×

×

×

पोरख भरचरी गोपीचन्दा, ता मन सौं निरि करै वर्णवा।

अकल निरंजन सकल सरीरा, ता मन सौं निरि रह्या कबीरा ३३८८।

भक्ति की प्रचलित विधाओं से इस मन का परिचय नहीं प्राप्त किया जा सकता है। साधनों और अन्य आचार सन्तों में इस मन के स्वरूप का वर्णन नहीं मिलता है। इसका परिचय ज्ञान और अनुभूति से होता है—

अप तप ब्रह्म पुना बरवा बौद्धिग बन बौधना।

कायद तिलि मिलि अपत मुकाना मन ही मन न समाता।

कई कबीर बोधी अब ब्रह्म ए सब झूठी धारा।

गुरु प्रसाद रटी जातिन म्मु निहचै भगति निवासा ३४८८।

'उतमन' के साथ 'इनमन' का वादात्म्य 'यवन' में होता है। यह मन परम तत्त्व का स्वरूप है, यह निरंजन है। यह सकल सरीरों में परिभ्रमण है—

अकल निरंजन सकल सरीर, तामन सौं निरि रह्या कबीर।

मन की साधना पर सन्तों ने विषय बल दिया है। व्यक्तिगत मन अति अति
 र्भक्ति होता है। पक्ष-पक्ष में उसका स्वरूप परिवर्तित होता रहता है। मन की
 साधना को परावृत्ति साधना के रूप में सन्तों ने ग्रहण किया है। 'मन रे
 मनहि समाना' अथवा 'मन उल्टा करिया निर्या' के माध्यम से इस परावृत्ति
 साधना या उल्टी साधना की जर्नी को गई है। बौद्ध धर्म के अन्तर्गत लामिङ्ग
 विज्ञान बारो' धर्म एक विधि-दर्शन-दृष्टि है। इसके अनुसार चित्त का उदय
 लक्ष-लक्ष होता है और उसका स्वरूप भी लक्ष-लक्ष होता है। चित्त की जो
 अवस्था एक पक्ष में रहती है वही दूसरे पक्ष में नहीं रह जाती। उसका उल्टेका
 कष्टो हुए कबीर ने कहा है—

कबीरा यह मन कय गया, जो मन होता काहिह ।
 रूपि कूठ पेह ज्यु गया निबाधा जाति । मन की भंग २२ ।

संत साहित्य में 'गुरुति' और 'निरति' की जर्नी विषय आकर्षणपूर्ण है।
 गुरुति को निरति में समोह्य होने की जर्नी निचली है निरति को निरात्म्य
 कहा गया है। गुरुति निरति में समाविष्ट हो जाती है केवल अन्तर्मन में समा
 जाता है—

गुरुति समाधी निरति में निरति रही निरपार ।

गुरुति निरति परजा भया तब तुले स्वाम हुबार २२।१२ ।

गुरुति समाधी निरति में अजपा माई बाप ।

केवल समाधी अन्तर्मन में यू बापा माई बाप । २२ । १२

अनम गुरुति नेत्रहु चित्तलाई । गुरुति कंठस रह गुरुति स्मारी १७।१२
 बरिया प्रन्नाबली ।

पक्ष तबु वहाँ हैनु बिलेना । पक्ष-पक्ष कष्टहु अनुपम सेवा ४४।१६
 तामें निरति गुरुति की बानी तामें निरतु माया की लानी । ४४

बौद्ध धर्म में 'स्मृति' शब्द की जर्नी विलम्बी है। यहाँ इस शब्द का प्रयोग
 बापन अवस्था या जागरूकता के अर्थ में हुआ है। परबर्ती काल में 'गुरुति' का
 प्रयोग 'स्मृति' के ही प्रयोग में दिया जाने लगा। सन्तों के पूर्व गोरखनाथ ने
 इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में दिया है गुरुति यही संज्ञा जिनि लायी पूंजी
 हानि न होई । नाथों और सन्तों के लिए गुरुति स्मृति केना जागरूकता
 और चेतना है। गोरखनाथ के नाम में संयुक्ति रचनाओं में 'गुरुति' के अर्थ
 जागरूक रहने का आग्रह मिलता है—

मपीत् बहाँ पृथ्वाधुम्य महा धूम्य है । बहाँ सूर्य नहीं है चन्द्रमा नहीं है बह्म
 दिक् पाल नहीं है । बहाँ न जल है न मृत्पु है न वायु है न शीतलता १ है ।
 'धर्म बीठा' ने अनुसार महा धूम्य से पवन पवन से निरंजन निरंजन से निर्गुन
 निर्गुन से भुज की व्याप्ति काळ क्रम से हुई मानी गई है । रमाई पण्डित के धूम्य
 पुराण में निरंजन की व्युत्पत्ति महाधूम्य से मानी गई है । धर्म सम्प्रदाय की इस
 भावना को नाथ साधकों ने आत्मसाध किया । सन्त पन्थ ने इस साधना भावना
 को समीकृत किया । ऐसे भी प्रमाण मिलते हैं कि काळ-क्रम से यह सम्प्रदाय सन्त
 सम्प्रदाय के लिए प्रबल प्रतिद्वन्द्वी का रूप धारण कर गया । और कबीर भक्त
 की बशिणी साक्षा (धर्मवादी सम्प्रदाय) ने इसे आत्मसाध किया ।

हठयोग प्रदीपिका में निरंजन का प्रयोग मुक्त ब्रह्म के लिए हुआ है । नाथ
 पंथ में निरंजन को नाथ के साथ सम्मिलित किया गया है । सन्त साधना में दृश्यमान
 अलग अलग हैं निरंजन इससे परे हैं ।

'रामनिरंजन म्यारा रे अंजन सकल पसारा रे । कबीर ने केवल राम को
 निरंजन माना है राम के अतिरिक्त सृष्टि के अन्य ठग अंजन हैं । ओंकार, वैद
 वाणी ब्रह्म शंकर सभी अंजन हैं । योगी अंजन का परित्याग कर निरंजन में बाध
 करता है । (१७२।३३९) । अंजन की उत्पत्ति होती है निरंजन अजन्मा है ।
 अंजन का आवायमन होता है निरंजन सब कट में समाहित है ।

१ पौतम बुद्ध ने भी इस प्रकार की प्रस्तावना की है—मिथुनों (बह) ऐसा
 आसक्त है बहाँ न पृथ्वी है न जल है न अग्नि है न वायु है न आकाश आय
 तन है—न यह लोको है न परलोको है न चन्द्रमा है न सूर्य है छत न अगति
 कहता है, न मति । न बहाँ ठहरना होता है न व्युत्पत्ति होता न उत्पन्न
 होता है, वह आचार रहित संस्करण रहित है आत्ममग्न रहित है अरिष विफलने
 साक्षायतन यत्न नेषकठी; न आपो, न तैजो, न वायो न आकाश नन्द्रावतन

नायं लोको न परो लोको न ऊनो अन्दिम मूरिया तर्हं मिस्रये नेव
 आसंति बरामि न मति ठिबि न बुति न उपपि, अनपिठठ अपनन इति बुद्धक
 मेवने-सुन्तो ने इस भावना को अतिवर्धित रूप में स्वीकार कर लिया है ।

सन्तों के निरंजन निराकार हैं। कबीर उस निरंजन से एकाकार होने की कल्पना करते हैं।

‘कहै कबीर भरम सब भाषा एक निरंजन सु मन बाणा’।

निरंजन निराकार, अपरम्पार। रसिनी।

सन्तों में निरंजन के प्रति इस प्रकार की धारणा का विकास नाबाल्य से हुआ लगता है। मोरारनाथ ने निरंजन के जिस स्वल्प की कल्पना की है, उसमें यह आभासमान से मुक्त है—

जाई नहीं जाके निरंजन नाब की बुलाई।

प्यहं बहुष्य पोषता अन्हें सब सिधि पाई।

मोरारनाथी। ११६।

नाब साबकों के समान सन्तों के निरंजन की अनुमूर्ति भी उस यमन-अण्डस में होती है जहाँ अनादर नाब जनित होता है जहाँ अक्षय्य ज्योति प्रज्वलित रहती है। अंजन में लित होते हुए भी निरंजन उससे निष्ठित है जैसे ही जैसे अम्बुजा बब में प्रतिबिम्बित होते हुए भी बल से सम्य है। और जल से भलग्न होकर भी वह जल में है। इसी प्रकार घट घट से भलग्न रहते हुए भी निरंजन प्रत्येक घट में, प्रत्येक अंजन में है। और प्रत्येक घट में रहते हुए भी वह उससे भलग्न है। कबीर ने अपने निरंजन के स्वल्प की व्याख्या इन सन्तों में कर दी है—

१. सन्तों में इस भावना का विकास ‘मन्ना पारमिता’ की मौलिक परम्परा से हुआ लगता है। जहाँ सत्य के साक्षात्कार के सम्बन्ध में कहा गया है कि सत्य रूपसे एकान्त और अलग नहीं है। सत्य एक अतीत है जो हममें निरंतर विद्यमान है। ‘संदाबजार मून’ में इसी भावना को ‘जल में अम्बुजा के प्रतिबिम्ब’ के माध्यम से व्यक्त किया गया है। कबीर तथा अन्य सन्तों ने इस भावना को ग्रहण किया है। कबीर की इस विचार-धारा का सम्बन्ध उत्तरकाशी के बेदान्त (साधोपधारीक) में स्थापित किया जाता है जहाँ प्रतिबिम्बवाद के विद्वान्त की बर्णना मिलती है। जल्द इस सम्बन्ध में यह प्रस्तावना विशेष रूप में ध्यान देने योग्य है कि ‘संदाबजार मून’ गीतर के बेदान्त के पुनर्जात का अर्थ है। मोरारनाथ तथा कबीर ने गीतर की ओर ‘संदाबजारमून’ की मौलिक परम्परा से दी गयी भावना को ग्रहण किया है।

अबन्धु अगनि बरि कै काठ ।

पूछीं पण्डित जोग सग्यासीं, सतगुरु चीन्हें बाट । टेक ।

अमनि पवन मैं पवन कबल मैं सुख गगन के पवना ।

मिराकार प्रभु आदि निरंजन, कत रहते भवता । १७६ १२६ ।

सन्त साहित्य की समग्रता पर विचार करते हुए एक स्तर की ओर हमारा ध्यान जाता है । कबीर के परमात्मा कात्म-रूप से सन्तों ने अपनी मान्यताओं को धाम्नि-समस्त करने का प्रयास किया है । अतः उनके साहित्य के मुख्य स्तर में परिवर्तन भी दृष्टिगोचर होता है । इन सन्तों का व्यक्तित्व भी कबीर के समान नहीं था । अतः एक ओर कबीर से उपलब्ध चिन्तन-बारा को परम्परा रूप में इन्होंने ग्रहण किया दूसरी ओर बेदाग्त तथा अन्य दास्यों के निकट पहुँचने का इन्होंने प्रयास किया । बाघू, रबास, मण्डूक, सुन्दरदास अगजीवन यथाबाई और श्रीबा की रचनाओं के विश्लेषण से इस कथन का समर्थन होता है ।

सिद्धों और माधों के समान सन्त 'सहज' के प्रति आकर्षित मिलते हैं । सहज का वर्णन हममें से कौनों में मिलता है— (१) सहज समाधि के रूप में (२) सहज-बीजम पद्धति के रूप में । प्रथम के अन्तर्गत सहज समाधि में साधक यमन मण्डल में केन्द्रित होने की चर्चा करते हैं । वहाँ वे मूल बन्ध बाँधते हैं और 'अनहद' नाद के साथ तादात्म्य स्थापित करते हैं । 'उम्मान' की स्थिति में लूँच कर वे रसायन पान करते हैं—

मुनि मण्डल में मरता बाये तहाँ मेरा मन माचै ।

गुरु प्रसाद अमृत फल पाया सहज सहजि सुपमता काखै ।

पूरा मिस्या तबै सुख उपग्यो तम की तपन बुझानी ।

कई कबीर भव बन्धन छुटे, जोतिहि जोति समानी ।

सहज समाधि की विधि योग पर आधारित है । इसका विप्लव-मुद्रणा के सहयोग से जड़ रस में प्राण वायु के केन्द्रित करने की प्रक्रिया की व्यापक चर्चा सन्तों ने की है । इससे द्वार पर 'चन्द्रमा' और 'सूर्य' को समस्तस्थिति में साने की भावना निद्र और नाच पन्थ के अनुसार ही है—

इसा व्यंगुला भाटी कीन्ही ब्रम्ह भगिति परिवारी ।

सति हर मूर द्वार बस मदि लागी योग जुगतापी ।

सहज मुनि में बिन रस जाक्या, सतमुख में सुधि पाई ।

दास कबीर इहिरिनि माता कबहुँ उलझि न जाई । २१।७४

अपवा

अरि कार्ये महुटिया गमन पहराय ।

सन मरने, सन बिजुसी बमके महुटि उठै सोभा बचि न जाय ।

मुल महुल से ममूत बरसै प्रेम बनस है साधु महाम ।

कुसी केबरिया मिटी अँधपरिया धमि सतमर बिन दिया छताय ।

बस बास बिनने कजिोरी सतमुख बरस में रहत समाय ।

धरमदासजी की सज्जाबटी ।

सन्तों ने मौखिक प्रक्रियाओं की अपेक्षा इन तत्त्वों का प्रयोग सहज समाधि के उत्थर्म में किया है। उनकी सहज-समाधि योग-समाधि से भिन्न थी। कबीर ने इस ओर ही संकेत करते हुए कहा है— नई कबीर यह उन्मत्त रहनी सो परमट कर गई। परन्तु सन्त साधकों में 'मुन्तर बास' ने ध्यान का अध्ययन किया था। 'ज्ञान समुद्र' में साध्य मनुष्य और योग के सिद्धान्तों का निरूपण मिलता है। अतः इनमें धार्मिक-विषय के प्रति निरन्तर आग्रह मिलता है। इसी प्रकार बुद्धा साहज ने हठयोग के लिए ध्यान अनिवार्य माना है। इनके 'भगर मनस' के 'राजयोग' और 'ध्यान योग' में योग की मूला का प्रतिपादन किया गया है।

सन्तों ने जीवन की समग्रता और संतुल्यता में आस्था प्रकट की है। जीवन की संस्थापना असाध्य युधि पर करने का प्रयास में ही उनकी अन्तः प्रियापीत थी। सिद्धों की दृष्टि उपभोगवादी थी। इन उपभोगवादी दृष्टिकोण के प्रति बोधनाथ ने अमृतोप-मात्र स्पष्ट किया है। कबीर तथा अन्य सन्तों ने भी इस उपभोगवादी दृष्टि के प्रति अमृतोप स्पष्ट करते हुए कहा है कि जीवनी सिद्ध माना के लेख में विनाश करने वाले हैं। नैतिरता की दृष्टि से वे पाप्मों को भी निगम करते हैं। अतः सहज को सन्त सहज और नैर्गुणिक जीवन-पद्धति का परीनवाचो मानने हैं—

गहज गहज नब को नई सात न बीछे को

दिह सहर बिना लगी सहज कहावे को ।

सन्त साहित्य की रचना युग-जीवन के अन्तर-भन को प्रतिबिम्बित करती हैं। सन्तों ने अपने युग की संपर्पमूखक भूमिका से अपने व्यक्तित्व का निर्माण किया है। परस्पर विरोधों के मध्य समाज को पल्लवित करने के प्रयास की दृष्टि से सन्त-साहित्य समाजर पाठा रहेगा। सन्तों को मुख्यतः कबीर को, अपने युग से प्रचारना ही मिली। परन्तु लखन और समीकरण, इन दोनों के माध्यम से कबीर ने अपने काम्य और अपनी धारणा का विकास किया। कबीर तथा अन्य सन्तों के साहित्य की दो स्पष्ट बाराएँ मिलती हैं। प्रथम में वर्धन और साबाना प्रयासी का संश्लेषण है। इसका संश्लेषण किया जा चुका है। द्वितीय वर्ण में युग-जीवन के आकलन की बहिरोक्ष उत्पन्न करने वाली सक्ति के विध्वंस की और समाज-संस्करण की चेष्टा मिलती है। सन्त-सम्प्रदाय ने योनी सम्प्रदाय का संपन्न किया निम्नजातिमों के संलयन का प्रयास किया बीड़ों को अपने में समीकृत करने का प्रयास किया।-ब्राह्मणों तथा मुसलमानों की आलोचना से उसके सम्मुख अस्तित्व का प्रस्तावक बिह्व उपस्थित किया। इस तथ्य की और संकेत करते हुए कबीर ने कहा है—

हम बासी बहि देस के बहौं जाति बरन कुरु नाहि।

सबद मिजाबा होइ रहा बेह मिजाबा नाहि।

इस प्रकार सन्त साहित्य की विशेषताओं का निश्चौर्य इस रूप में किया जा सकता है।

१ एक बहियत, अतीत धूम्य राम निरंजन का ध्यान। वह युव-यव प्रदर्शन से ही होय है। २ युव और साधु सेवा ३ प्राप्तिमें में समान बया भाव। ४ मांस-आहार को त्यक्त कहना। मरिदा का वर्धन। ५ स्वयंवेद्य ज्ञान के प्रति आग्रह तथा वेद-शास्त्र-सम्मत ज्ञान की उपेक्षा। ६ कबीर के परवर्ती सन्तों में से कतिपय ने नबपा सक्ति के स्वर को स्वीकार किया है। ७ अनुप्य-सृष्टि को समग्र तत्त्वों से ध्येष्ट और मूल्यांकन मागना।

सन्तों ने भाषा की कल्पना की है। इनके अनुसार कृष्णकिनी महाभाषा विष से परिपूर्ण है। विषया, जीवन को विगलित करने वाली भाषा का परिचय इन पीढ़ियों में किया गया है—

योगी के मोहन हूँ बँठी राजा के घर रानी।

अपनी अनुभूतियों के समीप के लिए कवियों ने जिस व्यंग्यमा प्रणाली को रोज किया है उसमें भावनाओं का सहज और स्पष्ट रूप व्यंजित हो उठा है। उस काल के साथ तात्काल्य भावना-स्वाप्त की अनुप्रेरणा को वे रति-मूलक कवियों के माध्यम से व्यक्त करते हैं। इस सम्पर्क की रचनाओं में बौद्धिकता की पैदा तात्काल्य कवियों के स्वरूप की प्रभावता निकली है और चिन्तन उनकी सुषुप्त भावनाओं में प्रकट होकर मूर्त हो उठता है। कवि इन सम्पर्कों में स्तु सापेक्ष कवियों का आचार ग्रहण कर अपने दर्शन की मूल अनुभूतमा का गम्भीरतम प्रस्तावन करता है और अपनी सामना को लोकजीवन के अधिक निकट जाने का प्रयत्न करता है। अपने 'राम' या 'निरंजन' से एकात्म होने की अनुभूति को व्यक्त करने के लिए कवि ने गोमि (विद्यापति) पर जाने बासी मारी की भावनाओं का आचार ग्रहण किया है—

जायौ पिन पौने के हो मन होत उसास ।
 बाकिया उठावे बीजा बत्तौ हो बहै कोई न हमार ।
 पर्याँ तोरी तायौ कहवा हो कोलिपर दिनवार ।
 मिछैबै छत्रिया छहेसर हो, मिला कुस पतिवार ।
 बास कबीर बाब निरगुन हो साधु कर के बिचार ।
 गरम-गरम सीसा करिबे हो जाय हाट न बाजार ।

कबीर । ३ २६।२७४ ।

तात्काल्य जीवन की अनुभूति-स्रोतता का आचार ग्रहण कर अनुराग के संशयो से रक्षाकृत पदों की व्यापकता से कवियों ने काम्यपरा की अवधारणा की है। इस सम्पर्क की रचनाओं में रसकाल के स्वरूप का नैसर्गिक विधान मिल जाता है। संसार की सापेक्षता को या 'इन मन' की अवस्था के लिए कवियों ने 'भैरव राग' से बलु-सापेक्ष विधान का नियमित प्रयोग किया है। 'उनमन की स्थिति में प्रवेष्ट करने की प्रक्रिया के लिए 'दिव के घर जान के पर्वो के रूप में कवियों ने चित्रित किया है—पारी को पुनरी और इनकन का आत्मा को 'बपु' के रूप में ग्रहण किया गया है—

नैहर में बाय छायाय बाय चुनरी ।
 ऊ रगरेबबा के मरम न जानी
 नहिं मिले धोखिया कौन करे उबरी ।
 तनके कुँडी जान के छौरन
 छाबुन मेंहग बिचाय मा नगरी ।
 पहिरि खोड़ि के बली समुररिया,
 मोर्वा के लोभ कई बड़ी पुहरी ।
 कई कबीर सुनो माई साबो,
 बिन सतगुर कबहुं नहिं सुपरी ।
 कबीर २०७ ।

इस प्रकार 'मोरे साहब की ऊँची अट्टरिबा कपूत में त्रियरा कपि' 'बासम बायो हमारे रोह रे' 'सखिया, हमहुं मई बिस्मासी' 'आयो बोन बिछ सतायो' 'अब मैं जान गली अठिछासी' 'रितु कामुन त्रियरानी' 'कोई पिपासे मिळावे' जामि क्षीरक पर्वों में रति-मूलक भावभारा परदर्शन का संक्षिप्त मिश्रता है। यद्यपि इन पदों में प्रस्तुत है निर्जन के साथ तात्काल्य भावना के संस्थापन-स्वरूप की प्रस्तावना, परन्तु अप्रस्तुत में निहित वस्तु-सापेक्षता अनुभूति की व्यापक पृष्ठि भूमि में साधारणीकरण की समता को अति बड़ बना देती है। कबीर, सत्य तुरती तथा अन्य सत्तों के पदों में इस प्रकार की एकक्यता मिलती है। कभी वे बिरहिणी के समान सन्नेस भेजते हैं और कभी मीन बेचना को सहते हैं। कभी बिरह मुबंगम इनको बस सेठा है। सुम्बर बास की बिरहिणी बल कर भस्म हो जाती है। बाहु की बिरहिणी के नेत्र ठास-ठजइया के समान बपी के बल से मर नए हैं। लघु बलपर को नूमिका बारन कर डेते हैं।

इस प्रकार अपनी साधना की व्यञ्जना के लिए सत्य मयूर भक्ति को साधन रूप में ग्रहण करते हैं। एकान्त प्रेम तथा अनन्य साधना से इनकी बाकी मुक्तित्व है। प्रेम की रीति में ये सत्य तुरती के समान चातक का रूप धारण करते हैं। इनके मन में प्रेम का 'पछाबज' निरन्तर बजता रहता है। प्रेम का रङ्ग मजीठ का रंग है। जीवन धर्म व्यापारों को साधन रूप में ग्रहण करने के कारण ही सत्य लोक जीवन को संस्पर्धित कर सके थे और लोक मानस में

अपने व्यक्तित्व का संस्थापन कर सकें वे । उनकी भावियों में लोक मानस अपनी रचनेवालों का प्रतिबिम्ब पा लेता है ।

जीवन-सापेक्ष व्यापारों से अपनी भावनाओं के भूत विभाग के प्रयास के कारण ही अपनी चिन्तन-बारा का साधारणोत्तर के कर सके हैं । इसके अतिरिक्त युग-जीवन के विविध स्वरूपों के प्रतिबिम्ब भी इनकी रचनाओं में मिल जाते हैं । इस सन्दर्भ में कबीर तथा अन्य सन्तों ने कपड़ा-बुझने के विविध रूपों के द्वारा साधना की विविध भूमिकाओं की प्रस्तावना की है । 'बीनी बीनी अरिया' 'बोकहा बीनहु हो इरिनामा जाके धूर नर मुनि घरे प्याना । दीर्घक रचनामें इस जहरेय की रचनामें है । इसी सन्दर्भ में संगीत के उत्तराव रूप के अलग-अलग विविध अनुसृष्टि और साधना-ममि की व्यञ्जना के लिए प्रयुक्त है—

जद सूर दोइ लूबा करि हूँ, चित बैतनि की डाँड़ी

मुपमन संती बाजब छापी इहि बिधि जिय्यां पाँड़ी । १३३।१२९

सन्तों ने निम्न-निम्न पक्षों एवं साधियों की रचना प्रिय-प्रिय मानसिक स्थितियों और भाव भूमिकाओं में की है । कबीर ने मन की परिवर्तनशील कक्षा का उल्लेख किया है । इस प्रकार विविध मानसिक स्थिति में संसार की लक्ष्मणमूर्ता और जीवन के नस्तर रूप का भावामक वर्णन वे करते हैं । इस सन्दर्भ की रचनाओं में जीवन की सरलता के बटु सत्य का उत्पादन कर कलि छानना और बारादना की उपवीणता का सम्पादन करते हैं । नस्तरता के मध्य वे नस्तर भूमि का प्रतिपादन करते हैं ।

यन पूना-पूना बिरे जगन में, बँसा नाठा रे ।

जब को बीरे का माया रोबे बहिन रोबे दस माया ।

तेरह निन तक तिरिया रोरे करि करे घर जाना ।

बार पखी बगगी बपामो चड़े काठ की बीदी ।

बारो कोने भाग बपारि, कंकि निना जल हीरी ।

दाद करे जल सापड़ी केग करे जल पासा ।

कंचन लंगो दावा जरी करे कोई न बापा बापा ।

अभिव्यञ्जना प्रणाली और भाषा

छन्दों की अभिव्यञ्जना प्रणाली में छन्द्या भाषा का प्रयोग छिड़ों और नाचों की परम्परा के अनुरूप ही है। कतिपय छन्द्या छन्दों का परिचय इस प्रकार है —

छन्द	छामस्य अर्थ	छन्द्या अर्थ
चुनरी अम्बिया	चुनरी चोछी	छरीर

मोरी चुनरी में परि बयो बान पिया (१६५ १२३), नैहर में बाय लगाय
बाय चुनरी (२०७-३४३) कुछक्षित अम्बिया काहे न मोबाई ११६४ ३२३ ।

चौद	चौद	प्रसा
सूर्य	सूर्य	उषाम

महि पट बन्ना महि पट सूर, महि पट गाबे अलहद तुर । २३१।६ ।

बन्द न सूर दिवस महि रबनी तहाँ सुरत ली साई । २७।२३४ ।

हँस हँस आत्मा व्यक्ति सापेक्ष मन

हँसा करो पुणतन बाव, अब ही हँसा जेत सवेरा बबो हमारे साथ । २४०।१२।

पखेक पखेक (पछी) (१) सापेक्ष मन आत्मा (२) निरपेक्ष मन

या ठरिबर में एक पखेक बीच सरस बह डोले रे । ३० ।

बबल बल रूप गलि रेखा, बेठा प्रेम के छोही रे । ३०।३३६ ।

सिध	सिध	अपेक्षित मन
भाव	भाव	इच्छियाँ

एक अर्चना देखा रे भाई ठाका सिंह बराबे गाई लोका ८२।११ क० प्र०

गंगा यमुना गंगा यमुना ईसा सिंहा

कबीर बंय, यमुन के बन्दरे सङ्ग सुंम के पाट ।

तस्वर तस्वर काया

तस्वर एक अनन्त धर साज पुहुप रच भरीबा । कबीर १८१ ।

करहा करहा मन

मृति बिमाऊँ अपनी करहा छाग मुनिष की बारी रे ।

क० स० पृ ११२ ।

हस्ती (गज) यत्र उन्नत स्थिति को प्राप्त मन

गुप्त प्रसाद मूर्ध के नाक हस्ती बाधे जाही । क० घ० पृ० ६१

मेढक मेढक अतन मन

मीढक सोखे सोप पहरइया (क० प्रभावस्ती)

हंस हंस उत्तमन-उत्तमन

कह कबीर स्वामी मुख सागर हंसहि हंस मिसावये ।

अहेरी अहेरी सायक

बोझ्यरे तुम्हरी वन कबलि मेरो मन अहेरा खेले ।

क० घ०

नामना के विविध रूपों को प्रस्तावित करने के लिए सन्तों ने क्यक का प्रयोग किया है । इनमें से प्रामां सभी क्यक परम्परा प्राप्त हैं । इस सन्दर्भ में 'मूर्ध' और 'बन्धना' को तून्वी के रूप में चित्रित किया गया है । केतमा को दण्डो का पर्याय माना गया है सुपुष्पा को तन्वी के रूप में ग्रहण किया गया है ।^१ कबीर ने कलासी का क्यक प्रस्तुत करते हुए ज्ञान को गुह्य ज्ञान को मनुष्य, ब्रह्माणि को अग्नि रूप में चित्रित किया है । कबीर ने जुगहाड़े का क्यक अति व्यापक रूप में ग्रहण किया है । इस रूप के साधारण पर भी कबीर को जुगहाड़ा छिद्र करने का प्रयास किया जाता है । इन विषय का प्रयोग अन्य सन्तों ने भी किया है ।^२

छिद्र साहित्य के सन्दर्भ में इस ओर संकेत किया गया है । वहाँ मेढ दण्ड को पर्वत का पर्याय माना गया है । उसके गिअर पर 'प्रमा' नैरात्म्य (नारी)

१—गुह करि ज्ञान ज्ञान कर मनुष्य, सब माछी करि भारा

मुदमन माछी सहजि समोनी पीबै पीबन द्वारा । पद ७२।

२—धुन धुन धुन डाढ़ू अब मन को, मै बुनियां सतपुत्र चरन को ।

मन बराब मुख कर गई, काम बिनोले बाले गौई ।

कई साक कुनही लुबि पाई नाब दुता ले दान बड़ाई ।

गिरधराज । कृष्ण काव्य ।

निवास करती है। मेव पर्वत का यह रूपक सन्तों में व्यापक रूप में प्रयुक्त हुआ है। यहाँ मेव विस्तर को सूर्य विस्तर के रूप में स्वीकृति मिली है।^१—

हरिया बड़िया गमल को मेव उमड़ा डण्ड।

हरिया मेव उमड़ा करि पहुँचा किहुटी संघ।

हुल भावा मुख उमड़ा मिटा मर्म का बुल ॥

हरिया प्रत्यावधी।

सन्तों ने अभिव्यञ्जना विधा के अन्तर्गत उल्टेबाँधियों का प्रयोग विशेष रूप में किया है। 'सिद्धों' उत्पत्त्याद् 'भाषों' की रचनाओं में भी उल्टे बाँधियों का प्रयोग किया गया है। इसका उत्प्रेक्ष्य किया जा चुका है। कबीर की विवेचना के सगरम में भी इसकी जगहों की गई है। परस्पर विरोधी बर्णनाएँ उपमानों के माध्यम से इनका संस्मृत निवास किया जाता है। परन्तु विरोधी उपमानों में बर्ण की संस्मृतता निरन्तर विद्यमान रहती है। यथा —

नेया बिच नरिया डूबती जाइ।

इस प्रकार विरोधी मापा के प्रयोग से ज्ञान या छावना विधि की व्यञ्जना की यह एक निश्चित विधा है।^२

१—बीणापा ने भी इसी प्रकार के रूपक का प्रयोग करते हुए 'सूर्य' को तुंबा 'कनका' को तार और 'कस्या' को ध्वनि-रूप में ग्रहण किया है।

२—जुसाई के रूपक का प्रयोग सान्तिपा ने (जयौप २६) में किया है।

हरिया मेव उमड़ा करि पहुँचा किहुटी संघ।

हुल भावा मुख उमड़ा मिटा मर्म का बुल ॥

हरिया प्रत्यावधी।

३—इस परम्परा का प्रादुर्भाव बौद्धों में हुआ। सिद्धों को यह विधा बौद्ध परम्परा से प्राप्त हुई, जिसका विकास भाषों और सन्तों में निरन्तर है। 'दीप निकाय' के 'ठेविग्ग-जुत्त' तथा 'मग्गिम निकाय' में अन्य-वेषु की जगहें मिलती हैं। यहाँ ब्राह्मणों के धर्म को अन्यो के बौद्ध की उपमा दी गई है—एकमेव को मानव। अन्य वैष्णवमं मग्गे ब्राह्मणं भासित (इस प्रकार हे भागवत ! ब्राह्मणों का कथन अन्यो के बौद्ध के समान है।) प्रचलित बर्ण के विपरीत बर्ण विधान का तात्पर्य उल्टेबाँधी है। परम्परा वाली विचार-धारा के विपरीत बर्ण प्रतिपादन की परम्परा भी बौद्ध प्रयोग है।

—वेदिए, ध्यान सम्प्रदाय पृ० १८२।

कबीर तथा अन्य सन्तों ने सन्ध्या भाषा का प्रयोग किया है। पिछों और भाषों के समान इस सन्दर्भ की भाषा में भी अर्थों की अविशेषिता है, प्रथम अविषा और द्वितीय प्रतीक अर्थ की जिसे हम सन्ध्या-अर्थ भी कहते हैं। ऊपर कथित सन्ध्या शब्दों का निबरण दिया गया है। इस प्रकार सन्तों ने भी अवि-
शेषिता-आधित वाणी जबका अविप्राम-मुक्त वाणी का प्रयोग किया है। इसका प्रयोग 'प्रातिपिष्टिक' या 'अविशेषिता' में भी मिलता है।^१

सन्त परम्परा पंजाब से लेकर पूर्वी बंगाल तक प्रसरित रही है। अतः सन्तों की रचनाओं में मिला मिल बोलियों का आवागम प्रचल होता रहा है। अपिकांश सन्तों की बोलियों के संग्रह और उनके लिखित करने का प्रयत्न इनके अनेक वर्षों पराप्त किया गया है। अतः इनकी रचनाओं की भाषा का स्वरूप निष्पन्न सम्भव नहीं है। इनकी भाषा में अनेक बोलियों का मिश्रण है। परन्तु भाषा विज्ञान के सुत्रों के आधार पर हम इनके मूल श्रोतों तक पहुँच पाते हैं। प्रत्येक कवि पर उसकी अन्त-भूमि और आकाश-भूमि का विशेष प्रभाव मिलता है। पर्वत के शिखरों में सन्तों की भाषा पर अन्य स्वानों की भाषा का यथेष्ट प्रभाव पड़ा है। अतः इनकी भाषा के विषय में हम प्राथमिक निर्णय नहीं ले सकते हैं। कबीर में पंजाबी और राजस्थानी तब यथेष्ट भाषा में मिलते हैं, और इस कवन का सर्वत्र प्रमाणपूर्वक नहीं किया जा सकता कि इनकी भाषा विद्युत्पूर्वी है। इनकी भाषा में पंजाबी, जबकी भोजपुरी के राज्य रूप ही नहीं अपितु प्रियाप भी पाये जाते हैं। बाबू की भाषा राजस्थानी है। परन्तु सन्त कवियों ने ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। सुन्दर दास ने साहित्यिक ब्रजभाषा का प्रयोग किया है।

काव्य विधान की दृष्टि से सन्तों की रचना में मुख्य परम्परा में जाती है मुख्य दो कला में मिलते हैं, छापी (दोहा) और पर। छापीयों अंगों में

१—एतत् सन्ध्याय वृत्त—'इतकी अविशेषिता बहु कर कहा गया है 'एतत् सन्ध्याय नाभिर्न शीतलो भूतुः स्वयमोति।' इस प्रकार वृत्त अविशेषिता मुख्य वाणी का प्रयोग वृत्त इत्यादि में मिलता है। पिछों भाषों तथा अन्य में इस विधा का प्रयोग काल-अन्त से महाकाल से विकसित मिलता है।

विभक्त हैं। इनमें ज्ञान सामाजिक जाबोक्ता, सिद्धांत निष्पन्न के तत्त्व प्राप्त स्वस्व मिलते हैं। इनमें शुष्क उपदेश और ज्ञान-तत्त्व की प्रचान्ता है। परमेय हैं, मिल मिल राग-रागिणियों में परिगुह हैं। इनमें भाव और वनुराग-तत्त्व सबक प्रेयनीयता से विभूयित हैं। ये आत्मानुमतिपूर्व हैं। रमैनी में जीपाइयों के पश्चात् बोहे के बत्ते का नियोजन मिलता है। यह अपभ्रंश में उपलब्ध 'कड़वक घौली' की परम्परा की विधा है। सिद्धों और नाचों की छन्द-परम्परा का पालन सन्त साहित्य में द्रष्टव्य रूप में मिलता है। कबीर बाहु तथा अन्य सन्तों ने 'पयार' छन्द का प्रयोग किया है। इस छन्द का प्रयोग सिद्धों और आशिक रूप में नाचों ने भी किया है—

माधव जल की पिमास न बाह ।
 बल मह वनिनि छठी बजिकाइ ॥
 तु बजनिनि हउ बल का मीनु ।
 बल मह रहत बजहि बिनु बीनु ।
 तु फिर हउ सुबटा तोर ।
 बनु मँबात कहा करे मोर । कबीर ।

सन्तों की रचनायें अपनी पूर्ववर्ती परम्परा की रचनाओं के समान मिल-मिल राग-रागिणियों में लिखी गई हैं। जिनमें 'गुजरी' 'गउड़ी' 'बनासिरी' 'मसहार' तथा 'भैरव' प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त 'राग ब्रह्मान' 'राग सारंग' 'राग माक', 'राग टोड़ी' 'राग केवारी' 'रागघोरठि' आदि में भी रचनायें मिलती हैं।

कबीर तथा अन्य सन्तों की रचनायें अंगों में वर्गीकृत हैं। उदाहरण स्वस्व कबीर की रचनाओं का वर्गीकरण 'मुन्देर को अंग' 'सुमिरण को अंग' 'मिरह को अंग' 'परचा को अंग' 'रस को अंग' 'बनौ को अंग' 'मन को अंग' 'सहज को अंग' 'मनि को अंग' रूप में हुआ है। इस ओर सन्त साहित्य के स्वस्व विस्लेषण के अन्तर्गत संकेत किया गया है कि 'अंग' का अर्थ 'कारण' होता है। यह ब्रह्म प्रयोग है। इस प्रकार का प्रयोग सर्वप्रथम बुद्धधर्म द्वारा हुआ था। 'पाणि त्रिपिटक' में भी इसका प्रयोग 'कारण' के अर्थ में हुआ है। इस प्रकार 'मुन्देर को अंग' में मुन्देर को कारण बना कर साझी ली जाती है। इसी प्रकार 'परचा को अंग' के अन्तर्गत 'आत्मानुमति या 'स्व-संवेद्य ज्ञान' को कारण बनाकर साझी ली जाती है।

[स] सूफी प्रेमास्थानक काव्य धारा

प्रेमास्थानक काव्य का स्वल्प विश्लेषण

बायसी और उनके परवर्ती कवियों की रचनाओं का आधार ग्रहण करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने निर्मूल साहित्य का एक उपविभाजन 'प्रेम मार्गी छांदा' दीपक से किया है। कबीर तथा अन्य सन्तों ने निर्मूल को उपासना ध्यान के माध्यम से की है। बायसी एवं इनके वर्ष के अन्य कवियों ने निम्न-उपासना के लिए प्रेम-फल को स्वीकार किया। अपनी उपासना अथवा साधना प्रणाली में इन्होंने सूफी सिद्धान्तों का आधार ग्रहण किया। भक्ति-पद्धति के निरूपण में इन्होंने सूफी सिद्धान्तों की मूल चेतना को स्वीकार किया और अपनी पद्धति के निरूपण के लिए इन्होंने आकाशानन्द काव्य प्रणाली के अनुबन्धों को स्वीकार किया। ये आकाशानन्द काव्य मुक्त प्रणय अथवा प्रेम की सन्धिना पर अवलम्बित हैं जिसकी कथा भारतीय लोकजीवन से ग्रहण की गई है। इसकी लौकिक कथाएँ अलौकिक सचिदा के शार को ग्रहण किए हैं। और ये अन्धोक्ति-मूलक अथवा समकारमक हैं।

काव्य-रस को दृष्टि से सूफी प्रेमास्थानक काव्य एक मिश्रित भारतीय परम्परा के अन्तर्गत आते हैं। इनमें अक्षरार्थ और अवहट्ट तथा परवर्ती काल के आदिकाल के अन्तर्गत कालकाय चरित-काव्यों की अनुषेचना पूर्णतः सुरक्षित मिलती है। चरित-काव्यों की विधा पर ही सूफी प्रेमास्थानक कवियों की रचनाएँ स्थिती गई हैं। इस सम्प्रदाय की रचनाओं में 'अउमचरित' 'अय कुमार चरित', 'वेदिनाह चरित' 'मदिबयल बहा', 'बसहूर चरित' 'करकण्ड चरित' आदि विविध कृतियाँ हैं। इसकी सभी पुस्तक के आरम्भिक पृष्ठों में ही सूफी है। इन कृतियों में भी लौकिक कहानियों पर अलौकिक तथ्यों का आरोपण दिखता है। इन कृतियों में नायक-नायिका के प्रेम का उद्भावन युग-वर्षा चित्र-दर्शन अथवा प्रत्यक्ष वर्णन से होता है। नायकी द्वारा निरूपित जीवन की यात्राएँ भी इनमें निरूपित मिलती हैं। यहाँ तीन केवल हम और है कि हिन्दी सूफी प्रेमास्थान काव्यों में जाने पूर्ववर्ती आकाशानन्द काव्यों में प्रत्यक्षिकार रूप में बहुत कुछ उपासना

क्रिया है। कवन की स्पष्टता हेतु इन दोनों के समान तत्वों का निरूपण यहाँ किया जा रहा है—

(क) प्रेम संबिंदता इन दोनों में पायी है।

(ख) अपभ्रंश के चरित काव्यों में जैन धर्म के तत्वों का समावेश मिलता है। सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों में सूफी सिद्धान्तों का निरूपण मिलता है।

(ग) सिंह-यात्रा की उद्भाषणा इन प्रेमाख्यानक काव्यों में निमित्त रूप से मिलती है।

(घ) अपभ्रंश की कड़वक खेती पर ही सूफी प्रेमाख्यानक काव्य रचे गए हैं। इसके अतिरिक्त स्वयं में प्रिय मूर्ति-वर्णन स्वयं द्वारा भावी दुर्बलता की पूर्ण सूचना, नायक या नायिका का रूप परिवर्तन मुनि का शाप नायक-नायिका के मिलन में हंस या मूक भावि का योग—इन रूढ़ियों के प्रयोग अपभ्रंश और हिन्दी, इन दोनों में समान रूप से मिलते हैं। इस प्रकार प्रेमाख्यानक काव्यों को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है।

(१) असूफी प्रेमाख्यानक काव्य — 'माचवानल काम कन्दला' 'सीतावह कहा' (प्राकृत) 'डोला मावरा घूहा' 'असन सेन पद्मावती कथा' 'मधुमावती' (अनुभूत पाद्य), 'रसछतन' 'छारपासदापूज' (सत्यवत्स सावर्णिन कथा) 'मितावत' 'नन्दमन' 'यमकुमार चरित', 'मेमिताह चरित' 'अवितवत्त कहा' 'असहूर चरित' 'अविसवत्त कहा', 'कटकह चरित' इत्यादि इस वर्ग की विशेष रचनाएँ हैं।

(२) सूफी प्रेमाख्यानक काव्य — अमीर खुसरो ने (१२५५-१३२५ में) ईरान के फारसी कवि निजामी के 'खंजरे' नामक 'सम्प' (पाँच सततियों का संग्रह) के आधार पर अपने 'सम्प' की रचना की थी, जिसमें 'घोरी-खुसरो' और 'मजनु-सेना' को विशेष उपाधि मिली। खुसरो की एक अन्य महत्वपूर्ण 'खुसरोनी खिज्राना' भी प्रसिद्ध है। ये रचनाएँ महत्त्वपूर्ण होती हैं फारसी भाषा में हैं। अतः प्रस्तुत सन्दर्भ में इनकी विवेचना अपेक्षित नहीं है। प्रस्तुत सन्दर्भ के अनुसार सूफी साहित्य द्वारा जो दो वर्गों में विभक्त करते हैं।

(क) हिन्दी में उपलब्ध रचनाएँ। इनमें फारसी बहुरों की परम्परा का संरक्षण मिलता है और इनकी कविता-भूमि ईरानी या सामी है। इस परम्परा में 'अरम राब ओ परम' (सन् १४६० ईस्वी, निजामी) 'अमीरतुल अमर'

(साह हूसेन-सन् १९२३) संयुक्त न मरी कृत्रमास (गवासी सन् १९२९),
 'सगरस' (मुहम्मदगद्दी सन् १९३९ ई०) 'बन्द बान' महिमार (सन् १९६०),
 (मुहम्मदी) मामि रचनायें आती हैं।

(ख) अरबी में दोहा और चौपाई की कड़कट दीसी में रचित सूफी
 प्रेमास्वात्मक काव्य। इनका परिचय वहाँ प्रस्तुत किया जाता है। मलिक
 मुहम्मद जायसी ने पद्मनाभ में अपने समय तक की अपने सन्दर्भ की कृतियों की
 सभी एक रूप में की है—

विक्रम रौसा प्रेम के बारा। सपनाबति बहै यबन पठारा।
 मधु पास मुगबाबति कामी। यवन पुर होइया बेरागी।
 राजकुँवर केचकुर मएउ। मिरपाबति कईं बोगी मएऊ।
 साध कुँवर सांकास्य बोनु। मयुमाबति कर किन्हु विमोमु।
 प्रेमाबति कईं मुरसर छाभा। अया लसि अनिरव वर बोधा।

इस प्रकार जायसी के पूर्व 'सपनाबती', 'मुगबाबती', 'मिरपाबती', 'मयुमाबती',
 'प्रेमाबती' और 'अया जवुल्ल' से सम्बन्धित प्रेमास्वात्मक काव्य रहे या कुछ
 थे। इस उल्लेख से यह स्पष्ट होता है कि जायसी मौलाना साहब कुछ
 जन्मासन (जन्मावत) से परिचित नहीं थे। हिन्दी प्रेमास्वात्मक काव्य पर विचार
 करने वाले आलोचकों ने 'जन्मावन' को सूफी प्रेमास्वात्मक परम्परा की कृति
 कहा है। परन्तु वास्तविकता यह नहीं है। इस सम्बन्ध में आदिकाल के
 अन्तर्गत विचार किया जा चुका है।

जन्मावन के सन्दर्भ की बंफला में उल्लेखित जैना उ-कोर जन्माणी नामक एक
 कृति मिलती है। इसका रचना काल सत्रहवीं शताब्दी है। इसके रचयिता
 शैलज कामी और जल जल नामक कवि हैं। इनके रचयिताओं ने यह स्पष्ट
 कहा है कि सायन नामक कवि को मिलात कृति पोहारी भाषा में उपलब्ध है
 जिसका जायस उद्धृत कर इस काव्य की रचना सम्भव हुई है। 'मैना सत' और
 'छत्री मैना-उ-कोर जन्माणी' को क्या में माध्य भी है। परन्तु क्या के पोषाण
 की दृष्टि से इन कृतियों में समान नहीं है। सम्भवतः जन्मा वा जायस
 उद्धृत कर यह प्रकाशित किया गया कि मैना सत साहब द्वारा 'जन्मावन' पर
 आधारित है। परन्तु यह सत्य नहीं है। यह एक खटान कृति है। यदि हम

दोनों कृतियों की कथाओं की समीक्षा करें तो इस उत्प का स्पष्टीकरण हो जायगा । सुनिष्ठों के प्रेमास्मानक काव्यों के समान यह नव्योक्ति अथवा रूपक नहीं है । इसकी कथा इतना बर्णक नहीं है ।

कवि और काव्य परिचय

कुतुबन — कुतुबन प्रसिद्ध सूफी फकीर शेख बुरहान के शिष्य थे । ऐसी बारणा प्रचलित है कि वे जौनपुर के साहू हुसैन के पत्निष्ठ थे । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इसका समय संवत् १३५० निर्धारित करते हैं । इसकी कृति 'मुयाबती' है । इस कृति के रचनाकाक का उल्लेख कवि ने इस रूप में किया है—

बहीम होत पन्नाह से सठी । उहीम और चौपाई मठी ।

इसमें पाँच चौपाइयों के कड़वक के साथ एक बोहा के बत्ता का कम है ।

अश्वपति का राज कुमार कंचन पुर के राजा बन मुरारि की कन्या मुयाबती पर मुग्ध होता है । वह राजकुमारी के निष्ठ पङ्क्तित है । राजकुमारी चढ़ने की विद्या में पारंगत है । वह उड़कर अम्यन जमी जाती है । विजय में राज कुमार योधी बन कर प्रवेश करता है । मार्ग में समुद्र से परिबेष्टित एक पर्वत पर पहुँच कर वह इतिमयी नामक मुन्बरी की रक्षा एक राक्षस से करता है । राजा इतिमयी से विवाह कर बैठा है । वह मुयाबती से भी मिलता है । एक दिन बाछेट में उसकी मृत्यु हो जाती है । दोनों रानिबों छली हो जाती हैं । यह कृति सूफी प्रेमास्मानक काव्य-परम्परा की रचना है इसका स्पष्ट निर्धारण नहीं हो पाता है ।

मंझन — मंझन ने मधु मासती नामक काव्य की रचना की है । इस कृति के रचना-काक का उल्लेख कवि ने प्रस्तुत पंक्तियों में किया है—

तन नौ से बाबड अब भए । छती पुस्तक कवि परिहरिगए ।

तब हय बिय उपजी अविभाजा । कथा एक बाँवठे रस भाजा ।

गुरस बचन बहनी छहि मुने । जोर जो किछु हिरवै मह गुने ।

×

×

×

×

मंत्रित कथा गुरम-रस मुनहु कही सम गाह ।

इस (?) परत बाजार जो बेतहु कवि मुंह कैहु छपाइ ॥

मधु मासती । ३३।३६

इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट होता है कि हिबरी सन् १५२ सन् १५४२ वा वि० संवत् १६०२ में इस कृति की रचना हुई थी। इस प्रकार यह बामसी के 'पद्मावत' के पदवात् की कृति है। बामसी की प्रस्तावना ग्रहण करते हुए आचार्य युक्त ने अपने इतिहास में इस प्रकार का निष्कर्ष प्रदान किया है—'मंकन की रचना का बहसि ठीक-ठीक संवत् श्राव नहीं हो सता है, पर वह निस्संदेह है कि इसकी रचना बिक्रम संवत् १५२० और १५२५ (पद्मावत के रचना-काल) के बीच और बहुत सम्भव है 'मृगावती' के कुछ पीछे हुई है।' परन्तु कवि के कबल से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि यह बामसी के पदवात् की कृति है। ग्रन्थ के आरम्भ में कवि ने अपने समय के दासक का उल्लेख इस रूप में करता है—

साह सलैम पगव मा भारो । बेह' मूजी बर मेरिमी सारी ।

जो रे कोवि पैरी पौं चापै । इंदर कर इंद्रासन कापै ।

× × × ×

प्रिपिमी पति गुन बाहुक इस मो चारि निधान ।

पर भुब मंजन सापुस्त बल गलिष्ठ मुबान ।

मयुमासती । १०।१० ।

इस प्रकार सलीम द्वाह के समय इस ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ। सलीम दोरघाह मूर का पुत्र था। वह दोरघाह की मृत्यु के पदवात् १५२ दिवरी १५४२ ई० में दासक हुआ। मंजन सेल मुहम्मद बीस के शिष्य थे—

सेल बड़े बय बिबि निमारा । प्यान पबब औ बय मपारा ।

संवरि माउं परसे जो जाबे । प्यान साम होद पाप मंबाबे ।

× + × ×

बुब दरसन गुल मोबल बनि मनि रिस्ति जो माउ ।

जो बुब सिखउ रिस्ति प्रसिदाने सो चारिहु जय राउ ।

मयुमासती । पु० १३।१३

× × × ×

जान दाह गुल और न जाता । इस ओ चारि मंन निपिराना ।

बिजयो हारन न पट नहि लाई । मंजन यदि लीन मो माई ।

दोनों कृतियों की कथाओं की समीक्षा करें तो इस सत्य का स्पष्टीकरण हो जायगा। सुफियों के प्रेमाख्यातक काव्यों के समान यह 'अयोध्या' बचना बपक नहीं है। इसकी कथा द्वयर्पक नहीं है।

कवि और काव्य परिचय

लुटुबन — लुटुबन प्रसिद्ध सूफी फकीर शेख बुरहान के शिष्य थे। ऐसी धारणा प्रचलित है कि ये बोनपुर के साहबुसेन के शिष्य थे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इसका समय संवत् १५२० निर्धारित करते हैं। इनकी कृति 'मृगावती' है। इस कृति के रचनाकाल का उल्लेख कवि ने इस रूप में किया है—

बहीब होत पन्नाह से सठी। वहीम और चौपाई गठी।

इसमें पाँच चौपाइयों के कड़क के साथ एक बोहा के बत्ता का रूप है। अग्रपिरी का राज कुमार कंकन पुर के राजा रूप मुरारि की कन्या मृगावती पर मुग्ध होता है। वह राजकुमारी के निकट पहुँचता है। राजकुमारी उड़ने की विद्या में पारंगत है। वह उड़कर अम्बन जाती जाती है। विधोय में राज कुमार योगी बन कर भ्रमण करता है। मार्ग में समुद्र से परिबेष्टित एक पर्वत पर पहुँच कर वह बहिमची नामक मुन्वरी की रक्षा एक राघव से करता है। राजा बहिमची से विवाह कर लेता है। वह मृगावती से भी मिलता है। एक दिन आसोट में उसकी मृत्यु हो जाती है। दोनों रातियाँ सती हो जाती हैं। यह कृति सूफी प्रेमाख्यातक काव्य-परम्परा की रचना है इसका स्पष्ट निर्धारण नहीं हो पाता है।

मंसून — मंसून ने मधु मालती नामक काव्य की रचना की है। इस कृति के रचना-काल का उल्लेख कवि ने प्रस्तुत पंक्तियों में किया है—

सन तो से बावन बर मए। सती पुस्त कलि पवित्रिए।
तब हम बिय उपजी बसिमाका। कथा एक बावड रम माका।
पुरत बचन कहवाँ छहि सुने। और जो किछु हिरै मह सुने।

× × × ×

बंझि कथा मुरत-रत सुनहु कहीं सम पाइ।
हृस्व (?) परत जासर जो बैसहु कवि मुंह भेहु छपाइ ॥

मधु मालती। ३३१३६

इस सन्दर्भ से यह स्पष्ट होता है कि हिजरी सन् ११२ सन् १२४२ वा वि० संवत् १६०२ में इस इस्ति की रचना हुई थी। इस प्रकार यह जामघी के 'पद्मावत' के पदेबाद की कृति है। जामघी की प्रस्तावना बहुत कठोर हुए आचार्य मुक्त ने अपने इतिहास में इस प्रकार का निष्कर्ष प्रदान किया है—'मेघन की रचना का अंशवि ठीक-ठीक संवत् भात नहीं हो सका है पर वह निम्नलिखित है कि इसकी रचना विक्रम संवत् ११५० और ११६५ (पद्मावत के रचना-काल) के बीच और बहुत सम्भव है 'मृगावती के वृक्षपीछे हुई है।' परन्तु कवि के कथन से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि यह जामघी के पदेबाद की कृति है। ग्रन्थ के आरम्भ में कवि ने अपने समय के शासक का उल्लेख इस रूप में करता है—

साह जसेम जगत् मा सारी । बेइ भूजी बर मेरिनी सारी ।

औ रे कोलि पैरी पौ जाये । इंदर कर ईश्वरान करीये ।

× × × ×

प्रिमिमी पति युम साहक दस ओ बारि निबान ।

पर भुज मंगल सापुस्त मरम मरिस्ट भुजान ।

मधुमाळटी । १०।१० ।

इस प्रकार खलीम साह के समय इस ग्रन्थ का प्रचयन हुआ। खलीम घोरसाह मुर का पुत्र था। वह घोरसाह की मृत्यु के बदबाद ११२ हिजरी १२४२ ई० में शासन हुआ। मेघन दोह मुहम्मद चौथ के विषय से—

सैक बड़े जग बिधि निमारा । प्यान परम ओ बप अपारा ।

संवरि नाउ परसे ओ आये । प्यान काम होइ पाप नंबानी ।

× + × ×

गुह बरसन गुह बोवन कति कति बिस्ति ओ साज ।

ओ गुह सिख बिस्ति प्रतिपाली ओ बाधिनु नून राव ।

मधुमाळटी । पृ० १३।१३

× × × ×

बान बाइ मुल और न बाता । दस ओ बारि मीत सिबिदाता ।

बिस्मो इरक न कठ मरि जाई । संतत रहि कील ओ पाई ।

बाता भी गुन पाहक गीस मुहम्मद पीर ।
 हुई कुछ निरमक सापुस्त गल्ल परिस्ट पेनीर । १५।१५।
 कवि रचना की सूमिका में परम शक्ति की बखाना करता है ।

प्रेम प्रीति सुखनिधि के बाता । दुई बग एकोकारि निधाता ।
 बुधि प्रगास ताही तुम ताई । तुम अस्तुति जे करै गोसाईं ॥

× × × ×

वीति मुकल क बट महुं जनबन क्य बेलास ।
 एक बीमि कहु ताहि के कंसे अस्तुति करै इबास ।

मधुमास्ती १।३

कवि परम शक्ति को मुहम्मद का पर्याय मानता है । मुहम्मद ख़ुष्टि का हेतु है । सम्पूर्ण बग उसकी शाखा प्रधाका के रूप में है । परम शक्ति बल्लभ है । मुहम्मद उसी का प्रकट रूप है (८ ६) । इसके परचात् कवि अपने मित्रों का परिचय देता है ।^१ इसके परचात् अपने युगीन शासक शाह ख़ाकीम की प्रशंसा करता है (११ १३) । तत्परचात् अपने गुरु शख बीस मुहम्मद का स्मरण करता है और उसकी प्रशंसा करता है (१४ १५ १६ २२) । 'मधुमास्ती' की कथा का आरम्भ करते हुए कवि निम्नलिखित रूप में प्रस्तावना करता है—

पंडित गुनु बिनती यह मोरी । बिनबौ पाम कामि कर बोरी ।
 बी भस बचन सराहि न आई । मोछ न दुरुख दोस कलाई ।
 बी पढ़ि बचन भसा किछु जेवहु । दोस साह जग मोछ जेवहु ।

× × ×

मूकल बी रे जेवैरहि तैहिक ताहि मोहि सोच ।
 बलि बग ताकर बीतरज भरन साह यह पोच । ४१ ।

१—बब गुनु चहुँ भीत के बाता । छत त्रिपाठ सास्तर के बाता ।
 प्रथमहि बजावकर परबानी । छत मुर बचन मंत्र त्रिय जाना ।
 दूजे उमर निपाठ के राजा । जेइ मुत त्रिह हुना बिधि काजा ।
 तीजे अण्ड राठ उठमाणा । जेइ रे मेर बैर का जाना ।
 चौजे बली छिन्न बहु गुनी । दान सार जेइ तापी दुनी । १२१।

कथा का आरम्भ कवि ४४ वें कड़वक से करता है। कथा के आरम्भ में कवि इस ओर संकेत करता है कि इस कृति में प्रस्तावित कथा हापर की है, जिसे कवि ने कल्मिनुग में भाषा-बद्ध करने का प्रयास किया है—

बादि कथा हापर बलि आई । कल्मिनुग सह भाखा के पाई ।
मदह कने विरिगपर सोहाबा । मनु कबिलामु सतरि मुई छाबा ।
मुकम मानु तहं रात बछाना । ली बंड साठ दीप जम बागा ।

×

×

×

विधि परसाव पुर सबही निधि अन मन ह्य मीमंत ।
मुठ विठा पे रैनि नि राजा के चित नित । ४४।३७ ।

इस कृति की कथा इस प्रकार है—मनोहर कनेमिरि मनु नगर के राजा सूरजमान का पुत्र था। औरह बर की अवस्था में एक निषा में उसके स्व-सौन्दर्य पर मुग्ध होने के कारण मधुमालती की सखी अप्सरा सखे निहित अवस्था में यद्वागपर की राजकन्या मधुमालती के पास से गई। मधुमालती को देखकर इसके मन में उसके प्रति बुरी बन्ध की प्रीति बाधित हुई। राजकुमारी के प्रति राजकुमार में भी आकर्षण भाव बाधित हुआ।

मेम-सूरजन के परचात् अप्सराएँ राजकुमार को पुन उसके स्थान पर पहुँचा देती हैं। राजकुमार और राजकुमारी में विप्रलम्भ-संविन्ना बाधित हुई। एक प्रातः कुमार ने मधुमालती की प्राप्ति की अनुप्रेरणा से एक तथा परिग्रह के साथ प्रस्थान किया। बार मास तक बकमान में यात्रा करने के पश्चात् बल-मान जमर में पहुँचा। बल-मान लंगित हो गया। केवल कुमार बच रहे। लघु की लहरो से वे तट पर आ गए। कुमार ने समीपवर्ती वन में प्रवेश किया। वहाँ एक चौखन्दी मिली, जिसमें एक घोंघा पर एक कुमारी मिली। वह कुमारी चितविषयंत नगर के राजा चित्रसेन की कन्या थी। उसका नाम पेमा था। उसका अपहरण एक राक्षस ने किया था। पेमा मधुमालती की सहेली थी। कुमार राजस का बच करता है, और पेमा की रक्षा कर चितविषयंत नगर जाता है। वहाँ मधुमालती राजकुमार से मिलती है। परन्तु अपनी माता के भय के कारण मधुमालती कुमार को सोठे छोड़ जाने पर के क्षिप्त प्रस्थान करती है। मधुमालती अपने वन पर रह गई, और राजकुमार के प्रति बलका आकर्षण मति प्रबल बाधेन बाधित करवा जाता है। उसकी माँ क्रोध से उस पर नर के साथ

दाता

दुई कृप

कवि रचना

मेम

पुनि

है। यह कहकर तारापत्र नामक एक वस्तु
है। यह पत्ती (मधुमासती) को पिंजर बद्ध
है। यह कहकर से अस्सी व्यापार प्रस्तुत कछी है। मधु
है। यह कहकर से अस्सी व्यापार प्रस्तुत कछी है। मधु
है। यह कहकर से अस्सी व्यापार प्रस्तुत कछी है। मधु
है। यह कहकर से अस्सी व्यापार प्रस्तुत कछी है। मधु
है। यह कहकर से अस्सी व्यापार प्रस्तुत कछी है। मधु

होते होते हैं। पुर्ल मारि वन छती कराई।

होते होते हैं। सही मरिहि ने कलि बौतारेते।

होते होते हैं। जो मरि बिण सो मरे न काऊ।

होते होते हैं। जो बग वेम सजीवन पाऊ।

होते होते हैं। देम अमिज ने पारज बन्ध। सेम काल तेहि बाब न छाया।

होते होते हैं। वेहि जो वेम बन्धे गरिब करे कपाऊ।

होते होते हैं। जोबी सहज दर वेम

[३१]

मंथन ने अग्नि के लिए मो

है। यह कहकर से अस्सी व्यापार प्रस्तुत कछी है। मधु

है। यह कहकर से अस्सी व्यापार प्रस्तुत कछी है। मधु

है। यह कहकर से अस्सी व्यापार प्रस्तुत कछी है। मधु

है। यह कहकर से अस्सी व्यापार प्रस्तुत कछी है। मधु

है। यह कहकर से अस्सी व्यापार प्रस्तुत कछी है। मधु

है। यह कहकर से अस्सी व्यापार प्रस्तुत कछी है। मधु

विस्ति बूझ निरहा बग आ

वेम परारप बगल अमोला।

X

X

वेम विना बाके पट बारा।

५

प्रेम की स्थापना के लिए संभ्रम योग-मार्ग का भी प्रस्तावन करते हैं, जिसके अन्तर्गत प्राणायाम स्थापना की जरूरत के करते हैं—

बस धनु करम बाध जिसु भारी । निरमुक्त रूप बसु ली सारी ।
 तब ली उत्प मेहि गहि स्वासा । अगिनि हीय के डोल बसासा ।
 धरकै पवन अगिनि तगरई । ली कष्टक काबा कर भारई ।
 ली कनि सरब मात बुनि होई । ली लहि कस्त गहै खु सोई ।
 ली ठेही बुनि ली कब बाधा । ताही जोति मीसर कबिछासा ।

३२ ।

इस संदर्भ में संभ्रम भाषों में उल्लेख काया-धमना प्रणाली की जरूरत भी करते हैं । काया विरहित स्थापना के प्रति वे आपह प्रवृत्त करते हैं । इनके अनुसार संपाति में ही आत्मसाक्षात्कार सम्भव है । इस परिमूर्ति में ही निर्गुण, निरंजन की अनुभूति सम्भव हो सकती है । यही आत्मा से आत्मा (स्वमन से परमन) का परिचय हो सकेगा (३३) । प्रेम में आत्मसमर्पण से ही अमरत्व-साम सम्भव है । जो प्रेम में अवस्थित है, वह कालजयी है—

अमर न होत कोइ अप हारै । मरि लो भरै तेहि मीबु न मारै ।
 प्रेम के जाणि छुई कोइ बाधा । लो अप अनमि काष्ठ छेड़ बाधा ।

×

×

×

मिरि तु क (कल) अदित होइ गया । निहृष अम्बर ताहि के मया ।

३३ ।

‘मधुमाळती’^१ के सम्पादक डॉक्टर माताप्रसाद मुत्त इस ‘मर कर अमर होने की आरणा’ पर ही ‘मधुमाळती’ में भक्ति-स्वल्प का निर्धारण करते हुए कहते हैं ‘मधुमाळती की सारी कहानी इसी प्रकार मर-मर अमर होने की कहानी है । मरुतों की कुत्रा से प्रथम साक्षात्कार होने के बाद ही सुखावस्था में नायक नायिका से अलग कर दिया जाता है और वह मरण के कष्टों का अनुभव करता है । देवी के प्रसन्नो से उसे नायिका से पुनर्मिलन का लोभान्ध प्राप्त होता है किन्तु नायिका की माता दोनों को सुखावस्था में अलग कर लेती है, और वह पुनः

१ मधुमाळती—सम्पादक—डॉ० माताप्रसाद मुत्त-विश्व प्रकाशन
 इलाहाबाद, १९६९ मूलिका पु० २५ २६ ।

बस फँसती है। वह पत्नी होकर जड़ पाती है। छड़कर ताराचन्द नामक एक अन्य राजकुमार के गड़ पर वह जा बैठी है। वह पत्नी (मधुमासती) को पिंजर बंद कर देता है। मधुमासती (पत्नी) ताराचन्द से अपनी ब्याह प्रस्तुत करती है। मधु-मासती को पुनः मानव शरीर में परिवर्तित करने की चेष्टा में वह सफल होता है। मनोहर के साथ मधुमासती का विवाह होता है। वह मधुमासती को लेकर अपने राज्य छोड़ता है। कवि कथा के समसंहार में कहता है—

उत्पत्ति भग बेठी बलि आई। पुर्न मारि वन सती करवाई।
मैं छोहम्ह बेहि मारि न पारेतै। सही मरिहि बे कलि औतारेतै।
सस मुनी संसार सुमाळ। जो मरि लिए सो मरे न काळ।
सकति कास तेहि निजर न जाळ। जो बग पैस सखीबन पाळ।
पैस अमिम बे पाइब बासा। सैस कास तेहि जाब न छांसा।
बेहि मी पैस खमी सौं परिबे करे कपार।
औंधी सह्य बल कभी से निमहि पैस खबार।

[५१८ ब]

मंजु ने बलि के लिए प्रेम-रत्न की स्वीकार किया है। उनका स्पष्ट वक्तव्य है कि प्रेम संसार में अमोक्ष रत्न है। जिसके हृदय में प्रेम है उसका संसार में जन्म बारम्बार करना भय है (२८)। जिसके हृदय में प्रेम रेखा से संस्मिष्ट बिज बन जाता है वह सृष्टि को ब्रह्म-मम देखता है। और इस ब्रह्म ज्ञान से वह आत्मवर्धन करता है (३०)। प्रेम की तीव्र अनुभूति के क्षिप्ते निरख अपेक्षित है। निरख का सुबन सृष्टि के साथ-साथ ही हुआ। प्रेम-दीप से आसोक्षित अन्तस् में अमरता का बास है—

सिस्टि मूछ निरखा जग भाबा। पै जिनु पुब्ब पुन्नि को पाबा।
पैम पशारव अपठ अमोक्षा। तिहूँ पैबि जगहु यह बोबा।

×

×

×

×

पैम दिया जाकें बट बारा। तैहि सभ भावि अन्त उजिबारा।
निरख बीठ बेहि के पन् होई। सरा अमर रहे मरे न सोई।

२१।२५।

प्रेम की साधना के लिए संन्यत योग-मार्ग का भी प्रस्तावन करते हैं, जिसके अन्तर्गत प्राणायाम साधना की जगह ले करते हैं—

बस मुनू करम बात किमु आई । निर्गुन रूप बैसु ली साई ।
 उन सौं उरख सेहि गहि स्वासौ । अगिनि होय न होख बतासा ।
 मरकै पवन अगिनि उरमरई । ती कटक काया कर बाई ।
 ती लमि सरख वात भुनि होई । ली लहि कस्त महुँ रहु सोई ।
 ली तेही भुनि मो कइ बाधा । ताही जोति नीतर कबितासा ।

३२।

इस संदर्भ में संन्यत जगहों में उपलब्ध काया-साधना प्रणाली की जगह भी करते हैं । काया विचित्रित साधना के प्रति वे आग्रह प्रकट करते हैं । इनके अनुसार सबाणि में ही आत्मसाक्षात्कार सम्भव है । इस परिदृष्टि में ही निर्गुन निरंजन की अनुभूति सम्भव हो सकती है । यही आत्मा है आत्मा (स्वमन से परमम) का परिणय हो सकेगा (३३) । प्रेम में आत्मसमर्पण से ही अमरत्व-लाभ सम्भव है । जो प्रेम में अवस्थित है, वह कालजयी है—

अमर न होत कोइ जय हारै । मरि जो मरे तेहि मीचु न मारै ।
 पैम की भावि सही कोई जाँचा । सो जय जगमि दाख तेई जाँचा ।

×

×

×

विरिधु क (फल) अंजित होइ यमा । निहचै अमर ताहि कै भया ।

३३।

‘मधुमाच्छी’^१ के सम्पादक डॉक्टर माताप्रसाद गुप्त इस ‘मर कर अमर होने की साधना’ पर ही ‘मधुमाच्छी’ में भक्ति-स्वरूप का निर्धारण करते हुए कहते हैं ‘मधुमाच्छी की सारी कहानी इसी प्रकार मर-मर अमर होने की कहानी है । अप्सराओं की कृपा से प्रथम साक्षात्कार होने के बाद ही मुताबत्ता में नायक नायिका से अलप्य कर दिया जाता है और वह मरने के कष्टों का अनुभव करता है । पैसा के प्रयत्नों से उसे नायिका से पुनर्मिलन का सीमाव्य प्राप्त होता है किन्तु नायिका की माया दोनों को मुताबत्ता में अलप्य कर देती है, और वह पुनः

१ मधुमाच्छी—सम्पादक—डॉ माताप्रसाद गुप्त-विम प्रकाशन
 एतावत १९६१ मूमिका पृ० २१ २६ ।

भरण के कष्टों का अनुभव करता है। ऊसका तीसरी बार का भरण ही नासिकी से मिलन उसकी जन्म-जन्मान्तर की धार्कष्या का पूर्ण करता है और उनका स्वाधीन मिन्न प्रमाणित होता है।

काव्य विम्व की दृष्टि से यह कड़वक सेवी की कृति है। इसके प्रत्येक कड़वक में पौष चौपाइयो के परचाव दोहों के रूप में एक चत्ता का रूप है। जायसी कुतबन तथा इस सन्दर्भ के अन्य सूफी कवियों ने रानियों के सती होने का उपक्रम किया है, परन्तु मंगल इस प्रकार की योजना नहीं करते हैं। इसका स्पष्टीकरण करते हुए मंगल ने कहा है—

उत्पति जय भेटी बलि आई। पुख्य मारि ब्रह्म सती कराई।
मैं छोड़न एहि मार न पारेउँ। सही मरिहि जो कलि बीतारेउँ।
संसार मुझाऊ। जो मरि दिए सौ मरे न काऊ।

इस प्रकार सती प्रसंग का सन्दर्भ इस कृति में नहीं ग्रहण किया गया है।

सूफी प्रेमाख्यान का काव्यों में विप्रसन्न-सविदना निरूपण के सन्दर्भ में बारहमासा, की योजना का पाठन एक निश्चित परिपाटी के रूप में किया गया है। यह परम्परा अपभ्रंश के चरित तथा प्रेमाख्यानक काव्यों में भी प्रस्तावित की गई और इस परम्परा का स्पष्ट संरक्षण आलोच्य कृति में भी किया गया है। मंगल ने बारह मासे का बारम्भ सावन से किया है। यह अंश 'कामुन' के छीपल-स्वप्न को प्रस्तावित करता है—

कामुन सती निपति मुनु मीरी। बिरह अपिनि तन जरि मा होरी।
तकह पाठ कर रहा न गाऊँ। जानहु बरे बिरह के बाऊँ ४०२।३२७।
बुपर माय सखी मुनु बाठा। थिऊ बिरेस मोहि बिरह संधाठा।
किमि निरबाही दुखई सिपाखा। पित न रोज मैं जोवन बाधा।
बिरह मारि पर बैसी बाला। रैन नमै सिर बरिछै पाला।^१

४०५।३३८

१ (क) कवि बनारसी दास ने 'मधुमाकली' और 'मधुमाकली का संस्मरण करते हुए कहा है वे इन पोषियों का पाठ रात्रि में (बौलपुर में) किया करते थे—

तब घर में बैठे रहैं बाहि न हाट बजार।

मधुमाकलि निरपावलि पोषी बोइ उबार।

ते बाँबहि रजनी समै बाबहि गर दस बीस।

बाबहि बर बाबहि करहि, निज उठि देहि बसीन—

अर्थ कबानक—नामुरामदेमी पृ ३८।

भास्विक मुहम्मद जायसी — भीर इंसान देहधारी ने अपनी मयनबी 'रिमुजल
मारिब' (र मुजे-उम-आरफीन) में जायसी के विषय में इस प्रकार लिखा है—

ये अस्तिक नाम मुहम्मद जायसी ।
बहुति परमावत बिहौने है छिपी ।
मैं आरिफ से बहु ओर साहब कमाऊ ।
इनका बक़्श ने किया बर्यात्तु हाऊ ॥
होके मुफ़्ताक बुलबामा सिदाब ।
ताके हो सोहबत से तनही कैवबाब ॥

—जायसी प्रचारिणी पत्रिका भाग २१।१९४४ ४५ ।

इस स्मरण के अनुसार जायसी बक़्श के समकालीन थे । परन्तु जब तक
की उपलब्ध संपन्न ग्रामग्रियों में से किसी के आधार पर इसका स्मरण नहीं होता
है । 'बाख़िरी क़दाय' नामक कृति में अपने जन्म-काल का उल्लेख करते हुए
कवि ने कहा है—

मा अवतार भीर मन सबी । तीस बरिस कमि ऊपर बरी ।

अर्थात्, मेरा जन्म ६०० ख़िबरी (घम् १४९२) में हुआ था और तीस वर्ष
के पश्चात् (अर्थात् में) मैंने काव्य प्रवर्णन किया । इस ग्रन्थ में जायसी एक ज्ञान
मद्वबपूर्य बट्ना का उल्लेख करते हैं —

आफत उचत बार विमि ठामा ।

मा भूकम्प जलत बहुलाना । बाख़िरी क़दाय ४।१२।

इस प्रकार जायसी का जन्म नहीं सही ख़िबरी (१४९२-१४९४) के जन्म
हुआ । परन्तु इससे बहु वर्ष नहीं लिखा जा सकता कि जायसी ६०० ख़िबरी के
आरम्भ में ही हुए थे । जायसी ने ऊपर की पंक्ति में एक भूकम्प का उल्लेख
किया है । इस वर्णन के आधार पर यह वर्ष किया जाता है कि जायसी के जन्म
समय पर भूकम्प आया था । इतिहास के प्रमाण के आधार पर यह उल्लेख
शामासिक सिद्ध नहीं होता है । परन्तु यहाँ एक प्रसन्न स्थल होता है ।
भूकम्प जायसी के जन्म के बख़्श पर आया था क्योंकि जब वे 'बाख़िरी क़दाय'
की रचना कर रहे थे, उस समय भूकम्प आया था । मेरी धारणा है कि जन्म-

प्रणयन के समय के भूकम्प का संस्मरण जायसी अपनी इस कृति में करते हैं। स्पष्टीकरण के लिए मैं पुनः इन पंक्तियों को प्रस्तुत करता हूँ—

भा अबतार मोर नब सयी । तीस बरस अर कबि बरी ।

आकत सबत बार बिधि ठाना । भा भूकम्प बकत अकुसाना ।

‘भूकम्पक’ की घटना का सम्बन्ध ‘तीस बरस अर कबि बरी’ से ही ज्ञात होता है। मनेर शरीफ से ‘पद्मावत’ की जो प्रति प्राप्त हुई है उसमें अक्षरावट की पोबी भी सम्मिलित है। यह प्रति साहजिकी काकीन है। ‘अक्षरावट’ की पोबी के जन्म में १११ हिजरी का संस्मरण है। यह मूल प्रति की प्रतिकृति है। अतः ‘अक्षरावट’ का रचना-काल १११ हि० सन् १२०२ ई० है। इस समय एक भूकम्पक घाने का वर्णन इतिहास ग्रन्थों में मिलता है।^१ यदि इस निष्कर्ष को हम स्वीकार करते हैं तो जायसी का जन्म सन् १४०५ ई० में हुआ था। जायसी ने ‘पद्मावत’ की रचना तिलि का संस्मरण इस प्रकार किया है—

सन लव सै सैतासीस वई । कथा आरम्भ बैन कबि कई ।

पद्मावत मोठा प्रसाद पुत । १८।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रन्थावली के प्रथम संस्करण में १४७ पाठ स्वीकार करते हैं, परन्तु द्वितीय संस्करण में वे १२७ (१५२०) पाठ स्वीकार करते हैं।

इस तिलि से शेरशाह के राज्य संवत् १ से सामञ्जस्य स्थापित नहीं हो पाता है। श्री मोपाल चन्द्रविहारी की प्रति में १२७ पाठ है। कथा मवन (कबी अक्षरों में) की प्रति में ‘सन ली सै अतीस अब रहा’ पाठ मिलता है। बिहार शरीफ खान पुस्तकालय की सुरक्षित प्रति में १४८ पाठ है। परन्तु ‘पद्मावत’ में प्रस्तावित उसके रचना-काल से जायसी की जन्म तिलि का स्पष्ट संबंध नहीं मिलता है। इस प्रकार यदि हम इस विचार को स्वीकार कर सकें कि भूकम्प की घटना ‘आखिरी कलाम’ की रचना के समय घटी थी, तो जायसी का जन्म लगभग १८१ हिजरी या सन् १४७५ ई० में हुआ था। सन् १२०५ में उन्होंने ‘आखिरी कलाम’ की रचना की, तथा सन् १५२१ में उन्होंने ‘पद्मावत’ की रचना की। यदि ‘पद्मावत’ के रचना-काल के रूप में ‘सन लव सै सैतासीस’ को स्वीकार करते हैं,

तो वह निश्चय निकलता है कि 'पद्मावत' का प्रथम आवृत्ति में सन् १९५२ ई० में आरम्भ किया। प्रथम सन्दर्भ के अनुसार 'पद्मावत' के रचना-काल के समय इनकी आयु ५७ वर्ष की थी, और द्वितीय के अनुसार 'पद्मावत' के रचना-काल के समय इनकी आयु ७७ वर्ष की थी। इस सम्बन्ध में 'पद्मावत' के सन्दर्भ में विचार किया गया है।

आयसी का स्थान

आयसी के जन्म-स्थान का निर्धारण भी अभी तक सम्भव नहीं हो सका है। 'पद्मावत' (स्तुति छन्द) में आयसी ने 'आयस' का उल्लेख इस प्रकार किया है।

आयस नगर बरम अम्बानु। तहाँ जाइ कवि कीन्ह बसानु। १।

इस सन्दर्भ से यह वर्ष निकाला जाता है कि 'आयस नगर' आयसी के जन्मे (सूफी सम्प्रदायक के लिए) बरम-स्थान था। किसी अन्य स्थान से इस धर्म स्थान पर जाकर कवि आयसी ने 'पद्मावत' का प्रथम किया। 'बाबिरी कलाम' में भी कवि आयसी ने इसी प्रकार कहा है—

आयस नगर और अम्बानु। नगर क नाम आदि उम्बानु।

तहाँ दिवस दस प्युने आयस। मा योराय बहुत मुझ पामस। १४२। १०।

इस सन्दर्भ में भी आयसी ने किसी अन्य स्थान से जाकर आयस में बसने का उल्लेख किया है।

आचार्य रामकृष्ण शुक्ल की यह धारणा है आयसी आयस के ही रहने वाले थे। 'पद्मावत' का आरम्भ उन्होंने आयस में ही किया था। कुछ अरबि के लिए वे आयस से कहीं अन्यत्र चले गए थे। फिर आयस जाकर इन्होंने इस छन्द की पूर्ति की। परन्तु कतिपय विद्वानों ने इस प्रकार के पाठ की प्रस्तावना की है— 'तहाँ जाइ कवि कीन्ह बसानु'। दैसिए-आयसी प्रन्नावली डॉक्टर जाता प्रसाद गुप्ता, पृ० ११४। 'आयस नगर बरम अम्बानु। तहाँ जाइ कवि कीन्ह बसानु। 'पद्मावत' पृ० २२, डॉ० बालदेव शरण अग्रवाल। १०। पूर्वकाय शास्त्री ने आयसी को आयस-नगर के कंचागा मुख्तार का निवासी माना है (पद्मावती मुद्रिका पृ० १)। इस

प्रकार की भी प्रस्तावना की गई है कि जायसी माजीपुर के निवासी थे। वहाँ से वे मानिकपुर (प्रतापगढ़) में अपने निवास में आकर बस गए थे। (देखिए—
नागरी प्रचारिणी पत्रिका; भाग १४, संख्या १२२१)। इस प्रकार जायसी के
जन्म-स्थान के विषय में हम स्पष्ट निर्णय नहीं ले सकते हैं।

ऐसी अनुभूति है कि जायसी कुरुप और बाने थे। इस का उल्लेख जायसी
ने स्वयं इस प्रकार किया है—

एक लपन कवि मुहम्मद बुनी । सोइ बिमोहो बेइ कवि सुनी ।
बाई बइस बन बिधि बीतारा । बीन्ह कलंक कीन्ह उखिबारा ।
बन भुम्हा एकहू भेनाही । उवा सुक अस मखलन्ह माहा ।

X

X

X

X

एक नेन अस बरपन बी ठेहि निरमस भाउ ।

सब बपबंत पाबं गहि, मुल बीमहि के चाउ ।

जायसी ने इस कवय की आशुति भी की है—‘मुहम्मद बाई’ रिति ठनी एक
छरबन एक बीसि’ ।^१

जायसी की गुल-परम्परा

सत्तिक मुहम्मद जायसी निजामुद्दीन औमिया की सिप्य-परम्परा में थे। इस
परम्परा की दो शाखाओं का उल्लेख मिलता है प्रथम—मानिक पुर-काल्पी,
द्वितीय—जायस की। इस परम्परा को इस रूप में प्रस्तावित किया जाता है—

१—इस प्रकार की अनुभूति है कि दोस्ताह अपने दरबार में जायसी को बैठ
कर हंसा था। जायसी ने प्रश्न किया—मोहि का हंसहि कि कोहरहि ? अर्थात्
यह हंसी मुझपर है अथवा तुम्हारे पर (सुबल कलौ) पर। दोस्ताह इस पर
अत्यन्त क्रोधित हुआ।

शेख निजामुद्दीन जोरिया (मृत्यु सन् ११२२ ७२२ हिजरी) ।

शेख खिरामुद्दीन ।

शेख अलारुक्त हक ।

शेख कुतुब आरुफ (सन् १४१२) ।

शेख हसनमुद्दीन (मानिक पुर) ।

सैयद राजे (अमिरसाह) ।

शेख वानिमास ।

शेख मुहम्मद ।

शेख अलहसाह ।

शेख कुरहान (काल्पी) ।

शेख महरी ।

मलिक मुहम्मद जायसी ।

जायस

शेख अलारुक्त बर्होपीर ।

शेख हामी ।

शेख मुहम्मद या मुबारक ।

शेख कमाक

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार जायसी के दो मुख थे प्रथम—
मुदीरुद्दीन बीतीय—सैयद अलारुक्त । इन परम्पराओं का उत्तरेष्ट जायसी ने
‘पद्यावत’ में इस प्रकार किया है—

(१) सैयद अलारुक्त पीर पियारा । बेहि मोहि पन्थ बीन्ह उचियारा ॥

(२) मुख मोहिरी छेक मैं छेना । जले उठाइल बेहिकर खेना ॥

परन्तु ‘आखिरी कलाम’ में कवि केवल ‘अलारुक्त बर्होपीर’ का ही स्तवन
करता है । आत्मनिश्चया यह है कि सुन्नी सन्त अलारुक्त की मृत्यु ८०८ हिजरी
में ही हो चुकी थी । जायसी उनके अनेक वर्षों पश्चात् हुए थे । अस्तुस्थिति
के स्पष्टीकरण के लिए विद्वानों का ध्यान मैं इस ठप्प की ओर आकर्षित करना
चाहता हूँ । जायसी अपने को बर्होपीर निश्चयी की परम्परा के अनुगम्य मानते
हैं । यथा—सैयद अलारुक्त पीर पियारा, सिंह मोहि पन्थ दीन्ह उचियारा ।

जहाँगीर जोइ बिस्ती, लिहकलक जस बाँर ।

जोइ मलजुम बकत के, हौं उम्हके पर बाँर ।

अर्थात्, बिस्ती बंध के जहाँगीर संसार के स्वामी और कर्ममा के सम निष्कर्षक थे । बायसी अपने दो इसी परम्परा का सेवक मानते हैं । जहाँगीर की परम्परा में हाथी खेल हुए । इनके घर में दो दीपक-एल हुए, प्रथम से मुबारक और द्वितीय खेल कमान । इतना उल्लेख करने के पश्चात् बायसी अपने गुरु की जन्मी इस रूप में करते हैं—

गुरु मोहरी सेवक मैं सेवा । जलै उताइक बिन्दु कर सेवा ।

‘बिच रेखा’ में बायसी खेल मोहरी को ही अपना गुरु मानत हैं ।

महरी गुरु खेल बुरहानु । काकसि मगर ऐहिक मस्थानु ।

सो मोरा गुरु, हौं तिन्ह सेवा । घोबा पाप पानि गरि सेवा ।

चित्ररेखा ७०

बायसी ने ‘पद्मावत’ में अपने चार मित्रों का उल्लेख विशेष उत्साह के साथ किया है । मझि मूमुफ साकार कादिस सलोने मियाँ और बड़े खेल ।

१—चारि मीठ कवि मुहम्मद पाए । जोरि मिताई छीरि पहुँचाये ।

मुमुफ मलिक बी पंडित जानी । पहिले येर बात उन्ह जानी ॥

पुनि सकार कादन मति माही । छाँडे पान उमै मित बाही ।

मिया सलोने सिब जपाक । बीर खेल रज घाय मुम्भक ॥

खेल बड़े बड़ तिड बखाने । कइ बरेस सिखन बड़ बाने ।

चारिउ जतुर बसी गुन फड़े । बी संम जोय घोसाई गड़े ॥

बिरिख बी बासहि बन्दन पावा । बन्दन होहि मलय मिरि बावा ।

मुहम्मद चारिउ मीठि मिळि गए बी एकइ बित ।

एहि जग घाय निबाहा बीहि जय विधुरन कित ।

मुमुफ पट्टी ‘काँचना’ के निवासी थे । साकार कादिस ‘साकार पट्टी’ के निवासी थे । ये छाह्दहों के समय तक जीवित थे ।

—नामते प्रचारिबी पत्रिका, भाग २१ पृ० २१ २२ ।

बागसी की मूल्य अयेठी के निकट समीपवर्ती जंगल में किसी दुर्मटना के कारण १४१ हिजरी में हुई मानी जाती है ।

जायसी की रचनायें

[क] पद्मनाभत — पद्मनाभत के रचनाकाल का तस्मैय करते हुए बागसी ने लिखा है—

‘सत गो सौ सँजमिस् अई । कथा बरिष बेन कवि कई ।

इस शब्द के अनेक पाठान्तर विभिन्न विभिन्न प्रतियों में मिलते हैं अर्थात् ‘नौ सौ सँजमिस्, और नौ सौ पैंतासीस’ रूप भी मिलते हैं । इसकी कथा की जा चुकी है । इस सम्बन्ध में हम निम्नवात्मक निर्णय नहीं ले सकते हैं । इनमें से कौन सी तिथि उचित है इसका निपौरण सम्भव नहीं हो सका है । समस्या के समाधान हेतु किए गए प्रबन्धों में ‘नौ सौ पैंतासीस’ को ही रचना के मूल पाठ के रूप में स्वीकृति का आग्रह किया गया है । बागसी ने दिल्ली के मुल्तान और साह-साह के रूप में घेरसाह का अभिप्राय लिखा है^१ । परन्तु सन् १२७ में घेरसाह एक साधारण जामीन्दार था । उसने सन् हि० १४६ में बीठा में हुमायूँ को पराजित किया, तथा १४७ में कम्पौज में हुमायूँ को पुनः पराजित कर वह दिल्ली का स्वामी बना । अतः सन् १४७ हि० ही पद्मनाभत का प्रणयन-काल सिद्ध होता है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की यह धारणा है कि कवि ने सन् १२० में कथा का आरम्भिक बर्णन ही कहा था और उसे घेरसाह के सम्म पुरा किया । परन्तु १२७ में कथा आरम्भ करके घेरसाह की प्रशंसा का नया कारण है यह स्पष्ट नहीं हो पाता^२ ।

इस सम्बन्ध में यह भी प्रस्तावित किया गया है कि १२७ तिथि एक प्राचीन बंका जमाना में भी मिलती है । यह वही तिथि ‘पद्मनाभत’ की रचना-तिथि

१—घेरसाह दिल्ली मुल्तानु । बरिष खण्ड तपै अत मानु ।

X X X

औ बरिष बरब पुहुमिनिहि मारी । देखि पुहुमि सब सिमिहि सँमारी ।

बीन् असीस मुहम्मद करहु कुमहि कुन राख ।

पाठ साहि तुम बाग के बाग तुम्हार मुह्याक । १४।

२ देखिए-पद्मनाभत-भूमिका-पृ० ३० डॉ० माया प्रसाद गुप्त ।

है। इस प्रस्तावना को अस्वीकार करते हुए डॉ० माताप्रसाद गुप्त यह संकेत करते हैं, 'आत्माबोध का किया हुआ यह मापान्तर आत्मसी की अपनी प्रति के पाठ को लेकर किया गया है, ऐसा मापान्तरकार ने कहीं नहीं कहा है, और प्रतिसिद्धियों में एक पाठ ६२७ मिलता ही है इसलिए अधिक से अधिक नहीं कहा जा सकता कि उक्त मापान्तर 'पद्मावत' को जिस प्रति से किया गया है उसमें पाठ ६२७ था'। आचार्य शुक्ल ६२७ पाठ के समर्थन में कहते हैं 'कवि ने बोड़े से पद्य तो सन् १६२० में बनाये थे परन्तु ग्रन्थ को १६ या २० वर्ष पश्चात् घरवाह के समय में पूरा किया इसी से कवि ने मूलकाव्यिक किया गया (या) और कहा या प्रयोग किया है'। 'फारसी लिपि में सत्ताइस और सैतासीस में भ्रम हो सकता है। इस 'पद्मावत' का एक पुराना बंगला अनुवाद है इसमें भी जब से सत्ताइस पाठ माना गया है—'शेख मुहम्मद आलि बख्त रचित ग्रन्थ संख्या सप्तविंशतश्छन्द' यह अनुवाद बराकान राज्य के बजीर मयल ठाकुर ने सन् १९१० ई० के आठ-पाठ जाली-ठगाली नामक एक कवि से कराया था' १।

डॉ० माता प्रसाद गुप्त इस समस्या का भी समाधान प्रस्तुत करते हैं और लिपि की दृष्टि से भी सन् ६४७ के पाठको ही स्वीकार करते हैं २।

१ पद्मावत—भूमिका—पृ० १।

२ आत्मसी ग्रन्थावली—शुक्ल, पृ० १।

३ आत्मसी ग्रन्थावली भूमिका।

४ इस समस्या पर एक अन्य दृष्टि से भी विचार करना अपेक्षित है, यह है लिपि और लेखन-प्रणाली की दृष्टि से। प्रश्न यह पड़ता है कि सत्ताइस, सैता सीस और पैतासीस में से कौन सा पाठ ऐसा हो सकता है, जिससे लिपि जम्मित विकृतियों के कारण दोष हो पाठ बन गए होंगे।

सैतासीस को सैताइस कहने की भूल की गई, और इसका कारण यह है कि सत्त के फारसी लिपि में लिखे जाने पर बीच में आने वाले 'अलिख-ताम' को इस प्रकार लिखने की चञ्चल की कि बाद में उस चञ्चल से अनभिन्न लिपिक उसे सैताइस पढ़ने लगे। फिर तो सैताइस को और बाद के लिपिकों ने सत्ताईस की विरुद्ध समझ कर चञ्चल 'सैता में सीन के साथ छपे हुए थे' के भ्रमों को हटा दिया और पाठ 'सत्ताईस' कर दिया। सैतासीस से 'पैतासीस' भी इसी प्रकार फारसी लिपि की भ्रष्टियों के कारण बना पद्य-मह स्वप्न है कि रचना की लिपि मूल पाठ में 'नौ सै सैतासीस' ही रही—भूमिका पृ १, १।

डॉ० बामुदेव सरण अग्रवाल अपने सम्पादन में 'सप्तमी' से सैताबीस पाठ को स्वीकार करते हैं, परन्तु इसकी मुद्रिका में १२७ के पाठ के पक्ष में अपना मत देते हैं—'इच्छासिद्धि' प्रतियों के आधार पर १२७ पाठ सबसे अधिक प्रमाणित जान पड़ता है। पद्मावत की सन् १८०१ की मिति एक अन्य प्रति में भी ग्रन्थ रचना का १२७ मिला था। छोब रिपोट-बौद्धिक व वार्षिक विवरण १९३१-३२ में ने अर्प करते समय घोरघाह वाली युक्ति पर ध्यान देकर १४७ पाठ को सवीचीन दिखा था किन्तु अब प्रतियों की बहुत सम्पत्ति एक निश्चय पाठ की युक्ति पर विचार करने से प्रतीत होता है कि १२७ मूल पाठ था और बामुदेव ने पद्मावत का आरम्भ इसी तिथि में, अर्थात् ११२१ ई० में कर दिया था। ग्रन्थ की समाप्ति अब हुई कहना कठिन है किन्तु कवि ने उस काल के इतिहास की कई प्रमुख घटनाओं को स्मरण देखा था। बाबर के राज्य काल का तो स्पष्ट उल्लेख है ही (बाबरी कलाम ८१) उसके पश्चात् हुमायूँ का राज्यारोहण (१५१ ई०) बीसा में घोरघाह द्वारा उसकी हार (१४२ ई०) कन्नौज में घोरघाह की उस पर पूर्ण विजय (१४८ ई०) फिर घोरघाह का दिल्ली के सिंहासन पर राज्याभिषेक (१४८), ये घटनाएँ उनके जीवन काल में ही घटी।^१

इसी प्रकार की भावना की प्रस्तावना डॉ० अग्रवाल ने 'पद्मावत' का रचना काल सन् १२७ या १४७ खीरक रैख में किया है।^२

'पद्मावत' के २३ वें दोहे में बामुदेव ने जो कुछ अपने विषय में लिखा है उससे सुचित होता है कि वे काफी दिनों तक तपस्वी या सुफी साधक के रूप में बिदे हुए अपनी कविता करते रहे, और अपनी उस स्थिति की तुलना वे कुछ में बिदे हुए मानिक की स्थिति से करते हैं—

जेहि के मोल निरखु नै दायो । नहि तेहि रूप नहि तेहि दायो ।

करे मेख 'रहा' मा दया । भूर लपेटा मानिक जपर ।

अपनी विचार का प्रतिपादन करते हुए उन्होंने यह निष्कर्ष दिया है कि निम्नलिखित दोहा रचना की समाप्ति पर लिखा गया है—

१ पद्मावत—प्राक्कल्प ३३। डॉ० बामुदेव सरण अग्रवाल।

२ परिपद पत्रिका—(बिहार राज भाषा परिषद्-असूबा १९३२ ई०

मोहमर कवि जो प्रेम का ना तनु रक्त न मौमु ।

जेहि मुस देखा तेहि हंसा, मुनि कवि आए जौमु ।

डॉ० माता प्रसाद पुत इन निपक्यों पर आपत्ति प्रकट करते हैं । उनकी आपत्ति उचित लगती है ।

(१) जहाँ तक एक बीज काष्ठ तक (१८-२०) क्यों तक आपत्ति के तपस्वी या सूफी साधक के रूप में लिखे रहकर 'पद्मावत' की रचना करने की बात है, यह मेरी समझ में उद्भूत पंक्तियों से नहीं निकलती है । इन पंक्तियों का पाठ मेरी 'आमसो व्यावसी' में इस प्रकार है—

जेहि के बोक बिरह के पाया । कहूँ तेहि मुख कहाँ तेहि छाया ।

करे मेस रहइ भा तपा । बुरि ज्यटा मानिक छाया ।

(२) जहाँ तक उद्भूत दोहे के रचना के समाप्त होने पर लिखे होने की बात है, यह भी समझ नहीं निकलती, 'मुनि कवि आए जौमु' का अर्थ इतना ही है कि उसके काव्य को सुनकर (उन हंसने वाले की भाँसी में) जौमु आ गए । उसने उन्हें काव्य पूरा करके सुनाया इस प्रकार का आशय नहीं निकलता ।^१

'पद्मावत' की भूमिका में डॉ० बामुदेव चरण अग्रवाल संवत् १२७ के फल के समय न की दृष्टता में इस प्रकार की प्रस्तावना करते हैं 'मेरे मित्र श्री संभु प्रसाद बल्लूणा ने मुझे एक बुद्धि पूर्ण सुझाव दिया है कि पद्मावत के विविध हस्त लिपियों की तिथियाँ इन पद्याओं से मेस खा जाती हैं । हि० १२७ वालो कवि विहित प्रति मूल प्रति की । १३१ वाली प्रति २ की मूल प्रति हुमायूँ के राज्यारोहण की स्मृति-रस में जामु की गई । हि० १४३ वाली प्रति तिसरा माता प्रसादजी मृत्यु ने पाठान्तर में उत्केत किया है, रोखाह के चौथा पद्य में हुमायूँ पर विजय प्राप्त करने के अवसन्त जामु की गई, १४७ हि० वाली चौथी प्रति रोखाह की हुमायूँ पर कलौज-विजय की स्मृति का संकेत देती है । पाँचवीं या अन्तिम प्रति १४८ की है जब रोखाह दिल्ली के तख्त पर बैठकर राज्य करने लगा था । मूल ग्रन्थ जैसे का तैसा रहा । कैवल दाई

बल्लू बाबा अंत उस समय कोड़ा गया। 'पद्मावत' जैसे बह्मकाव्य की रचना के लिए चार-पाँच वर्षों का समय लगा हुआ। और भरसाह को बापूजीबाद देने वाली पटना के पदबाहू ही छोड़े बल्लू की प्रपंछा बाबा भय दूर में कोड़ा गया होगा।^१ परन्तु इस प्रकार के निष्कर्ष का अब तक कोई आधार न हो जब तक इस से किसी निष्कर्ष पर पहुँचना समस्या का समाधान नहीं प्रदान कर सकेगा।

इस प्रकार 'पद्मावत' के रचना-काल से सम्बन्धित चारों को निम्नलिखित वर्षों में प्रस्तुत किया जा सकता है—

(क) प्रियवंत और मुवाकर छिबेरी — इन्होंने सन् १४७ पाठ स्वीकार किया है।^२ वासी भी इस वर्ष के अन्तर्गत आते हैं।^३ डॉ० रामकुमार भार्गव तथा जे० शिरक भी इसी मठ का समर्पन करते हैं।^४ डॉ० माछा प्रसाद गुप्त इस मठ का समर्पन प्रबल सम्बन्धों में करते हैं।

(२) रामचन्द्र मुरु^५ सन् १२७ छिबेरी का समर्पन करते हैं। इस वर्ष में पण्डित चन्द्रबली पाम्पेय^६ इबारी प्रसाद छिबेरी^७, परतुराम बतुर्वेदी^८ डॉ० कमल कुल श्रेष्ठ^९ आदि विद्वान आते हैं।

(३) भारत कला बचन की कैंची सिमि की प्रति में १३६ पाठ मिलता है 'सन् १० से सत्तीस अव रहा। कया उरेहि बदन कवि कहा। इस प्रकार मिल मिल प्रतियों के आधार पर 'पद्मावत' की निम्नलिखित रचना तिथियाँ प्रस्तावित हैं १२७ हि० १३६ हि० १४२ हि०, १४७ हि०, और १४८ हि०।

१ पद्मावत—(प्राक्कल्प) डॉ० बापुदेव शरण अग्रवाल पृ० ३३ ३४।

२ पद्मावती—प्रियवंत तथा मुवाकर छिबेरी—पृ० ३२।

३ छिबुई साहित्य का इतिहास पृ० ८९ ४ पद्मसूतरी—पृ० की० शिरक मुद्रिका। ५ छिबेरी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—२३ २४।

६ बापसी प्रत्यावर्ती, द्वितीय संस्करण। ७ नापरी पचारिणी प्रविष्टा—नाम

१२ पृ० १४२ ८ छिबेरी साहित्य पृ० २४० ४१४६ नूरी काव्य संग्रह।

९ बलिङ्ग मुहम्मद बापसी पृ० २४ २५।

पद्ममावत की प्राप्त हस्तलिखित प्रतियाँ

(१) कामलबेस्य रिलेघन्स ऑफिस सन्तन की प्रति—यह २१८ पन्नों की प्रति है। इसके प्रतिलिपिकार इबाहुस्काह महमद खान मुहम्मद गोरखपुर के निवासी थे। दम्बाल ११०७ हि० में दीनानाथ नामक व्यक्ति के लिए यह प्रतिलिपि की गई थी।

(२) सरस्वती मयन पुस्तकालय (काशी) की प्रति—इसमें २१९ पन्ने हैं।

(३) एडिनबरा विश्वविद्यालय की प्रति—पत्र संख्या ३३८ है। इसका प्रति लिपि कामल सन् ११४२ हि० है।

(४) कामलबेस्य रिलेघन्स ऑफिस, सन्तन की प्रति—इसमें १८० पन्ने हैं।

यह प्रतिलिपि फारसी लिपि में है। इसका प्रतिलिपि-काल सन् १११४ हि० है।

(५) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की प्रति—सीधो में मुद्रित प्रति है। इसकी लिपि फारसी है। इसमें महमद बख्शी मुन्ती का सर्व्व अनुवाद भी संलग्न है। इसकी एक प्रति सेनद कल्ले मुस्तफा बाबली के पास भी है।

(६) पणियाटिक सोसाइटी बंगाल की प्रति—इसमें १६७ पन्ने हैं। इसकी लिपि फारसी है।

(७) सेनद कल्ले मुस्तफा की प्रति—यह प्रति ध्वष्ट है।

(८) मेजर खरीफ की प्रति—यह फारसी बजारों में मिली है।

इन प्रतियों के प्रतिरिक्त बिहार शरीफ (फारसी लिपि लिपि-काल १७२४) रामपुर राज्य पुस्तकालय की प्रति (इसमें प्रत्येक चौथाई के नीचे शायों का फारसी पंखीय भी दिया हुआ है। इसमें कदरनामा भी सम्मिश्रित है)। भाषा की दृष्टि से यह महत्व की है।

पद्ममावत का विषय पक्ष

पद्ममावत की कथा-अवतारना का परिचय देते हुए आर्यभटी ने इस प्रकार कहा है—

सग नी सँ सँताल्लि अहा । कथा अरम्भ बँन कनि बहा ।

सिहल दीप पदविनी रानी । रतन सेन कितउर यह जानी ।

बलाउहीन बैहरी मुल्लानु । रापव केतन कीन्ह बछानु ।

मुना साहि गढ़ सैकन बाई । हिनू तुरकन्ह भई सराई ।

बादि जन्त बस बापा नई । जिसि भापा बीतई कइ ।

इस प्रकार अपने कथा नियोजन में बामसी ने सत्य और कल्पना का योग किया है । इसमें इतिहास और लोकवाचा से उपलब्ध तथ्यों का समावेश है । रत्न सेन की पौरव वाचा, पद्मिनी का भावार्थ तथा योराबादल के भावार्थ मूलक बलिदान की घटना भारतीय इतिहास की अमर परम्परा है । परन्तु इनसे सम्बन्धित काव्य ग्रन्थों में इतिहास की स्पष्टता पर कल्पना और लोक जीवन में प्रचलित भारती मूलक जन्यता की भावना ही अधिक प्रचार पायी है । इस सन्दर्भ की एक कृति गोराबादल रा कवित' उपलब्ध है । 'पद्मावत' की कथा के थोठे के विस्लेषण के सन्दर्भ में इस रचना का मूल्यांकन अपेक्षित है । इस परम्परा की एक अन्य कृति है 'हिम पाल री बठपई' अत्यन्त कृति 'गोराबादल की वाच' भी इस सन्दर्भ में उपलब्ध है । इन कृतियों के सन्दर्भ में 'पद्मावत' की कथा का जब हम विस्लेषण करते हैं तो 'पद्मावत' के कथा-रत्न की ओर हमारा ध्यान आकर्षित होता है ।

'पद्मावत' के पुराण का इतिहास द्वारा समर्थन नहीं होता है । इस अंश में हीरामन ठोठे की कहानी तो पूर्वोक्त लोक जीवन से ग्रहीत है । उत्तरार्द्ध-कथा इतिहास पर आधारित है । पुराण-अंश लोककथा के रूप में जन-जीवन में प्रचलित रहा । इस प्रकार बामसी ने प्रमाणात्मक कालों की अनिवार्य आवश्यकताओं का प्रयोग पद्मावत में किया है ।

'पद्मावत' की कथा पद्मावती के जन्म से प्रारम्भ होती है । गन्धर्व सेन नरेस सिद्धक द्वीप का राजा है । राजन से भी बड़ा उसका बीरव है । ऐसे गन्धर्व सेन के घर में पद्मावती न जन्म बारन किया—

भए दस मास पुरि भै बरी । पद्मावति कथा बीतारी ।

बानहु सुख निरम हृति काढ़ी । सुख करा पाठि बहु बाढ़ी ।

भा भित्ति मोह निरक परबाहु । सब छविहार भएत कवि आसु ।

×

×

×

१ डॉ० माता प्रसाद मुत इस राजस्थानी परम्परा के सन्दर्भ में लिखते हैं । परन्तु यह कथा पुराण क्षेत्रों में भी लोक कथा के रूप में व्यापक रूप में ग्रहीत है । (पद्मावत मूमिका) । यह कथा हिम सिन्धु क्षेत्रों में हिम-हिम क्षेत्रों में प्रस्तावित है ।

पद्म पंख बेधा जग बाधा । भँवर पंख मए चहुँ पाधा ।

जैसे मय मर कथा जेहि सरि पूजि न कोइ ।

धनि सो देस क्युता बहौ जलम बस होइ । ३१ । गु० ।

पद्मावती बाखू बर्य में संयोग के योग होती है । पद्मावती को पिता सात छन्दों वाला ब्रह्म प्रसाद सन्निधो-सहित रहने के लिए देते हैं । वे सभी नव कामिकार्य हैं । अविवाहिता हैं और पद्मावती के पास इस रूप में हैं मानों कमलिनियों के निरुद्ध कुमुदिनियों निरुद्ध हैं—

सबे नवल पिय संग न सोई । कंचन पास बनू निगसहि बोंई ।

पद्मावती के सम्पर्क में एक शुक है । वह महा पण्डित है । उसका नाम हीरामन है । वह बैर-सास्त्र-ज्ञाता है—

बेवै बीनू पंखिहि बसि जोती । मैन रतन मुख मामिक भोती ।

कंचन बरन गुमा बसि सोना । मानहु मिला सोहागहि सोना ।

रहहि एक सैन बोट पड़हि सास्तर बेव ।

बहुता सीध डोलाबहि सुनव फाग तस भेर ॥२०॥

पद्मावती नव यौवना हुई । उसके बंगों के सुबाध से जगत् बड़ हो गया । अमर उस पर कुम्भ होने लगे राजा की सूचना मिसखी है कि शुक पद्मावती को मंत्रणा है रहा है । राजाज्ञा होती है कि सुए का बच कर दिया जाय । पद्मावती के आग्रह से बचि तो छोट बाठा है परन्तु शुक पद्मावती से निदा लेने की अविलापा व्यक्त करते हुए कहता है—

जेहि पर काक मँबारी नाचा । पंखी नाचें बीठ गहि बाँचा ।

पद्मावती अनेक कर्मों में अनुनय विनय करती है । परन्तु गुमा सोचता है—

गुमा न रही सुक विम्र अबहि काल तो भाठ ।

छतुर धई तु करिमा कबहु री बरै नाउ ॥

एक दिनस किसी पर्व पर पत्नी सन्निधो के साथ मान सरोवर में जल स्नान में संलग्न है । अचानक बैलकर शुक उड़ जाता है । पद्मावती इस घटना से विचित्र होती है । शुक एक जल में बस दिन ध्वनीत करता है । उस जल में व्याप प्रवेश करता है । उतरफ पास दृष्टी है । पत्नी उसे देखकर आश्चर्य करते हैं—

एहि बन रह्यो यई हम आठ । तरिबरी चरख न रीखा काठ ।

बाबु नु तरिबर बल मत नाही । माबहु एहि बन छाड़ि पगहीं ।

बैं तो बड़े जोर बन ताका । पंडित सुमा भूति मन बाका ॥

इस प्रकार केलि करता हुआ शुक बन्धी होता है । बितौर मङ्ग का एक ब्राह्मण व्यापारी तिहुलवङ्ग व्यापार हेतु धाता है । व्याप गुण को लेकर उसके सम्मुख उपस्थित होता है । ब्राह्मण शुक से प्रस्न करता है—

कहु परबते को भुन तोहि पाहीं । गुन न छपाइब हिरये माहीं ।

हम तुम्ह जाति बरामत दोऊ । बातिहि बाति पूछ सब कोऊ ।

पंडित छह तो सुनाबहु भेद । बिन पूछे पाइब माहि भेद ।

X

X

X

X

शुक उत्तर देता है—

तब गुन मोहि महा हो देवा । सब पिजर हुंछ छू परेवा ।

सब पुन कथन ओ बनि बजमाना । जाति मंत्रुषा पैंबे जाना ।

पंडित होइ सो हाट न कड़ा । ज्यों बिकान भूखि ना पड़ा ॥७७॥

बह शुक का क्रय कर लेता है । इस समय रत्नसेन बितौर मङ्ग का साधक है ।

शुक की प्रतिभा से प्रभावित होकर वह ब्राह्मण से शुक को प्राप्त कर लेता है ।

दस-गोब दिनों के पश्चात् राजा जायेट पर आते हैं । उसकी पटरानी नाथमती

मृगदार कर शुक से प्रस्न करती है—

सुजा बाग बहुत कहु सोला । सिबल बीप तोर कस सोला ।

कोन रिस्टि तोरी जमानी । बहुत ही कोनि छि बै पुमिनी ।

जी न कहुसि छत सुमटा ताहि राजा के जान ।

है कोई एह अफठ मंह योरे । बप समान ॥७८॥

पुष्पावती के रूप का स्मरण कर शुक हैस पड़ता है । वह कहता है, जिस सरोवर

में हंस नहीं आते, उसमें बहूनी हंस कइलाती है । शुक सिङ्गल की नायियों का

परिचय देते हुए कहता है पुष्पों की सुषण्य उनके शरीर में होती है अतः उनके

शाय पुन्हाती क्या समता ? वे कज्जल बर्नी हैं तथा रूप और मांस से परिपूर्ण हैं ।

पंडित न राखिब होइ कुमाकी । तेह सै पाव कहौ नहि सली ।

बह बाप को शुक के मारने की आज्ञा देती है । परन्तु राजा की आज्ञा का

स्मरण कर पाय धुक को माखी नहीं है । राजा छोटकर धुक की जिज्ञासा करता है । रानी उत्तर देती है 'मैंने उससे सिद्ध की पक्षिणी नारियों के नियम में जिज्ञासा की । इस सम्बन्ध में 'ऐ मागिन तुम्हारे बप का क्या ? वे यदि दिन हैं तो तू बेचैरी निधा है । बसन्त के सम्मुख करीस का क्या महत्त्व ?' इस प्रकार का उत्तर धुक ने दिया । राजा क्षुब्ध होता है । वह विधोय का अनुसरण करता है । पाय मुवा को सा देती है । धुक सत्य ब्रह्मा का वर्णन करता है । राजा के आग्रह पर धुक पद्मावती के कन-सौन्दर्य का वर्णन करता है । हीरामन जब कमल (पद्मावती) का वर्णन करता है राजा उसे सुनकर झमर-जल हो जाता है । धुक कहता है । 'उसका वर्णन मैं निम्न प्रकार करूँ उसका श्रु पार उसी को सोमा देता है । कन-वर्णन सुनकर राजा मूर्छित हो जाता है—

सुनतहि राजा ना मुखझाई । जानहुँ लहरि धुक के भाई ।

येन बाज हुआ जान न कोई । जेहि काने जानै पै सोई ॥११३॥

राजा रज सेन राज का त्याग करता है । वह किंगरी धारण कर विधोमी बन जाता है । वह प्रबाध करता है । घोषियों का श्रु गनाव बजता है । धुक कहता है 'जमुवा बही हो सकता है, जो मार्ग जानता है । पद रहित पक्षी कैसे उड़ सकता है ।' दिन में वे भाषा करते हैं । रात्रि में मृगारण्य में विधाम करते हैं । फिर वे समुद्र तट पर पहुँचते हैं । वहाँ का राजा गजपति रज सेन से कहता है 'सिद्ध द्वीप बही जा सकता है जो अपने प्राणों को हाथ में लेकर बसता है । तार, क्षीर, बनि उरवि मुरा बल और किस्किसा समुद्रों की पार करना सरल नहीं है । बोद्धिबल उरवि-के बध पर तिरो लगे हैं ।

किस्किसा समुद्र में पहुँचने पर धुक कहता है दारी समुद्र में आकर सत्य निश्चित हो जाता है । बोद्धि इस समुद्र में अटवत हो रहे हैं । मागसर को पार करने के पश्चात् वे सिद्ध द्वीप पहुँचते हैं । हीरामन छड़कर पद्मावती के पास जाता है । राजा कैलाश (सिद्ध मङ्ग के राज मन्दिर) के लिए प्रस्थान करता है । वहाँ बैठकर वह 'पद्मावती' का वाप करता है । धुक पद्मावती को रखने का सम्येय देता है । हीरामन रजसेन के पाग सोलकर कहता है जब बसंत बहुत आती है और उसकी धी पंचमी होती है तब मनुकर जाता है ।

सभी पुण्य सुपन्नित होता है। जो मोयी इस प्रकार उद्योग करता है उसे ही योग समाप्ति पर सिद्धि मिलती है।

बसन्त के मकर संक्रांति में पद्मावती सखियों के साथ त्रिभुवन-पूजन के लिए शिव मन्दिर में जाती है। रत्नसेन पद्मावती को देख कर मुग्ध हो जाता है। पद्मावती के लौट जाने पर राजा खेप होकर रोता है न बसंत की पूजा यह नहीं न वह बालिका यह नहीं। राजा अपने बध्म्यक को देखता है। उस पर खेप से मिस्र के अन्तर विद्योग लिखा है। रत्नसेन शिव-उपासना करता है। अनेक विष्णु-वाक्याओं के पश्चात् रत्नसेन की कामना पूरी होती है। पद्मावती के साथ रत्नसेन का विवाह होता है। पश्चात्सेन बसंत गृह में रत्नसेन और पद्मावती को वास देते हैं।

नाममती विद्योग में जीवन व्यतीत कर रही है। प्रिय के विद्योग में वह 'प्रिय' 'प्रिय' पुकारती है। सखियों उसे बर्ष प्रदान करती हुई कहती हैं—

बाली जैसे जीवन के नेहा। एकटि मरी बरखा छिु मेहा।

पुनि बसंत रिगु आर नवेली। सो रस सो मकुर सो बेली।

जनि मसि बीरु करसि तू गारी। दहि तरिबर पुनि उठीहि सैमारी।

मिलहि को विधुरै साजना यहि यहि मेट पदुन।

तपनि मिरपितरा के सहहि अटा ते पदुहं ॥३४॥

इस प्रकार 'असाई', 'सावन', 'माही', 'कुमार', 'कातिक', 'अगहन', 'पुस' आदि मासों में नाममती की बेचना विविध रूप धारण करती है। सिंहस में रत्नसेन पत्नी के माध्यम से नाममती का संवेद्य मुताता है। विहंगम सन्नेह देकर उड़ जाता है। राजा उसे पुकारता है परन्तु विहंगम और दूर चला जाता है। रत्नसेन सिंहस से निरक्त हो उठता है। पद्मावती के साथ वह सिंहस के लिए प्रस्थान करता है। अनेक वाक्याओं के पश्चात् बिलौर पद पहुँचता है।

राजस केतन राजा की सेवा में आते हैं। राजा उनसे आग्रह होता है, उन्हें निर्बलित करता है। सिंहस बाकर के अन्तर्गत की धारण करते हैं। 'पद्मावती' की ओर वह अन्तर्गत का आकर्षित करते हैं। अन्तर्गत रत्नसेन पर आक्रमण करता है। आठ बगों तक तक बिदा रहता है। अन्तर्गत उसे अन्त से बन्दी बनाता है।

गोरा बाबर की प्रेरणा से रक्तसेन मुक्त होता है। इस सन्दर्भ में भीषण रुक्प होना है और गोरा बाबर युद्ध में हथ होते हैं। रक्तसेन भी मारा जाता है और पद्मावती तथा माममती होती होती हैं। कवि अन्त में कथा का स्पष्टीकरण करता है।

तन भिन्नतर मन राजा कीन्हा । द्विज सिपक दुष्टि पक्षिनी चीन्हा ।
 मुब मुखा श्री पंच रेखावा । भिनु गुरु जगत को निरगुन पावा ॥
 माममती यह दुनिया-बंवा । बीचा छोड़ न एहि चित बाँवा ।
 राखत दूत छोड़ै पैतानू । माया बसावणी सुझतानू ॥
 प्रेम-जन्मा एहि मौखि बिचारहु । वृद्धि सेहू जो बूझै पाछु ॥
 गुरकी भरबी, हिडुई, माया बेटी बाहि ।
 बेहि भई मारा प्रेम कर, सबे सराई ताहि ॥१०

पद्मावत की ऐतिहासिकता

जायसी ने 'पद्मावत' में कल्पना और इतिहास का मिश्रण किया है। असा सहीन रक्तसेन ऐतिहासिक पुरुष है और दिल्ली, जितौड़ सिंहल आदि ऐतिहासिक स्थान हैं। परन्तु जायसी ने अपने पात्रों अपनी घटनाओं और स्वभावों का संकल्पन इतिहास से नहीं किया है। पक्षिनी की कथा गोराबाबर का बलिदान अफगानों का जितौड़ पर आक्रमण इन सभी तत्वों का व्यापक प्रचार लोक जीवन में हो चुका था। विविष्ट अटना या कथा में अनेक अनुकूलों से लोक जीवन के माध्यम से संयुक्त होती रही हैं। इतिहास और कल्पना का जो मिश्रित स्वल्प लोक में प्रचलित रहा उसी का आधार जायसी ने अपने काव्य में ग्रहण किया। लोक-जीवन में प्रचलित पद्मावती की कथा के संकटन में अफगानों के आक्रमण की इतिहास-सम्मत घटना और राजपूत रमणियों के बौद्ध की अनेक कथाओं की एक गुन में गूँथ लिये कर जायसी ने 'पद्मावत' की प्रबन्ध-वस्तुता की है। परन्तु इतिहास के आधार पर पद्मावत का प्रणयन नहीं हुआ है। जायसी का प्रतिपाद है 'प्रेम की पीर'। इस प्रतिपाद की संश्लेषणीयता में ही 'पद्मावत' का इतिहास तत्त्व समाहित है। पूष्पीराम रासों में इतिहास और कल्पना के त्रिषु समन्वय का प्रस्तावना है, अतः प्रेम 'पद्मावत' की प्रस्तावना भूमि नहीं है। अन्तर इतना है कि 'पूष्पीराम रासों' एक से अधिक कवियों की सामूहिक प्रेरणा का फल है। 'पद्मावत' में लोकजीवन में प्रचलित 'इतिहास' और 'कल्पना' की व्यावस्था को एक कवि द्वारा परिवर्द्ध करने का प्रयत्न है।

अक्षराबट — 'अक्षराबट' की प्रति के दो हप्ताहर अभी तक उपलब्ध हैं—

(१) भाचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा सम्पादित बामसी ब्रम्हावली में संकलित 'अक्षराबट' का पाठ ।

(२) डॉ० माठा प्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित बामसी ब्रम्हावली में सम्पादित 'अक्षराबट' का पाठ ।

सम्पादन के समय डॉ० माठा प्रसाद गुप्त को दूसरी प्रति प्राप्त नहीं थी । परन्तु इन्होंने इसी बीच एक अन्य प्रति प्राप्त हुई, जिसे सम्पादक ने परिशिष्ट-अप में दिया है । प्रो० श्री हसन बसकरी ने 'अक्षराबट' की फारसी लिपि में उपलब्ध एक प्रति की बर्णना की है । इनके अनुसार इस प्रति का प्रतिस्तिप्ति-काल सत्रहवीं शती बाह्यजहाँ का समय है ।^१ नागरी प्रचारिणि समा काशी में अक्षराबट की एक प्रति मायरी लिपि में भी उपलब्ध है ।^२

बामसी ने इस हठि के रचना काल का तिथि का उल्लेख नहीं किया है । परन्तु कतिपय विचारकों की यह धारणा है कि यह 'पद्मावत' के पश्चात् की रचना है । 'जुबान की धानगी, बन्दिशों की दुस्ती फटा देती है कि यह उम्र घायर बामसी के दौर बाखिर का लगीया है । इसके यह कहना है कि 'अक्षराबट' पद्मावत के बाद तत्परीक हुई है ।^३ हम कमल काबाबार प्रश्न करते हुए अनेक विद्वान् 'अक्षराबट' को 'पद्मावत' के पश्चात् की रचना मानते हैं । प्रोफेसर मैथिल हसन बसकरी ने अक्षराबट की रचना-अवधि का उल्लेख किया है । इनके अनुसार 'अक्षराबट' की हस्तलिखित प्रति की पुष्पिका में जुमा ८, बुस्फाद, १११ हिजरी का उल्लेख है । इनके अनुसार 'अक्षराबट' बामसी की प्रथम रचना है । बामसी ने 'बाखिरी कसाम' में जिस भूकम्प की बर्णना की है वह उनके जन्म-समय की

१ देखिए—जॉर्ज ऑट बिहार रिजर्च सोसाइटी धार ३८-१९२३—
 पृ. म्यूजी डिप्टमेंट बामसुप जॉर्ज बरबी बर्त इन्सुडिंग पद्मावत एण्ड अक्षराबट
 जॉर्ज मलिक मुहम्मद बामसी ।

२ नागरी प्रचारिणि समा काशी हस्तलिखित विनाक—अक्षराबट और
 पसका की प्रति—पृ० २६३ मलिक मुहम्मद बामसी—सैयर बस्ने मुल्लाहा,
 १९० ।

कटना नहीं है अस्तित्व उनके कजि-जीवन के आरम्भ समय में यह कटना घटित हुई। अक्षरावट की पुष्पिका में लिखित २११ हि० तथा २११ में बटित मूक्य के संस्केत में समानता है। इस प्रकार अक्षरावट २११ हिबरी की रचना प्रमा पित होती है।^१

‘अक्षरावट’ का प्रतिपाद विषय है सृष्टि की उत्पत्ति। धूम्र के मध्य करतार ने मुहम्मद पैगम्बर की ज्योति प्रकट की। आदि मोसाई ने सृष्टि की रचना की। स्वर्ग स्त्रिा और परती माता रूप में प्रस्तुति हुए। इसके पश्चात् इसीस (सैतान) उत्पन्न हुआ। एक परमात्मवत्त्व संसार की विभिन्न योनियों में प्रकट हुआ। बार सत्तों से शरीर की स्थापना हुई। उसमें पञ्च भूतात्मक इन्द्रियाँ संस्थापित की गईं। शरीर में नव द्वार निर्मित हुए। इसके पश्चात् करतार ने बसम द्वार पर कपाट लगा दिया। इस अवस्था तक आरम और करतार में अभिन्नता थी। सैतान की प्रेरणा से आरम ने देह का मिमा। इस निषिद्ध भोजन के कारण आरम स्वर्ग निष्कासित हुए। आरम और होमा में वियोग हुआ। परन्तु ईश्वर की हृष्या से धनका मिलन भी हुआ। जन्मे सन्तान की उत्पत्ति हुई। हिन्दू और तुर्क दोनों ही सत्तकी सन्तानें हैं। शरीर में ही स्वर्ग और नरक की स्थापना परम तत्त्व ने की।

अक्षरावट में सृष्टि-रचना का जो उपक्रम जामसी ने प्रस्थापित किया है, वह मूक्य इस्लामी धर्म ग्रन्थों के आधार पर है—

बपन हुता नहिं गहि हुती हुनै कव नहि मुर।

ऐसइ अबकूप सह रपठ मुहम्मर मुर। जामसी सन्नाबसी अक्षरावट।

कहा से ही सृष्टि आपुति है। जीव जीव रूप में ब्रह्म में ही अवस्थित था। जीव ब्रह्म से अभिन्न था परन्तु समय पाकर जीव और ब्रह्म में वियोग हुआ।

हुता जो एकहि संघ हौ तुम्ह काहे बीसुडा ?

अब बिड उठै तरंग, मुहम्मद कहा न जाई बपु। अक्षरावट सोरठा ३।

इस ग्रन्थ में जामसी ने जीव ब्रह्म और प्रकृति की अभिन्नता के विज्ञान का प्रतिपादन किया है। जामसी के अनुसार ब्रह्म में समुद्र समाना है, अर्थात्

मनुष्य पिंड के भीतर ही ग्रह और समस्त ब्रह्माण्ड है सभी उड़ी अनन्त सत्ता में विस्तीर्ण हो जाते हैं—

मुन्वि समुद्र समान, यह अचरज कासों कहीं ?

जो हैरा हो हैरान, मुहम्मद बापु मापु मंह न बा० उम्मावली ।

सूफी मत में साधना की चार अवस्थाएँ मानी गई हैं—(१) शरीयत(कर्म काण्ड), (२) तरीक़त (बाह्य आडम्बरों से मज्म होकर हृदय की शुद्धता द्वारा ईश्वर का ध्यान) (उपासना काण्ड) (३) हकीकत (भक्ति और उपासना के द्वारा सत्य का बोध (बाप काण्ड), (४) मारिफ़त (सिद्धावस्था) । 'अक़राबट' में आबसी ने इन अवस्थाओं का उल्लेख किया किया है—

कहो तरीक़त जिसली पीक । समरित असरफ़ बी ज़ह्वीक ॥

तेहि के नाब बढ़ा हौ बार्द । देखि समुद्र बल जित न डेरार्द ॥

और

बौक बढ़ाव साव खंड ऊँचा । बारि बरेरे भाइ पहुँचा ।

आखिरी क़दाम— आबसी ने 'आखिरी क़दाम' की रचना १३९ हि०, सन् १३३२ ई० में किया । इसमें कवि 'साहेतक़-क़य' में बाबर की प्रशंसा करता है ।

बाबर साह ख़वरसि राजा । राजपाट उन कर्हू निधि साजा ।

मुन्दक़ मुलेमा कर बोहि दीन्हा । सरल बुमी समर बस दीन्हा ।

इन कृति की निर्माणक्रिया का उल्लेख आबसी ने इस प्रकार किया है—

नी से बरिस छत्रीस बी मय । तब एहि कया क बासर कहे ।

कतिय बाओबकों के अनुसार यह कृति आबसी की अन्तिम रचना है । पारंग-रचना-निधि तथा साहेतक़ की प्रशंसा को सम्मिश्र रखते हुए यह 'पद्मावत' के पूर्व की रचना है । कस्तुर यह प्रलय-सम्बन्धित कवि का 'कदाम' है ।

इस रचना में आबसी ईश्वर-स्तुति करते हैं, फिर भी धरी में अपने काम लेने का उल्लेख करते हैं, बाबर साह की प्रशंसा करते हैं और सेवक असरफ़ की बन्दना करते हैं । आबस नवर का परिचय देने के पश्चात् कवि १३६ दिवरी में इस काव्य के प्रथम का उल्लेख करते हैं । इसके उपरान्त प्रथम का वर्णन

कटना नहीं है। अपितु उसके कवि-जीवन के आरम्भ समय में यह कटना घटित हुई। अक्षरावट की पुस्तिका में मिलित १११ हि० तथा १११ में घटित मुकम्म के हस्तैश में समानता है। इस प्रकार अक्षरावट १११ हिबरी की रचना प्रमाणित होती है।^१

‘अक्षरावट’ का प्रतिपाद्य विषय है सृष्टि की उत्पत्ति। धूम्र के मध्य करतार ने मुहम्मद पैगम्बर की ज्योति प्रकट की। आदि गोसाई ने सृष्टि की रचना की। स्वर्ग पिता और बरती माता रूप में प्रस्तुत हुए। इसके पश्चात् इसीस (सैतान) उत्पन्न हुआ। एक परमात्मतत्त्व संसार की विभिन्न योगियों में प्रकट हुआ। चार तत्वों से शरीर की स्थापना हुई। उसमें पञ्च भूतारमक इन्द्रियों संस्थापित की गईं। शरीर में नव द्वार निर्मित हुए। इसके पश्चात् करतार ने बसम द्वार पर कपाट लगा दिया। इस व्यवस्था तक आराम और करतार में अभिमतता थी। सैतान की प्रेरणा से आराम में वेहूँ आ गया। इस निषिद्ध भीजन के कारण आदम स्वर्ग निष्काशित हुए। आराम और हीवा में बियोग हुआ। परन्तु ईश्वर की हवा से जनका मिश्रण भी हुआ। उनसे सन्तान की उत्पत्ति हुई। हिन्दू और तुर्क दोनों ही उसकी सन्तान हैं। शरीर में ही स्वर्ग और नरक की स्थापना परम तत्व ने की।

अक्षरावट में सृष्टि-रचना का जो उपक्रम आयसी ने प्रस्तावित किया है, वह मुख्यतः इस्लामी धर्म ग्रन्थों के आधार पर है—

बगन हुता नहिं नहिं हुती हुने पन्व नहिं दूर।

ऐसइ जंनकून मइ रचत मुहम्मद नूर। आयसी सन्पावसी अक्षरावट।

अइ से ही सृष्टि आयुति है। जीव जीव रूप में इह में ही अवस्थित था।

जीव अइ से विभिन्न था परन्तु समय पाकर जीव और सइ में विभोय हुआ।

हुता जो एकदि संप हो तुम्ह काहे बीसुहा ?

अब जिउ उठे तरन, मुहम्मद काह म बाई बसु। अक्षरावट सोरठा है।

इस ग्रन्थ में आयसी ने जीव अइ और प्रकृति की विभिन्नता के विज्ञान का प्रतिपादन किया है। आयसी के अनुसार बूद में समुद्र समाया है, जहाँ

मनुष्य चिन्त के भीतर ही रह्य और उपलब्ध ब्रह्माण्ड है, सभी सही बनस्य सत्ता में मिलीन हो जाते हैं—

बुद्धि समुद्र समान, यह भवजल काहीं कहीं ?

को हेरा सो हेराम मुहम्मद बापु बापु मंह ॥ बा० प्रभाकरी ।

सूफी मत में साधना की चार अवस्थायें मानी गई हैं—(१) तारीकत (कर्म-काण्ड), (२) तारीकत (बाह्य आह्वानों से अलग होकर हृदय की सुखता द्वारा ईश्वर का ध्यान) (अप्राप्ता काण्ड), (३) हुकीकत (भक्ति और उपासना के द्वारा धर्म का बोध (ज्ञान काण्ड)) (४) बारीकत (सिद्धावस्था) । 'मकरावट' में बायसी ने इन अवस्थायों का बल्लेख किया किया है—

कही तारीकत चित्ती पीर । उन्नति असरफ़ भी बहूनीर ॥

तेहि के नाव बढ़ा ही बाई । देखि समुद्र जल बिच न डेराई ॥

और

बौक बढ़ाव सात खंड जैसा । नारि बसेरे बाद पहुँचा ।

आखिरी कब्रान— बायसी ने 'आखिरी कब्रान' की रचना १३६ हि०, सन् १२६२ ई० में किया । इसमें कवि 'साहेबखान-अम' में बाबर की प्रशंसा करता है ।

बाबर साहू सखसि राबा । राबपाट उन कई निधि साबा ।

मुकुट मुकिना कर मोहि कीम्हा । कदर हुनी अमर बस कीम्हा ।

इस कृति की निर्वाणवर्ति का बल्लेख बायसी ने इस प्रकार किया है—

गो लै बरिष्ठ छरीस भी भए । ठव एहि कवा क बाबर कहे ।

कविपत्र बाबोबकी के अनुसार यह कृति बायसी की अन्तिम रचना है । परन्तु-रचना-विधि तथा साहेबखान की प्रशंसा को सम्मूख रखते हुए यह 'परबाकत' के पूर्व की रचना है । वस्तुतः यह प्रथम-सम्मानित कवि का 'कब्रान' है ।

इस रचना में बायसी ईश्वर-स्तुति करते हैं फिर गो सही में अपने जन्म लेने का बल्लेख करते हैं बाबर साहू की प्रशंसा करते हैं और खैर असरफ़ की बख्शना करते हैं । बाबर नगर का परिचय देने के परबाद कवि १३६ हिजरी में इस काव्य के प्रभाव का बल्लेख करते हैं । इसके उपरान्त प्रकट का अन्तिम

बटना नहीं है अस्मिन् उनके कवि-जीवन के आरम्भ समय में वह बटना पटित हुई। अकराबट की पुस्तिका में तिथित १११ हि० तथा १११ में पटित मुकम्म के अस्केख में समानता है। इस प्रकार अकराबट १११ हिजरी की रचना प्रमा निष्ठ होती है।^१

‘अकराबट’ का प्रतिपाद्य विषय है सृष्टि की उत्पत्ति। दूय के मध्य करतार ने मुहम्मद पैगम्बर की ज्योति प्रकट की। जावि मोसाई ने सृष्टि की रचना की। स्वर्ग सिता और बरखी माता कम ने प्रसफुटित हुए। इसके पश्चात् इबकीष (खैतान) करम्म हुआ। एक परमात्मतत्त्व संसार की विभिन्न योनियों में प्रकट हुआ। आर तलों से शरीर की स्थापना हुई। उसमें वज्ज ब्रूतात्मक इन्द्रियों संस्थापित की गई। शरीर में बन द्वार निर्मित हुए। इसके पश्चात् कर्तार ने इसम द्वार पर कपाट लगा दिया। इस अवस्था तक बादम और करतार ने अभिजाता थी। खैतान की प्रेरणा से भावम ने देह का किया। इस निषिद्ध मोहन के कारण भादम स्वर्ग निष्कासित हुए। बादम और होबा में वियोग हुआ। परन्तु ईश्वर की कृपा से उनका मिलन भी हुआ। उनसे सन्तान की उत्पत्ति हुई। हिन्दू और तुर्क दोनों ही उसकी सन्तान हैं। शरीर में ही स्वर्ग और गरक की स्थापना परम तत्त्व ने की।

अकराबट में सृष्टि रचना का जो उपक्रम जायसी ने प्रस्थापित किया है, वह मूलतः इस्लामी धर्म ग्रन्थों के आधार पर है—

गफल हुठा नहिं नहिं हुठी हुते चन्द नहिं मुर।

ऐसह बंयकूप महरबत मुहम्मद मुर। जायसी ग्रन्थावली अकराबट।

ब्रह्म से ही सृष्टि आपुरित है। जीव जीव रूप में ब्रह्म में ही अवस्थित था। जीव ब्रह्म से अभिन्न था परन्तु समय वाक्यर जीव और ब्रह्म में वियोग हुआ।

हुठा जो एकहि संव, हो तुम्ह काहे बीछुडा ?

सब बिज उठे तरंग, मुहम्मद कहा न बाई बघु। अकराबट खोटा ३।

इस ग्रन्थ में जायसी ने जीव ब्रह्म और प्रकृति की अभिन्नता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। जायसी के अनुसार ब्रह्म में नम्रु समाया है, जबीय

मनुष्य पिंड के भीतर ही ब्रह्म और समस्त ब्रह्माण्ड है सभी वही अनन्त सत्ता में विभिन हो जाते हैं—

बुद्धि समुद्र समान, बहु बचल कासों कहीं ?

को हैरा लो हैरात मुहम्मद आपहु बापु मंह ः वा = सम्भावनी ।

सूफी मत में साधना की चार अवस्थायें मानी गई हैं—(१) घरीबत (कर्म-काण्ड), (२) तलीकत (बाह्य बाह्यम्बरों से अलग होकर हृदय की मुरदा द्वारा ईश्वर का ध्यान) (उपासना काण्ड), (३) हुकीकत (मस्ति और उपासना के द्वारा सत्य का बोध (ज्ञान काण्ड)) (४) मादिकत (सिद्धावस्था) । 'जबारायत' में जामली ने इन अवस्थाओं का उल्लेख किया किया है—

कही घरीयत चिस्ती पीर । उबरत अतरक मो बंधपीर ः

तेहि के नाब बड़ा हो बार्ह । देखि समुद्र बर बिज न डेराई ः

और

बौक बड़ाव सात संक ऊँचा । बारि बसेरे बाह पड़ेचा ।

बाखिरी कलाम— जामली ने 'बाखिरी कलाम' की रचना ८३६ हि०, एम् १३३२ ई० में किया । इसमें कवि 'साहैयत-कम' में बाबर की प्रशंसा करता है ।

बाबर साह खजपति राजा । राजपाट जन कई बिधि राजा ।

मुमुक मुलेजा कर मोहि बीन्हा । मरक हुनी अपर बस कीन्हा ।

इस कृति की शिर्षावलि का उल्लेख जामली ने इस प्रकार किया है—

मो है बरिस छरीय मो मए । तब एहि कवा क बाबर कहे ।

कठिपय माओबकी के अनुसार यह कृति जामली की अन्तिम रचना है । परन्तु-रचना तिथि तथा साहैयत की प्रशंसा को सम्मुख रखते हुए यह 'पदमावत' के पूर्व की रचना है । वस्तुतः यह प्रथम-सम्पन्नित कवि का 'कलाम' है ।

इस रचना में जामली ईश्वर-स्तुति करते हैं, फिर भी यही में अपने कम्म लेने का उल्लेख करते हैं बाबर साह की प्रशंसा करते हैं और तैबर अतरक की कबला करते हैं । बाबर अपर का परिचय देने के पश्चात् कवि ८३६ हिजरी में इस काण्ड के प्रचपन का उल्लेख करते हैं । इसके पश्चात् प्रथम का अर्थन

सम्मुख जाता है। मैकाइस बमि-बपी करता है। सम्पूर्ण पृथ्वी प्रत्यक्षित हो
छटती है। चासीस दिनों तक यह स्थिति रहती। बिबराइस ईश्वर से नव निमोन का
निवेदन करता है। मैकाइस नामक फिरिस्ते को आज्ञा मिलती है। वह बरपी पर
बस बपी करता है। चासीस दिनों तक की जनवरण बपी से पृथ्वी बस-मज
हो जाती है। इसराइल 'सुर'-नाब से संसार को छटाता है। पृथ्वी और आकास
प्रकम्पित हो छटते हैं। चौदहो भुवन झूले के समान झुकने लगते हैं। इसराफील
की प्रथम फूँक से नदी मासे समस्त हो जाते हैं। इस प्रक्रिया में पर्वत और समुद्र
एकाकार हो छटते हैं। अजरार्ईक बिबराईक मकाईल और इसराफीक इन सब का
बस करता है। अन्त में ईश्वर अजरार्ईल के भी प्राण के लेता है। चासीस वर्षों
के एकान्त जीवन के पश्चात् ईश्वर पुनः इन फिरियों को जीवन देता है।
बिबराईक पृथ्वी पर आकर मुहम्मद को पुकारता है। ईश्वर की आज्ञा से सूर्य
प्रकट होता है। छः महीने तक के जनवरण प्रकाश में ईश्वर पारियों को दक्षित
करता है। फातमा बीबी इसल, हुसेन को सम्मुख प्रस्तुत कर न्याय की मांगता
करती है। कौसर के बस में स्नान कर सभी पवित्र होते हैं। और सभी स्वर्गीय
मदिरा से जीवन का अभिगन्तव्य करते हैं। काब्य के अन्त में बायसी स्वर्ग-वेगस
को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं।

मिट पिरिठ, मिट नव-नव मेहू।

मिट छठि जोगुल होइ समेहू म

तहाँ न मिषु, न नीर दुख रह न रह महु रोप।

सबा अन्व मुहम्मद, सब मुख माने मोय त्वा० ब० १।

साबिर कलाम की कथा 'इस्लामी मजहब' के हथ (प्रत्य) की कथा
है। इसकी कथा 'कुरान' पर आधारित है।

बिबरेखा^१ ३—'बिब रेखा' एक लघु प्रेम-कथा है। आरम्भ में कवि ने
'पन्मावत' के समान ही ईश्वर बप्ता की है।

१ बिबरेखा के सम्पादन में दो हस्त लिखित प्रतियों का सम्बन्ध मिलता
है—(१) साबार-ए-जंग संग्रहालय की प्रति। (२) महमराबाद की प्रति।
बिबरेखा को एक हस्त लिखित प्रति उस्मानियाँ विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में
सुरक्षित है।

जाहि एक बरगो सो राजा ।

बाकर सबे जयत यह ताजा ।

×

×

×

कहाँ राज बह ताकर, कनक छान बहि पाट ।

राजा बहि सबे जोहि, धरती छाह कलाट ।^२

इसके पश्चात् कवि मुहम्मद तथा अपने चार मित्रों का वर्णन करता है ।
इसके पश्चात् बायसी बिजरेखा की कहानी प्रस्तुत करते हैं ।

शुनव कथा बस भसित बानी ।

कहाँ बिजरेखा बह रानी ।

नगर कन्नपुर उत्तम ठाऊ ।

कन्नमानु राजा कर नाऊ ।

नगर अनुप इन्द्र बस छाया ।

बसे मोमती तीर सुहावा । बिजरेखा—पृष्ठ-७८ ।

मोमती तट-स्थित कन्नपुर नगर के कन्नमानु राजा की साथ श्री रात्रियों में स्नानेवा प्रवाल थी । उसकी पुत्री बिजरेखा की सचिकछा के समान उसका विकास हुआ । उस रूप की लक्ष्म्या में उसका रूप-शीर्ष्य आकर्षण की समष्टता के साथ प्रसङ्गित हुआ ।—

बसए बरिह कर भई जो दसा ।

पुन्यो चौह बरन परमसा ।

मनि मावे दीपक रस कैसा ।

भेवर मुखग पैस भए केसा ।

जोति छल ससि पाई गोरी ।

कयन देखाकई खोजन बोरी ।

भीहू भारि अनु धनुक संहारे ।

बबलि बाग सारै तिम थारे ।

पलक बरन संहारे भाय ।

ऊपर-ऊपर जाहि संहारा ।

२ बिजरेखा—पृष्ठ ६३ हिन्दी प्रचार पुस्तकालय-बाणवली ।

इस प्रकार का उसका सौभाग्य था। मौन होने पर उसका विवाह सिंघर के राजासिंघदेव के कुबड़े कड़के से ही ठरा हुआ। परन्तु जन्मा और राहु के योग के कारण विवाह न हो सकेगा, ऐसी घोषणा ज्योतिषियों ने की। कलौब के राजा अस्वाम सिंह ने तप किया। उन्हें एक पुत्र रत्न प्राप्त हुआ। उसका नाम प्रीतम कुंवर रखा गया परन्तु जन्म के समय पण्डितों ने उस अस्वामु बताया था। मृत्यु के द्वाँ दिन पूर्व माता पिता को समझा कर बोड़े पर काशी-गति के लिए उन्होंने प्रस्थान किया। जमशुर नगर में चिन्नेखा के विवाह का उत्सव हो रहा था। मार्ग में प्रीतम कुंवर वृद्ध की छाया में विधाम के लिए रुक गया। सिंघदेव अपने पुत्र विवाह-हेतु उसी मार्ग से आ रहा था। वह वहीं रुक जाता है। प्रीतम कुंवर की निगा भंग होती है। सिंघदेव से वह अपनी काशी-गति का उत्प्रेषण करता है। सिंघदेव अपने कुबड़े बेटे की ओर से वर बनने का निवेदन करता है। प्रीतम कुंवर दूल्हा बनता है। विवाह होता है। धैर्य्य सन्निवृत्त हुई। प्रीतम कुंवर चिन्नेखा की ओर पीठ करके सोता है। निशा के उत्तरार्ध में प्रीतम कुंवर प्रस्थान करता है। प्रस्थान करने के पूर्व वह चिन्नेखा के अंजल-पट पर शिव करता—

हौं कलउब राजा कर बेटा ।
जो निनि लिखा सो भाइ न मेठा ।
बीस बरिख बाज हूठ मोरी ।
पूजी भाइ को देइ बहोरी ।
सहजै बसा बाठ हौं कासी ।
पहुँचा भाइ समय का रासी ।
सिंघदेव कहै जान विवाहा ।
ना जानइ तुम्ह कहै का जाहा ।

कामिहू घोषहरी मीठर, मेंहै कासी गति मोख ।

तुम कहै भयो इतना मुल मो बहै इतना दोख ।

तारों के डूबने के साथ सविद्या चिन्नेखा के पास जाती है। चिन्नेखा के नाजिगित रूप को देखकर वे आश्चर्य्य भरती हैं। चिन्नेखा अंजल पर सिरों स्नेह को पड़कर सती होने के लिए तत्पर होयी है। उपर प्रीतम कुंवर मरने के

किया छतार होता है। बड़ता है दान देता है। दान से प्रसन्न होकर व्यास ने उसे मामिर्बाद तथा 'चिरजीव तुम होहु। आशीर्वाद पाकर राजकुमार सोटा। राजकुमार के चिरजीव होने की बात चाहे जोर छेती। चिररत्ना और प्रीतम कुमार का मिलन हुआ।

इस प्रकार 'चिररत्ना' बुझी प्राप्तिवाक्य काव्य वाक्या के अन्तर्गत एक प्रेम-काम्य है। और चिरसम्म के बाद संयोग-सुख की जीवन साधक अनुभूति के अस्तित्व विधान के माध्यम से कवि आत्मा और ईश्वर के मिलन-स्वप्न की व्यपटीरणा करता है।

बई आन उपराजा सोय माह सुख भोयो।

अवस ते भिते बिबोही मिन्ह हिय होई बियोय।

चिररत्ना १०१।

सृष्टि में ईश्वर बैसे ही व्याप्त है, जैसे काष्ठ में अग्नि और पुष्प में धी। जो सावक प्रवर के समान केवकी के कांटे से अपना शूङ्ख प्रेम की पीर से मिट का लेता है। बड़ी ईश्वर रस की अनुभूति कर सकता है—

अग्नि काठ धिब खीर लोक बा सो जानी को मन देइ कथा।

मैंबर मए अकैठकि कौटा। सो रस पाई होइ गुर कौटा।

चिररत्ना १११।

'चिररत्ना' कवचक छेती की रचना है जिसमें साठ अष्टांशियों के पर्याय एक श्लोक का क्रम है।

कठरनामा :—'रहत्यामा' का सप्ताशन डॉ० भावाप्रसाद गुप्त ने 'महुरी बाईसी' नाम से रिया है^१। डॉ० गुप्त को दश उन्म की एक प्रति काव्यमैत्र्य विवेकस्य आश्रित्य, अन्वय से प्राप्त हुई थी। इसके सप्ताशन के सम्पर्क में उन्होंने लिखा है—'महुरी बाईसी नाम मेरा दिया हुआ है। स्पष्ट वाचोक्तैस्य कृति में नहीं है। केवल महुरी जाने का अस्ति कृति में वहाँ तहाँ हुआ है, और दस कृति में केवल बाईस सीत है इसलिए यह नाम दे दिया गया है। सम्भव ही नहीं बाधा भी है कि जाने की ओकों में दस कृति का लोक नाम बाध हो जायगा।

इस ग्रन्थ का नाम 'कहरानामा या कहारानामा' है। इस ग्रन्थ की मूल भिन्न प्राप्त हस्तलिखितों में वही नाम मिलता है।

कहरानामा की एक हस्तलिखित प्रति रामपुर स्टेट पुस्तकालय में है। इस प्रति के २५ पृष्ठ हैं इसमें रचना कास ६६७ हि० संस्थित है। इसकी एक प्रति बिहार के मनेर शरीफ कानकाह (सेयब हुसैन नस्कारी) से प्राप्त हुई है। इसकी एक प्रति बिसर्वा (सीतापुर) में उपलब्ध हुई है। इसमें १२ पृष्ठ हैं। प्रत्येक पृष्ठ में १६ पंक्तियाँ हैं। इसकी लिपि नागरी है। इसका लिपिकाक १७७० है। इस प्रति के आरम्भ में अथ कहरानामा लिख्येत् लिखा है। इसका अन्तसंहार इस रूप में हुआ है—

कहरानामा गाथा कीन्हा जो गावे सो छारिहै रे।

राम नाम पर मारण महिमा रामी पार उतारिहै रे॥

इस ग्रन्थ का आरम्भ कवि ने इस प्रकार किया है—

सुनो बिनती मैं किरति बखानी, महरा अस महराई रे।

मयेठ केसट को नाव बलाने को लामेठ गहराई रे।

कोई गुन जाह पन्थ सिर घुनहू चला बोर घुन बीचह रे।

तीर नीर छपलें भैं सोई, पाहिरेँ तो फल पाँचह रे।

आमसी अन्धबली ७११

जहाँसे संधार एक सागर के समान है। इसमें धर्म लोका के समान है। नाव पर चढ़नेवाला पार उतारता है। लोका के प्रस्थान के पश्चात् जो नाविक को बुलाता है, वह मूर्ख है, कारण वह लोका लौटाता नहीं है। जहाँ में मरी का पाट मन को आकर्षित कर देता है। पवन-संचालित कहूँ मन को प्रकम्पित कर देती है। मोघ से, मन की दृष्टि से कहूँ के उड़कन से पार आया वा उतारता है। इसके पश्चात् महरा नहरी के विवाह के माध्यम से कवि आत्मा परमात्मा के मिलन-स्वरूप का प्रतिकारमन्त्र वर्णन करता है।

कवि ने इस ग्रन्थ में आध्यात्मिक विवाह की प्रस्तावना और उसका स्वल्प विधान कहूँ आत्मा में प्रचलित विवाह प्रथा के अनुरूप विधान के माध्यम से किया है—

२—नावरी प्रचालिनी समा हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का प्रयोग नैवारिक

बिबल १६२६ २५ पृ० ४३१।

मा भिनुसार बधिकरा होतहि [×] पाक्षि पहरा रे ।
 हुलह बोलावहु बोक पुरावहु बो ईसि बोला महरा रे ।
 हुलह तबका कोळ मंजीरा महुवर बांसुरि बाजे रे ।
 सवय सोहावा मेहरीन गावा बर बर महुरी साजे रे ।
 पूजा पावी हुलहिनि राती हुलह मा असबारा रे ।
 बाजन बाजे किमठ छब छाबे ना सन ठत पसारा रे ।
 मंगल चारा मा बहकारा बजे गरज सब केकी रे ।

पृष्ठ ७२० ।

इस प्रकार हुलह तबरा, कोळ, मंजीरा, बांसुरी हुलह बोक याहि विवाह-सम्बन्धी सापेक्ष विधानों के माध्यम से कवि आत्मा और परमात्मा का मिलन और परिचय की भूमिका प्रस्तावित करता है ।

‘कहरा’ या ‘कहरावाँ’ एक प्रकार का लोक गीत है जो कहरों में प्रचलित है । मिथुल ‘बौलीसा’ बाबु कपूर के साथ कबीर ने भी ‘कहरावा’ का प्रयोग किया है । संत साहित्य के अन्य कवियों ने भी इस विशेष विधा का प्रयोग किया है । ‘कहरागामा’ इसी परम्परा के अन्तर्गत की रचना है । यह गेय है जिसका गेय एक ‘लोक पुनि’ पर आधारित है ।

मसला या मसला नामा —नागरी प्रचारिणी सभा में बायसी हज़र ‘बजरगती’ की एक हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है । इसमें ‘मसला’ का ठीक रूपों का एक हस्तलिखित संघ भी संलग्न है—

बिपा है सोतनराय महुम हत बजरगती ग्रन्थ केर यह नाम ओ मसला बाये लिखत ।

इस रचना में कवि बङ्गाह से प्रेम करने का आग्रह करता है—

बहु तन बजह मिर्बो सो काई । जिहि का पाई जिहि की याई ।
 नात बहुत बो काई बजाई । छूख पछोरे छड़ि छड़ि जाई ।

+ + + +
 भव याई सो मेह कर केव न यह संयोग ।
 कोन्ह से परि बतरी, यह बोक ही जोय ।

१—नागरी प्रचारिणी सभा,—‘बायसी हज़र बजरगती और मसलों की प्रतियों’

इस ग्रन्थ का नाम 'कहरानामा या कहारानामा' है। इस ग्रन्थ की किन्तु किन्तु प्राप्त हस्तलिखितों में यही नाम मिलता है।

कहरानामा की एक हस्तलिखित प्रति रामपुर स्टेट पुस्तकालय में है। इस प्रति के २३ पृष्ठ हैं इसमें रचना काक २६७ हि० अंकित है। इसकी एक प्रति बिहार के मनेर शरीफ ज़ानकाह (सैयद हुसैन अस्कारी) से प्राप्त हुई है। इसकी एक प्रति बिसवाँ (सीतापुर) में उपलब्ध हुई है। इसमें १२ पृष्ठ हैं। प्रत्येक पृष्ठ में ३६ पंक्तियाँ हैं। इसकी लिपि नागरी है। इसका सिमिकाळ १७७० ई। इस प्रति के आरम्भ में 'अथ कहरानामा लिख्यते' लिखा है। इसका उपसंहार इस रूप में हुआ है—

कहरानामा भाषा कीन्हा ओ नाबै सो ठारिहै रे।

राम नाम पर मारण महिमा रामै पार छठारिहै रे२।

इस ग्रन्थ का आरम्भ कवि ने इस प्रकार किया है—

गुनो मिलती मैं किरति बलानौ, महुरा बस महुराई रे।

गयेह कैबट को नाब जठाने को समेठ पढ़ाई रे।

कोई गुन जाइ पण सिर धुनहु बजा डोर कुन सीबइ रे।

तीर नीर अबसे मैं सोई, याहिरैं ती फल पोचइ रे।

आमसी ग्रन्थावली ७११

अपीतु संसार एक सागर के समान है। इसमें जर्म लौका के समान है। नाब पर बहनेवाला पार छठारिहै रे। लौका के प्रस्थान के परभातु ओ नाबिक को बुलाता है, वह मूर्ख है कारण वह लौका छोटाता नहीं है। अपी मैं नरी का पाट मन को आर्तकित कर देता है। पवन-संचारित छहरे मन को प्रकम्पित कर देती हैं। योग से, मन की दृढ़ता से छहरे के अस्मन से पार जाया जा सकता है। इसके परभातु महुरा महुरी के बिबाह के माध्यम से कवि आत्मा परमात्मा के मिलन-स्वल्प का प्रतिकारमक बचन करता है।

कवि ने इस ग्रन्थ में आध्यात्मिक बिबाह की प्रस्तावना और उसका स्वल्प विधान कहोर आदि में प्रकथित बिबाह प्रया के अप्रस्तुत विधान के माध्यम से किया है—

२—नाबरी प्रचारिणी समा हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का प्रयोग प्रचारिक

विवरण १८२६ २८ पृ० ४३१।

मा मिनुसार बधिकरा होठहि [×] पाक्षि पहरा रे ।
 दूल्हा बोलाबहु बोफ पुराबहु जो हँसि बोला महरा रे ।
 हूकुक ठबला झोम मंजीरा महुवर बाँसुरि बाजे रे ।
 सबब सोहाबा मेहरीन गामा घर घर महरि साजे रे ।
 पुषा पाटी दुलहिनि राठी दूल्हा भा बसबाघ रे ।
 बावन बाजे हियत सब छान भा छन ठठ पसारा रे ।
 मंदल चारा भा बहकारा चल गल सब केली रे ।

पृष्ठ ७७० ।

इस प्रकार हूकुक ठबर झोम, मंजीर, बाँसुरी दूल्हा बोफ आदि विवाह-सम्बन्धी वापेकब विधानों के माध्यम से कवि आत्मा और परमात्मा का मिलन और परिचय की भूमिका प्रस्थापित करता है ।

'कहरा' वा 'कहराँ' एक प्रकार का लोक गीत है जो चहारों में प्रचलित है । निरधुन 'बोनीसा' आदि स्त्रियों के हाथ खीर ने भी 'कहरा' का प्रयोग किया है । उक्त साहित्य के अन्य कवियों ने भी इस विशेष विधा का प्रयोग किया है । 'कहरागामा' इसी परम्परा के मन्दगीत की रचना है । यह वेग है, जिसका येव उक्त 'मोक बुनि' पर आधारित है ।

मसला या मसला नामा —नागरी प्रचारिणी सभा में आयी हुई 'बलरावरी' की एक हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है । इसमें 'मसला' का तीन पृष्ठों का एक हस्तलिखित अंश भी संलग्न है—

किया है लीवकरान महमर इन बलरावरी प्रग केर पहर नाम की मसला बागे बिलब ।

इस रचना में कवि बलराव से प्रेम करने का आग्रह करता है—

यह उन बलह मियाँ सी लाई । जिहि का भाई छिहि की भाई ।
 बात बहुत जो काई बनाई । मूख पछोरे उहि कवि काई ।

+ + + +
 भब लाई ली नेह कब सेह न यह सुबोप ।
 कोरु ते पारि बचरी, भई बिक ही बोप ।

१—नागरी प्रचारिणी सभा, —'आदमी इन बलरावनी और मसलों की प्रतियाँ'

पृ०—२५ ।

इस ग्रन्थ का नाम 'कहरानामा या कहारानामा' है। इस ग्रन्थ की मूल मूल प्राप्त हस्तलिखितों में यही नाम मिलता है।

कहरानामा की एक हस्तलिखित प्रति रामपुर स्टेट पुस्तकालय में है। इस प्रति के २५ पृष्ठ हैं इसमें एकत्र काष्ठ १९७ हि० अक्षर हैं। इसकी एक प्रति बिहार के मनेर शरीफ ज्ञानकाह (सैयद हुसैन अस्कारी) से प्राप्त हुई है। इसकी एक प्रति बिसर्वा (सीतापुर) में उपलब्ध हुई है। इसमें १२ पृष्ठ हैं। प्रत्येक पृष्ठ में १९ पंक्तियाँ हैं। इसकी लिपि नागरी है। इसका लिपिकाल १७७० है। इस प्रति के आरम्भ में अथ कहरानामा लिख्येत् लिखा है। इसका उपसंहार इस रूप में हुआ है—

कहरानामा माया कीन्हा वो गानै सो छारिहै रे।

राम नाम पर मारय महिमा रामै पार उचारिहै रे२।

इस ग्रन्थ का आरम्भ कवि ने इस प्रकार किया है—

मुनो बिनडी मैं किरति बखानी, महरा बस महराई रे।

मयेठ केसट को नाव बछावै को लावेठ पहराई रे।

कोई गुन साह फन सिर झुझु बला और गुन बीचह रे।

तीर भीर छपसै ने छोई, पाहिरै तो फल पांचह रे।

नामसी ग्रन्थावली ७११

वर्षात् संसार एक सागर के समान है। इसमें भ्रम नौका के समान है। नाव पर बहनेवाला पार छपछा है। नौका के प्रस्थान के पश्चात् जो नाविक को बुझाता है, वह मूर्ख है कारण वह नौका छोटाता नहीं है। वर्षा में नदी का पाट मन को आकर्षित कर लेता है। पवन-संचालित झर्रे मन को प्रकम्पित कर लेती हैं। यों ही, मन की दृष्टि से अहंता के उद्भेदन से पार जाया जा सकता है। इसके पश्चात् महरा महरा के विवाह के माध्यम से कवि आत्मा परमात्मा के मिलन-स्वरूप का प्रतीकात्मक वर्णन करता है।

कवि ने इस ग्रन्थ में आध्यात्मिक विवाह की प्रस्तावना और उसका स्वल्प विधान कर्तार जाति में प्रचलित विवाह प्रथा के अप्रस्तुत विधान के माध्यम से किया है—

२—नागरी प्रचारिणी सभा हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का प्रयोजन त्रैवार्षिक

विवरण १९२६ २५ पृ० ४३१।

भा भिनुसार बविकरा होतहि [×] पाझिल पहरा रे ।
 हुलह बोलाबहु बोक पुराबहु ओ हँसि बोला महरा रे ।
 हुलह ठबळा भाँस मजीरा, महुवर बाँसुरि बाजे रे ।
 सबर सोहाबा मेहरीन पाबा बर पर महरि खाँसे रे ।
 पूजा पावी हुलहिनि राठी हुलह मा असबारा रे ।
 बाजल बाजे झिउ सब छाजे मा सल सल पसारा रे ।
 मँसल बारा मा बहकारा बले गरव सब केडी रे ।

पृष्ठ ७२० ।

इस प्रकार हुलह ठबर, भाँस, मजीर, बाँसुरी हुलह बोक आदि विवाह-सम्बन्धी श्राव्य विधानों के माध्यम से कवि आत्मा और परमात्मा का मिलन और परिचय की भूमिका प्रस्तापित करता है ।

‘कहरा’ या ‘कहराँ’ एक प्रकार का लोक गीत है जो कहरों में प्रचलित है । ‘बिरहुक’ ‘बोलीसा’ आदि कवियों के साथ कबीर ने भी ‘कहरा’ का प्रयोग किया है । उक्त साहित्य के अन्य कवियों ने भी इस विधेय विधा का प्रयोग किया है । ‘कहरानामा’ इसी परम्परा के अन्तर्गत की रचना है । यह गेय है जिसका गेय तत्त्व लोक धुनि पर आभाषित है ।

ममसा या मससा नामा —नामरी प्रचारिणी समा में जायसी द्वारा ‘असरावती’ की एक हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है । इसमें ‘मससा का तीन पृष्ठों का एक हस्तलिखित अंश भी संरक्षित है—

किया है सोदसदाय महमद हुल असरावती सन्ध केर एह नाम बी मससा जाने लिखब^१ ।

इस रचना में कवि असाह से प्रेम करने का आग्रह करता है—

बह तन बकह मियाँ सो आई । जिहि का पारि तिहि की पारि ।
 बाठ बहुत जो काहे बवाई । छुल पछोरे तदि तदि आई ।

+ + + +

अब साईं सो नेह कइ केव न यह संबोप ।
 कोलू ते परि अवरी, मई बँस ही बोग ।

१—नामरी प्रचारिणी समा,—‘जायसी द्वारा असरावती और मयनों की प्रतियों’

नियेम भाव के जीवन का कोई मूल्य नहीं है। यही इस कृति का प्रतिपाद्य विषय है। विषय की अपेक्षा भाषा की दृष्टि से इन कृति का विशेष महत्त्व है। १९ वीं शताब्दी में प्रचलित बबली भाषा में मुहावरों और छोटोछोटियों के अनुपम उदाहरण इस कृति में उपलब्ध हो जाते हैं। उदाहरण—

- (१) बेहि घर धामु तननि है, बहुजन कोल सिंगार।
- (२) पुष्प पाप एक रूप ना जानी बूझक बूम पानीक पानी।
- (३) प्रीतम प्रेम कोइ कहै जाना जानक बेत प्यारहि जाना।
- (४) बंत न समझु करसि का बैठ बाजुहि बनिमा कान्हिहि सेठ।
- (५) नितबै तोर रूप मैं हेरा भाई बंध कि बाइ पबेरा।
- (६) सक्हु कछु नेकी के साबा बाबा भात उड़ावा पाठा।

ससमान—इनकी रचना 'बिनावसी' है। उसमान गाजीपुर के निवासी थे सूफी-काव्य-जारा के अन्तर्गत लिखे गए प्रेमास्वानक काव्यों के कवियों में अपने स्थान का परिचय दिया है। इन परम्परा का अनुसरण करते हुए ससमान ने भी अपने निवास स्थान गाजीपुर का परिचय इन पंक्तियों में दिया है—

गाजीपुर उत्तम स्थाना देवस्थान भावि जय जाना।
मंगा मिथि यमुना तहू बाई, बीच मिथी मोमटी सोझाई।

×

×

×

ताजी तुरकी बड़ि बकाहि, जानहु जमरा मीर।
मुल मुसबास नपर महं, परमन बासी तीर।

जाने निवास-स्थान के परिचय के परभाव कवि अपने परिवार का परिचय देता है। उनके पिता का नाम 'सेलहुसेन' था। इनके पाँच भाई थे—

कवि उसमान बसे तेहि माऊँ सेल हुसेन तनै जब नाऊँ।
पाँचो बाइ पाँचो बुझि हीये एक इक भाँति सो पाचो लीये।
सेल मजीब पई सिद्धि जाना, सापर सील ऊँच कर जाना।
मानुसह बिचि मारग महा बोग साच बो मोन होइ रहा।
मेग फेनुछाह पीर अपारा, फने न काहु मई इपिकारा
मेग हमन पाएन मन आहा मुन बिदा बहै बुनी सराहा।

कवि उसमान जहाँगीर के समकालीन थे। अपने युग के सम्राट के रूप में उन्होंने जहाँगीर की प्रशंसा की है—

मुकद्दीन महोपति भारी जाकर जान मही मेंह सारी ।

जाबहि बरखी और इराकी, रत भिसिरी कस्तुरी कटाँकी ।

×

×

×

तबह साह बस रवि बजिमारा, प्रीयम होइ रहा संसारा ।

मानु सौह बर बख ठहराई संमुख साह निमर न आई ।

'बिजावली' का बारम्ब कवि उसमान ने दियरी १०२२ में किया था। इस काव्य के प्रथम में कवि को बपेष्ठ परिभन करना पड़ा था। कारण यह कि प्रथम काव्य है और कथा की संवेदनशीलता को धृष्ट-वृद्ध करने की संकल्पना इस तत्व पर आधारित है कि कवि में स्वयं किशोरी संवेदनशीलता है। कवि ने उसका वर्णन इस रूप में किया है—

तन सहस्र पादस बर बही, तब हय बचन बारि एक कही ।

कहत करेन कोहु भा पानी सोई जान पीर शिन्ह बानी ।

अपने मुख के रूप में कवि ने सिद्ध साह निजाम का स्मरण किया है—

साह निजाम पीर शिबदाता निस्त तेज बिम रवि परभाता ।

नार गोश्वि भीतर मस्वता, जई बस्त बर सब कोइ जाना ।

×

×

×

×

मोहि जना कै एक तिल, बसा न लाबहि गहि माच ।

गुह मुख बचन मुताप कै कवि मह कीन्ह सताप ।

नैपाक के राजा बलीमर तथा राजी हीरा ने शिव की समस्या की। शिव की कथा से एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम मुबान रखा गया। मुबान गुप्त घाली या कुशाग्र बुद्धि का था। अस्य मायु में उसने अनेक किशोरी का वर्णन किया। वह एक कुशल मस्वागोही था। एक तिल मूयवा के उपरान्त वह अपने अनुचरों के साथ बरबीठ रहा था। मार्ग में लौंभी आई। वह मार्ग मूक गया। वह एक देव-प्रेत पर प्युंका। देवकी में उसे नींद आ गई। देव अपने देव के राजा के पुत्र की रक्षा हेतु द्वार पर बैठ गया। इस मध्य देव के शिव ने उसे सूचित किया कि बलिम के राजा बिजदेन की व्याख्या करीम कथा बिजावली की

बर्ष उत्सव मनाया जा रहा है। दोनों मित्रों ने बहों के लिए प्रस्थान किया। वे सोते हुए राजकुमार को भी अपने साथ ले गए। कुंवर की निहा सुनी। वह बिनाबली पर मुन्ब हुआ है। उसने अपना बिज बनाया। बिज बनाकर वह पुनः सो गया। रोज उसे पुनः मझी में उठा लाये। कुंवर के बिज को देखकर बिनाबली बिली बिकल हो उठी। मुजान पर लौटा। मुजुडि गामक ब्राह्मण के साथ वह पुनः उस रोज मझी पर पहुँचा बहों उसने एक अम्ससत्र की संस्थापना की। बिनाबली के बूठ कुंवर की खोज करते बहों पहुँचे। उनके साथ मुजान रूप मगर जाया। दोनों द्विज मन्दिर में मिले।

बिनाबली ने एक कुटीयर का अपमान किया था। प्रतिशोध की भावना के कारण कुंवर को जन्मा कर उसने एक पर्वत की गुफा में डाल दिया।

बहों उसे बचकर मिला। राजकुमार के बिरह-ताप के म यह सकने के कारण बजबर ने उसे छगक दिया। एक बन मागुप की प्रेरणा से उसके नेत्र ठीक हो गए। इसके पश्चात् एक यज्ञ ने उसे परिवर्त किया। एक पक्षी उन दोनों को उत्पश्चात् उड़ा के गया। भय से हाथी ने उसे समुद्र में मिरा दिया। मुजान सागर मझ पहुँचा। बहों की राजकुमारी बेलाबली से उसने विवाह किया। वह उत्पश्चात् बिनाबली के श्रेष्ठ में जाया। शोक भय से बिनाबली के पिता ने राजकुंवर की हत्याका प्रयत्न किया। परन्तु राजकुंवर हत्यारों को पराजित कर, बिनाबली से विवाह कर बर लौटा।

म्यामस श्रौं (ज्ञान कवि)—कवि ज्ञान का स्पष्ट परिचय अभी तक उपलब्ध नहीं हो सका है। इस सम्बन्ध में विचार करते बाबो की बारणा है कि वे घाह्वर्ही के समझासीन थे। ज्ञान-रचित 'अक्षिफ श्रौं की पैड़ी' नामक एक रचना की बचों की बाठी है। इसके रचयिता ज्ञान कवि माने जाते हैं। इस कृति की रचना कवि ने अपने पिता अक्षिफर्ही की कीर्ति की स्मृति में की थी। इसमें नवर कोट के मुठ का वर्णन है। डॉ० सरला शुक्ल ने इस ग्रन्थ से कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत की हैं—

पहले बहदु गुमरिजे जिन्ह मुमट उपजाया।
बोल त्रिनाथन कारनै, रचने गहि काया।
मान सदै सारै नहीं, सो करमु माया।
सोई जिन्हे ज्ञान कहि, त्रिस बोल पुराया।^१

बान कवि के १० ग्रंथों का उल्लेख मिलता है । २ इसमें २६ ग्रंथ प्रेमास्मानक काव्यों की परम्परा में आते हैं । इनमें से 'कथा रत्नबागिनी', कथा कमलावती 'ग्रन्थ कुण्डि सागर', 'कथा कमलावती सुखी प्रेमास्मानक काव्यों के सत्यार्थ की रचनामें हैं ।

कवि इस सन्दर्भ की रचनाओं में सुखी प्रेमास्मानक काव्यों की परम्परा के अनुसार निर्गुण कथना करता है । मुहम्मद साहब का स्मरण करता है साहेबल्ल का नृणपान करता है —

सोकरु से पचसतेरे, बहोरीर के राज ।

ठीस मोसु में बाग कहि, पड़ु छागरी सब साध ।

कथा कमलावती ।

मुन बखान कर सुनपती को, बिरबीर बपता कोरी की ।

साहि बहो साहिज को साह, बहोरीर मुख बयल पनाह ।

कथा पुहुप बरिया ।

कथा तत्परगत में कवि औरंगजेब का उल्लेख करता है—

बीनवार कर भजो मू मार, औरंगजेब साहि मुधार ।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि बहोरीर, साहबबहो एवं औरंगजेब के काल तक कवि जीवित थे । अर्थात् कवि बान का समय सन् १६०० ई. के उत्तरार्ध में से लेकर अठ्ठाध्वी छतावती के पूर्वार्ध तक था । कवि बान ने अपनी विभिन्न विभिन्न रचनाओं के रचनाकाल का भी उल्लेख किया है, जिससे उनके समय का परिचय मिलता है—

संक्रु सोछु बी पन्नासी जयहल भास कथा प्रकासी ।

कथा कपतगरी ।

नाम बरुको बरिया पुहुप, मुनि रीफ बकि प्राण ।

सत सूर सैताबीर में कथा कपही बह बाग ।

कथा पुहुप बरिया ।

शेख मन्त्री—इसकी कृति 'ज्ञानबीप' है। ये बर्होवीर के समकालीन थे।
'ज्ञानबीप' की रचना इन्होंने हि० सं० १०२९ में (व० १९१६) में की थी।

मुरार बीनरिल पति बर्होवीर निरत नेम।

कुल बीनरुति कमल की साहेब सहित ससेम।

साहि ससेम सचपति सौनी बस के मार कंस दस ब्रोनी।

×

×

×

एक कुमार सन रहे सचीसा, राज मुझही मनहु बरोसा।

संबत् सौसह सै फिहरा उक्ति बरत कीन्ह अनुसार।

कनि बीनपुर के अत्यंत बछेरेमऊ का निवासी था—

बछेरेम दोसर पुर जागा बाठतपुर सरकार सुजागा।

तहना सेपनबी कनि कहीं बखर बसर पुन पिगस मही।

बीर सिंगार बिछु किछु पाबा पुरत पद सै बोग गुमाबा।

'ज्ञान बीप' की कथा मेंमिसार मिथिक के राजा रामसिरोमणि से सम्बन्धित है। शंकर प्रसाद से उसे ज्ञान बीप पुत्र सरयण हुआ। बाबेट में वह अपना मार्ग भूल गया। छिन्नाब मोमी उसे योग में बीधित करने में असमर्थ रहा। फिर छिन्नाब ने उसे संघीत में बीधित किया। वह बिजानगर के राजा की समा में संगीत से मुग्ध हुआ। सुजानी राजा की पुत्री देवपानी की सहेली थी। उसने ज्ञानबीप को देवपानी की ओर आकर्षित किया। मंत्र-बल से आकाश मार्ग से वह देवपानी के महल में प्रतिष्ठित उत्तरा था। एक दिन राजा के साथ से जाह्नव होकर वह चिरा। ज्ञान बीप बन्दी बनाया गया। उसे बच का ढण्ड मिला। मन्त्री ने इस ढण्ड से असहमति प्रकट की। राजा मुखदेव ने काट की पैटिका में बन्द कर उसे सख्ता में प्रबाहित कर दिया। ज्ञानबीप मानस्य की राजपानी भानपुर में बहता हुआ गया। राजा ने उसे अपने पुत्र के रूप में स्वीकार किया। पुनः ज्ञानबीप और देवपानी का विवाह हुआ मानराय की मृत्यु पर ज्ञानबीप भानपुर गया। देवपानी की विरह पीड़ा से त्रिभि होकर नुरजानो ज्ञानबीप को खोज में निकली। बलसति रानी ने उनको सहायता की। मार्ग में ज्ञानदेव देवपानी के पास पहुँचा। उसे लेकर अपने स्वदेव के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में एक बलसति-गुरु जनापय के तट पर ब दिनार के लिए उठे। वहाँ का

राजा सुम्बर सेन देवबानी पर मुक्त हुआ । उसने सल किया । ज्ञानीन ने सुम्बर सेन पर आक्रमण कर देवबानी को मुक्त किया । इस प्रकार यह कथा सुनायी है । उदाहरण के सिद्ध इस कृति का एक अंश यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है । यह अंश बिरह-वर्णन के सार्वभौमिक है । निम्नसम्पन्न के अत्यन्त बिरह भासा की एक परिपाटी प्रेमात्मिका कालों में उपलब्ध होती है । प्रस्तुत अंश साधन भाव से सम्बन्धित है—

एहि साधन बिरहिन तन तावन बरसत बस दुख बीज बसावन ।
 देखक मेव मनोजक सेना, अंकुश चरित मझकत मैना ।

×

×

×

दुर्ग बरन बरसे चहुँ ओरा दुख मान बहि नाम हियोरा ।
 बिरहि निरह बहि बोल्ह दयाया बोल्हि बन भावहि उटि बामा ।
 मरा न नाम पैठि बिषामी नैन मूढि संबरसिनुप सामी ।
 कवन उवारे नामक बोल्ह दिया हने दुख सायक ॥
 एह दुप बिछने नायका नायक जेतहि बिदेस ।
 मूख सने सियार रस भई जो बोसिनी बस ॥

कवि कासीम शाह—कासिम शाह की रचना 'हंसबहार' है । इस रचना में कवि ने अपना परिचय इस रूप में दिया है—

है कलालक सबक मझिमारा बरिमाबाद नगर उजिबारा ।
 बरिमाबाद नाँव मन काँव, हमानुशाह फिया कर नाँव ।
 तहूर्त मोहि जन्म बिधि दीन्हा, कासिम नाँव बाप का दीन्हा ।

कवि ने इस कृति की रचना दि० सं० ११४८ (सं० १७८३) में की थी ।

आरह से जनबाद को भावा ठव बह कथा प्रेम कवि साधा ।

प्रायः समस्त के रूप में कवि लिखी सुलतान मुहम्मद शाह का स्मरण किया है—

मुहम्मद शाह बैहली सुलतान, कानी पुष बह कीज बजानु ।
 जाबै पाट और बर्याबा भावहि सोय बसत के राजा ।

सलोन नगर के पीर मुहम्मद और पीर असरफ के प्रति सम्मान भाव व्यक्त करता है—

सुमिरौ नाम करीम सो पीरा, बैहि की भाव बडे बहि बीरा ।

×

×

×

तेहि ज्योति में दीपक बारा पीर मुहम्मद बम उजियारा ।

बर्मबस्त निरमल मुख, बल्लभ दुसारे पीर ।

हिम घर दीपक बुज रहा असरफ जोत करीर ॥

बल्लभ नगर के मुस्तान बुख्तामसाह को हंस नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । बुख्तामसाह की मृत्यु पर देश में अराजकता फैली । बाबक हंस बन्धी बना लिया गया । छवकी माँ बन्धीपुद्द से बाबक हंस को लेकर कम देश के साह के पास पहुँची । चीन के सासक की रानी मुछद्दार के गर्म से अबाहर नामक पुत्री हुई । अबाहर ने सरोवर तट पर स्नान करनेवाली एक परी से मित्रता की । उसका नाम शरर था । एक दिन कब्र उड़कर हंस के निकट पहुँची । हंस के मन में अबाहर के प्रति छवकी आकर्षण उत्पन्न किया । इस बटगा के उदुपाटन के कारण शरर बन्दिनी बनी । हंस अबाहर के मध्य व्यवधान उपस्थित हुआ । अबाहर का विवाह दिगीर के साथ ठीक हुआ । शरर दिगीर को विवाह मध्यम से उठा ले गई । उसके स्वाम पर हंस को बिठा दिया । दोनों का विवाह हुआ । इसके पश्चात् परिवों ने हंस के स्वाम पर दिगीर को बैठा दिया । अबाहर ने दिगीर के साथ विवाह करना स्वीकार नहीं किया । दिगीर बोयी बल्लभ निकल गया । हंस अनेक बापाओं के पश्चात् अबाहर से मिला । हंस अबाहर के साथ घर की ओर प्रस्थानवर्तित हुआ । मार्ग में दिगीर के प्रयास से उनमें पुन विरोध हुआ । वह भ्रमण करते भोला साह के यहाँ पहुँचा । वहाँ छवकी पुत्री (दिगीर की बहन) से छवका विवाह हुआ । शरर के प्रमल से छव अबाहर भी मिल गई । अबाहर के घर से छव हसीन नामक पुत्र हुआ, जो उसका उत्तराधिकारी हुआ ।

‘हंस-अबाहर’ की कथा कास्वनिह है । कथा के घटनास्थलों के रूप में बल्लभ चीन और कम प्रदेशों को कवि ने चुना है । परन्तु पात्रों के नाम तथा घटना-क्रम अन्य प्रेमाख्यानाक कान्थों के समान भारतीय है । विप्रलम्भ वर्णन के सन्दर्भ की कुछ पंक्तियाँ उद्गहरण के लिए प्रस्तुत हैं—

मेन भूँ बस सावन जोरी सिउ जिन नाउ को सोवै ।
 घसी कल संघ करे किछोला राधा पहिरियु भूँटे हियोला ।
 मोर छिमार सो लागै गाहा, नही के बौह पोरै बोगाहा ।
 पवन भुसाबै मजहि मम निरह भकोरे बेव ।
 गयन बड़े उत्तरे अचति पित जिन घाम को लेव ।

बायसी के समान कवि कासीम शाह ने भी इस इति के स्पष्ट-रत्न का
 स्वीकरण किया है—

कासिम कबा जो प्रेम बबामी, बूँछे सोई जो प्रेमी जानी ।
 कौन बबाहिर रूप घोहाई कौन घर जो करत बकाई ।
 कौन हंस जो परछल कोमा, कौन शेष बेहि जेबे घोमा ।
 कौन पंख जो कठिन अपारा कौन घर जो ऊँचे पारा ।
 कौन मीन जिन संघ जिन बीना कौन सो दुर्जन अति दण्ड कीना ।
 को शानी जिन बानि सुनावा, कौन पुख जिन सुन बिउ कावा ।
 कौन हुट बेहि दरस न भूझा कौन मेघ बेहि धनहि भूझा ॥

मूर मुहम्मद — मूर मुहम्मद ने 'इम्नाबती' की रचना हि० ११२७ (सं०
 १८६१, या समु १७४४ ई०) में की थी । कवि किसी 'सबरह' नामक स्थान
 का निवासी था । यह सबरह जोनपुर जिले में अब भी विद्यमान है ।

कवि अस्थान कीन्ह बेहि ठाँव, सो वह ठाँव बबाहृष गाँव ।
 बुरब सिद्धि बहतास समाना, बड़े नलीखी को घाना ।
 है मत जय यह पंक्ति रहता रेहू दहाणु आमम कहना ।

इम्नाबती पर

इम्नाबती की रचना कवि ने एक अवस्था में की थी । इसका उत्प्रेषण
 उसी वृत्त प्रकार किया है—

है कवि समय गई तकराई छूँ न अबही कवि करिकाई ।
 बाके हिएँ तरिक बुनि होई बहुतै बूँक कहत है सोई ।
 विनय कविजन बह कर जोरी है जोरी बुनि दुनिया मोरी ।

इसके अतिरिक्त इनकी दूसरी कवि है 'मनुराम बौमुरी' । इस इति का
 रचना काव है हि० ११७८ (संवत् १८२३)—

मह इम्प्राह् से बठहतर, फेर सुनाएव बचन मनोहर ।

ऐसा निस्वात किया जाता है कि 'नन्दरत्न' नामक इनकी एक अन्य कृति भी है परन्तु यह कृति प्राप्य नहीं है । इन्द्रावती में कवि ने साहेब कक के रूप में 'मुहम्मद साह' की प्रशंसा की है—

कहो मुहम्मद साह बखानू है मूरख सिद्धी सुखवानू ।

सब काहू पर बामा बरई धरम सक्षित सुखवानी करई ।

'इन्द्रावती की कथा पूर्वार्ष तथा उत्तरार्ष दो भागों में है । प्रथमार्ष प्रकाशित है उत्तरार्ष की हस्तलिखित प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित पड़ी हुई है ।

कार्तिकर के राजकुमार ने स्वप्न में दर्शन में किसी सुन्दरी का सौन्दर्य देखा । राजकुमार ने अपने तपस्वी पुत्र नाथ को सब प्रदर्शक बनाया । वह अपने माठ साधियों के साथ योगी होकर आगमपुर के लिए चल पड़ा । बनेक बाबाओं के पस्चात् वह आगमपुर पहुँचा । सिख भण्डार में आकाशवाणी हुई, और राजकुमार राजकुमारी की कुमारी में गया । बाटिका में राजकुमारी से उसका मिलन हुआ । राजकुमार मुग्ध हो गया । राजकुमारी को प्राप्त करने के लिए समुद्र से मोटी निकालना अनिवार्य था । इस प्रयास में वह बन्दी हुआ । उसके पत्नी कुछ सेन ने उसे मुक्त कराया । राजकुमार को मोटी मिला और उन दोनों का विवाह हुआ ।

कवि ने इन्द्रावती के उत्तरार्ष में कथा का आरम्भ राजकुंवर और इन्द्रावती के संयोग मुस से किया है । राजकुंवर की प्रथम रानी सुन्दर कार्तिकर में कष्ट से दिन व्यतीत कर रही थी ।

राजकुंवर के प्रस्थान-समय सुन्दर रानी बर्बरती थी । समय से सुन्दर रानी के कार्तिकराय नामक एक पुत्र हुआ । रानी ने एक दिन पवन से राजकुंवर के पात सन्देश भेजा । राजकुंवर ने स्वदेश के लिए इन्द्रावती के साथ प्रस्थान किया । मार्ग में उन्पि की कन्या ने राजकुंवर के प्रेम की परीक्षा ली । वह अपनी परीक्षा में सफल हुआ ।

बाखेट में विधाम-वेला में राजकुंवर ने नूरा के नीचे एक बुक से एक कथा सुनी । बत्तम नामक कुंवर का प्रेमा नामक राजकुमारी से विवाह हुआ । बत्तम

काष्ठ में ही बल्लभ की मृत्यु हुई, प्रेमा सती हो गई। रामचंद्र इस कथा से काहत हुआ। इस आघात से उसकी मृत्यु हो गई। दोनों रामियों उसके साथ लगी हो गई। इस कृति से एक बंध यहाँ प्रकट किया जाता है। यह उदाहरण पल्लव के अक्षरों पर पालक के अक्षर-स्वरूप का है—

प्लु पावत पानी से बायेन सावन जो मादों भरि लाएन ।
 पावत कलु बायेन पानी से, सावन भादों गौर बरिसे ।
 हरिबर मई गौर सी धूपी, पहिरेन प्यारी नीर सुसुधी ।
 कमलै कामिनि कामिनि कारी करे न किंच संघ कामिनि प्यारी ;
 बड़ी बौसास मलार बजाये, प्यारी प्यारी पारी पारी ।
 बाग द्विदोल को परमिनी बारी झूले अनंद द्विदोल प्यारी ।
 बिछा एक न मागहि, मागहि अपन हुआत ।
 भोग सुख हंसि खेक भो, बीति गएन बौसात ।

अनुराग चाँदुरी—मूर्तिपुर के बीच नामक राजा के अन्तर्गत नामक पुत्र के संकल्प और विकल्प नामक दो मित्र थे। राजा ही राजा दुष्टि भईकार एवं चित्त बादि भी उद्योग बलिष्ठ रूप में सम्पन्न थे। अन्तर्गत महाभोगी के सीमा पर युद्ध था। परन्तु वह सर्वव्यापक नामक सुन्दरी पर भी आकर्षित हुआ। अन्तर्गत का परिवार समस्त दुष्ट नामक सम्पत्ति से हुआ। उन्होंने उसे स्नेह-मार्ग से दीक्षित किया। स्नेह नगर के मार्ग प्रदर्शन-रूप उन्होंने एक लोहे को उनके हाथ कर दिया। राजा मार्ग का परिवार कर उससे दक्षिण मार्ग का अनुसरण किया। इन्द्रिष्ठपुर की कामुकी मन्मथानी नामक पत्नी के आकर्षण से अग्रवर्तिन होत हुए स्नेह ने नगर में प्रवेश किया। वहाँ सुमाकी मेरवा के कला करण और योगता का विवाह हुआ।

अन्तर्गत पत्नी सहित स्वरेण भोग। इस काव्य राज का एक बंध उदाहरण के लिए, यहाँ दिया जा रहा है—यह बंध बल्लभ के अक्षर के रूप में है—

पूना रेक मुलच्छन काला बून्ध भरा रक्त सी प्यासा ।
 कहा बरे काहा अनुरागी दीक्षित निम पिम्बि केहि कापी ।

केहि सबेह के बसब अपारा, साँखन तोहि हिरदय में डारा ।

बम्मा पीठ रंग छलि बैही, कही पीत क्लि कीन्हा तोही ।

कवि हुसेन खली — कवि हुसेन खली ने हि० सन् ११३८ में 'पुहुपावती' नामक काव्य-ग्रन्थ की रचना की थी —

हुसेन खली कवि से बहु जाठी करी कया क्लिबें बहु भाँठी ।

बासक ठाँठ कहीं हरि नाळें धरो सवानय कवि निनुनाळें ।

केना निवासी केयब तास कवि के काव्य-बुध ये—

केसवकाठ केना के बासी, काबिबेर हे बुद्धि प्रकासी ।

कवि ने इस रचना का प्रथम हि सन् ११३८ में लिखा था—

म्यारह से भरसि सनी, पुहुपावती कया तब मनी ।

काशी राज मानिकचन्द बिजय वसुहटा के रिग बाग दे रहा था । इसी सन्धर्म में पद्मिनी और रत्नसेन की बर्णन बनी । एक ब्राह्मण ने कहा पद्मिनीयों केवल बम्बू द्वीप में होती है । इस समय एक भाटिल ने यह सूचना दी कि बम्बू द्वीप के कनकपुर के मरेश पणसेन और रामी कौशिल्या की पुत्री पुहुपावती पद्मिनी है । मानिक चन्द ने पुहुपावती के पास अपना चित्र भेजा । पुहुपावती मुग्ध हुई । इस कृति की प्रति अखिल है । अतः कया के उपसंहार का स्पष्टीकरण नहीं हो पाता । इस कृति का एक अंश उपहार के लिए यहाँ उद्धृत किया जाया है । मानिकचन्द का चित्र पुहुपावती को मिला है । इसी सन्धर्म का वर्णन कवि यहाँ करता है—

पुहुपावति यह बधा जु देखी, छलि छलि चित्र मे मया बिसेपी ।

को कय भई जगत् निरवर्ष जाहि बस चित्र दया य कई ।

×

×

×

छलि छलि चित्र काम उन जागा, हूँ मनु बिबरा बिबरन रंजना ।

बिचहि कहीं सु होई संजोयू, मिलै न मित्र मन होइ बिजोयू ।

गहि कर धनुष सो पाँचो बाना, तिय उन कठिन जानि उन ताना ।

प्रथमहि बाग सु मोह बलावा अस लाथो मज जाठ बनावा ।

कवि शेरान निमार — कवि खेत निमार ने 'धुमुक प्रसेया' नामक ग्रन्थ की रचना की थी । कवि ने अपना परिचय इस रूप में दिया है—

सेकपूर अति पौर सुहावा सेख निहार नमन तह पावा ।
 कारिज ओर सनन अबरार्द अपम अबाह नहूँ दिशि जाई ।
 घस इबीमुल्लाह घोहाये सेख पर बिन्दु आय बचाये ।
 पाठ साह अकबर मुस्ताना ठेहिक राबकर करत बलाना ।
 अवध देश सुबा होइ आए बीस बरस तह घोहाय ।
 ठेहि के सेख मोहम्मद बारा कसबत घोषी अवतारा ।
 तामु गुलाम मोहम्मद नाऊ सो मन पिता बी ठाकर गाऊ ।
 ठेहि घर हौं विपनी बीतारा कार बीन जस बी मुख बारा ।
 'सेहर निहार' नामक ग्रन्थ में कवि ने लिखा है—

इन ग्रन्थों से केवल इतना ही स्पष्ट होता है कि अकबर के समय अभी
 बुल्ला दिल्ली से अवध आये। अवध में कबीरी के निकट दोस पुरा ग्राम में वे बसे।
 सेख इबीमुल्लाह नहूँ बीस वर्षों तक रहे। उनके पुत्र का नाम सेख मुहम्मद था,
 सेख मुहम्मद के छत्रके सेख गुलाम मुहम्मद थे, इनके पुत्र दोस निहार हुए। दोस
 पुरा अवध (अयोध्या) और कबीरी के मध्य स्थित था।
 जिस समय सेख निहार ने इस ग्रन्थ का तारम्भ किया उस समय दिल्ली
 पर शाह आलम का शासन था। कारिज साँ चहेले ने बाबसाह की बाँछें
 फोड़कर उसे बन्धा कर बिठा था। परन्तु सुबा अवध सुरक्षित था। वहाँ का
 शासक आसफुद्दीन था।

आकमासाह दिन्व मुस्ताना ठेहि के राज यह कबा बलाना ।

कारिज साँ सो अवध रहेला सो अपराज कीन्ह बड़ पेला ।

पाठसाह नहूँ बाँधर कीन्हा सुत अब तारि सबहि बुख दीन्हा ।

नहूँ दिश अन्य सुन्य सब छावा अवध देश नहूँ हरब बचावा ।

बहिया कान आसफुद्दीन तामु सहाय रहै निठ मौला ।
 कवि ने अपने ग्रन्थ का प्रचयन द्विती छम् १२०३ में किया था—

हियरी सन् बारह सेपाँचा, बलेत मेम कवा यह सौँचा ।
 बट्ठाएह से सैठाओघा सुक्ख विद्धम सेन नरेछा ।
 छतरह से बारह पुनि साका, पुपं मास नुम्पौ चसि राका ।
 सत्तावन बस बीते आठ ठव उपस यह कवा क बाठ ।
 घात बिचस यह कीन समापत, दुर्मति नाम बहो यह संक्ख ।

इस कृति से एक अंश उदाहरण स्वल्प यहाँ उद्धृत है । त्रियोग में वसन्त के
 जीपल-रूप के वर्णन से यह अंश सिद्धा क्या है—

फूले फूल सिखी मुंजारहि, लागी लागि अनार के बारहि ।
 मै का कर्क कहीं बर जाऊँ मोह करै नहीं बरत भंड ठाऊ ।
 टेसू फूस तो कीण्ह बंजोर, सामी बामि जरै चहुँ मोरा ।
 त्रियोग भावना सहीसि हो जाती है—

बन बरबे बामिनि लोकाहीं नारी कंत के गोव सिद्धाहीं ।
 हय कैहि के गित सबे जाहीं पावस समय देह बल नाही ।
 बर हमार सब भीबा पानी, सत राजा हम बहि प्यारानी ।

प्रवाखा अहमर—स्वाजा अहमर का जन्म सन् १५३० में हुआ था । इनका
 नेवास-स्थान प्रतापगढ़ के अन्तर्गत बाबू नामक पौर था । इनकी कृति 'नूरजहाँ'
 । इस प्रकार की भावना प्रचलित है कि मूसु के दो माह पूर्व इन्होंने 'नूरजहाँ'
 की रचना की थी । इनके पुत्र का नाम मोहम्मद खमीन था । 'नूरजहाँ' की रचना
 रचना इन्होंने बामिनी के 'पद्मावत' और कासिम साह के 'हंस जवाहर' नामक
 कृतियों से मिली थी । इस कृति की रचना इन्होंने संवत् १६६२ में की थी ।

मलिक मोहम्मद गुस्न न जाना । कवा पद्मिनी कीन्ह बखाना ।
 पड़ चितौर बी सिचस बीपा । छियेउ बखान सो मेम सनीपा ।
 ओ कासिम बह बरिया बाबी । छियेउ हंस के कवा सो आवि ।

इस रचना की कवा ईरानगढ़ के मुख्तार मलिक साह से सम्बन्धित है । उनकी
 दरानी नूरतार को सुर्यदेवाह नामक पुत्र हुआ था । सुतम घहर के मुख्तार खबर
 साह की बुनी का नाम नूरजहाँ था । नूरजहाँ की सहेली मुमति थी । वह परो थी ।
 मुमति सुर्यदेव को नूरजहाँ के पाम बडा से पद । सुतन में सुर्यदेवाह और नूरजहाँ
 का विवाह हुआ है । इसके पश्चात् सुर्यदेव नूरजहाँ को लेकर रूम आया । अपनी

अपनी गड़की पत्नी गुलजोन से मिलकर बहु बहुत प्रसन्न हुआ। कथा के तालंहा में कवि ने इसके कमर का स्पष्टीकरण भी दिया गया है।

देसेन मति कामा के मोही दूसर घाट बहर कहुँ नाही।

काया मानि नग्न पुर पाटा देसेन धरम दीप के बाटा।

सब बहपति कामा के माही, दूसर ठाँउ लसी कहुँ नाही

गुलजहाँ कामा के बोली काबा समुद्र दीप जहुँ मोली।

कवि मसीर—कवि महीर गाजीपुर के बमनिवाँ बंस के निवासी थे।

पाजीपुर बिना बिहि ठाऊ। ताड़े मानि बमनिया माऊ ॥

बही बगम भूमि है मोरा। निज मरतत कहुँ कहुँ मोरा।

इन्होंने 'प्रेम कथा कृति की रचना की। इस ग्रन्थ की रचना कवि ने हिबरी सन् ११०३, सन् १२७४ के बीकीर (?) महीने की बीबीसवीं तारीख को की की—

हिबरी तैरह सो पैंतीसा या बीकीर मास बीबीसा।

संसत उम्मीस सो चौहत्तर, भादों बरी बदा सस बत्तर।

करके बहुत ही जग्ट कहेता, महि दिन कथा किमो मैं सेता।

इस ग्रन्थ में बुलुफ-जुलुफा की प्रेम-कथा सम्पादित है। इस कृति का एक अंश छप्पाहरण हेतु वहाँ उद्धृत किया जा रहा है। मूल की मूल्य के तत्वात् जुलुफा की कथा इस अंश में वर्णित है—

जाय बकब एक माटी झाड़ा, धाम मिरी बहु कइती झाड़ा।

फूम गुलाब जो रहे कपोला लोच किहिस बस कंसुक फीका।

दक्किलमी हिन्दी की प्रेमास्वाभावक रचनाओं

दक्किलमी हिन्दी की प्रेमास्वाभावक रचनाओं उत्तरी भारत के प्रेमास्वाभावक कान्नों से मिल हैं। काल्पनिक जाया-सैली एवं धन प्रयोग इन सभी दृष्टियों से इन को बरों की रचनाओं में मिलता है। परन्तु उद्देश्य की दृष्टि से इनमें अन्तर नहीं है। दक्किलमी परम्परा की प्रमुख अस्मितात्मिक कृति 'काम राम व परम' है। इनके लेखक निजामी थे। इनका समय ई० सन् १४२७ के बाद माना गया है। निजामी अहमद शाह लखित बहमनी का समकालीन था। कहा जाता है कि यह कृति 'अनुमन तारिफ-उर्दू' (पाकिस्तान) में प्रकाशित है। लतीफ़ीन हाफ़मी

(दफ्त में उर्दू मसठव ११५२ ई०—मुईलत खयब उर्दू बाबरा छाहोर पू० ११),
ने इस रचना का परिचय देते हुए कहा है कि इसकी रचना-सीसी सूफियों की
मसलकी सीसी की है। इसमें भी परमेश्वर की स्तुति की गई है। परन्तु इसका
खुद फारसी का बहुर है। रचना अपूर्ण है अतः इसकी समझता पर विचार
कामा सम्भव नहीं है। उदाहरण—

कि तू सोच गैरा गुसार्ई कबय । पदम राब तुज पाँव केरा फयस ॥

जहाँ तू बरे पाँव हो सर मरू । बायस सार कील कतराई करू ।

दक्खिनी उर्दू के सूफी मेमाखानक काव्य । पू० १२४ ।

इस परम्परा की तीसरी कृति है 'कुतुब मुस्तरी'। इसके लेखक है मुल्ला
बजही। ये गोस्वाम्या के शहाहीम शाह के दरबार-कवि थे। 'कुतुबमुस्तरी' की
रचना इन्होंने हि० १०१८ अर्थात् समू १९१० ई० में की थी—

तमाम इसकिया बीस बारा मने । सम एक हजार ठोर बठारा मने ।

कुतुब मुस्तरी दक्खिनी प्रकाशन समिति—ईदराबाद पू ५ ।

इस परम्परा की तीसरी कृति है, 'सैकुस मुस्तक ब मदी उक बमाक'। इसके
रचयिता बजही हैं। ये गोस्वाम्या के निवासी और बजही के समकालीन थे।
इस कृति की रचना कवि ने १०२७ हि० या १९१७-१९ ई० के मध्य की थी।
इसकी कथा का सम्बन्ध सिध बैद्य से है। इसकी कथा का संघटन बजही तथा
बजय कवियों की रचनाओं के कथा-संघटन से मिलन नहीं है। 'मुगाकरी' या
'मयुमाकरी' की कथा के समान एक राजकुमारी की सहायता से नाक को
नामिका की प्राप्ति होती है। समुद्र-भाषा अस्मान-उपवन तथा बजय बजौकिक
घटनाओं के समावेश के माध्यम से इसकी कथा भूमि निर्मित है।

'बजही' के नाम से 'अन्दा और बजौक' नाम की भी एक कृति उपलब्ध
हुई है। इस प्रकार की बजया व्यक्त की गई है कि यह कृति किसी फारसी
कृति का कथाम्तर है। (देखिए—बजय में उर्दू पू० ७८)। परन्तु यह निरूप
विचारपूर्ण है। 'दक्खिनी के बज और बज (सम्पादक श्री राम धर्मा पू०
२५६ २६ १९५४ ई०) में इसके अंश संकलित हैं। इसके आधार पर यह
संकेत मिलता है कि इसकी कथा मुल्लाबाद की कथा के अनुकूल ही है। मुल्ला

बजही की रचना की इसकी मूल योजना में विचारणा सम्बन्धी है ।

इस परम्परा की एक अन्य महत्वपूर्ण कृति 'चन्दर बदन व महियार' है। इसके रचयिता मुकौमी थे। वे बीजापुर निवासी थे और इब्राहीम खानिख घाह के समकालीन थे। यह विश्वास किया जाता है कि कवि ने इस काव्य की रचना सन् १६२७ में की थी। इस कृति में मुकौमी ने पचासी का स्मरण अपने एक के रूप में किया है। इस कृति पर विचार करते हुए मुहम्मद अकबरखान सिद्दीकी ने कहा है 'रचना का मकसद मजहूबे इस्लाम की अजमत बाहिर करना है। (देखिए—चन्दरबदन व महियार कबा-सम्पादक अकबरखान सिद्दीकी-सूचिका) महियार नामक एक मुबक चन्दर बदन के राजा की कन्या पर आसक्त होता है। परन्तु राजकन्या उसे अस्वीकार करती है। चन्दर बदन अपने प्राय त्यागता है। राजकुमारी इससे विधुष्य होती है। वह भी अपने प्राय त्यागती है। इस कबा का आधार ग्रहण कर 'आविची' नामक कवि ने एक फारसी मसनवी की रचना की थी (इसिखानी का पद्य व पद्य पृ० ४६०) परन्तु यह कृति अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी है।

गुलछने इस्क' इस कर्ण की एक अन्य महत्वपूर्ण कृति है। इसके रचयिता कवि मुबारकी हैं। इस कृति की रचना इन्होंने सन् १६२८ ई० में की थी। इसमें मल्लोहर और मधुमाकती की प्रेम-कबा वर्णित है। डॉ० एहतिषाम हुसेन ने अपने ठरूँ साहित्य के इतिहास में इस कृति पर विचार किया है। इनका यह निष्कर्ष है कि यह कृति पूर्ववर्त ईरान की मसनवी शैली पर लिखी गई है। अन्य रचनाओं में इमामिशाह हज 'यूननदन' हाफसी हज 'यूमुक बुनेखा' तथा ठरई हज किस्ते बहराम व गुलनदन' महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं।

सूफ़ी का अर्थ सुखी शब्द का अर्थ 'ऊन' माना गया है। इस सम्बन्ध में यह प्रस्तावित किया गया है कि ऊनी बख धारण करके एकान्त जीवन व्यतीत करते वाले और साक्षात् करने वाले साधकों के लिए इस शब्द का प्रयोग होता था। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस्लाम की प्रथम दो पलायनों में सम्प्राप्त व्यतीत करने वाले सामक स्वच्छ ऊन का आवरण धारण

१—किताब-मक-मुना—लेखक—गस अक-सरीब—लेख हैसियत इत्यादिको-
वीडिया जोफ़ रेसिडन एण्ड एक्सिड बास्मूम १२ से उदरत।

(दक्कन में उर्दू मसतब १९१२ ई०—मुईउल खयब उर्दू बाबरा काहीर पृ० ३९),
 ने इस रचना का परिचय देते हुए कहा है कि इसकी रचना-शैली सुफियों की
 मसनवी कबी की है। इसमें भी परमेश्वर की स्तुति की गई है। परन्तु इसका
 ध्वन्य फारसी का बहर है। रचना अपूर्ण है अतः इसकी समझता पर विचार
 करना सम्भव नहीं है। उदाहरण—

कि तू सोच मेरा मुसाई करम । पदम राख तुज पाँव केरा पयम ॥

जहाँ तू जरे पाँव हो सर पर । जामस तार कील कठरई कर ।

बखिखानी उर्दू के सुफी प्रेमाख्यातक काव्य । पृ० १२४।

इस परम्परा की दूसरी कृति है 'कुतुब मुक्तरी'। इसके लेखक हैं मुद्दा
 बख्शी। ये मोलकुष्ठा के इब्नाहीम खाह के बरबार-कवि थे। 'कुतुबमुक्तरी' की
 रचना इन्होंने हि० १०१८ अर्थात् सन् १९१० ई० में की थी—

तमाम इसकिया बीस बारामने । सन एक हजार ठौर अठारा मने ।

कुतुब मुक्तरी बखिखानी प्रकाशन समिति—ईदराबाद पृ० ३।

इस परम्परा की तीसरी कृति है, 'सेकुल मुकूब व यदी सल जमाज'। इसके
 रचयिता मवासी हैं। ये मोलकुष्ठा के निवासी और बख्शी के समकालीन थे।
 इस कृति की रचना कवि ने १०२७ हि० या १९१७-१८ ई० के मध्य की थी।
 इसकी कथा का सम्बन्ध मिश्र देश से है। इसकी कथा का संघटन जायसी तथा
 अन्य कवियों की रचनाओं के कथा-संघटन से मिल नहीं है। 'मुषाबती' या
 'मधुषाबती' की कथा के समान एक राजकुमारी की सहायता से मायक को
 नायिका की प्राप्ति होती है। समुद्र-यात्रा जज्मान-उपवन तथा अन्य जलौकिक
 घटनाओं के समावेश के माध्यम से इसकी कथा भूमि निर्मित है।

मवासी' के नाम से 'कथा और मोरक' नाम की भी एक कृति उपलब्ध
 हुई है। इस प्रकार की चारपा व्यक्त की गई है कि यह कृति किसी फारसी
 कृति का कपांतर है। (देखिए—दक्कन में उर्दू पृ० ७८)। परन्तु यह निर्वय
 विवादपूर्ण है। 'दखिखानी के पद और पद्य' (सम्पादक श्री राम धर्मा पृ०
 २८६ २६ १९१४ ई०) में इसके अंश संकलित हैं। इसके आधार पर यह
 संकेत मिलता है कि इसकी कथा मुस्लावाज की कथा के अनुकूल ही है। मुद्दा
 बख्शी की रचना ही हमारी मूल प्रेरणा में विद्यमान लगी है।

इस परम्परा की एक अन्य महत्वपूर्ण कृति 'चन्दर बदन व महियार' है। इसके रचयिता मुक़ीमी थे। वे बीजापुर निवासी थे और इब्नाहीम आसिब घाह के समकालीन थे। यह विश्वास किया जाता है कि कवि ने इस काव्य की रचना सन् १९२७ में की थी। इस कृति में मुक़ीमी ने पचासी का स्मरण अपने गुरु के रूप में किया है। इस कृति पर विचार करते हुए मुहम्मद अकबरुद्दीन सिद्दीकी ने कहा है 'रचना का मकसद मजहबे इस्लाम की आजमत जाहिर करना है। (देखिए—चन्दरबदन व महियार कथा-सम्पादक अकबरुद्दीन सिद्दीकी भूमिका)। महियार नामक एक मुक़द चन्दर बदन के राजा की कम्पा पर आधारित होता है। परन्तु राजकुमारी उससे विमुख होती है। वह भी अपने प्राप त्यागती है। राजकुमारी इससे विमुख होती है। वह भी अपने प्राप त्यागती है। इस कथा का आधार ग्रन्थ कर 'आसिबी' नामक कवि ने एक फारसी मसगबी की रचना की थी (इतिहासी का पद्य व पद्य पृ० ४२०) परन्तु यह कृति अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी है।

गुलशाने इल्क' इस वर्ष की एक अन्य महत्वपूर्ण कृति है। इसके रचयिता कवि मुसरती हैं। इस कृति की रचना इन्होंने सन् १९२८ ई० में की थी। इसमें मगोहर और मयूमाक़्ती की प्रेम-कथा वर्णित है। डॉ० एहतिशाम हुसेन ने अपने छद्म-साहित्य के इतिहास में इस कृति पर विचार किया है। इनका यह निष्कर्ष है कि यह कृति पूर्णतः ईरान की मसगबी शैली पर लिखी गई है। अन्य रचनाओं में इस्लामिशासक इब्न 'फुलबदन' हाशमी इब्न 'यूगुफ़' बुनेसा तथा ठवई इब्न 'फ़िस्ते' बहराम व गुलबदन' महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं।

सूफ़ी धर्म का वर्ष 'ऊन' माना गया है। इस सम्बन्ध में सूफ़ी का वर्ष यह प्रस्तावित किया गया है कि ऊनी बक़ मारक करके एकान्त जीवन व्यतीत करने वाले और साधना करने वाले साधकों के लिए इस शब्द का प्रयोग होता था। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस्लाम की प्रथम दो सताव्रियों में सम्पादित व्यतीत करने वाले साधक स्वयं ऊन का आवरण धारण

१—फ़िदाब-जल-मुया—कैलक—नव अल-धरीज—जेम्स हेस्टिंग्स इस्ताइक़तो-पीडिया ऑफ़ रेजिज्म एण्ड एजिज्म वास्मूम १२ से उद्धृत।

(कम में ऊर्ध्व मरुतव १९५२ ई०—मुद्रित अथवा उर्ध्व बाधरा बाहोर पू० १३),
 ने इस रचना का परिचय देते हुए कहा है कि इसकी रचना-शैली सूक्तियों की
 मरुतवी शैली की है। इसमें भी परमेश्वर की स्तुति की गई है। परन्तु इसका
 अन्व फारसी का बहर है। रचना अपूर्ण है अतः इसकी समझता पर विचार
 करना सम्भव नहीं है। उदाहरण—

कि तू सोच मेरा गुसाई कदम । पदम राव तुज पाँव केरा पदम ॥

जहाँ तू बर माँव हो सर बर । जायस सार कील कदराई कर ।

वकिस्नी ऊर्ध्व के मुक्ती प्रेमास्वात्मक काव्य । पू० १२४ ।

इस परम्परा की दूसरी कृति है 'कुतुब मुस्तरी'। इसके रचक हैं मुहम्मद
 बख्शी । ये गोल्कुम्भा के इस्लामी साइ के दरबार-कवि थे। 'कुतुबमुस्तरी' की
 रचना इन्होंने हि० १०१८ अर्थात् सन् १६१० ई० में की थी—

तमाम इसकिया बीस बारामने । सन एक हजार ठौर अठारा मने ।

कुतुब मुस्तरी बकिस्नी प्रकाशन समिति—ईशराबाद पू० ५ ।

इस परम्परा की तीसरी कृति है 'सैकुल मुक्त व यरी उल अमाज'। इसके
 रचयिता गवासी हैं। ये बोलकुम्भा के निवासी और बख्शी के समकालीन थे।
 इस कृति की रचना कवि ने १०२७ हि० या १६१७-१८ ई० के मध्य की थी।
 इसकी कथा का सम्बन्ध सिंध देश से है। इसकी कथा का संकलन आसानी तथा
 अन्य कवियों की रचनाओं के कथा-संकलन से भिन्न नहीं है। 'मुगावरी' या
 मयुमावरी की कथा के समान एक राजकुमारी की उद्धारता से नायक को
 नायिका की प्राप्ति होती है। समुद्र-यात्रा बम्बाल-व्यपन तथा अन्य भौतिक
 घटनाओं के समावेश के माध्यम से इसकी कथा सुनिश्चित है।

गवासी के नाम से 'कन्दा और कोरक' नाम की भी एक कृति उपलब्ध
 हुई है। इस प्रकार की पारना व्यक्त की गई है कि यह कृति किसी फारसी
 कृति का रूपान्तर है। (देखिए—रत्न में उर्ध्व पू० ७८)। परन्तु यह निर्वय
 सिद्धांतपूर्ण है। 'दकिस्नी के गद्य और पद्य' (सम्पादक श्री राम राय पू०
 २७६ २६ १९५४ ई०) में इसके अंग संकल्पित हैं। इसके आधार पर यह
 संकेत मिलता है कि इसकी कथा मुहम्मद की कथा के अनुरूप ही है। मुहम्मद
 की रचना ही इसकी मूल प्रेरणा में विद्यमान लगती है।

इस परम्परा की एक अन्य महत्वपूर्ण कृति 'चन्दर बदन व महियार' है। इसके रचयिता मुकौमी थे। वे बीजापुर निवासी थे, और इबाहीन जातिक घाह के समझाओन थे। यह विस्वास किया जाता है कि कवि ने इस काव्य की रचना सन् १९२७ में की थी। इस कृति में मुकौमी ने गवासी का स्मरण अपने गुरु के रूप में किया है। इस कृति पर विचार करते हुए मुहम्मद अकबरखान सिद्दीकी ने कहा है 'रचना का मकसद मजहूबे इस्लाम की आजमत बाहिर करना है। (वेब्लिए—चन्दरबदन व महियार कथा-सम्पादक अकबरखान सिद्दीकी भूमिका)। महियार नामक एक मुनक चन्दर बदन के राजा की कथ्या पर आधारित होता है। परन्तु राजकन्या उसे अस्वीकार करती है। चन्दर बदन अपने प्राय

राजकुमारी इससे विजुम्न होती है। वह भी अपने प्राय त्यागती है। इस कथा का आधार ग्रन्थ 'महियार' नामक कवि ने एक काल में अपनी तक उपलब्ध नहीं हो सकी है।

गुरुघने इसके इस वर्ष की एक अन्य महत्वपूर्ण कृति है। इसके रचयिता कवि गुजराली हैं। इस कृति की रचना इन्होंने सन् १९२८ ई० में की थी। इसमें मनोहर और मधुमाळती की प्रेम-कथा वर्णित है। डॉ० एहतिघाम हुसैन ने अपने उर्दू साहित्य के इतिहास में इस कृति पर विचार किया है। इनका यह निष्कर्ष है कि यह कृति पूर्वत ईरान की मसनवी शैली पर लिखी गई है। अन्य रचनाओं में इम्पनिघात कृत 'पूतबदन' हाथमी कृत 'पुगुठ बुन्नेता' तथा तबई इन क्रिसे बहपम व मुलबदन महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं।

सूफी धर्म का वर्ष 'ऊन' माना गया है। इस सम्बन्ध में यह प्रस्तावित किया गया है कि ऊनी बख बारम करके एकान्त जीवन व्यतीत करने वाले और साधना करने वाले साधकों के लिए इस धर्म का प्रयोग होता था। ऐसा विस्वास किया जाता है कि इस्लाम की प्रथम दो शताब्दियों में सम्पादित व्यतीत करने वाले साधक स्वयं ऊन का आचरण बारम

१—फिदाब-बक-कुमा—देखत—तय बक-सरीज—बेम्ब हेस्टिप्स इस्ताइकलो पीकिया डॉ० रेकिन एण्ड एमिन बाल्युम १२ पृ उद्धृत।

करते थे। इसलिये ऐसे शावकों को सूफी कहा गया।^१ कठिपथ विद्वानों ने सूफी शब्द का सम्बन्ध सफा से स्थापित किया है जिसका अर्थ है पवित्र। एक अन्य प्रस्तावना के अनुसार मुहम्मद के समय मरीने की मस्जिद के सम्मुख मुफ्त (बनूतरे) पर बैठकर शावता करने वालों को सूफी कहते थे। इसी सम्बन्ध में वह भी कहा गया है कि सूफी शब्द का सम्बन्ध 'सन्ने-अम्बल' से है। 'सन्ने अम्बल' का अर्थ होता है आराधना में निष्ठ शावकों की अग्रिम पंक्ति।^२ 'बनू सफा' एक वामावर जाति थी। सूफी शब्द का सम्बन्ध इस 'सफा' शब्द से स्थापित किया जाता है। कुछ विचारकों की यह धारणा है कि ग्रीक शब्द 'सोफिस्ता', से 'सूफी' शब्द विकसित हुआ है, जो ज्ञान का पर्यायवाची है। इन ममस्त मान्यताओं से वस्तु स्थिति का स्पष्टीकरण नहीं हो पाता है। परन्तु इनसे यह संकेत मिलता है कि विचारकों के एक विशेष वर्ग या सम्प्रदाय के लिये ही 'सूफी' का प्रयोग किया गया होना। इस वर्ग के व्यक्ति संकेत छन का परिधान धारण करते थे। इस मत का समर्थन एक अन्य आधार से भी ही जाता कि फारसी रहस्यवाधियों को 'पसीना पोश' कहा जाता था।

सूफी मत और तसव्वुफ

इस्लामी धर्म के अन्तर्गत रहस्यवाधियों के लिये ही काब-क़म से 'सूफी' संज्ञा का प्रयोग होने लगा था। इस्लाम धर्म के अनुसार रहस्यवादी भावना को ही तसव्वुफ की संज्ञा मिली। इस प्रकार सूफी धर्म के स्वरूप से सम्बन्धित समस्त-समय पर जो विचार प्रस्तावित किए गए उनमें एक क्यता नहीं है। विभिन्न विचारों का संश्लेष वहाँ मिला जा रहा है—

[क] सफा सूफी अवस्थिति का परित्याग कर शावता की उच्च भूमि का आधार ग्रहण करता है।—अल-अल-महमूद-नैस-अल-हजिरी-अनुवादक ए० निकसगन पृ० ३२।

[घ] ईश्वर के सत्य का साक्षात्कार और जीवन में रहते हुए जीवन से मुक्त हो जाना ही सूफी धर्म है।—संत मास्क-अल-दरकी।

१—ई० जी० शास्त्र मिस्टेरी हिस्ट्री आफ परलिया १२०६ पृ० ४१६।

२—मास्टर साइन्स ऑफ इस्लामिक कल्चर—अल २ बंक ४ पृ० ३०४।

इस प्रकार अनेक कवियों में सूफी साधक की परिभाषा और सूफी धर्म के स्पष्टीकरण का प्रयास किया गया है। इस सम्बन्ध में यह कहा गया है कि सूफी ऐसे साधक को कहते हैं जो परमात्मा के संस्पर्श से अपने हृदय को पवित्र करते हैं। इन परिभाषाओं से सूफी धर्म तथा सूफी साधक की आन्तरिकता और निष्पिच्छता का स्पष्टीकरण नहीं हो पाता है। 'जामी' ने इस धर्म तथा इस सम्प्रदाय के साधक की एक स्पष्ट व्याख्या देने का प्रयत्न किया है। इनका यह निष्कर्ष है कि 'सूफी' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग अलहादिम (ई० ७७७) के नाम के साथ हुआ। २१४ ई० में कूछा में इस्लामी खुस्रवादिनों के एक विशिष्ट सम्प्रदाय के साधकों के लिए 'सूफी' शब्द का प्रयोग किया जाता था। इस प्रकार वास्तविक अर्थ में इस शब्द का प्रयोग केवल इराक के खुस्रवादिनों के लिए होने लगा था। तथापि इस्लाम धर्म के अन्तर्गत के सय्यद खुस्रवादी साधकों के लिए इस शब्द का प्रयोग सदा धर्म में होने लगा।

सूफी मत का इतिहास

सूफी सम्प्रदाय का सम्बन्ध धामी विचार धारा से भी स्थापित किया जाता है। धामी विचार धारा ने इस्लाम को एक विशिष्ट संदर्भ में प्रभावित किया जिसका प्रमुख सूफी साधना के रूप में हुआ। धामी वाद में ईश्वर के सम्बन्धी का निरूपण शम्सुद्दीन मेस और मिर्ज़ा के माध्यम से किया जाता था। ऐसा स्पष्ट होता है कि सूफियों ने अपनी साधना में इन बातों का प्रयोग धामी साधना के आधार पर ही किया है।

सूफी साधना में 'इश्क़ाद्दास' की अवस्था एक विशेष स्थिति मानी गई है। इस स्थिति का कुछ भोत भी धामी संस्कार समता है। सूफियों में उपलब्ध नादक नाव, ख़ुस्र, हास और इश्क़ाद्दास आदि अवस्थाओं के पूर्व रूप धामी साधना-प्रवृत्तियों में मिल जाते हैं।^१

१—मक़ातुल्ल संत।

२ इश्क़ाद्दास कही साह की यह धारणा है कि सफ़ू नावदारा का मूल रूप इस्लाम में ही निहित मिलता है। बाबोलास में मुहम्मद ने अपनी प्रेम्सी वापसा से प्रसन्न किया—'तुम कौन हो ? आयेया—'मैं आयेया हूँ (अन्ना वापसा)' मुहम्मद—'आयेया कौन है ? आयेया—'अन्नातुल्ल छिदीकी की पुत्री है', मुहम्मद—'अन्नातुल्ल छिदीकी कौन है ?' 'मुहम्मद के सपुत्र' 'मुहम्मद कौन है—' इस सम्बन्ध में सूफियों में उपलब्ध 'इमबाउल्ल (अव मुस्र नहीं है) का नाम निहित है।—देखिए—बापसी के वरवर्ती हिन्दी सूफी कवि और वाक्य। पृ० २

आरम्भिक सूफी सन्तों में इब्राहीम अल जयम (मृ० ७८१ ई०) फुबायत म्लि जजाय (मृ० ८०१ ई०) रबिया अल बरानिया (मृ० ८०२ ई०) के नाम सम्मुख आते हैं । इनमें रबिया ने सूफीमत में प्रेम भावना की स्थापना की थी । एक प्रकार से इन्होंने सूफी सम्प्रदाय में माधुर्य भाव का समावेश किया । अपने विकास के आरम्भिक चरण में सूफी साधना इस्लाम की मान्यताओं से अनुस्यूत नहीं रही, परन्तु कार्यक्रम से वह इस्लामी तत्वों को स्वीकृत करने लगी थी । सूफी धायक इस्लामी चिन्तन भारत के निकटतम जाने का का प्रयास करने लगे । इस प्रकार भारत में प्रवेश करने के पूर्व सूफी चिन्तन द्वारा निम्न भागों में विभक्त हो गई थी —

(१) उमर कैय्याम—(मृ० ११८०) ।

(२) सनाई—(११८८ ई०) ।

(३) निजामी—१२१० ई० ।

(४) बलार—(१२८७ ई०) ।

(५) कमी—(मृ० १३३० ई०) ।

(६) सादी—(मृ० ११४६ ई०) ।

(७) चकरी—(मृ० १३७७ ई०) ।

(८) हाफिज—(मृ० १४४७ ई०) ।

(९) जामी—(मृ० १५४६) ।

इन रचनाकारों ने काव्य के माध्यम से सूफी-साधना-तत्वों का प्रस्तावन किया है । इनमें प्रेम और विरह के औक्तिव विधों द्वारा आध्यात्मिक मिशन और प्रेम की प्रस्तावना की गई । भारत में जाने के पूर्व सूफी बर्म और दर्शन तथा काव्य की यही रूप रेखा रही ।

भारत में सूफी मत

भारत में सूफी धर्म का प्रवेश मुसलमानों के आगमन के साथ हुआ । काश्मिर से सेत इस्माइल (१००१ ई०) नजर घाह (१०१६ ई०) साह मुल्तान कमी (१०३२ ई०), अजुल्लाह (१०६२ ई०) बाता मन्वरकत (१०७२ ई०) आदि सूफी दरवेश भारत में बर्म प्रचार-हेतु आए । इसी परम्परा के सूफी सन्तों में हुम्नरी का नाम विशेष आदर के साथ रखा जाता है । भारत में सूफी मत

का कम-बड इतिहास मुर्शिदाबाद विषयकी (१११०) के आगमन के पश्चात् ही मिलता है। ईसा की ठेठहवीं-बीसहवीं शताब्दी तक सूफी साफना एक विशिष्ट साफना पद्धति के रूप में भारत में स्थापित हो चुकी थी।

अबुलकसीर ने अपने कृत 'अस महमुद' नामक ग्रन्थ में बारह सूफी सम्प्रदायों का उल्लेख किया है परन्तु हमारे देश में केवल चार सम्प्रदाय ही प्रमुख रूप से विकसित हो सके —

(१) चिश्तिया (२) सुहरवर्दिया (३) कावरिया (४) नवस बखिया। इनके अतिरिक्त छत्तारी और मरारी सम्प्रदायों के भी उल्लेख मिलते हैं।

(१) चिश्तिया सम्प्रदाय — इस सम्प्रदाय के संस्थापक रब्बाबा रब्बाबा मुर्शिदाबाद विस्ती (११४२ ई० १२३६ ई०) ने किया। इनके शिष्यों में शेखफरीदुद्दीन सकरवंज निजामुद्दीन औलिया अमी अहमद खान और शेख सलीम अलि प्रसिद्ध हुए। निजामुद्दीन औलिया औलियापुत्र के संस्थापक थे। चिश्तिया सम्प्रदाय के अक्षरक बहावीर के प्रति मलिक मुहम्मद बामसी विशेष रूप से आस्थावान थे।

(२) सुहरवर्दी सम्प्रदाय — इस सम्प्रदाय के संस्थापक शिहाबुद्दीन सुहरवर्दी थे। इन्होंने अपने सम्प्रदाय की स्थापना बयबाद में की थी। हमारे देश में इसकी संस्थापना बहाउद्दीन आकरिया (मृत्युकाळ १२६७ ई०) ने की थी। यह शाखा निम्नलिखित प्रशाखाओं में विभक्त मिलती है।

[क] बलाली शाखा — इस शाखा के प्रवर्तक संयम बलालुद्दीन मुर्तपोश शाहीर थे। इनका प्रमुख केन्द्र सिन्ध रहा।

[ख] फज्जुने-बहामियाँ — संयम बलालुद्दीन के तीन अहमद कबीर थे (मृ० ११८४ ई०)। वे मजबूने बहामियाँ के नाम से प्रसिद्ध थे। इन्होंने इस शाखा का प्रवर्तन किया।

[ग] मीरान शाही — मुर्तपोश अहमद कबीर के बंशज मीरान मुहम्मद शाह ने मीरान शाही शाखा का प्रवर्तन किया।

[घ] इस्माइल शाही — आकरिया की बीसहवीं पीढ़ी के हाफिज मुहम्मद इस्माइल (मृत्यु १७६०) ने इस्माइल शाही शाखा का प्रवर्तन किया।

[६] कादरी सम्प्रदाय—अकरिया की बाठनी पीढ़ी में दोस्त साह ने दोस्त साही साखा का प्रवर्तन किया ।

(१) दोस्त साही—इस साखा के प्रवर्तक अजुक्त कादिर बख्श बिलानी थे । (१०७८-११९९) । भारत वर्ष में इसका संस्थापन इनने तीन सौ वर्ष परभाव हुआ । हमारे देश में इसके संस्थापक समय मुहम्मद मेस बाबा पीर थे । भारत में ये सन् १४२८ में आए थे । इनका प्रमुख केन्द्र सिन्ध था, यहीं इनकी मृत्यु सन् १५१७ में हुई । बिलानी की सख्ती पीढ़ी में साह कुमैस ने इसकी एक प्रशाखा 'कुमैसिमा' की स्थापना की थी । इसका प्रचार बंशास में हुआ । इसकी अन्य उपशाखाओं में 'मुकीम साही' और पश्चिम भारत में प्रचलित 'हानी मुहम्मद नौ साही' शामिल हैं । इनके अतिरिक्त 'मियाखेस' नाम से भी एक साखा विकसित है । इसके संस्थापक मिया मीर (सन् १५५०-१९३५) थे । इनके सिन्ध मन्ने मियाँ थे । इनकी शाखा और उनके व्यक्तिगत को विशेष क्वालि मिती ।

(४) नकशबन्दी सम्प्रदाय —इस सम्प्रदाय के संस्थापक साखा बहाउद्दीन नकशबन्द माने जाते हैं (मृत्यु सं० १४४९ ई. में) । इनकी पीढ़ी में साखा बाकी मिल्का बेरब (मृ० सं १५९०) ने नकशबन्दिया सम्प्रदाय की संस्थापना भारत में की थी । कतिपय सन्तों के अनुसार भारत में इस साखा के प्रवर्तक साखा बाकी मिल्काह बेरब थे । जहाँगीर के समय इस सम्प्रदाय का विशेष प्रभाव था । भारत में इस सम्प्रदाय को प्रचार की महम्मद फास्की द्वारा विशेष रूप में प्रति मिती ।

इन सम्प्रदायों के अतिरिक्त छतारी सम्प्रदाय और मरारी सम्प्रदाय के नाम से भी दो विशिष्ट सम्प्रदायों का उल्लेख मिलता है ।

छतारी सम्प्रदाय—हमारे देश में इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक पारस के अकबुल्ला छतारी थे । इनकी मृत्यु मालवा में १४०६ ई० में हुई मानी जाती है । मुहम्मद बीस इसी सम्प्रदाय के साधक थे जो हुमायूँ के गुरु थे । इस परम्परा में बहाउद्दीन (बैनपुरी) भीर सेवर जहाँ कौबर आदि साधक भी आते हैं ।

मरारी सम्प्रदाय—भारत में इस सम्प्रदाय की संस्थापना साह मरारी बन्दीवहीन ने की थी । आसही का सम्बन्ध साह मरार से भी स्थापित किया जाता है ।

प्रेमाख्यात्मक काव्य में दर्शन

सूफी काव्य में परम सत्य के जिस स्वरूप की कल्पना की गई है उसमें वह सत्य है उसके आकार नहीं है और वह सत्त्वों में परिवर्तन नहीं हो सकता है । उसके अस्तित्व की समुच्चि हम कर सकते हैं । इस प्रकार वह स्वरूप सत्य है, परन्तु स्वरूप सत्य के अत्येक सत्य में विद्यमान है । वह सत्य बारण नहीं करता है, उसके पिता नहीं हैं, और न उसकी माता है । समग्र सृष्टि उसकी ही स्रष्टा है । ऐसे ही आदि 'पुष्प' का कर्मम आग्रही 'अध्यात्म' में करते हैं—

अस्य अक्षय अक्षय सौ करता । वह सब सौ सब ओहि सौ करता ।
परम सपुत्र सौ सत्य विभापी । बरही भीष्ट भीष्ट नहीं पापी ।
बना न काहु न कोई ओहें बना । ओहें सगि सगि साक्य सिरबना ।

+

×

+

हुत पहिनेई ओ अक्ष है सोई । पुनि सौ रहिहि रहिहि नहि कोई ।
अक्ष को होई सौ बाहर बना । दिन दुई बार मरह कर बना ।

पद्यमावत पु० ३

ऐसा कहीं बुराबो में बर्णित है—

उहि बिनि भीष्टु करहु विधानु । बस पुराण नहि सिखा बखानु ।

उस कहीं में ओह नहीं है, फिर भी वह भीषित है । उसके कर नहीं है परन्तु बिना कर के ही उसने सृष्टि की रचना की है । उसका कोई स्वाग नहीं है, परन्तु ऐसा कोई स्वाग भी नहीं है, नहीं वह न हो । उसका कोई रूप नहीं है उसकी कोई रेखा नहीं है परन्तु उसका नाम अक्षि निर्मल है

ना ओहि ठाँव न ओहि बिन छाडे । क्यरेख बिन निरमल गाडे—दा३ ।

ज्ञान की दृष्टि जिसके पास है, उसके लिए वह निरुद्ध है ज्ञान-हीन के लिए वह बहुत दूर है—

निर्मलिय कहैं निजरे अक्ष मुख कहैं दूरि दा३

'अध्यात्म' में काकली उस नाम सदा के उस रूप का स्मरण करते हैं जो नहीं है, वाक्य है और अक्षरक है—

हुन करता बक सिरबन द्वारा, हुप्या करता सव संवारा ।

अक्षरबद

उसमान उस परम सृष्टि की कल्पना एक विचार के रूप में करते हैं। सृष्टि उस विचार का विषय है उस कर्ता ने मारी और पुण्य-समुच्चय ब्रह्म के ऊपर विचार बनाया। उसने अनेक प्रकार के रूपों और बर्णों की सर्जना की परन्तु वह स्वयं ब्रह्म और अव्यय है—

आदि ब्रह्मणो सोई चितेरा। यह जय विज कीन्ह बेहि केरा।

कीन्हसि विज पुण्य जो मारी। को बस पै बस सकै संवारी।^१

+

×

×

कीन्हसि रूप बरस बहूँ ताई। आपु बबलन बरस बौसाई।

विभावसी पृ० १

इस प्रकार सूक्तियों ने जिस परम सत्ता की कल्पना की है वह एक है। सृष्टि के वैविध्य में वह मिल मिल प्रतीत होता है। सृष्टि के समग्र प्रसार में वही एक मोसाद, वही एक मोकार परिक्याप्त है। वह अलक्ष्य निरंजन है परन्तु विविध रूपों में प्रकट है—

एक अनेक भाव परमेसा। एक रूप का धेन मह भेषा।

तीन लोक बहूँ सगि ताई। मोन के मनुष रूप बौसाई।

×

×

×

अलक्ष्य निरंजन करता एक रूप यह भेषा।

×

×

×

एक बहूँ दूसर कोइ नाही तेहि सब सृष्टि रूप मुख नाही।

संभल मधुमाखटी ४

इस प्रकार ईश्वर के स्वस्व-वर्णन में समस्त सूफी कवियों में एक रूपता है। सभी कवियों ने उसके कैवल्य की कल्पना की है। इस 'कैवल्य' के लिए इस्लाम में 'तौहीद' शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'तौहीद' के सैद्धान्तिक पक्ष को ग्रहण कर सूफी कवियों ने स्वतन्त्र रूप से विद्यमान शक्तियों का प्रणयन नहीं किया है। परन्तु इस प्रकार का प्रयास केवल भक्तिक तुहम्मद जायसी की कृति 'अछटावट' में मिलता है। इस कृति में उस परम सत्त्व के अस्तित्व का वर्णन

१ इस्लाम धर्म में यह प्रस्तावना मिलती है कि वह पृथ्वी जल के ऊपर ही स्थित है।

क्रिया क्या है। अपने आदि या मूल रूप में वह सूक्ष्म था, उसका अस्तित्व ऐसे परिवार में था जो सूक्ष्म था। वह स्वयं अपना अस्तित्व था —

आपु अस्त पहिले हुत जहाँ नाब न ठाब न मूरति तहाँ ।

पूर पुरान पाप महि पुनू, मुपुत ते मुपुत मुल ते मुल ।

बिना तरेह बरस बजाना, हुता आपु यह आपु समाना ।

अक्षरावट—पृ० ३०४ ।

परम सत्ता से उज्ज्वल ग्रहण करके ही रवि, सवि और नम्रन प्रकाशवत् है। समग्र सृष्टि उसके प्रकाश से ही आलोकित है। आत्मी ने परम कर्ता के इसी रूप का वर्णन करते हुए कहा है—

रवि सवि नखत सिपहि जोहि जोठी । रतन पदारव मासिक मोठी ।

जई बट बिहसि सुभाबहि हंसी । तई तई छिटकि ओत परगसी ।

पद्मावट ।

मुक्तिमें ने इस अस्त को उस परोक्ष के प्रतिबिम्ब के रूप में ग्रहण किया है। अमूर्त ब्रह्म कभी-कभी अपने मूर्त रूप को देखना चाहता है। ऐसी स्थिति में सृष्टि और समग्र सृष्टि का प्रसार वह वर्णन के रूप में कर लेता है—

आपुहि आपु जो देखै जहा । आपुनि प्रभुत आपु से कहा ॥

सबे अस्त वर्ण के कैला । आपुहि बरस आपुहि देखा ।

×

×

×

आपुहि पुहुव कूक बन कूले । आपुहि संबर बाध रस भूके ।

आपुहि बट-भट मह मुल बही । आपुहि आपने रूप संबारी ।

हिन्दी सूठी काव्यों में आत्मा और परमात्मा के मध्य की दंत धारणा के परिपाम का आग्रह झिझका है। परमात्मा और आत्मा एक है। परमात्मा और अस्त एक है, इस प्रकार की धारणा का प्रसार इन कवियों की रचनाओं में मिलता है। इनके अनुसार परम प्रकाश से मुहम्मद का मूर प्रकट हुआ। मूर के पोषण के लिए ही समग्र सृष्टि की रचना हुई। इस विश्वास को ही व्यक्त करते हुए आत्मी ने लिखा है—

संवरौ आदि एक कटाक । जेई बिउ बीन्ह कीन्ह संघार ।

कीन्हैसि प्रभव जोति परमासु । कीन्हैसि तेहि निरीत करिआसु ।

पद्मावट १

इन कवियों ने सृष्टि की उत्पत्ति का जो क्रम व्यक्त किया है, उसने अनुसार सर्वप्रथम अग्नि फिर वायु, फिर पवन और जल इन सबके बाद पृथ्वी प्रकट हुई।

कीन्हेसि अग्नि पवन कल रोहा । कीन्हेसि बहुतइ रम उरोहा ।

कीन्हेसि पछी संग पठार । कीन्हेसि बरन बरन जवठार ।

पद्यावत—११ ।

मुस्लिमों ने मुहम्मद को मूर का पयाँप भी माना है। इस्लाम का आधार ग्रहण करते हुए वे यह प्रकट करते हैं कि यदि वह मूर या मुहम्मद न होता तो सृष्टि सम्भव नहीं थी—

होत न जो उन्हर बकठारा । होत न सरम ओमठों पठारा ।

न बेकुरठ गरक कसु होतै । न ससि भाग भझक कसु बेतै ।

नसीर प्रेमवत्पन ।

सृष्टि-रचना की बलवती अनुप्रेरणा के कारण ही मुहम्मद का जन्म हुआ। ईश्वर ने प्रथम मुहम्मद की व्योसि का निर्माण किया उसी की प्रीति में उसने सृष्टि की रचना की। यदि इस प्रकार के निर्मल पुंस्य का जन्म नहीं होता तो सृष्टि अव्यक्तार पूर्ण रहती—

कीन्हेसि पुस्य एक निरमरा । मारें मुहम्मद पुनरें करा ।

प्रथम ओसि बिधि रोहि कै साजी । ओ रोहि प्रीति सिस्टि उग्राजी ।

बीपक सिस्टि बरत कहूँ बीना । मा निरमर बस मारण बीन्हा ।

बी न होत बस पुस्य उगारा । मुझि न पछा पन्थ उबिबारा ।

पद्यावत—८ ।

गूठी जर्म में आत्मा का परमात्मा में लीन हो जाना 'फगा' कहा गया है। उनमें पूर्णतः विलय हो जाने को 'बका' कहा गया है। इन दोनों की उपलब्धि के लिए साधना अपेक्षित है। इस सम्बन्ध में किए गए प्रयास को मार्ग कहा गया है। साधक सात्त्विक है अर्थात् प्रेम-मार्ग का पथिक है। इस मार्ग की चार अवस्थायें मानी गई हैं—

[क] शरीरगत—जर्म शब्दों के बिधि निषेध का पूर्ण परिपालन ।

[घ] तरीकत—बाह्य क्रियाओं और बाह्यम्बरों से मुक्त रह कर हृदय की गूढ़ि का अभ्यास करना और ईश्वर की ओर उन्मुख होना ।

४] हुकीकृत—यसि और साधना के सम्बन्ध से सत्य का सम्यक बोध विद्यार्थी के पश्चात् साधक तत्त्व दृष्टि-सम्पन्न हो जाता है और विकास जाता भी हो जाता है ।

[५] मारिफत—विद्यावस्था—इस अवस्था में साधक साध्य में विलीन हो जाता है ।

सूफी कवियों ने अपने प्रेमास्नानक काम्यों में प्रेम प्राप्ति हेतु किए गए प्रयासों में साधना की इन चार अवस्थाओं का स्पष्ट निरूपण किया है । प्रेमी के मार्ग में कठिनाइयों के निरूपण वाले विद्यान्त का भी आचार इनकी रचनाओं में मिल जाता है । रबिरेन 'पद्यावली' की प्राप्ति का प्रयास करता है । इस प्रयास में वह सिंहक रंग की यात्रा करता है । यात्रा में उसे विभिन्न बाधामें मिलते हैं । सिंहक-यात्रा में रबिरेन को सात समुद्र पार करने पड़ते हैं । इन समुद्रों को आदमी ने मार्ग में पड़ने वाले बाधामों के रूप में चित्रित किया है—

मातेक काब बसत पैहि बाटी । उजरे पाइ समुद्र के बाटी ।

बदपति रबिरेन के सम्मुख समुद्रों के पार करने की कठिनाइयों का वर्णन करता है—

पै दोसाह सौ एक बिनासी । बारह कठिन बाध केहि सोही ।

सात समुद्र असुम्ह अपारा । बाघहि मगर मच्छ परिवारा ।

×

×

×

विषक दीर बाइ तो कीई । हाम बिहै बिज आपन होई ।

बार और दसि उबसि मुरा जब पुनि रिजकिजा बसूत ।

को बहि बाघहि समुद्र ये साठों है काकर बस पूत । १४१।१२३ ।

इस अवस्था को शरीरगत का प्रतीक माना गया है । रबिरेन जानता है कि अपने विश्व प्रेम-पथ को स्वीकार किया है उसमें खेद नहीं है । वह और (और) समुद्र में प्रवेश करता है । वस्तुतः यह अवस्था लीकृत की है जिसमें साधक परम तत्व के गुणों के साथ तादात्म्य स्थापित करने का प्रयास करता है और शारीरिक आक्रमण उसके प्रयोजन बनते हैं ।

और समुद्र का बरतों नीर । सेत तकर निमत बस खीर ।

मलिक मुहम्मद जायसी ने पद्मावत की कथा के सन्दर्भ में दुरु की पुरु कर्म में ही प्रस्तावित किया है। दुरु की प्रेरणा से ही रज्जुल नाममती की ओर आकर्षित होता है—

तन चितर मन राजा कीन्हा । हिय सिंहन बुनि परमिनि चिन्हा ।
गुन सुखा जेहि पन्थ देखीया । बिन गुर बगवत को निरगुन पाया ।
जायसी प्रभावकी ।

नूर मुहम्मद की 'अनुराज चौधरी' में भी दुरु ही जगजा बगता है कारण यह पथ जानता है—

अगुवा भएउ सुवा छपरेछी, अगुवाई को दीपक सिन्धी ।
अगुवा सोइ पन्थ जो जाना अगुवा छहित न किये भुझाना ।
अनुराज चौधरी ।

सूफी प्रेमालम्बानक काव्यों में योग-साधना

छूठी काव्यकारों ने अपने काव्य-मायकों को साधक-कर्म में प्रस्तावित किया है। नायक प्रेम के प्रति जब आकर्षित होता है तब वह साधक की भूमिका ग्रहण करता है। और इस सन्दर्भ में वह नायक योगी का वैध ग्रहण करता है। 'पद्मावत' में रज्जुल नाममती के शौरिक पाठ का परित्याग कर सिंह की यात्रा के लिए जब उत्तर होता है तब वह नायकी की भूमिका ग्रहण करता है। सिद्धि प्राप्ति हेतु वह मोरच के नाम का स्मरण करता है। वह भिक्षुता ग्रही कर, खाल ग्रहण कर लेता है।^१

१ भिक्षु सिद्धि ब्रह्मचारी । बौगैटा खाल अचारी
कंपा पहिरि डंड कर महा । सिद्ध होइ कई योग्य कहा ।
मुंहा सबन कंठ जयमाता । कर उदयान कौंथ बपछाला ।
पौवरि पौंढ लीन्ह सिर छाता । जगल लीन्ह भन के पता ।

पद्मावत—१२९।११२ ।

‘अबु माहली’ का नामक मनोहर मधु माहली के विशेष में का का स्थान करता है। इस बरबर पर बड़े नाव बोरी का बेस पारक काठा है।^१ उसमान ‘बिनाबकी’ में सुबान का रूप इसी बेस में प्रस्तावित करते हैं। कायसी मंथन उसमान की रचनाओं में नाव योयिकों के रूप का वर्णन उच्च उच्चों में मिलता है, परन्तु परवर्ती कवियों में इस स्वरूप निरीत्य के प्रति विशेष जाग्रह नहीं मिलता है।

सूची कवियों ने काय-सावना के स्वर्ग का भी आचार ग्रहण किया है। इनकी कृतियों के कथा मावक बोरी का बेस बारक करते हैं और सावना की सुमिका में ही महा ज्योति या परम तत्व कपी माविका की उपलब्धि का प्रकाश करते हैं। कायसी के ‘पयाबत’ में विचल गड़ काया या तन का प्रयोग है। राजा रत्नसेन मन है पयाबती परम तत्व है। इस वरम तत्व की उपलब्धि हेतु काया-सावना अपेक्षित हो जाती है। पयाबती विरल ज्योति है। अत्रभा है जो आकाश में प्रकट होती है जो आकाश (बहु रंग) दिव लोह है। वह ज्योति सिव लोक में प्रकाशित रहती है। कायसी ने रत्न सेन को ‘सूर्य’ रूप में ग्रहण किया है। पयाबती इस स्वर्ग में अत्रभा है। इस प्रकार के प्रयोग छिटी नापी और सप्तों की रचनाओं में मिलते हैं। इस प्रसंग पर विचार किया जा चुका है। एवमेव और पयाबती का विलन वस्तुतः ‘रवि’ और ‘शक्ति’ का मिलन है। यह बहु स्थिति है, जिसमें दोन स्थिति समग्र होकर जड़त की स्थिति जाती है जिसे समरसता की अवस्था कहा गया है। एक सेन इसी स्वर्ग के अनुकूल कहा है—

जब हो मुख और बहु छाया। बल बिनु दीम रक्त बिनु काया।
 किल करा बा प्रेम बँधूक। और सवि सत्य, मिली होइ मूक।
 छड़ी कर लप लप मुभा। बहै-बहै दीठ कँवत बनू कूभा।
 कामसो प्रयाबती ४ ३८।

एक सेन और पयाबती विवाह के पश्चात् अय्या पर मिलते हैं। यह संयोग

१—कठिन विह्वल बुद्ध काय बमारी माँझो कपल रूप बमारी।

बल हान मुख मम बड़ाई, सोन बचक धरि उठायी ५

कँवा पैसकी बाक्यता बरा बड़ाई कैत।

बस कछीटी बोंब के, पैसो कोरक बेस।—मधुमाहली।

में सामरस्य भाव निहित है। सवि की सोमह कसाये रवि की कठाबों को बज आत्मसात कर लेती हैं। तभी इस सामरस्य की अवस्था की सम्भावना होती है। पद्मावती राजसेन को अपने सौन्दर्य से विमुग्ध कर देती है जबकि सवि रवि को अपने में समाहित कर लेता है। इस पक्ष का आचार ग्रहण कर ही आम्सी ने पद्मावती और राज सेन के मिश्रण की भूमिका का सम्पादन किया है—

मिथी गोहने सखी तराई । सैह बाँध सूरज पाई आई ।
 पारस कम बाँध देकराई । देखत सूरज या मुखआई ॥
 सोमह कसा विस्ति सति कीन्ही । सहेसो कसा सुख की सीन्ही ।
 भा रवि अस्त तराई हँधी । सूर न रहा बाँध परपसी ।

आयसी ग्रन्थावली १३३ ।

कुम्भजिनी-साधना के प्रतीकों या पर्यायों के सम्बन्ध भी इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय हैं। सिद्धों और उनके परवर्ती साधकों ने ईशा पिक्ला की यथा समुदा कहा है और इन्हें 'अन्न' और 'सूर्य' का पर्याय भी माना है। आचारी तथा अन्य सूफी कवियों ने प्रेम निरूपण और उसकी उपलब्धि के सन्दर्भ में इन प्रतीकों का प्रयोग किया है—

भूप छाँह बूझ निय के रंभा बूनी मिथी रखु एक सज्जा ।
 तुम गंवा-अमुना हुई नारी सिखा मुहम्मद बोग ।
 सेवा करहु मिलि हुनई, सिखा मुहम्मद मोय ।

आयसी ग्रन्थावली ।

परम तत्व के साध एकाकार होने के लिए प्राचामाम-साधना गाड़ी-साधना और अन्न-भेदन की विद्या का उल्लेख विस्तृत पृष्ठों में किया गया है। सूफी कवियों ने इस साधना-प्रणाली के माध्यम से मईठ-स्थिति की सम्भावना के प्रति विस्तृत प्रकट किया है। सिंहल गढ़ में नौ पारियाँ (आयाम-या-विधाम स्पष्ट) हैं। सूर्य-सवि उस गढ़ को बचाकर बजते हैं। उनमें नौ पारियाँ हैं जो बज से सज्जित हैं। उस गढ़ के नौ तख्तों में नव पीरियाँ हैं उनमें बज के पिवाड़ लगे हैं। बार आमाओं को पार कर ही ताबक उन गढ़ में प्रवेश कर सकता है—

निशि यह बौंछि बनें ससि धूरु । नाहिउ नाचि होइ रम बूरु ।

वैदरी नवो बज्ज के सानी । सहस सहस ठहैं बैठे पावो ।

× × × ×

नवो रुंड नव वैदरी । भी ठहैं बज्ज केबार ।

बारि बसेरें छो बड़े । सत छो बड़े को पार ।

पद्यावत—३३।४१ ।

इस प्रकार सिंहक यह काया-मय है । इसमें झड़ा और पिंगा नाड़ियों वीर और वीर की सधियाँ हैं । मुपुष्पा मोठी-कुण्ड है । चेतना कंचन-पूत हैं जो पाताल (मूलाधार) से लेकर बाकाय (सहस्रार) तक प्रसरित हैं । बाग इस पूत का फल है । अटा-मरण के घन से ऊपर उठने वाला व्यक्ति ही इस फल को प्राप्त कर सकता है—

यह पर नीर वीर धूर मरी । पानी भरहि बेबी दुरपरी ।

जीव कुण्ड एक मोठी बूरु । पानी बमिद्व डीब कपूरु ।

× × × ×

कंचन विरिध एक ऐहि पावा । बस कसपतइ इन्द्र कलिकावा ।

मूस पटार सरय बीहि साखा । अमर बेसि को पाव को बाबा ।

× × × ×

बहु फर पावे तपि कोकोइ । विरिध साइ नम बोजन होई । पद्यावत ३४ ।

इस प्रकार भी पौरुषों को कवि ने शरीर के नव द्वार के रूप में या भी चक्र के रूप में अंकित किया है । और पाँच कोटपाद पंच ज्ञानेन्द्रियों हैं । इसमें द्वार अक्षरार्थ है जिस पर अनहद नाद ध्वनित रहता है ।

नवो वैबलि पर बसो दुबाक । ऐहि पर बाब राज परिवार ।

बरी सो बैठि गने बरिबारी । पहर-पहर सी आपनि बारी ।

इसो धर्म में कवि जीवन की सचरंयुता का निरूपण भी करता है ।^१

१—तुम्ह वैहि बाब बने होइ कौंचे । बापुहि किरै न विर होइ कौंचे ।

मरी को घरे पटै तुम्ह बाऊ । का निर्मित सोबहि र बडाऊ ।

पहरहि पहर मगर सित होई । दिवा निचोना बाय न सोई ।

मुहम्व जीवन बक जलन रहै बरी के रोधि ।

बरी सो नाई ज्यों मरो बरी जलन या बीहि ३४५

इष्टयोग में दूष्य के साथ या पञ्च तत्त्व के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेने की भरण योग कहते हैं। कबीर ने इसे 'स्व' को 'पर' में समाविष्ट हो जाना कहा है। रत्नसेन का पद्मावती के साथ तादात्म्य स्थापित कर सेना 'स्व' को 'पर' में समर्पित कर देने की भावना से मिल्न नहीं है। कबीर ने मुरति को 'निरति' में समाविष्ट होने की भावना का वर्णन किया है। 'छनछेन' का पद्मावती के साथ एकात्म-हो जाना इसी विधि की साधनात्मक अभ्यवसाय है।

यसबो दुमार ताब का सेबा । उसटि बिस्टि जो काब सो देसा ।

बाह सो बाह साँस मन बन्दी । बस बसि बीन्हु कान्हु कासिन्दी ।

मन को मारकर, गटक कर, साँस को अधिकार में करने के पश्चात् बहू भाव का सोप होता है। जो बीजित रह कर मुक्त हो जाता है उसके लिए संसार की गस्तरता का कोई अर्थ नहीं होता। ऐसी स्थिति में साधक स्वयं अपना युव हो जाता है—

जियतहि जो रे मरे एक बारा

पुनि कठ मीचु को मार पारा ।

बापुहि गुब सो आपहु बेला

बापुहि सब सो आपु अकेला ।

पद्मावत १०६।

संकर से इस प्रकार का अनुबोधन प्राप्त करने के पश्चात् ही रत्नसेन अपने सहयोगियों के साथ सिमक यहू को घेर लिया है। आपसी तथा अन्य सुखी प्रेमा दयानन्द कवियों ने नाच पन्च में प्रचलित धोप साधना का सम्भव प्रेम तत्व के साथ किया है। यह उनका बड़ा समर्थ प्रयोग है। प्रेम की तीव्रता काव्य में अप्रस्तुत विद्या के रूप में निरन्तर विद्यमान रहती है। इन रचनाकारों ने इसलिये जबका सुखी वर्म के अनुसार ईश्वर या ब्रह्म के स्वरूप के साथ छिड़ो-जाओ और सम्यो की चिन्तन-बारा में उनलक्ष्य दूष्य के स्वरूप को समाविष्ट करने का प्रयास किया है। अतः अपने परम तत्व को दूष्य में निहित देखने का प्रयास उन्होंने किया है। गुरु ने रत्नसेन को 'बाँह' और 'सूर्य' की कथा में ही बीजित किया था—

जगहुँ मारि मुख बज्रित मेला । मुर होइ बापु कीन्ह यह बेला ।

सुख बाँह के कप्पा बहा । प्रेमक गहन लाह बिज रहा ।

पद्मावत ७३।८३।

इस 'भुय' और 'बोह' की कथा हेतु प्रेम-तत्व को माध्यम रूप में उसने ग्रहण किया है। प्रेम साधना के साथ योग-तत्व को संयोज की अनुप्रेरणा जामवी के के शरती कवियों में भी नियमित रूप में मिलती है। 'हंस जबाहिर' (कासिम साह) में यह स्पष्टीकरण मिलता है कि जबाहिर परम सिद्धि है इस साधक है। जम्नी सिद्धि हेतु यह योग-साधना करणा है।

बो तो जहूत जबाहिर कीम्हा । तू कर योग मुख जस कीम्हा ।

कहुँ योग को योसाबादी, ठाढ़ किया बाँधों दुख भापी ।

इस जबाहिर पृ० ११६ ।

'मधुमास्ती' का नामक मनोहर से पोरख के मार्ग का अनुसरण कर मधु मास्ती का दर्शन किया और उसमें अमरुद नाव प्रस्तुति हुआ—

बरसन बाम इह सब कीन्हेसि, माग पोरख बा बाग ।

कर बरसन स्यों केउराबी सहस बनाहुद कंकरी बाजी ।

मधु मास्ती ।

मुझे प्रेमास्नातक कान्धों में नाविका के निवास-स्वक के लिए कवियों ने कविलास (केलास) शब्द का प्रयोग किया है। केल्लास साधना की यह उच्चतम भूमि है, जहाँ पहुँच कर साधक परम तत्व के साथ तादात्म्य स्थापित कर केला है। मुक्तियों का 'कविलास' अस्तुतः पोरखनाब या सन्तों का सहकार या ब्रह्म रस है—

(१) छात काज ऊर कविलामू, सहर्षी गारि सेब मुख बामू ।

पद्यावत ।

(२) करत जो कीमुक खेस सब नवत सखी कहुँ पास ।

स्ये सो मामिमि दुखहुँ, यई माँस केलास ।

इस जबाहिर पृ० ८२ ।

मन की साधना इत विस्तृत धारा की आधार सिद्धा है। जितनी भी अन्तर मूर्खी साधना प्रवाही को पोरखनाब ने अपने सन्मर्म के अनुसार ब्रान्तरित किया है। क्योंकि तथा अन्य सन्तों ने भी मन की साधना पर विश्वास प्रकट किया है। जायसी तथा अन्य मुन्नी कवियों ने भी मन की साधना के प्रति प्रबल आग्रह-भाव व्यक्त किया है। मन की इड़ना ही साधना छल्लि है। मन की इड़ना से ही रज

ऐन ने मार्ग के बिरोधों के बीच अपना विकास किया और परम तत्व 'पद्मावती' के साथ तादात्म्य स्थापित किया। मन के इसी स्वरूप का परिचय प्रदान करते हुए एन ऐन ने पञ्चपति से कहा—

गजपति यह मन सकती बह मन चीऊ । पे बेहि पेन क्यूँ तेहि बीऊ ।

बौ पहिलें सिर बे पपु बरई । मुए केर भीचुहि का करई ।

अर्थात्, यह मन ही शक्ति है यह मन ही शिव है जिसे प्रेम होता है उसमें प्राप्ति नहीं होती। जो अपना प्राप्ति के प्रेम-बंध पर बहसर होता है उसकी मृत्यु कुछ नहीं कर सकती है।

एन ऐन ने मन की दृढ़ता का परिचय प्रत्येक मायाम में दिया। केन एन ऐन के शिष्यों (राजकुमारों) की यशोकि पर ईसात है मार्ग का परिचय देते हुए उसने कहा—

गरजे गैपन पंलि बौ बोसहि । डोळै समुद्र डहन बौ लेसहि ।

तहाँ न चार न सुख असुखा । नई सो बौ बस अयुमल बुखा ।

पद्यावत - १४८।१११ ।

इस बंधन पर एन ऐन ने अपने मन की दृढ़ता का परिचय दिया —

बौ सत हिएँ ठी नैनन्ह दिया । समुद्र न डरे पैठ मरबिया ।

तहँ कलि हेरौ समुद्र डँडोरी । बहँ कपि एन पसारन बीरी ।

सत पतार लीजि बस काड़े बेर बरंय ।

सात घरम बहि बाबौ पद्मावती बहि पंथ ।

अर्थात् उसके हृदय में सत्य है तैयों में बीपक है। उस समय तक वह समुद्र में लोमठा रहेगा जिस समय तक वह अपने उलटिच नया किया। जिस प्रकार सत पाताल में (मत्स्य अवतार में) बिष्णु ने बेर-घन्व निकाला उसी प्रकार सत आकाश पर चढ़कर वह पद्मावती के मार्ग की ओर बहसर होगा। मन की दृढ़ता सर्वत्र के समान है जिसमें परम तत्व का स्वरूप अति स्पष्ट है। इस हृदय की दृढ़ता के कारण ही शिष्टों को अनीष्ट की उपलब्धि हो सकी थी। वह तत्व हमसे भिन्न नहीं है, वह इसी मन में समाया है—

महं ब्रह्मण गुण केतुं सम्हारी जेहि सम देखहु बरिनु निगारी ।
 येही मुकुट सिखन कर गहा मन की इच्छा इहि मनि बहा ।
 बौबह भुवन रहहि मन माहीं तिल सघान कछु बाहर गाहीं ।

विभावली पृ० १०२ ।

प्रेम मार्गीय साधना

श्रुतिमों की साधना प्रेम मूलक है । उनके अनुसार परमात्मा प्रेम-स्वरूप है । वह विषय सौन्दर्य रूप भी है । सौन्दर्य प्रेम का प्रमुख तत्व है । अब सौन्दर्य तथा प्रेम-उपासना के प्रति ये आस्थावान रहें हैं । 'जामो' ने इस प्रकार की प्रस्तावना की है कि ईश्वर परम सत्ता है । उसका सौन्दर्य अपनी सम्पूर्णता के साथ समस्त सृष्टि में प्रतिभाषित है । प्रसिद्ध सूफी साधक मज्जाली ने प्रेम के उद्गाह की बरौ की है । हेमूब बनाने वाली प्रेम भावना का विकास हिन्दी सूफी प्रेमाख्यामक काव्यों में मिलता है । हिन्दी सूफी प्रेमाख्यामक काव्यों में परम तत्व का सौन्दर्य—बुद्धि, प्रेम और प्रकाश—इन सभी रूपों में वर्णित किया गया है । इन आख्यामक काव्यों में नायिकायें अलौकिक सौन्दर्य के पर्यायवाची रूप में ग्रहण की गई हैं । इनकी नायिकायें यद्यपि लौकिक हैं, परन्तु लौकिक में ही कवियों ने अलौकिक सौन्दर्य की प्रतिस्थापना की है । इनमें 'इन्नेसामी' और 'इन्नेसामी' के सौन्दर्यवाद का समावेश किया गया है । सूफी साधक बहा की स्थिति हृदय में मानते हैं । इस प्रकार इन आख्यामक काव्यों में लौकिक प्रेम अग्रस्तुत है । प्रस्तुत है अलौकिक प्रेम । इन रचनाओं में प्रेम का बारम्बार गुण अवयव बिज बर्चन या साक्षात् दर्शन से होता है । 'मुसाबत' 'हंस बवाहर' 'अमुराप बौपुरी' आदि रचनाओं में प्रेम का बारम्बार गुण ग्रहण से होता है । 'विभावली' और 'रजावली' में बिज बर्चन की योजना मिलती है । 'कनकावली' 'कामलता' 'इन्नावली' और 'मुसुल कुसेबा' में स्वप्न-दर्शन की परम्परा का निबौह किया गया है । 'मनुमावली' में प्रत्यक्ष दर्शन की पद्धति का नियोजन मिलता है ।

१—सौन्दर्यवाद के दोष सूची इन्नेसामी ने । प्रेमवाद के प्रवर्तक मंसूर इस्लाम ने । इसके अतिरिक्त एक अन्य बारा है, जिसके अनुसार ईश्वर नूर या प्रकाश है । एक अन्य धारा के अनुसार ईश्वर बुद्धि का पर्याय है ।

इस प्रकार श्रुतियों ने प्रेम और वय के पारस्परिक सम्बन्धों का निरूपण करते हुए अपने काव्यों में ससुखी महत्ता का संस्थापन किया है। इसकी प्रेम-व्यक्ति में बिरह एक अनिवार्य तत्व माना गया है। वय और प्रेम के पतनार्थ बिरह एक स्वानाविक बंध के रूप में प्रस्तुति होता है। यथा—

वय येन मिलि ओ सुख पावा इमहु मिलि बिरहा उपजावा ।
 अहाँ प्रेम तहें बिरहा जानहु बिरह बात जन सनु कर मानहु ।
 जहि तन प्रेम आवि मुलनाई, बिरह पौन हाइ रे सुलमाई ।
 वय प्रेम बिरहा वपत, मूक सृष्टि के धम्म ।
 हौं तीगहु के भेद कहु, कबा करौ मारम्म ।

असमान बिनाबकी १३ १४ ।

शिव का सौन्दर्य 'भनु' (नविरा) के समान है। इसे पाकर सावक 'बाबका' होने की शक्यता करता है।

बै घर अपने हाथ छो निमड बेकि मुल तोर ।
 बाइसि छो पतमोछ तै प्राण विपारा मोर ।
 बिना कबन्धरि के निए, बास न मन छों बाठ ।
 बयाबती होइ वीबिए, होसिक लागी प्राठ ।

नूर मुहम्मद-इनाबती ।

परम ज्योति स्वयं परमात्मा शीतक की ज्योति है। सावक उस ज्योति के साप पतन के समान तादात्म्य स्थापित करता है। सावक अपने अस्तित्व को उस परम में समर्पित करता है। इस प्रकार अपने अस्तित्व के मरण की जाबना उसकी साबना का उद्देश्य है। इन मरण के पहले सावक को अपनी चित्तश्रुतियों को मारना पड़ता है। इस प्रकार सावक के सम्मुख मरण की दो अवस्थाएँ हैं। प्रथम अपनी चित्तश्रुतियों के मरण की अवस्था द्वितीय उसके स्व के मरण की। इस स्थिति को 'बका' की अवस्था कहते हैं।

'पद्मानाथ' में रक्तैन 'पद्मानाथी' के रूप सौन्दर्य का परिचय प्राप्त कर उद्विग्न हो उठता है। शुक उससे कहता है यह प्रेम कोई तादात्म्य देल नहीं है। इन प्रेम के लिए प्राचीन का उत्कर्ष व्यक्त है। रक्तैन कहता है, प्रेम के इस स्वल्प से बड़ा परिचित है। यद्यपि प्रेम 'मरण योग' है परन्तु प्रेम-अविविध व्यक्ति

का संसार में जाना शक्य है। मुक्त प्रेम मार्ग की कठिनाइयों का उल्लेख करता है—

जानहि नहर में तेहि पथ मृते, बौक होम्ह को बिग न छुटे ।

अर्थात् प्रेम पथ की कठिनाइयों को वे ही जानते हैं जिन्होंने प्रेम-पथ पर अपना सर्व बलिदान कर दिया है। प्राचीनसर्व के बाद भी जो प्रेम का परित्याग नहीं करते वे ही सफल हैं। प्रेम को साधना संसार के बीमर के परित्याग के साथ ही हो सकती है। प्रेम तो मोन और तर की साधना है।

साधनु सिद्धि न पाइव को छनि साध न तप ।

छोड़ जानहि बापुरे, सीस को करहि कल्प ।

प्रेम की कथा कहने से ही प्रेम उपलब्ध नहीं होता। साधना के क्रियात्मक स्वभाव के द्वारा ही प्रेम प्राप्ति सम्भव है—धूत के लिए यदि-मन्त्र की आवश्यकता है, प्रेम के लिए साधना की क्रियात्मकता की—

का मा भोग कहानी कने, निकटे चित न जानु बनि मने ।

इसके लिए अपने स्व का समर्पण अनिवार्य है। प्रेम दुर्गम पर्वत है उस पर पुण्य अंकुशित है। हम सूखी पर संसुर (प्रेम मार्गी) ही बढ़ सकता है। कंधा भारक करने से ही योग मार्ग का पात्री नहीं बना जा सकता है। शरीर में ही दण्ड मार्ग है काम क्रोध, लुब्धा म्ब और माया, वे पाँच जोर क्रियाशील रहते हैं। वस डारों को बन्द करना होना पाँच जोरों को अपने नियंत्रण में करना होगा।

को छनि जाप हैराम न कोई । ली कहि हेरत पाव न सोई ।

प्रेम बहार कठिन बिधि मका । सो पै नई सीस सो नका ।

पन्थ मुनिन्ह कर उठा अंकुश । जोर नई कि नई मंकुश ।

गु राधा का पहिरसि कंवा । तीरे बटहि माह बस कंवा ।

काम क्रोध विस्वा नर माया । पाँची जोर न छाड़हि काया ।

१२४१११ ।

हम बलव्य से रखते हैं जिस हो उठता है। उठकी स्थिति समाधिपूर्व हो जाती है। उठके नेत्रों से मूँहा और मोटी मिरते हैं। मुक्त गुह की भूमिका में प्रेम निवारो कायदा है और धिप्प क्य में रखते उस निवारो को मन्त्रित कर लेता है। वह कीट-मृगी के समान हो जाने के लिए उत्तरदा

उठता है। जिस प्रेम से वह बन्ध होता है उसकी प्राप्ति के लिए वह आकुल हो उठता है—

धुक बिरह चिनवी है मेका । जो मुछवाह सेई सो बेका ।
 बब के फनिग भू मि के करा, भैबर होठ जेहि कारण बरा ।
 धूक-धूक छिरि पुछीं जी पहुँचीं जोहि केत ।
 तन नेबसाबर के मिलीं ज्यों मनुकर बिठ बैत । १२१।१२२।

रत्नसेन प्रेम-यप पर प्रस्थान के लिए तैयार है। ज्योतिषो भाष के प्रस्थान को बहुम मानता है। दिन क्षुभ नहीं है। रत्नसेन उतार बैठा है कि प्रेम पबित्र दिन और बड़ी नहीं देखाता। जिसके शरीर में प्रेम का प्रवेश हो जाता है, उसमें रक्त और मांस नहीं रह जाता। प्रेमी तो पक्ष पर पक्षी के समान है। जिस वन में उसे निधाम मिलता है, उसीमें वह निधाम करता है।

गनक कहहि कक न गवन भाजू । दिन से बछहि फरे सिप काजू ।
 प्रम पंथ दिन परी न देखा । तब देखे अब होइ धरेका ।

× × × ×
 हौं रे पसेक पैसी जेहि बग मोर निबाहु ।
 सेलि बसा पैहि बग कई तुम्ह आपन बर बाहु । १२७।१२४।

रत्नसेन कहता है प्रेम-मय्य अनन्त है। प्रेम समुद्र पार करने वाला 'हंस' के समान तैर जाता है। नखर काया की मृत्यु को वहाँ फिन्ता नहीं। इस समुद्र के जल में (भव सागर में) मृत होकर अब वह स्मृतों के साथ बहेगा तो लहर उसे कहीं से जायं वह समझ कर ही वह समुद्र में समर्पित हो रहा है।

शिव मन्दिर में रत्न सेन पद्मावती को देखकर मूर्छित हो जाता है। पद्मावती लौटकर घर आती है। पुनः धुक रत्न सेन का सन्देश लेकर पद्मावती के पास जाता है। पद्मावती को रत्न सेन का पत्र मिलता है। बिरह का पत्र तब है। पत्र के ताप से धुक-रुष्ट भी सास हो गया है। धुक कहता है—

अग्नि स्वोस सेन निकसै ठाठी । तरिबर जरहि तहाँ का पाठी ।
 जरि जरि हाइ भए सब जुना । तहाँ मासु का रक्त बिहूना ।
 रोइ रोइ तुमै वही सब बाठा । रत के औंनुह मा मुस राठा ।

देखु कंठ बरिछाय सो येरा । सो कठ बिरो पछु बस येरा ।

जोइ देखि छाव कया बसि भारी । तपत भीम बल बह न पाटी ।

२३०। १८७ ।

धुक का उत्तर देतो हुई पड़माकती कइती है—सुक उससे मिलने की मेरी अनिच्छावा बसि प्रबल है । परन्तु वह प्रेम का मर्म नहीं जानता । वह अपरिपक्व है । प्रीति के रंग में वह पूर्णतः रंजित नहीं है । उसका अन्तर प्रेम-मत्स्यगिरि से गुहासित नहीं है । वह अमर के समान नहीं हुआ है । दीपक पर जल्य की गति की अनुभूति उसे नहीं हुई है ।

कहेहि सुभा मोहो सुन बाता । जही तो जाब मिर्जी बस पाता ।

वै सो परम न जानै मोरा । जानै प्रीति जो बरि कर मोरा ।

हो जानहि हो बबहुँ कोबा । न जगहु प्रीति रंग बिर पोबा ।

न जगहु होइ जेबर कर रंग । न जगहु दीपक होइ पतंग ।

२३१। १८८ ।

पड़माकती रत्न सेन के वज्र का उत्तर देती है, प्रीति में कंचन और सोहाये का व्यवहार होना चाहिए । मध्य में तुम मूर्खित हो गए । खेक के मिस बाण्य कर नि तुम्हें बममास देना चाहत । तुम्हें जन्म कमाया । परन्तु तुम सोचे रहे । मिथन बाण्य अवस्था में होता है । जब यदि तुम सूर्य के समान आकाश (सिंह छ डीन) पर आ सको तो तुमसे मिल सकती है । अमर । बसि तू कयकी से प्रीति निबाह करना चाहता है तो कन्दको से न डर । पतंग बनकर बबरों से दीपक घागल कर । तू निषाधित बावक के समान मुझे पुकार । तू उस सारस के समान बन, जिसकी जोड़ी निबुह गई है, जकोर के समान अपनी दृष्टि पक्षि पर केन्द्रित कर ।

(२३४ २०१) ।

इस प्रकार प्रेम में आत्मसमर्पण अवैधित है । रत्न सेन सिविल गढ़ में अपने धियों के छाव बन्धी बनावा जाता है । उसके धिय पृथ हैतु उत्तर होते हैं । परन्तु वह सेन बन्धित करता है । वह उपदेश देता है कि प्रेम में धरम-बाण्य की आवश्यकता नहीं । बहूय के सम्मुख लजबस्तक होने का उपदेश देता है । अस के समान प्रवर्धित हो जाने की कहता है । ऐसी स्थिति में बहम जारी जारी-जानी हो जाता है । बस से वो अग्नि की बुझ जाती है । प्रेम के द्वार पर प्रिय से बड़ा

और कोई आकर्षण नहीं है। रत्न सेन सुखी पर चढ़ने जा रहा है। अधिक कहता है जिसे स्मरण करना चाहते हो कर जो। रत्न सेन चतर देता है मैं प्रत्येक सोच में उसी का स्मरण करता हूँ। काया में एक-एक बूँद पद्मावती का नाम स्मरण कर रही है।

कहेसि ओहि सँवरौ हर केरा। मुएँ मिअत जाहौ बेहि केरा।

× × × ×

रक्तक बूँद क्या बत जाहूँ। पद्मावति पद्मावति कहूँ। २६३।२२३

इस प्रकार आबसी तथा अन्य सुफी कवियों ने अर्द्धत की प्राप्ति के लिए मरण योग को स्वीकार किया है। संसार से विमुख होकर अर्द्धत की मुक्ति में जानना ही मरण है। प्रेम-संघ पर बनेक बार मरण की अवस्था आती है। सिद्धि-अवस्था ही अर्द्धत अवस्था है, मरण-अवस्था है। इस स्थिति के रक्षण की निरन्तर आवश्यकता रहती है। असावधानी से पुनः अर्द्धत स्थिति या आती है। और सावक पुनः संसार के साथ सम्बन्ध हो जाता है। अपनी उपसन्धि वह सही प्रकार जो देता है, जिस प्रकार रत्न सेन चित्तोर लौटते समय (समुद्र में) पद्मावती को जो देता है—

पद्मावति संसार रूप मनि कहँ सनि कहौ बुहेत।

एत सब भाइ समुँह मई सोएत हौं का जियौ अकेला। ४१०।

रत्न सेन सावना की पूर्णता पर नहीं पहुँच सका था इस कारण ही समय समय पर पद्मावती से अलग होकर वियोग की अनुभूति करता है। पश्चित्त रखते से कहता है मृत (संसार की माया के प्रति मृत) पुनः मरने की अभिलाषा नहीं करता है। मृत जब में (संसार में) डूबता नहीं है। वह तो निरन्तर अकबारा के साथ बहता जाता है और एक तट पर लज जाता है। बहरस मुठ राम भी नारी बिछ में पीड़ित होकर तुम्हारे ही समान इमी समुद्र में जाएँगे। राम अपने रामत्व को छोड़ कर ही सीता को प्राप्त कर सके थे। अतः मृत होकर ही पद्मावती को प्राप्त कर सकते हो। रत्न सेन इस सन्देश को ग्रहण करता है। वह उस तट पर पहुँचता है, जहाँ पद्मावती थी।

बी मर गया बी छोड़ति माया । बहुरि न करै मरन के दावा ।
 बी मर गया न बुझे नीरा । बहुत बाद जाये पै तीरा ।
 तूँ एक बाजर में भेटा । बेह राम बखरव कर भेटा ।
 जोहु मैदरी कर परा बिछोका । एहि समुँह मेंहु फिरि फिर रोका ।
 पुनि जो राम छोड़ मा मरा । तब एक अठ भदव बिजि ठरा ।
 तब मर होहु नूँहु अब जोकी । ताकी टेकु ठीर बेसाकी ।
 बाजर अब प्रेतर मनुषा मुलत जोहि भा बाट ।
 निमिष एक यई सैमा, पदुमावति बेहि बाट । ४१३ । १४२ ।

रखतेन अनेक सन्तानों में 'वरण' प्राप्त करता है परन्तु प्रत्येक अपतन्त्रि के पश्चात् उसका मन व्यथित होता है । अतः मन के मारने की समस्या उसके सम्मुख निरन्तर विद्यमान रहती है ।

डॉक्टर भाठा प्रस्ताव पुनः बापची को प्रेम-तन्त्र को अधिकमूलक नहीं मानते हैं । इस प्रकार इनके अनुसार समस्त सुखी प्रमादमानक काव्य बौद्धिक प्रेम-मूलक है । इस प्रकार इनका विचार आन्तरिकमूलक है । यदि इनके निष्कर्ष को ग्रहण कर लें तो सुखी प्रेमावस्थामक काव्यों पर दिये गए समस्त बह्यव्यो में परिवर्तन करना होगा । इस दृष्टि को धर्ममूलक रखते हुए इनके बह्यव्य पर यहाँ विचार किया जा रहा है । डॉक्टर बुत के निष्कर्ष निम्नलिखित हैं —

(क) बापची की कथा प्रतीकात्मक नहीं है । जिस प्रेम का विकास उन्होंने रखतेन और पदुमावती के बीच किया है । वह बीच और ईश्वर के प्रेम का प्रतीकात्मक रूप नहीं है । वह विधुत रूप में नारी और पुरुष का प्रेम है जो परमेश्वर की ज्योति निकर बाकीर्ण होते हैं ।

(ख) प्रेम नाम को बापची दिया जाना है । अतः उनके अनुसार पुरुष और नारी का प्रेम भी दिव्य है । यदि वह कुछ जोम नाम न हो क्योंकि वस्तुमें प्रेम पर की प्राप्ति के लिए जीवन्तोत्सर्ग की आवश्यकता हो । इस प्रकार का प्रेम मनुष्य के जीवन को बौद्धिक बनाता है और उसे धार्मिक करता है ।

(ग) बीच और ईश्वर का प्रेम पुरुष और नारी के प्रेम से क्रिपित विभन्न है । जीवन में उनका समाधि और महत्त्व है । किन्तु पुरुष और नारी की सहायता से बापची ने पद्मकी और को संकेत नाम दिया है, वह प्रस्तुत कृति में बापची का वर्णन नहीं है ।

(ब) पुष्प-गारी के प्रेम में काम के लिए भी विहित स्वान है, वह निषिद्ध नहीं है ऐसा बायसी का स्पष्ट मत है ।^१

इन के अनुसार बायसी ने लौकिक प्रेम के आवर्धीकरण की मायना से 'पद्मावत' की रचना की है । अपने मन्त्रव्य के स्पष्टीकरण के लिए वे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के एक मन्त्रव्य का सम्मर्ष ग्रहण करते हैं और उसका विश्लेषण करते हैं । आचार्य शुक्ल ने इस ओर संकेत किया है कि बायसी के प्रेम का मारम्भ लोभ से होता है—मुए के मुख से पद्मावती की प्रशंसा सुनते ही बिना उठे बैठे रत्न सेन उठे प्राप्त करने सोड़ पड़ता है । यह उसका कम लोभ है प्रेम नहीं ।^२ डॉ० माता प्रसाद गुप्त ने इसका समाधान इस रूप में देने का प्रयत्न किया है 'ऐसा नहीं कि बायसी ने इसका कोई समाधान दिया है किन्तु वह बहुत संक्षिप्त है, कि क्याचित इस लिए इतना संक्षिप्त है कि वे अपने प्रेम रस के रसिक और विद्व पाठकों से यह अपेक्षा करते थे कि उनके लिए यही पर्याप्त होया । सम्भव है कि जिन्हें वे अपने काव्य का पाठक समझते थे उनके सामने यह समस्या उस प्रकार की रही भी न हो जिस प्रकार यह हमारे सामने है ।'^३

रत्न सेन पद्मावती से विवाह के बाद प्रथम मिस्र के बातीनाप में कहता है—

अनु बनि तू सवि जर निसि माहीं । हौ रिनजर तेहि की तू छाहीं ।

बौरहि कहीं ज्योति मो करा । सुख की ज्योति बौर निजरा ।

पद्मावती भी इस कवन का समर्पण करती हुई कहती है—

हीरा दिपे जो सुख छोटी । नाहीं त कित पाहन कहैं बोटी ।

रवि परमासे कैवल विवासा । नाहि त कित मनुकर कित बासा । ११३।

इनके इन कवनों का स्पष्टीकरण तब होता है जब हम इब्नुल अरबी (मृत्यु सन् १२४०) के सिद्धान्तों पर विचार करते हैं । उतने 'कुसुमुद्विहाम में

१—पद्मावत-डॉ० माता प्रसाद गुप्त भारतीय मन्त्रार-भूमिका पृष्ठ ४३ ।

२—बायसी पद्मावती भूमिका अवर्ध संस्करण पृ० ३१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ।

३—पद्मावत डॉ० गुप्त ४३ ।

सिखा है कहा है, 'जिस प्रकार ईश्वर की प्रतिष्ठाया के रूप में मनुष्य का निर्माण हुआ है, उसी प्रकार ईश्वर की प्रतिष्ठाया के रूप स्त्री की रचना हुई है। इसलिए पुरुष ईश्वर और स्त्री दोनों से प्रेम करता है। स्त्री का पुरुष से वही सम्बन्ध है जो मनुष्य का ईश्वर से है। अतः इस वर्ण में जब स्त्री से प्रेम किया जाता है तो वह प्रेम ईश्वरीय ही होता है। बामसी ने स्वर्गेत और पद्म-कवी के बाणोत्पाप में इस मत को 'सुमे' और 'जन्म,' 'सुमे' और 'हीरा' तथा 'सुमे' और 'कमल' के प्रतीकों को लेकर प्रस्तुत किया है। मनुष्य ने अपनी रचना 'मनु मातृसी' में इस प्रेम के रहस्य का ज्योत्स्ना और भी विस्तार के साथ किया है। प्रथम वर्णन में ही उनकी कथा का नायक मनीहर मनुमातृसी से अपने इस प्रथम वर्णन-अर्पित प्रेम का रहस्य स्पष्ट करता है। वह इस प्रकार कहता है—

कहे कुंवर सुनु मेम विपारी । मोहि मोहि प्रीति पूज्य विधि सारी ।

एहि जग जीवन मोहि तोहि लाहा । मैं बिच वै तोर दुख बैसाहा ।

मैं न बाध तोरे दुख बुझारी । तोरे दुख सेठ मोहि बाधि बिभारी ।

बेहि बिज सिरेठ बाध विधि मोघ । तेहि बिज मोहि बसेठ दुख पैरा ।

बर कामिनि तोहि प्रीति के नीक । मोहि माँटी या तानि सरीक ।

पूज्य बिज सिरेठ बाधैं तुम्हरी प्रीति के नीर ।

मोहि माँटी विधि तानि के ती मह सिरेठ सरीर । ११३ ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने काव्य-सौन्दर्य के सन्दर्भ में 'पद्मावत' की प्रेम-व्यक्ति पर विचार किया है। उन्होंने काव्य में शास्त्रप्रिय-वर्णन प्रणाली के सन्दर्भ की पहचान करते हुए कहा है कि पद्मावत का प्रेम वर्णन गुण-अवयव, स्वप्न-वर्णन और चित्र-वर्णन की कोटि का है। इसका यह तात्पर्य नहीं निकलता कि पद्मावत का प्रेम पूर्णतः कौमिक-कोटि का है। इसी सन्दर्भ में आचार्य यह स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि बावसी के श्रुतार में मानसिक पक्ष प्रधान है धारिणीक गीत है। काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से विचार करते हुए आचार्य ने दो कवियों के आचार पर अपना निष्कर्ष प्रदान किया है। प्रथम आचार्य सुक, 'काव्य में लोक-मोक्ष की साधनावस्था' वाले विद्वान् के आचार पर इस प्रेम-विषय का मूल्यांकन करते हैं। उनका कथन है कि बाणोत्पाप प्रेम-व्यक्ति लोक-सम्बद्ध और व्यावहारिक थी। बावसी के

काव्य में प्रेम का यह लोक मंगलालम्बक स्वरूप नहीं मिलता है। बुरा, फारसी मसनवियों का प्रेम एकान्तिक, छोड़-बाह्य और भावहीन होता है, उसमें जो घटायें जाती हैं वे केवल प्रेम मार्ग की होती हैं। संसार के और व्यवहारों से उत्पन्न नहीं। साइस बीरता बढ़ता और मोरता भी कहीं-कहीं दिखाई पड़ती है तो प्रेमोन्माद के रूप में जोर कठिन के रूप में नहीं। अतः काव्य के लोक वर्णों स्वरूप के आधार पर ही आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आर्यभटी के प्रेम-स्वरूप की चर्चा करते हैं। पृथ-भवन से रज सेन में प्रेम आर्यत होता है। इस प्रकार के प्रेम-आवरण की विधा को सुकस्मी अस्वभाविक मानते हैं। अज्ञात के प्रति विज्ञाता हो सकती है प्रेम नहीं। इस मान्यता के आधार पर 'काव्य में रहस्य बाध' की सम्भावनाओं का विश्लेषण शुक्ल जी ने किया है। 'पद्मावत' की प्रेम पद्धति के निरूपण के समय भी यही विचार उनके सम्मुख था। काव्य में वे वस्तु की सापेक्षता का होना अनिवार्य मानते हैं। काव्य का विषय प्रस्तुत हो सकता है, अप्रस्तुत नहीं। रज सेन ने पद्मावती को देखा नहीं। उसके विषय में पहले से भी उसने कुछ सुना नहीं। 'अतः लोते के मुँह से पहले ही पहल पद्मावती का वर्णन सुनते ही रजसेन का मूर्च्छित हो जाना पूर्ण विवोषी हो जाना अस्वभाविक समझा है। शुक्ल जी यह संकेत करना चाहते हैं कि लोते ने रजसेन के मन में पद्मावती के प्रति विज्ञाता आर्यत की (और इसका वर्णन इसी रूप में होना चाहिये था।) उसके सारे प्रयास इस विज्ञाता की पूर्ति हेतु ही हुये। इस निष्कर्ष का स्पष्टीकरण शुक्ल जी के इस कथन से हो जाता है 'रजसेन में प्रेम कल्पन उसी समय दिखाई पड़ता है जब वह सिध मन्दिर में पद्मावती की मूर्तक देख बेसुध हो जाता है। इस प्रेम की पूर्णता उस समय स्पष्ट होती है जब पार्वती अन्धरा का रूप धारण कर उसके सामने जाती है' और वह उनके रूप की ओर ध्यान न देकर कहता है—

मनेहि रंग अझरी तोर राता । मोहि बुरे सौ पाव न बाता ।^१

वास्तविकता यह है कि सूझी प्रेमास्यानक काव्यों में सौन्दर्य प्रेम अप्रस्तुत है, प्रस्तुत है असीमित प्रेम निरूपण। सौन्दर्य पात्रों में सौन्दर्य प्रेम की नैतिकता विद्यमान है। जोर सापेक्ष अप्रस्तुतों से जोर निरपेक्ष प्रस्तुत में आचारणीकरण की दायता है।

सूफी प्रेमाख्यानात्मक काव्यों का काव्य मक्ष

सूफी प्रेमाख्यानात्मक काव्यों में किसी राजकुमार और राजकुमारी की प्रेम-कथा वर्णित रहती है। इस राजकुमार और राजकुमारियों की प्रेम कथाओं को कवि माध्यम रूप में ग्रहण करते हैं। इनके माध्यम से सूफी प्रेम-भूतक सामना के निरूपण का प्रयास किया गया है। इस प्रकार इस रचनाओं में सीकिकता के माध्यम से ब्रह्मोक्ति के निरूपण का प्रयास मिश्रित है। सूफी प्रेमाख्यानात्मक काव्यों के कवि एक निश्चित प्रकार की परिपाटी का प्रयोग करते हुए मिलते हैं। कवि आरम्भ में नामक और नामिका के नाम की कथा कहते हैं। इनमें प्रेम का संवरण शुरू परी या किसी अन्य पात्र द्वारा नामक-नामिका के सम्मेलन की पुष्टि, मार्ग में कठिनाइयों का उदय और उनके पश्चात् नामक-नामिका का मिलन और उनका विवाह की योजना करते हैं। कथा संयोजन की इस स्पष्ट योजना को रचनाओं के अन्त में प्रस्तावित कथा-भूमि में देखा जा सकता है।

प्रेमाख्यानात्मक काव्यों की मुख्य खबरें प्रेम-भूतक हैं। अतः इनमें शृंगार की प्रधानता है। इस कथाओं में कवि जीवन के व्यापक अन्तर्भाव को ग्रहण करते हैं। अतः इनमें नायकाओं और अनुभूतियों के अग्रणी रूप-विषय उभर कर आये हैं। कथा नियोजन और इसके विकास में कवि सम्पूर्ण रूप से जीवन की भूमि ग्रहण करते करते हैं। कथा के मध्य स्वतन्त्र-स्वतः पर यदि वे इनमें निहित अध्यात्मिक तत्व की ओर संकेत न करें, तो हमें आभास न हो कि कवि का उद्देश्य आध्यात्मिक है। यद्युमावती में रात्रि में नामक-नामिका में मिलन होता है। दोनों में प्रेमोदय होता है। विनोय होने पर नामक मनोहर और नामिका मधुमावती विनोय की कथा को सीकता बहुत कर बीजित है। विरह-वेदना के मध्य यद्युमावती की अवस्था का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

यद्युमावती को खोजव बानी, विरह बसिनि नह सिख तन कापी ।
मेन जग बार अनु छुटी केन पवति बनि बीर बहूटी ।
बबहि दख दुखत कोला, बामिनि चमक चमक बनि बोका ।
बिकसित केत रैन बधियाटी सहज भाव भावों छिट कारी ।
रोबनि करवि यद्युमावति, विरह निबा छु साध ।
बोरहि बचन बरवा धरा. अब बरवा बह काठ—यद्युमावती ।

नामसी ने अपने पद्ममावत' को दो मामों में नियोजित किया है। प्रथम अंश में रजसेन और पद्ममावती की प्रेम-मूक कथा कल्पना पर ही आधारित है। उत्तरार्ध की कथा में बलाउद्दीन और पद्मिनी की ऐतिहासिक कथा का लियोजन किया गया है। इन दोनों के पारस्परिक सम्बन्धों या इनकी बन्धित पर आये विचार किया गया है। यहाँ मात्र सुबेदता पर ही विचार किया जा रहा है। 'पद्ममावत' में शू नार भावना की प्रधानता है, और इस प्रकार कहा गया है कि शू नार उसका बंधी रह है। परन्तु रजसेन की मृत्यु के प्रस्ताव नामसी और पद्ममावती सती हो जाती हैं और इस प्रकार उसका अन्त शान्त में होता है। अतः इस सम्बन्ध के अनुसार इसका अंगी रत शान्त हो जाता है। वस्तुस्थिति यह है कि नामसी की दृष्टि काव्य-शास्त्र के विज्ञान की ओर नहीं है। कवि अपने कथन की ओर ही केन्द्रित रहा है और प्रेम में विरह की अनिवार्यता के सिद्धान्त के प्रतिपादन में वह शू नार के संयोग और विरोध, इन दोनों पक्षों की प्राणवन्त उद्भावना में संवेष्ट रहा है। कवि ने एक निश्चित बर्न-दर्शन की प्रस्तावना की है। अपनी चिन्तन शक्ति के प्रतिपादन हेतु कवि शास्त्रिक नियोजन प्रणाली के विपरीत काव्य को माध्यम रूप में ग्रहण करता है। अतः वह काव्यात्मक अनुबन्धों का संगठन करता है। आख्यायिका की इतिवृत्तात्मकता के नियमित संरक्षण में ही कवि अपने काव्य का विकास करता है।

'पद्ममावत' की मूक सुबेदता की उद्भावना उस स्वतः पर होती है जहाँ बाह्य बर्ण की आयु में पद्ममावती मौनता हो जाती है। पद्ममावती कभी वादिका अन्तर्निहित हो जाती है, उसके अंग प्रत्यंग विकसित हो जाते हैं (१५)। पद्ममावती का दिग्ग धुक पर संवेष्ट करता है, कारण वह अन्तः (मिमिका) का संवेष्ट मूर्ध (श्रेणी) तक अवस्थित है। वह धुक के बल की आत्मा देता है। धुक तो बल जाता है। परन्तु जीवन की व्यापकता में वह जीवन के अन्तर स्वस्व को ग्रहण कर लेता है। इस प्रदर्शन में कवि जीवन-दर्शन का समीक्षण करता चलाता है। इसी सन्दर्भ में पद्ममावत के उस अंग की ओर हमारा ध्यान जाता है, जहाँ कवि मान सरोवर में पद्ममावती की अल-झीड़ा का वर्णन करता है। जब मौनताओं के साथ अल झीड़ा के लिए उत्तुङ्ग संसृष्ट पद्ममावती की भावनाओं का अतिशयी और सापेक्ष रूप कवि प्रस्तुत करता है। इस वर्णन में कवि लोक जीवन में प्राप्त प्रभा

के अनुकूल ही वर्णन करता है। फलतः इस वर्णन के साथ हमारा सहज में ही आशान्वित हो जाता है। सरोवर में लीड़ा के समय पद्मावती की कुछ सौन्दर्यी उससे बढ़ती हैं—

ऐ रानी मन देखु विचारी । एहि नैहर खूना निन चारी ।
 जो समि बहै पिता कर जानू । खेति केहु बौं खेतहु मानू ।
 पुन सागरु हम गजनक काखो । किछ हम निठ एहसरक पाखी ।
 किछ भावन पुनि अपने हाथी । किछ निठि के देखब एक साथी ।
 सामु नन बोकिन्हु निठ केही । दास समुर न जाने देही ।
 निठ विमार सब ऊपर सो पुनि करें बहुत काह ।
 बहुत मुख राखै की कुछ बहुत कस जरम निबाह । १०।

इस अंश में अनुसृतियों की पर्यायता का वर्णन विशेष सौन्दर्य है। पिता-गृह में अनुकूल वातावरण है। निबाह होने पर भीम पति-गृह की पर्यायताओं से अनुसृतित होता। एक अनिश्चित नविय के बीच है सोचती है कि साथ और मनरे भाग से जीवन कठिन कर देगी, निष्ठुर स्वसुर पिता के घर लौटने नहीं देगा और इन सब सम्मेलनों के परस्पर निय के अनिश्चित व्यवहार की आशंका है। प्रिय पति का प्यार उन्हें निष्ठ सहेया या नहीं इस कौतूहल और जिज्ञासा में वे अनुकूल वातावरण के लिए अनुसृतित हैं। कवि बायली ने सांकेतिक रूप में इस लोक को 'नैहर' और परलोक को 'सागर' कहा है। प्रिय परम लक्ष्य है।

इस प्रकार कवि जानसरोवर में पर्यायता और उसकी सन्धियों का अत्यन्त मोहक वर्णन करता है। सरोवर में वे सभी वस्तुओं के समान रूप रही है। उनकी लीड़ा से सरोवर अलसित हो रहा है, अपनी सीमाएँ तोड़ रहा है। कारण उसके बल में चन्द्रमा तारों के साथ स्नान करने उतरा है। इस सन्दर्भ में कवि पर्यायता का नव चित्र वर्णन करता है। रूप-सौन्दर्य-वर्णन में कवि सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति का प्रयोग अत्यन्त विधान के रूप में करता है। यथा—

सरवर तीर पक्षिनी आई । बोपा छोरि केव मोकराई ।
 सखि मुख जय मसै मिरि रानी । नाथहु भौंसि लीन्हु अर्यानी ।
 बोले मेष परी बय छाहीं । सखि की सरल लीन्हु अनु राहों ।
 घनि गै निगहि मानु के बसा । छे निठि नखत जौव परमसा ।

भूषि बकोर बिस्ति तहँ भावा । मेव बटा सँह चौद बैसावा ।
मेव संजन बुझि केहि करेही । कुब नारंग मबुकर रस ऐही ॥६१॥

इस प्रकार के वर्णनों में कवि माछीस साहित्य में उपलब्ध परम्परा-पूर्व रूपमानों का प्रयोग करता है । ये प्रकृति-युक्तीत उपमान हैं जो कन साम्य, वृक्ष साम्य व्यापार साम्य और प्रभाव साम्य पर आधारित हैं ।^१ रूप-सौन्दर्य का वर्णन समस्त सूफी काव्यों में प्रायः एक रूप में पाया जाता है । रूप ही प्रेम की अनुभावना करता है । मंजल की 'मधुमावती' उसमान की बिनावली' एवं अन्य सूफी प्रेमावधानक काव्यों में रूप-वर्णन की प्रवाची काव्य कविताओं के अनुसार है—यथा—

निर कर्कश सखि दुइज कीलारा । मव सख तल मुबन उम्वारा ।
बदन पसेन बौर नहुँ पासा । कब पेरे अनु बौर बरासा ।
मय मद तिलक ताहि पर बरा । जानहि बौर राहु बस पय ।
मधुमावती ।

यह अति स्पष्ट है कि बायसी तथा अन्य प्रेमावधानक कवियों ने लौकिक कथा के वर्णन के सन्दर्भ में ही अलौकिक सत्ता की ओर उक्ति किया है । परन्तु इनमें प्रस्तुत और अप्रस्तुत (बलौकिक और अलौकिक) के मध्य पर्याप्त संतुलन मिश्रता है । कथा विकास के सन्दर्भ में काव्यत्मक तथ्यों के समानेष्ट से हम यह महीँ सोच पाते कि 'पद्मावत' में रतनदेन और पद्मावती अथवा 'मधुमावती' में

१ बायसी के पद्मावत में इस प्रकार के नव दिश वर्णन के आठ अस्वय मिलते हैं—

(क) सिंहल की बैस्याओं का नव दिश वर्णन (ख) योक्न मार से धारित पद्मावती का नव दिश वर्णन (ग) नानचदौबर के सन्दर्भ में पद्मावती का नव दिश वर्णन (घ) रज्जुदेन से हीरामल द्वारा पद्मावती का नव दिश वर्णन (ङ) समुद्र के सन्दर्भ में बलाच पद्मावती का नव दिश वर्णन (च) नावपती से पद्मावती का नव-दिश वर्णन (ज) बलाचहीन के सम्मुख रायच धेतन द्वारा पद्मावती का नव दिश वर्णन ।

‘राजकुंवर और मधुमावती’ की प्रेम कहानी के अतिरिक्त अन्य उत्तम भी नियोजित हैं। ‘पद्मावती’ में कवि ने राजसेन-नागमती राजसेन-पद्मावती को आत्मजन मानकर संयोग और वियोग के रसारमक सम्मनों की सबत उद्भावनाओं की हैं। शृंगार के सम्मर्न में हमारा ध्यान सर्वप्रथम संयोग शृंगार की ओर जाता है। संयोग शृंगार-वर्णन की इह परंपरा भारतीय काव्य-परम्परा में मिछती है। ‘कुमार सम्मन’ ‘नेपथ महाकाव्य’ तथा ‘और पंचासिका’ आदि ग्रन्थों में शृंगार के अन्तर्गत सम्मनों के चित्र मिलते हैं। असूफी प्रेमाख्यातक काव्यों में भी कवियों ने इस निष्ठा को प्रथम दिया है। ‘डोसा माक रा हुआ’ सिगारि बाती’ ‘श्रमस्त सबलिंग’ ‘माचवानल काम कनका’ आदि कृतियों में संयोग-विषय के निश्चित प्रयास मिलते हैं—

मदन नाम उन बाद न सदा । उठि सूरखी जाँचल पहा ।
 खाल्य कर कंचुकी छलाई । पूकड़ इष्टि सीमा बुझाई ।
 अजर प्रकार कुछ पहन न बैह । कुवन न बंग सिगारि देई ।
 सिगारि बाती मागरी प्र० प० १२२ २६ ।

आमसी मंगल तथा अन्य सूफी प्रयास्यातक काव्यों के कवियों की रचनाओं में संयोग विषय इसी परम्परा के अन्तर्गत आता है। परन्तु इन कवियों ने लौकिक-विषय में अलौकिक संकेतों का निवोजन भी किया है। विवाह के परचाए राजसेन और नागमती मिलते हैं। उनके संयोग विषय में आमसी अपनी पूर्ण परम्परा का ही अनुसरण करते हैं। पद्मावती जबत मुह पर चढ़कर अपनी सहेली से राजसेन के विषय में बिद्यासा करती है। सहेली राजसेन को रिक्ततापी है। राजसेन के वर्णन के परचाए पद्मावती में एक सैधयिक उद्घास भाव आगूठ होता है। उसका वर्णन कवि इस रूप में करता है—

देखा जाँह सूरज बस साजा । अस्टौ भाज मरन उन पाजा ।
 हुकसे मेन दरस मर मति । हुकसे अजर रंग रस पाते ।
 हुकसा बल बोप रति आई । हुकसी हिया कंचुकी न समाई ।
 हुकसे कुछ कसनी बँद टूटे । हुकसी मुना बल्य कर फूटे ।

×

×

×

आजु जाँह नर भाई सुक । आज सिगार होइ सब बूक ।
 बँय बंग सब हुकसे केउ करहुँ न समाई ।
 ठावहि ठाँव वियोहा गइ मुरछा पति बाद १२८० ।

विवाह के पश्चात् रत्नसेन की धीमा समित होती है। इस सम्बन्ध में बायसी दर्शन के कविगणों अस्तु भावनाओं और अनुभूतियों के कवि हैं। जब दम्पति के मानसिक भाव परस्पर मिलने की उत्सुकता और हृदय की रसपूर्ण स्थिति, इन सब को कवि ने अपने वर्णन में समीकृत कर लिया है। लोक-प्रचलित प्रथाओं के संरक्षण से वर्णन अधिक सापेक्ष और साक्षात्सम्पूर्ण हो गया है। रत्नसेन पद्मावती से मिलने के लिए उत्सुक है। सखियाँ कहती हैं, यहाँ की प्रथा के अनुसार हम कुमारी का श्रृंगार करेंगी। उसके संग पर लम्बी हुई हस्ती के अमर रंग चर्चित करेंगी तब रात्रि में चन्द्र और सूर्य का साहचर्य होगा। इस वर्णन के मध्य कवि अपने दार्शनिक अभिप्रायों की ओर भी संकेत करता है। रत्नसेन पद्मावती से मिलने के लिए उत्सुक है। इस उत्सुकता के सम्बन्ध में कवि व्यापारिक मित्र की उत्सुक भावनाओं की ओर भी संकेत करता है।

अस तप करत गए दिन भारी । चारि पहर बीते जुग चारी ।
परी सान्ध पुलि सखी सो खार्डि । चौब सो रहे न उई तपार्डि ।
पुछेहि नुब कही र बेला । दिन ससिमर कस गुर बकेला ।

X

X

X

मेन कोविषा हिय समुंन नुब सो तेहि महुं जोति ।
मन मर जिषा न होइ परं हाव न भाईं जोति । २६३।

‘मरजीया होकर ही ‘मोटी’ मिलने की बात यहाँ भी कही गई है। परन्तु इन संकेतों के पश्चात् कवि पुनः लौकिक मूमि पर आ जाता है। वर्णन की सरसता से वह हमें पुनः परिष्कारित कर देता है। पद्मावती के मित्र-वर्ग पर उसकी सखियाँ बहुत श्रृंगार करती हैं। सुन्दर अंजन रंजित नेत्र अंजन के समान हैं। कपोलों के तिल पद्म पर बेटे अमर के समान (२६८) हैं। मित्र की भूमिका में रत्नसेन और पद्मावती में बाधा होती है। इस बाधा में दम्पत्य की अनुभावों और उत्सुकता के साथ-साथ दार्शनिक संकेत भी नियोजित हैं। पद्मावती कहती है—

जोनी तोरि तपसी के कामा । लानी नहिं अम मोहि छाया ।
बार मित्तारी न मोबलि मोया । मोने जाइ सग नहिं दीया ।

जयंतु, योयी तेरी कामा तपस्वी की है। मेरे शोमल बंधों पर उसके संस्पर्श की छाया कष्ट पूर्ण होगी। तुम मित्रवारी हो, द्वार पर मित्रता की बाहिए, तुम स्वर्ग पर चढ़ कर मित्रता मिला चाहते हो। (१०४) रखतेन जतर देता है—

मेह तुम्हार जो दिए समाना। पित नर मोह न मुमिरेत जाना।
बल माकलि कहें मैर मित्रोयी। कदा विमोय चलेऊँ होइ जोयी।

×

×

×

एक बार मरि मिले बौ आई। दोसरि बार मरै कठ आई।
कठ तोहि मोचु जो मरि कै मिया। या मन्दर मिलि कै मनुषिया।
मैर जो पावे कैवल कहें बहु बारलि बहु भास।
मैर होइ नेचछावर कैर देइ इस्तिवास। (१०५)

पशुमावती और रखतेन के जतर प्रत्युर से मातावरण बलि स्निग्ध बन जाता है। पशुमावती पर सुम्न रखतेन जतकी प्रत्येक विज्ञासा का स्पष्टी करण करने का प्रयत्न करता है। वह जन्मत जोर आकुस है। पशुमावती को वह कन्धन रूप मानता है, ऐसा कन्धन जो प्रत्येक बन में नहीं होता। और अपने को पशुमावती से हीन भी नहीं मानता कारण वह कहता है कि प्रत्येक तन में बिछू नहीं जायत होता है—

बन बन मिलि बंदन नहि होई। तन तन बिछू न कपौ सोई।

×

+

+

बल अनुन एवि रही मकासा। प्रीति जो जानहुँ एकहि पासा। (१११)

×

×

×

पशुमावती आत्मसमर्पण करती है यह नारी का आत्मसमर्पण है और इस समर्पण में अर्द्ध या समस्तता की स्थिति है। वह कहती है—

कनलि मोहिनी नहुँ हुति टोही। जो तोहि मिया सो कपौ मोही।
बिनु जल मीन तपो तस बीऊ। जानिक पाइँ कहुत पिय पिय।

×

×

×

ठासों कनक मंदर कट जो बस प्रीतम पिय।

येद्वारारि कै जाके तन मन बीजन बीज। (११२)

मिथुन-राशि में एलसेन मिथुनसुख से सम्प्राप्त है । पद्मावती कहती है—

पिठ जाएगु मौजे पर सेठे औ माने नै नै सिर देठे ।

ये पिय बचन एक सुन मोरा । जाखि विवहु पिय बोछु बोरा । १२० ।

परन्तु एलसेन प्रेमपत्र का यात्री है । वह स्पष्ट कहता है प्रेम-सुरा पीने नामे के लिए मृत्यु-भव का कोई तात्पर्य नहीं है ।

सुनि बनि वेम सुरा के पिएँ । मरण बीयन घर रहै न द्विएँ ।

बहुं मद तहाँ कहाँ संभारा । कै छो कुमरिका के भँठभारा । १२० ।

एलसेन और पद्मावती के मिथुन-सुख के सम्बन्ध में कवि जायसी ने पट्टनरु वर्णन की योजना की है । यह वर्णन संयोग शुभार के उद्दीपन रूप में है ।

यह वर्णन बसन्त से आरम्भ होता है । बसन्त के उत्थास में पद्मावती अपने उत्थास का प्रतिबिम्ब देखती है ।

पिय संयोग बनि बोधन बारी । मैबर पुहुप सँव करहिं बधारी ।

होइ फागु भिलि बाँबरी बोरी । बिरह बराइ बीन्ह बस होरी ।

इस प्रकार बसन्त में पद्मावती को अमित्र ब्रीचन का सम्बेस मिलता है ।

संयोग में प्रकृति एलसेन और पद्मावती के हृदय को निकसित करती है ।

एलसेन और पद्मावती के संयोग-सुख सम्पादन में पट्टनरुएँ विशेष सहयोग देती हैं । परन्तु गानमती की स्थिति इससे भिन्न है । उतका जीवन बियोग में ही बीत रहा है । जायसी ने गानमती की बिरह-वेदना को व्यक्त करने की भावना से 'बाह्यमासा' का आयोजन किया है । विप्रक्रम वर्णन के सन्दर्भ में 'बाह्यमासा' अपभ्रंश काव्य की एक विशेष विधा है । अपभ्रंश में उपलब्ध विप्रक्रम भावना से पूर्ण काव्यों में 'बाह्यमासा' की निर्मित योजना मिलती है । इस सन्दर्भ की प्रमुख वृत्तियों में विनयचन्द्र सूरि वृत्त 'नेमिनाथ बज्रपई' एक मसाला कवि का 'नेमिनाथ बाह्यमासा' समथर का 'नेमिनाथ फागु' राजसेखर सूरि का 'नेमिनाथ फागु' विशेष रचनाएँ हैं । 'नेमिनाथ बज्रपई' में नेमिनाथ के बैराग्य से सेने पर राजमती बियाव-पीड़िता है । उतकी ध्याना के सन्दर्भ में कवि बाह्यमासा की योजना करता है । मया—

राजमती—बइवाहह बिहसिय बस राइ । नमपमिसु मन्मामिसु बाइ ।

बुट्टिरि हियड़ा मानि बसंत । बिसाइ राजत रिक्तउ कंत ।

सखी— सखी कुछ बीसखिया भबइ । संभलि भमरउ किम रम मुनई ।

बीस पंचखिर जोवनु होइ । छात्र विपद विमलउ सहु कोइ ।

राजमती—भाबलि सरबलि कपूर मेहु । मज्जर बिरहि रिमिज्जइ देहु ।

विज्ज भवकुइ रक्कसि जेव । नेमिहि भिमु सहि सखिमि केवि ।

सखी— सखी भवइ समिधि सति नूरि । दुज्जम ठग पन बंझिठ पुरि ।

बबउ नेमि तउबिउ ठउ काइ । बबइ जनेरा बरहु समाइ ।

राजमती—बोसइ राजुल ठउ इइ बबनु । नरिप नेमि बर सम रमपु ।

बरइ ठेज पइमन समिताउ । पणमि न उमाइ रिपवर जाउ ।

हिंदी काव्य में 'बाणमाता' की परम्परा का मूल स्रोत अपभ्रंश काव्य है । जाबरी तथा अन्य सूफी काव्यकृतियों ने इस परम्परा का अनुसरण किया है ।

'बाणमाता' का उद्देश्य है बिरहिनियों का बिरहोद्दीपन । राजमती चित्तोर के पय की ओर देखती है । और कहती है किसी नारी के अधिकार में जाकर ही मैं 'जागर' मुझे भुस गया है ।

बारस जोरी जिनि हरी, मारि पबउ किनि लण ।

भूरि भूरि पौनरि बलि भई, बिरह के छापी अग्नि ।

प्रिय के विरोध में उसकी स्थिति पपीह के समान हो गई है । और उसकी अवस्था इस प्रकार की हो गई—

बिरह बान तउ लाव न बोली । रक्त पसीब रीमि यइ बोली ।

१४१।

'श्वमावत' में 'बाणमाता' बसाई' से आरम्भ होता है । कवि पहले प्रकृति के रूप का विधान करता है । प्रकृति के क्रियात्मक रूप का अंकन करता है, और इसके पश्चात् विधोपिनि पर पड़े हुए प्रभावों की उद्भासना करता है । सावन में समस्त प्रकृति बपी से पुलित है । नारती गुसज्झित है । केवल राजमती कावित है ।

सावन बरिठ मेहु बति पानो । भरति बरह ही बिछ मुतानी ।

इस कन्दर्प में कवि बर्बसाव्य और व्यापार साम्य के आधार पर अवस्तुतः विधान के माध्यम से विधोपिनि की तीव्र आकुलता को मुखर करता है—

रक्त क बाँधु बरे भुईं टूटी रेमि जली जनु बीर जल्लो । १४२।

प्रकृति व्यापार तो उद्दीपन का कार्य करते ही हैं। साम-साध संयोग-जीवा की भूमिका से प्रतिपादित लोकोत्सव भी उद्दीपन का कार्य करते हैं—

ससिन्धु रत्ना पिठ संम हिडोला । हरियर मुई कुर्वांम तन बोला ।

हिय हिडोला बस बोले मोरा । बिछ भुलावे दिह भकीर ।

नागमती की बिछ-अनुभूतियों में समष्टि की भावना व्यक्त है। सामान्य लोक में प्रचलित व्यञ्जना बिचा के अवलम्ब को ग्रहण करने के कारण भावों के साधारणीकरण की क्षमता अति व्यापक हो गई है। नागमती सावन में बस प्लावित पुष्पी को बेसती है। प्रिय जिस बिस में है, वह अनन्त दूरी पर है। पहुँचने में वह असमर्थ है। अपनी असमर्थता को वह इस प्रकार व्यक्त करती है—

परजत समुद्र अपम बिच बगर बैहड़ बन डंस ।

क्रिमि करि मेटी कस्त ना मोहि पौंन न पंच । ३४५

बायसी इस वर्णन में प्रत्येक ऋतु का संक्षिप्त चित्र अंकित करते हैं। प्रत्येक ऋतु में लोकपर्व और लोकोत्सव का वर्णन करते हैं और बिरझिनी पर ऋतु के उद्दीपन पूर्ण प्रभावों का अंकन करते हैं—यथा—

चैत बसंता होई बमारी । मोहि देखे संसार सजारी ।

वैशाख बिछ पंच सर मारे । रक्त रोइ सगरी बन डारै ।

जुड़ि जठै सब तरिबर पाठा । नीजि मजीठ टैमु बन राठा ।

मीरे ओंन फरे अब छागे । अबहुँ सँबरि बरि बाठ समागे ।

सहस भाव फूझी बनजती । मधुकर फिरे सँबरि मासठी ।

मौ कहूँ फूक मए बस काँट । विस्ति परत तन लागहि चोटि ।

जर बीजन एहु नारैय साखा । सोबा बिछ अब बाइ न राखा ।

बिरजि पैजा भाव बस बाइ परतु सिय दूरि ।

नारि पराएँ ह्राव है तुम्ह बिन पाव न छुटि । ३४६

मंझन की 'मधुमाछती' अपना अन्य सूती प्रेमाख्यातक काव्यों में यह परम्परा अत्यन्त रूप में विकसित है—

चैत करह निहरे बन बारी । मसपती पहिरे नव सारी ।

बहुँ विजि भा मधुकर गुबारा । पालुरि कूल बारिह अनुसारा ।

कुमुम सीस बारिह सेठ काढे । तबबर नवे साखा मै बाढ़े ।

कामुल होते जो तब पतझरे । ते सम गए बैठ हरियारे ।
 मोहि पतझर जो विनु छाड़ । सीम सखी मौल मक्ताई ।
 दुख दे प्रीतम छाड़िया जननि दीन्ह मनबास ।
 जो रवि आठो भै तपा के मोहि सिर परवास ।

मधुमालवी १४१०।

विरह के सन्तर्पण के क्षण में कवि ने विकसित और मानसिक आश्रय का प्रति नैसर्गिक रूप प्रस्तावित किया है । अपने वर्णनों में ये कवि अतिशयोक्ति की सीमा का भी संस्पर्श करते हैं परन्तु इनमें संवेदना की तीव्रता भी व्यक्त होती है, बचनस्पष्टता ही नहीं । उदाहरण स्वरूप नागमती रुदन में बारहमास व्यतीत करती है । उसका प्रत्येक पल एक वर्ष के समान व्यतीत होता है । परन्तु जिस प्रिय से गारी सौमन्य पाती है, वह छोटकर नहीं आया । संझा होने पर वह संतप्त होकर उसका मार्ग देखती है । इस संदर्भ में नागमती की बेगना के साथ हमारी भावनाओं का साक्षात्त्व स्थापित हो जाता है । कवि विरह-वैरमा की तीव्रता की व्यञ्जना के लिए उद्दालन-वस्तु-व्यञ्जना का सहारा लेता है । ऐसे सन्तर्पण में अन्तर-बलाओं या सूक्ष्म भावनाओं को मूर्तिव करने के लिए प्रकृति का प्रयोग अति सार्थक और संवेदनाशील रूप में हुआ है । उदाहरण—

कुहूकुहू बस कोइलि रोई । रक्त जोषु मुंमुषी बन बोई ।
 वै कर मुसी तैन तन राती । की विराज बिरहा पुनः छापी ।
 बहै बहै ठाढ़ होय वस्त्रापी । तहँ तहँ होई मुमुषिन्ह कै रापी ।
 बूढ़-बूढ़ बहै जागहँ बीव । गुंवा गुंवा करहि पिउ पिउ ।
 तेहि हुय हरे परास निचावे । मोह बूझि उठे परमाते ।
 राते बिय गए तेहि कोहू । परकर पाक काट हिय मोहू ।
 देखिअ जहाँ सोइहोइराता । जहाँ सो रात बई को बाता ।

मा पावस ओहि देखरे मा हेबत बखत ।

मा कोइछ न पनीहरा, केहि मुनि जाबहि बत । ३३६ ।

इस वर्णन से भावनाओं का रूप सिद्ध हो उठती है । उनका कोइछ के समान स्वन करने से रक्त के जधु गिरे । ऐसा प्रतीत होता है मुमुषी को दी गई है । उठने पड़े होने से मुमुषियों की रासि बन जाती है । जधु के कम रण में बीव

हैं, जिनसे प्रिय प्रिय सख्ख निकल रहे हैं। कुल से बन्ध होकर पछास पनहीन हो जाते हैं। उसके बधिर के कारण ही पछास रक्षित हो उठते हैं। फिर भी रलसे नहीं झोटा है। ऐसा लगता है कि उस देश में बपौ नहीं होती है, न हेमस और न बसन्त। वहाँ कोरिस् और पपीहे नहीं होते हैं, जिनसे लहीत होकर बपौ प्रिय झोटे।

कबा विकास की योजना इस वाक्यात्मक काम्यों में बसि वैज्ञानिक है। कार्य-कारण के सम्बन्धों से परिबद्ध बटनार्य कबा-मार्ग परिवर्तित करती हैं। उदाहरण स्वस्म 'पम्माबती' में सिमल द्वीप से रल सेन बितौर को झोटा है। पम्माबती के बियोग की तीव्रता से रल सेन बितौर छोड़ता है। और नाममती की स्मृति के चहेछन से बहु सिमल से पुन बितौर के लिए प्रत्यावर्तित होता है। परन्तु इस भावनात्मक परिवर्तन के लिए बसि बसि स्पष्ट पुष्टिभूमि की रचना करता है। एक बिहंगम पम्माबती और रलसेन की माता सरस्वती का सम्बन्ध छेकर सिमल द्वीप जाता है। बहु एक हस पर विधाम करता है। बासेट के सम से थक कर रलसेन उसी हस की छाया में विधाम करता है। पछी बापस में बाताबाप करते हैं। उनमें बितौर से जाया पछी भी है। उच्चर के जग्य पछी छवसे प्रल करते हैं 'बहो भीत काहें तुम स्वाभा। धुक उत्तर देता है—

कहेति भीत मायेक दुइ बए, बम्बू बीप तहाँ हम बए।

नगर एक हम देखा मड़ पितरर ओहि नाउ।

सो दुल कहाँ कहाँ बसि हम बाबे ठेड़ि ठाउ। ३६५।३१२।

पछी रलसेन के सिमल प्रस्वात और नाममती के बियोग की क्या कहता है। रलसेन बाकुल होता है। 'स्वर्न सन्देशी' बिहंगम से सन्देश पाकर रलसेन बितौर झोटा है। नाममती को बाछू भासे या बम्बू हठियों के बाछूभासे में भावना उपमान और बर्णन प्रयासी लोक जीवन के हैं। बाचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है 'नाममती के बिहंग बर्णन के अन्तर्गत बहु प्रसिद्ध बाछूभासा है, जिसमें वेदना का अत्यन्त निर्मल और कोमल स्वस्म, हिन्दू बाम्पत्य-जीवन का अत्यन्त पर्यवर्ती माधुर्य अपने चारों ओर की प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों के साथ बिगुल माधुर्य हृदय की बाह्यवर्ण भावना तथा विषय के अनुसार भाषा का अत्यन्त स्निग्ध, सरल, मृदुल और बहुजिन प्रवाह देखने योग्य है।'

सूफी प्रेमाख्यात्मक काव्यों का काव्य रूप

अपभ्रंश-साहित्य में बरिष्ठ काव्यों की एक स्पष्ट परम्परा मिलती है। इन बरिष्ठ काव्यों में प्रबन्ध काव्य एवं आख्यात्मक काव्य इन दोनों के तत्त्व मिलते हैं। हिन्दी में उपलब्ध सूफी प्रेमाख्यात्मक काव्य रचना-रत्न की दृष्टि से अपभ्रंश के इन बरिष्ठ और आख्यात्मक काव्यों की परम्परा में आते हैं। अपभ्रंश रचनाओं के समान इन कृतियों में लोक गाथात्मक अंश भी मिलते हैं। उदाहरण स्वरूप आसगी ने 'पद्मावत' में रत्नसेन और पद्मावती की कथा इतिहास की अपेक्षा लोक जीवन से ग्रहण की है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने यह प्रस्तावना की थी कि 'पद्मावत' तथा अन्य सूफी काव्य-ग्रन्थों का प्रचयन फारसी की मसनवी शैली के अनुसार हुआ है। शुक्लजी के इस प्रस्तावन के अनुसार ही उनके परवर्ती आलोचकों के 'पद्मावत' के रचना-रत्न को अमरातीय कहा है। मसनवी शैली के प्रेमाख्यात्मक काव्यों में कवि घटना के अनुसार काव्य को शीर्षकों में वर्गीकृत करते हैं। आरम्भ में ईश्वर की स्तुति रहती है। कवि पैनम्बर का स्मरण करते हैं उसके पश्चात् पैनम्बर के मीराज का स्मरण करते हैं। चाहे वह अपने अपने मूल की किसी ओष्ठ प्रतिमा की प्रशंसा करते हैं। कवि काव्य रचना के कारण का प्रस्फोट करते हैं। वे आत्म-निवेदन करते हैं, अपने मित्रों की कर्मा करते हैं तथापश्चात् मूल कथा आरम्भ करते हैं।

प्राचीन बरिष्ठ काव्यों में भी प्रायः इसी प्रकार की मिलती-जुलती प्रबन्ध कृतियाँ मिलती हैं। कवि ईश्वर-स्तुति अथि जैन प्रबन्ध काव्य है, तो जिन-स्तुति करता है, वह आत्म वाताओं के मत्त का वर्णन करता है फिर सज्जन प्रशंसा और दुर्जन-निन्दा करता है, और अपने पुरुष के कवियों की प्रशंसा करता है। आचार्य शुक्ल ने इन कृतियों को 'मसनवी शैली' के अन्तर्गत स्वीकार करते हुए कहा है, 'इन प्रेम नाया काव्यों के विषय में पहली बात ध्यान देने की यह है कि इनकी रचना बरिष्ठ काव्यों की सर्वव्यापी शैली पर न होकर, फारसी की मसनवियों के रूप पर हुई है। जिनमें कथा सर्वो या अध्यायों में विस्तार के हित्ताव से विनय नहीं होती बराबर चलती है केवल स्वात-स्वात पर घटनाओं या प्रसंगों का उल्लेख शीर्षकों के रूप में दिया रहता है। इस अन्वय में अस्तेखानीय यह है कि अनेक सूफी प्रेमाख्यात्मक काव्य शीर्षकों में विनय नहीं है। कथा अनान्तर

बनती रहती है। 'पद्मावत' अथवा 'नयनासुती' की कतिपय प्रतियों में सीपक विभावन की बिधा नहीं मिलती। यह परम्परा प्राकृत और अपभ्रंश काव्यों में भी मिलती है। यहाँ दो प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं। एक प्रकार की ये रचनाएँ हैं, जिनमें सर्गों के विभावन की बिधा मिलती है। उदाहरणस्वरूप, विमल मुरारि की रचना 'पद्म चरित' 'उद्देश्यो' में विमल है। पुष्प हस्त हस्त गण कुमार चरित' सन्धियों में विमल है। हेमचन्द्र रचित 'कुमार पार' चरित' सर्गों में विमल है। मुनि कनकामर हस्त करकण्ड चरित' सन्धियों में विमल है। ये सन्धियाँ कङ्कण में विभावित हैं। प्रत्येक कङ्कण के अन्त में एक पंक्ता का क्रम है।

दूसरे प्रकार की रचनाएँ सघोषन मुरारि हस्त 'कुलसामाज' और 'तटय सोढ' तथा श्रीकावद तथा' हैं। इनका विभावन सर्गों में, या सन्धियों में नहीं हुआ है। इनकी बिधा कङ्कण की है। इस प्रकार हिन्दी सूफी प्रेमास्मानक काव्यों में ईश्वर स्तुति, पाठे अथ प्रशंसा ही मसलकी सीसी से ग्रहीत है। परन्तु काव्य रूप की दृष्टि से ये रचनाएँ भारतीय हैं। डाक्टर माताप्रसाद गुप्त ने उक्त में विभावित प्रतियों को प्रशंसित माना है। परन्तु हम इसका निर्णय नहीं कर सकते कि इनके कवियों ने अपनी कृतियों का विभावन लच्छों में अथवा सर्गों में किया था या नहीं।

सूफी प्रेमास्मानक काव्यों की रचना बीपाई और दोहा के योग से हुई है। यह रचनातन्त्र कङ्कण सीसी का है। 'पद्मावत' में सात बीपाइयों के युग्म के पश्चात् एक दोहे का पंक्ता नियोजित है। नयनासुती' में पौख अर्थात्तियों के बाद एक दोहे का पंक्ता नियोजित है। मुर मुहम्मद हस्त इनाबती में सात अर्थात्तियों के पश्चात् दोहे का पंक्ता है। हुसेन अली हस्त मुहपावती' में छ अर्थात्तियों के बाद एक दोहे का पंक्ता है।

अपभ्रंश के कङ्कण-अथ काव्य परम्परा या मरिच में हैं, और पंक्ता के लिए प्रबन्ध की योजना मिलती है। यहाँ भी दोहे का पंक्ता मिलता है। 'सुनि अहं पायु' इस उन्दर्य की मारम रचना है। बीपाई के पाँच दोहे के संयोग से निम्न कङ्कण की बिधा पुनरन्त हस्त 'पद्म चरित' में मिलती है। इस प्रकार का सीसी के प्रबन्ध के सीत पूर्वी अपभ्रंश में मिठों की रचनाओं में भी उल्लेख हो पाते हैं—

बलि औ ! बम्ब महुामुह पसिइ । कबहौ द्विपि पाणिहि बिसिअइ ।
 मनुइ मने पति न होइ । पतिम निति की उठिअ होइ ।
 कलकल दरिअय बर अवाइ । केअ देखि का गा पसाइ ।
 बाब न आप बनिअइ पाव न तिसि करेइ ।
 कबहौ क्षम्य कदापि निस, केअ बि कूट परइ ।

चोड़ा कोप ७ ८ ।

कबीर के नाम से प्रचलित रचनाओं में भी इस घेरी का प्रयोग मिलता है ।

अव्योक्ति या समासोक्ति

बाबरी इत 'पद्यावत' और अन्य सूफी प्रेमाख्यात्मक काव्यों की आलोचना के सन्दर्भ में एक पन्ना उठाया जाता है—य कृतियाँ समासोक्तिमूक्त हैं^१ । अथवा अव्योक्ति मूक्त^२ । 'पद्यावत' के सन्दर्भ में एक प्रकार की यह पारणा मिलती है कि बाबरी ने अपनी मौखिक भावनाओं पर आध्यात्मिकता का आवरण बढ़ावे के लिए अपनी कथा के अन्त में एक अव्योक्ति की है, और पद्यावत में सम्पूर्ण कोई निश्चित अव्योक्ति है, वह सत्येहपूर्ण है ।^३ इसी प्रकार 'पद्यावत' का काव्य अव्योक्ति माना जाता है । इसके अतिरिक्त 'पद्यावत' को समासोक्ति काव्य भी कहा

१ अर्थात् प्रस्तुत के वर्णन द्वारा समान विशेषणों से अस्तित्व का बोध कराया जाय अर्थात् समासोक्ति अर्थकार होता है ।

२ जब अस्तित्व वर्णन द्वारा प्रस्तुत वर्ण की झड़ना की वाम वहाँ अव्योक्ति अर्थकार माना गया है ।

३ I doubt very much whether he (the poet) had any definite allegory present to his mind throughout the key which he gives us in the first stanza of the Envoy does not by any means fit the lock.
 A G Sheriff Padumavti Introduction Page 8-1944

गया है ।^१ बाबाय रामचन्द्र मुक्त की आगसी सम्भावनी में 'पद्मावत' के उस संसार-रूप में जो बंध है उसके कारण यह प्रश्न और भी स्पष्ट ब्रह्म की अपेक्षा रहता है—

मैं एहि बरख पंडितन बूझा । कहा कि हम्ह किछु और न भूझा ।
 जोइह भुवन जो तर उपराही । ते सब मानुष क भट माही ।
 उन कितवर मन राजा कीन्हा । हिय सिंपस बुधि परमिनि चीन्हा ।
 गुब भुजा जेहि फन्य देखाबा । बिन मुख बाणत को निरखुन पाबा ।
 भावमती यह दुनियां धन्दा । बाबा सोई म एहि फित बंधा ।
 राख बूध सोई सेतानु । माया बजाउवी मुकटानु ।
 प्रेम क्या एहि मीति बिचारु । बुझि केहु जो बूझै पावु ।

गुरकी बरखी हिहुई माया जेती बाहि ।

जेहि महुँ मारय प्रेम कर सबे छपाई ताहि ।

इस बंध के अनुसार—पद्मावती परमात्मा, परम व्योमिति है। रजसेन जीवात्मा है। सिंहल हृदय है हीरामय गुरु है भावमती दुनिया धन्दा है अमावसीय माया है राख बंधन सेतान है सात समुद्र माया के आयाग है मानसरोवर ब्रह्म रंज है। 'पद्मावत' की सम्पूर्णता पर जब हम विचार करते हैं तो यह स्पष्ट होता है कि कवि अप्रस्तुत और प्रस्तुत के साथ तात्कालिक स्थापित नहीं कर सका है। इस सत्य की ओर संकेत करते हुए बाबाय रामचन्द्र मुक्त ने कहा है यदि कवि के स्पष्टीकरण के अनुसार व्यंग्य अर्थ को ही प्रस्तुत वा प्रमाण मान लें तो जहाँ दूसरे अर्थ निहित हैं वहाँ-वहाँ व्योमिति माननी पड़ेगी। पर ऐसे स्वयं अधिकतर कथा के अर्थ हैं और पढ़ते समय कथा अप्रस्तुत होने की धारणा किसी पाठक को हो नहीं सकती। अतः इन स्वयं के बाबायार्य के अप्रस्तुत होने से ऐसी अपेक्षा समाप्तोक्ति ही माननी चाहिए^२ परन्तु पद्मावत में व्योमिति मूलक विधा का भी संलग्न मिलता है।

१ डॉ० पीताम्बर बत्त बड़प्पास ने इस प्रश्न को एक अन्य रूप में सोचा है—
 'हम तो नागमती की ब्रह्मेक्षणा कर पद्मावती' प्राप्त के प्रयत्न को उसी दृष्टि से दराते हैं जिस दृष्टि से नागवंशी मर्त्यर नाग को सिंहल जाकर परमिनी स्त्रियों के आस में पड़ जाने को। यह पत्रन है उत्थान नहीं। नागमती का प्रेम तितना दिव्य है उतना पद्मावती का नहीं।' द्वितीय अमिनन्दन ग्रन्थ—पद्मावती की कहानी और आगसी का सम्पादनवाद पृ० १६१ ४०१ ।

२ आगसी सम्भावनी—भूमिका १६ २७ ।

कैवल्य को विवक्षा मानकर बिना अंत गए मुनाय ।

अवधुं वैति फिर पल्लुहो जो रिठ सीधै भाइ ।

यहाँ प्रस्तुत है विरहिणी का विरह वर्णन, अंत-कथन अग्रस्तुत है । अंत यह प्रभासी अन्योक्ति मूलक है । मायमयी को कवि ने दुनियाँ बन्धा के रूप में प्रस्तावित किया है । इस संदर्भ में उनके द्वारा अन्योक्ति का विधान नहीं हो सका है । एक ओर कवि उसे मोरखबन्धा कहता है दूसरी ओर आर्य माणवीय नारी के समान रत्नमेन की मृत्यु के परचात् पद्मावती के साथ वह सती हो जाती है ।

बौ० माताप्रसाद मुन इस अंत को प्रशंसित मानकर समस्या का समाधान करते हैं । अपनी आयली प्रभावकी के सम्पादन में केवल ने ११ प्रतिभों का का उपयोग किया है । इनमें से केवल तीन प्रतिभों में यह अंत उपलब्ध हुआ है । परन्तु इन तीन प्रतिभों की अप्रामाणिकता जब तक स्थापित न हो जाय तब तक इस प्रकार के निर्णय से समस्या का समाधान नहीं होता । आसती अपनी इस कृति को अन्योक्ति मूलक नहीं कर सके हैं । इसके लिए निम्नलिखित सम्भावित कारण हो सकते हैं—

(१) काव्य के अर्थ विस्तार की ओर सघोष्ट रहने के कारण अन्योक्ति पर वे केन्द्रित नहीं रह सके हैं ।

(२) पद्यावत में मूखी साधना के अतिरिक्त कवि ने इत्योव और बेरायत वर्णन के साधनों को भी उद्बोध किया है । इन कारण भी अन्योक्ति-रूप लक्षित हुआ है ।

(३) पद्यावत में अग्रस्तुत (कथा और ग्यालकता) प्रस्तुत (वर्णन) से अधिक ध्वनिपूर्ण है । इसका प्रभाव भी सम्मस्त अन्योक्ति पर पड़ा है ।

समासोक्ति

इस प्रकार हमने देखा कि पद्यावत पुरुषः अन्योक्ति मूलक काव्य नहीं है । इस कृति में बाष्पार्थ व्यसार्थ दोनों का सहस्र है । ऐसा भी कहा जाता है कि पद्यावती में बार प्रकार की दोहियों का प्रयोग हुआ है—

(क) प्रस्तुत की कथा अग्रस्तुत के प्रति आग्रह पूर्ण होती—

गड़ पर नीर खीर दुह ली । पानी मरहि बेस बुर फी ।
और कुछ एक मोती बुर । पानी अक्षित कीच क्यूर ।

(क) समासोक्ति मूलक अभिव्यक्तियाँ—

ऐ रानी मन देख विचारो । एहि नेहर रहना नि नारी ।
ओ सहि सही सिता वर राजू । सेलि सेहु औ सेसहु जानू ।
पुन सासुर हम बदनब काछी । कित हम कित यह सरवर पाकी ।

(ग) लौकिक पक्ष का अभिप्राय मूलक वर्णन—जिसमें कोई दूसरा अर्थ नहीं है ।

(ब) केवल आध्यात्मिक पक्ष का अभिप्रायमूलक और उपदेशात्मक अर्थ जिसकी प्रस्तुत कथा में कोई उपयोक्ति या अर्थ नहीं है ।

बसबो दुबार तार के सेता । उलटि बिस्टि ओ साव सो देखा ।
तू गग नाबु मारि के स्वांसा । औ वे मरहि आपहु कारि नासा ।^१

जों० चम्पूनाथ सिंह पद्यावत को 'एसीगोरी' कहते हैं जिसे वे प्रतीक कथा का पथीय नारी मानते हैं । 'पद्यावत' के पात्र तथा अनेक घटनायें प्रतीकों के रूप में प्रस्तुत की गई हैं । अतः यह प्रतीकात्मक काव्य है । परन्तु 'पद्यावत' न तो एसीगोरी है और न तो सिम्वास्तिक काव्य । इसकी खोजी समासोक्ति की है । इस प्रकार की भावना भी व्यक्त मिलती है कि 'पद्यावत' का कुछ अंश ही समासोक्ति के अन्तर्गत आता है इसको अधिकार्थ कथा लौकिक ही रह गई है । 'इस प्रकार पद्यावत के बहुत व्याख्ये सख्त तब ही प्रतीत होता है कि मानो यह कथा माली आध्यात्मिक समासोक्ति रखती है व्याख्ये सख्त तब तो कहीं-कहीं प्रेम की अनुभूति दिखती है । किन्तु हमारे पद्यावत यह लौकिकता की ओर झुक पड़ती है ।^२ परन्तु पद्यावत के स्वप्न में समासोक्ति का क्या अर्थ है, ऐसा लगता है कि आलोचक इसे ग्रहण नहीं कर सके हैं ।

१ हिन्दी महाकाव्य का स्वप्न विज्ञान—४७२ ।

२ मलिक मुद्गमर जायसी—पृ० १०२ १०३ ।

हम यह भूल जाते हैं कि आत्मीय एक भाषा कह रहे हैं । वही यह भाषा ही प्रस्तुत है, और इस प्रस्तुत के माध्यम से ही आध्यात्मिक तत्त्व का बोध कराने का प्रयत्न किया गया है । यह आवश्यक नहीं है कि कवि प्रत्येक स्वयं पर समा-लोचि का स्पष्टीकरण करे । अतः समस्या से सम्बन्धित होकर हम समस्या पर विचार नहीं कर सकते । डॉ० माता प्रसाद भूत भी कर्मरु कुलम्ब के मतान ही सोचते हैं, रचना में सम्बोधि बहुत कम आई है, और समालोचिवाँ अवश्य ही अधिक आई है, फिर भी सर्वत्र समालोचि मिलती है ऐसी बात नहीं, रचना के उत्तरार्ध में आध्यात्म ही अभिव्यक्त है और पूरी रचना में किसी सम्बोधि या समालोचि माला का निबौह करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया है । अगर डॉ० भूत के इस विचार की जर्नी की गई है बिना उन्होंने उप-संहार वाक्य बंध को प्रसिद्ध माना है । इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि यदि वह आत्मीय किञ्चित् न भी हो तो 'पद्मावत' के समालोचि होने में कोई बाधा नहीं पहुँचती । यही बात 'पद्मावत' के उत्तरार्ध में समालोचि के होने की तो उत्तरार्ध में भी इस तत्त्व का संरक्षण सिद्धता है ।

आत्मार्थी पद्मावती के मन हरण के लिए अपना उमे अपने निकट आने की प्रेरणा देने के लिए एक योगिनी को ब्रजता है । पद्मावती योगिनी से इस बोधन में ही बोध-कारण का कारण पृथ्वी है । योगिनी अपने विरह का वर्णन करती है—

तब बस तुम्हें जान न जोयु । केहि कारण अत कीन्ह बियोयु ।
 कहेवि विरह बुझ जान न कोई । विरहिनि जान विरह केहि होई ।
 अंत हमार गए परदेसा । तेहि कारण हम जोम्पिनी मेसा ।
 काका बिज बोधन को वेहा । को विज गएत गएत सब लेहा ।
 पारि पटोर कीन्ह मैं कथा । कहैं विज निसे मेहुँ सो पंथा ।
 जिता करो नहुँ बर पुकार । बग परें सो छीत सँभारा ।

दिरई मीतर विज बसै निसे न पँखी काहि ।

तुम बसत सब जाये विम विन रिझो न बाझि । ६०२। ४६६

अर्थात्, वियोग की पीड़ा केवल वियोगिनी ही अनुभव कर सकती है। मेरे प्रिय परवेश गए हैं। अतः मैंने योमिनी का रूप धारण कर लिया है। यदि प्रिय मिश्र नहीं हैं तो यौवन व्यर्थ है। मेरे हृदय में निवास करने वाला प्रिय नहीं मिलता है। उसके बिना यह संसार शून्य है। इस अंश में प्रस्तुत है वियोगिनी का वियोग-वर्णन। परन्तु आध्यात्मिक प्रेम और विरह की ओर भी इसमें संकेत है। इस प्रकार के अंश 'पद्मावत' के उत्तरार्ध में अनेक स्थलों पर मिलते हैं। इन समाशोक्तियों का मूल्यांकन 'पद्मावत' की कथा की समष्टि में ही सम्भव है। 'पद्मावत' में रत्नसेन और पद्मावती की कथा प्रस्तुत है, जो लौकिक है। इस प्रस्तुत में ही अप्रस्तुत की व्यञ्जना होती है, अतः पद्मावत समाशोक्त है।

सूफी प्रेमाख्यात्मक काव्यों में कथानक रूढ़ियाँ

इस ओर संकेत किया जा चुका है कि अपभ्रंस चरित काव्यों अथवा प्रेमाख्यात्मक काव्यों में कवि जब कथा में प्रस्तार देना चाहते हैं। अथवा इसे अभिजापित विद्या की ओर मोड़ देना चाहते हैं तो विशिष्ट अभिप्रायों अथवा विषय परक विद्वानों का प्रयोग करते हैं। ये काव्यकार ऐतिहासिक पात्रों का प्रयोग निम्नवरी पात्रों के रूप में करते हैं। इन दृष्टियों से 'लीलावत कहा' 'करकण्ड चरित' 'सद्य बल्लभचरित' 'पद्मावत मधुमावती' 'मिरजावती' 'मुकुटावती' आदि कृतियाँ एक सन्दर्भ के अन्तर्गत आती हैं। पुस्तक के आरम्भिक वक्तव्य में उल्लेख उल्लेख किया गया है। श्री हर्षदेव की 'रत्नावली' में विपल द्वीप की पद्मिनी का वर्णन मिलता है। 'लीलावत कहा' कि नायिका विपल द्वीप की राज कन्या है। 'करकण्ड चरित' में करकण्ड विपल की राजकुमारी रतिवेद्या से विवाह करते हैं। आगसी अपने 'पद्मावत' में इसी विपल द्वीप की पद्मिनी की कथा कहते हैं—

विपल द्वीप कथा अब गावों। औ सो पद्मिनी बरनि मुनावों।
बरनक वरण भौति विगेना। बहि बच रूप सो रौंछे देता।
यनि सो द्वीप जहूँ द्वीपक नारी। औ सो पद्मिनी बरनै अबतारी।

पद्मावत २१।१६

१. पारशर्य विद्वानों ने इसे 'मोटिक' कहा है। हिन्दी में इसे 'कथा परिधान' अथवा 'कथाव्यू' कहा गया है। भाचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे कथा नकल कहा है।

जायसी ने विषम द्वीप का नाम जोर बोवन से और अपने पुत्र की काव्य कृतियों से प्राप्त किया था । अतः द्वीप की मौलौलिक स्थिति और उसकी ऐतिहासिक संस्थापना का कोई अर्थ नहीं है । विषम और लंका को हम एक ही मानते हैं । परन्तु जायसी के सम्मुख उस विषम द्वीप की कल्पना भी जो लंका से भिन्न था—

बन्धु द्वीप कहौं उस भाहीं । पुत्र न बंधु द्वीप परिखाहीं ।

‘बन्धु द्वीप’ को मैं उसके समान नहीं कहूँ सकता, लंका द्वीप उसकी परखाहीं के समान भी नहीं है । ‘मधुमाछटी’ में वर्णित ‘महाभार’ भी जायसी के विषम के समान ही समुद्र स्थिति स्वात है ।

‘मधुमाछ’ में कावा को विकसित करने के लिए दूध का प्रयोग किया गया है । ‘अरकच चरित’ में भी दूध का प्रयोग मिलता है । यह दूध मिठापर और निदान है । ‘मधुमाछ’ का दूध भी पक्किय और जानी है, वह मानवीय गुणों से सम्पन्न है—वह अपना परिचय देता है—

अब गुन कवन जो बँदी जयमाना । नाति मंजुपा बेचै माना ।

पंक्ति होइ सो हाट न बड़ा । नहीं विकस भूमिया पड़ा ।

दुर मारव देखी एहि हाटा । देख जकारै दहूँ कहि बँटा ।

रोखत रकत मयज मुख राठा । उन जा पियर कहौं का बाठा ।

इस प्रकार की कवि का प्रयोग प्रेमाख्यातक कालों में मिलता है । मंजु की ‘मधुमाछटी’ में मधुमाछटी अपनी बाठा के छाप से पत्नी हो जाती है । मान यह के राजकुमार के अधिक उसे बात में फँसाकर राजकुमार से पास हो जाते हैं । तीन दिनों तक पत्नी और राजकुमार कुछ नहीं खाते हैं इस पर पत्नी प्रसन्न करवा—

मैं पत्नी भिन्न बोवन से करि, यह दूध निपट बेसाहि ।

तैं तो राजकुंवर मुख मोमी, दूध कहि बरस सहाहि ।

‘मैं’ कही हूँ, बीच बीच बीच से कर मैंने यह दूध मोल लिया है, किन्तु तुम तो राजकुमार हो, मुख मोल करने वाले हो, तुम्हारे दूध का प्रयोगन क्या है ?

तुम तो राजकुंवर मुख मोमी । मैं वैरागिनि पक्षि विमोली ।

कोन प्रीति अपनि मोरि जानी । तोति निवस जाईहि जन पानी ।

वहिन क्य जो देखतहु मोय । तो जेत किछु करतेहु सज चोरा ।

रूप राख हर लीन्हा । पंखि कीन्हु करतार ।

औ पुनि जाँयू न जाने, वहुँ का लिखा लिखार ।

राजकुमार प्रसन्न करता है—

बहुरि सप्त वें पुछेसि बाठा । कहुँ जापनि सठ बाठ निपाठा ।

सप्त तेहि औ पुरज रहाही । पसु पंखी के मानुख बाही ।

औ भा पंखि रूप बिमि तोही । सप्त तेहि फुर भा कुल मोही ।

कौन नाव औ ठाठ कहीं ठोर बाध केहि रेश ।

कौने पाप केहि जराम नहिंसि पंखि के भेस ।

मधुमाछ्ठी ३६९ । ३१५

इस प्रकार पक्षी-सम्बन्धी कङ्कि और बाठा प्रवासी की कङ्कि का अनुसरण इस कृति में भी मिलता है

समुद्र-यात्रा से सम्बन्धित कबालक कङ्कि का प्रयोग अपभ्रंश काव्यों के समान प्रेमास्मानक काव्यों में भी मिलता है। सबसेन समुद्र-यात्रा करता है। मधु माछ्ठी के लिए मनोहर भी समुद्र-यात्रा करता है। बोहित के बूटने से मनोहर अपने साधियों से अलग हो जाता है। 'बिनाबली' में कुँवर बिनाबली के साथ अपने देश लौटता है। समुद्र में भयंकर तूफान से इनमें भी संघर्ष करना पड़ता है। बसन्तोत्सव के समय पद्मावती के दर्शन से रत्नसेन मूर्छित हो जाता है। 'बिनाबली' में बिनाबली शिवरात्रि के दिन कुँवर को दर्शन-प्राप्त होती है दर्शन से कुँवर मूर्छित हो जाता है।

इस प्रकार परकाय प्रवेश छाप रूप-परिवर्तन बाबेट के समय निर्जन वन में तामक का मार्ग भूझना सरोवर पर तामक का किसी सुन्दरी से मिलना प्रिया की होकर कामना पूर्ति का संकल्प—इन कथानक कङ्किओं का प्रयोग किसी न किसी रूप में सूक्ष्म प्रेमास्मानक काव्यों में मिलता है।

'पद्मावत' में प्रयुक्त विविध कबालक कङ्किओं का निर्यय इस प्रकार किया जा सकता है—

[क] विपन्न होप की परिस्थिति ।

[ख] संदिग्ध बाहक सुक ।

[ग] लोका से समुद्र यात्रा ।

[अ] घिब मन्विर में राजा का उपस्था करना । बसन्त के दिन पद्मावती का दर्शन देना । रत्नसेन का मूर्च्छित होना ।

[ब] पार्वती द्वारा रत्नसेन के प्रेम की परीक्षा ।

[क] सम्पूर्ण सेन और योगियों का संघर्ष ।

[ख] नायक की रत्नसेन के पास पत्नी के माध्यम से संदेश भेजना ।

[ग] बितौर कोट्टे समय रत्नसेन के मोहित का उचित होना ।

[ङ] राजक बेठन की प्रेरणा से बजावली का बितौर पर आक्रमण ।

[च] नायक की और पद्मावती का रत्नसेन के साथ मिली होना । इन कथा संस्करणों का प्रयोग नायक ने एक पात्रों के निर्माण हेतु किया है—

नायक बस पात्रों में सिद्धि पाया चौपाई कई ।

प्रबन्ध कल्पना और महाकाव्यत्व

प्रबन्ध-कल्पना की दृष्टि से सूफी प्रेमकाव्यगत काव्यों में प्रायः एक कथा है । इन कथाओं के कवि अपनी सम्पूर्ण नियोजना को तीन भागों में विभाजित करते हैं । आरम्भिक अंश में कवि कथा प्रस्तावना के स्वरूप में नायक और नायिका के मातृ-पिता का परिचय देते हैं । नायक और नायिका के जन्म की कथा कहते हैं । युवा होने पर नायक युव-यवण प्रत्यक्ष-दर्शन स्वप्न-दर्शन, बयबा शिव दर्शन के माध्यम से नायिका का परिचय प्राप्त करता है । नायक नायिका से प्रेम करने लगता है, और उसकी प्राप्ति हेतु यत्न-स्वाय करता है । द्वितीय अंश में नायक के सम्मुख उपस्थित कार्य के संघर्ष चित्रित मिलते हैं । तृतीय अंश में नायक और नायिका के मिलन के पश्चात्, नायिका के साथ उसके स्वयंसेवक लौटने की कथा चित्रित मिलती है । इन काव्यों में 'पद्यावत' की स्थिति कुछ भिन्न है । इसका मूल्यांकन महाकाव्य के रूप में किया जाता है ।

सूफी प्रेमकाव्यगत काव्यों विशेषकर 'पद्यावत' के महाकाव्य-स्वरूप पर जब हम विचार करते हैं, तो महाकाव्य की तीन विचारों सम्मुख आती हैं ।

(१) छात्रवीय शैली के महाकाव्य ।

(२) विकसनीय शैली के महाकाव्य ।

(३) रोमांचक शैली के महाकाव्य ।

हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन के सन्दर्भ में तथा 'पद्मावत' के शास्त्रीय विवेचन के सन्दर्भ में यह आग्रह प्रकट किया जाता है कि 'पद्मावत' शास्त्रीय पद्धति का महाकाव्य है। परन्तु यह आग्रह अतिशयता और सीढ़ पर आभासित है। महाकाव्य-सम्बन्धी माय्यताओं काव्य-रूपों के परिवर्तन के साथ-साथ परि वर्तित होती रहती हैं। महाकाव्य के शास्त्रीय विधान के सन्दर्भ के प्रथम ग्रन्थ काव्यालंकार (भामह) के अनुसार महाकाव्य में सर्वाङ्गता अनिवार्य है। पद्मावत में सर्वाङ्गता का प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता। यह अप्रत्यक्ष की कड़कत खोजी का काव्यरूप है। महाकाव्य की दूसरी माय्यता है कि उसका नायक महान् हो और विजयी हो। 'पद्मावत' का नायक महान् है। परन्तु उसके व्यापारों में युव-जीवन की समीक्ष्य करने का प्रयास नहीं है और यह विजयी भी नहीं होता है। अङ्गता प्रयासी की ओर स्पष्ट संकेत करते हुए भामह ने कहा है 'अग्राम्यघट्यवर्षं च घासंकारसंवापयस' अर्थात् भामह ने महाकाव्य के लिए घाम्य घट्यों के प्रयोग का सन्दर्भ नहीं किया है। साथ ही साथ उन्होंने महाकाव्य में अलंकरण के प्रति एक निश्चित आग्रह-भाव व्यक्त किया है। पद्मावत में घाम्य घट्यों के न होने का कोई प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता क्योंकि 'पद्मावत' संस्कृत का काव्य नहीं है। साथ ही साथ इसमें अलंकरण के प्रयास भी नहीं मिलते हैं। जीवन के विविध रूपों और अवस्थानों के चित्रण के प्रति भी इसमें व्यापक आग्रह नहीं मिलता है। नाटकीय कार्य अवस्वर्गी और क्षणिकों के शिरो जन के प्रयास भी यहाँ नहीं मिलते हैं। संपत्ति कर्मावक और प्रभाव की अनिवार्य इसमें अवश्य मिलती है।

इस प्रकार महाकाव्य में कथा की सर्वाङ्गता और इसमें नाटकीय तत्वों के प्रति आग्रह की प्रेरणा दृष्ट तथा जनके परचातु बनी रही। कथा के सम्बन्ध में उत्साह अनुत्साह रूपों के प्रति आग्रह व्यक्त किया गया और जीवन की समग्रता के समीकरण की अनिवार्य तरबमाना गया। अलंकरण वर्णन, प्रकृति चित्रण, नगर और देश वर्णन प्रतिनायक और उसके कुछ का वर्णन, नायक की विजय अनिवार्य तरह माने गए। महाकाव्य का कोई महसुरेय ही, अनुर्वर्त फल की शक्ति और समग्र रसों का समान्वित रूप उठमें उपगम्य हो। हेमचन्द्र ने काव्यानुशासनम् में इस प्रकार की प्रस्तावना की है—

‘वयं’ प्रायः संस्कृत प्राकृतपर्याय ग्रन्थभाषा निबद्ध निरामयवृत्तसमावेशात्
संघबन्धक बन्ध सत्यविद्यार्थं वैविध्योपेतं महाकाव्यम् काव्यपुष्टादन आठवो
अप्याय । इस प्रकार हेमचन्द्र ने प्राकृत और अपभ्रंश महाकाव्यों का भी
उल्लेख किया है । संस्कृत में सर्वव्याप्य प्राकृत में आदशासक बन्ध, अपभ्रंश में
सन्धि-बन्ध और ग्राम्य अपभ्रंश में अवस्कन्धक बन्ध महाकाव्य होते हैं ।

इस प्रकार संस्कृत महाकाव्य-सम्बन्धी मान्यताओं के अनुसार ‘पद्मावत’ की
विवेचना नहीं हो सकती । जहाँ तक सर्प बद्धता का सम्बन्ध है, इसके प्रति आशङ्क
शोक होना बुराग्रह मान होना । ‘पद्मावत’ की कथा मूलतः एक प्रेम-कथा है
जिसमें कवि आध्यात्मिक सम्बन्धों का समावेश करता है । यह कथा लोक
कथाओं के आधार पर लिखित है । ‘पद्मावत’ का कथानक सानुबन्ध और प्रवाह
पूर्ण है । परन्तु सानुबन्ध और प्रवाहपूर्ण हो जान से ही कोई कृति आत्मीय
महाकाव्य-परम्परा की हृति नहीं हो जाती । कवि जब कथा के माध्यम से
अपने व्यक्तित्व की ओर अग्रसर होता है, तो रचना-सम्बन्ध की दृष्टि से उसे कथा
संगठन और उसकी सत्यात्मकता का संरक्षण करना ही पड़ता है । आचार्यों ने
परम्परा के अनुसार ‘पद्मावत’ में आधिकारिक कथा के साथ प्रासंगिक कथाओं
के भी वर्णन किए हैं उदाहरण स्वरूप यज्ञपति कथा या ‘शाहूण कथा’ । इस
दृष्टि से ‘पद्मावत’ की समग्र अवान्तर कथाओं को प्रासंगिक कथा के अन्तर्गत
मानना चाहिए । परन्तु ‘पद्मावत’ में प्रासंगिक कथाएँ नहीं हैं । अनेक उपकथा का
साम्राज्य सम्बन्ध रहस्यमय है । कथा को गति प्रदान करने के लिए अनेक कथाओं
का प्रयोग इस दृष्टि से विचारणीय है । इसके विपरीत ‘पद्मावत’ की सम्पूर्ण
कथा उपमय चार भागों में पूर्ण होती है । ‘पद्मावती के सुय-वधम ।
रक्षसेन गृहप्राप्त कर सिंघक की दावा करता है । यह प्रथम भागमान हो सकता
है । समुद्र की राजा के पश्चात् यह सिंघक लौटता है और पद्मावती से विवाह
करता है, यह कथा का द्वितीय भागमान हो सकता है । रक्षसेन विजय लौटता
है । यह तृतीय भागमान है । रक्षसेन राज्यभेदन को निर्वासित करता है । अजयवती
के नाशकत्व और पद्मावती तथा नागवती के लयी हो जाने का सम्पर्क कथा का
चतुर्थ भागमान है । कथा के इन स्पष्ट भागों के कारण भी कहा गया है कि
‘पद्मावत’ में आधुनिक कथाकाव्यों के लिए अपेक्षित बन्ध अवलम्बनों और

सन्धियों के नियोजन की स्पष्ट योजना उपलब्ध होती है। कार्य अवस्थाओं के अन्तर्गत रजसेन के पद्मावती के पुन अवकाश तक के अंश में आरम्भ नामक कार्य अवस्था की स्थिति बतलाई गई है। रजसेन समुद्र यात्रा के पश्चात् सिंहल द्वीप पहुँचता है। इस अंश में प्रयत्न नामक कार्य अवस्था की प्रतिबन्धि मिलती है। वस्तु के अनुसार पर पद्मावती और रजसेन के मिलन से प्राप्ताशा की सम्भावना बनती है। नायक मूर्च्छित होता है और फिर मन्वर्द्धन के अवरोधों से नियताति नामक कार्य अवस्था की सम्भावना निर्मित होती है। इसके पश्चात् रजसेन और पद्मावती के मिलन में फलागम की स्थिति मानी जाती है। इन्हीं कार्य अवस्थाओं में पंच सन्धियों का भी नियोजन स्वीकार किया गया है। परन्तु कथा यही समाप्त नहीं हो जाती। कथा इसके आगे भी प्रसरित है। इस समस्या के निवारण की चेष्टा की गई है। पद्मावत में दो कथायें हैं। पहली कथा में नायक का अहम् पद्मावती को प्राप्त करना है और इसमें प्रारम्भ प्रयत्न प्राप्ताशा नियताति और फलागम नामक कार्य अवस्थायें एवं मुख्य प्रतिमुख आदि सन्धियाँ मिलती हैं। उत्तरार्ध की कथा को हम कार्य अवस्थाओं और सन्धियों की दृष्टि से विधिक पाते हैं।

इन समस्या प्रस्तावनाओं में हम एक सत्य को ब्रूक जाते हैं कि 'पद्मावत' समाधोक्तिमूल्क काव्य है। इसमें बाध्यार्थ प्रस्तुत है। बाध्यार्थ अप्रामाण्य। बाध्यार्थ की दृष्टि से कथा की पूर्णता रजसेन की मृत्यु और अन्तर्द्वीप की विजय तथा 'पद्मावती और नागवती के सती होने पर होती है। बाध्यार्थ की दृष्टि से भी विचार करना अपेक्षित है। रजसेन और नागवती के प्रेम में अनेक बाधायें उपस्थित होती हैं। प्रथम बार वसन्तीत्यक्ष के अनुसार पर, फिर चित्तोर बड़ के लिये प्रस्थान करते समय समुद्र में लौका के लक्षित होने पर। रजसेन दुनियाँ के बन्धे (नागवती) के परिव्यास के पश्चात् ही पद्मावती की ओर अग्रसर होता है। दुनियाँ पण्डा (नागवती) के सम्पर्क में आकर बड़ पुन पद्मावती से वंचित होता है। अन्तर्द्वीप माया है। नायक और साध्य के मध्य माया है। रजसेन उस लक्ष्य (पद्मावती) की प्राप्ति हेतु पुनः प्रयास करता है। इस प्रयास में बड़ अन्तिम मरण की उपलब्धि करता है। यही उत्तमा सम्पूर्ण शीतिक मरण होता है। कथा के इस मन्दर्म में कवि के सम्पूर्ण बाध्यार्थ और

ध्वजार्य, इन दोनों के निर्वाह की समस्या थी। रजसेन के साथ पद्मावती और नागमती दोनों खींची होती हैं। पद्मावती अपनी परम उपलब्धि के साथ धारण बन जाती है, दुनिया के बट के रूप में नागमती भी लहर है। मझादहीन यह जाता है। उसकी उपलब्धि का उन्मेष कवि इस रूप में करता है—

बोह बहमन मई जबतार्हि । पावसाहि मइ छेका मई ।
 तब लवि सो जोसर होइ बीठा । भए अनोप राम भी सीठा ।
 माइ साहि सन सुता मझारा । होइ या रात देवन को बार ।
 छार उठाइ लीसिह एक मूठी । पीन्ही उड़ाइ सिरिपमौ मूठो ।
 बौ कवि अर छान न परई । तब लवि नाहि को तिला मई ।

पद्यावत—१२१२३३।

बाबनी ने कथा निम्नीजन में कल्पना और इतिहास का समन्वय किया है। इस प्रकार उनकी कथा मिस है। परन्तु इन निम्नीजन में उनकी इच्छा क्या है पान्थीय विचार की और रही है इसमें सन्देह है।

महाकाव्य की दूसरी परम्परा विकसमशील है जिसकी लक्ष्मी 'पुष्पीराज रातो' के उत्पन्न में हो चुकी है। इससे पञ्चाशत् रोमांचक लक्ष्मी के महाकाव्यों का उत्पन्न किया जाता है। इस प्रकार के महाकाव्य एक कवि की रचना होते हैं और इनमें विकसमशील महाकाव्यों के युगों का भी कर्षण सम्भव रहता है। इस प्रकार के काव्य अप्रत्यक्ष साहित्य में उत्पन्न होते हैं। अब इन महाकाव्यों की विस्मयिनी साक्षीय महाकाव्य से किन्तु प्रकार की है। 'महिसयत कहा' (बन पाक), 'सुरतच चरित' (नयनविधि) 'वितासवद कहा' (साधारण कवि) 'करकण्ड चरित' (कनकाकर) इस सन्तर्भ की विविध कृतियाँ हैं। इनकी विस्मयिनी एक प्रकार की है। इनमें साधारणता और बर्ष का सम्भव मिलता है। 'करकण्ड चरित' या 'महिसयत कहा' और 'नपावत' तथा अन्य मूली प्रेमास्नातक काव्यों में एक निश्चित प्रकार की समानता मिलती है। 'महिसयत कहा' में विन की कल्पना के पञ्चाशत् कवि अपनी विनम्रता का प्रकाशन करता है। सम्भव प्रसन्नता और दुर्जन निम्ना करता है। फिर कुछ बेगम रोग और यमपुर मगर का वर्णन करता है। मूलाक नामक राजा और यमनाक नामक राज बेटी के वर्णन से कथा का आरम्भ होता है। पूरा मध्य रोमांचक लक्ष्मी और निम्नमरी कथाओं से परिपूर्ण

है। मात्रा और अति प्राकृतिक वर्णनों से वह अंश पूर्ण है। उत्तरार्ध में युद्धों का वर्णन है। रोमांचक तत्वों के साथ अन्य कथानक कवियों के प्रयोग इस भी रचना में मिलते हैं। इस सत्यार्थ की अन्य रचना 'करकण्ड चरित' को भी दिए। इसके प्रथम कड़वक में बिन पद्मना तथा सरस्वती बन्धना है, सज्जन प्रसंसा दुर्जन निन्दा कवि की बिनम्रता प्रकाशन तथा पूर्व कवि-स्मरण है। इसके पश्चात् कथा आरम्भ होती है। कवि अंग वैद्य का वर्णन करता है। यम्मानगरी का वर्णन करता है और करकण्ड और मयनाबकी के विवाह की कथा कवि कहता है। विद्याधर मयनाबकी का हरण करता है। करकण्ड सिंहल की यात्रा करते हैं। सिंहल की राजकन्या रतिवेगा से विवाह करते हैं। अन्त में करकण्ड संसार त्याग कर मुनि हो जाते हैं। 'पद्मावत' तथा अन्य सुकी प्रेमात्मानक काव्यों के रचना-तन्त्र का उत्प्रेषण ऊपर हो चुका है। इन दोनों विवाहों में विस्म की दृष्टि से भ्रष्ट नहीं है। इन दोनों विवाहों में धर्म-कथा रोमांचक कथा और काव्य, इन तीनों तत्वों का सम्मिश्रण मिलता है। इस प्रकार 'पद्मावत' 'मधुमास्ती' तथा अन्य सुकी प्रेमात्मानक काव्यों के महाकाव्यत्व का निर्धारण अपभ्रंश महाकाव्यों के रचना-तन्त्र और भाव संवेदना के आधार पर ही अपेक्षित है। यदुर्ग फल प्राप्ति के अन्तर्गत इसमें काम और मोक्ष के प्रति आग्रह मिलता है। अपभ्रंश के बिन काव्यों का वर्णन किया गया है उनमें फल-प्राप्ति के मुख के पश्चात् जागृत की गहरता के सत्य के उद्घाटन हेतु किसी सबसे कष्टों की व्यवस्था मिलती है। 'पद्मावत' के बाष्पाब्ध का उद्देश्य जैन काव्यों से भिन्न नहीं लगता है—

कहाँ सो रतन पैलि असराबा । कहीं सुवा अति बुनि उपराबा ।
 कहीं बलाकरील मुछठानु । कहीं राखी बेई कीरु बजानु ।
 कहीं सुख पद्मावति रानी । कोइ न एहा बन एही कहानी ।
 यलि सो पुरुष बस कीरति बासु । पूल मरै पै मरै न बासु ।
 केई न जयत जस बेचा, केई न भीन बस मोल ।
 जो यह पढ़ै कहानी, हम संबरै दुर मोल ।

आलोचना के आधुनिक स्वरूप के अनुसार महाकाव्य के कतिपय सामान्य लक्षण हैं जिनका समावेश सर्वगुण और सर्वदेश के महाकाव्यों में उपलब्ध होता है। वे इस प्रकार हैं^१।

(१) महत्कृत्य महत्प्रेरणा और महती काव्य प्रविभा ।

(२) युक्त्य, साम्प्रोय और महत्त्व ।

(३) महत्कार्य और युय-जीवन का समग्र चित्र ।

(४) सुसंयोजित और जीवन्त कथामय ।

(५) महत्त्वपूर्ण नायक ।

(६) परिणामहीन संशय सेही ।

(७) ठीक प्रभावप्रतिष्ठा और नम्रोर रज व्यंजना ।

'युमावत' तथा अन्य सूत्री आख्यात्मक काव्यों का महत्त्व कहा हो सकता है, यह एक स्वल्प प्रश्न है। 'युमावत' का बोध्य प्रेम-कहानी कहना है, और सूत्री जीवन का प्रतिपादन करना है तथा काम और मोक्ष-प्राप्ति के साधनों की प्रस्तावना करना है। मे एक अपने आप में कितने महान् हैं यह निवारणीय प्रश्न है। इस और दृष्टि करते हुये आचार्य मुक्त न कहा है, 'अपनी कहानियों द्वारा इन्होंने प्रेम का युद्ध मार्ग दिखाते हुए सामान्य जीवन-व्यथाओं को सामने रखा जिसका समुच्चय मान के हृदय पर एक सामान्य प्रभाव बिखलाई पड़ा है। इन्होंने मुक्त होकर हिन्दुओं को कहानियों हिन्दुओं की ही बोली में पुरो साहस्यता से कहकर उनके जीवन की सर्वप्रथिनी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण धार्मिकत्व लिखवाया। कबीर ने केवल जिला प्रतीत होती हुई परीक्षा उत्ता की एकता का आभास दिया था। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का आभास नहीं दिया था। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का हृदय सामने रखने की आवश्यकता बनी रही। यह बापड़ी द्वारा पूरी हुई।' परन्तु इन उत्तरी के अतिरिक्त बापड़ी का 'यमावत' एक ब्रेट कविता (A Great Poetry) है। यह विचारों की बोझा मात्र नामों का काव्य है। प्रेम एक मात्र है। जीवन का एक नैसर्गिक स्वप्न है। बापड़ी प्रेम उत्तम के पात्रक है। प्रेम-स्वरूप को कवि ने आख्यात्मक काव्य के माकार की निराकृता में व्यञ्जित किया है। और यह लोक जीवन के निकट का काव्य है। इस उत्तम के कारण ही इसकी गरिमा सुरक्षित रखी। प्रेम मार्ग में 'काव्य' के प्रति कवि विषय आत्मा मात्र व्यक्त करता है—

मुझपर चिनपी अर्पण की मुनि मद्धि यवन डेराह ।

बलि निरखी जो बलि दिया यह बस मानि यमाह । २०२।

परन्तु काम की साधना को कवि योग साधना के समकक्ष मानता है—पंच पयनों को बाँधनेवाला योगी सती होता है, उसी प्रकार पंच बावों को बाँधनेवाली कामिनी सती होती है—

बोवन तुरे हाथ गहि लीबै बहोँ बाइ तहँ बाइ न बीबै ।

× × × ×

कहेसि पेम बौँ उपना बारी । बौँ सु सत मन डोछ न मारी ।

× × × ×

सती बौँ करे पेम मिय छागी । बौँ सत हिरैँ चीतक बापी ।

× × × ×

पवन बँब होइ जोगी जती । काम बँब सोइ कामिनी सती ।

‘पद्यामृत’ भाव-सौन्दर्य और भाव भेदना का काव्य है। अनुभूतियों का वैविध्य इसका विशेष सौन्दर्य है। प्रेम के अनेक सम्प्रेतपूर्ण बिन्दु इस काव्य में मिलोन्वित हैं। इस सन्दर्भ में शृङ्गार के संयोग और वियोग इन दोनों पक्षों की लक्ष्मी की भाँति बुरी है। इसके अतिरिक्त जीवन के व्यापक सन्दर्भ में उपलब्ध होनेवाले कल्प आत्सव्य बीर-भावि रसों का उद्गमजन कवि ने नैसर्गिक रूप में किया है। कल्प रस के सन्दर्भ के दो स्वरों को यहाँ उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जा रहा है—रजसेन योगी होकर सिपल के लिए प्रस्थान कर रहा है। नायमस्ती रो रही है रजसेन का रनिवास रो रहा है—

रोबै नायमस्ती रनिवासु । केइ तुम्ह कन्त बाव बन बासु ।

बाव को हमहि करिहि भागिनी । हमहूँ साव होइब जोगिनी ।

कै हम जानहु अपने साया । कै अब मारि बजहु सँ हाया ।

× × × ×

मनेहि पगुमिनी रूप अनुपा । हमते कोइ न मानरि क्या । १३१ ।

इस प्रकार का एक दूसरा सन्दर्भ है। रजसेन सिपल से बितौर गढ़ के सिंग प्रस्थान कर रहा है। इस सन्दर्भ में विदा होते समय पद्यामती प्रियवनों के वियोग की व्यापा से रो सटती है। सखियों से माता पिता और भाई से बह विदा होती है। कल्प सन्दर्भ का अति नैसर्गिक वर्णन कवि प्रस्तुत करता है—

रोबहि मातु पिता औ भाई । कोइ न टेक बौँ कन बसाई ।

रोबै सब नेहर सिपला । लै बजाइ के राजा बसा ।

छिरी सबी भेंटत तबि मीरा । अंत बंध सो मएत किरीरा ।

कोउ काहूँ कर नाहि निमाना । माया मोह योबा बरनाना ।

पद्यावत ३२७।३८४।

पद्यावत में भीर रस के समस्त विषय पद के आक्रमण और अद्भुत होने के युद्ध के प्रतीक में है । इन प्रतीकों में भीर भावना का बलि उद्गीत रूप देखने का निष्कर्ष है । भीरा के युद्ध का एक खंड यहाँ प्रस्तुत है—

धीरे रैस साथ सब जूझा । आपन काल निवार मा बूझा ।

कोसि सिव सामुंह रस पैसा । साबन्ह सौं गहि मुरै बकेला ।

बई हौकि हस्तिन्ह के उटा । बैसें सिव मिडारी पग ।

बहि सिर बेह कोसि कर वाक । तिडं पोड़ा टूटे बसबाक ।

×

×

×

×

बेसि कायु सेहुर छिरिबाब । चौचरि बेसि बायि रस बाबे ।

हस्ती घोर आब ओ बूझा । उठै देह तिन्ह रहिर भयूका ।

पद्यावत ३३३।३३६।

पद्यावत के महाकाव्यत्व की ओर संकेत करते हुए आचार्य शुक्ल का यह निष्कर्ष है कि इस कृति का महत्त्व कार्य है पद्यावती का सही होना । परन्तु इसे हम एक दूसरे प्रकार से कह सकते हैं । पद्यावती की प्राप्ति हेतु रत्नसेन का बलिदान हो जाना ही इसका महत्त्व है । और ध्वन्यार्थ में माया से मुक्त होकर पद्यावती के साथ समरसता की स्थिति में जा जाना ही रत्नसेन की क्रियाओं का अन्त्य है । इन शब्द के प्रतिपादन के लिये कवि ने भारतीय इतिहास की एक विचित्र तथा महत्त्वपूर्ण का आशय ग्रहण किया है । आचार्य शुक्ल ने इसके महत्त्व कार्य और उद्देश के सम्बन्ध में विचार करते हुए यह कहा है कि पद्मनाभ एक प्रेम पाषाण मान है, अविम माया नहीं । 'वामन' के अतिरिक्त मनुष्य की ओर भी शक्तिपूर्ण बलिका कुछ विस्तार के साथ समावेष्ट है । युद्ध सम्पत्ती कच्छ, मातृ पक्ष, स्वामिसिद्धि, बाण्डा कुम्भार, राज मौर सत्रोत्सव है पर इनके होते हुए भी पद्यावत को हम यह बार प्रमाण काव्य ही कह सकते हैं । 'रामचरित' के समान मनुष्य जीवन की म्लिन् म्लिन् बहुत-सी परिस्थितियों और सम्बन्धों का स्वयं संपन्थ नहीं है । (आपसी प्रत्यावर्ती सुमिका—पृ० ३३ ३३ ।) शुक्लजी

परन्तु काम की साधना को कबि भीम साधना के समकक्ष मानता है—पंच पवनों को बाँधनेवाला योमी सती होता है, उसी प्रकार पंच बाजों को बाँधनेवाली कामिनी सती होती है—

बोबन तुरे हाथ बहि सीजे बहाँ बाइ उहँ बाइ न बीजे ।

× × × ×

कहेसि येम बी उपना बारी । बीबु सत मल बोस न भारी ।

× × × ×

सती बी बरै येम सिम छाबी । बीँ सत हिउँ छीतल जाबी ।

× × × ×

पवन बंध होइ जोबी जती । काम बंध सोइ कामिनी सती ।

‘पद्मावत’ भाव-सौन्दर्य और भाव चेतना का काव्य है । अनुभूतियों का वैविध्य इसका विशेष सौन्दर्य है । प्रेम के अनेक उन्मेषपूर्ण बिन्दु इस काव्य में निमोचित हैं । इस सन्दर्भ में शृङ्गार के संयोग और वियोग इन दोनों पक्षों की बर्णना की जा चुकी है । इसके अतिरिक्त बीकन के व्यापक सन्दर्भ में उपलब्ध होनेवाले कवच वासस्य बीर-आदि रसों का अनुभावन कवि ने नैसर्गिक रूप में किया है । कवच रस के सन्दर्भ के दो स्थलों को यहाँ उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जा रहा है—रत्नेन योमी होकर सिक्क के लिए प्रस्थान कर रहा है । मागमती रो रही है रत्नेन का रनिवास रो रहा है—

रोवे मागमती रनिवासु । कैइ तुम्ह कल जाब बन बामु ।

बब को हमहि करिहि भागिनी । हमहुँ साब होइब जोगिनी ।

कै हम साबहु अपने साथी । कै अब मारि बकहु सँ हाथी ।

× × × ×

भलेहि पनुमिनी रूप बनूपा । हमते कोइ न जागरि कपा । १११ ।

इस प्रकार का एक दूसरा सन्दर्भ है । रत्नेन सिक्क से चित्तौर गढ़ के लिए प्रस्थान कर रहा है । इस सन्दर्भ में बिदा होते समय पद्मावती शिपवनों के वियोग की व्याथा से रो उठती है । सखियों से माता पिता और भाई से बह बिदा होती है । कवच सन्दर्भ का अति नैसर्गिक वर्णन बहि प्रस्तुत करता है—

रोबाई मातु पिता बी भाई । कोइ न टोक बी कट कपाई ।

रोवै सब नेहर सिपला । छै बजाइ के राजा बसा ।

कि इस बलव्य का अध्ययन करते हुए डॉक्टर माताप्रसाद गुप्त ने यह कहा है कि यह कवय 'पद्मावत' के पूर्वांश तक के लिए ही सत्य है। इनकी यह चारणा है उत्तरार्ध में आने वाली परिस्थिति सम्बन्ध वैशिष्ट्य में 'रामचरित मानस' से कम नहीं है। इस प्रकार हम विशेष दृष्टिकोण के अनुसार 'पद्मावत' को वे राम चरित मानस के समकक्ष की रचना मानते हैं। अपने कथन के निष्कर्ष रूप में वे कहते हैं कि 'मानस' और 'पद्मावत', दोनों ही जीवन-भाषाएँ हैं एक मक्ति प्रधान जीवन-भाषा है, दूसरी प्रेम-प्रधान।^१

'पद्मावत' के रचनातन्त्र और भाव परिवेष्ट में कवि जायसी की महती प्रतिभा का परिचय मिलता है। वस्तु-वर्णन और भाव निवेदन के माध्यम से कवि मानव की रागात्मिका वृत्तियों का उद्घाटन करता है।^२ प्रेम अस्ताह, वैराग्य शोक, कल्या भक्ति आदि स्थायी भावों की व्यंजना से कवि 'पद्मावत' को जीवन-काव्य की परिभाषा मण्डित करता है। 'पद्मावत' में सघट्ट प्राणवृत्ता है। कवि की विराट कल्पना में यह प्रेमभाषा जीवन भाषा के रूप में प्रस्तुति हुई है। यही कवि-प्रतिभा की श्रेष्ठतम उपलब्धि है।

रहस्यवाच

जायसी तथा अन्य सूफी प्रेमाख्यानक काव्य के कवियों ने परमारवा को प्रियतम रूप में देखा है। अतः के समस्त व्यापारों में वे उस प्रियतम के रूप और उसके माधुर्य तथा उसकी छाया को देखते हैं। प्रकृति के समस्त गू मार और बँसव को पुरुष के सामय की विक्रमता का प्रतिरूप भी वे मानते हैं। वे भावभाषे 'पद्मावत' में अधिक प्रबल रूप में व्यक्त मिलती हैं। जायसी में प्रकृति मूलक रहस्यवाच मिलता है। प्राकृतिक-सौन्दर्य के द्वारा अहम् से इतर के सम्बन्ध स्थापन की भावना इस रहस्यवादी भावना की मुख्य अनुभावना है। प्रकृति के समस्त तत्व परम सत्ता की प्रेरणा से बहिष्कृत हैं रूप-सौन्दर्य पारम्य करते हैं। इतर अतः उनकी चर्चना है—

१—वैशिष्ट-पद्मावत भूमिका पृष्ठ ४६ २०।

२—वैशिष्ट-जायसी ग्रन्थावली की भूमिका-पृ० १९२ १९३।

साय साजि है बरती साजी । बज-बज सृष्टि उपगजी ।

साजे जाँह मुख बी वारा । साजे बन कह समुद्र पहाग ।

बिन्देखा । पृष्ठ १६ ।

सृष्टि के कब-कब में परम तत्व का प्रतिबिम्ब है । उग्र शक्ति के साधनात्मक स्थापित करने की भावना से ही हम बिन्दु की अनुभूति से बीजित हैं । जब बीजम प्रेम की कहानी के माध्यम से इसी आध्यात्मिक प्रेम की व्यञ्जना मुझी प्रेमाख्यातक काव्यों में हुई है । बायसी न प्रकृति के माध्यम से प्रवेश तत्ता की ओर संकेत किया है । सिद्ध हीन की मुख्य छाया में आध्यात्मिक मुक्त की व्यञ्जना की गई है—

का बमराठ कामु बहूपासा । उठा भूमि हुत कामि बक्रासा ।

तखिर सबे मल्ल मिर्चि काई । भय बम छाँह रेमि होइ बाई ।

मल्ल सखीर छोहावन छाहीं । बेट बाह माने तेहि भाहीं ।

×

×

×

×

पक्षि को बहूने तहि से बानू । बुझ बिन्दे मुख होइ निचगामू ।

बेट कह पाई छाँह बनूपा । फिरि नहि बार नई यह भूपा ।

प्रकृति मायवीय कैला के रूप में उस परम तत्व की सामना में ही स्थित है । मान धरोवर-वर्त्म में कनि बायसी प्रकृति कल्या के इसी सुन्दर का अनुवादन करते हैं । प्रेमावली बिनाट सक्ति है । धरोवर का साधक-मान उसके रूप धीमर्त्य और संस्पर्श से मुख है—

बलवर रूप निमोहा छिरे छिरीर करेह ।

राव कुनह मनु पावौ तेहि सिनु कहर देह । १६१।२३।

धरोवर प्रेमावली के बाग स्पर्श से निर्मल हो गया ।

कहा मानवर बाह से पाई । पारत रूप इहो कति बाई ।

भा निरपक सिन्धु पावन परते । भावा रूप-रूप के बरते ।

मल्ल-सखीर बाह ठग बाई । भा सीतल से तपनि बुझई ।

साधनात्मक रहस्यवाद के बौद्धिक पक्ष में प्रेम की भाव-संवेचना के ओर से इसी के सुठी कवियों ने रहस्यवादी छावना को रसात्मक रूप दिया है । इनकी कलाओं में रूप के प्रति प्रकृत आसक्ति भिन्नो है । वृत्तियों ने रूप-आसक्ति का

सम्बन्ध किया है। जायसी तथा अन्य कवियों में पद्मावती या अन्य नायिकाओं में रूप के वर्णन की पृष्ठि भूमि में यही तरह विद्यमान है।

अपनी रहस्य-साधना के लिए इन कवियों ने प्रतीकों का भी प्रयोग किया है। पद्मावती नागमती रजसेन इत्यादि से सम्बन्धित प्रतीकों की जहाँ पीछे की जा चुकी है। मिठा नाम और सन्त साहित्य में प्रयुक्त प्रतीकों का प्रयोग भी यहाँ मिलता है। 'पद्मावती' को सोलह कछावों से परिपूर्ण 'चन्द्रमा' की संज्ञा भी जायसी ने दी है। पद्मावती सूर्य भी हैं। जिसके स्पर्श से रजसेन स्वयं सूर्य और चन्द्रमा हो जाता है—

जब हीं मुदर चौद बह साया । बस बिनु मील रजस बिनु काया ।

क्रियन करा भा प्रेम बैकुण्ठ । ओ सखि सरय मिथौ होइ गुरू ।

सूर्य और चन्द्रमा के इस सन्तर्भ की मूल प्रेरणा की जहाँ पीछे हो चुकी है। उस सन्तर्भ का प्रतिपादन भी इस रहस्यवाद में मिलता है। गंगा वसुधा इका विपला आदि से सम्बन्धित प्रतीकों का प्रयोग भी इस सन्तर्भ में हुआ है।

धूर छाँह दुइ पियरे रंगा । भूली मिली रहल एक संग ।

तुम्ह रंगा वसुधा दुइ मारी । छिस्ता मुहम्मद बोम ।

रजसेन और पद्मावती के मिलन के मध्य कवि सूर्य और चन्द्रमा के सम स्वरूप के सिद्धान्त का स्थापन करता है। यह समरसता की स्थिति है।

कृष्ण भक्ति तथा काव्य का स्वल्प विस्तरेण

उत्तर भारत में ज्ञान-मार्ग, योग-मार्ग और भक्ति-मार्ग की धारामें स्वतन्त्र रूप में प्रवाहित होती रही हैं और समय-समय पर वे एक दूसरे को संस्पर्शित और प्रभावित भी करती रही हैं। परन्तु इस प्रकार की भावना विश्वास या बुझी है कि उत्तर भारत में भक्ति की जाय बख्तिग भारत से प्रवाहित हुई है। वास्तविकता ऐसी नहीं है। उत्तर भारत में मागध धर्म के रूप में भक्ति का अस्तित्व भक्ति प्राचीन काल से ही मिलता है। परन्तु काल-क्रम से यह भारी बलि भीम हो चुकी थी और उत्तर भारत की अपेक्षा इसका प्रसार दक्षिण भारत में बलि व्यापक रूप में हुआ। आठवार भक्तों के तामिल वीथों से यह स्पष्ट होता कि दक्षिण में ईसा की चौथी शताब्दी से दसवीं शताब्दी तक मागध भक्ति का प्राबल्य रहा। दक्षिण भारत के आचार्य मुक्ता, श्री रामानुजाचार्य श्री विष्णु स्वामी, श्री निम्बार्काचार्य और श्री मध्वाचार्य ने आठवार भक्तों से वैष्णव भक्ति की प्रेरणा प्राप्त की और इन्होंने मागध भक्ति को उत्तर भारत में पुनर्जीवित करने का प्रयत्न किया। आठवार भक्तों के गीत प्रबन्धों और 'ब्रह्मसूत्र' ग्रन्थों से भी इन्होंने प्रेरणा ग्रहण की।

इन आचार्यों ने संकराचार्य के मामावाद का अध्ययन किया और तथा बगवत् की उत्पत्ति की स्थापना की। ब्रह्म के सगुण रूप के प्रति इनमें आग्रह मिलता है। विष्णु के मित मित अवतारों में केवल राम और कृष्ण तथा उनकी शक्तियों के रूप में सीता और राधा के प्रति ही इनमें आस्था और विश्वास के भाव मिलते हैं। श्रीराम और ब्रह्म की उत्पत्ति-स्वापन के सम्बन्ध में इन आचार्यों ने विधिष्ठादित पृथादित ईताईत और अचित्य मेदा-मे के सिद्धांतों की श्रवणा की। वेद पुराण संहिता उपनिषद् ब्राह्मण ब्रह्म-सूत्र और मागध पुराण के प्रमुख अंशों का भी इन्होंने अध्ययन किया। छाय ही छाय इतिहास और कुछ विष्णुओं से भी वे प्रभावित होते रहे। वास्मीकिरामायण अध्यात्मरामायण, हरिवंश पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण आदि पर निम्ने को भाव्यों से

भी वे प्रभावित थे। नारद भक्ति सूत्र शास्त्रित्व भक्ति सूत्र तथा नारायणीयो पाश्यान् मी वैष्णव भक्ति ब्राह्मोक्त्य में विशेष सहयोगी रहे हैं।

वैदिक शास्त्रित्व में कर्म ज्ञान और उपासना की ओर यन्-तन् संकेत मिलते हैं। ऋग्वेद में विष्णु राज्य का प्रयोग मित्र मित्र अर्षों में हुआ है। वहीं विष्णु के लिए 'मृतस्य यर्मम्' का भी प्रयोग किया गया है। वेद-ग्रंथों में विष्णु का वर्णन लोक रणक के रण में हुआ है। इस प्रकार वैष्णव भक्ति का आदि स्रोत वैदिक ब्राह्मण माना जाता है। वैष्णव भक्ति में नवधा भक्ति की व्याख्या की गई है। इस प्रकार की धारणा व्यक्त मिलती है कि नवधा भक्ति का ऐतिहासिक उत्पत्ति ऋग्वेद के कतिपय मंत्रों में मिलता है। उदाहरण—

यवय—या वातमस्य महतो महि ब्रह्मतेतु युवीर्मिर्मुम्य विवद्वस्य ।

ऋग्वेद १ १२९ २।

कीर्तन—विष्णोर्मु कं बीर्षाभि प्र बोधं यं पात्रिहानि भिमये रजांसि ।

ऋग्वेद १ १३ १ १।

स्मरण—प्रविष्णवे नृपमेतु मम विरिषिषि उक्त्वायाय हृष्ये ।

ऋग्वेद १ १ १२४ ३।

ऋग्वेद में इन्द्र धर्मिक के प्रधान रूप हैं। परन्तु वह भी स्पष्ट प्रकट होता है कि इन्द्र की प्रधानता के स्थान पर विष्णु की क्रमशः प्रधानता मिलने लगी थी। और विष्णु के प्रति इस प्रकार की भावना का विकास होता है कि जो समस्त नारायण जगत् को व्याप्त करता है, वह विष्णु है। वैष्णव धर्म में विष्णु के लिए नारायण राज्य का भी प्रयोग होता है। ऋग्वेद में सुष्टि-रचना के उत्पत्ति में नारायण का प्रयोग मिलता है। 'महामारुत' में विष्णु के लिये नारायण का प्रयोग किया गया है। समुद्र-मन्थन में नारायण की प्रेरणा का उल्लेख मिलता है। दण्डव भक्ति में विष्णु और नारायण के पश्चात् वासुदेव का उल्लेख मिलता है। महामारुत के शान्ति वर्ष के अठारह अध्यायों में और मीमांसा वर्ष में वर्णित नारायणीयोपाख्यान् में वासुदेव-उपासना मिलती है। शान्ति वर्ष में विष्णु और वासुदेव में अन्तर नहीं माना गया है।

परन्तु वैष्णव भक्ति या हृष्य भक्ति का शाश्वत सम्बन्ध इन मंत्रों में स्थापित नहीं हो पाता है। श्रीहृष्य भक्ति का स्पष्ट सम्बन्ध पुराणों में ही स्थापित हो

पाता है। कृष्ण के जिस माधुर्य स्वरूप के दर्शन हम भारतीय साहित्य में करते हैं उसका आदि रूप हम पुराणों में ही देख पाते हैं। महाभारत में कृष्ण के ऐश्वर्य पूर्ण रूप को ही हम देखते हैं। महाभारत का ऐश्वर्यपूर्ण रूप पुराणों में माधुर्य में परिवर्तित हो उठता है। नवमा मूर्ति के जिस स्वरूप का विकास हम परवर्तीकाल में देखते हैं, उसका अति विकसित रूप भी पुराणों में उपलब्ध मिलता है। सत्य और वास्तव्य मायों के साथ शृंगार की प्रसिद्धा पुराणों में मिलती है। शृंगार के माधुर्य रति माय का योग भी यहाँ हो जाता है। साध-ही-साध यहाँ भी कृष्ण की आध्यात्मिक सीढ़ियों के साथ भौतिक सीढ़ियों का योग भी मिल जाता है।

कृष्ण-भावना का विकास

'शुद्ध' में 'कृष्ण आंगिरस' नामक श्रुति का वर्णन मिलता है। 'कृष्ण आंगिरस' सोमयान करते हैं। वे सोमयान के लिए अग्निनी कुमारों को भी आमन्त्रित करते हुए मिलते हैं। यहाँ 'कृष्ण आंगिरस' और विष्णु दो स्वतंत्र व्यक्ति हैं। एक संवत् में विष्णु जाह्नव होते हैं। 'कृष्ण आंगिरस' विष्णु की जीवन-कामना के लिए 'अग्निनी कुमारों' का स्माय करते हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ कृष्ण नामक एक अनुर (देवता) का भी वर्णन मिलता है। इन्द्र द्वारा इनकी पराजय का भी वर्णन इस सप्तम में मिलता है। इन्द्र के कृष्णाशुर की गर्मवती स्त्रियों के वध का भी वर्णन यहाँ मिलता है। 'संक्षोध्य उपनिषद्' में कृष्ण को एक स्पष्ट व्यक्तित्व से आभूषित किया गया है। यहाँ उनका वर्णन देवकी-पुत्र के रूप में हुआ है। परन्तु आंगिरस के साथ इसका सम्बन्ध यहाँ भी है, यहाँ कृष्ण और आंगिरस, दो अलग व्यक्तियों के रूप में सम्मुख आते हैं। कृष्ण यहाँ आंगिरस के शिष्य हैं। आंगिरस उन्हें इस प्रकार की शिक्षा देते हुए मिलते हैं—

यज्ञेत्पुंशोऽङ्गिरसः कृष्णाय देवकी पुत्रायोक्तो वापाऽपिवा एव स बभूव सोऽन्तरेक्षामा मेतत्पुंशं प्रतिपद्ये ताजितमस्य श्रुतमसि प्रायश्चास्तिप्रमसीति।

—देवकी पुत्र भी कृष्ण के शिष्य आंगिरस और श्रुति ने शिक्षा दी कि जब मनुष्य का अस्तिम समग्र जाने तो उसे तीन बातों का उच्चारण करना चाहिए—

(१) त्वं अक्षितमसि—तु बलस्वर है ।

(२) त्वं बभ्रुवमसि—तु एक कम है ।

(३) त्वं प्राक्संस्रितमसि—तु प्राणियों का जीवन दाता है ।^१

कृष्ण के व्यक्तित्व का ऐतिहासिक स्वल्प महाभारत में पुराता संस्कारित मिलता है । यहाँ कृष्ण के बचपार रूप की भी कल्पना मिलती है । श्रीमद् कृष्ण को बालक प्रकृति और उपासन कर्ता कहते हैं—

एव प्रकृतिस्वच्छा कर्तार्येव उपासकः ।

पराय सर्व भूतेभ्यः तस्मात्पूज्य तयोऽभ्युतः ।^२

एतत्पारमर्तं ब्रह्म एतत्पारमर्तं यथा ।

एतद्व्यवहारमप्यक्त एतत् मे सास्वर्तं मया ।^३

इस सन्दर्भ में हमारा ध्यान आठक कथाओं की ओर भी जाता है । 'अठ आठक' में बामुदेव कम्ह (कृष्ण) की कथा मिलती है । बामुदेव कम्ह कुबजबापीइ, मुष्टिक, बामुर और कंठ का मिलावट करते हैं । 'महा उमय्य आठक' में बामुदेव कम्ह का उल्लेख मिलता है । उन्होंने काम-विराजित होकर बाण्डास कम्हा बामवती को मंदिरी बनाया था^४ ।

गोपाक कृष्ण की भावना का विकास 'हरिवंश पुराण', 'बामु पुराण' और 'भाववत् पुराण' में हुआ मिलता है । इस प्रकार का मिश्रण किया जाता है कि 'हरिवंश पुराण' की रचना ईसा की तीसरी शताब्दी में हुई थी । 'हरिवंश पुराण' में एक स्वतन्त्र नर गोपाक कृष्ण अपने शिष्य 'वधुपाक' संज्ञा का प्रयोग करते हैं । इस ग्रन्थ में गोपाक कृष्ण के अवनिर्वाती होने का उल्लेख भी मिलता है । कृष्ण की गोवर्धन पूजा का प्रथम ऐतिहासिक उल्लेख भी इसी ग्रन्थ में मिलता

१ वेत्तिवे—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ४२३ ।

२ महाभारत २.५.२३

३ महाभारत १.१.१२

४ हिन्दी साहित्य पृ० ३३३ ।

है। गोपाक कृष्ण का सम्बन्ध श्रीमीर नाति से स्थापित किया जाता है। कृष्ण श्रीमीर नाति के देवता थे और राधा श्रीमीर नाति की देवी थी।^१

‘हरिबंश पुराण’ में कृष्ण के व्यक्तित्व के दो रूप मिलते हैं—प्रथम के अन्तर्गत कृष्ण के वैभवविभास का वर्णन है। उसके अन्तर्गत उनके ऐश्वर्य पूर्ण रूप का विवरण है। कृष्ण के व्यक्तित्व का दूसरा रूप यह है, जिसमें उनके मायुरूप रूप का वर्णन मिलता है। यही कृष्ण की शृंगार-कीर्ति का वर्णन है। कृष्ण और बलराम लोकल सहस्र स्त्रियों के साथ बस-कीड़ा करते हैं। महाभारत में कृष्ण मिथ्या बामुदेव पौंड्र राज पुत्रोत्थम और करबोर पुर के राजा शृपाळ को मारकर अपने बामुदेवत्व की संस्थापना करते हैं। महाभारत में कृष्ण दम्पुओं का बध करते हैं कपिली का हरण करते हैं। वे सुरचंद राजा को मुक्त करते हैं और काशी नगरी का उद्धार करते हैं। ‘हरिबंश’ तथा अन्य पुराणों में भी कृष्ण के ऐश्वर्य रूप का विवरण मिलता है। परन्तु हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के धर्मशास्त्रीय कवियों का ध्यान कृष्ण के इस व्यक्तित्व की ओर नहीं जाता है। इसके विपरीत मध्ययुगीन कव्य-काव्य के कवि ‘हरिबंश पुराण’ में कृष्ण-गोपी-कीर्ति के शृंगारी वातावरण तथा ‘परिजात-वालयन’ के अन्तर्ग में उपलब्ध मान पैदाओं को पून रूप में ग्रहण करते हैं।

‘मायवत’ में भी कृष्ण के जीवन की समग्रता मिलती है। यही ऐश्वर्य और मायुरूप का संयोग मिलता है। आधुनिक अनुसन्धानों की प्रक्रिया के अन्तर्ग में भी कृष्ण-भक्ति और कृष्ण-काव्य के मूल्यांकन का प्रयास किया गया है। मयूर में प्रथम राजाजी ईश्वरी की पापाय मूर्ति उपलब्ध हुई है। इसमें नवनाथ चिन्म कृष्ण को रूप में लेकर बामुदेव यमुना पार कर रहे हैं। कामय पार्वती छताम्बी ईश्वरी

१ सर मच्छार की यह वारणा है कि जार्ज सीरिया से जाण जाये थे।

Vaisnavism Sarivism and other Religious system. 83

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी इस अन्तर्ग में कहते हैं ‘राधा श्रीमीर नाति की प्रेम देवी रही होगी, जिसका सम्बन्ध बाल कृष्ण से रहा होगा। बारम्बार वे बाल कृष्ण के साथ बामुदेव कृष्ण का एकीकरण हुआ होगा। इसीलिए जार्ज इनको वे राधा का गोपल्लव नहीं है। पीछे बालकृष्ण की प्रपन्नता होने पर इस बाळक देवता की शारी बाले श्रीमीर से से की गई होगी’ मूरदाहित्य १९७

के उपलब्ध सिद्धा पट्ट में कासिया यम का रूप अंकित है। इसी प्रकार पूर्ण बंगाल में पहाड़पुर नामक स्थान में उपलब्ध मूर्तियों में यमलार्जुन छद्म का रूप अंकित है। राधा कृष्ण के मुख्य स्वयं से सम्बन्धित मूर्तियों भी उपलब्ध हुई हैं।

कृष्ण काव्य की परम्परा

काव्य में बोपाल कृष्ण की छीसाओं का प्रथम उल्लेख अस्वयोप (प्रथम छताब्दी ईसवी) रचित 'बुद्ध चरित' में मिलता है। इस छन्द की दूसरी उल्लेख पूर्ण रचना है हास कृत 'गाथा सप्त स्रष्टे' (ईसा की प्रथम छताब्दी)। इस संग्रह के शृंगार और नीति सम्बन्धित मुक्तकों में कृष्ण राधा यशोदा और गोविन्दो से सम्बन्धित अनेक मायामें मिलती हैं। एक सन्दर्भ में इस प्रकार की अमि व्यक्ति मिलती है कि यशोदा छन्दियों से कहती है 'कृष्ण जब भी बाळक है'। यशोदा के इस वचन को सुनकर ब्रज बधुरें इस पढ़ती हैं। कृष्ण और गोविन्दों अपना कृष्ण और राधा के माध्यम से शृंगार भावना की अनेक मायामें यहाँ उपलब्ध होती हैं परन्तु इनमें भक्ति भावना के प्रति आग्रह नहीं मिलता है। एक वर्णन में मृत्यु करती गोपिका कृष्ण के पार्श्व में जाती है और कृष्ण विचुम्बित हो उठती है और भाव की तत्परता से स्वयं कृष्ण को चुम्बित करती है—

बाळक्य सखाह ममिहेस पास परित्तित्रा गिउक मोबी।

सरित गोविन्दार्ने बुम्बह क्योस पड़ि भागवत् कन्दुम २।१३।

पौबरी छताब्दी के लिख्ट ब्रह्मिण भाग में ब्रह्मण भक्ति का उद्भवना मिलता है। इस उद्भवना में आड़वारों ने विशेष योग दिया है *। ब्रह्मण

आड़वार अक्त कवि थे और इनका निवास तामिस प्रदेश था। इनकी संख्या बारह थी। इनकी रचनाओं का संग्रह 'प्रबन्धम्' नाम से हुआ है। इनका समय दूसरी छताब्दी से लेकर दसवीं छताब्दी तक माना गया है। इन मन्त्रों को तीन वर्गों में विभक्त किया गया है। (क) प्राचीन (१) बोयेक आड़वार (२) मूलताड़वार (३) वेय आड़वार (४) तिवमडिगे आड़वार (ख) मध्यकालीन (१) उटकोप या नम्म आड़वार (२) मयूर कवि आड़वार (३) कुस येयर आड़वार (४) येरिय आड़वार (५) आडास (ग) अन्तिम (१) टोडरनिगडि आड़वार (२) निरप्पाय आड़वार (३) तिरुमने आड़वार। हिन्दी और मलयालम की कृष्ण भक्ति—पृ० २४।

कृष्ण यदि साहित्य में कृष्ण की लीलाओं का गान मिलता है। बहो मन्त्रिणाई नामक मोरी का वर्णन मिलता है। यह मोरी राधा के समान के व्यक्तित्व की है और वह कृष्ण की सर्वांगिणी भी है। 'बिपी संहार' नामक नाटक में राधा-कृष्ण की प्रेम लीला के चतुर्थ चित्र हैं। वेदिकुण्डित राधा के अनुक्रम में कृष्ण की सर्वांगि निम्नलिखित श्रृंग में विधेय रूप से ध्यात देने योग्य है—

वाद्यिण्यां पुस्तितुं कैलि कुविता मुख्यस्य रामे रामे ।

यच्छति मनुष्यदेवाः परतुयां द्विपो राधिकाम् ।

वत्सावप्रतिमानिबेधित फल्गो बृगवे मोद एने ।

एतन्नोऽनुस्ये प्रमल दमिता इष्टस्य पुष्पातुष ।

इस चतुर्थ में उत्कृष्ट करने योग्य एक अन्य कृति प्राहुत महाकाव्य 'मउद्वहो' है। इस कृति के संस्कारावस्था के चार स्कोकों में कृष्ण की स्तुति की गई है। कृष्ण की बन्धना बन्धीयति बिष्णु यत्सोरा-पुत्र मोक्षियों द्वारा गङ्गासत-मुक्त त्रिपुरार रूप में की गई है। तृतीय शताब्दी की कृति 'कल्याणक' में इसी अज्ञात कवि का एक उद्धरण मिलता है जिसमें कृष्ण-राधिका की लीलाओं का स्पष्ट उल्लेख मिलता है—

तेषां गौप बभू विद्यास सुहृदसां राधा एव सावित्र्या ।

येन तत्र कलिम्बराय सन्यासीरे दृष्टावैश्वनाम् ।

विन्दिते स्मरतक कल्प नविबिन्दते दीपयोगेऽभुता ।

ते आने बाह्यी भवन्ति विदितली कल्पि पम्ब्या ।

इस रचना के एक अन्य अंश में मधुरिपु (कृष्ण) के द्वारा का-वमन के परमात्मा राधा कृष्ण के बल धारण करती है। समुद्रा-तट की लताओं का आबिर्भूत करती है, एक कंठ से गान करती है। उससे प्रेरित होकर समुद्रा के बल धार सत्कथित होकर कृष्ण कर बैठते हैं। दसवीं शताब्दी में विविध राधिका 'अध्यात्म' नामक ग्रन्थ में कृष्ण और राधिका की कोझाओं का उल्लेख मिलता है। दसवीं शताब्दी के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'कबीर भजन समुच्चय' का उल्लेख विद्यापति की विवेचना के चतुर्थ में हो चुका है। इस ग्रन्थ में राधा कृष्ण से सम्बन्धित चार स्कोकों का कृष्ण काव्य के विकास के चतुर्थ में विधेय ग्राह्य है। बाह्यी शताब्दी में हेमचन्द्र ने 'प्राहुत वैपत्तम्' और कपल्लव व्याकरण में कृष्ण और राधिका के सम्बन्ध

लोक जीवन में प्रचलित कविपद्य दोहों का संकलन किया है। बारहवीं शताब्दी में शारदाचरण ने 'माधवप्रकाशन' नामक ग्रन्थ में 'रामाराधा' नामक नाटक की बर्णना की है।

बिना सन्दर्भों के आचार पर कृष्ण-काम्य के विकास का रेखांकन किया गया है, जगमें आचारा मन्त्रों के साहित्य के अतिरिक्त अन्य में भक्ति-भावना के प्रति आग्रह नहीं मिलता है। साहित्य में भक्ति भावना का संस्पर्श स्पष्ट रूप से अब मग बारहवीं शताब्दी में मिलने लगता है। उपर्युक्त धारणाओं के आचार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कृष्ण-काम्य में भक्ति भावना को प्रस्तावित करने वाली प्रथम स्पष्ट कृति है लीला मुकुट कृत 'कृष्ण कर्णामृत'। इस कृति में भक्ति और गुरु गार का अनुपम योग मिलता है। इस परम्परा की एक अन्य रचना ईश्वर पुरी कृत 'भीकृष्ण लीलामृत' है। जयदेव कृत 'गीत गोविन्द' की बर्णना इसी सन्दर्भ में की जाती है। इस कृति को 'गीति नाटय' 'गीतिकाम्य' 'संगीत कथक' और 'यात्रा काम्य' आदि विभिन्न नामों से सम्मानित किया जाता है। 'गीत गोविन्द' एक सर्वज्ञ काम्य है जिसका विभाजन 'सामोद' 'बामोदर' 'मुञ्जमधुसूदन' 'शाकोस पुष्परीक' 'विस्तारण सन्धी' 'सुप्रीति पीताम्बर' आदि खंडों में हुआ है। 'गीत गोविन्द' के ही अनुकरण पर प्रकाशन सरस्वती का 'संगीत माधव', नामक काम्य ग्रन्थ उपलब्ध होता है। लीला मुकुट कृत 'कृष्ण कर्णामृत' नामक ग्रन्थ का उल्लेख यहाँ अपेक्षित सम्यता है। परवर्ती कृष्ण काम्य बारा पर मुख्यतः पौड़ीय बेल्लव साहित्य पर इस रचना का विशेष प्रभाव मिलता है।

द्वितीय के 'हरण भक्ति साहित्य' के मूल्यांकन में 'गीत गोविन्द' का सन्दर्भ ग्रहण किया जाता है। यह कहा जाता है कि इस काम्य में कृष्ण नायक और राबिका नायिका हैं। सतियों लीला सहचरी हैं। परन्तु वस्तु स्थिति ऐसी ही है इसमें सन्देह होता है। इस स्थल पर एक अन्य स्थल की ओर हमारा ध्यान आकर्षित होता है। जयदेव अपनी भावभूमि के एकमात्र प्रस्तावक नहीं थे। सैन राजाओं के संरक्षण में इस भावपारा का अवलम्ब ग्रहण करके काम्य रचना करने वाले काम्यकारों का एक वर्ग उपलब्ध होता है, जयदेव के अतिरिक्त इस वर्ग के प्रमुख कवियों में उमापतिपर चरण मोक्षनाथार्य और बोपी के नाम कृष्ण-काम्य के विकास के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण हैं। 'तनुक्ति कर्णामृत' की बर्णना

एक ब्रह्म दृष्टि से भी यहाँ आवश्यक है। इस संघर्ष में शान्त, वास्य, वात्सल्य और माधुर्य भाव की सखती योजना मिलती है। कृष्ण की कुमारकीला के पत्र भी यहाँ उपलब्ध हो जाते हैं। 'समुक्ति कर्माभूत' में 'मोपी सन्देश' धीरे-धीरे कतिपय रचनायें मिलती हैं जिनमें मोपियाँ या राधा पत्रिक के माध्यम से कृष्ण के पास सन्देश भेजती हैं, 'मोक्षार्थन पत्रों की कन्धारों' बमुना ठठ की राध कीकायें, वनस्पतियों और सहचरण की स्मृति क्या नहीं आती है ?

पान्थ द्वारवर्ती प्रवासि मरि हे तदेवकी मन्दनो
बन्धव्य स्मरमोह मंत्र विवक्षा गोप्योऽपि नाभिमिक्षा ।
एतां केतक मर्मभूमिस्तस्यैवलोप्य कृप्या रिश-
कास्मिन्नीतः श्रमवोऽपि ठरवो नापान्ति कितास्पदम् ।

इस प्रकार जयदेव से कमजोर हो उठाभी पूर्व से ही कृष्ण-राधा की एक मृदुलतावत् परम्परा मिलती है। कम गोस्वामी ने 'पदावली' में बेजब कविताओं का जो संकलन प्रस्तुत किया है, उसमें दक्षिण, उत्तर, विपरीत (विरमुक्त) आदि सबलों से उपलब्ध रचनायें भी संयोजित हैं।

राधा का क्रम-विकास

वैदिक साहित्य में राधा के नाम का उल्लेख नहीं मिलता है। इस प्रकार का बन्धव्य मिलता है कि राधा आभीर जाति की देवी थी। इस प्रकार राधा की कल्पना अनाथ देवी के रूप में की गई है और आभीरों तथा आर्यों के सम्बन्ध संस्थापन के पश्चात् ही राधा का प्रवेश आर्य संस्कृति में होता है। इस अर्थ के विपरीत इस प्रकार की भावना भी प्रस्तावित की गई है कि सांख्य ने प्रकृति-पुरुष सम्बन्धी बिंदु विचार को व्यक्त किया था, उसीके आधार पर बेजब भक्ति के संदर्भ में राधा-कृष्ण-भावना का विकास हुआ है। इसी प्रकार यह भी कहा जाता है कि पूर्ववर्ती सन्त और शिव भावना बेजब-भक्ति के संदर्भ में राधा-कृष्ण का रूप ग्रहण कर विकसित हुई। राधा भावना के आदि रूप का सम्बन्ध सच्चिदानंद से स्थापित करते हुए डा० सवि भूषण दास मृत लिखते हैं 'भारतवर्ष सन्तित्वार का ही देश है। सृष्टि उत्पन्न का आत्मन्वन करके एक अस्त-आदिदेव की कक्षा दूसरे देवी में भी देखी जाती है, और इस आदिदेवी में मातृत्व का आरोप करके

देवी कल्पना अत्यन्त भी कुछ-कुछ भिन्न है । केवल इस विश्व प्रसूति एक विश्व सन्तति को भाव्य रूप में अपने धर्म-जीवन में जिस प्रकार ग्रहण किया है, ऐसा संसार में दूसरी जगह नहीं दिखाई देता । श्री राधा का क्रम विकास पृ० ३४ ।

आइए हम लोगों की रचनाओं में कृष्ण के साथ एक प्रमुख गोपी का चर्चा मिलता है । इस गोपी का नाम 'ताम्रिणा' है । इसके साथ-साथ ताम्रिण वृत्त 'कुर्वीकुर्वी' का वर्णन भी मिलता है । यह 'रास' की कोटि का ही एक वृत्त है । इन सन्दर्भों में ब्रह्मण्य ग्रन्थों में राधाकृष्ण की मुगल उपासना और रासलीला का उल्लेख मिलता है । प्याल्ही सतावरी में राजा भोज ने 'सरस्वती कण्ठा मरण' में एक प्राचीन कवि के श्लोक का सन्दर्भ दिया है कनकानि कास स्वच्छे राधापयोधर मण्डले । यहाँ भी राधा का संकेत मिलता है । जनकध्वज के 'रघुवन्दन' में भी राधा के नाम की खोज मिलती है और हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र ने 'भक्त्यर्थ' में मेखल कवि कृत नाट्य ग्रन्थ में राधा के विप्रसन्न-स्वरूप की खोज की है । अथर्व वेद की रचनाओं में उपलब्ध 'राधा कृष्ण' स्वरूप से हमारा पूर्ण रूप से परिचय है ।

वैष्णव भक्ति का सम्बन्ध भागवत से है । इस ग्रन्थ में राधा की खोज नहीं है । भागवत पुराण के एक अंश के आधार पर यह भी कहा जाता है कि भागवत में राधा के नाम की खोज की गई है—

अनयां सावितो नूनं भयवान् हर हरिरीश्वर-

यमो विहाय गोविन्द प्रीतोयामनयवु राह-

भागवत पुराण १०. १०. १८ ।

यद्यपि इस अंश में राधा का स्पष्ट परिचय नहीं मिलता है, परन्तु का गोस्वामी विरचनाय चर्यवर्ती तथा कृष्ण दास कविराज इस अंश में राधा के उल्लेख की सम्भावना स्वीकार करते हैं । भागवत पुराण के तृतीय स्कन्ध के एक श्लोक में राधा नाम का संकेत मिलता है—

निरस्त साम्पादिययने राधसा

स्वयामलि ब्रह्माणि रस्यते नमः ।

इन सन्दर्भों में 'राधा' शब्द का प्रयोग विभूति के अर्थ में हुआ है । हरि च पुराण में सर्वप्रथम नृन्दावन में श्री गुरुदेव वर्णन की कथा मिलती है ।

परन्तु यहाँ रामाकृष्ण के युगल रूप का वर्णन नहीं मिलता है । निम्न पुराणों में राससीमा के वर्णन के सम्बन्ध में राधा का उल्लेख नहीं मिलता है । परन्तु 'ब्रह्मवर्त पुराण', 'पद्म पुराण' और 'बाटाह पुराण' में राधा का उल्लेख मिलता है । 'देवी मायवत' में राधा को माय की देवी और दुर्गा को बुद्धि की देवी कहा गया है । इस प्रकार यहाँ राधा और दुर्गा में अन्तर नहीं माना गया है । तंत्रों में भी राधा का उल्लेख मिलता है । 'रात्रिकोपनिषद्' में राधा का वर्णन आध्यात्मिक प्रतीक के रूप में हुआ है ।

साहित्य के सम्बन्ध में हमारा ध्यान बंगाल के प्रसिद्ध कवि बंशीदास की ओर जाता है । बंशीदास के काव्य में राधा परकीया रूप में वर्णित है । कृष्ण से मिलने के लिए जानुर राधा की माकनानों का विषय ही इनके काव्य का मुख्य सौन्दर्य है । राधा के लिए रसेखरी रासबाहिनी रसिकखरी, कृष्ण प्राणा पिंडा कृष्ण स्वस्मिणी परमानन्द कविनी कृष्णा और वृन्दावन विनोदिनी जावि नामों का प्रयोग इन्होंने अपने काव्य में किया है । बंशीदास की राधा के विषय में विचार करते हुए डा० सति भूपण दास गुप्त ने लिखा है, 'बंशीदास की राधा एक विमुक्त बंगाली कवि की मानसिक प्रतिमा है—बंगाली कवि के चित्त में घुल प्रेम प्रतिमा है । प्रेम की प्रतिमा इस राधा में हम देखते हैं कि बंगाली कवि बंगाल छोड़कर वृन्दावन नहीं गये मर—वृन्दावन की भूमि दूर से जाकर जब मर बंगाली कवि की मनोभूमि में प्रतिष्ठित हुई है जिसके पतनस्वरूप बंगाली कवि-मानस की प्रेम प्रतिमा ने अपने प्राकृत रूप के बखर छे, दिव्य ज्योति है अप्राकृत महिमा प्राप्त की है । हमारे राधा प्रेम में प्राकृत कहीं भी जलीकृत नहीं हुई है, प्राकृत ही धीरे-धीरे दिव्य मूर्ति में लुप्तगति हुई है—राधा का जन्म विक्रम-यु० ११३ ।

राधा कव्य की 'वाम आया-सम्भूता' है । राधा कव्य की ह्लादिनी उन्मिन्न भागी गई है ।

राधा कृष्ण प्रणय त्रिकुटि ह्लादिनी उन्मिन्न रत्ना
देहात्मनावधि मुनि पुरायेह भेद कठीनी ।
वैतथ्यात्थ्य प्रकट मधुना पतवृत्तं कव्यमात ।
राधा भाव मुनिमुनिरिति नीमि कृष्ण स्वकम् ।

अर्थात्, 'राधाकृष्ण' की प्रथम विभूति ह्लादिनी ध्वनित है, इसलिये दोनों एकात्म होते भी बेह भेद को प्राप्त हुए थे। अब इन दोनों ने ऐसा काम किया है। राधा भाव धृति सुवर्धित चैतन्यारण्य उस कृष्ण स्वरूप को मैं प्रणाम करता हूँ। राधा का क्रम विकास। चौकीय वैष्णवों की मुख्य धारणा यह है कि कृष्ण ने प्रेम रस के आस्वादन के लिए अवतार ग्रहण किया था। भूधार-हारा कृष्ण का यौग उद्देश्य था। अब इनके यहाँ माधुर्य रस की स्वीकृति एक स्वतन्त्र रस के रूप में हुई है। 'रूप बोधायी' ने 'मक्ति रत्नामृत सिन्धु' और 'धर्मवत् नीलमणि' नामक ग्रन्थों में माधुर्य रस की व्याख्या की है। द्वितीय वैष्णव साहित्य में 'मक्ति रस' या 'माधुर्य रस' की इस प्रकार की आकांक्षी व्याख्या नहीं मिलती है।

चैतन्य सम्प्रदाय के प्रेम विकास तथा 'मक्ति रत्नाकर' नामक ग्रन्थों में इस बात का उल्लेख मिलता है कि नृन्दावन में राधा की कृष्ण के साथ वृषाक्षता की प्रथा तोल्हवीं शताब्दी के पहले प्रचलित नहीं थी। बंवास के निर्यामय की पत्नी 'आल्लवी' ने बयल भास्कर नामक व्यक्ति द्वारा राधा-वृषाक्षता-विधि की संस्थापना की। परन्तु इस प्रकार की धारणा का कोई आधार नहीं है।

चौकीय वैष्णवों ने राधा के परकीया स्वरूप की कल्पना की है। बंवास साहित्य में उपलब्ध सहजिया वैष्णव काव्य-बारा में राधा की कल्पना एक भिन्न रूप में मिलती है। सहजिया वैष्णव छिड़ों के प्रजा-उपाय के स्थान पर राधा और कृष्ण की कल्पना करते हुए मिलते हैं। राधा कृष्ण के भिन्न को वे छिड़ों के ताम्ररस का पर्यायवाची मानते हैं। यहाँ राधा-कृष्ण के युक्त तत्व को परम तत्व का पर्यायवाची माना गया है। प्रेम की स्थिति सहज सगरस में है, यह अहम सगरस ही कृष्ण के समान है। नृन्दावन के समान इन्होंने पुनः चन्द्रपुर की कल्पना की है। इस चन्द्रपुर में राधा कृष्ण का नित्य मिश्रण होता है। इस भावधारा में भी राधा या गोविन्दों की कल्पना परकीया रूप में की गई है। परन्तु इनका परकीया प्रेम चौकीय वैष्णवों के परकीया प्रेम से भिन्न प्रकार का है। चौकीय वैष्णव में परकीया होते हुए भी राधा दिव्य मुक्तों से विभूषित है। परन्तु सहजिया वैष्णवों ने परकीया के धार्मिक आकर्षण तक ही अपने को सीमित रखा है। अब इनके अनुसार परकीया का अर्थ ही नृन्दावन है। नृन्दावन में

स्वान है। शाल्वन फिर है, नासिका मरन हुंन है और शरीर रस शरीर है ।
शारीरिक रस से ही ये रात्रिका का जन्मान मानते हैं ।

मत्स्य-सम्प्रदाय से सम्बन्धित वैष्णव प्रकृति में राधा मात्र का विकास
स्वीया रूप में हुआ है । इस सम्प्रदाय में राधालीला ने सन्तों में कृष्ण परमात्मा
और राधा और गोपी आत्मा के रूप में पहुँच है । इस समय की ओर संकेत करते
हुए डॉ॰ दीनदयाल नूतन लिखा है कि नित्य मोलीक में रहने वाले रस रूप
कृष्ण के रास की गोपिकामें मगवान की मित्र शक्ति है । एक से अनेक जगवान की
इच्छा शक्ति द्वारा अनन्त जलर प्रहृ से सत् रूप जगत् और चित् रूप बीच वशता
शक्ति की स्मृति हुई x x सिद्ध शक्ति राधा और कृष्ण का सम्बन्ध जल
और चोहनी का है । जगवान् की इन शक्तियों के बीच रस की सिद्ध शक्ति राधा
स्वास्मिनी स्वक्या है । जगवान् रस शक्तियों के बीच पुन रस शक्ति स्वक्या राधा
के रस में रहते हैं । अष्टाध्याय और मत्स्य सम्प्रदाय । १०१ ६ ।

अष्टाध्याय के कवियों ने राधा तथा गोपियों का वर्णन 'ब्रह्मवेवर्त पुराण'
तथा 'भानुवत पुराण' के आधार पर किया है । इस सम्प्रदाय के कवियों ने राधा
की शक्ति और कृष्ण को प्रपन्न-रूप में चित्रित किया है । राधा और गोपियों
के प्रति जलर के पुराणों में दो प्रकार के भाव विकसित हैं । प्रथम आत्म विद्या-
मित्री तथा सृष्टिकारिणी शक्ति रसा और द्वितीय काळा भाव से ईश्वर शक्ति
एव-शक्ति-विद्या भक्ता । अष्टाध्याय के कवियों ने इन दोनों भावों का योग अपने
काव्य में किया है । मोक्षीय शक्तों के परस्त्रीय भाव के विपरीत यही राधा तथा
गोपियों का वर्णन स्वीय रूप में हुआ है । सूरदास ने तो राधा और कृष्ण के
जन्म विवाह की भी कल्पना की है—

बाकी व्यास वर्णित रास

है पंचर्ष विवाह चित्त सुखी विविध निभास ।

किन्हीं प्रजन कुमारि यह जग भयौ हृदय निवास ।

मन मुख परिवेष, बेनी पुन मन की भास ।

इयम लक्षण ११६ = १२६ ।

मत्स्यवाचार्थ में कृष्ण की दो शक्तियों की कल्पना की है । प्रथम, बहिरंग
इसे अष्टाध्याय भाषा का विशेष स्थान है । द्वितीय, शक्ति अंतरंग है । इसके

अन्तर्गत संघिनि, सवति और झारिनी शक्ति हैं । झारिनी शक्ति ही राधा है । राधा विद्योविनि रूप में अमर गीत में चित्रित की गई है । निम्बाके सम्प्रदाय में भी राधा स्वीकृत है । इस सम्प्रदाय में राधा की भक्ति माधुर्य भक्ति-समर्पित है । बप्पन दर्शन में राधा की 'झारिनी शक्ति' को ही राधा कहा गया है । परन्तु राधावल्लभ सम्प्रदाय में इस प्रकार की भावना नहीं मिलती है । राधा बल्लभ सम्प्रदाय में राधा स्वयं आनन्द स्वरूप है । इस सम्प्रदाय में राधा उस अनादि शक्ति का निरूप स्वरूप है जो वसिष्ठ सृष्टि में व्याप्त होकर अपनी निरूप क्रीड़ा से आनन्द की सृष्टि करती है । राधा की कल्पना 'अर्वांगमनगोचर' रूप में की गई है परन्तु अर्वांगमनगोचर होते हुए भी राधा अनुभव की परिधि में आती है । राधावल्लभ सम्प्रदाय में राधा नित्य भाव है, सतत विहार नित्य है । राधा यही कृष्ण की उपास्या है, इस सम्प्रदाय के प्रमुख ग्रन्थ 'राधा सुधा निधि' में राधा की कल्पना निम्नलिखित पंक्तियों के अनुसार की गई है—

मात्पाशाम्बुहृदक रेणुकनिका मूर्ध्नानिवातुं नक्षि,
प्राप्युच्छ्वा सिवाद्योपपिङ्गलि पौष्पेक भावायमा-
सायि प्रेम सुधा रसाम्बुनिनिधि राधासि सा बारम्भी,
भूता काष्ठमपि क्रमेण वसिष्ठा है देव तुभ्यं नमः ॥
राधासुधामिधि—संस्कृत ७२ ।

प्रेम-लक्षणा भक्ति और माधुर्य भाव

मध्य युगीन बेप्पन भक्त कवियों की भक्ति विधा को 'प्रेम-लक्षणा भक्ति' अथवा 'माधुर्य भाव लक्षणा भक्ति' कहा जाता है । इस भक्ति-स्वरूप का संकेत 'आयकट पुराण' में मिलता है । आङ्गार भक्तों ने भगवान् के गुणगान तथा सगुणी लीला के वर्णन के जिस स्वरूप को अपनाया उसमें 'प्रेम-लक्षणा' अथवा 'मधुर भक्ति' के लक्षण निहित मिलते हैं । बहिष्कृत आङ्गार भक्तों के स्वधर्म की भक्ति अन्धकार ने कृष्ण के प्रति अपना प्रेम निवेदन करते हुए कहा है 'अब मैं पूर्ण जीवन को प्राप्त हो गई हूँ और स्वामी कृष्ण के अतिरिक्त अब किसी को अपने पति के रूप में नहीं ग्रहण कर सकती हूँ ।

प्रेम लक्षणा भक्ति की पीठिका में शक्ति के रूप में स्त्री-पुरुष की भावना विद्यमान है । शक्ति सृष्टि विकास की मूल प्रेरणा है । शिव के साथ नारी की

कल्पना सक्ति-रूप में हुई, जिन्‍हू के साथ उसी तारी की कल्पना छंदमी रूप में हुई ब्रह्मा के साथ सरस्वती रूप में तारो की कल्पना हुई। राम के साथ तारी की कल्पना सीता-रूप में, और हृष्‍य के साथ उसकी कल्पना राधा रूप में की गई।

प्रेम-कल्पना माधुर्य भाव का विकास संकराचार्य के दार्शनिक तथा बौद्धिक विचार की प्रतिक्रिया स्वयं हुआ समता है। शांतिस्थ तथा नारद ने अपने भक्ति-सूत्रों में प्रेम भक्ति का उल्लेख करते हुए कहा है कि वासना जन्म प्रेम में स्वयं की कामना होती है, परन्तु ईश्वरोग्‍मुख प्रेम में इस सुख का प्रतिपाद किया जाता है। प्रेम-कल्पना का परिचय देने हुए नारद ने कहा है 'उस प्रेम का कोई मूल नहीं होता उसमें कामना का संस्पर्‍स नहीं होता उसका विकास प्रति भव होता है उसका निष्‍पेक्ष नहीं होता है। वह सुख है। उसकी कल्पना अनुभूति होती है। 'नारद भक्ति सूत्र' (१५)। मध्य युगीन बंप्‍सों ने इसी भाव को ग्रहण किया है और अपनी संपूर्ण भक्ति में वास्तव्य सत्य वास्तव भाव के साथ वास्तव्य या शृंगार भाव को भी मूल किया है। ब्रह्मभाचार्य माधुर्य के अन्तर्गत वास्तव्य को घेरे मालते हैं। परन्तु ब्रह्मभाचार्य के पश्चात् माधुर्य के अन्तर्गत कान्‍ता भाव का विकास मिलता है। विदुलनाथ के इस भाष्य का स्पष्ट प्रभाव अष्ट छाप के कविओं पर देखने को मिलता है। विदुलनाथ ने 'शृंगार रस भजन' नामक ग्रन्थ में कान्‍ता भक्ति का उल्लेख किया है। वास्तविकता यह है कि अपने जीवन के पूर्वार्द्ध में ब्रह्मभाचार्य वास्तव्य भक्ति के प्रति आकर्षित रहे परन्तु अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में क्रिस्‍तोर रूप की प्रवृत्ति सीताओं की ओर वे आकर्षित लगते हैं। गौड़ीय बंप्‍सों में मुख्यतः रूप पोस्‍नामी तथा घनाचल भोस्‍नामी अपनी भक्ति की वास्तव्य भावना से निमूषित करने का प्रयास करते मिलते हैं। ब्रह्मभाचार्य के पश्चात् द्वि हरिवंश प्रेममूलक भक्ति का विस्तार करते मिलते हैं। निम्बार्क चम्‍पराय के अन्तर्गत हरिदास देवा चारों अपनी निश्चित रचना 'ब्रह्मभागी' में 'माधुर्य भक्ति' की विस्तार व्याख्या करते हैं। स्वामी हरिदास तथा उनके शिष्य 'सखी सम्‍प्रदाय' का विकास माधुर्य भक्ति की भाव-धारा के अन्तर्गत करते हैं।

माधुर्य भक्ति में एक कस्ता होते हुए भी इस भिन्न भिन्न सम्‍प्रदायों की धारणा में मुख्य अंतर मिलता है। निम्बार्क द्‍वन्‍तक की निम्न सीता में राधा

तथा शोधियों का वर्णन कास्ता-बाद के अन्तर्गत करते हैं। बल्लभ सम्प्रदाय के कवियों ने राधा तथा शोधियों के स्वकीया-स्वल्प को स्वीकार किया है। परन्तु अपनी मधुर भावना के अन्तर्गत वे परिचित समाज तथा वर्ग के बन्धनों की भी स्मृति कर देती हैं। इस प्रकार वे परकीया रूप धारण करती हुई लगती हैं। इसके अतिरिक्त वे 'मूढ रस' की भी कल्पना करते हैं। 'मूढ रस' से उनका तात्पर्य 'विशेष रस' से है। 'विशेष रस' के सम्बन्ध में वे पूर्वराज मान और प्रकाश की कल्पना भी करते हैं। परन्तु रामानुजमी सम्प्रदाय में बिष्णु की कल्पना नहीं मिलती है। इसके विरुद्ध बहूँ निरुद्ध लीला और नित्य मिलन की भावना व्यक्त मिलती है। यहाँ परकीया भाव की कल्पना भी नहीं मिलती है। यहाँ राधा प्रेम का आलम्बन है। कृष्ण उनके आश्रय हैं। वे नित्य बिहार में निष्ठ रहकर, परस्पर सुख में योगदान देते हैं। नित्य बिहार में सहचरी रूप योग देती हैं, जिनमें अष्ट सखियों का विशेष महत्त्व है। वैष्णव सम्प्रदाय में भी अष्ट सखियों की कल्पना मिलती है। बल्लभ सम्प्रदाय में अष्ट ललाओं की भावना का विकास इसी परम्परा के अनुसार हुआ समझा है। गोस्वामी हरिराज सखी भाव से अष्ट ललाओं की कल्पना करते हैं। वैष्णव सम्प्रदाय में सखियों के अतिरिक्त परिचारिका भक्तियों का वर्णन मिलता है। प्रत्येक भक्तरी के लिए यथोपयुक्त संज्ञा का प्रयोग किया गया है।

वैष्णव वर्ग के प्रमुख आचार्य

वैष्णव वर्ग के उद्भव और विकास के सम्बन्ध में जिन आचार्यों का वर्णन किया जाता है उन्हें सम्प्रदाय की बुनियाद की दृष्टि से हम दो वर्गों में विभक्त करते हैं।

[क] रामानुजाचार्य निम्बार्क विष्णु स्वामी और भक्ताचार्य।

[घ] रामानन्द श्रीवल्लभाचार्य, श्री हृन्व चैतन्य, श्री हित हरिबंस तथा श्री स्वामी हरिदास।

इन आचार्यों का समय आठवीं शताब्दी और सोलहवीं शताब्दी के मध्य पड़ा है। रामानुजाचार्य के लिए श्री सम्प्रदाय, भक्ताचार्य के लिए ब्रह्म सम्प्रदाय, विष्णु स्वामी के लिए 'नर सम्प्रदाय' तथा निम्बार्क के लिए 'तुलकादि सम्प्रदाय' आदि नामों का प्रयोग किया जाता है। परन्तु हिन्दी में उपर्युक्त

कृष्ण भक्ति-साहित्य का साक्षात् सम्बन्ध द्वितीय वर्ग से है। प्रथम वर्ग से केवल परोक्ष रूप से ही द्वितीय के कृष्ण भक्ति का साहित्य सम्बन्धित है।

माधुर्य भाव की भक्ति के अन्तर्गत विरह का वर्णन किसी न किसी रूप में प्रत्येक सम्प्रदाय में मिलता है। बल्लभाचार्य 'अवतीर्ण रस' की कल्पना करते हैं। 'अवतीर्ण रस' से उनका तात्पर्य 'संयोग रस' अथवा 'संयोग मृगार' से है।

रामानुजाचार्य :—(सन् १०१७-११२७) इनका जन्म श्रीपरमबदूर में हुआ था। इन्हें योग का अवतार भी कहा गया है। रामानुज भी सम्प्रदाय के प्रथम आचार्य हैं। इन्होंने संकराचार्य के 'अद्वैत शब्द' का खण्डन किया है। इनके अनुसार ब्रह्म चैतन-अचेतन, सूक्ष्म और स्थूल सब में व्याप्त है। वह पुरुषोत्तम है संपूर्ण और सविशेष है। सबों पर अनुग्रह भाव से वह पालन रूप धारण करता है, पर व्युह, निम्न अन्तर्भावित और अचायीवतार। इनके अनुसार भक्ति ज्ञान से भेद्य है। भक्ति भक्ति से ही सम्भव है। जीव दास है, ब्रह्म स्वामी है। इनका दर्शन 'विशिष्टाद्वैत शब्द' के नाम से विख्यात है। जिसके अनुसार ब्रह्म चित्, अचित् और अविनाशी है। चित् (जीव) अचित् (हस्त) ब्रह्म-निर्मित है, ब्रह्म के समान है परन्तु ब्रह्म से भिन्न है। ब्रह्म सृष्टि का कर्ता है, उपादान कारण भी है। प्रथम पर चित् और अचित् ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। मयबाग्न के प्रति आत्म समर्पण भाव के प्रति इन्होंने बाह्य प्रकट किया है। इस समर्पण भाव को 'प्रपत्ति' कहते हैं। इनकी विशिष्ट रचनाएँ हैं—'ब्रह्म सूत्रों का श्रीभाष्य,' 'वैशान्तसार' 'वैशार्य सार,' और 'वैशान्त दीप'।

मध्वाचार्य —मध्वाचार्य का जन्म सन् १२१७ में हुआ था। इनकी मृत्यु १३१३ में मंगलोर के निकट पड़िणी उदीपी में हुई थी। इनके दर्शन को 'द्वैतवाद' कहा गया है, जिसके अनुसार ब्रह्म संपूर्ण और सविशेष है। जीव अनु है और मयबाग्न का श्रेष्ठ है। चित्-रूप संपूर्ण मयबाग्न स्वतंत्र पदार्थ है भक्ति के माध्यम से ही भक्ति सम्भव है। इनकी रचनाओं में 'ब्रह्म सूत्र भाष्य,' 'गीता भाष्य,' 'ब्रह्मसिद्धि भाष्य' तथा 'आनन्द तात्पर्य निर्णय' आदि प्रमुख हैं। मध्वाचार्य ने संकराचार्य के 'मायावाद' तथा 'अद्वैत शब्द' का खण्डन किया है। राधा और कृष्ण के युक्त रूप की कल्पना इनके यहाँ नहीं मिलती है। ये कृष्ण के बाह्य-रूप की उपासना के प्रति विस्वास प्रकट करते मिलते हैं। अपने सम्प्रदाय में ये बामु के अवतार माने जाते हैं।

विष्णु स्वामी — इस प्रकार की बारम्हा मिस्रिही है कि विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के प्रवर्तक विष्णु स्वामी संकराचार्य के पूर्व हुए थे । परन्तु संकराचार्य के दर्शन से मतभेद होने के कारण यह निष्कर्ष देने में संकोच नहीं होता कि इनका समय संकराचार्य के बाद आता है । इनके जन्म के नियम से सम्बन्धित निम्नलिखित सामग्री हमें उपलब्ध नहीं होती । यह अनुमान किया जाता है कि ये रामानुज और निम्बार्क के परम्परा और मध्वाचार्य के पूर्व भीजित थे । कठिपय विद्वानों ने इनका समय सन् १३३२ के आस-पास स्वीकार किया है । इनके सम्प्रदाय को यह सम्प्रदाय भी कहा गया है । इनके दर्शन को 'बुद्धादित्तवाद' कहा गया है । कृष्ण के साथ राधा की उपासना के प्रति भी ये जाग्रह प्रकट करते हैं । इनके अनुसार ईश्वर सन्निवशात्मक स्वयम् हैं वे अपनी ह्वायिनी सन्निध के द्वारा आस्तित्व हैं और माया उन्हीं के अधीन पड़ी है । विष्णु स्वामी को ब्रह्ममाचार्य का गुण भी कहा गया है । 'बुद्धादित्तवाद' दर्शन के प्रतिपादन के लिए बाबरायण-कृत 'ब्रह्मसूत्र का भाष्य' इनकी विशेष कृति है ।

श्री निम्बार्काचार्य :—डॉक्टर मन्नाडकर के अनुसार निम्बार्क का जन्म सन् १२६२ ई० में हुआ था । ये तेलुगु प्रदेश से आकर कृष्णमण्डप में बस गये थे । इस प्रकार की बारम्हा मिस्रिही है कि जयदेव निम्बार्क की सिष्य-परम्परा में आते हैं । इनके अनुसार जयस्या भेर के अनुसार जीमवह्म से मिल भी है और बमिन्न भी है । इस सिद्धांत को भेराभेर भी कहा गया है । कृष्ण परब्रह्म हैं वह तोप रहित हैं समस्त पद्वियों से उदित और कल्याण कर हैं । ब्रह्म अंसी है जीव अंश है । जीव बणु है, भक्तका है । भक्ति से ही मुक्ति सम्भव है । राधा यहाँ स्वकीया रूप में पड़ी है । 'ब्रह्मभेदार्त' तथा 'यर्म संहिता' के आधार पर राधा और कृष्ण के विवाह की भी कल्पना की गई है । निम्बार्क सूर्य के अवतार भी माने जाते हैं । 'विदाम्ब पारिजात सौरम' तथा 'ब्रह्मलोकी' इनके प्रधान ग्रन्थ हैं । इनका लिखा 'सविद्येय निर्विद्येय श्री कृष्ण स्तवराज' नामक ग्रन्थ भी मिलता है । इनके सम्प्रदाय को 'सनक सम्प्रदाय' या 'हंस सम्प्रदाय' भी कहते हैं ।

अनु सम्प्रदाय —रामानुजाचार्य मध्वाचार्य, विष्णु स्वामी और निम्बार्काचार्य द्वारा संस्थापित ब्रह्मचर्य वर्म के विविध रूपों की सामूहिक अभिव्यक्ति के लिए 'अनु सम्प्रदाय' का प्रयोग होता है । 'अनु सम्प्रदाय' के साथ ही ब्रह्म यह

विष्णु और सनकादिक आदि चार देवताओं को सम्मन्त्र किया जाता है। यद्यु-
सम्मन्त्र के साथ इन चार देवताओं के नामों के सम्मन्त्र करने का प्रथम संकेत
'पञ्चपुराण' में मिलता है—

सम्मन्त्राय विहीना ये मन्त्रास्ते निष्फला मताः।

अथ कसौ सविध्यन्ति चत्वारः सम्मन्त्राणि ।

यी कसु सः सनक वैष्णवा जिति पावता

चत्वारस्ते कसौ देवि सम्मन्त्राय प्रवर्तकाः इत्युप पुराण ।

यथा बह्मन सम्मन्त्राय सिद्धान्त और अथर्वन पृष्ठ १६ ।

वैष्णव सम्मन्त्राय के इन वाच्यों ने प्रस्थानत्रयी अर्थात् 'उपनिषद्,' 'गीता'
और 'ब्रह्म सूत्र' पर भाष्य लिखे हैं। इस प्रकार की चारणा प्रचलित मिलती है कि
भिन्न-भिन्न मायताओं को प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत करने की भावना से 'प्रस्थान
त्रयी' पर भाष्य प्रस्तुत करना आवश्यक अर्थ के रूप में स्वीकार किया गया। इन
वाच्यों के पूर्व संकराचार्य का 'प्रस्थान त्रयी' पर भाष्य मिलता है। रामानुजा
चार्य के भाष्य भी उपलब्ध होते हैं, परन्तु अन्य वाच्यों के 'प्रस्थान त्रयी' भाष्य
पर नहीं मिलते हैं। निम्बार्क का केवल 'ब्रह्मसूत्र' पर 'पारिजात सीरस' नामक
भाष्य उपलब्ध होता है। इस प्रकार 'प्रस्थान त्रयी' पर भाष्य लिखने की परम्परा
का निर्वाह इन समस्त वाच्यों में एक रूप में उपलब्ध नहीं होता है।

रामानन्द्य :—रामानन्द रामानुजाचार्य के 'श्री सम्मन्त्राय' के अन्तर्गत आते
हैं। इस सम्मन्त्राय को 'रामोपासना सम्मन्त्राय' भी कहते हैं। यद्यपि श्री सम्मन्त्राय
का स्पष्ट शास्त्रीय विधान नहीं मिलता परन्तु इसके प्रमुख तत्वों में त्रिपिण्डा
हैत सिद्धान्त अष्टाक्षर मंत्र और ब्राह्मचार्य सिद्धान्त प्रमुख हैं। रामानन्द ने भ्याम
के लिए लक्ष्मण और सीता से मुक्त राम के स्वरूप की प्रस्तावना की है। इन्होंने
वैकुण्ठ के स्वाम पर साकेत को परम धाम के रूप में स्वीकार किया है। इस प्रकार
रामानन्द राम को विष्णु के अवतार रूप की कल्पना करते हैं। रामानुजाचार्य
में कर्म काण्ड के प्रति आग्रह मिलता है, परन्तु रामानन्द में कर्मकाण्ड के विप-
रीत भक्ति-भावना की प्रभावता मिलती है। अतः इनमें सर्व साधारण के लिए
नित्य के स्वरूप का निर्धारण मिलता है।

श्री बल्लभाचार्य—श्री बल्लभाचार्य का जन्म कैन्नूर प्रदेश में संवत् १४३९ में हुआ था। इनके पिता विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के अनुयायी थे। बल्लभाचार्य वैष्णव के समझाएँगे थे। बल्लभ अष्टि के अवतार माने जाते हैं। आधुनिक दृष्टि से इनका सिद्धान्त सुदार्वीय भाव का है। कृष्ण को उन्होंने ब्रह्म माना है राधा उनकी स्त्री हैं, वैकुण्ठ उनकी कीर्तनाभूमि है। ब्रह्म मामा में भिन्न नहीं होता। ब्रह्म के तीन रूप हैं परब्रह्म, अक्षर ब्रह्म और अणु ब्रह्म। इन्हें आधिवैयर्थ्य आध्यात्मिक और आधिभौतिक भी कहा गया है। ब्रह्म अपनी सत्तिनी शक्ति द्वारा सत्, सत्तिनी शक्ति द्वारा चित् और ज्ञानिनी शक्ति द्वारा ज्ञान का अभिव्यक्ति करता है। बल्लभाचार्य के अनुसार जीव के तीन स्वस्व होते हैं। (१) पुष्टि जीव जो मयदान के अनुग्रह पर ही अवलम्बित है, नित्य सीता में प्रवेश पाते हैं। (२) मयीदा जीव जो वेद की विधियों का अनुसरण करते हैं। (३) प्रवाह जीव जो संसार के प्रवाह में पड़े सांसारिक सुखों की प्राप्ति में ही रूके रहते हैं। जीव मिथ्य हैं उनकी कर्त्यात् नहीं होती है। जीव अणु हैं, जीवात्मा सादा है। ब्रह्म अणु उत्पन्न नहीं होता। उसका केवल आधिभौतिक और विरोधान्न होता है। इनके सिद्धान्तों को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

(१) भक्ति के लिए मयदान का अनुग्रह (प्रीति) अनिवार्य है।

(२) भक्ति ही मुक्ति का एकमात्र साधन है।

(३) राधा कृष्ण की आत्म-शक्ति है।

(४) श्रीकृष्ण का आत्म-रूप ही उपास्य है। इसके साथ माधुर्य भाव से प्रेरित राधा कृष्ण का सुमेल रूप भी उपास्य है।

(५) शक्ति दो प्रकार की है—(१) मयीदा भक्ति (२) पुष्टि भक्ति। साधन-साधक्य भक्ति मयीदा भक्ति है और साधननिरोध भक्ति पुष्टि भक्ति है, जो मयदान के अनुग्रह पर ही आधारित है। अपनी सीता के विलास के लिए मयदान सृष्टि की रचना करता है।

(६) पुष्टि के चार स्वस्व हैं—(क) प्रवाह पुष्टि—अर्थात् संसार के मय ही भक्ति करना। (ख) मयीदा पुष्टि—संसार से अनाकर्षित रहकर कृष्ण का सुखदान करना। (ग) पुष्टि-पुष्टि—कृष्ण के अनुग्रह से प्राप्त भक्ति। (घ) मुष्टि पुष्टि केवल प्रेम-अनुग्रह के आधार पर कृष्ण का अनुग्रह प्राप्त करना।

बहुभाचार्य के प्रमुख ग्रन्थ हैं—(१) पूर्व मीमांसा भाष्य, (२) उत्तर मीमांसा या बह्वसुत्र भाष्य । यह अनुभाष्य के नाम से भी प्रसिद्ध है । इस ग्रन्थ में बहुभाचार्य ने शुद्धादित्यादि सिद्धान्त का स्वल्प विस्तार किया है । (३) धीमनुमायवत की मुख्य टीका और सुवाचिनी टीका । (४) सत्य दीप निबन्ध । 'अनु भाष्य' आचार्य बहुभाचार्य समाप्त न कर सका । अन्त के डेढ़ अध्याय की पूर्ति उनके पुत्र जिह्मक नाम ने की ।

श्रीकृष्ण चैतन्य —चैतन्य स्वामी के पूर्व गोडीन बेंगल धर्म के स्वल्प संस्थापन का प्रवास बड़ गोस्वामी द्वारा मिश्रता है । चैतन्य द्वारा इस भक्ति-धारा को विशेष प्रसार मिश्रता है । चैतन्य का जन्म सन् १४८२ में बंगाल में हुआ था और ईश्वरपुरी नामक बेंगल प्रान्त से ये सीतित हुए थे ।

इस प्रकार की भाष्या मिश्रता है कि चैतन्य से जिस भक्ति-धारा का प्रस्तुत होता है, वह भाष्य सम्प्रदाय की भक्ति भावना पर ही अवलम्बित है । परन्तु भाष्य की चिन्तन-धारा और चैतन्य की चिन्तन-धारा में अन्तर है । मध्वाचार्य के समान चैतन्य 'प्रम्यातन्त्री भाष्य' सिद्धान्त की ओर आकर्षित नहीं प्रतीत होते । भाष्य की वारणा है कि हरि ही सर्वोच्च तत्त्व हैं अर्थात् सत्य है अथवा का प्रेरक वास्तविक है । जीव हरि के अनुभूत हैं । हरि-मुख की अनुभूति ही मुक्ति है । अमला भक्ति ही मुक्ति का स्रोत सपाय है । वेद का अर्थ विष्णु है । आत्म के साक्ष्य प्रत्यक्ष प्रमाण और अनुमान हैं ।

चैतन्य भाष्यत को ही वेदान्त का भाष्य मानते हैं । बहुत सम्भव है इस कारण ही उनके नाम से 'प्रस्थानत्रयी' पर भाष्य नहीं मिश्रता है । परन्तु चैतन्य के अनुयायी के नाम से 'चैतन्य भाष्य' नामक रचना उपलब्ध होती है । चैतन्य के अनुयायी भी कृष्ण के स्वरूप और निर्गुण को स्वीकार करते हैं । कृष्ण ब्रह्म राम, आध्यात्म तत्त्व, महाकवि लीलात्मक, जीवा पुत्रोत्तम और माधुर्य-मण्डित हैं । मध्वाचार्य की भक्ति भावना में इस प्रकार के भाव उपलब्ध नहीं होते हैं । 'भागवत' में उपलब्ध 'एत पद्माध्यामी' भावना का स्वल्प भाष्य में उपलब्ध नहीं होता है । चैतन्य में 'रास' एक महत्वपूर्ण अंश है । चैतन्य के अनुयायी स्व जनात्मक और जीव गोस्वामी भक्ति-मार्ग का विवेचन रस-ध्यान के अनुसार करते हैं । बंगाल में पौड़ीय बेंगल भक्ति के स्वल्प का स्पष्ट विकास 'विद्या भूषण' के

‘मोक्षिन्ध भाष्य’ के पश्चात् ही हुआ समया है । रूप और सनातन मोस्वामी-कृत ‘मीलमणि’ और ‘हरि भक्ति रसामृत’ में सिद्धान्त निरूपण के प्रयत्न दृष्टिगोचर होते हैं । चैतन्य ने माधुर्य भाव की भक्ति के प्रति आस्था प्रकट की है ।

स्वामी हरिदास—हरिदासी सम्प्रदाय के प्रवर्तक बासबीर माने जाते हैं । इन्की मृत्यु के पश्चात् हरिदासपुर निवासी हरिदास इस सम्प्रदाय को एक नवीन रूप देने का प्रयत्न करते हैं । हरिदास के सम्प्रदाय को ‘सखी सम्प्रदाय’ कहा जाता है । छद्मी संस्थान नाम से इस दादा के एक स्वतन्त्ररूप का उल्लेख भी मिलता है । इस भक्ति चारण की मूल भावनायें इस प्रकार हैं—

(१) नित्य बिहारी घुमल मूर्ति का ध्यान ।

(२) रसिक के रूप में सखी भाव से राधा-रूप की उपासना । भागवत रसिक इस सम्प्रदाय का परिचय निम्नलिखित रूप में देते हैं—

बीर इस मिल होय नाम रूप मूल पहिरे ।

रसिक कहाने सोय, ज्यो बक छोड़ै सर्कस ।

दिया कहै सब कोय एक तुल पावक मिले ।

तमहि नसावै सोय वस्तु मिले भगवत रसिक ।

स्वामी हरिदास-कृत ‘किञ्चिदास’ नामक ग्रन्थ उपलब्ध होता है । इसमें सिद्धान्त-सम्बन्धी पर संछ्छीव हैं । इस प्रकार की भावना प्रचलित है कि हरिदास का सखी सम्प्रदाय निम्बार्क की चिन्तन-चारण पर आधारित है । परन्तु निम्बार्क सम्प्रदाय तथा हरिदासी सम्प्रदाय में ठात्थिक फेर है निम्बार्क में दर्शन की प्रधानता है और सखी सम्प्रदाय रस-भक्ति प्रधान सम्प्रदाय है ।

हित हरिचंदा और राधाबल्लमी सम्प्रदाय—गोस्वामी हित हरिचंदा राधाबल्लमी सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं । माधुर्य भाव की प्रेम स्थाणा भक्ति के परम स्वरूप का विकास इनकी भक्ति-प्रवृत्ति में उपलब्ध होता है । इस भक्ति-परा का सम्बन्ध बंगाल की गौड़ीय भक्ति से नहीं है । गौड़ीय भक्ति में विप्रसम्भ एक अनि-वार्य अंग माना गया है । यहाँ राधा के परकीया स्वरूप की संस्थापना मिलती है । परन्तु गोस्वामी हित हरिचंदा राधा के स्वकीया स्वरूप की वक्ष्यता करते हैं और अपनी भक्ति के सम्बन्ध में विप्रसम्भ तत्त्व को वे स्वीकार नहीं करते हैं । स्वकीया होते हुए भी राधा स्वतन्त्र है । राधा सुपानिधि’ नामक ग्रन्थ में अपने मत्त का

प्रतिपादन करते हुए वे स्पष्ट रूप में कहते हैं कि राजा ही परम ज्ञाता और ज्ञाता है। कृष्ण राजा के अनुपम हैं। 'राजा' के इस स्वरूप की ज्ञातना के लिए वे 'रहोसातना' छन्द का प्रयोग करते हैं।

हिन्दुओं के मुख्य मन्त्र कवि—जीवनी और राजगार्व

बल्लभाचार्य सन् १४६२ में जब में आए और उन्होंने मोक्षार्णव वर्ष पर भी नायकी की मूर्ति की संस्थापना की। बल्लभाचार्य का स्वामी निवास-स्थान प्रयाग के निकट बड़े नायक स्थान था। २८ वर्ष की आयु में उन्होंने काशी में अपना निवास किया था। सन् १५०६ में उन्होंने श्री नायकी की मूर्ति की संस्थापना गरीम मन्दिर में की। बल्लभाचार्य राजा में बल्लभाचार्य और चैतन्य का मिश्रण हुआ था। सन् १५१० में काशी में इनका स्वर्गवास हुआ।

विदुषन्ताय—आचार्य बल्लभ की मृत्यु के पश्चात् उनके छोटे पुत्र गोपीनाथ सम्प्रदाय के आचार्य नियुक्त हुए। उन्होंने नूतनता में पुष्टि मार्ग का प्रचार किया परन्तु इनका वैवाचिक कवि शीघ्र ही मर गया। अतः इनके छोटे भाई विदुषन्ताय सम्प्रदाय के आचार्य नियुक्त हुए। विदुषन्ताय का जन्म सन् १५१५ में हुआ था। सन् १५३८ में इनका निर्वाण पञ्च के आचार्य रूप में हुआ। विदुषन्ताय सन् १५६६ में जब आए और उन्होंने उसे अपना निवास-स्थान बनाया। सन् १५७२ में अकर ने मोक्ष की मूर्ति इन्हें उपहार-रूप में दी। इसकी मृत्यु सन् १५८५ में हुई। विदुषन्ताय ने अपने पिता के कल्पित छन्दों की टीकाओं लिखीं जिसमें 'अनु भाष्य तथा 'श्री बुद्धिमती' की टीकाएँ विशेष महत्वपूर्ण हैं। इनके प्रमुख ग्रन्थों में 'विदुषन्ताय मन्त्रनिर्णय' और 'शुद्धार रस मन्त्र' का कि प्रसिद्ध छन्दों हैं। उन्होंने अपने सम्प्रदाय का संयोजन कवि सदाक रूप में किया और इसका प्रचार कवि अत्यन्त रूप में किया। उन्होंने श्रीनायकी के मन्दिर में 'राजा' की व्यवस्था की तथा सम्प्रदाय के प्रचार के उद्देश्य में उन्होंने साहित्य और संगीत के विकास में पण्डित योगदान दिया। उन्होंने अपने सम्प्रदाय के अन्तर्गत अष्टाचार्य की संस्थापना की। अष्टाचार्य की संस्थापना में आचार्य महाम प्रसिद्ध पुष्टि मार्ग को मूल अनुप्रेषण विद्यमान है। काष्ठ-रूप की दृष्टि से बल्लभ इतिहास-रूप से अष्टाचार्य के कविता का विशेष रूप प्रकार किया जाता है—कृष्णराज, मृदुल पद्मानभवा, कृष्ण राज, मन्त्रराज, अनुप्रेषण राज शीत स्वामी और योगिन स्वामी। इनमें प्रथम चार बल्लभाचार्य के पित्र्य से, और चैतन्य चार विदुषन्ताय के द्विप्य से।

गोस्वामी गोकुल नाथ—(सन् १५६२-१५८०) गोकुल नाथ विदुषन्ताय के चौथे पुत्र थे। महामनु बल्लभाचार्य की 'बीराधी वीरवती की राणी' तथा विदुष-

नाम की 'बो सो बाबन बैष्णवन की बाती' मौखिक रूप से भक्तों के मध्य प्रचलित थी। योक्लुत नाब ने इन बातोंमें का सम्पादन किया था।

गोस्वामी हरिराय — (सन् १३८०-१७१३ ई०), योक्लुत नाब के परभाव बल्लभ सम्प्रदाय में गोस्वामी हरिराय का नाम विद्यमान थावर के साथ दिया जाता है। 'बौरासी' तथा 'बो सो बाबन बैष्णवन की बाती' पर इन्होंने 'भाव प्रकाश' नाम से टीकायें लिखी हैं।

कुम्भनदास — कुम्भन दास का समय अनुमान से सन् १४६८-१५८२ ई० के मध्य माना जाता है। अष्टछाप के कवियों में कुम्भनदास ने सबसे पहले व्याख्यान बल्लभ से बीसा की थी। ये मोक्षार्णव पर्यंत के निबन्धी से और बाति के श्रवण से। इस प्रकार की किंवदन्ती है कि मान सिंह के अपूर्ण शान-संग्रहण का इन्होंने विस्तार कर दिया था। भक्तों को कहा सीकरी सौ काम' बाबा पर इन्हीं के नाम से प्रसिद्ध है। कुम्भन दास के पदों में बल्लभ सम्प्रदाय की साम्प्रदायिक भावना पूर्ण रूप में उपलब्ध हो जाती है। इनके पद्यों 'शानकीला', 'रास', 'वीरमात्मिका', 'मोक्षार्णव पूजा', 'बल्लभ', 'वमार' बाति शीर्षकों में विभक्त हैं। छीला-सम्बन्धी पदों का विभाजन 'मात्तन बोरी', 'मुरली हरण', 'स्वामिनी स्वयं वर्णन', 'मुद्रक स्वयं वर्णन', 'गुणान्त', 'सन्निता' और 'विरह' बाति शीर्षकों में विभक्त हैं।

सूरदास — सूरदास के जन्म-समय और जन्म-स्थान के विषय में जो सामग्रियाँ और विचार अभी तक उपलब्ध हैं उनमें एक बपता नहीं है। अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अष्ट छाप और बल्लभ सम्प्रदाय' में डॉक्टर बीनवयास गुप्त ने इस प्रकार का निर्णय किया है कि सूरदास का जन्म विष्णु के निकट मुकुण्डीय जिले के अन्तर्गत सीही नामक ग्राम में हुआ था। बाती साहित्य के अन्तर्गत सूरदास की बीबनी से सम्बन्धित बातोंमें 'बौरासी बैष्णवन की बाती' का विशेष महत्व है। यह ग्रन्थ दो रूपोंमें आज उपलब्ध है। प्रथम, मूल 'बौरासी बैष्णवन की बाती' द्वितीय गोस्वामी हरिराय द्वारा 'भाव प्रकाश की टीका' सहित 'बौरासी बैष्णवन की बाती'। इनमें प्रथम को अधिक प्रामाणिक माना जाता है। हरिराय ने 'भाव प्रकाशन' में छोट-बीबन में प्रचलित किंवदन्तियों का भी योग दिया है। अतः मूल बाती में सूरदास से सम्बन्धित जो सूचनायें महीं मिलती हैं उनकी पूर्ति 'भाव प्रकाशन' से हो जाती है। 'बल्लभ सम्प्रदाय' में इस प्रकार का विश्वास मिथ्या है कि सूरदास बल्लभाचार्य से कम रित छोटे थे। बल्लभाचार्य का जन्म बैसावमुख १०, संवत् १३३३ (सन् १४७८) को हुआ था। अतः इस कारण के अनुसार सूरदास का जन्म बैसाव मुख ३ संवत् १३३३ (सन् १४७८) में हुआ था। श्री हरिराय द्वारा 'भाव प्रकाश' से भी इस कारण का समर्थन होता है। 'भाव प्रकाश बौरासी बैष्णवन की बाती' के अनुसार सूरदास अपने जन्म-स्थान सीही

से चार मील के अन्तर पर अपने कुछ दिव्यों के साथ सन्नास-जीवन व्यतीत कर रहे थे। मूक 'चौराही बेज्जम की बाती' के अनुसार अपने दिव्यों के साथ मूर-बात जाबा और मयुर के मध्य स्थित मऊनाट नामक स्थान पर सन्नास जीवन व्यतीत कर रहे थे। सूरदास और बल्लभाचार्य का मिलन मऊनाट नामक स्थान पर ही हुआ था। इसका लक्ष्य इस प्रकार लिखा है। "सो मऊनाट ऊपर सूरदास एते सब कितनेक दिन पाद्री श्री आचार्य श्री महाप्रभुन बापु बड़ेन तें सब कैं पकार्य होते × × × सो बानी बाप के सूरदास को सबर करी को सूरदासही बाप यहाँ थी बल्लभाचार्यही पकारे हैं। सो कितने कापी तें तथा दक्षिण में माबाबाद कछन किमी है और अति माम स्थापन किमी है।" सूर ने आचार्य के दर्शन किये। आचार्य ने सूरदास से कहा 'ओ सूर ! कछु भयवत् बस बरनन करो।' सूरदास ने विनय के दो पद सुनाये। विनय के पद पर आचार्य ने कहा 'ओ सूर ! के ऐसे विनिवात काहे को हैं। गो तासों कछु भयवत् लीला बरनन करि।' इस पर सूर दास ने निवेदन किया 'मैं कछु भयवत् लीला समुपन नहीं हूँ। बल्लभाचार्य ने कहा 'सूर श्री बल्लभाजी में स्नान करि जाओ ओ ह्य

१ (क) हरि, हौं सब पठितन की नायक ।

को करि सब बराबरि मेरी और नहीं कोउ नायक ।
 ओ प्रभु ब्रजामित की दीनही, सो पाटी लिखि पाठे ।
 तो विस्वास होइ मन मेरी औरो पठित बुलाऊँ ।
 बचन बाहूँ ते बलौ बौलि रे, पाठे मुख बलि मारी ।
 यह मारन बोलुनो बलाऊँ ती पुरी धोमारी ।
 यह सुनि आईं तहाँ तें विमिटें जाइ होइ एक ठौर ।
 अब के तो बापुन ते आपी बेर बहुत की और ।
 होइ होइ पतहि मावने किम् पाप जरि पेट ।
 ते सब पठित पाम-तर काणें बड़े हमारी भेंट ।
 बहुत बरोसी बामि गुम्हारो, अब कीन्हें मरि माँझी ।
 सीखे बेसि निबेरि छुटही, सूर पठित की बाँझी ।
 केरि दूसरो पब मायी । सो पर—
 प्रभु, हौं सब पठितन की दीनो ।
 और पठित सब विबल चारि के हौं ती बनवत हीनो ।
 बनिब ब्रजामित पनिका ठारी, और पुढमा ही को ।
 मोहि छौड़ि दुम और बचारे मिने सूर सबों की को ?
 कोउ न समरन अब करिबे को धरिब कहत हौं लोको ।
 गरिकत लाव सूर पठितनि मैं, मोहूँ तें को नीको ।

समुझाय देंगे।' सूरदास स्नान कर आए। आचार्य ने सूर को 'नाम सुनाया' और इसके पश्चात् 'समर्पन' करवाया। आचार्य ने 'रसम स्कन्ध' की अनुक्रमिका की भी उसे सुनाया। सूर को लेकर आचार्य बोजधन पर भीनापत्री के निष्ठ पहुँचे। वहाँ आचार्य की अनुमोक्षा से सूरदास ने कीर्तन-स्वल्प 'अब मैं गाव्यो बहुल मोपाक', 'कहाँ री, जहि चल सरोवर, वहाँ न प्रेम बियोय' 'प्रब मयी महिर के पुठ अब यह बात सुनी, और सोमित कर मक्नीठ लिये बाधि परो की रचना की।

'बीरासी बेष्मन न की बातों' में इसका उल्लेख नहीं मिलता कि सूर दास के जीवन में यह कटना कब घटित हुई। चिट्ठकमाप के छठे पुत्र मधुनाथजी ने संवत् १६१५ में 'जी बल्लभ विम्विजय' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इस ग्रन्थ के अनुसार बल्लभाचार्य अपने विवाह और सतीय प्रवर्तिना के पश्चात् अठेक से अब आए और गऊवाट उत्तरे और उन्होंने सूरदास सारस्वत पर अनुग्रह किया। बल्लभाचार्य ने तीसरी प्रवर्तिना संवत् १५९७ में समाप्त की थी। उनका विवाह संवत् १५९०-९१ में हुआ था। इस प्रकार सूरदास बल्लभसम्प्रदाय में संवत् १५९७ में दीक्षित हुए लगते हैं। उस समय सूरदास की अवस्था लगभग ३२ वर्ष की थी।

सूरदास की बीरनी पर विचार करते समय विचारकों का ध्यान इस प्रकार की विज्ञासा प्रष्ट करता रहा है कि सूरदास की वांछि क्या थी। मूल 'बीरासी बेष्मन की बातों' में सूरदास की वांछि का उल्लेख नहीं मिलता है। परन्तु हरिराय-कृत 'भाव प्रकाश' में सूरदास के सारस्वत ब्राह्मण होने का उल्लेख मिलता है 'अब भी आचार्यजी महाप्रभु के सेवक सूरदासजी सारस्वत ब्राह्मण, दिल्ली के पास सीहो मौम हैं वहाँ रहते तिनकी बातों को मान कहते हैं'। हरिराय द्वारा प्रस्तावित सूरदास की इस बातों पर विस्वास नहीं किया जाता है। हरिराय ने 'भाव प्रकाशन' की रचना संवत् १७५२ में की थी। इस प्रकार सूर की मृत्यु के दो बरों पश्चात् की इस दृष्टि में लोक-प्रभुत्वियों का भी आचार ग्रहण किया गया है। इस सम्पर्क में इस प्रकार की भावना व्यक्त की गई है कि सारस्वत ब्राह्मण कोई अन्य सूरदास से और काश्मिर से इनका व्यक्तित्व हमारे सूरदास के व्यक्तित्व में समीकृत कर लिया गया। (देखिए 'सूरदास पु० सात' के पृष्ठ ४०-४१)

वनी)। परन्तु इस प्रकार की कल्पना के लिए किसी प्रकार का स्पष्ट प्रमाण नहीं उपलब्ध किया गया है। सुरदास के नाम से प्रचलित 'साहित्य सखी' का ११८ पौ पत्र भी इस विवेचना के सम्बन्ध में प्रस्तुत किया जाता है। उससे कुछ अर्थ यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं—

प्रथम ही शब्द बताते हैं प्रकट अद्भुत रूप
 लहराव बिचारि लहरा राखु नाम अनुप
 × × ×
 पार पायन सुरज के किनु बहिन अस्तुति कीन।
 तामु बंध प्रसंग में भी चम्प चार लीन।
 × × ×
 मयो लखो नाम सुरज बंध मंद निकाम।
 × × ×
 रही सुरजचम्प हपते हीन भर भर धोक।
 × × ×
 परी कूज पुकार काहू सुनी ना संसार।
 छावए दिन बाह महुपति कियो जाय उचार
 नाम राखे मोर सुरजदास सुर सुखाम।
 × × ×
 बिष प्रप कपाठ को है भाव पुर निकाम।
 सुर हैं नंदन बू को लियो मोल मुकाम।

इसके अनुसार सुरदास अन्धबोवाई के बंधन और लहरा भट्ट थे। वस्तु निश्चित यह है कि यह पत्र सर्वप्रथम सरदार कवि द्वारा रचित 'साहित्य सखी' की टीका में मिलता है। और वास्तविकता यह समझी है कि सुरदास कवि ने इस पत्र की रचना स्वयं ही की थी। सरदार कवि के पूर्व इस रचना का उल्लेख किसी सम्बन्ध में नहीं मिलता। कृष्ण-बन्ध-सम्बन्धी पदों में यम-तब 'काहो' और 'जया' पद्यों के प्रयोग भी मिलते हैं।

पुनः 'बोधाधी बाणों' में सुरदास के माता पिता का उल्लेख नहीं मिलता। 'भाव प्रकाश' के अनुसार लखना ने सीही ग्राम के एक निर्धन ब्राह्मण के घर

कर्म किया था और सूरदास अपने पिता की चौबी सम्पत्ति थे। इसके अतिरिक्त यहाँ भी अन्य विशेष उल्लेखनीय सूचना नहीं मिलती है। सूरदास के जन्म के पर्वों से उनके जीवन के विविष्ट सम्बन्धों का परिचय नहीं मिलता है। इन पर्वों में कवि अपने को 'पतितन को टीका' वा 'पतितन को नायक' ही कहता है। इन पर्वों में एक जगह हृष्य के रोग्य भाव की अनिव्यक्ति है। इससे कवि की वांछि या उसके कर्म से सम्बन्धित निर्धन नहीं किया जा सकता है। सूरदास को साम्प्रत्य जीवन का सौभाग्य सम्मिलित नहीं मिला था। लोक-जीवन में यह विश्वास प्रचलित रहा है कि सूरदास किसी कर्मवती पर आकर्षित हुए थे। इसे अपराध मानकर इन्होंने अपने नेत्रों को लुप्त कर दिया था। वास्तविकता यह है कि यह घटना किसी मदनमोहन सूरदास जबदा ब्रह्मचर्यव्रत सूरदास के जीवन की है। परमार्थी काल में इस घटना को सूरदास के जीवन के साथ सम्बन्ध करने का प्रयत्न आग्रह मिलने लगता है। कवि के व्यक्तित्व के विश्लेषण में हृष्य आधुनिक मनोवैज्ञानिक प्रमाणी का आचार ग्रहण कर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कवि सूरदास का हृदय मारी के सम्पर्क की कोमलतम अनुभूतियों से परिष्कृत था। इनके काव्य में साम्प्रत्य प्रेम और स्त्री पुरुष के सम्बन्धों के सजीव चित्र मिलते हैं। स्त्रियों के बाह्य और आन्तरिक आकर्षणों का अत्यन्त नैसर्गिक विश्लेषण सूर के काव्य में उपलब्ध है। यही कारण है कि हम सूरदास के साम्प्रत्य जीवन की कल्पना जबदा मारी-वासिनि की कल्पना के लोभ का संवरण नहीं कर पाते हैं।

'चौराही वार्ता' में सूरदास और ब्रजवर के मिलन का भी उल्लेख मिलता है। परन्तु इस घटना की निश्चित तिथि या निश्चित संवत् का उल्लेख यहाँ नहीं दिया गया है। यह अनुमान दिया जाता है कि ब्रजवर और सूरदास का मिलन लगभग संवत् १६१९ में हुआ था (सूरदास डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा पृ० १)। 'आईन-ए-ब्रजवरी और 'मुन्शियात अमुन-कजल' में सूरदास की यहाँ एक यात्रा के रस में हुई है। यहाँ उनके पिता का नाम रामदास ग्रासेरी मोयन्दा (मयैया) कहा गया है। परन्तु यह ब्रजवरी अधिक स्पष्टीकरण की ओर आह्वान है। मुन्शियात के सूरदास और ब्रजवर के दरबार के सूरदास की स्वतन्त्र व्यक्ति थे।

‘गोसाईं चरित्र’ में बेबीसायब दास ने गोस्वामी तुलसी दास और सूरदास के मिलन का उल्लेख किया है। यह घटना सम्भवतः संवत् १६१६ की है। सूर दासने तुलसी दास को अपना सूरसागर भी लिखाया था, इसका उल्लेख गोसाईं चरित्र में मिलता है। यथा—

छोड़ूँ सों सोंस लने कामर विरि निग दास ।

सुनि एकांत प्रवेश बड़ जाए सूर मुदास ।

कवि सूर विद्याएत सामर को सुनि प्रेम क्या नट नायर को ।

इस वर्णन की प्रामाणिकता संदिग्ध है। नामा दास ने ‘भक्त मास’ में सूरदास का जो वर्णन किया है उससे उनकी जीवनी का स्पष्टीकरण नहीं हो पाता। उनके विवरण से केवल इतना ही परिचय मिलता है कि सूरदास की काव्य प्रतिभा अति उच्च कोटि की थी। इससे सूरदास के कवि-रस का परिचय मिलता है।

सूर कवित सुन कौन कवि को नहिँ सिर बस्य करे ।

उक्ति, बोध अनुप्रास बरन बस्यति अति भारी ।

बन्ध प्रीति निर्बाहु बर्य यमुमुख तुक भारी ।

प्रतिबिम्बित विवि दृष्टि हुँय हरि सीता भासी ।

अनम करय गुन कम सने रखता परकासी ।

विमल बुद्धि पूज और की जो बहु सुम अकनति बरै ।

सूर कवित सुन कौन कवि को नहिँ सिर बस्य करै ।

सूरदास मन्त्र थे। परन्तु वे बन्ध्यान्त्र थे। जयदादा दास को मन्त्रे हुए, इस का निर्बंध भी सम्भावित नहीं लगता है। मूक ‘बीपासी बाती’ में सूरदास के बन्धा बन्ध होने का वर्णन नहीं मिलता है। परन्तु गोस्वामी हरिदास ने ‘माधवकाव्य’ में सूरदास के बन्धाव होने का उल्लेख किया है ‘सो सूरदास के बन्धाव ही सो नेत्र नाहीं हैं, और नेत्रन को आकार योका कसु नाहीं हैं अरर मीह मास हैं।’ इस प्रकार उन्होंने सूरदास को निर्बिबाध रूप से बन्धाव्य बतलाया है। सूरदास का संकल्प निर्बिबाध है परन्तु वे कब मन्त्रे हुए इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है।^१

१. देखिए ‘सूर निर्बंध’ पृष्ठ ६१ ‘अष्ट छाप परिचय’-पृ० १२२ प्रमु-
ख्यात पीठक ।

विद्वानों का यह भी कहना है कि बल्लभाचार्य से मिलन के समय सूरदास बहुत हीन नहीं थे । इस निर्णय के लिए यह आधार ग्रहण किया जाता है कि 'सूरदास' ने बल्लभाचार्य का 'दर्शन' किया था । सूरदास के नोकुस और श्री गान्धी के दर्शन के भी उल्लेख मिलते हैं । मृत्यु के पूर्व सूरदास ने विट्ठलनाथ के दर्शन की अभिलाषा व्यक्त की थी । परन्तु 'दर्शन' स्वयं के बोधार्थ से हम स्पष्ट निर्णय नहीं ले सकते । 'दर्शन' एक व्यापक अर्थ-पूर्ण शब्द है । अपने आसौख्य स्वर्ग में दर्शन को 'मानस-दर्शन' के रूप में ही ग्रहण करना अधिक संभव होगा ।

'गोरासी वैष्णव की बातों' के अनुसार सूरदास की मृत्यु पारसोली ग्राम में मोस्वामी विट्ठलनाथ के सम्मुख हुई थी । हरिराम ने 'भाव प्रकाश' में भी इस घटना का वर्णन किया है—'सो तब सूरदासजी अपने मन में यह विचार कर के परासोली जाये + + + तब श्री गोसाईंजी आप जाये जो भगवत इच्छा सूरदासजी को बुझाये की गई है । + × सो तब श्री गोसाईंजी आप श्री मुक्त सो सगरे वैष्णव सो यह आज्ञा किए - जो पुष्टि मारग को बहाब' बात है सो जाकों कहु सैनो होय सो केत और जहाँ जायके सूरदास जी को देखो । इस प्रकार की स्पष्ट सूचना मिलती है कि विट्ठलनाथ के सम्पर्क में सूरदास संवत् १६३४ वि० तक रहे । विट्ठलनाथ की मृत्यु संवत् १६४२ में हुई । अतः सूरदास की मृत्यु संवत् १६३३ के पश्चात् और १६४२ के पूर्व ही हुई होगी । विचारकों की यह धारणा है कि सूरदास की मृत्यु संवत् १६४० वि० में हुई होगी । इस प्रकार सूरदास की आयु सी वर्ष से कुछ अधिक थी । सम्प्रदाय में प्रवेश करने के ७८ वर्ष और बल्लभाचार्य के निधन के ३३ वर्ष पश्चात् (बल्लभाचार्य का निधन संवत् १३८७ ई) सूरदास का देहावसान हुआ ।

सूरदास की जीवनी से सम्बन्धित समस्त उपलब्ध सामग्रियों से जो निष्कर्ष उत्पन्न होते हैं, उन्हें इस रूप में रत्न सकते हैं—

[क] सूरदास और बल्लभाचार्य का मिलन एक बाट पर हुआ था और वह मिलन संवत् १३६१ अथवा उसके अल्प समय बाद ही हुआ होगा ।

[ख] गोस्वामी विट्ठलनाथ के जीवन काल में ही सूरदास की मृत्यु हुई होगी । यह घटना संवत् १६३३ १६४१ के मध्य किसी समय घनी होगी । सूरदास के

निधन के समय बिट्ठलनाथ के अतिरिक्त पुत्रनुवदान कुंभन दास, गोविन्द रानी और रामदास तबमान थे ।

[८] सूरदास अपने थे, परन्तु वे अन्त्याय थे, इस विश्वास का पंथन नहीं हो पाया है । सूरदास यादक और आधु कवि थे । वे आरम्भ में वास्य-रोति से भक्ति करते थे । वत्सभाचार्य के सम्पर्क से कृष्ण के वास्य-रस की भक्ति उनमें स्फूर्ति हुई । बिट्ठलनाथ के सम्पर्क से वे राधा-कृष्ण की मूल्य मूर्ति के उपासक हो गए । [९] सूरदास ने भायवत् के द्वारद स्कन्धों पर पर-रचना की थी, जो काम रस से 'मुर सावर' के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

अन्तः साध्य से सूरदास की ओवनी निषीर्ण में कोई छहामता नहीं मिलती और बाह्य साधनों पर ही हुए अवलम्बित रहता पड़ता है । लोक-जीवन सबैष से मुर के पयो के प्रति आकर्षित रहा है । इसका परिणव नीचे दिये दोहे से सिद्ध जाता है—

'मुर' मुर 'कुन्सी' छपी उकुण केसवदास ।

अब के कवि लघोय सम बहें वई करय प्रकास ।

तान तैन के नाम से प्रसिद्ध इस दोहे से भी सूरदास के काव्य की व्यापकता तथा उसकी लोक प्रसिद्धि का परिणव सिद्ध जाता है—

किन्ही मुर को घर कम्बो, किन्ही मुर की पीर ।

किन्ही मुर को पर कम्बो तन मन बुनव लगीर ।

सूरदास की रचनाएँ—यहाकहि सूरदास निम्नलिखित काव्य-कृतियों के रचयिता माने जाते हैं—

(१) मुर सामर (२) मुरसारानली (३) छाहिए कदुरी (४) काणवठ भापा (५) बधम स्कन्ध भापा (६) मुर सामर सार (७) मुर रामाबन (८) मान लीला (९) राधा रस कैसि कौमुक (१०) गोवर्धन लीला (११) बाल लीला, (१२) भैरव बीठ (१३) नावलीला (१४) व्याहृको, (१५) प्राण प्यारी (१६) इष्ट मुर के पर (१७) मुर कलक (१८) मुर साडी (१९) मुर पन्हीसी (२०) सेवा कल (२१) सूरदास के निधन के पर (२२) हरिबंश टीका (संस्कृत) (२३) एकावली म्हात्म्य नाम वयवली या वल वयव (२४) राम नाम ।

इन कृतियों में से सभी सूर दास की है, इस कथन पर विश्वास नहीं होता है। ये रचनायें एक से अधिक सूरदास की हैं। अष्ट छाप के सूरदास के अतिरिक्त मायक सूरदास रामानन्दी सूरदास संकेत निवासी सूरदास, बनारस निवासी सूरदास और लखनऊ निवासी सूरदास (नर दमन के कवि) नामक व्यक्तियों की रचनायें उपलब्ध होती हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों ने इन रचनाकारों के स्वतन्त्र स्वत्वों के अध्ययन के बिना ही इन्हें अष्ट छाप के सूर दास की रचनाओं के रूप में स्वीकार कर लिया है। सूरदास के नाम से प्रचलित विविध कृतियों पर ही यहाँ विचार किया जा रहा है।

सूरसागर—पदों की संख्या की दृष्टि से सूरसागर की विभिन्न प्रतियों में एक कम्पता नहीं मिलती है। परन्तु इस प्रकार की चारणा विश्वास पा गई है कि सूरदास ने सवा साठ पदों की रचना की है। 'सूर सागर' की रचना 'माणव्य के द्वावस स्कन्धों के आचार पर हुई लगती है। इसकी ओर सूरदास ने संकेत भी किया है—

धी मुख चारि स्मोक बए बह्या को समुझाइ ।
बहु नारद सो कहै नारद व्यास मुनाई ।
व्यास कहै मुकुन्द सो द्वावस स्कन्ध बनाइ ।
सूरदास सोई पद मापा करि नाइ । स्कन्ध १, पद २२५।

'सूर सागर' की उपलब्ध प्रतियों के दो रूप मिलते हैं। प्रथम रूप उन प्रतियों का है, जिसका विभाजन द्वावस स्कन्धों में हुआ है। द्वितीय रूप उन प्रतियों का है, जिसका विभाजन स्कन्धों में नहीं हुआ है। प्रथम को द्वावसस्कन्धात्मक रूप और द्वितीय को संग्रहात्मक रूप कहा जा सकता है। वास्तविकता यह प्रतीत होती है कि अपने आदि या मूल रूप में यह एक संग्रहात्मक ग्रन्थ रहा है। इसे स्कन्धों में विभाजित करने का प्रयास बहुत बाद में किया गया है। 'सूरसागर' में उपलब्ध पदों के विषय विधान और भाषा-रूप में एक कम्पता नहीं मिलती है। इससे यह संकेत मिलता है कि सूरदास के मूल पदों के साथ अन्य कवियों के पद समय-समय पर सम्मिश्रित होते रहे हैं, 'सूरसागर' के पदों के दो रूप मिलते हैं। एक रूप उन पदों का है जिसमें पदों का आकार सप्त है। ये पद पूर्णतः सुलभ हैं। दूसरा

रूप उन पदों का है जो आकार में बड़े हैं। इन पदों में अन्त-अंश है और वे वर्णनात्मक हैं।

इस प्रकार की भी बाराबा श्रुति की गई है कि 'सूर सागर' के पद तीन आयामों में विभक्त हुए हैं। प्रथम आयाम के अन्तर्गत वे पद आते हैं जिनकी रचना सूरदास ने बल्कमाचार्य की शरण में आने के पूर्व की थी अर्थात् संवत् १५६७ के पूर्व रहे हुए पद। इन पदों में अधिकतर पद किन्तु-सम्बन्धी हैं। द्वितीय आयाम के अन्तर्गत वे पद आते हैं, जिनकी रचना सूरदास ने बल्कमाचार्य के सम्पर्क में की थी। इस सन्दर्भ में वे पद आते हैं जिन्हें जीकाविपक्षक पद कहते हैं। (१५६७-१५७७)। तृतीय आयाम के अन्तर्गत वे पद आते हैं जिनकी रचना बल्कमाचार्य की मृत्यु के पश्चात् सूरदास ने बिट्ठलदास के सम्पर्क में की थी।

'सूरसागर' दुर्गम और उत्तमार्थ, इन दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। आरम्भ में कवि संयोजन के पद प्रस्तुत करता है और कहता है कि निर्पुण ब्रह्म अनुभूतियों में नहीं जा सकता है। वह अज्ञान है। इस कारण ही कवि सपुत्र भीला-परमान कर रहा है। प्रथम स्कन्ध में कृष्ण-अन्य बर्णन, नामकरण वसन्तप्रसन्न, बाह-सुनि-बर्नन, बाह्यन चोरी पोतीहून और मोचरण आदि से सम्बन्धित पद हैं। इनके अतिरिक्त गुणना तुषारवर्त और पकटासुर-अथ इत्यादि से सम्बन्धित पद निम्नलिखित हैं। इन पदों एवं अलङ्कारों से सम्बन्धित पदों में कृष्ण की अलौकिक लीलाओं का वर्णन किया गया है। इन सरल पदों में कपोता के वात्सल्य भाव के उद्घाटन की प्रेरणा विद्यमान है। प्रत्येक के अनुसार जिन भिन्न पदों में अमिताया अस्तित्व पूर्व उत्साह, अमर्ष कोम मगनि रंका बिन्दा आदि भावों के सम्पर्क रूप मिलते हैं। इनके बाद राधा-कृष्ण के सीनर्ष निरूपण करने वाले पद हैं।

वात्सल्य के बाद सूरदास श्रुति के अति प्रथम रूप का उद्घाटन करते हैं। वसन्तस्कन्ध के दुर्गम को मुख्य संवेदना श्रुति-मूलक है। यहाँ भी कृष्ण के श्रुति-वर्णन से सम्बन्धित पद हैं। इनके अतिरिक्त मुरली-मृदुति, राधा-कृष्ण मिथन और-हृत्न रास वन्दनामाध्यायी भी कृष्ण विवाह, पोती-पोष बह-लीला रास-बाग लीला और राधा-भाग से सम्बन्धित पद हैं। और इन सब के पश्चात्

कृष्ण के मथुरा-गमन का वर्णन है। इसी सुन्दर में गोपी बिरह तथा भ्रमर गीत की योजना की गई है।

प्रेम-वर्णन के अन्तर्गत पूर्वराग संयोग और वियोग भावनाओं से सम्बन्धित पर विशेष महत्त्व के हैं। पूर्वराग में राधा-कृष्ण की प्रेम कीकायें वर्णित हैं। 'सुर सागर' में बिरह-वर्णन से सम्बन्धित दो विशेष स्थल हैं। (१) द्वाकूर के मथुरा-आगमन पर गोपियों की उद्विग्नता और कृष्ण के मथुरा-गमन पर उनकी बिरह व्यञ्जना से सम्बन्धित स्थल। (२) कम्ब के आगमन पर 'भ्रमर गीत' में गोपियों के बिरह-गुण-स्वस। इस प्रकार प्रवास-अवस्था का बिरह वर्णन भ्रमर गीत में मिलता है। बिरह की म्भारह अवस्थाओं—अनिसाया चिन्ता गुल-कणन स्मृति, उद्वेग, प्रकाश उन्माद व्याधि जड़ता मूर्छा और मरण से सम्बन्धित पर यहाँ स्पष्ट मिल जाते हैं। साथ ही नाथ असौष्ठव मस्मिता, सन्ताप पाण्डुता, कृशता, अरुचि, अप्रभु विचरता, तथा तन्मयता की भिन्न भिन्न स्थितियों को व्यक्त करने वाले पर भी यहाँ मिल जाते हैं।

सूरदास कुण्डेश में कृष्ण और गोपियों के मिलन की कल्पना भी करते हैं। यह सूरदास की मौलिक उद्भावना है। यह उद्भावना एक विशेष प्रयोजन से की गई है। इस प्रसंग के माध्यम से कवि सम्भवत राधा-भाव की अभिमतता की ओर संकेत करता है।

'सुर सागर' के उत्तरार्ध की कथा में बरासंग के द्वारका आगमन के पर हैं, प्रद्युम्न-अगम, बायासुर-वध उत्पमामा विवाह बीमासुर-वध सोनह सहस्र कुमारियों का उद्धार बाण-वध उपा बहुवृद्ध विवाह, बलबल का वध आगमन बलबल का विहार विवास नारद-बोह तथा बरासंग-वध आदि सुन्दर क्रम से नियोजित हैं।

कुण्डेश में कृष्ण, दलिवली राधा तथा यशोदा के परस्पर मिलन के सुन्दर में देवरी के ६ पुत्रों के उद्धार की कथा भी वर्णित है। पुत्र वेर कृष्ण की स्तुति करते हैं। मुमडा-इरण अर्जुन-मुमडा-विवाह, बकासुर-वध तथा भृगु-परीक्षा आदि से सम्बन्धित आख्यानों के पर भी यहाँ संरक्षित हैं।

सूरसाराबली — 'सूर माराबली' को 'सुर सागर' की भूमिका कहा जाया है। इस कृति में भाष्य की कथा अति संक्षेप में वर्णित है। कतिपय विचारक

इसे सूरदास की रचना नहीं मानते हैं। इन विचारकों में डॉ० जनेश्वर वर्मा का नाम विशेष रूप से उल्लेख करने योग्य है।^१ सूरदासरायणी में सूर दास तथा रामकृष्ण की कथा का मिलन है। इसकी कथा स्कन्धों में विस्तारित नहीं है। ब्रह्म सृष्टि का विस्तार करना चाहते हैं। ब्रह्म के छात्र ने प्रभु बोलने के लिए जब तार बोलें हैं। कवि स्वर्णमु मनु और धातुका का उल्लेख करता है। बाराह जब तार, कपिल जबतार, और सप्त द्वीप और नव लख के वर्णन के बाद कवि कायु-वर्णन करता है। हरि बसुरों का संहार करते हैं और देवों को राज्य देते हैं। धृति को कानु में बल्लभोक्त मिलता है विद्याधर, संघर्ष और अन्धरा कायु माते हैं। कवि रामा-वतार की कथा के साथ वात्सीकि-अवतार का वर्णन करता है। राम-कथा का संक्षेप प्रस्तुत कर कवि 'भागवत और 'सूरदास' के आधार पर कथाकारम्भ करता है। कवि राधा की बिछू-बीका का मान करता है। इनके अन्तिम भाग में कमलनी के प्रेम के उत्तर के रूप में जब शृङ्गारन राधा यथोक्त तथा राध सीताजी के वर्णन हैं। 'सूरदास' के दो स्कन्ध (अथवा अष्टाङ्क) के आरम्भ में यह रचना प्रकाशित है। इसमें ११०७ श्लोक हैं। उदाहरण—

बर बिप नेम सूर साराबलि उत्तर बलिष काठ ।
 मनबाँझित कल सुबही पावें मिटे कथम बँबाझ ।
 बीलैसुनै बई मन राखै लिखै परम कित नाम ।
 ताके ब्रह्म एतु हौ निधि निज आनन्द बनम निहाव ।
 सरस वीरवर सीसा पावै मुकड करम निज कावै ।
 बरैनाथ बन्धो छान में सूर बहुरि नहिं पावै ।

सूरदासरायणी ।

१ देखिए सूरदास—डॉ० जनेश्वर वर्मा, डॉ० बीम इवांस युक्त इसे सूरदास की रचना मानते हैं। अपनी नाम्यता के समर्थन में वे कहते हैं 'इस ग्रन्थ के आरम्भिक कथना का पर कुछ पाठ नेत्र से नहीं है जो सूरदास के आरम्भ में कथना के रूप में है। इस ग्रन्थ के अन्त विचार बहुमत-सम्प्रदायी विचारों से साम्य रखते हैं विष्णु कृष्ण-स्वात्म ह्यन-स्वात्म वर सूर दास में भी हुआ है जैसे कपिल, वासि, जनक, कलिदासी, जट घाव और बहुमत सम्प्रदाय-
 भाग १ पृष्ठ २७१।

साहित्य स्रहरी—साहित्य स्रहरी एक रीति-काव्य है, जिसकी रचना दृष्टि कूट के पदों में हुई है। इस कृति के पर कृष्ण-सीता से सम्बन्धित हैं। सूर सागर में कुछ दृष्टि कूट के पद मिलते हैं। सरदार कवि ने 'साहित्य स्रहरी' पर टीका की है। इस टीका से इस प्रकार की मायना बनती है कि 'साहित्य स्रहरी' के पर 'सूर सागर' से ही संकल्पित हैं। सूर-साहित्य पर विचार करने वाले जासो बकों ने इसी प्रकार का निर्णय किया है। परन्तु वस्तु स्थिति ऐसी नहीं है। 'साहित्य स्रहरी' में जो पर मिलते हैं, वे सूरसागर के पदों से मिले हैं। 'साहित्य स्रहरी' के रचना-काव्य का वर्णन कवि इस पर में करता है—

मुनि पुनि रसल के रस सेक ।

ब्रह्म योरीनंद को सिद्धि सुखल संवत पैक ।

मंद मंदन मास, जे से हीम त्रितिया बार—

मंदमंदन जनम ते हैं बान सुख मायार ।

त्रितिय रिच्छ, सुकर्म बोग विचार सूर मनीन ।

मंदमंदन बास द्वि साहित्य स्रहरी कौन ।

वर्षात् सम्यत् १६१७ मुखल सम्यत् के वैशाख मास की अथवा तृतीया मुखरायी बुधवार, कृत्तिका मंत्रन, सुकर्म बोग में सूरदास ने मनीन विचार के रूप साहित्य स्रहरी की रचना कृष्ण पदों के लिए की।^१ इस कृति में अष्टकार नायिका भेद, बाब भेद बाबि काव्यांशों का वर्णन किया गया है।^२ सवाहरन—
राधे कियो कौन गुमाव ।

पान्मसि बैरन विमूयित मुख्य गुन पित बाब ।

१ साहित्य स्रहरी—सम्पादक प्रमुखपाठ मीठल साहित्य संस्थान मयुरा १९६१ ।

२ वही पृष्ठ २ ।

३ हिन्दी में सूरदास की 'साहित्य स्रहरी' के पूर्व रीति काव्य के रूप में कृपा-राम इष्ट बोहा-सोछा में रचित द्वि तरंगिणी^३ है। यह नायिका भेद से सम्बन्धित ग्रन्थ है। कृपावाम कृष्ण द्वि तरंगिणी (संस्कृत १२६५ वि०)। सम्पादक मुपाकर पान्मेय, विनय भाण्डी धनपटे केम्बर्त नावपुर। इससे अतिरिक्त मोहनलाल मिश्र इष्ट 'शृंगार सागर' नामक रचना भी मिलती है (संस्कृत १६१६)।

मानसज्वासी सुधा गूह तें न निकसन पाव ।

रजनि भर गुन जानि इयि सुत बरन रिपु हित जाव ।

रजनिभर हित मन्त्र सो तन घरस बीपत जाव ।

सुरदास सुजात सुकिया अष्ट उपमा पाव ।

साहित्य सङ्गरी पद १।१।

सुरदास ने इस पर में चतुर 'स्वकीया नायिका' और 'पुनर्लोपमा अलंकार' का वर्णन किया है । (अष्ट उपमापूर्ण उपमा सुजात सुकीया स्वकीया) । इसी प्रकार अज्ञात यौवना नायिका और कुलोपमा अलंकार (२४) अन्तर्ध्व अलंकार और सुननी ज्ञात यौवना नायिका (१।०) परिणाम अलंकार और ज्येष्ठा कनिष्ठा नायिका (३।१६) रूपकातिष्ठयोक्ति अलंकार और मुद्रिता नायिका और अप्योप्य अलंकार और सांख्यिक जादयादि से पर हैं ।

नल दमन — दिल्ली साहित्य के इतिहास-लेखकों ने प्रायः एक स्वर से कहा है कि 'नल दमन' अष्ट छाप के सुरदास की रचना है । परन्तु 'नल दमन' के रचयिता एक अन्य सुरदास हैं जो लखनऊ के निवासी थे । 'नल दमन' प्रेमा कानक काव्य-परम्परा की कृति है । इसकी भाषा जबरन है । इसके कर्ता सुरदास ने अपना परिचय इस रूप में दिया है—

सुरदास निज नाऊँ बगान् । योवरजन दास पिता कर गावे ।

रंजु मोत माझिजे तासु । कलानूर पुरजन कर बासु ।

ठाठ हमार तहाँ सो जावा । पुरख रिधा कोऊ दिन जावा ।

नगर लखनऊ बड़ा सो बासु । बिचर ठौर बैकुंठ समानु ।

मेरो बानस यई ठा भयऊ । कलानूर कबहु नहि मयऊ ।

इस कृति में नल-दमनन्ती की कथा वर्णित है । यह ग्रन्थ कदम्बक छेडी में लिखा गया है । इसकी कथा सर्वों में विमल नहीं है । आरम्भ में परमात्मा की स्तुति की गई है । उस सामायिक शास्त्र साहजहाँ बाबसाह की प्रशंसा की गई है । इसके परचाठ गुरु और कवि परिचय दिया गया है । कवि यह स्वीकार करता है कि इस ग्रन्थ की कथा महा भारत से ली गई है ।

नल बिहि ठाऊ बंट मन मारै । इन्द्र बाय निकसे सँभारै ।

बेलि इन्द्र नल भा बडि बरा । बादर कौमु सीस कर बरा ।

इस रचना में श्रवणोत्सवों के बाद एक दोहा के विराम का क्रम निम्न है ।

परमानन्ददास :— 'बीरासी बेज्जन की बातों' के अनुसार परमानन्द का जन्म कनौज में हुआ था । 'बातों' से इनके माता पिता का परिचय नहीं प्राप्त होता है । 'बेज्जन की बातों' से इतनी सूचना मिलती है कि मकर स्नान के सम्बन्ध में परमानन्द प्रयाग पधारे थे । और इसी सम्बन्ध में अकेल पहुंचकर उन्होंने बल्लभाचार्य के भी दर्शन किए । आचार्यजी ने परमानन्द को सबबत-कीला-मान करने का आग्रह किया । परमानन्द ने उस समय जिस पर का मान किया उसकी स्मृतिना बिरहमूकक है । वह इस प्रकार है—

बिग की छाव बिग ही रही री ।
 बहुति दुपास बेपन नहि पाए बिसम्पति कुंज बही री ।
 एक दिन सो जु सखी इहि मारन बेकन जाति रही री ।
 प्रीति केनि बान मिस मोहन मेरी बौह नही री ।
 बिनु बैले सिनु बात कल्प भरि निरछा बगल रही री ।
 परमानन्द स्वामी बिनु बरसन नैनन गरी बही री ।

अष्ट छाप, कौंकरोली पृ० ७१ ।

इसके पश्चात् आचार्य जी ने बाल्मीकि के पर-मान का अनुरोध किया । परमानन्द ने इस सम्बन्ध में अपनी असमर्पता व्यक्त की । इसके पश्चात् आचार्य जी ने परमानन्द को अपने मार्ग में दीक्षित किया । 'बल्लभ दिग्बिजय' के अनुसार आचार्य जी ने संवत् १५७६ में जयदीन-यात्रा समाप्त की थी । इस यात्रा के अन्त में ही उन्होंने अकेल से परमानन्द को दीक्षित किया । परमानन्द ने बल्लभाचार्य के साथ प्रव्र की यात्रा की । मार्ग में अपने ग्राम में उन्होंने आचार्य का उत्कार किया और उनके सम्मान में इस पर का मान किया—

हरि तोरी लीला की मुपि भाबे,
 कमल नैन मन मोहिनी मूरति मन-जन बिभ बनाबे ।
 एक बार जाहि निरूप भया करि सो कैसे बिसरारबे ।
 मुख मुखकानि बंक बबलोकनि बात मनोहर भाबे ।
 बबहुँक निबड़ लिमिर आनिमिर बबहुँक रिफ सर गाबे ।
 बबहुँक संप्रय कबासि कबामि कहि संगहीन उठि भाबे ।
 बबहुँक नैन मूर्ति अमरवति मनि माला पहिराबे ।

परमानन्द प्रभु स्वाम ध्यान करि ऐसे बिरह गमावै ।

हरि तेरी सीसा की लुधि आवै ।

अष्टछाप पृ० ७८ ।

‘बार्ता’ में इस प्रकार का उल्लेख मिलता है कि बल्लभाचार्य इस पत्र से इतिवृत्त होकर तीन दिनों तक व्यान-मग्न रहे ।

बल्लभ सम्प्रदाय में प्रचलित विस्वास के अनुसार परमानन्द आचार्य बल्लभ से १५ वर्ष छोटे थे । इस प्रकार परमानन्द का जन्म संवत् १५२० में हुआ था । परमानन्द के निधन-काल के विषय में हमें कुछ बात नहीं है । परन्तु इस प्रकार का विश्वास मिलता है कि इनकी मृत्यु संवत् १६४० के अन्तर्गत हुई थी । (देखिए अष्ट छाप और बल्लभ सम्प्रदाय—प्रथम भाग पृ० २३०) । परमानन्द के पत्नी का संघर्ष ‘परमानन्द सागर’ के नाम से मिलता है । इन पदों का विभाजन इस प्रकार है—‘मयकाचरण’ ‘अन्त्याष्टमीकी बरवाई’ ‘मन्त्र महोत्सव’ ‘भी राधा लू की बरवाई’, ‘अमिसार’, ‘मयुरायमन’, ‘मयुरा प्रवेश’ ‘भोपिन के बिरह के पत्र’, ‘मगर पीठ’ इत्यादि । ‘परमानन्द सागर’ से कदाहरण स्वल्प एक पद यहाँ प्रस्तुत है—

मुनि राधा एक बात बली ।

तु जिन डरै रूनि न बियारी मेरे पाछे माड बली ।

यहाँ से बार्क मदन मोहन ने मैं देखी एक बंक बली ।

सचन मिटुंज कुमुमनि रचि मूतक आली बिटप लली ।

हरि की लुपा की मोहि मरोतो प्रेम बतुर चित करत बली ।

‘परमानन्द स्वामी’ को मिथिके मित्र उदै जैसे बँबल कली ।

परमानन्द सागर-अमिसार पृ० १४८।४९७ ।

कृष्णदास अधिकारी —कृष्णदास अधिकारी मुजरात प्रवेश के निवासी थे । इनका जन्म मुजरात में राजनगर के एक बिकटोग बौद्ध में हुआ था ।^१ हरिराम के ‘माव

१—परमानन्द सागर-सम्पादक डॉ० गोबर्धनदास शुक्ल भारत प्रकाशन मन्दिर लखीमपुर ।

२—अष्ट छाप । कोंकरोली पृ० ११० ।

प्रकाश' के अनुसार इनका जन्म कुंमबी पटेल-कुल में हुआ था। बाती के अनुसार ये शूद्र थे। 'भाव प्रकाश' से यह सूचना मिलती है कि कुल्य बास १३ वर्ष की अवस्था में घर का परिचय कर घर में जाये। उस समय वहाँ पीताम जी का गया मन्दिर निर्मित हो रहा था। 'बोर्द्धतनाथ' जी के प्राकट्य की बाती' के अनुसार मन्दिर का शिलान्यास संवत् १५६६ बैशाख शुक्ल ३ (अलग छुतीवा) को हुआ। 'बल्लभ विमिश्रण' में भी मन्दिर के शिलान्यास और निर्माण तथा मन्दिर प्रवेश के लिए संवत् १५६६ का ही उल्लेख मिलता है। इस प्रकार कुल्य बास अधिकारी का जन्म-संवत् १५२३ माना जा सकता है। श्रीकृष्ण बास अधिकारी की मृत्यु संवत् १९३१ १९३८ के मध्य मानी जाती है।

कुल्यबास की प्रामाणिक रचनाओं में उनके पर ही उपलब्ध होते हैं। इनके पर कीर्तन-संग्रहों में मिलते हैं जिसकी संख्या २४८ १७६ तक मानी जाती है। डॉ॰ बीनरयास मुत ने 'अमर बीत' 'रासपञ्चाध्यायी' (३१ छन्द) आदि कृषियों का उल्लेख किया है। प्रभुदयाल मीतल ने 'अमरबीत', 'प्रेम उत्पत्ति' 'मछमास की टीका' 'वेण्णवन बरम' 'प्रेम रस राशि' 'हिंडोरा कीला' आदि रचनाओं का उल्लेख किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'युगल मान चरित' 'अमर बीत' और 'प्रेम उत्पत्ति निरूपण आदि ग्रंथों का उल्लेख किया है। इनके कों की भाव भूमि राधाकृष्ण की मधुर सीतारों हैं। रामा-कृष्ण की युगल रसमय सीमा का गान घोषी-कृष्ण प्रेम और पूर्ण राग की भावनाओं के अनेक मधुर रूप इनके कों में उपलब्ध होते हैं। निम्नलिखित पद में प्रेम की पूर्ण राग अवस्था का वर्णन किया गया है—

देखि बीरों मारि नैन रंगीलो ।

के अन्ति सखी केरे पाद जागो जहाँ गोबरबन छेल छबीलो ।

रसमय रसिक रसिकनि मोहन रसमय बचन रसास रसीलो ।

मधुरम लाल लबल गुन मुन्दर मधुरम मति नभ मेह नबीलो ।

नय सिध सीब मुमगता सीबा, सहज मुमाह मुदेव मुठीलो ।

कृष्ण बास प्रभु रसिक मुहुट मनि मुगल अति रिपुदहन हठीलो ।

मन्द बास — 'मछमास' के अनुसार मन्दबास किसी रामपुर नामक ग्राम के निवासी थे। सम्भवत यह ग्राम गोरुल और महरा के मध्य अवस्थित था।

‘मठ मास’ के अनुसार मन्ददास मुकुट से । ‘दो सौ बावन बैष्णव की बातों’ के अनुसार वे एनौड़िया से । मूस मुसाई चरित’ के अनुसार वे काम्यकुम्भ से । परन्तु अधिकार्य मठों का आग्रह है कि ये सनातन ब्राह्मण से । मन्ददास के माता पिता से सम्बन्धित हमें कोई सूचना नहीं मिलती है । ‘दो सौ बावन बैष्णव की बातों’ के अनुसार मन्ददास घोस्वामी तुलसीदास के छोटे भाई से ।

मन्ददास के दीदा मूठ घोस्वामी बिठुलनाथ से । मन्ददास ने बिठुलनाथ से संवत् १६१६ वि० में दीदा ली थी । दीदा देने के उपरान्त वे कुछ दिनों तक सूरदास के सम्पर्क में रहे । इस प्रकार का विश्वास मिलता है कि सूरदास ने ‘साहित्य जहूरी की रचना मन्ददास के लिए की थी । मन्ददास दीदा देने के पश्चात् पुनः गृहस्थी की ओर आकर्षित हुए थे । और ‘दो सौ बावन बैष्णव की बातों’ से यह बात होता है कि बिठुलनाथ ने मन्ददास को संवत् १६२४ में पुनः दीक्षित किया था ।

दीदा देने के समय मन्ददास की आयु २५ या २६ वर्ष की मानी गई है । (जय छाप और बस्तर सम्प्रदाय पृ० २६१) । इस दृष्टि से इनाफा लगन-संवत् १५६० वि० है ।

‘दो सौ बावन बैष्णव की बातों’ के अनुसार मन्ददास की मृत्यु अकबर के सम्मुख हुई थी । अकबर की मृत्यु सं० १६६२ में हुई थी । बातों से इस प्रकार की सूचना मिलती है कि मन्ददास की मृत्यु घोस्वामी बिठुलनाथ के सम्मुख हुई थी । बिठुलनाथ की मृत्यु संवत् १६४२ में हुई, अतः मन्ददास की मृत्यु इसके कुछ पूर्व ही हुई होगी ।

डॉक्टर बीज बयाल गुप्त ने मन्ददास छिन्नित २८ ग्रन्थों की सूची दी है । देखिए, ‘जय छाप और बस्तर सम्प्रदाय’ प्रथम खण्ड पृ० १२४ । परन्तु इनमें निम्नलिखित ग्रन्थ ही प्रामाणिक माने गए हैं—

- | | |
|-------------------|--------------------|
| १. रघु मंजरी | ८. बिछु मंजरी |
| २. अनेकार्य मंजरी | ९. कप मंजरी |
| ३. मान मंजरी | १०. इन्दिनी मंजरी |
| ४. दशम स्कन्ध | ११. रास पंचाव्यासी |
| ५. अनाम सगाई | १२. मेहर गीत |

६ गोवर्धन लीला

१३ सिद्धान्त पंचाध्यायी

७ सुवामा चरित

१४ पद्मावती

इनमें से कतिपय रचनाओं के विषय में सन्देह प्रकट किया गया है। श्री उमाचंदकर सूक्त के अनुसार गोवर्धन लीला स्वतन्त्र रचना नहीं है। (मन्दरास भाग १ भूमिका पृ० २ २१) 'सुवामा चरित' की प्रामाणिकता पर सन्देह प्रकट किया गया है। पद्मावती की प्रामाणिकता पर सन्देह नहीं होता, परन्तु इसमें पदों की संख्या गिठनी की इसका निर्धारण सम्भव नहीं हो सका है। श्री उमाचंदकर जी ने मूल पाठ के रूप में केवल ३५ पदों का स्वीकार किया है। इस प्रकार विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों के अनुसार ३५ से लेकर ७०० पदों की संख्या का संसृष्ट मिलता है। डॉक्टर बीनयास मुस ने विषय के अनुसार मन्दरास के ग्रन्थों का वर्गीकरण चार भागों के अन्तर्गत किया है—

१ कृष्ण लीला के प्रसंगों से सम्बन्धित—रास पंचाध्यायी भैंसर जीत
राम स्याई मोवर्द्धन लीला रघुम स्तम्भ भाषा वल्लभजी मंथन और पद ।

२ कृष्ण भक्ति तथा कृष्ण चरित से सम्बन्धित—रूप मञ्जरी निरुद्ध मंजरी
सुवामा चरित और पद ।

३ कृष्ण भक्ति और कवि के व्याचारेत्वं के छोटेक ग्रन्थ जयपा रस-रीति
और भाषा ग्रन्थ—मान मंजरी अनेकाच मंजरी और रस मंजरी ।

४ कृष्ण भक्ति के प्रकीर्णक विषयों से सम्बन्धित रचना—इस वर्ग के अन्तर्गत उनके सिद्धान्तात्मक ग्रन्थ और बुद्ध-महिमा नाम-महिमा जिनम आदि के स्तुत पद हैं—सिद्धान्त पंचाध्यायी और पद । देखिए—अष्ट स्तुति और ब्रह्म सम्मन्ध पृ० ३७४ । विषय की दृष्टि से यह वर्गीकरण मन्दरास के कवि-व्यक्तित्व का स्पष्ट परिचय देता है। इनमें से कतिपय प्रमुख ग्रन्थों का परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

रास पंचाध्यायी—इस कृति का विषय है श्री कृष्ण की रास-लीला । यह गुंवार-रस का काव्य है। इस ग्रन्थ में पाँच अध्याय हैं। कृष्ण को परब्रह्म और मोक्तियों को आत्मा रूप में ग्रहण कर मन्दरास ने इस काव्य का प्रथमन किया है। कृष्ण के वियोग में मोक्तियों का रुदन और उनकी व्यथता के अंग के माध्यम से कवि ने ब्रह्म वियोगिनी आत्माओं की भाव-रसा का अंगन दिया

है। एवम् के प्रथम अध्याय में मुकुन्देय की बन्ना और उनके सौम्यता का वर्णन है। इसके पश्चात् कवि वृन्दावन की प्रकृति और चारद-रञ्जनी का वर्णन करता है। ऐसे ही आर्यभट्ट और उल्लास बाणन करने वाले बातावरण में कृष्ण की मुरली (योग माया) प्रतिष्पन्न होती है।

तब सीनी कर-अमल बोग-माया सी भुरली।
अचटित-अटना चतुर बहुरि अवरन सुर-जुरली।
आकी बुलि तैं निगम अगम प्रगटति बड़नायर।
नाद बड़ा की बनलि मोहिनी सब सुख सामर^१।

उस क्षण से गोपियों सम्प्राप्ति होकर कृष्ण के निकट आती हैं। कृष्ण गोपियों को मारी-धर्म का उपदेश देते हैं। अपने यह एव दाम्पत्य की मर्यादा में कौटुम्बिक का आग्रह करते हैं। गोपियों कृष्ण-उपदेश नहीं मानती हैं। कृष्ण उनके साथ यमुना-कुम्भों में रास-झीड़ा आरम्भ करते हैं। गोपियों के अस्मिमान-मंग की भावना से वे अचानक दृष्टि से जोरझर हो जाते हैं।

दूसरे अध्याय में गोपियों कृष्ण के लिए बिकल हैं, और इनकी बिकलता के सम्पर्क में कवि उनका विरह-वर्णन करता है। गोपियों बिकलता में समीप-निर्भीय में भेद नहीं कर पाती और सदा-बुद्धों से कृष्ण के विषय में पूछती फिरती हैं।

हे कदम्ब ! हे निम्ब ! अम्ब ! क्यों रहे मीन गहि,
बट अरुण है सुरंग नीर कहु तुम इत उत कहि।
असोक है। हरि सोक, सोक मनि निमहि बठाबहु
बहो पनच तुम सख मख सिय अमिय पिबाबहु।

रास पंचाध्यायी द्वितीय अध्याय ६।

गोपियों रास को लेकर यमुना तट पर आती हैं। तृतीय अध्याय में गोपियों कृष्ण की आज्ञा करती हैं। कृष्ण के इस निर्मम व्यवहार के लिए वे अपासम्भ होती हैं और फिर गोपियों आत्म विस्मृति की अवस्था में आ जाती हैं—

झिज बैठति धिन उठति छोटी तिहि रज माही
पोरे बल ज्यौ मीन बीन जातुर अकृताहो।

सम्पत् भय ते भयय करण कर कमल तिहारे,
कह पटि जेई नाथ तनक सिर छुवत हमारे।

रास पंचाध्यायी पृ० १८० १०।

अतुर्य अध्याय में कृष्ण प्रकट होते हैं और इस अध्याय कवि में कृष्ण-गोपियों के पुनर्मिलन का भावपूर्ण चित्र अंकित करता है। पौर्व में अध्याय में गोपियों और कृष्ण के उन्मुक्त रास का वर्णन है। नृत्य के उद्भासित वातावरण में अनुराग के छत-छत भाव बाधित होते हैं। कवि शब्द चित्रों के मोम से मूर्त्य का मूर्त विधान करता है। वर्णन में भावों के आवेग प्रस्फुटित होते प्रतीत होते हैं—

ताहि सौंखरो नुंखर रीति हंसि सैत मुचन भरि।

बुचन करि मुख-सदन बदन ते रैत मोल हरि।

जब मैं जो संगीत रीति सुर नर रीम्यत बिहि।

सो जब ठिय को सहज, निम आगम गावत विहि।

रास पंचाध्यायी—पंचम अध्याय २४ १२।

रास के परचाय बस-झीड़ा आरम्भ होती है। प्रातःकाल घुमोदय के पूर्व गोपियों अपने-अपने यह लोट जाती हैं।

‘रास पंचाध्यायी की प्रेरणा भूमि ‘भी मनुभावगत’ है। भी मनुभावगत के दशम स्कन्ध के २१ अध्याय से ३३ अध्याय में गोपी-कृष्ण की रासलीला का वर्णन है। परन्तु इसकी रचना प्रक्रिया में कवि नन्दरास की कतिपय गभीर अनुभावनायें भी मिलती हैं। सरल रास में नृत्यात्म की प्रकृति का किञ्च भावगत में नहीं मिलता है। ‘रास पंचाध्यायी’ में गोपिकायें और कृष्ण कान्धर्व पर मित्र्य प्राप्त करते बिभित छिपे गए हैं। भावगत में यह प्रसंग नहीं मिलता है। इस प्रकार इस प्रसंग के माध्यम से कवि अपने काव्य में पूर्ण रूप से बौद्धिक स्वस्व का सम्पादन करता है। द्वितीय अध्याय भावगत के दशम स्कन्ध के ३३ के अध्याय पर आधारित है। इस अंश में कवि मौखिक अनुभावनायें नहीं कर सका है। तृतीय अध्याय दशम स्कन्ध के ३१ वें अध्याय पर आधारित है। चौथा अध्याय ३२ वें अध्याय पर आधारित है। इस अंश में प्रत्येक छन्द की प्रथम पंक्ति भावगत की पंक्तियों का स्फांस्तर है। अन्तिम अध्याय दशम स्कन्ध के ३३ वें अध्याय पर अवलम्बित है। वस्तुतः यह एक अन्वोक्ति-मूसक रचना

है जिसमें श्रु गारिक्ता, अग्रस्तुत है प्रस्तुत है बाध्यास्त्रिक्ता । इस सत्य की ओर कवि ने संकेत भी किया है—

निष्ट-निष्ट बट में जो अन्तर्गामी छाहि,
विषम विद्रुषित इन्नी पकरि सकै नहिं छाहि ।

वृषाम स्कन्ध—यह प्रथम भागवत के दशम स्कन्ध के उन्तीस अध्यायों का दोहा-चौपाई-दीप्ती में अनुवाद है ।

विरह मञ्जरी—वस्तुतः यह प्रथम काव्य-शास्त्र के सन्दर्भ की रचना है । परन्तु इस प्रथम में अपने विषय की प्रस्तावना कवि ने कलात्मक रूप में किया है । इस प्रकार यह कृति कृष्ण-काव्य की परम्परा से खींचित नहीं हो पाती है । संयोग-मुक्त की अनुमृति में वियोग की भावी सम्भावना की कल्पना ब्रज वासा में बाण्ट हो जाती है और वह पूर्णतः विप्रसन्न भाव से प्रसिद्ध हो जाती है । उसे भ्रम हो जाता है कि कृष्ण डारिका चले गए हैं । वह चन्द्रमा द्वारा कृष्ण के पास सन्देश भेजने की कल्पना करती है । दैनिक वियोग की काल्पनिक अनुमृति में नायिका बाण्डू मासे में होने वाली विरह-पीड़ा की अनुमृति कर लेती है । यह वियोग-भाव की पीठिका पर बाण्डू मासे की परम्परा की कृति है । इस रचना में बाण्डू मासा चैत्र से आरम्भ होता है । इस ऋतु में प्रकृति व्यापार सहीपन का कार्य कर रहे हैं । नेत्र की उपलब्धि विरह-दाप का पोषण कर रही है । बर्षा में बस की बूँदें विरहिणी पर बाण-बर्षा के समान प्रभाव डाल रही हैं । भावों में मेघ विरहिणी से होड़ से रहे हैं—

माखी अति दुःख-येन कहियो जन्म ! योनिज सों
जन्म अकस्म के मैन होइत बरसत रैन निज ।

“विरह मञ्जरी” में मन्दरास ने कृष्ण के विरह के चार स्तरों की कल्पना की है ।

(१) प्रत्यक्ष, (२) पञ्चकान्तर (३) वनान्तर और (४) वेदान्तर । प्रथम के अन्तर्गत प्रिय के नैक्य में ही दैनिक विरह की भ्रम-मुक्त अनुमृति की कल्पना की गई है । द्वितीय के अन्तर्गत पञ्चमर के वियोग की कल्पना की गई है । कृष्ण विरहिणी अर्वाच के लिए वन में मोचाराय करते हैं । तृतीय अर्वाच के वियोग के

बनाकर विधोष कहते हैं । और प्रिय के विवेचन-गमन पर देशांतर बिह्व की व्यवस्था आती है ।

इस छन्द की अन्य कृतियों में 'रस मञ्जरी' 'स्वमञ्जरी मान मञ्जरी' और 'अनेकार्थ मञ्जरी' नामक रचनाएँ आती हैं । 'बिरह मञ्जरी' के सामान्य रचनाओं की रीति-रिवाज के सम्बन्ध के अन्तर्गत आती हैं । रीति-काव्य-भारा के विकास की पूर्व पीठिका के रूप में इन रचनाओं का ऐतिहासिक महत्व है ।

रस मञ्जरी—इस कृति का प्रतिपाद नायक-नायिका भेद है । और यह भागवत की 'रस मञ्जरी' नामक ग्रन्थ पर आधारित है । रचनाकार ने कर्म के अनुसार नायिका के तीन भेद किए हैं—(१) स्वकीया (२) परकीया (३) सामान्या । इस ग्रन्थ का परिचय मध्य भाग में इस प्रकार दिया है—

रस मञ्जरी अनुसार के, मन्त्र सुमति अनुसार,
वरणत वनिता भेद यह प्रेम सार विस्तार ।

मुग्धा का भेद मोबाड़ा विषय नबोड़ा जात मौनता और जज्ञात मौनता, के रूप में किया गया है । मध्य और प्रीक्षा का भीरा, भीराभीरा भेद किया गया है । मुग्धा मध्या प्रीक्षा के स्वतन्त्र रूप से भी-भी भेद किए गए हैं । उत्पन्नात् नायक-भेद प्रस्तुत किया गया है । नायक के चार भेद किये गये हैं—पृष्ठ, छठ दक्षिण और अनुकूल । फिर हान भाव, हेला, रति और भुवी-भेद के लक्षण बताये गए हैं ।

रूप मञ्जरी :—इस कृति के नायक कृष्ण हैं, नायिका रूप मञ्जरी है । इस कृति में कवि नादमार्व की मति विधा का इस निरूपण किया गया है । कृष्ण के नाम, गुण धारण और कीर्तन का विधान इस मति-विधा की प्रमुखता है । और भी कृष्ण की मुरली का निरूपण 'राज ब्रह्म' के रूप में यहाँ किया गया है ।

मान मञ्जरी—प्रस्तुत कृति अमर कोष पर आधारित है । कवि इसकी और संश्लेष भी करता है —

गुणिन नामा नाम की अमर कोष के भाव ।
मानवती के मान पर मिले अथ अथ भाव ।

इस कृति का प्रतिपाद है राधा का मान वर्णन । इसके अनतिरिक्त यह एक पर्यायाधी राज कोष भी है । एक ही नी मानिनी राधिका को मनाती है ।

मयने वर्णन में कवि प्रमुख ध्वनों के पयौबाबी हथों को भी मुख्य छन्द के साथ रक्ता बद्धता है। सभी मानिनी राधा को मनाने में बाबी खपवा (छात्रवत्) का प्रयोग करती है। हृत्प की आसुरता से प्रेरित होकर वह नृपमान् पूष के नाम (मन्त्र) के लिए प्रस्थान करती है। कवि मानिनी रूप में राधिका का वह विश्व वर्णन भी करता है। इस कृति में मान-वर्णन कोप-ग्रन्थ और वक्ष्य-अभिया के मूल्य और समन्वित रूप मिल जाते हैं। और समग्रता की दृष्टि से यह एक अनि-व्यञ्जना प्रधान काव्य है। उदाहरण हेतु इस ग्रन्थ के कुछ अंश यहाँ उद्धृत हैं—

(मान)

बह्मकार, मय, वर्ष, पुनि पर्व, स्मर अनिवार ।

मान राधिका कुंवरि को समको करि अस्याम ।

(सभी)

कपला, सुमुखी सभी पुनि हित सहचरी जाहि ।

बसी कुंवरि उपमान की कसी ममान ठाहि ।

(केस)

अलक सिरोरुह किङ्कर कष कुण्ठित कुटिस पुङ्गव ।

कुन्तल क्वरि कलाट जनु कन्हि गई बरार ।^१

अनेकार्थ प्रसारी—इस कृति में कवि बहुप्र सम्प्रदाय के अनुसार गुणादित्य काय की विवेचना करता है। हृत्प जम्प के उपादान कारण और निमित्त कारण है। हृत्प की मान-अभिया वर्णन भी इस ग्रन्थ का एक पक्ष है। इस प्रकार इसमें कोप-ग्रन्थ की योजना में अति-रस का समन्वित रूप मिलता है। कवि दोह-खेती में एक ध्वन के अनेक अर्थ देता है, और अन्त में जगत्पूष को हृत्प के नाम के साथ सम्बोध करता है—

मधु बरुत मधु रीत हुम मधु धरिरा मन्दर ।

मधु बल मधु वै मधु सुधा 'मधु सुख मोहित' ।

सिद्धान्त पञ्चाध्यायी —इस कृति में मन्दराय ने रास पञ्चाध्यायी में वर्णित रास-कीड़ा की आन्ध्यात्मिक व्याख्या प्रस्तुत की है। रास वर्णन के

१ इस भाषा के हृत्प अति काव्य में अविद्यमानता स्थित पृ० ४६ ५० ।

२ देखिए—अष्ट भाषा और अलङ्कार प्रत्ययान्त विनियोग पृ० ५०० ।

उत्थर्म में शू गार-वर्जन की असौकरिता की व्याख्या यहाँ तक के साथ की गई है। यह ग्रन्थ १३८ छन्दों में समाप्त है। यह रोसा छन्द रचित है। इस ग्रन्थ से एक अंश यहाँ उदाहरण के लिए दिया जा रहा है—

सौकरे प्रिय कर परस पाइ मुनिवत भई यों ।

परम हंस भागवत मिस्र संसारी बन यों ।

अंभे जागत स्वतः मुपुति अवस्था में यय ।

तुरित अवस्था पाइ जाइ सब भूति गइ तब ।

सिद्धान्त पञ्चाध्यायी

इस अंश में कवि 'रास' में लिखित असौकि तरह की खोर संकेत करता है।

पद्मावली—नन्द रास के पदों की संख्या स्वयम् ८०० मानी गई है। इनकी परावली के मुख्य विषय इस प्रकार हैं—गुरु-स्तुति, मनुष्या-स्तुति लीला पर कृष्ण-आगम बजाई पासना गोधारण, राधा-रूप-वर्जन रास बसन्त, मसहार बपौ तथा शीघ्र मास्तिका आदि। इन पदों में रास बंसन के प्रति कवि ने विशेष आग्रह प्रकट किया है। इस कारण ही इनके विषय में 'और कवि मद्रिया नन्द रास जड़िया' की उक्ति प्रचलित है।

भैंसर गीत—नन्द रास का 'भैंसर गीत' सुरदास के समान भागवत पर आधारित है। नन्द रास का 'भैंसर गीत' उद्यम के उपदेश से प्रारम्भ होता है—

उद्यम को उपदेश सुनो ब्रजनागरी । रूप सीस लावन्य सबे गुण जागरी ।

प्रेम मुखा रस रुचिनि रूपजावनि गुप्त गुप्त ।

गुप्तर रूपम विहासिनी नन्द कृष्णानन्द कृष्ण । सुनो ब्रजनागरी ।

यह ग्रन्थ उद्यम-गोपी के सम्बन्ध-रूप में लिखा गया है। उद्यम निर्मूल का समीप देते हैं। बोधियाँ सगुण ब्रह्म पर आस्था रखती हैं। निर्मूल पर सगुण की ओर योग तथा ज्ञान पर प्रेम की विजय से यह काव्य समाप्त होता है। इस दृष्टि में दर्शन की प्रधानता है परन्तु बोधियों की भावना प्रदर्शन की दृष्टि में जानु कटा के नैसर्गिक स्वरूप का विधान भी यहाँ मिलता है। विशेष का चित्रण कवि रसात्मक और रमोत्साहक भाव में करता है।

चतुर्भुज नाम—चतुर्भुज नाम चतुर्भुज नाम के पुत्र और बिट्ठलनाथ के शिष्य थे। इनके नाम से तीन ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है—१ द्वापर यय (२) अति

प्रठाप (३) द्विज को संगत । श्री कृष्ण के पास के पर तीन वर्गों में विभाजित किए जाते हैं ।

१ वर्षोत्सव के पर—इसके अन्तर्गत मंगला चरण बीन माछिका गोचर्गत पूजा और द्विजोक्त आदि दीपकों के पर जाते हैं । (२) इनके परों का दूसरा वर्ग मीठा-सम्बन्धी परों का है । इसके अन्तर्गत बगल-मीठा, बन-मयन वैष्णव-स्वल्प-वर्गन मुषक-रस-वर्धन सुष्ठान्त बन्धिता और उच्छ्व-सन्देश दीपक-पर जाते हैं । (३) तीसरे वर्ग के अन्तर्गत प्रकीर्ण पर हैं । इसके अन्तर्गत 'मक्ति की प्रार्थना' और 'ममता भी के पर' जाते हैं ।

जीत स्वामी—इनका समय संवत् १३१० १३८३ ई०, १३९० १६४२ वि० माना जाता है । इनके परों का विभाजन इस रूप में किया जाता है—

(१) वर्षोत्सव-पर—मंगलाचरण राधाष्टमी बगल, रस गो कीड़ा बल्लभ चमार, और फाग आदि दीपकों के पर इसके अन्तर्गत जाते हैं । (२) मीठा पर बगल-मीठा कसक, गुमार कीड़ा धाक मोहन परस्पर सम्मेलन बन्धिता आदि दीपकों के पर इसके अन्तर्गत जाते हैं । (३) प्रकीर्ण पर—श्री महा प्रभुजी श्री गुदाश्री और श्री मिरराजजी आदि पर इसके अन्तर्गत जाते हैं ।

गोविन्द स्वामी—गोविन्द स्वामी साम्राज्य शास्त्र के । इनका समय समु १३०४ १३८३, सं० १३६१ १६४२ माना गया है । ये संगीतज्ञ कवि और पात्रक थे । इनके परों का वर्गीकरण इस रूप में किया जाता है । (१) वर्षोत्सव—इसके अन्तर्गत मंगलाचरण राधाष्टमी पाश्चा राधाष्टमी बामन जयन्ती बल्लभ जस-कीड़ा स्नान-यात्रा रस बपौ और द्विजोक्त आदि दीपकों के पर जाते हैं ।

(२) दूसरे वर्ग के अन्तर्गत बगल-मीठा कसक मंगला और बाल-मीठा आदि दीपकों के पर जाते हैं ।

(३) इस वर्ग में प्रकीर्ण पर हैं—इसके अन्तर्गत ये दीपक हैं—पुष्प-गुपमा और श्री बल्लभ पुष्प-बामन ।

कृष्ण मक्ति के कृष्ण समयाधिक सम्प्रदायों में गोस्वामी द्विज हरिचंद और उनके राधाष्टमी सम्प्रदाय का भी योगदान अष्ट नाम के कवियों के समान विशेष महत्व का है । इस सम्प्रदाय के अष्ट कवियों में द्विज हरिचंद दामोदर दास (सेवक जी) हरिराम व्यास का उल्लेख अवस्थित है ।

श्री हित हरिवंश—श्री हित हरिवंश का जन्म जब मन्वन्त प्रलेख में संवत् १५५६ में वेदाङ्ग मुक्ता एकावली, सोमवार को हुआ था। इनकी मृत्यु संवत् १६०६ में हुई थी। हितहरिवंश के नाम से दो ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। एक 'राधासुखानिधि' यह संस्कृत की रचना है। इसमें राधा की स्तुति की गई है। इनकी दूसरी कृति 'हित बीरासी' है। इस कृति में राधाबल्लभ सम्प्रदाय की विशेषता पदों में की गई है। इस संग्रह के पद भेद हैं और राम रागिनियों में परिवर्तन हैं। इनके अतिरिक्त सत्तारह स्फुट पदों का एक संग्रह भी मिलता है। 'ममूनाष्टक' नाम से ममूना-स्तुति से सम्बन्ध रखने वाला एक अन्य संग्रह का भी उल्लेख किया जाता है।

राधाबल्लभ सम्प्रदाय का मुख्य ग्रन्थ है 'हित बीरामी।' इसमें संकलित पदों की निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया गया है—

१—सुराष्टास्य समय वर्णन अर्थात् मंगला के १६ पद (२) सैय्या समय के १६ पद, (३) रास के १७ पद, (४) बन विहार के ३ पद (५) स्नान शृंगार के ४ पद; (६) रात्रौय (सैया विहार) के २ पद; (७) बसन्त वर्णन के दो पद; (८) होरी-वर्णन के दो पद; (९) पूछ डोल-सूझ का एक पद, (१०) मत्तार के चार पद और (११) संचममान के छह पद। (देखिए—राधा बल्लभ सम्प्रदाय पृ० ३०६)। इस ग्रन्थ में राधा-नृस्य के अश्रेय और अविच्छेद्य प्रेम का निष्पाद है। यहाँ राधा-नृस्य के नित्य विहार के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। राधा-नृस्य का प्रेम और उनका नित्य विहार दाम्पत्य-कोटि का है यहाँ औदिक शृंगार के माध्यम से औदिक या आध्यात्मिक बरातस की ओर संकेत किया गया है। औदिक मान बिरह की पीठिका पर निकुञ्ज-सीमा के द्वारा औदिक आनन्द और ग्मानुभूति की कल्पना हम ग्रन्थ के पदों में उल्लेख हो जाती है—

आज निम्न मंत्र में लेख्य गवय पिप्पोर नवीन पिप्परी।

अति अनुम अनुराग परराग गुनि अमून भूतस पर ओरी।

×

×

×

×

हरि उर मुहुर बिलोकि जानती बिधम बिभल मानपुत ओरी।

बिबुल मुचाप प्रणो प्रणोपन निव प्रतिबिम्ब अनाप पिप्परी

नेति-नेति बचनमूढ मुनि-मुनि ललितार्थिक देखत पुति चोरी ।

हित हरिबंस करत कर धूनत प्रभव कोष माकाबलि तोरी ।

हित चौरासी पद सं० ७ ।

रतिकेति के समय राधिका की दृष्टि कृष्ण के बल-मुकुर पर पड़ती है । अपने प्रतिबिम्ब से उन्हें कृष्ण के हृदय में किसी अन्य रमणी के होने की संका होती है । राधिका मान करती है । कृष्ण उनके बिबुध का स्पर्श करके उन्हें वास्तविकता का बोध कराते हैं । हित हरिबंस अपनी उपास्या राधा के सौम्य वर्णन में उनका मस्त-शिर-वर्णन भी करते हैं । 'हित चौरासी' में रास-वर्णन करने वाले पद मावना और इससे भी अधिक सिद्धान्त निरूपण की दृष्टि से अष्ट साप-कवियों के रास-वर्णन के पन्नों से मिले हैं । हित हरिबंस ने 'रास' को नित्य बिहार' का पर्यायवाची माना है । इस प्रकार राधा-कृष्ण का नित्य बिहार ही इस वर्ग के चिन्तन का मुख्य दर्शन और काम्य का प्रतिपाद है ।

रोऊ बन भीजन बटके बातन ।

समय बृष के डारे डारे, भम्बर लपटे बातन ।

कलिया ललित रूप रस भीजी बूंद बचावत बातन ।

हित हरिबंस परस्पर प्रीतन मिखवत रविरस बातन ।

छूट बाणी ।

'हित चौरासी' के अग्न बनेक टीकायें भी मिलती हैं, जिनमें 'हित धरणीधर की टीका' (१६ बी पृष्ठी) 'पोस्वामी गुलसाक की की टीका' 'अमरदास की टीका' और 'प्रियदास की टीका' प्रमुख हैं । श्री बळदेव उपाध्याय ने इनके नाम से तीन अन्य ग्रन्थों का उल्लेख किया है (१) बादास्तन (२) बनु-स्तोकी (३) राधास्तन (मावनात सम्प्रदाय, बळदेव उपाध्याय, पृ० ४२६) । आचार्य हजारी प्रसाद त्रिवेदी, 'दुम्बावन छन्द', तथा 'हित सुधा सागर' नामक दो अन्य ग्रन्थों की कभी करते हैं ।

दामोदरदास (सेवक जी) —सेवक जी के जीवन दृष्ट के सम्बन्ध में प्राथमिक जानकारी नहीं मिलती है । हित हरिबंस के परचाद राधावल्लभ सम्प्रदाय में इनका स्थान धीरे पर है । इनका जन्म संवत् १२७७ और मृत्यु सम्बत् १६१० माना जाता है । ये मोड़वाना (मध्यप्रदेश) के मूल निवासी थे और दुम्बावन में बस गये थे ।

भारत हो कत प्रेमहि काजनि ।

करत प्रेम पर नेम न बिसरत करत फिरत बिबि कुल के काजनि ।

पूरत प्रेम गलत गोपिल को सब कृत दबत बक्तमई भाजनि ।

दिवके प्रेम भगन मोहल भए तबि के अखिस कोक के राजनि ।

× × × ×

एही रिप कुनी कंत पति पयो सखि सागरहि समाजनि ।

प्रेम परे निकरे न बजभुज मुरसीपर बरकरति निवाजनि ।

श्री प्रवन्दासजी—इसका जन्म संवत् १६१० के आसपास माना जाता है । इसका मृत्यु-संवत् १७४० माना जाता है । इसके प्रमुख ग्रन्थ हैं 'रसानन्द सीका' 'रहस्य मंजरी सीका' । इनके नाम से बयासीस ग्रन्थों का संग्रह 'भ्यास सीका' कहा जाता है । इन ग्रन्थों में निरय बिहार सीका का वर्णन किया गया है । इसमें प्रेम-स्थाना मण्डि का प्रतिपादन किया गया है, और इस ग्रन्थ में संयोग शृंगार के अनूप रूप भी प्रस्तुत मिलते हैं । निर्दुःख-सीका और शृंगार-वर्णन से सम्बन्धित एक पर यहाँ दिया जाता है—

कुञ्ज-कुञ्ज रहे सब कुल पुस्यारी में के ।

रीम्हि रीम्हि छवि जाइ पाइनि में परी है ।

साङ्गिजी नबेकी असबसी गुल सहज हो ।

निरुति निर्दुःख से अनूप भौंति लरी है ।

मल छिप भूपम कावध्य ही के बन भवे ।

दीक सी सुबत सुकुमार ठाहू करी है ।

हित ध्रुव मुक्ति हेरत बिकाइ रहैं ।

बागिनी की बुटि सब हीरन हरी है ।

भजन शृंगार सग लोला ।

बाबाजी श्री मृन्दाजन दासजी—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसका जन्मकाल संवत् १७६३ दिया है । निधन वर्ष विनोद में इसका जन्म संवत् १७४४ माना गया है । यह अन्य ग्रन्थ के अनुसार इसका जन्म संवत् १७६४ है । बाबा ब्रह्म सम्प्रदाय के कवियों में आकार की दृष्टि से और निरय-वैविध्य की दृष्टि से इनकी रचनाएँ अति श्लाघ्य हैं । बाबाब्रह्मयोग ग्रन्थ-मुक्ती 'राहित्य

एलाबद्धी' में इनके १५० ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। इनमें 'साइसावर' 'ब्रह्म प्रेमानन्द सागर', 'बुधष्ठ स्नेह पत्रिका' 'भारति पत्रिका' आदि विशेष रचनाएँ हैं। 'साइसावर' एक प्रकार का संग्रह-ग्रन्थ है। इसके पद भिन्न-भिन्न समय पर लिखे गए लग्ये हैं। यह ग्रन्थ इस प्रकारों में इस रूप में विभाजित है—(१) राधा-काक-विनोद। (२) कृष्ण-बास विनोद। (३) कृष्ण-सपनाई (४) कृष्ण-अग्नि अनुमति-शिखा। (५) विवाह-मंगल। (६) काकिनी वू को मोलाचार। (७) काक वू को महिमानी को बरवाने बाइसी—यी काक विनोद (८) राधा छवि मुद्राप (९) अनुमति मोद प्रकाश (१०) राधा काक मुद्राप। (राधा बल्लभ सम्प्रदाय। सिद्धान्त और साहित्य पृ० ५२६)। राधा के रूप-विनोद से सम्बन्धित 'साइसावर' से एक पद उदाहरण-स्वरूप यहाँ दिया जा रहा है—

पिय सब उर भर नीक कीकृत मुमुषाई के।
नामि मूमा घर पैछु पुनि पुनि बाइ के।
ठा बिह बिबसी रेख सदा कम्पनी लबी।
भीतल मम अबिसम्ब सिङ्गी मानी रबी।
रवि मानो सिङ्गी सबनी इत मोतुन हार है
बिरि कमक पै बग पोति अनुपम करति यनहु बिहार है।

निम्बार्क सम्प्रदाय के कवि

श्री भट्ट :—श्री भट्ट निम्बार्क सम्प्रदाय के एक योग्य प्रथम के कवि हैं। 'कृष्ण उपासति स्तोत्र' नामक १०० पदों की इनकी एक रचना का उल्लेख मिलता है। इस ग्रन्थ को 'आदि बाबी' या 'बुधष्ठ छतक' भी कहते हैं। इस ग्रन्थ में राधा-कृष्ण की मूर्तक-मूर्ति की उपासना विधि का प्रतिपादन किया गया है।

हरि व्यासजी—निम्बार्क सम्प्रदाय के अन्तर्गत इन्होंने रचित सम्प्रदाय के नाम से एक उपन्यास का प्रवर्तन किया। द्विती में इनकी रचना 'बुधष्ठ छतक' नाम से प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त 'महाबाबी' नाम के भी इनकी एक रचना मिलती है। इस ग्रन्थ का विभाजन—१ सेवा, २ उत्सव, ३ वृत्त, ४० सहस्र ५ सिद्धान्त इन रूपों में हुआ है—प्रथम में राधा-कृष्ण के अष्टमास का वर्णन है। 'उत्सव' में निम्न विहार का विनोद है। राधा और कृष्ण के बुधष्ठ रूप

मारत हो कठ प्रेमहि साबनि ।

करत प्रेम पर नेम न बिसरत करत फिरत निधि कुस के काबनि ।

पूरन प्रेम कनक बोसि को सब कठ तबत बसतमई भाबनि ।

सिनके प्रेम सबन मोहन भए तबि के बसित लोक के राबनि ।

× × × ×

एही रिप तुनी कंठ पति क्यो सखि सामरहि समाबनि ।

प्रेम परे निकरे न पत्रमुख मुरलीवर बरकरति निबाबनि ।

श्री ध्रुवदासजी—इनका जन्म संवत् १९३० के आसपास माना जाता है । इनका मृत्यु-संवत् १७४० माना जाता है । इनके प्रमुख कृत्य हैं 'रसानन्द सीता' 'एहस्य मंजरी सीता' । इनके नाम से बयासीसे कृत्यों का संग्रह 'व्यास कोला' कहा जाता है । इन कृत्यों में 'निरय बिहार सीता' का वर्णन किया गया है । इसमें प्रेम-श्रद्धा का प्रतिपादन किया गया है, और इस कृत्य में संयोग शृंगार के अनुपम रूप भी प्रस्तुत मिलते हैं । निर्द्वन्द्व-सीता और शृंगार-वर्णन से सम्बन्धित एक पर यहाँ दिया जाता है—

कुलि-कुलि रहे सब फूल फुसकारी में के ।

रीझि रीझि छवि जाइ पाइनि में परी है ।

छाड़िली नदेली बसनेली मुख सहज ही ।

निद्रवि निर्द्वन्द्व ते अनुप भौति सरी है ।

मन छिपे मूपस साबण ही के जन भने ।

दीठ सौं छुवत गुङ्गुमार ठाहू डरी है ।

द्विष्ट ध्रुव मुकुनि हेण्ट बिकाइ रहें ।

बामिनी की दुति नर हीलन हरी हैं ।

भजन शृंगार सत कोला ।

सायाजी श्री धुन्दावन दामजी—माचार्य रामचन्द्र गुप्त ने इनका जन्मकाल संवत् १७६३ दिया है । 'विध बन्धु मित्रोद' में इनका जन्म संवत् १७४४ माना गया है । एक अन्य ग्रन्थ के अनुसार इनका जन्म संवत् १७६४ है । राधा बल्लभ सम्प्रदाय के कवियों में आचार की दृष्टि से और निरय-वर्णन की दृष्टि से इनकी रचनाएँ अति व्यापक हैं । राधावल्लभीय ग्रन्थ-श्रुती 'साहित्य

रत्नावली' में इनके ११८ ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। इनमें 'साङ्ख्यसार' 'ब्रज प्रेमानन्द सागर', 'ब्रज स्नेह पत्रिका' 'भारति पत्रिका' आदि विशेष रचनाएँ हैं। 'साङ्ख्यसार' एक प्रकार का संग्रह-ग्रन्थ है। इसके बर भिन्न-भिन्न समय पर लिखे गए लगते हैं। यह ग्रन्थ दस प्रकरणों में इस रूप में विभाजित है—(१) राधा-वास विनोद। (२) कृष्ण-वास-विनोद। (३) कृष्ण-सभाई (४) कृष्ण प्रति अनुमति-सिद्धा। (५) विवाह-मंगल। (६) साङ्ख्यी जू को शोलाचार। (७) साङ्ख्य जू को महिमाशो को बरसाने बाइबी—भी ब्रज विनोद (८) राधा प्रति सुहाय, (९) अनुमति मोद प्रकाश (१०) राधा साङ्ख्य सुहाय। (राधा ब्रज सम्प्रदाय। सिद्धान्त और साहित्य पृ० ३२६)। राधा के रूप विषय से सम्बन्धित 'साङ्ख्य सागर' के एक पत्र सहायक-स्वरूप यहाँ दिया जा रहा है—

विषय मत नर नर लोक कीकृत सुखुपाई के।
नामि मुखा सर वेळु पुनि-पुनि बाइ के।
ता दिक विवसी रेल महु कननी लखी।
प्रीतम मत अविलम्ब तिड़ी मानो रची।
रवि मामो सिद्धी सबनी करत मोतुन हार है।
गिरि कनक पे नम पांति अनुपम करति मनहु निहार है।

निम्बालक सम्प्रदाय के कवि

भी भट्ट :—भी भट्ट निम्बालक सम्प्रदाय के ब्रज भाषा प्रथम के कवि हैं। 'कृष्ण सरलापति स्तोत्र' नामक १०० पदों की इनकी एक रचना का उल्लेख मिलता है। इस ग्रन्थ को 'भारति वाणी' या 'ब्रज छठक' भी कहते हैं। इस ग्रन्थ में राधा-कृष्ण की 'ब्रज-मूर्ति' की उपासना विधि का प्रतिपादन किया गया है।

हरि व्यासजी—निम्बालक सम्प्रदाय के अन्तर्गत इन्होंने रसिक सम्प्रदाय के नाम से एक उपमार्ग का प्रवर्तन दिया। हिन्दी में इनकी रचना 'ब्रज छठक' नाम से प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त 'महावाणी' नाम से भी इनकी एक रचना मिलती है। इस ग्रन्थ का विभाजन—१ सेवा, २ उत्सव, ३ मुरत ४० छन्द ५ सिद्धान्त इन कवियों में हुआ है—प्रथम में राधा-कृष्ण के अष्टधाम का वर्णन है। 'उत्सव' में नित्य निहार का विषय है। राधा और कृष्ण के मुख्य रूप

का वर्णन 'सुरत सुत्र' में है। सिद्धास में श्री कृष्ण ह्लासिनी शक्ति राधा के साथ मिल्य बिहार में संसृज्य निमित्त है।

परशुराम देव—परशुराम हरिदास के शिष्य थे। इनके नाम से १३ ग्रन्थों का सम्बन्ध मिलता है जिनमें 'नाव बीजा' 'हरि लीला' और 'निब बप लीला' और 'निर्वाण प्रमुख' हैं।

स्वामी हरिदास सम्प्रदाय

स्वामी हरिदास—ये सही सम्प्रदाय के संस्थापक हैं। इनका कविता काल संवत् १६ = १६४४ के मध्य पड़ता है। ये कृष्ण नाथ थे। व्याख्यान शुक ने इनके नाम से 'हरिदास जी को ग्रन्थ' स्वामी हरिदास जी को पद' तथा 'हरिदास जी की बागी' नामक रचनाओं का उल्लेख किया है। इनकी रचनाओं में राधा-कृष्ण के मिल्य बिहार, मय शिव मान, दाग होली रास धादि विषयों के वर्णन हैं।

विद्वल विपुलदेव—ये हरिदासी सम्प्रदाय के अन्तर्गत विविध व्यक्ति हैं। इनकी रचना में 'राग कस्यपुम' में उपलब्ध होती है। इनके पदों के मुख्य विषय हैं—'राधा-कृष्ण का मिल्य बिहार 'मूला' मान' 'दान' और 'नोक-फोड़' इत्यादि।

भक्ति का स्वरूप

बैष्णव भक्ति के माध्यम से पद्महवीं और सोलहवीं शताब्दी में समस्त भारतवर्ष में कृष्ण-काव्य का एक अनि मोड़ और स्थिर रूप विकसित हुआ। काव्य भक्ति के अनुसमपूर्ण मयों की प्रीति पर जीवन की रागात्मक प्रीतियों को संस्थापन प्रीति बना। दक्षिण भारत के आंध्र प्रदेश के तामिल-प्रदेश में और हिन्दी कृष्ण-काव्य में भक्तिकर्तृ अनुसूत्रियों सबों और अधिपतिना प्रभासी में उपलब्ध एक समान इस प्रकार के चिन्तन को प्रेरणा देती है। पौरोष बैष्णव भक्ति में उपलब्ध मय भक्ति की समूर्ण आत्माधिपति हिन्दो कृष्ण-काव्य की रचनी अनुसूत्रियों से कम भावनापूर्ण नहीं है। विद्यापति की मूल अनुसूचना शृङ्गार-मूक ही। पौरोष बैष्णवों ने भक्ति की आत्मीय भावना के विधान का प्रयत्न किया है। उन्होंने भक्तों को भी शेषों में विभाजित किया है। भक्तों की प्रीतियों के अनुसार भक्ति के क्षेत्र में भी उन्होंने शेषों

विभाजन किया है। रसिकों के अनुसार इन्होंने भक्ति के भेद और उपभेदों की प्रस्तावना की है। साधन भक्ति के अनुसार इन्होंने भक्ति के 'बैबी' और 'रागानुभाव' स्वरूपों की कल्पना की है। यौद्धीय वैष्णव रूप तोत्कामी ने 'भक्त रत्नामृत सिन्धु' और 'उत्सवस मील अधि' नामक ग्रन्थों में भक्ति की स्थापना एक स्वतन्त्र रस के रूप में की है। 'भक्ति रस' के स्वरूप विस्तरेण की चेष्टा इच्छा राम कविराज हुए 'चैतन्य चरितामृत' में मिलती है। इस ग्रन्थ के अनुसार कण्व-रसि का उद्गम साधन भक्ति में होता है। कण्व भक्ति-रस के स्वामी जात्र हैं मान प्रथम राम अनुराग भाव और मद्धाभाव आदि। बंटी-स्वर विभाव उद्गीर्ण है। कण्व आत्मजन है। स्मित गीत छोड़ नृत्य आत्मजन है। यहाँ भक्ति रस के पाँच कर्णों का वर्णिकरण दिया गया है। वे हैं श्रोत गन्ध वास्तव्य और श्रु गार। कण्व पति हैं उत्पत्ति हैं गोपिकामें गामिका मुख्यतः परकीया गामिका है। इन गामिकाओं के भेद हैं बीरा अधीर घोर घोर उत्तम, मध्यमा और कनिष्ठा।

द्वितीय कण्व भक्ति-काव्य में भक्ति रस को एक स्वतन्त्र रस के रूप में स्वीकार किया गया है परन्तु यौद्धीय वैष्णव मठों के अनुसार अष्ट स्थाप के अति भक्ति-रस की वास्तवीय व्याख्या नहीं करते हैं। मुरदास कठ 'साहित्य कवरी' और मन्महाल हुए 'भान मंजरी' तथा 'रूप मंजरी' आदि कृतिओं में इस प्रकार के आधिक्य प्रपाठ मिलते हैं।

बल्लभाचार्य ने पुष्टि मायीय भक्ति का विधान किया है। सगुण ब्रह्म की उपासना का विधान करते हुए बल्लभाचार्य ने ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप की अवहेकना नहीं की है। परन्तु निर्गुण ब्रह्म ज्ञान का विषय है, सगुण ब्रह्म अनुभूति का विषय है। उसके साथ हीसा रागात्मक सम्बन्ध सम्भव है। मुरदास तथा अष्टाश्रय के अन्य कवियों ने इस विचार को अति आस्था के साथ ग्रहण किया है। निर्गुण उपासना को कछियाइयों की ओर संकेत करते हुए ही मुरदास ने 'मूर ठाणर' के आरम्भ में इस प्रकार कहा है—

अविषय पति कसु कहुत न आवे ।
 क्यो कूँ मीठे फल को रस भा मीठ ही आवे ।
 परम स्वाद तब ही नु निरन्तर अविषय छोव उपजावे ।
 मन बाजो को अवय अवोचर को जाने सो पावै ।

रूप रेख गुण जाति प्रगति बिनु निराकृत्य मन भ्रष्ट घावे ।

सब बिधि अगम बिचारे ताते मूर रामुन सीसा फर पावे ।

मूर सागर—प्रथम स्कन्ध ।

ब्रह्मपारम्य मे जिस 'पुष्टि मार्गीय भक्ति का प्रतिपादन किया उससे स्पष्ट भगवान् का अनुग्रह अपेक्षित है । भगवान् जबतक भक्त पर प्रमित होकर भक्ति की पुष्टि नहीं करता, जबतक भक्त के उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती है । निम्नलिखित पद में मुरदास इसी भाव को व्यक्त करते हैं—

बापर बीना नाथ करे ।

सोइ कुम्भीन बड़ो मुखर सोइ जिहि पर हुला करे ।

कौन बिभीषण रंक निछावर हरि हुँस छत्र दिए ।

राजा कौन बड़ो राजन ते गर्बहि सब मरे ।

रंकव कौन गुणमा हूँ ते आप समान करे ।

×

×

×

मह भति भति जानै महि कोऊ किहि रस रसिक करे ।

मुरदास भगवन्त भजन बिनु छिर छिर पठर जरे ।

मूर सागर—प्रथम स्कन्ध ३५ ।

ब्रह्मभूतप्रपाय में भगवद्भक्ति का विधान मिलता है । इस भक्ति भाव धारा का उद्भव 'धीमनुभाषण' है जहाँ भक्ति के भव में ही की विषया इस रूप में वर्णित मिलती है—

धर्षणं कीर्तनं विष्णो स्मरणं पाद सेवनम् ।

अर्पणं बन्दनं सार्वभौतम् निवेदनम् ।

इति भगवित्ता विष्णोर्भक्तिरूपेणवसशाखा ।

त्रिमेने भगवत्पदा लभ्यन्तेऽपीतमुत्तमम् ।

भादकृत-सप्तम स्कन्ध ।

अर्पण धर्षण कीर्तन स्मरण पादसेवन अर्पण बन्दन दास्य स्याद और आराध स्थित नमस्कार भक्ति के तात्त्विक हैं । इनमें धर्षण कीर्तन और स्मरण भगवान् के नाम और लीला में सम्मग्य रहने वाली क्रियाएँ हैं । पाद-सेवन अर्पण और बन्दन का सम्पूर्ण भगवान् के स्वरूप में है । दास्य स्याद और आराध स्थित ये भाव हैं । ये भाव भगवान् को भक्ति मिल जाते हैं । ब्रह्मपारम्य के अनुसार

भक्तों का साध्य है भक्तान की प्रेमावस्था की प्राप्ति । इस साध्य-हेतु मन्वा भक्ति साधन है । इन भाव भक्ति भावों के साथ बस्तुभावायन वास्तव्य तथा मयूर भावों का भी बोध किया । इस प्रकार मन्वा भक्ति के अतिरिक्त बस्तु-सम्प्रदाय में भक्ति की दूसरी विधा का भी विधान किया गया । यह विधान प्रेम लम्बा भक्ति का है । सुरदास ने मन्वा-भक्ति के साथ प्रेमलम्बा भक्ति का भी उल्लेख किया है—

मन्व कीर्तन स्मरण पाइ रह मरचन बंन दास ।
सख्य और मात्स्य निवेदन, प्रेम लम्बा बास ।
मूर साराबली सुरसागर ।

परमानन्द ने भी इसका भक्ति का वर्णन इसी रूप में किया है ।

ठाते दसधा भक्ति भली ।
जिन जिन कीनी जिनके मगते नेहु न बलन बली ।
मन्व परेयत तरे राजरिधि कीर्तन कर मुक्त वै ।
× × × ×
बलि आत्म समर्पन करि हरि राख अपने पास ।
अबिरल प्रेम लपो पानि को बलि परमानन्द बास ।
परमानन्द सागर ।

अध्याय १—भक्ति के इस विधान में मन्वान का नाम गुप्त और उनकी लीला के अन्वय का विधान किया गया है । सुरदास ने भक्ति के इस विधान की ओर संकेत करते हुये कहा है—

(क) ओ यह लीला मुने मुनाबै, सो हरि भक्ति पाई मुक्त पावे ।
(ख) ओ पर लुगि मुने-मुनाबै, मूर सा आन भक्ति को पावे ।

मूर सागर नवम स्कन्ध ।

‘रास पञ्चाशवापी क अर्धहार में नन्द बास में इसी भक्ति विधा के प्रति आस्था व्यक्त की है—

ओ यह लीला जित है मुने मुनाबै ।
प्रेम भक्ति सो पावे अज मय क जिय भाव प

भजन कीर्तन सार-सार सुमिरन को है पुनि ।

ध्यान सार हरि ध्यान सार, भुक्ति गुणी पुनि ॥

मन्द वास घन्टाबली—रास पञ्चाध्यायी पृ० २४ ।

कीर्तन —‘भाववत’ में कीर्तन-भक्ति का विधान मिलता है । ‘निरोप छन्द’ ग्रन्थ में कीर्तन-भक्ति के महत्व का वर्णन करते हुए बल्सभाचार्य ने कहा है कि भगवान के गुणवान से भक्त में ईश्वरीय गुण आते हैं ।

अष्टछाप के कवियों ने अपने पदों की रचना कीर्तन-रूप में ही की है । ये कवि गायक भी थे । अतः इनके समस्त पद विविध राग-रागिनियों के अनुसार किये गये हैं । कीर्तन की महिमा का वर्णन ‘सूरदास’ ने इन पंक्तियों में किया है—

जो सुख होत गुणकहि माए ।

सो नहि होत अप तप के कीने कोटिक तीरम न्हाये ।

× × + ×

बड़ी बट बुन्दावन ममुना तज बैकुण्ठ को जाए ।

सूरदास हरि को सुमिरन करि बहुरि न भगवत माए ।

सूर दास ३९१ ।

स्मरण —ईश्वर के नाम, गुण लीला आदि का स्मरण करना और उसमें एकाग्रता प्राप्त होना ही विद्या को स्मरण-भक्ति कहते हैं । स्मरण-भक्ति का सम्बन्ध मानसिक अंगत्वे से है । अष्टछाप के समस्त कवियों ने स्मरण भक्ति की महिमा का गान किया है । सूरदास ने इस भक्ति-विद्या के महत्व का वर्णन करते हुए कहा है—

हरि हरि हरि गुनियों सब कोई हरि गुमिरत सब सुख होई ।

हरि समान द्वितीय नहि कोई, हरि अलग रातो बिड कोई ॥

सूरदास, छि० स्कन्ध ।

स्मरण भक्ति के सन्दर्भ में परमानन्द के पदों का साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से विशेष महत्व है । इन पदों में कृष्ण की कल-आसक्ति का भक्ति तत्त्व और स्नेहित और मिश्रण वर्णन है । परमानन्द के हरि तेरी लीला की मुचि आये दीर्घक पद का उल्लेख परमानन्द की जीवनी के सन्दर्भ में किया गया है । ‘बीरासी बाणी’

में भी इस पद की महिमा का वर्णन मिलता है। इस पद के प्रभाव से आचार्य बसन्त हरि-स्मरण में तिरोहित हो उठे थे। उन्हें मूर्खी आघई थी। स्मरण बसन्त प्रायः विरह की अवस्था होती है। इस विरह की अनुभूति में यक्ष योय-मुख की अनुभूति करता है।

अवस्था कीर्तन तथा स्मरण भक्ति में भयवान के नाम की ही प्रशानता मानी जाती है। भक्तों ने नाम-संकीर्तन को अपनी भक्ति-पद्धति में विशेष स्थान दिया है। श्री कश्मीर के कृत 'मयबन्धन महिमा' नाम संकीर्तन के महात्म्य पर एक विरोध कृति है। कृष्ण-भक्त कवियों पर इस कवि का परोक्ष प्रभाव इष्टि योग्य होता है। अष्टाष्टा के कवियों ने नाम कीर्तन की महिमा में अनेक पदों की रचना की है।

पाद सेवन — पादसेवन भक्ति के सम्बन्ध में आचार्य बसन्त ने इस प्रकार की भावना व्यक्त की है—

सेवकानो तथा सेवे व्यवहार प्रसिध्दति ।

तथा काय सज्ज्योर्वा क्लृप्ता ततः ॥

सिद्धान्त रहस्य ।

इस सत्य के अनुसार भयवान और भक्त का सम्बन्ध सेवा और सेवक का है। अतः भक्तानु के नीतिकारणों के रूप में अष्टाष्टा के कवियों ने 'धीताम' भी के कारणों की बन्दना की है। साथ ही साथ भयवान के अधौनिक कारणों की बन्दना और सेवा में भक्त अपने मानसिक अवस्था में करते मिलते हैं। सुरदास के कृष्ण के कारणों की बन्दना संकर, छाया और सेवा आदि करते हैं। उनके कारणों के पावन स्पर्श से लीला भी पावन हुई है। सुर ऐसे कृष्ण के कारणों की बन्दना करते हैं जिसकी कृपा से पंगु पर्वत पार कर जाते हैं यून को आभी का कारण निकल जाता है।

चरन कमल बन्दी हरि दाई ।

बाकी हुआ पंगु मिरि लंबे अघि को धर बसु हरबाई ।

बहिरो सुने मुक पुनि होले रंक बसे तिर छन बराई ।

सुरदास स्वामी ब्रजामय, बार-बार बन्दी तोहि पाई ।

अष्टछाप के कवियों ने बसन्तभाष्य और उनके पुत्र बिट्ठलनाथ के पदों की सेवा भगवान के चरणों के रूप में की है—

हम तो बिट्ठल नाथ उपासी ।

एसा सेठ्ठे थी बसन्त मन्दन बाइ करौ कहा कासी ।

इन्हे छोड़ जो बीरे ध्याये सो कहिये असुरासी ।

छीत स्वामी बिरबरन थी बिट्ठल बानी निगम प्रकासी ।

छीतस्वामी पर ४२ ।

अष्टछाप और बसन्त सम्प्रदाय पृ० १८२ ।

अर्चन — भगवान के जर्नीवतार की कल्पना में इस विश्वास को बिकास मिला है कि भगविर की मूर्ति में समुद्र और बल्लभनों में भगवान बिराजते हैं । इन्हें भगवान की प्रतिमूर्ति मानकर भक्त इन्हें अपनी प्रिय से प्रिय वस्तु का अर्पण करता है । अर्चन की दो विधायें मानी गई हैं । (क) बाह्य या स्वरूप अर्चना इसके सिवां सोलह प्रकार के उपचार माने गये हैं, जिनमें अर्पण अर्पण पाद घृण बीज नैवेद्य और ताम्बूल आदि के विभिन्न विधान मिलते हैं (ख) मानसिक अर्चन या समर्पण । इसमें बाह्य उपचारों की आवश्यकता नहीं पड़ती है । सूरदास ने 'सूरसागर' में अम्बरीष की कथा के उपर्य में अर्चन मन्त्र के विधान और उसके मूल्य का निर्देश किया है । सूरदास ने एक अन्य पर में भगवान के भव्य गीरावत-अर्चन के उपर्य में अर्चन मन्त्र के अति प्रभावपूर्ण स्वरूप का विवरण दिया है । इन्होंने भगवान के गीरावत के अति स्वरूप का विधान किया है, उसमें रवि राशि, गगन अग्नि गारुड सनकादि प्रजापति देवता समुप्य अमुर सभी एक पात्र भाग लेते हैं । अर्चनामन्त्र की इतनी जीवन्त और जीवन-दायक शक्त का अन्य किसी उपर्य में उपलब्ध नहीं होती ।

हरि जू की भारती बनी ।

अति विचित्र रचना रची राखी परति न गिरा पनी ।

कण्ठा बध आसन अनुव अति डोही रोप फनी ।

मदी सराब सप्त सागर पुत बाटी दंत फनी ।

रवि राशि ज्योति अगत परि पूरण हरत निमिर रजनी ।

उड़त पक्ष उड़गन नय अन्तर अजबन पाटा फनी ।

पारदादि वनकादि प्रजापति सुखर बनुर बनी ।
 काष्ठ कर्म मुख अन्न मन्त्र कष्टु प्रमु इच्छा रखनी ।
 यह प्रताप दीपक, तु निरन्तर लोक स्रष्ट मजनी ।
 बाके उचित नष्ट नागा बिधि बलि धयनी-अपनी ।
 मूर बाध सब प्रकट ध्यान में अति विविध समनी ।

मूरधाम द्वितीय स्कन्ध ।

परमानन्द हान मन्त्रधाम तथा मण्ड छाप के भक्त कवियों ने अर्चन सम्बन्धी
 गीतों की रचना की है ।

धन्वन—भक्त भगवान् के महात्म्य को हृदय में धारण करता है, उनकी
 स्तुति करता है उनके सम्मुख नत मस्तक होता है । भक्ति के इस विधान को
 'बन्धन-भक्ति' कहते हैं । मण्डछाप के भक्त कवियों के विविध स्तुति और
 प्रार्थना भाव से सम्बन्धित पदों में बन्धन भक्ति की प्रभावशाली मिस्रि है । निम्न
 लिखित पद में मूरधाम अपनी प्रार्थना में हृदय की बन्धना करते हैं ।

हुपा अब कीबिए बलि बाढे,

× × ×

तुन हुपानु कलानिबि केसव भवम उबारन मार ।

× × ×

मूर पतित पावन पर भंगुन क्यों पछिर बाढे ।

मूरधाम प्रथम स्कन्ध ।

दास्य सत्त्व और आत्म निवेदन भाव है । इनका आत्म-समर्पण होता है ।
 बल्लभाचार्य ने भक्ति का स्थाई भाव स्नेह ब्रह्मा प्रीति माना है । इस प्रीति की
 अभिव्यक्ति का प्रकार होती है—

(क) परमेश्वर को स्वामी मानकर सत्त्व प्रीति करना इसे दास्य भक्ति
 कहते हैं ।

(ख) परमात्मा को पिता मान कर मम्य प्रीति की कल्पना की गई है ।
 इसे मम्य प्रीति कहते हैं ।

(ग) परमेश्वर को बाह्य पुत्र और शत्रु मान कर आत्मत्व प्रीति की
 कल्पना की गई है । इस भक्ति को आत्मत्व-भक्ति कहा गया है ।

(घ) परमेश्वर को प्रति मान कर माधुर्य वा मृगार प्रेम की कल्पना की गई है। इसे माधुर्य भक्ति कहा गया है। देखिये—अष्ट छाप और बल्कल सम्प्रदाय मान २ पृष्ठ ५६८।

वात्स्य, वात्सल्य सत्य तथा मधुर इस प्रकार की भक्ति के स्थायी भाव हैं।

वात्स्य भक्ति से प्रभावित भक्त अपने प्रभु को बालक प्रभु, पिता और पुत्र के रूप में ग्रहण करता है। भक्त भगवान् के चरणों में आत्मनमर्पण करता है। और अपने उद्धार की प्रार्थना करता है। 'कृष्णाद्य' नामक ग्रन्थ में बल्कलभाचार्य वात्स्य भाव की भक्ति का स्वर्ण विधान करते हुए आत्मयोग के प्रकाशन भगवान् के प्रति विनय, और दैव्य भाव निष्कल का विधान भी करते हैं। अष्टछाप के कवियों की रचनाओं में वात्स्य भक्ति में सम्बन्धित पदों में इन सब भावों का प्रकाशन भक्ति के अनिवार्य तत्व के रूप में मिलता है। गुरुदास ने अनेक पदों में दैव्य भाव का प्रकाशन किया है। आत्म निवेदन के भावों का प्रकाशन किया है। भगवान् की चरण में आकर अपने उद्धार की कामना की है—

अब के नाथ मोहि उबारि

मगन हौ मग बन्धुनिधि में कृपा मित्रु मुरारि।

नीर अति गंभीर भावा सोम सहूरि तरंग।

क्षिप् आठ अगाध धल में गहे प्राहु अंग।

• • • • •

परायी बीज बिहाल बिहल गुनी कृपा मूल।

स्याम भुज गहि काढ़ि सीजे सूर बज के बूम।

गुरुदास और परमानन्द दास के अनिरुद्ध अथ्य भक्त कवियों की रचनाओं में दैव्य या वात्स्य भाव में सम्बन्धित पर लक्ष्य भाषा में ही मिलने हैं।

मधुर भक्ति—भगवान् की उपासना भक्त सदा भाव में भी करते हैं। न्य सन्मर्म में कृष्ण की बात सीताओं को अहित करने वाले पर उपलब्ध होते हैं। गोचारण के समय गोप कृष्ण के साथ ब्रीड़ा करते हैं। अपनी मधुर सीताओं में कृष्ण जाने गोप सगाओं को माय रखते हैं। गोप सगाओं के साथ कृष्ण नृत्य करते हैं। घान बाने हैं और बड़ी बजाने हैं। गुरुदासके एक पद में गोप सगाओं

न साव क्रीड़ा करते हुए कृष्ण बैठ जाते हैं । इस पर एक सखा कहता है कि
दीप्ता में न कोई स्वामी है और न सेवक । सेव में सभी समान हैं । सबको
उमान रूप से लेख लेखना चाहिए—

लेख में को काको कावेयौ ।

हुरि हारे बीठे दीरामा बरबस ही कठ कल रिलेयौ ।

जाति पाँति हमरे कसु नाहीं न बसत तुम्हारी छाँडिग्यौ ॥

अति अधिकार बनावत माते अधिक तुम्हारे हैं नसु परयौ ।

कठि करे ठाठो को लेखै रई पोटि बहौ उहौ सख भेयौ ॥

सूराठ प्रभु लेखोई चाहत बाँध दपो करि नख दोईयौ ।

सूर सागर दसम स्कन्ध ।

सत्य भाव की भक्ति का आधार रूप 'गुहामा हरिज मंत्रन' नामक प्रसंग में
लिखता है । इस लक्ष्मण में कृष्ण का चित्रण एक आधार भिन्न के रूप में कवि ने
दिया है—

हुरि ते देखे बसबीर,

अपने बाक सखा गुहामा मलिन बसन बस खीन धरीर ।

पोंडे हुते प्रयंक परस दधि नमिसनी बसर डोकावत धीर ।

उठि मनुकाइ बलमने खीने मिळत गीत भरि बापु नीर ।

सूर सागर पद ४०४६ ।

नीर— ऐसी शीति की बधि बाँझ ।

सिंहासन छवि चले मिळन को मुग्न गुहामा नाऊ ।

सूर सागर-पद ४०४८ ।

वात्सल्य भक्ति—वस्तुभाषार्थ ने वात्सल्य भाव की भक्ति को सर्वोपरि
माना है । इस भक्ति-भाव में भक्त के मन की भावनाओं पूर्णतः निष्कार्य भाव में
बनवान् की ओर आकर्षित होती हैं । यहाँ वात्सल्य भक्ति का विधान लिखता है ।
'भारत भक्ति सूत्र' में प्रेम-स्वस्वा भक्ति की धारण ब्रह्मचारियों का वर्णन मिलता
है । इनमें एक आत्मिक-वात्सल्य आत्मिक भी है । रूप गोस्वामी ने 'श्री हरिभक्ति
रहस्यमृत सिन्धु' में वात्सल्य भाव की भक्ति का निरूपण एक स्वतंत्र इसके रूपमें
दिया है । अष्टावक्र के कवि भी वात्सल्य भाव की भक्ति में अनुप्रेरित हैं । इन

कवियों में सूरदास और परमानन्द दास की रचनाओं में वात्सल्य भाव के पर
 जम्ब कवियों के पदों से आकार में व्यापक हैं। भावना की दृष्टि से अधिक गंभीर
 और प्रभावपूर्ण हैं। सूरदास ने गन्ध और यशोदा के बत्सल हृदय के बिधान में
 जीवन के रागात्मक अनुभवों का अति रसपूर्ण विधान किया है। बत्सल हृदय
 का उद्घाटन इन सन्धियों में सूरदास करते हैं—प्रथम कृष्ण की बाळ लीलाओं के
 वर्णन में, द्वितीय कृष्ण के वियोग में यशोदा विरह-वर्णन के सन्धर्म में। माता
 यशोदा धिनु कृष्ण को लोरी गाकर मुकाती हैं। कृष्ण का चपला देवकर आनन्द
 बिलक हो उठती हैं। इन सन्धियों में मातृ हृदय की मादनायें अति प्राकृतिक
 रूप में सम्मुख आई हैं।—

लास्यन हो तेरे मुख बारी।

बाळ बोपाल लमी इन नैननि रोम बसाई तुम्हारी।

सट छटकनि मोहन मसि बिंदुका तिलक भास मुखकारी।

मगहुँ कमल अलि छावक पंगति लठति मयुष छबिम्बारी।

× × × ×

मुखरता को पार न पावति रूप बैधि महतारी।

सूर सिन्धु की बौर मई मिलि मति बति दृष्टि हमारी।

कृष्ण मधुर बसे गए हैं। माता यशोदा का हृदय वियोग-पूरित हो उठता
 है। नयनील देखकर उनका हृदय द्रवित हो उठता है। कृष्ण की बाळ-लीलाओं
 की स्मृति में उनका मन मग्न हो उठता है—

मद्यपि मन समुद्रावत भोग

मूस होत नयनील बैलि मेरे मोहन के मुख भोग।

निशिबाधर छतिवों छे साजें बाछक छीका पाजें।

× × × ×

बिरल गही बय को हृदय हरि वियोग क्यों सहि।

गुह्यान् प्रभु कमल नैन बिनु कैसे बिधि हव भिद।

सूरदास दशम स्कन्ध।

वात्सल्य भक्ति के अन्तर्गत परमानन्द दास ने दास और कुमार रूपों तथा
 लीलाओं का वर्णन किया है। नन्द्याम के लीला-सम्बन्धी गीतों में वात्सल्य
 की यत्नीय उद्घाषणा नहीं हो पाती है। वात्सल्य के अन्तर्गत विदग्ध

का वर्णन निम्नलिखित पर में हुआ है ।

घोषाल बिनु कैसे रहिबो ।

बुसर बय उठाइ गोर सँ सास कौन सों कहिबो ।

बो मनुषुपी बिबस कामत है सोच सुत तन कहिबो ।

'परमा मन्त्र स्वामी' को उक्ति के सरन कौन की कहिबो ।

परमात्मर सागर, पर, ८० ।

मधुर भक्ति — ब्रष्ट छाप के कवियों का साम्य है मधुर भक्ति । भक्ति क ब्यक्त्य स्वरूप प्रेमभक्ति के बराबर-स्वरूप है । इन कवियों ने घोषी भाव से कृष्ण के नैक्य की अनुभूति प्राप्त करने का प्रयत्न किया है । घोषी भाव से इन्होंने संयोग और वियोग, इस दोनों प्रकार के भावों का प्रकाशन किया है । ब्रष्टछाप के कवियों ने मधुर भक्ति के सन्दर्भ में स्वकीया-भाव का ही प्रयत्न किया है । परकीया भाव इनकी मधुर भक्ति का भाग्य नहीं था । इस प्रकार कोक-जीवन में जो श्रु पार रस है, वही भक्ति के क्षेत्र में मधुर रस है । गोविन्दों के दो रूप इस सन्दर्भ में देखने को मिलते हैं । प्रथम कुमारी गोपियों का रूप है, जिनका प्रेम स्वकीया-कोटि का है । दूसरा रूप विदाहिता गोपिकाओं का है, जिनका प्रेम परकीया-भाव का है । परन्तु इन सब कवियों ने स्वकीया भाव के प्रति ही विशेष आस्था व्यक्त की है । गोपियाँ उदय के सन्देश का जो प्रत्युत्तर देती हैं, उस से सम्बन्धित पदों में स्वकीया-भाव की ही ध्वनि निकलती है ।

हय बलि दोहुत माव बराब्यो ।

मन क्रम बच हरि सौ घर पति ब्रष्ट प्रेम कोय तप साब्यो ।

मातु पिता दित प्रीति निमग्न पय तनि दुख सुख भ्रम नाब्यो ।

मन अपमान परम पछोपी मुस्सस बिचि मन राब्यो ।

माधुर्य भाव की मक्ति में इस प्रकार की भावना मिलती है कि गोपियों ने कृष्ण को बीमार्य अवस्था में ही पति के रूप में बरण कर लिया था । गुरदास गन्दास आदि न राधा को कृष्ण की परिणीता के रूप में चित्रित किया है—

सबनी बीनर जर न समाई ।

बरकाने रूपमान कयन किछि पटई है कन पाई ।

बोरी ब्रुमरी बेनु बिबिध रंग घोसित ठाई ठाई ।

भूषण भलि बल पार नाहिने छी बल देख कुमार्दे ।

नम्र बास सास निरधर की दुलहिन पर बलि आठ ।

मन्दरास ।

लौकिक प्रेम में पूर्वराम की अवस्था का वर्णन मिलता है । अष्टछाप के कवियों ने गोविन्दों की पूर्वराम भावना का आधार ग्रहण कर भक्त में अवस्थित पूर्व-राम-अवस्था की आसक्ति के स्वरूप का वर्णन किया है । किशोर कृष्ण के रूप-सावध पर कुमारी गोविन्दों मुख्य हैं । और कृष्ण के सौन्दर्य के प्रति भक्त भी इसी रूप में आसक्त हैं । अष्टछाप के कवियों ने इस प्रकार की आसक्ति भावना की व्यञ्जना के लिए वृत्ति व्यापक मात्रा में पूर्व राय-सम्बन्धी पदों की रचना की है । निम्नलिखित पद में गोपी की आसक्ति-भावना चित्रण में भक्त की मनोभूमि का परिचय मिलता है :—

मन मुख देख्यो मोहन नैन बात छी ।

मुह माव की सैन अचानक तकि ठाक्यों भ्रुकुटी कमान छी ।

प्रथम मात्र बळ चरि निश्चय सै मुरली सतक मुर बंषाज छी ।

पाछे बंक चिते मधुरे हँसि पात किए उलटे मुठान छी ।

सुर गुबार बिना या ठनु की घटल नहीं औपधी मान छी ।

हूँ है मुख ठवहीं छर अंतर आसिपन विरिधर गुमान छी ।

दूरसागर ।

गोपी और कृष्ण के संयोग चित्रण में घट्टों ने ईश्वर के सामिप्य और सखी अपने नैकस्थ भाव का वर्णन किया है । उन्होंने गोविन्दों की अनुभूतियों पर अपने भावों का आरोपण किया है ।

मधुर भक्ति में विरह-अवस्था एक आवश्यक स्थिति मानी गई है । बल्लभाचार्य ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए यह कहा है भक्ति के आध्यात्मिक स्तर में विरह एक अनिवार्य अवस्था है । जिससे भक्त आत्मपरिष्कार करता है । अनेक विरह-वर्णनों में अष्टछाप के कवि बल्लभाचार्य के इसी सिद्धान्त से प्रभावित हैं । प्रेमभक्ति में विरह सिद्धान्त प्रतिपादन में ये भक्त कवि 'नारद भक्ति-सूत्र' से भी पर्याप्त अव में प्रभावित लगे हैं । यहाँ प्यार प्रकार की आसक्तियों का वर्णन है । इन आसक्तियों में 'परम विरहासक्ति' का भी वर्णन

है। प्रेम की तीव्रता बिना अवस्था में ही प्रिय के लक्ष्य के महत्त्व का बोध कराती है। बिना की इस महत्ता का वर्णन गूर की एक गोपी उद्धव से कराती है —

ऊपौ बिहौ प्रेम कर ।

ऊपौ तिनु पट पट बहुत न रंग को रंग न रस परे ।

ऊपौ नर बहै बीज बंजुर मिरि तो सत फरनि करे ।

ऊपौ पट अनक दहत तन अपना पुनि पम बसी मरे ।

ऊपौ रन गूर सही सर सम्मुख तो रवि रसहुँ बरे ।

गूर गुणक प्रेम पप बलि करि, नयो दुख मुकनि बरे ।

गूरसागर पद १७०५ ।

शान्ता भक्ति :—शान्ता भक्तिका परिचय देते हुए डॉ० वीन द्वाबा गुप्त ने कहा है कि भक्त संसार की अस्थिरता का परिणाम कर वासनाओं से ऊपर उठता है और बिना की शान्त अवस्था में परमात्म्य की अनुभूति प्राप्त करता है,

यही शान्त भाव है। काव्य-शास्त्र के अनुसार इसे शान्त रस कहते हैं। उत्सर्ग रूपरेख भक्ति आदि इसके उद्दीपन विमाप हैं। निर्दोषता, निर्दोषकारिता इसके सर्वगामी भाव हैं। रोमाञ्च, प्रक्रम-हर्ष न शोचक निम्न अनुभाव हैं। देखिए

अष्टधाप और बह्मस सम्प्रदाय पृ० १५०। इस रस का स्थायी भाव निर्वेद है। अष्ट धाप के कवियों की रचनाओं में वैराग्य, आत्मप्रबोध, जिन्य, आत्मनिवेदन आदि भाव व्यक्त मिलते हैं। इन पदों की मुख्य धारा शान्त रस की है। शान्ता-

भक्ति से सम्बन्धित गूर दास का एक पद दिया जा रहा है —

नमो-नमो है कृपा निबान ।

बिठवत हुना कटाक्ष तुम्हारी, मिटि प्यो तम-अज्ञान ।

मोह निरा को कैस रह्यो नहि, नयो निवैक निहान ।

+ + +

मेरे बिय अब यही छाछसा लीसा थी मयबान् ।

सबन करौ निमिषावर हित सौ गूर तुम्हारी जान ।

गूर सागर, पद १७६ ।

‘नारद भक्ति सूत्र’ में भक्ति के व्याख्येयों का उल्लेख है। इन भेदों के आधार पर ‘आसक्ति-भक्ति’ का विधान मिलता है। वे इस प्रकार हैं—
 गुणमहात्म्यासक्ति वपासक्ति पूजासक्ति, स्मरणासक्ति दास्यासक्ति, धरम्यासक्ति,
 कामासक्ति वात्सल्यासक्ति, निवेदनासक्ति उगमसासक्ति और परम विष्णुसक्ति
 अष्टाद्वय के कवियों ने इस प्रकार की आसक्तियों से सम्बन्धित पदों की रचना
 अति व्यापक भाषा में की है। भक्ति की विवेचना के सम्बन्ध में लिए गए
 दिग्गज सिद्धांतकारों में इन भक्ति-रूपों का स्पष्टीकरण हो जाता है।
 पुनरावृत्ति के समय से यही स्वतन्त्र रूप से विचार नहीं किया जा रहा है।

बुद्धिमानों में दर्शन

पुष्टिमार्ग के सम्बन्ध में रचित काव्य काल की दृष्टि से ‘गुडाईत वादी’^१
 है। इस सम्प्रदाय को ब्रह्मवादी या अविकृति परिणामवादी^२ भी कहा गया है।

‘अन भाष्य’ में ‘पुष्टि मार्गीय भक्ति पर विचार करते हुए ब्रह्मभाष्य ने
 कहा है कि पुष्टि मार्ग की अपसम्पन्न भगवान् के अनुग्रह से ही सम्भव है श्रीकृष्ण
 का अनुग्रह ही पुष्टि है। अतः ग्रन्थ ‘सिद्धान्त मुक्तावलि’ में भी ब्रह्मभाष्य ने
 इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। इसके लिए भगवान् की स्नेहपूर्वक सेवा
 तथा प्रभु-भूषा अपेक्षित है। श्री हरिराय ने श्री पुष्टि मार्ग कदाचारि नामक
 पद्य में इस सिद्धान्त की विषय व्याख्या की है। ब्रह्मन् सम्प्रदाय में प्रस्थान

१ यहाँ गुड का अर्थ है माया के सम्बन्ध से रहित। माया के सम्बन्ध से
 रहित ब्रह्म ही अपसत् का कारण है, बही कार्य भी है। मायासम्बन्धित ब्रह्म
 कारण और कार्य नहीं है।

माया सम्बन्धरहितं गुडस्तिपुण्यते कुपै

कार्य कारण एवं हि गुड ब्रह्म न मामिहम् ।

गुडाईत मार्तण्ड श्री विरपरजी ।

२ अतः ब्रह्म का विचार-रहित परिणाम है। दूध का परिणाम दही तबिकारी
 है। वह फिर दूध नहीं हो सकता है। अष्टाद्वय और ब्रह्म-सम्प्रदाय भाग
 १ अध्याय पंचम पृ० ३६३ से ब्रह्म ।

बसन्तभाचार्य की प्रसिद्ध रचना है 'तत्त्वदीप निबन्ध ।' इस ग्रन्थ में इस ग्रन्थ का निर्योधन मिलता है कि ब्रह्म की इच्छा एक से अनेक होने को हुई । फलस्वरूप उस एक ब्रह्म से अवगणित जीवों का प्रसृज्जन हुआ । ब्रह्म बंधी है जीव बंध है । सूरदास ने इस सिद्धांत को स्वीकार किया है । ब्रह्म अपने लिए बंध से अनेक जीव-रूप में स्थित है । जीव इस संसार में अपने सत्य स्वरूप को विस्मृत कर देता है । जीव की यह विस्मृति अवस्था है । निम्नलिखित पद में सूर ने जीव के इन आत्मविस्मृत अवस्था का वर्णन किया है ।

अपुनपी आपुन ही बिसर्यो ।

जैसे स्थान कौंच मन्दिर में भ्रमि भ्रमि भ्रुति मग्यो ।

क्यों अपने में रंक मूय मयो तस्कर भरि पकर्यो ।

जो कहुरि प्रतिबिम्ब बेसि के आपुन कूय पय्यो ।

जैसे कब कलि फटिक सिला में बल्ललि जाम जर्यो ।

मर्कट मूठ छौंड़ि नहिं बीनी पर पर द्वार छिर्यो ।

सूरदास ममिनी को मुबटा कहि कौने बकर्यो ।

सूर दासर—द्वितीय स्कन्ध ।

जीव माया के आचरण में है । जीव माया में ही अपना प्रतिबिम्ब देखता है जैसे ही जैसे स्थान कौंच के मन्दिर में अपना प्रतिबिम्ब देखकर भ्रम में पड़ता है । माया का भ्रम स्वप्न में सोये हुए मनुष्य के भ्रम के समान है । बसन्तभाचार्य ने जीव की दो अवस्थाओं की कल्पना की है बड़ जीव और शूठ जीव । प्रथम संसार में निप्त रहता है, द्वितीय संसार में अस्मि रहता है—

जीव को मुग दुग तनु संग होई ।

जोर बिजोर तनु संग छोई ।

बेइ अनिमानी जीवहि जाने ।

जानी जीव अक्सि करि माने ।

सूर दासर पद्य स्कन्ध ।

जगन् का स्वरूप — बसन्तभाचार्य ने 'तत्त्वदीप निबन्ध' तथा अणुमाप्य नामक ग्रन्थों में जगत्-नामकी विचार का प्रतिपादन किया है । इन रचनाओं

में इन्होंने स्पष्ट किया है कि जीव का प्रकटन ब्रह्म के बिम्ब अंश से, और सत् अंश से ब्रह्म जगत् का विकास हुआ है । जगत् नागोक्तपात्मक है परन्तु जब के प्रत्येक रूप में ब्रह्म का सत् अंश ही परिष्कार है । ब्रह्म जगत् की व्युत्पत्ति का हेतु है । बाप्ट धाप के कवियों ने अपने दार्शनिक सिद्धांतों के निरूपण में बहुधा जीव विचार बारा का ही प्रतिपादन किया है । ब्रह्ममाचार्य ने संसार और जगत् की उत्पत्ति-विकल्प कल्पना की है । इनके अनुसार संसार का उत्पादन कारण अविद्या माया है निमित्त कारण अविद्या माया में परिवर्द्ध जीव है । इस प्रकार संसार जगत् है । इसके विपरीत जगत् सत्य और नित्य है ।

मिथ्या यह संसार और मिथ्या यह माया ।

मिथ्या है यह देह कबो कबों हुरि बिसराया ।

तुम जाने दिन जीव उत्पत्ति प्रलय समाहि ।

धरम मोहि प्रभु राखिबे चरण कमल की छाहि ।

सूर सामर, प्रथम स्कन्ध ।

माया—‘तत्त्व जीव मिथ्या’ में ब्रह्ममाचार्य ने माया के दो रूपों की कल्पना की है, प्रथम अविद्या माया, द्वितीय, विद्या माया । अविद्या माया सत्य पर आवरण डालती है और ब्रह्म भाव का आवरण कर पारमेश्वर का बोध कराती है । रज्जु में सर्प की प्रतीति जिस प्रकार होती है, उसी प्रकार माया के कारण जगत् का भाव होता है माया व्यामोहिका है । यह जीव के प्रति व्यामोह उत्पन्न करती है । ब्रह्ममाचार्य माया के पाँच भेदों का उल्लेख करते हैं—अज्ञ-करण, अभ्यास, प्राप्ताभ्यास, इन्द्रियाभ्यास, बेहाभ्यास, अज्ञान स्वरूपा । भक्त माया के इन विविध स्वरूपों का विनाश करता है । यह विनाश मयबाल के अनुग्रह पर अवलम्बित है । ब्रह्ममाचार्य ने माया के दो स्वरूपों की कल्पना की है सत्य और भ्रम । संकराचार्य ने माया को भ्रम-स्वरूपा माना है । प्रथम कोटि की माया सत्ति-स्वरूपा है । यह माया ब्रह्म की शक्ति है ब्रह्म के अनुसार सृष्टि का प्रसार आविर्भाव और विरोधान करती है । अविद्या माया जीव के ज्ञान का विनाश करती है । जीव संसार में भ्रमिष्ठ होता है । विद्या माया उसका उद्धार करती है । संकराचार्य ने जीव-जगत्, दोनों को जगत्पूर्व माना है । अविद्या के नाश से इन दोनों का नाश होता । ब्रह्ममाचार्य के

अनुसार अधिष्ठा के मातृ के परमात् ही अष्ट छाप के कवियों ने अधिष्ठा माया का ही विषय अति व्यापक रूप में किया है। विष्ठा माया का विषय यही अल्प मात्रा में हुआ है। सूरदास ने अधिष्ठा माया का वर्णन इस रूप में किया है—

महा मोहिनी मोह आत्मा मन करि अर्थाहि भ्रमावै ।
 भ्यों बूती पर बंधू मोरि कै लै पर पुरुष दिखावै ।
 माया गटिनि लुट्ट कर लीने कौटिक नाच गवावै ।
 पर दर लोभ लागि से होअति नागा खौन करावै ।

सूर सागर प्रथम स्कन्ध ।

परन्तु विष्ठा माया अविवक्षित और अवर्त्तनीय है। उसकी शक्ति का परिचय गुरुदास ने इस प्रकार दिया है।

बागर पै सागर करि राखे बहुत रिधि नीर मरै ।
 पाहन बीच कमल बिफराही बल में अग्नि बरै ।
 राजा रंक रंक ते राजा से सिर छन बरै ।
 दूर पतित हरिबाद तक में जो प्रभु नेकु बरै ।

सूर सागर प्रथम स्कन्ध ।

यम प्रकार अष्ट छाप के कवियों ने माया के दो रूपों का वर्णन किया है एक, रूप की आदि शक्ति माया दूसरी उस माया का जो मनुष्य को परिग्रहित करती है।

माहस —भक्ति के उत्पन्न में मोक्ष की चार अवस्थाओं की वस्तु की गई है। शान्ति १ गमीप्य २ शाक्य ३ और मायुग्य ४ ब्रह्मवाचार्थ की यह मायता है कि पुष्पिनि का उत्सव मुक्ति अवस्थाओं से ऊपर उठकर भगवान् की लोच-भीता में आनन्द मेला है। भगवान् की नित्यसीमा का मैत्र्य मयोग और वियोग दोनों रसों से सम्मिश्र है। मुक्ति की चार अवस्थाएँ वेदसंग्रह की हैं। अतः इन मुक्तियों की अग्रा विह्वलति के प्रति अष्टछाप के रवि आस्थावान् रहें हैं। अतः पूर्ण मुक्तोगम लोच है। यहाँ पहुँचकर पूर्ण

१ भगवान् के नियम नाम में निवास २ भगवान् की नियम गमीप्य ३ भगवान् का सा रूप ४ भगवान् के निग्रह में समावाता ।

शु की आनन्द-सीताओं का आनन्द विग्रह से अनुभव करना बन्धन सम्प्रदायी
जग का परम उद्देश है ।

इस प्रकार सुरदास न समुप कृत्य की उपासना से मुक्ति की चार बंध
बांधों की उपलब्धि की सम्भावना का उल्लेख किया । सीता भूमि के वैष्णव के
सम्मुख बैकुण्ठ की वे उपाशा करते हैं । ब्रजनिवास के सम्मुख बैकुण्ठ मुख
लयाव्य है—

जो सुख हीन प्राप्तहि जाए ।
तो मुख होत न बाप तप कीन्हें कोटिक तीरथ न्हाए ।
रिऐं सित नहि चारि पदारथ चरन कमल चित भाए ।
हीनि लोक नून सम करि सखाउ, नन्दनन्दन दर भाए ।
बंसीनद कृपावन अनुता तखि बैकुण्ठ न भावे ।
सुरदास हरि की सुमिरन करि, बाधुरि न घन बल भावे ।

सूरदासर १४ ३४६ ।

इस ओर संकेत किया गया है कि बहुभाषार्थ के अनुसार परमेश्वर की
सीता के शापीय से ही मोक्ष सम्भव है । मोक्ष की विना चार बन्धबांधों की
कल्पना की गई है, उनमें संयोग-मुख की ही सम्भावना है । परन्तु उसके सीता
रस की अनुभूति वियोग में ही अधिक स्वाधी है । इस प्रकार विद्यासक्ति में
चारों प्रकार की मुक्ति सम्भव है । सुर की मोतियाँ इसी विद्यासक्ति की ओर
पद्म का ध्यान आकर्षित करती हैं—

ज्यो मुखे नैकु दिहारी ।
हम अवजनि को विसवन जाए, मुखी भान दिहारी ।
निरपुन कही कहा कहित है, तुम निरपुन अविमारी ।
केवत मुखन स्थाय सुन्दर को, मुक्ति कही हम चारी ।
हम छाछात्त, छक्क छामुखी, रहित समीप तवाई ।
सो तखि कहत ओर की ओर तुम बलि बके कवाई ।
× × × ×
तुम बजान कतहि उपदेसत, जान रूप हमही ।
निजि दिन ध्यान सुर प्रभु को बलि देवत त्रित तिरही ।
सूरदासर, ४३, १८ ।

रासलीला—कृष्ण-लीला ने अक्षरपंत रास एक प्रधान अंग है। रास कृष्ण की लीला है जिसके माध्यम से उसका अविर्भाव और तिरोभाव होता है। रास लीला में कृष्ण परब्रह्म हैं राधा और गोपियों कृष्ण से ही विकसित लीलात्मा हैं। यह रास समग्र सृष्टि में व्याप्त है। यह धिक्कामात्मनश्चित्तम् है। इस प्रकार अष्ट छाप के कवियों के सम्मुख रास का एक विशेष साधनिक अर्थ था। कृष्ण अप्राकृत हैं। गोपियाँ अप्राकृत हैं। इस रास के तीन रूप हैं—नित्य रास अवतरित या नैमित्तिक रास, और अनुकरणात्मक रास। अनुकरणात्मक रास के दो रूप माने गए हैं—मातृसिद्ध या भावारात्मक और वेहात्मक। नित्य रास की कल्पना में भगवान् का स्वल्प विधान आनन्द प्रसारिणी क्षणितियों के साथ होता है। इस सम्बन्ध के रास-स्वरूप को बलादि और अलम्ब कहा गया है।

कृष्ण ने अपनी क्षणितियों के साथ अवतार लेकर संसार में जो रास किया वह अवतरित रास है। भक्त अपनी भावनाओं में भगवान् के रास का जो मातृसिद्ध अनुमूर्ति करता है वह अनुकरणात्मक रास है। भक्त जब जब स्वयं रास की भूमिका में अवतरित होते हैं तो यह अनुकरणात्मक वैहिक रास है। रास की अनुमूर्ति केवल मधुर जन्ति से होती है।

अष्ट छाप के कवियों ने अपने रास-वर्णन में बहुभाषार्थ के रास सम्बन्धी इन्हीं आधारों को ग्रहण किया है। मुरदास अथवा मन्वदास ने अपने पदों में जिस रास का वर्णन किया है वह नित्य है कृष्ण नित्य हैं गोपियाँ नित्य हैं—

नित्य धाम नृन्दाबन स्याम । नित्य रूप राधा ब्रजबाम ।
नित्य रास बस नित्य बिहार । नित्य भान गङ्गितामिमार ।
कृष्ण रूप येई करतार । करन हरन त्रिभुवन येई सार ।
नित्य कृष्ण-गुण नित्य द्विद्वार । नित्यहि त्रिनिब समीर अक्षोर ।
मदा बल्लभ पदुत जहै बास । सरा हर्ष बहै नही उरास ।

मुरदास पद० १४११ ।

मन्वदास ने 'राज नृन्दावली' में रास के इसी स्वरूप का वर्णन किया है।

कृष्ण-बाल्य में गोपियों का चित्रण दो रूपों में हुआ है—एक, ईश्वर की सृष्टि वात्स्यी दानि के रूप में दूसरे कात्ता भाव से ईश्वर को मर्ति करने

वाली अत्यन्त प्रकट के रूप में । राधा आदि रस धारिण हैं, वे मन्त्र में लिखे हैं ।
कृष्ण राधा के अविचार में रहते हैं । राधा प्रकृति है, कृष्ण गुण है ।

मुरली कृष्ण की भाषा-व्यक्ति है । मामा के दो रूपों की बर्णना अमर की गई
है । प्रथम स्वस्व है 'योग' या 'विद्या' का । द्वितीय स्वस्व है 'प्रेम' या 'अविद्या'
का । मुरली योग रूपा है इसे 'योग माया' भी कहा गया है । यह मन्त्र का
अवगम ले वास्तविकार करवाती है । इस प्रकार मुरली योग-माया रूपा है ।
शूरदास मुरली के इसी स्वस्व का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मेरे साँवर जब मुरली अबर बरी ।

मुनि सिब-समाधि तरी ।

ग्रह मखत तखत न रास ।

बाह्य बंधे मुनि पाय ।

जब पाके बचल ठरे । मुनि आनन्द उमर नरे ।

मुनि केनु मुनि पाके रहित । तुन दखहु नहि महति ।

शूरदास, पद १२४१ ।

कृष्ण-काव्य का भाव पक्ष

हिन्दी कृष्ण-मन्त्र-काव्य में अन्तरवैयता और अनुसृष्टियों के भी रूप धाम्पुत्र
आये हैं, तबमें भावनाओं के संस्थित रूप-विभाग की अनुपेक्षा निरन्तर मिलती
है । कृष्ण काव्य एक सांख्यबोधिका काव्य है जिसमें बहुत धम्मदास की मन्त्र-
भावना और दर्शन रसालय संस्थाओं से जागरित है । अष्टछाप के कवियों ने रस
सिद्ध कण्ठों से मन्त्र-भावना के शास्त्रतत्त्व का मूर्तविधान किया है । इस
प्रकार इनकी रचनाओं में काव्य बर्णन और मन्त्र का महिमा-मन्त्रित संभव
मिलता है ।

कृष्ण-मन्त्र-काव्य का मुख्य विषय है श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं का
पान करना । शूरदास ने पायवत-कथा के माध्यम से श्री कृष्ण की लीलाओं का
पान किया है । इसी प्रकार की भाव-भोजना समस्त कवियों की रचनाओं में
मिलती है । कृष्ण के अलौकिक तथा उदात्त आध्यात्मिक स्वस्व के अनुपाद्य
आध्यात्मिक अनुसृष्टियों के प्रकाशन, एवं भावनाओं की रसपूर्ण योजना का
अपूर्व संभव इस वर्ग के काव्य की विशेष विशेषता है ।

सूरदास तथा अन्य कवियों के काव्य में भावनाओं के बेमरबुर्ण विधान के सन्दर्भ में प्रथम आकर्षित करने वाला तत्त्व उनका वात्सल्य वर्णन है। इस प्रकरण में सूरदास का कविकिञ्चन के कवि हैं। कृष्ण की वास-कीलाओं का प्रति भावपूर्ण वर्णन सूरदास के काव्य की विशेषता गरिमा है। अपनी सीसा की मिला मिला परिभूमियों में कृष्ण सहज मानव-गुण सम्पन्न लगते हैं, परन्तु उनका व्यक्तित्व धार्मिक चेतना और भावना से सज्जित भी नहीं है। कवि कृष्ण की वास-सुख और वास-कीला का वर्णन करता है। सूरदास वात्सल्य रूप में कृष्ण के रूप सौन्दर्य का संक्षिप्त विधान करते हैं। कृष्ण ब्रजब्रजस्थित नन्द के कनक औषध में घुटनों के बल बल रहे हैं। भुज पर छटे फैली हैं, कण्ठ घटरंगी कुम्हरी पहन हैं। सट भुज-कमल पर भ्रमर-पंक्तियों के समान हैं। घटरंगी कुम्हरी इन्द्र भनुष के समान है। स्वामहोठों में ब्रज की रस-पंक्तियाँ बाहों में विद्युत के समान छमती हैं (पृष्ठ १०३)। इस प्रकार वात्सल्य का सम्पूर्ण चित्रविधान इस वर्णन में हो जाता है। मजिमा कनक-औषध में लिखाकारी मारते शिशु कण्ठ घुटनों के बल बल रहे हैं। मजिमा औषध में उनका प्रतिबिम्ब पड़ रहा है। कृष्ण अपने प्रतिबिम्ब को ही पकड़ने के लिए पीड़ित हैं। उनकी स्वच्छ रसपंक्तियाँ मजिमा कनक-औषध में प्रतिबिम्बित हैं। कृष्ण की वास-कीलाओं से सज्जित हो पड़ोसा इस सुललाह के लिए नन्द को बुलाती हैं। उनका बसस हृदय भावन्द-पूरित हो जाता है और उनके स्तनों में ब्रज उतर आता है (११०)। हरि अपने औषध में पा रहे हैं बाज-मुल्लम कीड़ा कर रहे हैं—

हरि अपने औषध कसु गावत ।

तनक-तनक बरतन सौ नाचत मन्ही मनहि रिझावत ।

बाँह उठाई काजरी-प्योरी मैयलि टेरि बुझावत ।

कबहुँक बाबा मय पुफारत कबहुँक बर में बावत ।

बागल तनक आपने कर से तनक बदन में मावत ।

बबहुँ बिने प्रतिबिम्ब दाम्ब में लौनी छिए समावत ।

दुरि देखत अनुमति यह सीसा हृदय अनन्य बड़ावत ।

सर रमान के बातवति निज निहरी देगन भावत ।

गुरगापर, दयम-दय्य ।

यशोदा कृष्ण को पालने में मुक्ता रही है। लोरी गा रही है—

पक्ष्मा स्थान भुजावलि जननी ।

कटिबनुराय परस्पर बावलि, प्रफुल्लित ममल ह्येष मंद चरनी ॥

उर्मणि-उर्मणि प्रभु मुखा पसारत, हरि बसोमति अंकम धरती ।

सुरदास प्रभु मुनिव मधोदा पूरत कई पुरावन करनी । ६४ ।

एक क्षण पर में इस प्रकार का वर्णन मिलता है कि यशोदा कृष्ण को पालने पर लोरी गाकर मुक्ता रही है। लोरी के प्रभाव से शिशु निद्रित होने लगा है। मई मौसम हो जाती है। शिशु जाग पड़ता है। जननी पुन लोरी गाने लगती है

कबहुँ पलक हरि मूँह केत है कबहुँ अपर धरकावे ।

खेवत जान मोन झूके रहि, करि-करि सेन बतावै ॥

इहि अन्तर बाकुसाई तठे हरि जमुनलि जमुनै नावै ।

जो सुल सूर अपर-मुनि पुरकाव, सो मंद माँमनि पावै ॥

रसम स्कन्ध । ४२ ।

इस प्रकार कवि ने कृष्ण की बाक-झीड़ाओं के प्रति जीवम-व्यापी स्वल्प का रूप बिधान किया है। इन वर्णनों में यशोदा के वात्सल्य की ही प्रधानता है। माता यशोदा अपने शिशु के बड़े होव की कामना करती हैं। शिशु की तुलसी बोली पर उनका मन रीझ जाता है। अपनी बाक-झीड़ के सम्म ही कृष्ण पुण्या सुभाकर्ष और छछटादुर वारि का वच करते हैं। इस प्रकार कृष्ण की अलौकिक सीढार्य बाक-झीड़ा के बंध के रूप में वर्णित हैं। कृष्ण के ये व्यापार आरोपित नहीं लगते हैं। उदाहार्य स्वल्प सुभाकर्ष-वच के वर्णन को ले। इस अंश में वात्सल्य रस के चरम में ही अलौकिक घटना घटती है। यशोदा अचिन्तावा कर रही है कि कब मेरा शिशु 'बुढाग' बसिया। अनी इस प्रकार के सोच ही रही थी कि सुभाकर्ष-वच की अलौकिक घटना घटती है—

जमुनलि मम अचिन्ता करै ।

कब मेरो जान बुढावलि रेके कब करली कम टव करै ।

×

×

×

×

इहि अन्तर अंबबाइ उठ्यो इक, गरबत पवन सहित बहुरे ।

सुरदास ब्रज लोग सुनत बुनि, जो कहैं तहें सब अतिहि डरे ।

सुरसागर ७९ ।

इस प्रकार के वर्णन-संक्षेपों में सुरदास अनिवार्य रूप से संकेत करते हैं कि कृष्ण परब्रह्म हैं । उनकी बाल-लीलाओं में उनके असौमिक व्यक्तित्व की ओर संकेत करते हैं—

कर कहि पम अंघुठा मुख मेसत ।

प्रभु पीछे पाछने अकेसे हरषि हरषि अपने रंग खेसत ।

उग ब्रज बासिनि बात न जानी समुझै सूर सनट पगु वेसत ।

ब्रज बासियों को कभी-कभी इस सत्य का आभास मिच भी जाता है कि कृष्ण असौमिक हैं । परन्तु यद्यपि इसकी वस्फला भी नहीं कर पाती है कि कृष्ण असौमिक व्यक्ति हैं । कृष्ण की असौमिक लीलाओं को वे आकस्मिक घटनाओं मानती हैं । उन्हें अपने बाह्य के सामर्थ्य पर आश्चर्य होता है । परन्तु, अन्त में पुनः की मंगल-कामना से आपुरित मन परचाताप करता है यदि कहीं बाह्य का अर्पण हो जाता तब—

अनुमति मुनि मन चम्बित भई ।

मैं बरषति बन जात क्यूँसा काँपी करे गई ।

वहाँ-जहाँ ठै उबर्यो मोहन, नैकु न ठऊ डरात ।

बापुन वहाँ तनक सौ बत में सुनो बहुत भै मात ।

मेरी कइयो सुनो जो कइयनि कहति यद्योदा सीमत ।

सूर-बदाम कहाँ बन नहि खेहो यह कहि मन-मन रीमत ।

सुरसागर दसम स्कन्ध ४३४ ।

कृष्ण की बाल लीलाओं के मध्य काली (नाग) दमन की घटना का उल्लेख मिलता है । इस अंग में सुरदाम नाम की प्रयत्नकर्ता की अवेगता कृष्ण के शरीर के सौन्दर्य-स्वरूप का ही चित्र विधान करते हैं । कृष्ण की दास लीला के मध्य में नाग ओर अनुमूर्तिओं के त्रिश सौन्दर्य विधान की रचना कवि करता है उनमें विन्न विधान दश अंग की व्यष्टयताओं का नहीं है । नाग की अर्पणा शरीर-सौन्दर्य में ही समर्पित हो उठती है—

कन कन प्रति निरतत नख नखन ।

बल भीतर पुन बाम रहे नखुं मिट्यो नही तन बरन ।

सहै काहनी कटि पीठाम्बर सीस मुकुट भलि सोहत ।

मावो मिरि पर मोर अमंजित, देखत दब-बन मोहत ।

अंतर बके अमर लज्जा संव बँ बँ बुनि तिहुं ओक ।

सुर स्याम कासी पर निरतत भावत हैं ब्रज ओक ।

सूरसागर, १६२ ।

बट्ट झाप के कमि कृष्ण के बाल-सीसा-वर्णन के सम्बन्ध में 'बहि-सीसा और 'बाजन बोरी' के बरों में कृष्ण की बाळ-काँड़ा के अति सुमधुर, मोहक और सिलभ वर्णन करते हैं । कृष्ण बाळ-सबाजों के साथ बहि-मासन की बोरी करते हैं । यह व्यापार उनकी बाल-सीसा का प्रमुख संग है । एक पर ये इस प्रकार का वर्णन किया है कि काँड़ा करते स्वाम एक आश्रित के घर में प्रवेश करते हैं । घर सुना है । कृष्ण माजन लाते हैं दुग्ध मिरा देते हैं पात्र प्येड़ देते हैं । इस बीच आश्रित बा बाठी है । कृष्ण को पकड़कर यशोदा के पास लपात्तम देती है—

स्वाम गए आश्रित घर सुनो ।

माजन बाह डारि सब मोरस, बाळन करि सोह हठि दूनो ।

×

×

×

बाह नई आश्रित तिहि बीतर निकसत हरि करि पावो ।

देखत पर बाळन सब पूटे दही दूध डरकावो ।

होठ मुख बेरि मोह करि सीन्हे, यई म्हरि के बाये ।

सूरसागर अब बसै कौन झौं, पति रहि है ब्रज त्याये । सूरसागर ।

कृष्ण मौ यशोदा से कहते हैं कि हम पर इस प्रकार का दोषारोपण अपायपूर्ण है । माजन की बोरी सबाजों ने की है, अपनी बोरी छिपाने के लिए उन्होंने मेरे (कृष्ण) मुख में माजन छुवा दिया है । कृष्ण माता से प्रमाण में कहते हैं पात्र अँके 'सीन्हे' पर है । मैं अपने गधे कर से उसे कँठे पर लपटा हूँ—

देखत तुहौ सीन्हे पर माजन अँके कर लटकायो ।

तुहौं निचखि नाहँ कर अपने में अँके करि पावो । सूरसागर ।

इस प्रकार के अनेक पर सूर दास की रचनाओं में उपलब्ध हो जाते हैं ।
 कतिपय पदों में इस प्रकार का भाव व्यक्त मिलता है कि गोपियों कव्य के क्यकी
 प्यासी हैं, उनके मन में यह समझाया भाव करती है कि कव्य उनके घर मासन
 चोरी करने जावे जिससे वे उनके क्य-सौन्दर्य का पाग कर सकें । मासन चोरी के
 समय गोपियों कव्य को क्षिप्त कर बैठती हैं उनके वर्चन-मुख से व्याप्यारिष्ठ हो
 उठती है । कव्य और गोपियों के पारस्परिक सम्बन्धों के स्वर्ग में सुखास
 अनुभूतियों के विविध कव्यों का विस्लेषण करते हैं और मानों के आवेग में
 प्रवाह पूर्ण कव्यों का वर्णन करते हैं । इन वर्णनों में रागात्मक वृत्तियों का चित्रण
 सहज रूप में हुआ है । कव्य के व्यवहारों से गोपियों भीमती भी हैं और
 यथोक्त को उपास्य भी होती है । परन्तु इन उपास्यों में प्रेम भावना ही
 धर्मित मिलती है—

कुनहु महरि अपने सुत के सुन कहा कहीं किहि भोसि बगई ।
 बोली प्यारि हार सहि सोरुपी इन बातनि कहौ कोन बड़ाई ॥
 मासन छाह खवायो प्यासन को उबरयो छो रियो कुटाई ।
 कुनहु सूर चोरी सहि धीन्ही जब कीये सहि प्राप्त दिखाई ॥

सूरदासर वचन स्कन्ध पद १२१ ।

वस्तुतः इस अंश में गोपी के हृदय की प्रेम भावना की व्यञ्जना वर्णन का
 मुख्य उद्देश्य है । इस प्रकार के अनेक अंश मिलते हैं जिनमें गोपियों के उपा-
 स्य में उनके प्रणय बिच्छू कव्य का प्रतिबिम्ब मिलता है । मार्ग चलते हुए
 कव्य गोपियों को रंग करते हैं । मन में प्रेम-अनुभूति से वे पुलकित होती हैं ।
 अपनी मन से वे उपास्य देती हैं ।

देखो नाई या बाळक की बात ।

बन उपवन सखि-सर मोहै, बैसत स्वामन गात ।

मारम बल्ल जनीति करत है हट करि मायन रात ।

पीताम्बर बहु सिर ते ओझ, बचक के मुमुकात ।

सूरदासर वचन स्कन्ध १५६ ।

गृधर की भूमिका में राधा-कव्य मिलन के वर्चन-स्वच्छ विशेष मोहक है ।
 कव्य लीला कर रहे हैं । हाथ में जीरा बड़ोरी है । इस प्रकार लीला करते

करते हुए बमुना-उट पर पहुँचते हैं। प्रथम बार राधा-कृष्ण का परिचय होता है—

गए स्वाम रनि उनया कँ उट अंग लसति बदन की खोरी ।

बीजक ही देखी तँह राधा नैन विछास पास किए रोरी ॥

× × × ×
 संग सरिजनी बसि इति बाबसि, दिन बोरी अति छवि लज बोरी ।

दूर स्वाम देखत ही रीते, नैन नैन मिलि परी छयोरी ॥

सूरसागर बरम स्कन्ध ।

कृष्ण राबिका से पूछते हैं, तुम्हें कभी जय में नहीं देखा है। राबिका उत्तर देती है—

काहे को हम जय तन बाबसि, खेसत रहत बाबनी पोरी ।

कृष्ण कहते हैं—

तुम्हरो कदा खोरि हम खेहों, खेसत बसो संग मिलि पोरी ।

राधा और कृष्ण की प्रथम-मीकाओं का कारण इस प्रकार ये होता है। राधा-कृष्ण का प्रेम क्लेश-प्रेम और मधुर भाव में परिवर्तित हो जाता है। उनमें प्रथम की बाहुल्यता व्यक्त होती है। राबिका की यह स्थिति है कि बिना कृष्ण-दर्शन के पक भर रह नहीं सकती। परिवार तथा भोक्त-व्यापार का सम्बन्ध उसके लिये वस्तुनीय है। मर्जीरा के सम्बन्ध हो वह माने निकालती है। पाप पुद्गल के बहाने वह बर से निकलती है। कृष्ण राबिका का मन दूर से बाँधे हैं। विष्णु-दास से संसर्गित भावनायें बाहुल्य हैं। दूर से राबिका की बाहुल्यता का वर्णन इस रूप में किया है—

उठी प्रात ही राबिका, बोझनी कर काई ।

मइरि मुया सों तब कह्यो, कहीं बसि बलुछाई ।

बरिक पुद्गल बासि ही, तुम्हरी देखकाई ।

तुम छुटारण पर रही, मोही कैरी काई ।

× × × ×

माइ गई प्याह के प्रातहि गहि काई ।

ता कारण में बासि हो अति कात बकाई ।

सूरसागर ७१३ ।

राजा अपनी भावनाओं में ही केन्द्रित हैं। उसे वस्तुस्थिति का भी विस्मरण हो जाता है। वह रीते पात्र को ही विनोदी है—

रीति भाठ विनोदी, बित्त बहौ क्यूँ आई।

अनके मल की काह क्यूँ, क्यों दृष्टि बनाई।

सेया मोई रूपन सो नैना बिसराई। पद ७१६।

संयोग श्रुतिवार में मुरली-वर्जन के प्रसंग में गोपियों के प्रणयी भाव का विचित्र और उलझी मार्मिक अनुभूति की व्यञ्जना कृष्ण भक्ति काव्य के पात्र पद्य का एक अन्य उत्कृष्टाणीय बंध है। मुरली कृष्ण के 'बनार रस' का पात्र करती है। जिस बनारामृत-पात्र के सिन्धे गोपियाँ साक्षात्कृत रहती हैं, वह मुरली को सहज प्राप्त है। यह गोपियों के सिन्धे ईप्स्य का सन्दर्भ है। गोपियों में अनुरक्त रहते हुए भी कृष्ण मुरली के साथ अधिक सम्पर्कित रहते हैं। कृष्ण के मुरली में अनुरक्त रहने के कारण गोपियों का आनन्द अधिकृत रहता है। गोपियाँ मुरली को अपनी भाव से देखती हैं। 'मुरली हम कँह सोत भई'। वचन ब्रजता के माध्यम से मुरली के कुस पर वे आरोप करती हैं। मुरली अपने बंध प्राप्त गुणों के अनुरूप ही तो व्यवहार करती है। मुरली का किता बसन्त समस्त पृथ्वी को जल-ज्वालिब करता है परन्तु पपीह को तृप्ति रखा है। पृथ्वी सब को जग्य देती है, फिर भी कुँवारी रहती है। इन गुणों से आपूर्ति मुरली गोपियों के मित्र व का कारण बनती है।

गुनगु सखी माके कुल धर्म।

सँसोइ जिता, मातु सँसी जब देखी पाके कर्म।

मे बरसत परनी सम्पूर्ण सर सखिा मयपाह।

जातक सदा निराह रहत है एक बूँद को चाह।

पली जनम देत सबही को आपुनि सखा कुँवारी।

उदमत फिर ताही में निमलत छोड़त बहु मइवारी।

ता कुल में यह कन्या उपवी माके गुननि मुनाई।

गूर गुन गुन होइ तुम्हारे, मैं कहि के गुन पाऊँ।

गूर सागर बरग सन्ध पद १२५।

मुरली कृष्ण और गोपियों के मध्य व्यवधान बनती है, परन्तु गोपियों अपने नेत्रों के कारण विवश हैं। इनके कारण ही वे परवश हुई हैं। कृष्ण-स्व प्रियासिद्ध नेत्रों को प्रताड़ना देती हैं, वे आक्रोश प्रकट करती हैं। परन्तु इस आक्रोश और प्रताड़ना में उनकी प्रणय-आकुलता, विह्वलता, और विवशता ही व्यक्तित्व है।

स्वाम रंग रंजीके नेत्र ।

बीए कुटल नहीं यह कहेहुँ, मिले पवित्रि हूँ मैं ।

पद २२३१

इस प्रकार उनके नेत्र स्वाम-रंग में रक्षित हैं, जोभी के समान उनके साथ साथ ही रहते हैं।

अथ आप के कविजी ने कृष्ण के योधारण प्रसंग में लीला-पदों का अति व्यापक रूप प्रस्तुत किया है। कृष्ण बामीर बाक्क हैं। अपने बामीर-सखाओं के साथ वे योधारण करते हैं। कब-प्रान्तर में क्रीड़ा के समय परस्पर लड़ते हैं। कृष्ण बायू में सम्मिलित सबसे छोटे हैं। अन्य सखा क्रीड़ा में रह हैं। बायों के चेरने का काम कृष्ण को ही करना पड़ता है। कृष्ण यद्योग से अपासम्भ होते हैं—

मैमा हौं न करहुँ पारि ।

खियरो आस विराधत मोसों मेरो पाँव विरारि ।

कृष्ण और बीरामा के बीच अधिक लड़ाई है। कृष्ण खेल में हार जाते हैं और कटते हैं। अन्य सखाओं को कृष्ण का यह व्यवहार अच्छा नहीं लगता। वे कहते हैं—

केकट में को काको बोसैवा ।

हारि हारे जीते बीरामा बरबस ही किन कट रिसेवा ।

×

×

×

×

अति अधिकार बनाकर जाते अधिक तुम्हारी हैं कबु मैवा ।

कमो-कमी एविका और कृष्ण के प्रसंग को लेकर बोध-बाक कृष्ण के साथ हाथ-परिहास भी करते हैं। इनके विनोद में अन्य भाव स्पष्ट निहित मिलता है। एक प्रसंग में इस प्रकार के भाव का निर्वीजन मिलता है कि योधारण के

समय सभी पापें बिहार गई हैं । एक सखा द्रुम पर चढ़ कर पापों को टिरकर
एकत्र करने का भारेष्ट देता है,—

द्रुम चढ़ि काहे न टेरत काह्ना पइयां बुरि नई ।

× × ✓ ×

माजी बात सबन के भाये, न नृपमान बई ।

‘नृपमान’ के द्वारा व्यंग्य का स्वर अति प्रयोजन पूर्ण है । इस प्रकार के वर्णन
अब अनेक कवियों में सुरदास की रचनाओं में मिलते हैं । अन्य प्रसंगों में आल
आल कृष्ण को घेड़ते हैं कि अन्य तो गौर वर्ण के हैं यखोदा गौर वर्ण हैं ।^१ कृष्ण
इसपर कुपित होकर माता यखोदा के पास पहुँचते हैं । मा पुत्र की रोप-मुहा पर
विह्वल हो उठती है । माता अपने पोषन की संसन्ध साकर कहती हैं, ‘मैं
तुम्हारी माता हूँ तुम मेरे पुत्र हो । कृष्ण-बलराम मोक्षण के समय भ्रमरते हैं ।
बलराम बड़े हैं परन्तु बाळकों में इस छोटे-बड़े का भ्रान कहीं रहता है—

कनक कटोरा प्रात ही बधि पूत मुनिठाई ।

सेधत बात विराबहि, म्हायत दोउ माई ।

बयत परत बुटिया यहै, बरबत ई माई ।

महा कीठ माने नही कछु सहर बढ़ाई ।

सुरदासर : दशम स्कन्ध १५२ ।

राधा-कृष्ण, तथा गोपी-कृष्ण की शृंगार-लीला के वर्णन में सुरदास तथा
अष्ट छाव के अन्य कवियों ने मान लीला, बान-लीला पन-घट लीला, रासलीला

१ । मिया मोहि दाऊ बहुत सिखायो ।

मोहो कहत मोल को कीन्हो तू कमपति कब जायो ।

कहा करौ इहि रिधि के मारे रोऊन हौ नहि जात ।

पुनि-पुनि कहत कोल है माता को है तेरो तात ।

गोरे नन्द, जगोश गोरी, तू कत स्यामस जात ।

बुटरी बं दे आल नबावन हँसन सबै मुसकात ।

तू मोही को मारन सीगी बाऊहि कछु न सीमो ।

आदि प्रसंगों को लेकर रचामायों की हैं। गोविमां कल्प के कल्प-माधुर्य पर विमोहित हैं, कल्प और गोविमां के इस आकर्षण पूर्व को सम्बर्ण को ग्रहण कर कवि कल्प राधिका तथा गोविमां की मीठा का विधान करते हैं। कल्प के पनकट प्रस्ताव के वर्णन के साथ-साथ कुछ-विहार, यमुना-स्नान जल-केसि, पीठ-मनन शिरोका रास-नृत्य आदि भावों से आपूरित पदों की संख्या भाषा में अधिक है। गुरुजनों के मध्य बैठी राधिका के सम्मुख कल्प आ जाती हैं। गुरुजनों की मयीरा को वह धँस भी नहीं कराती और संकेत से ही कल्प से वतीछाप कर लेती हैं—

स्वाम बचानक आइ गए री।

मैं बैठी गुरुजन बिच सजनों बैसठ ही घेरे नन गए री।

तब एक बुद्धि करी है ऐसी, बैदी सो कर परस कियो री।

आपु हँसे ऊठ पाय यसकि हुरि बन्ध्यामो जान सिम्यो री।

लेकर कयल बचर परसायो, देखि हरपि पुनि हृदय परायी री।

बरण छए होत नैन लगाए, मैं अपने मुख बँक पायो री।

पृष्ठ २४६७।

प्रेम बचवा गृधर-वर्णन के प्रसंग में प्रथम समास-सम्बन्धी पद मिलते हैं। इसके अतिरिक्त विपरीत रति सुरतिबन्ध और गृधर-सजा-सम्बन्धी पदों में संयोग-मुख के विभिन्न नाम वर्णित मिलते हैं। उदाहरण स्वयं एक पद में इस प्रकार का भाव-स्पष्ट है कि एक गोपी स्वाम के लिए प्रतीलाकुच है। समस्त रति लगे प्रतीला में व्यतीत कर बी है, कल्प अपने बचन का पावन नहीं करते हैं। कल्प प्रातः समय जाँटते हैं। उनके शरीर पर रति-बिह्वल स्पष्ट है। गोपी कुछ कम्बूती नहीं है। केवल वर्णन उनके सम्मुख रख देती हैं, और ध्वंस कराती हैं—

क्यों मोहन वर्णन नहि देखत।

क्यों बली पद-नलनि करोवत क्यों ह्वन उन नहि देखत।

क्यों लड़े बैठत क्यों लाहों बड़ा परी ह्वन बूक।

पीताम्बर नहि कड़ा बैझी, रड़े कहीं हँ मूक।

उपरि बगै सर तैं उपरोना, नर न-सिनु गुन बाध ।

सुर बैसि कटपटी पाय पर, बावक ५ छवि काठ ।

सुर सामर, ११०२ ।

द्वितीय-कृत्य-शक्ति-काव्य में विद्योद-शृंगार का स्वस्मयन्यास रस की सभ्यता अनुभावना पर आधारित है । सिद्धान्त निरूपण की दृष्टि से कृत्य और राबिका तथा गोपियों के विद्योद-वर्णन के माध्यम से कवि बहुत और नीच के मध्य के विद्योद-स्वस्मय का निरूपण करते हैं । परन्तु सिद्धान्त की बौद्धिकता इनकी रचनाओं में प्रसार नहीं हो सकी है । इनकी रचनाओं में बाध पक्ष और अनुमति की प्रधानता है । सिद्धान्त निरूपण केवल सांकेतिक रूप में विद्यमान है ।

कृत्य शक्ति काव्य में विप्रसन्न शृंगार की अनुभावना कृत्य के मधुरा-गमन के आधार पर हुई है । कृत्य बक्रूर के साथ मधुरा कहे जाते हैं । उद्यम के द्वारा वे मधोदा और गोपियों तथा अन्य ब्रजवासियों के लिए सन्देश भेजते हैं । कृत्य मधोदा के वत्सल हृदय की पीड़ा जानते हैं । मधोदा की पीड़ा से परिचित कृत्य उनके लिए एक अवलम्बपूर्ण सन्देश भेजते हैं—

काहो कान्हू गुनि अनुमति मिया ।

बाबहिये शिव बारि पाँच पैं हम इस पर दोड़ भैया ।

मुरली बेट भियाज हमारी कन्हूँ बजेर सबैरी ।

मति से बाइ बुराद राबिका, कछुक खिलौनो मेरी ।

जा दिन तैं हय गुम हो बिछुरे काहु न बह्यौ कन्हैया ।

प्रात न किमो कसेऊ कन्हूँ, सोझ न पम पियो पैया ।

सुर सामर ४०२१ ।

माता मधोदा के हृदय को इस सन्देश से धँस और निराश मिलेगा । राबिका कुछ खिलौना बुरा न के बाव, इस ओर संकेत करके कृत्य मधोदा के मन में निश्चय भावना डक करते हैं । अष्ट छाप के कवियों में सुखास परमाणव तथा बुद्धन बासने विरह का आत्मनिष्ठ वर्णन किया है । अन्य बास के विरह वर्णन में इस आत्मनिष्ठ स्वस्मय और संवेदनशीलता के दर्शन नहीं होते हैं । विरह-अनुभूति के लिए प्रेम की बार अवस्थायें स्वीकार की गई हैं—पूर्वराज नाम प्रवास तथा वरणा । पूर्वराज, और नाम संयोग की मिष्टिका में राबिका

विशेष के माध्यम से प्रस्तावित हैं। प्रवास तथा कल्याण का निरन्तर कृत्य के सन्तुष्ट प्रस्ताव के पश्चात् अंकित मिलता है। परन्तु विशेष का कल्याण-रूप नहीं स्वीकार नहीं किया गया है। यहाँ विरह की पूर्ण वेदनापूर्ण स्थिति आनन्द-पूर्ण मानी गई है। आनन्द की यह अवस्था मोल से भेंट है। सुरदास ने विरह वर्णन को सुकृष्ट हो सन्तुष्टों में प्रस्तावित किया है। प्रथम सन्तुष्ट के अन्तर्गत गोपी परस्पर अपनी विरह-सम्बन्धना करती हैं। द्वितीय के अन्तर्गत उद्यम-गोपी संसार बचना भ्रमर कीट की योजना मिलती है। सुरदास ने कला-तत्त्व का आचार प्रदर्शित किया है। परन्तु अन्य कवियों ने कला-तत्त्व का आचार नहीं प्रदर्शित किया है। अतः इनके वर्णनों में विरह की सम्बन्धिता नहीं है। कृत्य के विशेष में दोषिणों अपने विरही मन की पीड़ा की परस्पर सम्बन्धना करती हैं। प्रकृति के व्यापक सौन्दर्य में गोपियों को अपनी भावनाओं और मनो वसाओं प्रतिबिम्बित मिलती हैं। कोकिल की अति विशेष में उद्दीपन का काम करती है। राधिका कोकिल को हाथ से उड़ाकर दूर भगाता चाहती है। परन्तु कृत्य के कारण उसके हाथ के कंकन आकाश की ओर उड़कर जाते हैं। अति की किरण उस काटी है मलय तनीर की क्षीतछटा उसे दम्ब करती है—

कर कंकन कोकिला उड़ावति निव मुञ्जनाय निव ।

सति संका निवि आनन्दि के मय, बल्ल बनाइ निव ।

विधि-विधि सीत सवीरहि चोकट, बंकल भोट निव ।

गुन मय मलय परति तन ठकफठ, अनु निव विचन निव ।

विरहिणियों के मातृ-स्वयं का अति प्रवाहपूर्ण रूप कृत्य बल्ल कवियों के विप्रसन्न-मिलन में उपलब्ध होता है। निव विशेष में राधिका की काकिमा भावि के समान है। और इस काकिमा को ग्रह कर सति बल्ल मन में आ जाता है तो विरह की पीड़ा विपाक हो जाती है। यह पीड़ा नागिनि के दर्शन के समान लगती है।

पिवाविनु आनिनि काभी राठ ।

को कपु आनिनि बसति जुम्हेरा, बस बसती हूँ राठ ।

पोपियों के मेज कुत्त-बर्तन के लिए हठ करते हैं। कुत्त के आगम की तिथि में दाकुल निकालने में वे काग उड़ाती हैं। काम उड़ाते-उड़ाते उनकी बाँहें पक जाती हैं। यही उनके जीवन का मर्म है—

अधिया करत हैं अति भारि ।

मुन्दर स्वाम पाहुने के मिस मिस म बाहु बलि भारि ।

बौह बकी बायसहि उड़ावत बब देखे अनुहारि ।

गुरदास प्रभु तुम्हरे बरस बिनु सकै न पल पसारि ।

गुरुदास ३२४३।

विरहिणी पोपियाँ यमुना में अपनी विरह-अवस्था का प्रतिबिम्ब देखती हैं। यमुना की अवस्था का वर्णन कर उसमें अपने स्वप्न का संस्क्रिष्ट रूप विद्यान करती हैं—

वैषियत कासिन्द्री अति कारी ।

अहो पक्षि कहियो उन हरि सौ भई विरह पुर भारी ।

बिरि प्रजक ते बिरति बरनि बसि तरंग तरफ तन भारी ।

तट बाब छपचार बुर बस-पुर प्रस्वेद पतारी ।

निमि रिल बकई सिमजु रटति है भई मानो अनुहारि ।

गुरदास प्रभु जो यमुना मति सो मति भई हमारी ।

पोपियों के मनोभावों और उनकी अनुसृतियों की विविधताओं के लोके रूप विद्यान इन कवियों की रचनाओं में अतिन मिश्री है। पोपियाँ अपने मीन-मयनों में अत्रन नहीं लगाती अपने कुन्तल नहीं धवाती और प्रेम-नृपा में प्रिय की स्मृति में केन्द्रित उनकी भावनाएँ उन्हें अति कातर बना रही हैं (३८८५)। श्रुतों पोपियों के लिए बैरिनि हो गई हैं। मिस मिस श्रुतों में प्रहृति-व्यापार उनके लिए अहीन कार्य कर रहे हैं। मयूरी तट तिरों पर बड़ बर नृत्यकर अपनी के आसमन को गुपना विरहिनियों को देती है—

निगिनि गिर बड़ि गोर मयापो ।

विरहिनि नाकपान ग रटियो मति पावस दस बायो ।

प्रकृति में अपनी की एक अवधि होती है परन्तु स्वाम व प्रवास से गोपियों के नेत्र प्रसिद्ध बरधते हैं, उनके जीवन में पावस निरन्तर निरन्तर है । अत्रमा गोपियों को तब कछा है—

गार्हो रो वन्य लाम्बो दुख रेत ।

कहाँ भी वेस कहीं मनमोह, कहीं सुख की रेत ।

छारे गिरत पई री सब निशि नेक न कागे नेन ।

परमानन्द पनु पिय बिछुरे ते पल न परत चित्त चैन ।

परमानन्द साबर पद ३३७ ।

इस प्रकार के अव्यक्त भावपूर्ण संदर्भों के दर्शन गुरदास तथा इनके सम्बन्ध के बहिरंग कवियों की रचनाओं में उपलब्ध हो जाते हैं । विरह-व्यथा की व्यंग्यता के लिए प्रभाव-साम्य मूलक अव्यक्त के विविध प्रयोगों से कवि विरह व्यथा के अति मूर्तमान रूप का संक्षिप्त विधान करते हैं । एक पद में कृष्ण की प्रीति को बहिरंग क कष्ट-व्यथा के समान गोपियों स्वीकार करती हैं । कृष्ण के विरह से विरह गोपियों विषय और दुःखी है । उनकी अवस्था उत पत्नी के समान है जिसे बहिरंग पहले कष्ट बन चुकाया है, फिर उसके पक्ष पर घुरी फेर कर उसका रूप करता है । कृष्ण का प्रेम 'कष्ट-रूप' है उसका नियोग 'पक्ष की घुरी है ।'—

प्रीति कर बीन्ही घर घुरी ।

जैसे बहिरंग चुपार्ह कष्ट रूप पाछे करत घुरी ॥

मुरली बधुर चैप कापो करि घोर नन्द पत्न्यारी ।

बेक मिलोकनि सपी लोम बस सकी न पक्ष पसारि ।

तरफत दाँदि गए मनुजन को, बहुरि न कोन्ही सार ।

गुरदास मनु संव कल्पक, बहुरि न बेठी डार ।

गुरदास ३३५५ ।

गोपियों इस प्रकार मीन और विषय हैं । अपनी विरह-व्यथा के विषय के लिए गोपियों ने विरह-वैदना में अव्यक्त अनेक रूपमानों का सर्वग्न ग्रहण किया है । पर्यय, कुरंग परेवा और परीहा—इन सब की विरह-व्यथा में गोपियों

सौ भावनाओं का साक्षात्कार पा लेती हैं। इनमें गोपियों अपनी समस्या का समाधान पा लेती हैं—

प्रीति तो मरिचोद्ध न बिचारै ।

निरखि पतंग ज्योति पावक ज्यो जल न आप सँभारै ।

प्रीति कुरंग भाव मन मोहित बबिक निकट हूँ मारै ।

प्रीति परेवा सकल गमन तैं गिरत न आपु सँभारै ।

सावन मास पपीहा बोलत, मिय-मिय करि जु पुकारै ।

सूरदास प्रभु बरसन कारन ऐसी भांति बिचारै ।

सूरदास ३२६० ।

इस अंश में गोपियों ने अपना साम्य व्यंग द्वारा प्रकट किया है। प्रीति मृत्यु-मग्न से प्रभावित नहीं होती। प्रीति ही पतंग को शक्ति देती है जिससे नर्तन होकर वह बीरक-ज्योति में समर्पित हो उठता। नाच-मेघ के कारण कुरंग बबिक द्वारा खला जाता है। प्रीति के कारण ही परेवा आकाश से पृथ्वी पर गिरता है, प्रीति की विचलता में ही पपीहा सम्पूर्ण सावन मास 'पी' 'पी' की रट करता है।

विरह-भावना के प्रकाशन में मलिनसौक्ति का संस्पर्श इन कवियों की भावनाओं में मिश्रित है। परन्तु इसके अन्तर्गत की वचन विरचिता में गोपियों के भावों के प्रति आकुल स्वयं का मूर्त विधान होता है। एक पद में एक गोपी स्वयं के उद्दीप्त-मूर्त प्रभाव से आकुल होकर कहती है—

धरि कर अनु को जन्दि मार ।

ऐसी जाति बुलाइ मुकुर मैं जति बस लंड-लंड करि डारि । ३३२३ ।

भावों के आकुल प्रतिपेक्ष में गोपी बीमा लेकर वान करती है। धरि में स्थित मृग बीमा के स्वर से मुग्ध हो जाता है स्थिर होकर वह भीत मुगठा है। इस प्रकार धरि वन में स्थित हो जाता है जो गोपियों में उद्दीप्त आश्रित करता है। अतः मन शांत करने के इस प्रमाण से भी गोपियों की प्राप्ति होती है।

दूर करहि बीमा करि धरिबो ।

रज बासपो नाहिन मृग मोहै, नाहिन होत वन को डरिबो ।

राबिका की पीड़ा के प्रकाशन के लिए विविध प्रकार की अभिव्यञ्जना विधाओं का प्रयोग देखने को मिलता है। पीड़ा से राबिका अपने निवास से बाहर नहीं निकलती। सौन्दर्य में उसके विभिन्न प्रतिद्वन्द्वियों के लिए यह उल्लास का बरसुर है। इस आणय-पुर्ण वर्तन में कवि अप्रस्तुत दर्शना से राबिका और कोयिलों का सौन्दर्य निरूपण करते हैं, साथ ही साथ उनके विरह विरग्न स्वरूप का संक्षिप्त रूप विधान भी करते हैं—

तब ते इन सबहित धनु पायो ।

बन ते हरि संविस गुम्हारो सुगत ठाँवरो भायो ।

पूले व्याज दुरे ते प्रकटे, पवन पेट भरि खापी ।

छोले मृगमि चौक बरन के हुयो बु बिय बिसरामी । ४१४१ ।

छाहिय शास्त्र के अन्तर्गत विरह में वियोगिनी की एकाग्र अवस्थाओं के चित्रण का विधान मिलता है। अष्ट छाप के कवियों ने विरह की अन्तिम अवस्था मरण का चित्रण नहीं किया है, कारण, प्रेमसम्पन्ना भक्ति में मृत्यु अवस्था मरण की अपेक्षा विरह की तीव्रता को विशेष महत्व दिया गया है। अतः इस अवस्था का केवल संकेत ही मिलता है।

विरह की प्रथम अवस्था है अधिभावा। प्रिय-वर्जन-अभिभावा की भावना विरहिणी में जागृतता कारण करती है—

ऐसे समय को हरि बु जावहि ।

निरखि निरखि यह क्य मनोहर, नैन बहुत मुख पावहि ।

कबहुक रंग बु हिलमिल खेसहि, कबहुक कृष्ण मुलावहि ।

मिछुने प्राण रह्य नहीं भट मै, सो पुनि जानि दियावहि ।

अनके बल्य नाम दूरक प्रभु, सब पड़िछे छठि ध्यावै ।

गुरसापर, पद ४००५

कोयिलों प्रिय मित्रन की कामना करती है, चिन्ता करती है। इस अवस्था को चिन्ता की संज्ञा दी गई है—

रेनि पपीहा बोस्यो री मारै ।

नीद कई चिन्ता चित बाढ़ी, मुरखि स्वाम की भाई ।

सावन मास बेलि बरपा अरु, हौं जायन छठि भाई ।

मरजय गमन बामिनि दमकल ठामें बीत चढ़ाई ।

विरहिन बिकल दास परमानन्द बरनि परी मुरझाई ।

परमानन्द सागर ।

बिन्ता के पश्चात् की स्थिति है स्मरण । इस स्थिति में विरहिणी प्रिय की स्मृति से प्रत्येक परिपुर्ण रहती है । यह काव्यमय संयोग की भावना के बसीमूल हो जाती है । सुरदास तथा परमानन्द दास की रचनाओं में इस विरह रसा से सम्बन्धित अनेक पद उपलब्ध हो जाते हैं—

मोहन बहु क्यों प्रीति बिसारी ।

कहत मुन्त समुन्त तर अंतर दुख सायत है भारी ।

×

×

×

हम पर कठिन हृदय अब किनो लाज बोदरण बारी ।

परमानन्द बसवीर बिना हम मरत विरह की बारी ।

परमानन्द सागर ।

मरो मन इतनी मुरख रही ।

मे बतियाँ सुतियाँ लिखि राखी मे नन्दलाल कहों ।

गुरदास ४०११ ।

प्रिय की स्मृति में बियोगिनी गोपियाँ उनके कुणों का स्मरण करती हैं । जाने चाव किए गए प्रेम-व्यवहार की खर्चा करती हैं । यह मुग-कथन की स्थिति है ।

एक छीम कुंजलि में माई ।

नाना कुमुम के अने कर, दिए मोहि सौ मुरजित न जाई ।

×

×

×

बहु बहु प्रीति रीती मोहन की कहूँ अब यो एत निठुराई ।

अब बसवीर नूर प्रभु सति री मधुबन बनि अब रति बितराई ।

पद ४००२ ।

प्रिय बियोग में संयोग-मुग की स्मृतियों उद्दीपन-कार्य करती हैं । यह रसा उदय की स्थिति है । मुरदास और परमानन्द दास ने इन अवस्था से सम्बन्धित अनेक भावपूर्ण पद लिखे हैं—

कहाँ लो मानो अपनी बुद्ध ।

बिनु नोपास सखी ये क्षतिमों हूँ न बर्य ह टुक ।

हृदय जगत है बाबाजान क्यों कठिन बिरह की हूक ।

पद ३४३ = १

बिरह की तीव्रता में बिरहिनी अपनी व्याधा का वर्णन करती हैं और इस सम्बन्ध में वे प्रसाप की स्थिति में पहुँच जाती हैं—

सखि मिली करो कछुछ सपाठ ।

मार मारल जख्यो बिरहिनी, मिरि पायो बाड ।

हुतासन-मुख बात उगत जख्यो हरि निस बाठ । २७०३ ।

बिरह व्याधा से बिरहिनी उन्माद की स्थिति में पहुँचती है—

सखि करि बनु लै जदहि मारि ।

तब तो पे कपुनै न छिरैई जब खलि पुर नई ठनु बारि ।

उठि हक्काइ बाइ मस्तिर जड़ी सखि सनमुख दाया निस्तारि ।

ऐसी नैति मुसाइ मुकुर में बलि बक जड़-जड़ करि कारि ।

सूरसागर ३२७१ ।

बिरह की तीव्रता से कड़वा की स्थिति आती है ।

देखी मैं भोजन चुबत अचेत ।

मनहु कमल सखि पास ईसकी मुक्ता गनि-गनि बेत ।

कहुँ कंठन कहुँ विरि मुठिका बहूँ ठाक कहुँ नेत ।

बेतति नही बिष की पुतरी लमुन्नाई सी केत । ३७३२ ।

बिरह में बिगही शारीरिक कष्टों पाठा हैं, वह इन्द्र हो जाता है । यह स्थिति व्याधि की है—

मिउबत ही अपुबन बिन जात ।

नैकलि नीय परत नहि सखी मुनि-मुनि बासिन मन बकुनात ।

×

×

×

अनुचि नैन उल्ल बरबन को हरद लसान देखिअत मात ।

मुरबास स्वामी के बिछुरे देखी यह हमारी पात ३८२९ ।

विमोह में मुग्ध हो जाना मूर्खता है—

सोचति अति पछताति रासिका मूर्खित बरनि बही ।

सुरदास प्रभु के बिछुरे ते बिबा न जात सही ।

बिरह की अन्तिम अवस्था है मरण । अष्ट छाप के कवियों ने मरण अवस्था का नेबल उल्लेख मात्र किया है । मरण-अवस्था का विवरण यहाँ नहीं मिलता है —

प्राण हमारे पात होत हैं तुम्हरे भाये हौंसी ।

या जीबन ते मरन भसी है, करवत लैहै कामी ।

×

×

×

के हरि हमकी जानि मिलाबहु नै ले बन्धु संधे ।

मूर स्याम बिनु प्राण तजत हैं दोष तुम्हारे माने ।

सुरदासर । १४७२ ।

अमर गीत

अमर गीत उपासम्भ काव्य है । इसकी मुख्य संवेतना शृंगार रस के विप्रसम्भ पदा से है । वस्तुतः इसकी काव्य विधा व्यंग्योक्ति मूलक है । इसमें अमर को लय वर उदय और वृष्ण के प्रति शोषियों उपासम्भ और बिह-वैरना व्यक्त करती हैं । अष्ट छाप के कवियों ने मुख्यतः सुरदास और नन्द दास ने इस काव्य विधा की प्रेरणा श्री कृष्ण भागवत से प्राप्त की है । भागवत में उदय ज्ञानयोग का सम्येष्ट नहीं देते हैं । यहाँ उदय श्री वृष्ण का कुसल सम्येष्ट लेकर मोक्षुल जाते हैं । वृष्ण का सम्येष्ट लेकर वे नन्द यशोदा तथा गोपगोपिकाओं का शोक निवारण करते हैं । परन्तु इन अल्पक कवियों ने इससे मिल प्रकार की उद्भावना की है । इनकी रचनाओं में उदय विमोक्ष ज्ञान मार्गी हैं । वृष्ण इन्हे शोषियों के सम्येष्ट से प्रेम अदाता भक्ति में वीक्षित होने के लिए भेजते हैं । इस प्रकार शोषियों की प्रिय लगना भक्ति की विषय होती है और उदय का ज्ञान पराश्रित होता है । भागवत के दशम स्कन्ध के ४६ वें अध्याय में उदय वृष्ण का सम्येष्ट लेकर व्रज में जाते हैं नन्द यशोदा को वृष्ण का सम्येष्ट देते हैं । सैतानी मने अध्याय में उदय और शोषियों का परापर संवाद है । वृष्ण सम्येष्ट से शोषियों विरक्त होती है । वृष्ण-सीता का स्मरण वर जाय विमोक्ष हो सट्ठी है । इस

मध्य एक गोपी के चरण पर एक अमर पुत्र गुनाने मयता है। इस अमर के प्याज से गोपियों हृष्य को उवाभजन देती है। नाचत में हृष्य आत्म निग्रह का उपदेश नहीं देते हैं। हृष्य गोपियों को आदेश देते हैं कि वे कुछ मन में हृष्य का स्मरण करें।

परन्तु मुरदास की कल्पना इससे कुछ भिन्न प्रकार की है। मुर के काव्य में हृष्य-आवना में ब्रजवातियों के राज सम्बन्ध हैं। उन्हें बंसीबट, यमुना, राधा और गोपियों तथा रास का स्मरण आता है। हृष्य के मित्र उद्यम अर्द्धत ज्ञान के प्रचारक हैं। मरु हृष्य अपने मन के बाध हिस पर प्रकट करें—

संय निजी कहीं कासो बात ।

यह तो कष्ट पीय की बातें आमें रस भरिजात ।

कष्ट कहा फिर मातु कोल के पुरुष गारि कह बात ।

×

×

×

ये बात कहिये किहि आगे यह सुनि हरि पक्षितात ।

मुर बात मनु ब्रज की महिमा कहि बिसि बरत न मात । ४०३३ ।

उद्यम प्रेम-लसना अधिक में विस्वास नहीं करते। अतः अपने सदैव के मायम से हृष्य उन्हें ब्रज भेजते हैं। हृष्य उद्यम के सम्मुख अपनी भावनामें प्रकट करते हैं। ब्रज की स्मृति से वे इन्धित हो उठते हैं। राधिका उनके मागत-मन्धिर की आराधना है और बलकी स्मृति हृष्य को आर्म्भित करती है। माता यशोदा का प्रेम उन्हें ब्रज छोड़ने की प्रेरणा दे रहा है। उद्यम पीय शिखा से हृष्य की मोह विमुक्त करने का प्रयत्न करते हैं। हृष्य गोपियों में अचल, अस्तिायी रेख-रूप-गुण से परे ब्रह्म के प्रति आकर्षण स्थापित करने का बाण्डू का उद्यम को ब्रज भेजते हैं।

उद्यम हृष्य-अवेश केरु ब्रज के शिखे प्रस्ताव करते हैं। ब्रज में यशुन होती है। गोपियों का हृष्य आसापूर्ण हो जाता है। उद्यम के रस को सर्व प्रथम राधिका देखती है। उन्हें विश्वास होता है कि हृष्य का रहे है। यह मूकता समग्र ब्रज-मन्धिर में फैल जाती है। यथा,

राजेहि सबी बठावत री ।

बैसोई रज लागत मोको, उठाही ते कोठ भावन री ।

अदि बायो अकूर बाहि पर स्वल्प ब्रज तन भावति री ।

बैसिये ध्वजा पठाका बैसोई बर-बर सबद सुनावत री ।

कोऊ कहै स्वाम कहति को एहिं बज तटनी हरपावत री ।

मूर स्वाम बेहि पम बारे तैहि मारग बरसावत री । ४०७६ ।

परन्तु जब उन्हें ज्ञात होता है कि कृष्ण नहीं, अम्बु, उनके गिन माए हैं तो उनकी दशा निम्ननीय हो जाती है । गोपियों स्तम्भित हो जाती हैं वे मूर्छित हो जाती हैं । इसका वर्णन सूरदास ने इस प्रकार किया है—

बबहिं कह्यो मे स्वाम नहीं ।

परी मुरधि बरनी बजबासा, जो कहै रही सुवाही । ४०७८ ।

यद्योवा भी मूर्छित हो जाती हैं । इस पर गोपियों अपनी मूर्छा बोली है । उन्हें यद्योवा की चिन्ता हो जाती है । उद्यम गोपियों को कृष्ण का सम्बन्ध सुनाते हैं ।

गोपी मुनहु हरि सविष ।

कह्यो पुरन ब्रह्म व्याबहु, त्रिपुन मिथ्या भेष ।

मैं कह्यो सो उत्प मानहु सगुन बाण्डु नासि ।

× × × ×

मातु तितु कोऊ नाहि नारी अमल मिथ्या साह ।

मूर मुग दुष नाहि बाके भयो ठाकी बाद । ४३०३ ।

गोपियों उद्यम के इस संदेश से जाहृत होती हैं । वे स्पष्ट शब्दों में कहती हैं कि इस संदेश में उनके लिए कोई आकर्षण नहीं है । वे कृष्ण की कथा सुनने के लिए उन्मुक्त हैं । वे नन्दबोध-वासी गोपाल की कथा में रुचि रखती हैं । परन्तु उद्यम अपने मत पर दृढ़ हैं । वे स्पष्ट शब्दों में कहते हैं—

यह संदेश कह्यो है मायो करि बिचार बिय सावन सापो ।

नदा विषया गुपन नारी मुम्य सहज मैं बसत मुरारी ४४६३० ।

परन्तु गोपियों इसे उद्यम का प्रयाप समझती हैं । जिन अपरों ने कृष्ण ने मुरारी की मधुर छवि का प्रमाण दिया, उन्हीं अपरों ने गोपाल योग सम्बन्ध

मेजोंमे इस पर वे निश्वास नहीं करती हैं। घोषियों अपने घोषों को अनेक कणों में ब्यक्त करती हैं। उनके बतार का एक-एक तन्तु, उनकी वस्तुस्थितियों का एक-एक स्वर उद्यम के उत्प्रेष का प्रतिकार करता है। और इस प्रसंग में उद्यम की अज्ञानता पर वे अर्थ भी करती हैं। ऐसे सन्दर्भ में वे विरोध मूलक विपक्ष चिन्तनों के माध्यम से अपनी प्रतिक्रिया का प्रकाशन करती हैं—

कहू बबला कहू मिठा बिपन्नर मछ करो पहिचान । ३२२१ ।

वे कहती हैं सत्पन्न (बबला) के लिए बिपन्नर (मछ) कम बारन की घोषणा मर्दावा के प्रतिकूल है। इसका बोध भी उद्यम को नहीं है। इसी प्रकार विरोध बर्ण और अप्रस्तुत घोषणा के द्वारा वे वस्तुस्थिति के स्पष्टीकरण का प्रयत्न करती हैं। उनके लिए बोध की प्रस्तावना करना बेसहज ही है जैसे कर्ण मिहीना को कर्ण-आनुपम देना, बबला बाले को कायल समझना —

बूधी बुधी बीमरी काबर, मकटी पहिर बेतरि ।

मुबली पाटी पारे बाई कोड़ी लार्न केतरि । ३२५० ।

घोषियों को उद्यम पर सम्यक् होता है। उद्यम ने बिना अंग का विविध-करणों और आनुपमों से श्रुति प्राप्त किया था, उसी अंग पर प्रत्यक्ष कहाने का आदेश देने, इस पर उन्हें निश्वास नहीं होता है। फिर भी वे योग बारन करने के बिने उत्तर दे, यदि ब्याप्त की उपलब्धि हो जाय। वे यह भी कहती हैं कि योग-आर्य ओष्ठ है, परन्तु ज्ञान और योग के अधिकारी जनों के लिए—

ऊयो कौन नाहि अधिकारी ।

ले न बाहु यह योग बाजो कठ दूय होठ बुझारी ।

बह तो कैर-कपनिपद कठ है, कहापुन्य कठबारी ।

इस अज्ञेति अवस्था कम-बाबिलि, नाहिण परत रोमारी ।

घोषियों तो अहीरिणि हैं। उनका काम तो बलि देना, माछन निकालना है। समुत्तरज्जु से उन्होंने हृत्प-स्नेह-मर्दावा की उपलब्धि की है।

इस प्रसंग में वे बुझा वर भी कोप प्रकट करती हैं। बुझा कृप्य की परामर्श बन बैठी है। वे उद्यम से कहती हैं वे कृप्य और बुझा के युग्म स्वयं को देखना चाहती हैं। उन्हें कृप्य की बुद्धि वर दया बा रही है। राधा के रोम्य की उल्लास कर उन्होंने बुझा को सम्मान दिया है। वे अर्थ्य करती

है कि तुलसी दास रामचरित के सिव्य से मे रामचरित के सिद्धांतों के अनु-
यायी तथा महाकवि थे। परन्तु रामचरित रामचरित के गुण थे। ऐसी स्थिति
में 'महोदय पुराण' की प्रामाणिकता संदिग्ध है।

गोस्वामी तुलसी दास के जीवन-काल का परिचय 'दो सौ बावन बप्पवन की
बाठी' से भी मिलता है। इसके संकलनकर्ता मोक्षराम का समय सं० १६०८ और
१६८१ के मध्य माना गया है। इस ग्रन्थ में मन्दास की एक बाठी में गोस्वामी
तुलसीदास का जन्म मिला है।—'सो वे मन्दास पूर्व रहते सो वे दोष
मार्ई हते। सो बड़े भाई तुलसी दास हते सो वे मन्दास पड़े बहुत हते मन्दास
तुलसीदास के छोटे भाई हते सो मिले पाच पचासा देखन को तथा पाच मुनो
की लोक हते सो मन्दास भी के बड़े भाई तुलसी दास हते। सो काशीजी
सुं मन्दास भी कू मिले के दिए बज में आए। सो मन्दास में बायके की पयसा
भी के दर्शन करे। पाछे मन्दासजी सबर काड़ की मिरिदास की पए उहाँ तुलसी
दासकी मन्दास भी कू मिले'। इस ग्रन्थ से यह बात होता है कि मन्दास
तुलसी दास के छोटे भाई थे। तुलसीदास ने एक की भाषा की थी। तुलसी
के भाषण पर हृष्य-मूर्ति राम-मूर्ति के रूप में परिवर्तित हो गई।^१

'मूल बीसाई बरिठ' में तुलसी दास का विस्तृत जीवन-परिचय मिला है।
इसके लेखक बेनी माधव दास हैं। मूल बीसाई बरिठ में गोस्वामी तुलसी दास
का जन्म काल इस रूप में दिया हुआ है—

कन्हू सो बप्पवन रिपै काकिन्दी के ठीर।

दासन पुनका सतमी तुलसी बरेठ झीर।

१ 'दो सौ बावन बप्पवन की बाठी' डॉ० मोरेन्ड बर्मा इस ग्रन्थ की प्रामाणिक-
पता पर संदेह करते हैं। इन्हीं के आधार पर डॉ० माता प्रसाद गुप्त भी इस ग्रन्थ
की प्रामाणिकता पर संदेह करते हैं।

२ इस प्रसंग में इस प्रकार की घाबरा व्यक्त मिलती है कि तुलसी ने कृष्ण
मूर्ति को प्रणाम करना स्वीकार नहीं किया। इस पर मन्दास ने निवेदन दिया

रहो रहो धर्म मात्र की मते बनो हो पाव।

तुलसी मन्दास ठक गये अनुव दान नेहु दास।

यसोबशीत—माघ शुक्ला पक्षमी सुक्रवार ११६१ वि० सं० । पन्द्रह से एकवट माघ सुदी । तिथि पंचमी और भृगुवार उन्नी । सरजू छट विघ्न बन्ध किये, दिन बालक कहुँ उपवेश किये ।

इनके अनुसार गोस्वामी तुलसी दास का विवाह ज्येष्ठ शुक्ला बयोवरी सुक्रवार ११८३ वि० (२४ मई १५२६) को हुआ ।^१ गोस्वामी जी की पत्नी का निधन आषाढ़ कृष्ण दशमी, बुधवार वि० संवत् ११०७ को हुआ ।^२ गोस्वामी जी ने 'राम चरित मानस' की समाप्ति संवत् ११३३ मार्गशीर्ष सुदी २, मंगलवार को की थी ।^३ गोस्वामी जी का निधन संवत् ११८० धावन कृष्ण ३, शनिवार को हुआ ।^४ ठहर जो तिथियाँ प्रस्तावित हैं उनमें से गणना के अनुसार केवल प्रथम दो तिथियाँ ही ठीक हैं । अन्य तिथियाँ गणना के प्रतिकूल पड़ती हैं । इन तिथियों के आधार पर 'मूक पोछाई चरित' की प्रामाणिकता संदिग्ध लगती है ।

'मूक पोछाई चरित' के अनुसार गोस्वामी जी स्वयं जन्मे थे । जन्म के बीसों दिन इनकी माता का स्वर्गवास हो गया । और पिछाने इनका परिवार कर दिया । बालक तुलसी को नरहर्षानन्द का घामीयन मिला । आठ वर्ष चार मास की बामु में तुलसी नरहर्षानन्द के हाथ सुकर सेन बामे—

कहत कथा इतिहास बहु आए सुकर-सेत ।

संजम सरजू बाबरा सुस्त जनन सुख बैठ ।

इसके पश्चात् गोस्वामीजी ने काशी में छेप सनातन के निकट पन्द्रह वर्षों तक चारों वेद, छ. शास्त्रों का अध्ययन किया—

१ पन्द्रह से चार ठिरासि विषे । सुम बेठ सुदी पूब ठेरसि पै ।

अधिराठ लगे बु छिरी मेवरी । कुम्हा कुलही की परी मेवरी । शृष्ट ८ ।

२ सव पन्द्रह बालक न्वासि सरे । सुबछाई कही बखसीहु बरे ।

बुध बासर बन्ध सो बन्ध परी । उपवेशि छती तनु त्याग करी ।

३ तैवीव को संवत् औ मंगसर । सुम छीस तुराम सिबाहिहि पर ।

कुल जय्य बोपाव समाप्त भयो । सद् ग्रन्थ बन्धो सुखबन्ध भयो ।

४ संवत् सोरह सै बड़ी कसी संम के तीर ।

ठावन स्वामा तीन सनि तुलसी ठामो घरीर ।

‘मोसाद खरित’ में तुलसी दास की निम्न निम्न जग में प्रस्तावित है—

संनय सोनहू से अमी बनी दंग के तोर ।

आपन त्यामा तीर दनि तुलसी नामो धीर ।

बीर—

सोरहसो सलानि दिन नयमी बाजिह नाम ।

बिरयो दहि निर पाग दित बेदी आपन दास ।

अर्थात् १६८० में आरम त्यामा तीर धनियार हो बासी में अमी दंग के तट पर मोस्वामी तुलसी दास ने धीर त्याग दिया । येही आपन दास ने संनय १६८७ में निम्न पाठ करने के लिए दसकी रचना की । इसके अतिरिक्त मूल ‘मोसाद खरित’ में दादा बेदी आपन दास मोस्वामी तुलसी दास की जन्म तिथि और जन्मस्थान के विषय में हम बतार सिये हैं—

(१) सरह हठमी जन्माट दिने ।

(२) तुलसी सन पात्र मुखी सुनिया रजिनापुर राज दुह दुतिना ।

उनके घर हाथ मास परे बह बर्फ के ओर हिमांगु बरे ।

हुए सत्यम अपन नाम-रत्नम अविधीरित दनि सुनार सोम समय ।

अर्थात्, सरदार प्रदेय स्थित पनेही ग्राम बाही रजिनापुर के राज दुह की वर्ष पत्री तुलसी की दयिनी दुनि में १२ मास के परबात् १६१४ में आरम दुस्त धनियार, सारंगराज रजिनापुर में मोस्वामी तुलसी दास का जन्म हुआ । उनका जन्म अविधीरित नाम में हुआ था । उनके जन्म-पत्र में सत्यम स्थान पर सोम तथा अपन स्थान में दनि थे । इस सन्दर्भ से तुलसी दास के पिता का परिचय नहीं प्राप्त होता है । अन्यकार के अनुसार मोस्वामी तुलसी दास का जन्म आरम गुस्ता सतही को धनियार के सारंगराज हुआ था । परन्तु विचारकों ने इस प्रस्तावना पर आपत्ति प्रकट की है । इनके अनुसार दयना के आधार पर मोस्वामी की के जन्म-समय पर अविधीरित नाम नहीं था । ऐसी स्थिति में ‘मूल मोसाद खरित’ में अस्थावित मोस्वामीजी की जन्म तिथि विश्वसनीय नहीं लगती है । श्रीमोसादखरित ने तुलसी दास के जीवन की अन्य महत्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन इस रूप में किया है—

अजोपवीत—माघ सुक्ला पक्षमी बुधवार १५११ वि० सं० । पञ्चमि
एकसठ माघ सुत्री । तिथि पंचमी और श्रुगुवार जरी । सरजू छट विग्रह बध्य किये,
छिज वासक कर्तु उपदेश किये ।

इनके अनुसार गोस्वामी तुलसी दास का विवाह ज्येष्ठ सुक्ला त्रयोदशी बुध-
वार १५८१ वि० (२४ मई १५२९) को हुआ ।^१ गोस्वामी जी की पत्नी का
निधन बापाई कृष्ण वसमी, बुधवार वि० संवत् १९०७ को हुआ ।^२ गोस्वामी
जी ने 'राम चरित मानस' की समाप्ति संवत् १६३३ मार्गशीर्ष सुत्री ३, संवत्सवार
को की थी^३ । गोस्वामी जी का निधन संवत् १९८०, भाद्रपद कृष्ण ३ शनिवार
को हुआ ।^४ ऊपर जो तिथियाँ प्रस्तावित हैं, उनमें से वसना के अनुसार केवल
प्रथम दो तिथियाँ ही ठीक हैं । अन्य तिथियाँ वसना के प्रतिकूल पड़ती हैं ।
इन तिथियों के आधार पर मूल गोसाईं चरित की प्रमात्रिकता संदिग्ध
नगरी है ।

'मूल गोसाईं चरित' के अनुसार गोस्वामी जी सदैव ब्रह्म थे । ब्रह्म के बोधे
हित इनकी माता का स्वर्गवास हो गया । और पितान इनका परिग्रह कर
लिया । बालक तुलसी को नरहृदयान्न का सामीप्य मिला । आठ वर्ष बार माघ
की रात्रि में तुलसी नरहृदयान्न के साथ सूकर सेन आये—

कहत कथा इतिहास बहु भाए सुकर-सेन ।

संगम सरजू पाधरा सत जनन तुल्य रेत ।

इसके पश्चात् गोस्वामीजी ने काशी में सेप समाप्तन के निमत पन्त्रह वर्षों
तक चारों वेद, छ. शास्त्रों का अध्ययन किया—

१ पञ्चम से पार तिरासि किये । तुल्य बंठ सुत्री बुध छैरसि वै ।

बजिरात कये नु छिरी मैवरी । बुकहा बुकही की परी मैवरी । शृष्ट ८ ।

२ सत पञ्चहुं बुक बसासि घरे । बुकसाइ नरी इसमीहु परे ।

बुध बासर बस्य हो बस्य परी । उपदेशि सही तनु त्याग करी ।

३ पैंटीस को संवत् औ अपसर । तुल्य दोस मुराम निबाहिहि पर ।

बुठ जप्यं चोपान समाप्त भयो । सदु श्रव्य बस्यो सुप्रबस्य नयो ।

४ संवत् सोरहू से अछो, असी संव के छीर ।

सामन स्वामा तीब सनि तुलसी तख्यो घरीर ।

‘गोसाईं बरित’ में तुलसी दास की निम्न लिखित श्रम श्रम में प्रस्तावित है—

संबल सोलह गे अमी अमी मंग के तार ।

धावन रूपमा तीज दानि तलगी तस्यो दारीर ।

और—

भोगहसो मरानि मित्र नरमी बाटिह मास ।

बिरह्यो यदि मित्र पाठ दिव बेनी मापव दाम ।

अर्थात् १६८० में धारण रूपमा तीज दानिहार को बागी में अमी रंग के छट पर मोस्वामी तुलसी दास ने दारीर रूपमा रिया । बेनी मापव दास ने संबत् १६८० में मित्र पाठ करने के लिए दानगी रचना की । इनके अनिर्दिष्ट मूल ‘गोसाईं बरित’ में बाबा बेनी मापव दास मोस्वामी तुलसी दास की जन्म तिथि और जन्मस्थान के विषय में इस प्रकार लिखे हैं—

(१) उरए हुसरी उपाट द्विती ।

(२) मुहली सत पाव मुषी मुनिपा रजियापुर राज मुद मुतिपा ।

उिनके पर हान्य मास परे अब रुक के ओव हिमांगु चरे ।

मुद सत्यन अष्टम भानु-तनय अनिजिबित छनि मुत्तर सांभ समय ।

अर्थात्, सरबार प्रदेय स्थित पनेबी ग्राम वासी रजियापुर के राज मुद की पत्नी हुसरी की वसति मुति में १२ मास के पदवात् १५६४ में धारण मुत्त दानिहार, सार्यकाष्ठ रजियापुर में मोस्वामी तुलसी दास का जन्म हुआ । उनका जन्म अनिजित लघन में हुआ था । उनके जन्म-पत्र में सतम स्थान पर रमस तथा अष्टम स्थान में छनि थे । इस सम्बन्ध में तुलसी दास के पिता का परिचय नहीं प्राप्त होता है । ग्रन्थकार के अनुसार मोस्वामी तुलसी दास का जन्म धारण मुत्ता सतमी को दानिहार के सार्यकाष्ठ हुआ था । परन्तु विचारकों ने इस प्रस्तावना पर आपत्ति प्रकट की है । इसके अनुसार गणना के आधार पर मोस्वामी जी के जन्म-समय पर अनिजित लघन नहीं था । ऐसी स्थिति में ‘मुद गोसाईं बरित’ में प्रस्तावित मोस्वामीजी की जन्म तिथि विश्वसनीय नहीं लगती है । बेनीमापवदास ने तुलसी दास के जीवन की जन्म महत्त्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन इस रूप में किया है—

यज्ञोपवीत—माघ शुक्ला पञ्चमी शुक्रवार १३९१ वि० सं० । पन्द्रह से एकसठ मास सुदी । तिथि पंचमी और मंगुवार उषी । घरजू तट बिप्रन बन्ध क्रिये, द्वित्र बालक कर्तुं उपदेश दिये ।

इसके अनुसार गोस्वामी तुलसी दास का विवाह ज्येष्ठ शुक्ला बयोदशी सुक्रवार १३८३ वि० (२४ मई १५२९) को हुआ ।^१ गोस्वामी जी की पत्नी का निधन जापाड़ कृष्ण दशमी, बुधवार वि० संवत् १६०७ को हुआ ।^२ गोस्वामी जी ने 'राम चरित मानस' की समाप्ति संवत् १६३९ मार्गशीर्ष सुदी ३, मंगलवार को की थी । गोस्वामी जी का निधन संवत् १६८० भाद्रपद कृष्ण ३ शनिवार को हुआ ।^३ ऊपर जो तिथियाँ प्रस्तावित हैं उनमें से यलना के अनुसार केवल प्रथम दो तिथियाँ ही ठीक हैं । अन्य तिथियाँ यलना के प्रतिकूल पड़ती हैं । इन तिथियों के आधार पर 'मूक मोछाई चरित' की प्रमाणिकता संदिग्ध लगती है ।

'मूक मोछाई चरित' के अनुसार गोस्वामी जी सदस्य बन्धे थे । जग्न के चौथे दिन इनकी माता का स्वर्गवास हो गया । और पिताने इसका परिधाम कर लिया । बालक तुलसी को मछुर्मानस का सामीप्य मिला । बाठ बर्ष पार मास की जाब मैं तुलसी मछुर्मानस के साज सुकर लेख आये—

कहत कथा इतिहास बहु आए सुकर-बेट ।

संसम सरयु बाबरा सप्त बरन मुख रेट ।

इसके पश्चात् गोस्वामीजी ने काशी में छेप स्नातन के निबट पन्द्रह वर्षों तक चारों बैर, छः धामों का अध्ययन किया—

१ पन्द्रह से पार पिरासि मिलै । सुम जेट सुदी मुख ठेरसि पै ।

मभिरास सने बु झिरी मेवरी । दुसहा दुसही की परी मेवरी । पृष्ठ ८ ।

२ एत पन्द्रह बुद्ध पवासि घरे । सुमसाइ बरी बखसीहु परे ।

मुख बासर घन सो घन्य बरी । उपदेशि सती तनु त्याग करी ।

३ सेवीस की संवत् की मयसर । सुम छौस मुराम निवासिहि पर ।

बुद्ध बर्ष सोदास समास जयो । सब ग्रन्थ बयो सुप्रबन्ध जयो ।

४ संवत् सोछ्छै बली बली बरन के तीर ।

आवन स्वामा सीन सनि तुलसी ठग्यो घरीर ।

‘गोसाईं चरित’ में तुलसी दास की निम्न तिथि इस रूप में प्रस्तावित है—

संवत् सोमह से बसी, बसी गंग के तीर ।

धावन स्वामी तीव्र धनि तुलसी रामो धरीर ।

और—

सोमहसों सत्तासि सित नवमी कातिक मास ।

विराघी वहि नित पाठ हित बेनी माधव दास ।

जयौत १६८० में धावन स्वामी तीव्र धनिवार की काशी में बसी गंग के तट पर गोस्वामी तुलसी दास ने धरीर त्याग किया । बेनी माधव दास ने संवत् १६८० में मिल पाठ करने के लिए इसकी रचना की । इसके अतिरिक्त मूल ‘गोसाईं चरित’ में बाबा बेनी माधव दास गोस्वामी तुलसी दास की जन्म तिथि और जन्मस्थान के विषय में इस प्रकार लिखते हैं—

(१) उषा तुलसी सवधाट हितै ।

(२) मुकुटी सत पाव मुषी मुखिया रजियापुर राज गुह मुसिवा ।

तिनके वर हावस मास परे जब कबे के जोब हिमांशु चरे ।

कुछ सप्तम अष्टम भानु-तम्य अमिबीक्षित धनि सुखर सांभ समय ।

जयौत, सरावर प्रदेश स्थित पटेबी ग्राम वासी रजियापुर के राज गुह की बर्त पत्नी तुलसी की दक्षिण कुंभि में १२ मास के पश्चात् १५१४ में धावन तुलसी धनिवार, सारंगदास रजियापुर में गोस्वामी तुलसी दास का जन्म हुआ । उनका जन्म अमिषित मलाज में हुआ था । उनके जन्म-पत्र में सप्तम स्थान पर मंगल तथा अष्टम स्थान में धनि ये । इस सम्बन्ध से तुलसी दास के पिता का परिचय नहीं प्राप्त होता है । ग्रन्थकार के अनुसार गोस्वामी तुलसी दास का जन्म धावन तुलसी सप्तमी को धनिवार के सारंगदास हुआ था । परन्तु विचारकों ने इस प्रस्तावना पर आपत्ति प्रकट की है । इनके अनुसार गणना के आधार पर गोस्वामी जी के जन्म-समय पर अमिषित मलाज नहीं था । ऐसी स्थिति में ‘मूल गोसाईं चरित’ में प्रस्तावित गोस्वामीजी की जन्म तिथि विश्वसनीय नहीं समझी है । बेनीमाधवदास ने तुलसी दास के जीवन की अन्य महत्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन इस रूप में किया है—

यसोपनीत—माघ शुक्ला पक्षमी मङ्गलवार १२६१ वि० सं० । पत्रह से एकसठ माघ सुदी । तिथि पंचमी और मङ्गलवार उदी । सरजू तट विप्रन बन्ध क्रिये छिन्न बाळक कहुँ उपदेश दिने ।

इसके अनुसार गोस्वामी तुलसी दास का विवाह ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी बुधवार १६८३ वि० (२४ मई १५२६) को हुआ ।^१ गोस्वामी जी की पत्नी का निधन आषाढ़ कृष्ण दशमी, बुधवार वि० संवत् १६०० को हुआ ।^२ गोस्वामी जी ने 'राम चरित मानस' की समाप्ति संवत् १६३३ मार्गशीर्ष सुदी ३, मंगलवार को की थी^३ । गोस्वामी जी का निधन संवत् १६८०, श्रावण कृष्ण ३, शनिवार को हुआ ।^४ ऊपर जो तिथियाँ प्रस्तावित हैं, उनमें से लगभग के अनुसार केवल प्रथम दो तिथियाँ ही ठीक हैं । अन्य तिथियाँ यचना के प्रतिभूत पड़ती हैं । इन तिथियों के आधार पर 'मूक मोघाई चरित' की प्रमात्रिकता संदिग्ध लगती है ।

'मूक मोघाई चरित' के अनुसार गोस्वामी जी उन्नत बन्धे थे । बन्ध के जोये मिल इनकी माता का स्वर्गवास हो गया । और पिताने इनका परिष्कार कर दिया । बाळक तुलसी को गरुडमौल्य का सामीप्य मिला । बाठ बर्ष चार मास की यावु में तुलसी गरुडमौल्य के साथ सुकर शेष भाये—

कहत कथा इतिहास बहु जाए सुकर-बेव ।

संगम सरगु बाबाग सन्त जगन मुख देव ।

इसके पश्चात् गोस्वामीजी ने काशी में वेप सनातन के निवृत्त पत्रह वर्षों तक चारों वेद, छः शास्त्रों का अध्ययन किया—

१ पत्रह से चार तिरासि दिने । सुभ जेठ सुदी बुध ठौरसि दे ।

अविरात जमे वृ फिरी मँबरी । दुलहा दुलही की परी मँबरी । पृष्ठ ८ ।

२ एव पत्रह जुक्त मजासि सरे । मुमसाइ बरी बचमीहु पने ।

जुक्त बाहर बन्ध ठो बन्ध बरी । उपदेशि छठी तनु त्याग करी ।

३ छैतीस को संवत् औ मजसर । सुभ चौस मुपम विवाहहिं पर ।

पुठ ज्येष्ठ सोपान समाप्त भयो । बड़ प्रब बन्धो सुपबन्ध भयो ।

४ संवत् सोरह छै बसी बसी संघ के छीर ।

छाबन त्यागा तीज सति तुलसी दख्यो शरीर ।

विषयतः, विहरत मुनिः मनः व्याप्य काशी नाम ।

परम बुर सुस्वात पर, बाब कीन्द् बिधाम ।

X X X X

तह्यीं हते सेपं घनावन नू बपु ह्य वरं च युवा मन नू ।

✕ ✕ ✕ ✕

शिवि रीझि गए, बटु पै जबही गुद स्वामि सौ सुखर बात कही ।

✕ ✕ ✕ ✕

बट्ट पन्नाह बर्य तहाँ रहिकें पकि सास्त्र सबे महि के महि के ।

‘मूख बोसार्ड’ बरिष्ठ में संकल्पित अनेक बटनार्थ स्पष्टीकरण की अपेक्षा रखती हैं। इन्हीं बटनार्थों के कारण इसकी प्रामाणिकता पर सन्देह प्रकट किया गया है। उदाहरण स्वल्प राधावल्लभ के श्री हितहरिबन्ध जी और बोस्वामी जी से सम्बन्धित एक विद्येय सम्पर्क का उल्लेख यहाँ किया जा सकता है। संवत् १६०९ वि० में श्रीस्वामी तुलसीदास पिचकूट में निवास करी थे। श्रीराधाजी हितहरिबन्ध ने अपने विषय प्रियादास और नवस दास को समुत्पाटक, ‘राधा सुजानिधि’ और ‘राधिका तन महानिधि’ नामक ग्रंथों के साथ बोस्वामी जी के पास भेजा। तुलसीदास से इन्होंने निकुञ्ज प्रवेश के जारीजार्ड की कामता की।

मुनि बिगयी मुनि भाग एब मस्तु इति भाषेत् ।

तनु ठडि भए धनाय, नित्य कु ब प्रवेश करि ।

इसके अनुसार द्विहरिबंध का निगम-संख्या १९०१ में हुआ। परन्तु द्विहरिबंध के संख्या १९२२ तक जीवित रहने के प्रमाण मिलते हैं।

इसका उल्लेख किया गया है कि तुलसी के सम्मुख गन्धराज के बाइल से श्रीकृष्ण की मूर्ति धनुर्धर राम के रूप में परिवर्तित हो गई। और गन्धराज तुलसीदास के छोटे भाई थे। परन्तु योश्याई ग्रंथ में उन्हें तुलसीदास का गुरु-भाई कहा गया है—

नन्दरास कलौत्रिया प्रेम मढ़े बिन धेप सनातन छीर पड़े ।

सम्बन्ध सनातन थे। इस प्रकार बाह्यसाहित्य में उपलब्ध मन्दरास और तुलसीदास-सम्बन्धित सूचनाओं 'गोसाईं चरित' की सूचनाओं से कुछ भिन्न प्रकार की हैं। इस दृष्टि से भी गोसाईं चरित की सूचनाओं सम्बन्ध मानी गई है।

'गोसाईं चरित' के अनुसार संवत् १६१६ में सुरदास गोस्वामी जी से मिलने आए थे—

सोछु सै सोछु सरी कामरसिनि किमबास
सुनि एकाव्य प्रवेश महँ आए मूर सुरदास ।
पछु मोकुल नाथ बी कृष्ण रस में जोरि ।
कवि मूर दिसायेत सामर को सुनि प्रेम कबा गटनासर को ।
दिन सात रहे सत संघ पये पर कंज यहै वर आन को ।
यहि बौह गोसाईं प्रबोध किये, पुनि मोकुल नाथ को पत्र दिये ।

इस संदर्भ से यह स्पष्ट होता है कि संवत् १६१६ में मोकुलनाथ ने सुरदास को प्रेम-रस में सम्मिलित कर तुलसीदास के पास भेजा। इस कवन की प्रामाणिकता पर इस कारण सन्देह किया जाता है संवत् १६१६ में सुरदास की आयु ७६ वर्ष की थी मोकुलनाथ की आयु आठ वर्ष की थी। और मोकुलनाथ के जन्म के पूर्व ही कृष्ण भक्ति चारा में सुरदास दीक्षित हो चुके थे। इस अवस्थायु वातक की अनुपेक्षा से सुरदास तुलसी से मिलने गए हों, यह सम्भावित नहीं लगता है।

सन्त तुलसीदासिह द्वारासबाले कृत 'मदयमामम' में तुलसी दास का

१. इस कृति का सर्वप्रथम प्रकाशन मुली देवी प्रसाद साहू तथा राज बहादुर बागेश्वर प्रसाद 'अभय' ने १९११ ई० में प्रभाव के अथिबेडियर प्रेस से किया। आभ्यन्तर साक्ष्य के आधार पर इसकी रचना का आरम्भ इन्हींने मंगलवार, माघपक्ष पुक्ता एकादशी संवत् १६१८ को किया—

संवत् सोलह सै बट्ठारा । छठी मोक्ष संवत्सि सारा ।

मादौ मुदी मंगल एकादसी । आरम्भ कियी प्रथम मन माता । पृष्ठ ४२७ ।

परन्तु तुलसी साहू ने (गोस्वामी तुलसी दास के रूप में) इसे कुत रत्ना, कारण काशी में इस कृति का निरोध हुआ। अतः तुलसी के रूप में पुनः जन्म जाय्य कर तुलसी साहू ने इसका प्रकाशन किया। इस पुस्तक में पिंड और ब्रह्माण्ड विद्वत्की प्रशंसा आदि की गयी है। अतः इसकी मूल-भावना तुलसीदास की भक्ति भावना के विपरीत है। इसका सम्बन्ध गोस्वामी जी के पुनर्जन्म से स्थापित किया जाता है। अतः इस संदर्भ में इस कृति पर विचार करना उचित नहीं है।

जीवन वृत्त प्रस्तुत किया गया है। इसका समय सं० १८२० के १८०० के मध्य-
माना गया है। इस कृति में उन्होंने अपनी जीवनी भी है और वे अपने को
तुलसीदास का प्रतिबन्धी मानते हैं। उदाहरण के लिए इस रचना की कतिपय
पंक्तियाँ यहाँ भी आ रही हैं—

राधापुर बमुना के तीरा । बहै तुलसी का भया शरीरा ।
विधि बुनैक जगह बोहि बेसा । चिन्तोटा बीच बस कोसा ।
संनत् पन्तहु सै नावासी । मारौ सुदी मंजक एकावसी ।
भया जगम सोइ कहीं बुझाई । बास बुझि सुधि बुधि वरसाई ।

× × × ×
समैत सोला सै बसी ली बसन के तीर ।
बासन मुकला ससमी तुलसी लखी शरीर ।

‘बट रामायण’ में तुलसीदास के पूर्ण जन्म की घटनाएँ वर्णित हैं। इसके
अतिरिक्त इस कृति में प्रस्तावित विषयों भी अमूल्य हैं तथा इसमें ऐतिहासिक
व्यक्तिगत भी हैं। अतः इस कृति के आधार पर भोस्वामी तुलसीदास की जीवनी
का निर्धारण सम्भव नहीं है।

उमर की पंक्तियों में उन व्यक्तियों के स्वल्प विस्लेषण का प्रयास किया गया
है जिसकी सहायता से भोस्वामी तुलसीदास की जीवनी के स्वल्प निर्णय की
शेष्टा की जाती है। आगे की पंक्तियों में भोस्वामी तुलसीदास की जीवनी के
स्पष्ट विस्लेषण का प्रयत्न किया जा रहा है।

तुलसीदास की जन्म तिथि और संवत्—‘मूक गोसाईं चरित’ के
रचयिता बेनीमाधव दास के अनुसार भोस्वामी तुलसीदास की जन्म तिथि संवत्
पन्तहु सै चउवन सावन शुक्ला सप्तमी है। इसके अतिरिक्त भोस्वामी जी
के जन्म के विषय में निम्नलिखित वक्तव्य मिलता है—

तिनके घर डादस मास परे ।
बब करक के बीच हिमांशु बरे ।
कुछ सतम अष्टम मानुषनय ।
अमिजीवित एलि सुनार सौम समय ।

इसके अनुसार गोस्वामी जी बाण्डू मास तक वर्ग में रहे। इसका कथन गोस्वामी जी के कथन से ही हो जाता है। तुलसीदास ने विनमयनिका में लिखा है—

वर्ग-वास बस मास पाकि सिनु मास रूप हिय कीन्हों ॥ १७१॥

इसके अतिरिक्त विधियों का विस्तार कम भी नूत नहीं है। (देखिए डॉ० माठा प्रसाद गुप्त, तुलसीदास पृष्ठ ११२)। 'मानस-मर्मक' में विनमयनिका पाठक गोस्वामी जी का जन्म-काण्ड-संवत् १३३४ मानते हैं।

४ ३ ३ १
मन ऊपर घर बालि बालिमे घर पर दीन्हें एक।
तुलसी प्रकटे रामायण राम जन्म की टेक।

मानस मर्मक—अज्ञानविकास प्रेस १९३१।

इस प्रस्तावना को विद्वानों ने स्वीकार नहीं किया है। इस सम्बन्ध में उन्हें यह विचार आता है कि 'मानस' की रचना गोस्वामी जी ने संवत् १६३१ में आरम्भ की थी। अब उस समय उनकी आयु सतहत्तर वर्ष की थी। गोस्वामी जी ने वास्तविक रूप 'उमावय' उत्तर काण्ड की प्रतिलिपि संवत् १६४१ में की थी। उस समय उनकी आयु सत्तासी वर्ष की थी और 'पञ्चावत नामा' के सौर्ध की पंक्तिमें गोस्वामीजी ने संवत् १६३२ में लिखी। उस समय गोस्वामी जी की आयु ११२ वर्ष की रही होगी। इन तथ्यों को सम्मुख रखते हुए डॉ० माठा प्रसाद गुप्त निर्णय करते हैं, "किन्तु इनमें से एक बात भी सम्भव नहीं मान पड़ती है। इसलिए संवत् १६३४ में कवि के जन्म की परम्परा ठीक नहीं मान पड़ती है।" परन्तु अवलम्बनाओं के सम्भावित कारणों की जहाँ डॉ० गुप्त तथा इस विचारधारा के अन्य विद्वान नहीं करते हैं।

१ वास्तविक रामायण के उत्तर काण्ड की एक प्रति काशी राज संग्रहालय में सुरक्षित है। यह संवत् १६४१ की है। इस पर तुलसीदास का हस्ताक्षर भी इस प्रकार है 'तुलसी दासेन'।

२ इस प्रकार की मानना व्यक्त मिळती है कि डोडरमण और तुलसीदास में मित्रता थी। डोडर मण की मृत्यु के बाद उनके परिवार में सम्पत्ति के लिए संघर्ष हुआ, जिसके निवारण हेतु पंचनामा लिखा गया। इसमें दो श्लोक और एक दोहा तुलसीदास का लिखा हुआ माना जाता है।—

स्वर्गीय जगन्नाथजी बर्मों ने 'राम मुक्तावली' नामक ग्रन्थ के आचार पर बोस्वामीजी का जन्म संवत् १२९० माना है। परन्तु 'राममुक्तावली' की प्रमाणिकता सन्देह्य है। राममुक्तावली की पंक्ति इस प्रकार है—

पवन सम मो मन कह्यौ पाँच बीस अर बीस ।

परन्तु सैफी, बिचार और छन्द-मोक्षना के आचार पर यह बोस्वामी तुलसीदास की रचना नहीं लगती है। देखिए—भाटा प्रसाद गुप्त, तुलसीदास-गूढ १०८ ।
 ३०० गुप्त का यह प्रस्ताव है 'पाँच बीस अर बीस' का अर्थ ४२ केना चाहिए। इस प्रकार तुलसी का जन्म-संवत् १२४२ में हुआ माना जाना चाहिए।

पादचाल्य बिचारकों में बिल्कुल और ठासी ने तुलसीदास के जन्मकाण्ड का निर्धारण 'रामचरित मानस' की रचना सिद्धि के आचार पर किया है। इन विद्वानों की यह धारणा है कि बोस्वामीजी ने मानस का प्रणयन ३१ वर्ष की अवस्था में आरम्भ किया। इस प्रकार इनके अनुसार तुलसी का जन्म संवत् १६०० में हुआ। परन्तु इस मत को बलीकार करते हुए विद्वानों ने यह कहा है कि ३१ वर्ष की अवस्था में 'मानस' ऐसे ग्रंथ की रचना किसी भी व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं प्रतीत होता है। परन्तु इस प्रकार के सम्भावना-युक्त निष्कर्षों से वास्तु स्थिति का स्पष्टीकरण नहीं हो पाता है। वास्तविकता यह है कि इस प्रकार के निर्णय-क्षेप हमारे पास स्पष्ट प्रमाण नहीं है। कृष्णदास कविवार कृत 'गीतम-चन्द्रिका' के अनुसार तुलसी का जन्म संवत् १६०० में हुआ था। परन्तु 'गीतम-चन्द्रिका' की प्रमाणिकता अभी तक स्थापित नहीं हो सकी है। इस रचना में 'संकट सोझ से असी बसी नग के तीर' का उल्लेख मिलता है। कतिपय प्रतियों में 'असी बयस के तीर' अंकित मिलता है, इसके

पचासत नामा इस प्रकार है —

द्विचक्षर नामि संक्षेपे द्विचक्षनापयति नाभिधान् ॥

त्रिकर्षराशि न चाबिम्बो रामो द्विकर्षेण भापते ।१।

तुलसी जाग्रो बसरपहि, बरमु न छत्र समान ।

रामु तजो जेहि छाहिबिनु, राम पछिर मान ।२।

जम्मो अवति नाचार्मस्तर्ष अवति मानुषम् ।

रामवपति बक्रोषो बिजुर्बवति नागुरे । बोस्वामी तुलसी ।

अनुसार निम्न के समय गोस्वामीजी की आयु ८० वर्ष की थी। इस प्रस्ताव के अनुसार गोस्वामी तुलसीदास का जन्म-सम्बत संवत् १६०० ही स्वीकार करना पड़ेगा।

‘सिबसिंह सैमर सिबसिंह सरोज’ में सम्बत् १३८३ गोस्वामी तुलसीदास की जन्मतिथि मानते हैं ‘यह महाराज सम्बत १३८३ के समय उत्पन्न हुये थे।’ (सिबसिंह सरोज-पृष्ठ ४२०)। इनका प्रस्तावित सम्बत भी स्वीकार नहीं किया गया है। कारण ‘मूल गोसाई’ की सूचना के सन्दर्भ में इन्होंने गोस्वामीजी का जन्म सम्बत् १३५४ माना है। इस प्रकार सिबसिंह ने स्वयं दो विभिन्न तिथियों की प्रस्तावना की है और अपनी कितनी प्रस्तावना के सन्दर्भ में वे ‘अज्ञान’ घण्टा के प्रयोग से अपने निर्धारण को कतोंहूँ पूर्ण बना देते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास की जन्म तिथि के प्रस्तावकों के एक वर्ग के अनुसार इनका जन्म संवत् १३८६ में हुआ था। इनमें प्रमुख हैं रामगुजाम द्विवेदी (तुलसी प्रत्यावर्तनी नाम ३)। सर जार्जग्रियर्सन के अनुसार गोस्वामी तुलसीदास का जन्म अक्टूबर १६, मंगलवार सम्बत् १३८८ में हुआ था। (*Indian Antiquary* 1933 Page 264)। अपनी कृति ‘गोस्वामी तुलसीदासजी’ में प्रियतमस्य सहाम संवत् १३८६ की तिथि स्वीकार करते हैं। ‘पटरामावध’ में भी यही सम्बत् प्रस्तावित है। ‘मिम बन्धु विनोद’ में भी यही सम्बत् स्वीकार किया गया है। डॉ॰ माधवदास गुप्त ने इस सम्बत् को इन सत्रों में स्वीकार किया है ‘यह तिथि एतना से कुछ अंतराती है, और किसी परम्परागत साक्ष्य का भी इससे अधिक प्राचीन उत्पत्ति नहीं मिलता, और इस तिथि को मानने में कोई असम्भावना भी नहीं दिखलाई पड़ती इसलिए इस तिथि को हम कवि की जन्म तिथि के रूप में ग्रहण कर सकते हैं।’ तुलसीदास पृष्ठ ११०-१११। इस प्रकार अधिकार्य मिश्रान् सम्बत् १३८६ अक्टूबर १६ मंगलवार की तिथि को ही स्वीकार करते हैं। संवत् १३५४ १३६०, सम्बत् १६६० १६६० सम्बत् १३८३ को भोज्या संवत् १३८३ की तिथि मन्ना से भी कुछ अंतराती है। अतः इसे हम गोस्वामीजी की जन्म तिथि के रूप में स्वीकार करते हैं।

इस प्रकार की भावना व्यक्त मिलती है कि राजापुर में 'रामचण्डि' मानस के ज्योत्स्ना काण्ड की एक प्रति उपलब्ध है, जो तुलसीदास लिखित कही जाती है। परन्तु इस मठ के समर्पन हेतु हमारे पास प्रमाण नहीं हैं। इन विचारवालों के अतिरिक्त राजापुर के पक्ष में कतिपय अन्य तर्क दिए गए हैं। उदाहरण स्वरूप यह कहा जाता है कि राजापुर के उपाध्याय (सरयूपारीय) ब्राह्मणों का एक बंस है। इस बंस के लोगों का यह कथन है कि वे गोस्वामी तुलसीदास के शिष्य भी गणपति उपाध्याय के शिष्य हैं। परन्तु इस कथन को यदि स्वीकार भी कर लिया जाय तो इससे यह सिद्ध नहीं हो पाता कि गोस्वामीजी का जन्म-स्थान राजापुर था। गोस्वामी तुलसीदास के जीवन में राजापुर का विशेष महत्व था। इस भावना से पूर्ण विचार व्यक्त किए जाते हैं कि गोस्वामी तुलसीदास राजापुर के संस्थापक थे। यह इनकी साक्ष्य-भूमि थी। जनश्रुतियों के अतिरिक्त इम्पीरियल गेझेटियर (Imperial Gazetteer of India Vol XXI. According to tradition the town was founded by Tulasidas the celebrated author of Ramayan)। इसके अतिरिक्त 'स्टेटिस्टिकल डिस्ट्रिक्शन ऐण्ड हिस्टोरिकल एकाउंट ऑफ बी नार्थ वेस्टर्न प्राविंसेज ऑफ इन्डिया (१८७४) इम्पीरियल गेझेटियर ऑफ इन्डिया, तथा इस प्रकार के अन्य साक्ष्यों से यही सूचना मिलती है कि राजापुर की स्थापना गोस्वामी तुलसीदास ने की थी।

राम बहोरी शुक्ल ने राजापुर में उपलब्ध दो छन्दों का वर्णन किया है। ये राजापुर के उच्च सरयूपारीय ब्राह्मण परिवार से उपलब्ध हुये हैं, जो अपने को गोस्वामी तुलसी दास के शिष्य गणपति उपाध्याय की वंशपरम्परा में मानता है। इनमें से एक छन्द पन्ना के राजा क्षिप्रपति की है। दूसरी छन्द कारसी जिले में है। परन्तु इन छन्दों की प्रामाणिकता पर सन्देह प्रकट किया गया है। इस विषय में कथनीय यह है कि इन से गोस्वामी जी के जन्मस्थान का परिष्कार नहीं मिलता। इनसे यही संकेत मिलता है कि बज्जर के समय गोस्वामी तुलसी दास ने राजापुर की स्थापना की थी। राजापुर गोस्वामी जी का जन्मस्थान था इस प्रकार की सूचना इन से नहीं मिलती है।

विचरन ने कलमुक्ति के अन्धार पर तारी को तुलसी का सम्मान माना है । तारी राबापुर के निकट एक छोटा सा ग्राम है । परन्तु इस मायता के प्रति पावन हेतु अपेक्षित प्रमाण नहीं मिले गए हैं ।

डॉस्विट बुचानन के अनुसार दोस्वामी तुलसी दास काशी के निवासी थे । रत्नजीकाश सास्त्री ने इनके मठ का समर्जन करते हुए इस पर अधिक विस्तार से विचार किया है । अपने मठ प्रतिपादन के सिद्ध विज्ञान विचारक तुलसीदास के काम्य से निम्नलिखित अंश उद्धृत करते हैं—

मियो तुलुब बनम धरोर सुन्दर हेतु जो छक बारि के ।
जो पाइ पंडित परम पर पाकठ पुरारि मुरारि को त
यह परत बंध समीप सुरसरि बज बछीं दमति ममी ।
हैरी कुमति कायर कलप बह्नी बह्ति बिपक्व फली ॥

जिन्य पत्रिका, १३५ ।

इस अंश में 'परम पर पाकठ पुरारि मुरारि' का अर्थ काफ़ी किया गया है । अपनी दोस्वामी के पोषण के लिए सास्त्री जी किन्तिनबा काण्ड के निम्नलिखित अंश का आचार भी उद्धृत करते हैं —

भुक्ति बन्म मद्दि जानि जान जानि बन हानि कर ।
बह्नी बच संभु भवानि सो काशी सेइय कल न न

'मोक्ष और (मेरे) बन्म की भूमि जान की धाम और नापों का संहार करने वाली जो काशीपुरी है वहाँ सिव और पार्वती निवास करते हैं, उसकी सेवा अवश्य करनी चाहिए।' परन्तु तथ्य यह है कि काशी दोस्वामी जी की बन्मभूमि नहीं है । काशी में दोस्वामी जी ने बिद्या-अध्ययन किया था और यहाँ उन्हें मोक्ष प्राप्त हुआ था ।^१

दोस्वामी तुलसी का सम्बन्ध अयोध्या से भी स्थापित किया जाया है । इस सम्बन्ध-स्थापन के प्रयत्न में यह भी कहा जाता है कि दोस्वामी जी का बन्म अयोध्या में हुआ था । पण्डित कन्नवारी पाण्डेय ने इस सम्बन्ध में जिन उक्तियों का

१ निरूपण बुझना के लिए देखिए—दोस्वामी तुलसी दास व्यक्तित्व वर्णन
१० साहित्य—डॉ० रामदत्त पाण्डेय पृ० १३५—१४२ ।

संकेतन किया है उन्हें वे बाह्य सादर और आत्मन्तर साक्ष्य इन दो वर्गों में विभाजित करते हैं। प्रथम के अन्तर्गत ब्रह्मनिधि कवि की उस रचना की प्रस्तावना करते हैं जिसमें इस प्रकार का भाव व्यक्त है कि मोक्षामी जी का जन्म बयोध्या में हुआ था —

जन्म जय तुलसीदास मुसाई । सिमा राम इन बाई बाई ।

× × × ×

कोसल देश उजासिर कीली । सबखिल को जन्मुब रस बीली ।

—कर्मनिधि ब्रह्मावली हरिवंश संग्रह—पृ० २७५-७६ ।

कोसल देश उजासिर कीली' का अर्थ यह नहीं है कि तुलसी का जन्म बयोध्या में हुआ था । वस्तुतः इसका अर्थ हो सकता है कि 'कोसल' की कथा को मोक्षामीजी ने व्यापक रूप में प्रस्तार दिया । अन्य साक्ष्य के अन्तर्गत पाण्डेयजी ने मोक्षामी तुलसीदास की रचनाओं में से कतिपय ग्रंथों के उदाहरण दिये हैं—

(i) निज इच्छा प्रभु अवतरत सुर मोंहि मो छिज लागि ।

सगुन छासक संगतई रहहि मोक्ष सब त्यागि ॥

रामचरित मानस ।

(ii) मरत राम रिपुबधन जवन के चरित सठि अन्हैया ।

तुलसी तब के से जबहुं जानिने रघुवर मगर कसैया ।

गीतावली बाळकाण्ड ९ ।

इन ग्रंथों से इस प्रकार की प्रतीति नहीं निकलती है कि तुलसी दास बयोध्या की अपनी जन्मभूमि मानते हैं। 'रामचरित मानस' से निम्नलिखित ग्रंथ का उदाहरण देते हुए पाण्डेयजी यह संस्थापित करने का प्रयत्न करते हैं कि रामचन्द्र के माध्यम से मोक्षामी तुलसी दास अपनी जन्मभूमि बयोध्या के प्रति सम्मान-भाव व्यक्त करते हैं ।

गुनु कपीस अंतर अन्धेसा । पावन पुरी बधिर यह बैसा ।

अवधि सब बेकुष्ठ बखाना । कैद पुरान बिधित बनजाना ।

बबब पुरी सम प्रिय नहि सोऊ । बह प्रसंग जाने कौंठ कोऊ ।

वास्तविकता यह है कि रामके माध्यम से मोक्षामी जी मातृभूमि की श्रद्धा कर उसके प्रति आस्था भाव जागृत करना चाहते हैं । इस ग्रंथ से यह

बर्ष गद्दी ग्रहण किया जा सकता है कि इसमें तुलसी दास अपनी सम्मूर्ति
बोधीया का स्तवन करते हैं ।

एक अन्य साधना के अनुसार गोस्वामी तुलसीदास का जन्म स्थान रामपुर
माना गया है । यह रामपुर ग्राम सूकर क्षेत्र के निकट अवस्थित था । गोस्वामी
जी के पूर्वज गद्दी के निवासी थे, और तब दास का जन्म इसी स्थान
पर हुआ था । नानादास ने मन्दास के ग्रंथ में इसकी बर्णना भी की है—

लीला पर रह रीति ग्रन्थ रचना में माय ।
छास अति बृहत् बृत्ति मक्ति रह भाग उवाच ।
प्रभुर पयबजो तुलस रामपुर ग्राम निवासी ।
सकल सुकुल संवर्धित मत्तपर रेगु तपासी ।
बन्ध हास वसन्त सुख परम प्रेम पथ में पैय ।
भी तब दास भाग्य विधि रसिक सुप्रमुक्ति,
रच गये ।

इस ग्रंथ में उपलब्ध सामग्रियों के विश्लेषण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते
हैं कि रामपुर सोरो के अन्तर्गत एक गाँव था । अतः इस निष्कर्ष ने सोरो
साधनी की प्रमाधिकता के सम्बन्ध को छलित किया है, जिसकी बर्णना गद्दी की
जा रही है ।

सोरो साधनी —गोस्वामी तुलसीदास का सम्बन्ध सोरो (सूकर क्षेत्र)
से मिली न किसी प्रकार रहा है । और अति प्रबल सब्दों में इस निवार का
प्रतिपादन किया गया है कि गोस्वामी जी सोरो के निवासी थे । सोरो
उनका जन्मस्थान था । गोस्वामी जी ने रामचरित मानस में इस सूकर क्षेत्र का
संक्षेप भी किया है—

मैं पुनि तब सुख धन सुखी कहा सो सूकर क्षेत्र ।

तमुन्नी गद्दी तसि बाक्यन तब अति खेद भवित ।

रामचरित मानस दोहा ३७ ।

‘सूकर क्षेत्र’ की भौगोलिक स्थिति पर भी मत-मतान्तर उपस्थित किए गए
हैं । गोस्वामी तुलसीदास का सम्बन्ध सोरो से अति अस्पष्ट रूप में स्थापित
किया जाता है । इस सम्बन्ध में तीन प्रकार के मत प्रस्तावित किए गए हैं ।

(क) प्रथम वर्ग सोरों को गोस्वामी जी का जन्म-स्नान मानते हुए उसे एटा के अन्तर्गत अवस्थित मानने के पक्ष में है ।

(ख) द्वितीय वर्ग भी प्रथम वर्ग के अनुसार ही सोरों को गोस्वामी जी का जन्म-स्नान तो मानता है परन्तु वह इसकी अवस्थिति जवब प्राग के अन्तर्गत षोड़ा के अन्तर्गत मानता है ।

(ग) तृतीय वर्ग सोरों को गोस्वामी जी का क्षिप्र-स्नान या बीछा-स्नान मानता है ।

एटा के अन्तर्गत अवस्थित सूकर क्षेत्र की अपेक्षा अयोध्या के लिफ्ट सरयू-बाघरा के संगम पर स्थिति (षोड़ा बिन्दा में) 'सूकर क्षेत्र' को तुलसी जी जन्म भूमि अथवा विद्याभूमि के रूप में ग्रहण किए जाने का भी आग्रह मिलता है । जहाँ तक मुझे विदित है षोड़ा बिन्दा अन्तर्गत सोरों का सर्व प्रथम उल्लेख 'अयोध्या माहात्म्य' में हुआ है । इस ग्रन्थ के आधार पर ही यह प्रस्तावित किया गया है कि तुलसीदास के सम्बन्ध में जिस सोरो की जन्म की बात है वह सरयू-बाघरा के संगम पर स्थित है । 'मोक्षार्थ चरित' से जिस 'सूकर क्षेत्र' का परिचय मिलता वह भी सरयू बाघरा के संगम पर स्थित माना गया है—

‘कहत कथा इतिहास बहु आए सूकर क्षेत्र

संगम सरयू-बाघरा सत जनन सुख देत ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल क्याम गुप्तरास इसी मत के पोषक हैं ।’ डा०

१ एडमिन् प्रीम्स ने इस प्रकार कहा है कि गोस्वामी तुलसी दास अपने बुढ़ के घाग सूकर क्षेत्र में निवास करते थे । प्राचीन काल में यह सकल क्षेत्र के नाम से विख्यात था और परवर्ती काल में यह सोरों के रूप में विख्यात हुआ । एक० एम० घातघ ने इसकी व्युत्पत्ति सूकर ग्राम से प्रस्तावित की है । सूकर ग्राम > सूकर पौन > सुकरावें > सोरों — Prologue to the Ramayan by Tuladass — Journal of Asiatic Society of Bengal VOIXLV 1876 Footnote 2 में अपनी व्युत्पत्ति इस प्रकार देते हैं— ‘पसका=पसु+का=पसु (बाघह) का+(क्षेत्र)=बाराह क्षेत्र । इन्होंने एक अन्य व्युत्पत्ति भी है—पसुरु = पसका = पसु इन इति (पसु प्रवान)= कुरिसत पसु ।

अगवली प्रसार सिंह ने 'सूकर खेत' से सम्बन्धित एक पत्थर प्रस्तावना की है। ये इसे बरम् और बाबरा के संगम पर स्थित हो मानते हैं। यह स्थान 'पसका घास' का बिस्ते परवर्तीकाक में सूकर खेत के रूप में ग्रहण किया गया। परन्तु इस प्रकार की व्युत्पत्ति का कोई अर्थ नहीं है। जिस सूकर खेत का सम्बन्ध तुलसी दास से स्थापित किया जाता है वह एटा जिला के अन्तर्गत है, इस मत के समर्थन में अनेक ऐतिहासिक और पौराणिक प्रमाण लिए गए हैं। सूकर क्षेत्र का वर्णन बाराह पुराण, ब्रह्म पुराण, हरिवंश पुराण, कर्ष संहिता आदि ग्रन्थों में मिलता है। इन सभी ग्रन्थों में सूकर दास मंथा-वटवर्ती माना गया है। इन ग्रन्थों के आधार पर यह निष्कर्ष लिया गया है कि 'सूकर खेत' एटा के अन्तर्गत था।

इस विस्लेषण के अन्तर्ग में उन स्थलों का परिचय प्रदान किया जा रहा है, जिनके आधार पर सोरों की प्रस्तावना मोस्वामी जी के ग्रन्थ-स्थान-रूप में की गई है। मोस्वामी जी से सम्बन्धित दो सामग्रियाँ उपलब्ध हुई हैं उनका विवरण इस प्रकार है—

(क) 'रामचरित मानस' के बाठ काण्ड की एक प्रति की पुष्पिका। इस का लिपिकाल संवत् १६४३ माना गया है।

(ख) मानस के अरण्यकाण्ड की एक प्रति की पुष्पिका जो बाबराह मुसल ४ संवत् १६४३ की लिखित गयी है।

(ग) कवि कृष्ण दास रचित 'सूकर क्षेत्र माहात्म्य भाषा' की दो प्रतियाँ, जो संवत् १६७० की मानी जाती हैं।

(घ) कुल्लुआर जगुर्बेदी-दत्त रत्नावली की एक प्रति, जिसका रचना-काल संवत् १८२२ बताया गया है। (ङ) 'रत्नावली लघु बोहा संघर्ष' की दो प्रतियाँ (च) बोहा रत्नावली की एक प्रति। (छ) सोरों में तुलसी दास के स्थान का अव-रोध (ज) तुलसी दास के भाई मन्त्र दास के उत्तराधिकारी, (झ) सोरों में स्थित बरनिह को का मन्दिर। (ञ) सोरों में बरनिह चौबरी के उत्तराधिकारी।
देविए-माया प्रसाद-मुस-तुलसीदास पृ० ८०।

सोरों प्रांत इन सामग्रियों की प्रमाधिकता के प्रति डॉ० माया प्रसाद मुस ने अत्यन्त-भाव प्रकट किया है। उन्होंने यह कहने का स्पष्ट प्रयास किया है कि

इन सामग्रियों से खोरी-सम्बन्धी चारन का पोषण नहीं हो पाता है । 'राम चरित मानस' के जिस बालकाण्ड का उल्लेख ऊपर किया गया है वह गोस्वामी जी के अंशवर (कवि) स्वर्गीय मुरली नाथ जी शुक्ल (खोरी बाघी) की प्रति कही जाती है । इस का विप्लवक संवत् १९९३ है और यह गोस्वामी जी की हस्त लिपि की प्रतिलिपि है इसकी पुष्पिका पर डॉ० माता प्रसाद गुप्त ने आक्षेप किया है ।^१ डॉ० गुप्त ने इस अंश को इसविध संक्षिप्त माना है दूसरी और तीसरी पंक्ति के मध्य एक बिन्दु रेखा है । इससे यह संकेत मिलता है कि पुस्तक यहीं समाप्त हो जाती है । इसके पश्चात् की पंक्ति किसी अन्य व्यक्ति ने संयुक्त की है, और फिर इसे चिह्नित कर दिया है । 'राम चरित मानस' के 'बाल काण्ड' की इस प्रति को देखने का सौभाग्य मुझे नहीं मिला है । अतः इस में मेरा व्यक्तिगत निर्णय सम्भव नहीं है । परन्तु डॉ० राम वल्लभ मारवाड ने सम्पूर्ण सामग्री के निरीक्षण के पश्चात् अति दृढ़ता के साथ डॉ० गुप्त के निष्कर्षों को तथ्य-रहित कहा है । उनके निष्कर्ष इस प्रकार हैं—(१) पुष्पिका की दूसरी और तीसरी पंक्ति के मध्य की जिस रेखा की जगह की गई है वह दो बिन्दुओं की सूचना हेतु है । (अर्थात् काण्ड की समाप्ति और प्रतिलिपि के विवरण के पारंपरिक की) । इसके अतिरिक्त डॉ० माता प्रसाद गुप्त की स्वीकृति से ही इसकी प्राचीनता प्रमाणित होती है । यदि काण्ड की समाप्ति रेखा के पूर्व भी हुई है तो भी यह प्रति संवत् १९४३ (सं० १२०८) की सिद्धी हुई सिद्ध होती है ।

(२) डॉ० गुप्त का यह निर्णय है कि 'अंतिम पंक्ति की सिन्हावट सेप प्रति और पुष्पिका की सिन्हावट से पूरा-पूरा मेल नहीं खाती । इस बालकाण्ड के समस्त पृष्ठों के निरीक्षण के पश्चात् डॉ० मारवाड इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सम्पूर्ण कृति एक ही सिन्हावट में है ।

१—पुष्पिका इस प्रकार है—इति श्री राम चरित मानसे सकल कवि कमुय विष्णु से विमल । अथ सम्पादनी नाम १ शोपान समाप्त सं० १९४३ माके १२०८ बाघी मन्तराज पुत्र कृष्ण दास हेतु ज्योति रघुनाथ दास ने काशीपुरी में—द्वैज—डॉ० माता प्रसाद गुप्त—शुक्ली राम पृष्ठ ८० के सम्मुख का छोटी चिह्न ।

(३) पुष्पिका की दूसरी पंक्ति में '१' और '४' तथा साके' और १३०८ के बीच स्थान रिक्त है। स्वाभाविक केवल बिना के अनुसार ऐसा नहीं होना चाहिए। परन्तु सम्पूर्ण ग्रन्थ इसी प्रकार लिखा गया है। सैम्बक की यह केवल बिना सम्यगी है।

(२) 'राम चरित मानस' के अरण्य काण्ड की प्रति पर भी डॉ० गुप्त ने संकायें प्रकट की हैं।^{११} डॉ० गुप्त ने दो कारणों से संकायें प्रकट की हैं—

(क) पुष्पिका 'इति' से ॥३९॥ तक पहले काक स्वाहो से मिली गई थी। काक में कासी स्वाहो फेरी गई है। 'धी' लुप्तवी वाच से 'इति' तक की निम्नांकित प्रति की निम्नांकित से भिन्न लगती है। 'क', 'इ', '२' '१', और 'ई' में अप्पर इस्मिन्वीयर होता है।

(ख) पुष्पिका के अन्त में जो संकट दिया गया है उसमें '१६४४' अन्व बहारों की अपेक्षा बढ़ा है। इस प्रकार की संका उत्पन्न होती है कि पूर्व के संकों को गूँथ करने के पश्चात् यह लिखा गया है। परन्तु इस प्रकार के निर्वीर्य में कल्पना और अनुमान के अतिरिक्त किसी हड़ बाजार का अवलम्ब नहीं ग्रहण किया गया है।

'सूकर श्रेष्ठ माहात्म्य भाषा' संवत् १८७० की मिति रखता है।^{१२} अतः इस की प्राचीनता का प्रसङ्ग नहीं उत्पन्न होता है और इसके बाजार पर किसी प्रकार का निर्णय भी सम्भव नहीं है।

परन्तु डॉ० रामचन्द्र भारद्वाज डॉ० गुप्त द्वारा प्रस्तावित प्रति से भी एक प्राचीन प्रति का उल्लेख करते हैं जिसकी प्रतिलिपि मुरसीवर कटुबेदी ने संवत् १८०६ में की थी। परन्तु विद्वान् सैम्बक ने अपने मत की संस्थापना के लिए इस प्रति से भी प्राचीनतर प्रति होने का उल्लेख किया है। उनकी यह धारणा है कि

१ 'इति धी राममाने सकल कलि कल्प निर्वाहने विमल वैराग्य जंपादिनी पठ सुकन संवाहे रामकन चरित वर्तनो माय लुटीयो सोपान आरण्य कोठ समस्त । ॥३९॥ धी सुकनो बाह पुष की माया लो उनके भाता सुत कल्प बाह सोरो श्रेष्ठ निवासी हते निमित्त कश्चिमत दास कासी मध्ये संवत् १६४६ आषाढ़ सुख ४ बुके इति ॥ २ संवत् १८७० मिति कातिक बही ११ एकादशी बुध बाहरे किंकिशम् विषमहाय कायम् सोरो मध्ये ।

मुरलीधर की प्रति किसी प्राचीनतर प्रति पर आधारित है। परन्तु उस प्राचीनतर प्रति के अस्तित्व का उपमान प्रतिपादन स्पष्ट नहीं कर सके हैं। डॉ० माण्डान डॉ० माण्डान मुस की संस्थापनाओं के जन्म के प्रति ही अधिक आग्रही हैं। वत कभी-कभी वे तथ्य के संस्थापना की अपेक्षा प्रतिक्रियापूर्ण हो उठे हैं।^१

छोटी से उपलब्ध चौपी सामग्री है 'रत्नावली'। इसके लेखक मुरलीधर चतुर्वेदी हैं। इसकी पुष्पिका में इसकी रचना तिथि संवत् १८६४ लिखित है।^२ इसमें मुरलीधर हठ तीन क्षण उपलब्ध होते हैं। ये तीन क्षण 'सूकर क्षेत्र माहात्म्य' में भी उपलब्ध हो जाते हैं। प्रस्तुत इति बहुत प्राचीन नहीं है। इसकी रचना सैसी बलि बाहुनिक है वत आलोच्य सन्दर्भ में इसकी उपयोगिता का कोई महत्त्व नहीं है।

'बोहा रत्नावली' गोस्वामी जी की पत्नी रत्नावली की रचना मानी गई है। गोस्वामीजी के जीवन-स्वरूप के स्टीककरण की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण रचना है। डॉ० माण्डान मुस ने इसकी एक प्रति का उत्खनन किया है। यह प्रमु ब्यास घमा के 'रत्नावली संस्मरण' में संलभ है। इसमें ८० बोहे हैं। डॉ० मुस इसकी प्रमाणिकता पर इस कारण सन्देह प्रकट करते हैं कि इसकी कोई प्राचीन हस्तलिखित प्रति उपलब्ध नहीं हुई है। डॉ० माण्डान न इसकी दो प्रतियों का उपयोग किया है। डॉ० बीनब्यास मुस भी इसकी दो प्रतियों की बर्ण करते हैं और इसकी प्रमाणिकता पर विस्वास प्रकट करते हैं। 'रत्नावली के बोहा संग्रहों में से एक में १११ बोहे हैं और दूसरे में २०१ बोहे हैं। इन्होंने तुलसी दास के जीवन पर नया प्रकाश डाला है।^३ 'मैने बोहारा छोटी जाकर इन ग्रन्थों का अवलोकन किया है। मुझे ग्रन्थ प्रमाणिक जान पड़ते हैं।^४ इन बोहों से गोस्वामी तुलसी दास के विषय में निम्नलिखित सूचनाएँ मिलती हैं—

बैस बारही कर गइयो खोरहि गमन कराय ।

सत्ताइस जानत करी नाप रतन असहाय ।

१, देखिए गोस्वामी तुलसी दास— व्यक्तित्व, वर्णन और साहित्य, २३० ।

२ इति श्री रत्नावली संपूर्णम् लिखितम् श्री मुरलीधर चतुर्वेदी विष्णु राम बल्लभ मिश्र छोटी मय्ये संवत् १८४६ ॥ ३ हिन्दुस्तानी १९४० ४ हिन्दुस्तानी जनवरी १९४१

सागर कर रस ससि छन संवत् भो बुल बाय ।

प्रिय विनोय बननी मरन करन न भुख्यो बाय ।

कबीर बारह वर्ष की आयु में रत्नावली के साथ पोस्वामोमी का विवाह हुआ। सोलह वर्ष की आयु में तिरायमन तथा सत्ताइस वर्ष की अवस्था में तुलसी ने रत्नावली का त्याग किया। और इसी समय रत्नावली की माता का स्वर्णवास भी हुआ। यह घटना संवत् १९२७ की है। सागर ६ कर २, छ ६ और ससि १, मर्वात संवत् १६२७। डॉ० गायडवार ने इसके पाद्यमन्त्र की ओर संकेत करती हुए निम्नलिखित पाठ स्वीकार किया है—

बाबर प रस ससि छन संवत् भो बुलबाह ।

प्रिय विनोय बननी मरन करन न भुख्यो बाह ।

इनके अनुसार वाक्य ४ प० आकाश और सम्पूर्ण का वर्ण हुआ १६०४। इस प्रकार तिरायमन और रत्नावली-त्याग के मध्य पन्द्रह वर्षों का अन्तर पड़ा है। इन पन्द्रह वर्षों के मध्य की बट्ठारों का कोई परिष्कृत सौरी-सामग्री से नहीं मिलता है। इस सत्य की ओर डॉ० गायडवार ने संकेत किया है। डॉ० पुत ने गोस्वामी की किस्तियों (कलसौध) के आधार पर इस काक-मर्वा की निश्चित बट्ठारों की ओर संकेत किया है। डॉ० पुत के इस संदर्भ के विस्मयनों की ओर उनके आलोचकों ने ध्यान नहीं दिया है। डॉ० पुत का यह विश्वास है कि इन पन्द्रह वर्षों में गोस्वामी ने बार छप्पों का प्रफल किया है। 'रायसका गह्वर' 'बननी मंगल' 'रामाबाबल' और 'रत्ना संदीपनी'। इनमें से 'रत्ना संदीपनी' की प्रामाणिकता पर संशय प्रकट करते हुए डॉ० पुत ने इसका प्रयोग नहीं किया है।

'रामाबाबल' की रचना गोस्वामी की ने संवत् १६२७ के पूर्व काही में थी। छोटे सागरी में इस काही-नामा का कोई वर्णन नहीं मिलता है। माता की रचना के पूर्व गोस्वामी की ने विष्णु-नामा की थी। इस भी संकेत सौरी-सामग्री में नहीं मिलता है।

सौरी के बीच बारबा मुहले में एक मुखमाला वाले बुद्धिजी का नाम है। इस प्रकार की बारबा अल्प विख्यात है कि इससे स्थान पर पहले

गोस्वामी जी का मकान था । यह घर इस समय एक कसाई के अधिकार में है । इस सम्बन्ध में एक जनश्रुति मिलती है —

तुलसी घर मरभट्ट में एक कटियन के पास ।

अपनी करीबी आप सब दू बनो होय उदास ।

इसका आभार ग्रहण कर डॉ॰ रामवत्त माछान्न और रामनरेश त्रिपाठी की यह बारम्बा है कि बुद्धू मही का मकान गोस्वामी जी का ही मकान था ।

डॉ॰ माता प्रसाद मुत इन सम्भावनाओं को बस्तीकार करते हैं । सम्मानाओं के आभार पर लिखित निर्णय किया भी सम्भव नहीं है । परन्तु इनके हिन्दी के अधिकोश विज्ञान इस मूल के पक्ष में है कि तुलसी दास का जन्म-स्थान सोरो था । गोस्वामी जी की समुदाय सोरो के पास ही रंगा पार थी । उनके असावधान भी वर्तमान मिलते हैं । सोरो के पक्ष में इस तथ्य को भी एक प्रबल प्रमाण के रूप में ग्रहण किया जाता है ।

सोरो में गोस्वामी तुलसीदास के पुत्र नरसिंह जी का मन्दिर है । इस आभार पर भी सोरो का समर्पण गोस्वामी जी की जन्मभूमि के रूप में किया जाता है । परन्तु यह मन्दिर नरसिंह जी का ही है इसका समर्पण नहीं हो पाता । डॉ॰ माता प्रसाद मुत का यह कथन है कि नरसिंह जी का मन्दिर न तो तुलसी के पुत्र नरसिंह जी का है न उनके वर्तमान उत्तराधिकारी वल्लभ रंजनाथ जी के उत्तराधिकारी हैं । ऐसी अवस्था में इस तथ्य को हम सोरो के पक्ष में प्रबल आभार के रूप में ग्रहण नहीं कर सकते । इस प्रकार तुलसी दास के जन्म स्थान के रूप में राजपुर और सोरो इन दो स्थान की प्रस्तावना की गई है । परन्तु अभी तक जिस सामग्रियों के आभार पर हम विवेचन करते आए हैं, उनमें कोई ऐसा तथ्य उपलब्ध नहीं हो सका है जिसके आभार पर हम निश्चित प्रकार का निर्णय ले सकें । गोस्वामी तुलसीदास ने 'मानस' की रचना जिस भाषा में की है वह अवधी है । विशेषकर राजपुर सब की । बहुत सम्भव है यह तुलसी की मातृभाषा रही हो । यदि यह प्रमाणित हो सका तो राजपुर को गोस्वामी जी का जन्मस्थान मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए ।

अन्तस्साक्ष के आधार पर गोस्वामी जी का जीवन कृत

इस प्रकार का विश्वास प्रचार था बुझा है कि तुलसी की माता का नाम तुलसी था। गोस्वामी जी ने इस सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं है। परन्तु उनकी रचनाओं में यत्र-तत्र सूक्ष्म संकेत मिल जाते हैं जिनके आधार पर हम कुछ निर्णय देने के लिए आग्रहपूर्ण होते हैं। 'मातंग' के आत्मकाण्ड में एक स्थल पर गोस्वामी जी ने इस प्रकार लिखा है—

रामहि प्रिय पावनि तुलसी की
तुलसी दास द्विष्ट द्विष्टे तुलसी सी ।

अद्वैतीय ज्ञानसागर के एक कोड़े में भी इसका उल्लेख मिलता है कि गोस्वामी जी की माता का नाम तुलसी था—

‘सुरतिव नरतिव नारतिव, सब जाहति अस होन ।
योव लिये तुलसी छिटे, तुलसी सो मुठ होय ।

गोस्वामी जी के पिता का नाम ब्रह्मावत है परन्तु अधिकतर आलोचक इनके पिता का नाम आत्माराम पूरे मानते हैं ।

गोस्वामी जी का वास्तविक नाम क्या था इस विषय पर भी आलोचकों के मत में एक कसड़ा नहीं मिलती है। कतिपय विचारकों की यह धारणा है कि तुलसीदास का वास्तविक नाम रामबोला था। अनेक रचनाओं में गोस्वामी जी ने अपने लिए ‘तुलसीदास’ का प्रयोग किया है, परन्तु ‘कवितावली’, ‘विनय पत्रिका’, और ‘दोहावली’ में उन्होंने यत्र-तत्र अपने लिए ‘रामबोला’ नाम का भी प्रयोग किया है।

(क) राम को मुलाम नाम रामबोला राख्यो राम ।

काम यह नाम ई हो कबहुं कहत हो ।

विनय पत्रिका, पद ७६ ।

(ख) साहेबु मुकानु, बिगड़ स्वाकृ को पण्य कियो

रामबोला नामु हो मुलामु राम साहि को ।

कवितावली, पद १००, उतर कोट ।

इससे यह संकेत मिळता है कि 'तुलसीदास' के अतिरिक्त इनका एक अन्य नाम रामबोका भी था ।

इसी प्रकार गोस्वामीजी की जाति से सम्बन्धित विवादा की जाती है । गोस्वामीजी ब्राह्मण थे परन्तु वे छरमू पारी ने अपना कामबकुल इसका निपारण अभी तक नहीं हो सका है । कतिपय आलोचकों उन्हें 'बुधे' मानते हैं, और कतिपय उन्हें बूढ़ा मानते हैं । तुलसी ने लिखा है—

मेरे जाति पौति न चहौ, काहुँ की जाति पौति ।

मेरे कोठ काम को न ही, काहुँ के काम को ।

उषा

'भूत कही अबभूत कही, रजपूत कही बुलहा कही कोठ ।

इन पंक्तियों का व्यापार ग्रहण कर कतिपय आलोचकों ने यह निर्णय लिया है कि गोस्वामी तुलसीदास ब्राह्मणवंश के नहीं थे । परन्तु तुलसीदास का जीवन व्यक्तिगत संघर्षों और सामाजिक संघर्षों के अभाव के मध्य विकसित हुआ । गोस्वामी जी ने इस प्रकार की अभिव्यक्ति जीवन के ऐसे ही किसी संघर्ष पूर्ण क्षण में ही की होगी । इसके अतिरिक्त इन पंक्तियों के माध्यम से कवि ने जाति और वर्ग-भेद मानना से ऊपर उठकर सामाजिक उन्नयन का भी उद्देश्य दिया है ।

गोस्वामीजी का भारतीय जीवन अति संघर्षपूर्ण रहा है । इसका उल्लेख कविने अनेक स्थलों पर किया है—

भारेटे कम्पाट विकम्पाट द्वार द्वार बीन

जानत हौ बार फल बार ही बनक को ।

कवि को माता पिता का स्नेह और सम्पत्ति भी नहीं मिल सका था । बरिष्ठ कुल में जन्म होने के कारण माता पिता पुत्रोत्सव भी सम्भव नहीं माना उनके थे—

बामो कुल मंगल बचावनो बचामो मुन ।

भयो परित्याग पाप जगन्नी बनक को ।

जन्म के अल्प काल पश्चात् ही गोस्वामी जी के माता पिता का स्वर्गवास हो गया—

समय १६५५ अंकित है। इस पर कवि का हस्ताक्षर भी है और यह कवि की हस्त लिखित प्रति कही जाती है। परन्तु इस कृति में कवि ने स्वयं इसकी रचना-तिथि का उल्लेख इस रूप में किया है :—

धनुस सख्य ^१ सति नमन गन ^२ बबधि ^३ बबिफनयबल ^४ ।

होई सुखक सुभ बासु अस प्रीति प्रतीति प्रबान ।

इसके अनुसार यह ग्रन्थ संवत् १६२१ में लिखा गया था।

पार्ष्वती मंगल —कवि ने इस कृति की रचना तिथि का उल्लेख नहीं किया है। परन्तु कवि के जीवन-काल की एक प्रति (संवत् १६३२ की) उपलब्ध हुई है। अतः यह रचना सं० १६३२ के पूर्व की है। डॉ० बाठा प्रसाद गुप्त ने 'बानकी संघस' की कथा का विस्तारण 'रामाज्ञा प्रसन्न' और 'राम चरित मानस' की कथाओं के सन्दर्भ में करने के पश्चात् इस प्रकार का निर्णय लिया है कि यह कृति 'रामाज्ञाप्रसन्न' और 'मानस' की रचना तिथियों के मध्य की रचना है। (देखिए, तुलसी दास पृ० २२६)। इस रचना के भी दो पाठ-श्रेणियाँ मिलती हैं। प्रथम, नागरी प्रचारिणी सभा की प्रति और दूसरी, डॉ० मरानी शंकर रायिक की प्रति। परन्तु दोनों प्रतियों में समता नहीं है। परन्तु सभा की प्रति 'मानस' के अधिक निकट है। अतः डॉ० गुप्त इसे ही अधिक प्रामाणिक मानते हैं।

रामचरित मानस —'रामचरित मानस' में दोस्वामीजी ने इसकी रचना तिथि का उल्लेख इस प्रकार किया है—

संवत् घोरहू से इकतीस। करतैं कथा हरिप्रद धरि सीसा ।

नौमी मोमवार मधुमासा । सबन पुरी यहू चरित प्रकासा ।

वेहि दिन राम बनम भुवि पावहि । तीरव सकल तहाँ बलि आवहि ।

अर्थात्, चैत्रनुक्ल नवमी संमत्, संवत् १६३१ में दोस्वामीजी ने 'रामचरित मानस' का प्रणयन आरम्भ किया। बैथीमाधव दास के अनुसार दोस्वामी तुलसीदास ने 'मानस' की ध्यापति संवत् १६३१ में की। मानस की सबसे प्राचीन प्रति बबोष्पा की है। इस में केवल 'बालकाण्ड' है। इसमें सं० १६६१ (प्रतिष्ठा तिथि) अंकित है। अन्य महत्वपूर्ण प्रतियों में सं० १७०६ १७२२ १७६२ की

प्रतिमों हैं। ये काशी में हैं। इनके अतिरिक्त 'मानसकी' अनेक हस्तलिखित प्रतिमों उपलब्ध हैं। परन्तु इनकी प्रामाणिकता सन्देह है। अतः उनपर विचार करना अपेक्षित नहीं है। 'मानस' की विवेचना तुलसी दास के 'काव्य-पत्र' के अन्तर्गत की गई है।

पार्वती मंगल — प्रस्तुत ग्रन्थ का विषय है शिव-पार्वती विवाह। इसकी कथा 'कुमारसंभव' पर आधारित लगती है। इसकी रचना कवि ने सं० १६९९ वि० (सन् ११८९) फागुन संवत् शुक्ल पंचमी पुनवार को की थी।

गीतावली—इस कृति की रचना शिव के सम्बन्ध में अष्ट-साध्य से कोई सहायता नहीं मिलती है। 'मूल दोसार्ह चरित' के अनुसार डॉ० स्वामिगुप्तर दास ने इस प्रकार का निर्वच किया है कि 'गीतावली' का कथा भाग और सीता-वट विषयक कवित्त सं० १६२८ और १६३९ के मध्य लिखा गया है। सेव अंश की रचना संवत् १६९९ में हुई। 'गीतावली' की प्रतिमों के दो पाठ मिलते हैं। एक पाठ 'पद्मावली रामायण' नाम से उपलब्ध होता है। दूसरा पाठ 'गीतावली' नाम से उपलब्ध है। 'पद्मावली रामायण' की एक ही प्रति उपलब्ध है। यह प्रति अति प्राचीन है। संवत् १६९९ की 'विजय पत्रिका' की एक प्रीत के साथ इसकी प्रति संलग्न मिलती है। अतः इसका रचना-समय सं० १६९९ माना जा सकता है। 'पद्मावली रामायण' की यह प्रति सन्निहित है। कैवल्य गुप्तर काव्य और उत्तरकाण्ड ही पूर्व रूप में उपलब्ध हैं। परन्तु 'पद्मावली रामायण' और 'गीतावली' के पाठों के तुलनात्मक अध्ययन से यह संकेत मिलता है कि 'पद्मावली रामायण' 'गीतावली' से पूर्व की रचना है।

'गीतावली' में राम-कथा पदों में लिखित है। ये पर किसी क्रम से नहीं रचे गए हैं। यह छोट काण्डों में विभक्त है, और इसमें पदों की संख्या ३२८ है।

१ बाणकाण्ड (१०८ पद) २ अयोध्याकाण्ड (८१ पद) ३ अरण्यकाण्ड (१७ पद) ४ किष्किन्ध्याकाण्ड (२ पद) ५ सुन्दरकाण्ड (४१ पद) ६ संज्ञाकाण्ड (२३ पद) ७ उत्तरकाण्ड (३८ पद)। बाणकाण्ड में राम के बाणचरित का वर्णन है। इसमें राम के स्व-सौम्यत्व और सीता-सौन्दर्य-वर्णन के प्रति कवि विशेष रूप से आकर्षित है।

'गीतावली' के 'अयोध्याकाण्ड' में 'मानस' के 'अयोध्या कांड' का-सा विस्तार नहीं

है। वस्तुतः इस में कथा और वस्तु-नियोजन की ओर कवि की दृष्टि नहीं है।

इस काण्ड के अनेक शीत 'पूरवापर' में उत्पन्न पीतों के समान भाव के हैं। माता कौसल्या के विद्योत्पन्न वात्सल्य वर्त्म के पीत पछोहा के विद्योत्पन्न वात्सल्य भाव-पूर्ण पशों के समान ही हैं—

राखी एक बार छिरि बाबी ।

ए बार बाबि बिकोकि भास्ने बहुरी बड़ पाबी ।
 ओ प्य ज्योई पोकि कर वंज्य बार-बार बुच कारे ।
 क्यों बीबहि मेरे राम काहसे । ते अब निष्ट निचारो ।
 मल्ल सी मुरी खार कहत हैं भवि दिव बाबि छिहारे ।
 कबि विगहि बीन होव भावरे मगहु कमल हिस मारे ।
 सुनहु पवित्र ओ राम बिछहि नन कहियो मातु खरिओ ।
 तुछी मोहि और सबहिन तें इनको बड़े बदेखो ।

'भाब' के अर्थ काण्ड में अन्त बल अनुसूत्या-प्रसंग विराज-नम दुर्गन्धा प्रसंग कर रूप-वच बाबि प्रसंगों का समावेश किया गया है। परन्तु 'बीबाबकी' के अर्थ कांड में इन प्रसंगों की ओर कवि तनिक भी भावोपेत नहीं है। नीच-खबरी प्रसंग यहाँ भी निमोचित हैं। बखरन मरन और ककन रस के अनेक सन्दर्भ इस कांड में उपलब्ध होते हैं।

त्रिचिन्ता कांड में केवल दो पद हैं। काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से सुन्दरकांड का इस छन्द में विशेष महत्त्व है। विमोचन इस कांड में राम की शरण में आते हैं। सीता का विमोचन-वर्त्म, राम की पुत्र-सन्धा, अयोध्या-वाटिका-विजय तथा संका-बहुत इस कांड के अन्त महत्त्वपूर्ण अंग हैं। संका कांड में अंगद-राज्य सम्हाल, अमल-कांडि बाबि का वर्त्म है। इसमें ककन-रस की ही प्रधानता है। अमल कांडि के बाद ही राम की विजय का वर्त्म है। अन्त में माता कौसल्या की बापुर् अमिताभा-वर्त्म से बहु कांड समाप्त होता है—

बैठी तपुन स्नावति माता ।

कब ऐँई मेरे बाक कुछन बर बहहु काक छुरि बाता ।
 रूप बाव की खोरी देखो छिने नीच मदेहो ।
 कब दिव बहहु बिकोकि मगन गरि राम कपल कर देखो ।

प्रतियों हैं। ये काशी में हैं। इनके अतिरिक्त मानसकी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं। परन्तु इनकी प्रामाणिकता शंकास्पद है। अतः उनपर विचार करना अपेक्षित नहीं है। मानस' की विवेचना तुलसी दास के काव्य-पदा' के अन्वयत की गई है।

पारवती मंगल —अस्तुत प्रब का विषय है दिव-पारवती विवाह। इसकी कथा 'कुमारसंभव' पर आधारित लगती है। इसकी रचना कवि ने सं० १९९३ वि० (सन् १३८६) फाल्गुन मंगल शुक्ल पंचमी गुरुवार को की थी।

गीतावली—इस कृति की रचना त्रिपि के सम्बन्ध में अन्तःसाध्य से कोई सहायता नहीं मिलती है। 'मुख तोसारी' बरित' के अनुसार डॉ० स्वामसुन्दर दास ने इस प्रकार का निर्णय किया है कि कवितावली' का कथा भाग और सीता-वट विषयक कवित सं० १९२८ और १९३१ के मध्य लिखा गया है। दोष अंस की रचना संवत् १९९२ में हुई। 'गीतावली' की प्रतियों के दो पाठ मिलते हैं। एक पाठ 'पदावली रामायण' नाम से उपलब्ध होता है। दूसरा पाठ 'गीतावली' नाम से उपलब्ध है। 'पदावली रामायण' की एक ही प्रति उपलब्ध है। यह प्रति अति प्राचीन है। संवत् १९६६ की विजय पत्रिका' की एक प्रीत के साथ इसकी प्रति संकलन मिलती है। अतः इसका रचना-समय सं० १९६६ माना जा सकता है। 'पदावली रामायण' की यह प्रति खण्डित है। केवल 'मुन्दर काण्ड' और 'उत्तरकाण्ड' ही पूर्ण रूप में उपलब्ध हैं। परन्तु 'पदावली रामायण' और 'गीतावली' के पाठों के तुलनात्मक अध्ययन से यह संकेत मिलता है कि पदावली रामायण' 'गीतावली' से पूर्व की रचना है।

'गीतावली' में राम-कथा पदों में क्रियित है। ये पर किसी क्रम से नहीं रहे मए हैं। यह सात काण्डों में विभक्त है और इसमें पदों की संख्या ३२८ है।

१ बाहककाण्ड (१०८ पद) २ अयोध्याकाण्ड (८२ पद) ३ भरधकाण्ड (१७ पद)
४ किष्किन्धकाण्ड (२५ पद) ५ मुन्दरकाण्ड (४१ पद) ६ लंकाकाण्ड (२३ पद), ७ उत्तरकाण्ड (३८ पद)। बाहककाण्ड में राम के बाहकचरित का वर्णन है। इसमें राम के हय-सौन्दर्य और घोड़-सौन्दर्य-वर्णन के प्रति कवि विशेष रूप से आकर्षित है। गीतावली के अयोध्याकाण्ड में 'मानस' के अयोध्या कांड का-सा विस्तार नहीं

है। वस्तुतः इस में कमा और वस्तु नियोजन की ओर कवि की दृष्टि नहीं है।

इस काण्ड के अनेक शीत 'सूरसागर' में उपलब्ध शीतों के समान भाव के हैं। माता कीधर्या के विद्योत्पन्न बाधस्त्य वर्णन के शीत यक्षोदा के विद्योत्पन्न बाधस्त्य भाव-पूर्ण शीतों के समान ही हैं—

राशो एक बार फिरि बाबी ।

ए बार बाबि नितीकि आपने कुरो बड़ बाबी ।

जे पय प्याई पोखि कर रंजन बार-बार चुब कारे ।

क्यों बीबहि मेरे राम जाइस । ते अब निपट निहारो ।

भारत सी कुनी तार कइत है, बसि प्रिय बाबि सिहारे ।

तबनि किहि बिग होत आगे मरहु कसत हिम मारे ।

सुगह पयिक जो राम मिलहि बन कहियो मातु सदैसो ।

चुलसी भोहि और सकलित ते इनको बड़े जेहो ।

'मागत' के अष्टम काण्ड में अत्यन्त-सूक्ष्म अनुसूच्या-मर्तग निराश-वच दुर्गमता प्रदर्श, अर रूप-वच आदि प्रसंगों का समावेश किया गया है। परन्तु 'बीबाबसी' के अष्टम कांड में इन प्रसंगों की ओर कवि तनिक भी आकर्षित नहीं है। नीच-सचरी प्रसंग यहाँ भी निर्योक्त हैं। अशरम मरण और कलम रस के अनेक सुन्दर इस कांड में उपलब्ध होते हैं।

निर्मलका कांड में केवल दो पद हैं। काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से मुखरकांड का इस चरण में विशेष महत्व है। बिभीषण इस कांड में राम की शरण में आते हैं। सीता का विमोघ-अर्चन राम की मुठ-सजा, बसोह-बाटिका-विजय तथा लंका-बहन इस कांड के अन्त महत्वपूर्ण अंग हैं। लंका कांड में अशरम-राजन सम्बाध, अशमय-शक्ति आदि का वर्णन है। इसमें कलम-रस की ही प्रधानता है। लक्ष्मण शक्ति के बाव ही राम की विजय का वर्णन है। अन्त में माता कीधर्या की आतुर अविद्याया-वर्णन से यह कांड समाप्त होता है—

बैठी सकल म्माबति माता ।

कब देखे मेरे बाक कृपक घर कइत काक कुरि बाता ।

रूप मात की सोनी देखो सोने जोष मनेहो ।

अब छिय सकल नितीकि नयन मरि राम कलम कर जेहो ।

उत्तर काव्य की कथा 'वास्मीकि रामायण' पर आधारित है। राम का राव्याविप्रेक्ष्य सीता-वनवास तथा छत्र-कुस-जन्म इसके प्रमुख अंग हैं। राम की सीमा और उनका सौन्दर्य-वर्णन भी यहाँ उपलब्ध हैं। राम का हिंदोलन वर्णन इसी प्रसंग के अन्तर्गत आता है। यह कृति जनसाधारण में है और यत्र-यत्र यह कृष्ण काव्य से प्रभावित भी सम्यती है।

कृष्ण गीतावली — कृष्ण गीतावली के रचना-काल का परिष्कृत ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं हो पाता है। डॉ० स्वाम मुखर दास ने 'गुरु गोठार्थ चरित' के आधार पर यह कहा है कि 'कृष्ण गीतावली' की रचना 'गीतावली' के साव संवत् १६१६ से १६२८ के मध्य में हुई है। रामनरेश बिपाठी इस ग्रन्थ की रचना-तिथि पर विचार करते हुए कहते हैं 'मेरा अनुमान है कि इसकी रचना संवत् १६२८ और १६३० के बीच में हुई होगी। उन दिनों वे प्रायः काशी में रहते थे। और बहुत कुछ के मोसार्दियों के सम्पर्क में रहते थे। सम्भवतः उनको प्रसन्न करने के लिए यह 'गीतावली' उनकी के अनुरोध से लिखी गई। (गुरुजी दास और उनकी कविता पृ० ४०१)। परन्तु इस प्रकार के अनुमान का आधार क्या है इसका संकेत नहीं किया गया है। डॉ० माताप्रसाद गुप्त का यह विश्वास है कि इस कृति के तिथि निर्धारण इसके विषय निर्वाह और सीली के आधार पर ही सम्भव है। इन दृष्टियों से विचार करते हुए उन्होंने इसका रचना काल संवत् १६१८ के लगभग माना है।

इस रचना में केवल ६१ पर हैं जो कृष्ण चरित से सम्बन्ध रखते हैं। इस कृति में कृष्ण की बाब-बीला गोपी-उपासक, ऊबल-बन्धन इन्द्र-कोप मधुरा-वसन, गोपी विरह, अमर-गीत आदि विषयों से सम्बन्धित पर हैं। यह 'रचना धुराधार' से प्रभावित सम्यती है।

विनय पत्रिका — 'गीतावली' के समान 'विनय पत्रिका' के भी दो पाठ उसकी प्रतियों में प्राप्त होते हैं, प्रथम पाठ 'रामगीतावली' के नाम से और द्वितीय 'विनय पत्रिका' के नाम से। 'रामगीतावली' की केवल एक ही प्रति उपलब्ध है। यह कवि के जीवन-काल संवत् १६६६ वि० की है। यह प्रति अखण्ड है। इसके अन्तिम पृष्ठ पर पर संख्या १७१ है। रामनरेश बिपाठी इसका रचना काल संवत् १६४२ मानते हैं। परन्तु इस कृति की रचना तिथि का स्पष्ट परिष्कृत

नहीं मिलता है। 'विजय पत्रिका' में पदों की संख्या २७२ है। परन्तु इसकी निम्न-लिखित प्रतियों में पदों की संख्या निम्न निम्न है। 'योसार्ई बरित' में 'विजय पत्रिका' का रचना-काल सं० १९१८ माना गया है। इस प्रकार काकाक्रम के अनुसार यह राम बरित मानस' के पश्चात् की कृति है। 'योसार्ई बरित' में इस प्रकार की भावना व्यक्त मिलती है कि कल्पित से पीड़ित होकर गोन्धामीजी ने पीड़ा-मुक्ति की भावना से इस ग्रन्थ का प्रथमन किया था।

कल्पित विचारकों की यह भावना है कि 'विजय पत्रिका' एक संग्रह ग्रन्थ है। अपनी इस धारणा के लिए वे निम्नलिखित कारण देते हैं— (क) इसमें रचना-काल का निर्देश नहीं है।

(ख) इसमें पदों के नियोजन में कोई क्रम नहीं है। और इस प्रकार इन पदों में विचारों की श्रृंखला नहीं है।

यह ग्रन्थ योति-काव्य की शैली में रचित है। इसके प्रथमन में संगीत का आधार ग्रहण किया गया है और इसमें विभिन्न राग-रागिणियों का प्रयोग किया गया है, उदाहरण स्वरूप, केदार गौड़ी, विभावक रागकबी वर्धन समित आदि रागों के पर दृष्ट्य हैं।

'विजय पत्रिका' में कवि अपने आराध्य से प्रार्थना और आत्म निवेदन करता है। अतः इसमें किसी कृष्ण का वर्णन नहीं है और न इसमें प्रकृतिवर्णन है। इसका प्रमुख रस शान्त है। वास्तव और विजय याव मक्ति के स्वप्न के अनुपम उदाहरण ही 'विजय पत्रिका' के पदों में उपलब्ध हो जाते हैं। इसके पदों का वर्गीकरण डॉ० रामकृष्णराम ने प्रस्तुत रूप में किया है—

१ प्रार्थना या स्तुति (नमो से राम तक)।

(अ) गुण वर्णन (१) कमलों द्वारा (२) स्पर्शों द्वारा।

(आ) रूप वर्णन—अलंकारों द्वारा।

२ स्वार्थों का वर्णन

[अ] चित्रवृत्त [आ] कापी।

३ मन के प्रति उपदेश ४ संसार की बखारता, ५ ज्ञान-वेदाध्य वर्णन, ६ भाव्य बरित वर्णित (द्विती साहित्य का आत्मकालात्मक इतिहास पृ० ४१२)।

वरुण रामायण — 'वरुण रामायण' के भी दो पाठ उपलब्ध होते हैं। एक

पाठ यह है जो मुद्रित प्रतियों में उपलब्ध है। दूसरा पाठ सं० १७३७ की एक हस्तलिखित प्रति में उपलब्ध होता है। मुद्रित प्रति के प्रथम ब्याख्य बरने और अन्तिम व्याख्य बरने द्वितीय पाठ में उपलब्ध नहीं होते। इस प्रकार इस कृति के पाठ-निर्धारण की आवश्यकता है।

बेनी माधव दास ने इसका रचना-काळ संवत् १९९३ दिया है। राम नरेश त्रिपाठी इसे संवत् १९१० से १९४० की रचना मानते हैं। परन्तु इस सम्बन्ध में यह कहा गया है कि 'बरने रामायण' की रचना रहीम के बरने के आधार हुई है—

कवि रहीम बरने रचे पठ्ये मुनिवर पास।

सहित तेह सुन्दर जल्प मैं रचना किए प्रकास।

रहीम का जन्म संवत् १९१३ में हुआ था। अतः रामनरेश त्रिपाठी की प्रस्तावना ग्रहण करने योग्य नहीं है। डॉ० माताप्रसाद मुखर्जी इसका रचना-काळ संवत् १९९३ के समय मानते हैं। और यह प्रस्तावना उचित भी लगती है। इस जल्प में निम्नलिखित क्रम से सात काण्ड हैं—

बाल काण्ड, अयोध्या काण्ड, बरण्य काण्ड त्रिकिन्वा काण्ड सुन्दर काण्ड लंका काण्ड और उत्तर काण्ड। कवि का वर्णन विषय है रामकथा। परन्तु यह कथा अति सांकेतिक है। इसका स्वरूप बरने है। जिसमें १२, ७ के विराम से १३ भाग्य हैं। बरने एक संस्कृत जल्प है। कवि की मृत्यु के परचात् इसे संकलित किये जाने का प्रयास किया गया होगा इस प्रकार का संकेत मिलता है।

उदाहरण :—

भरत कहत सब सब सुमिरहु राम।

तुझसी अब नहीं बपत समुझि पलाम।

जनम जनम बहै बहै तनु तुझसीहि देहु।

तहैं तहैं राम निवाह्य नाम सनेहु।

बोहावली —गोस्वामीजी के अनेकांस ग्रन्थों के समान बोहावली के रचना काळ का स्पष्ट निर्धारण नहीं हो पाता है। डॉ० माता प्रसाद मुखर्जी ने बोहावली के रचित्व बोहो का आधार ग्रहण करते हुए इनके रचना-काळ की ओर संकेत किया है—

स्तनम घटइ पुनि हग फटइ बटइ सकल बल देह ।
 हते घटे बटि है कड़ा जो न बटे हरि नेह ।
 भीष भीष लै बाइ जो, राम रबावसु पाइ ।
 तो तुलसी तेरो मनो ननु अनमो जबाइ ।

बोहा ५६३, १५५ ।

इस प्रकार ये कवि की बराबर ब्रह्म की रचनाएँ हैं। प्रस्तुत में बोहे सं० १६५६ से १६७६ के मध्य ही रचे प्रतीत होते हैं। डॉ० स्वाम सुन्दर दास ने 'मूल मोसाई कवित्त के आधार पर यह निर्णय किया था कि इस ग्रन्थ का संग्रह कवि ने संवत् १६४० में किया (गोस्वामी तुलसी दास) पृ० १२) परन्तु यह सम्भव नहीं लगता है। बोहावली की अनेक प्रतियाँ मिलती हैं जिनकी ध्वं संख्या में समता नहीं है। एक प्रति में १७३ बोहे हैं तो एक अन्य प्रति में ४७८ बोहे हैं। वस्तुतः यह एक संकल्पन ग्रंथ है। इसमें 'रामायण प्रस' और 'मानस' के अनेक बोहे भी संकीर्ण मिलते हैं। इसमें नठि, नीति, वैराग्य तथा आत्मचरित विषयक बोहे मिलते हैं।

कवितावली — 'मोसाई कवित्त' में कवितावली का उल्लेख नहीं मिलता है परन्तु बेबी माधव दास ने इस ग्रन्थ में यह संकेत किया है कि गोस्वामी जी न कुछ कवियों की रचना भी की है—

सीता बट तर तीन दिन बसि सुकवित्त बनावा ।

बदि लोकावन विन्य गुप लुंछे कासी जाय ।

इससे यह संकेत मिलता है कि सीता बट के भीचे गोस्वामी जी ने इन कवियों को रचा। इस प्रकार ये कवित्त १६२८ १६३१ वि० के मध्य किये गए। बेबी माधव दास के अनुसार ये कवित्त सीतावली के बाद और 'मानस' के पूर्व लिखे गए हैं। कवितावली में 'भीष की बनीचरी' की चर्चा है। इस 'बनीचरी' का संवत् १६६१ १६७१ माना गया है। इस प्रकार यह एक संग्रह ग्रंथ प्रतीत होता है। इस ग्रन्थ में 'खलीली' तथा महामारी के उल्लेख भी मिलते हैं। इनका समय क्रमशः १६५५ १६७६ और १६७३-१६८० के मध्य पड़ता है। इस प्रकार 'कवितावली' गोस्वामी जी की अन्तिम ब्रह्म की रचना प्रतीत होती है।

बाहुक' कवितावली की अपिकांश प्रतियों में एक संक्षिप्त सारग्रन्थ या परिशिष्ट की मौलि मिलता है। स्वतंत्र ग्रन्थ के रूप में इसको प्रति की अनुपस्थिति में एक समस्या उत्पन्न हो गई है। दूसरी बात यह है कि कवितावली के उत्तर काण्ड के अनेक अंश 'बाहुक' में भी उपलब्ध हो जाते हैं। इस कारण भी इसे स्वतंत्र ग्रन्थ मानने में संकोच होता है।

कवितावली में ३२१ सूत्र हैं जो सात काण्डों में विभक्त हैं, बालकाण्ड (२२ सूत्र) अयोध्या कांड (२८ सूत्र) अरण्य काण्ड (१ सूत्र) किष्किन्ध्या कांड (१ सूत्र), मुन्धर काण्ड (१२ सूत्र) लंका काण्ड (२८ सूत्र) उत्तर कांड (१८३ सूत्र)। इसके बाल कांड के प्रथम सात सर्गों में राम के बाल-रूप का वर्णन है। इसके पश्चात् सीता स्वयंवर अङ्घ्रिस्था उत्तार, अनुप-मैत्र आदि षट्गानों वर्णित हैं।

अयोध्या काण्ड में केचट और ग्राम बभ्रू की भावनाओं का चित्रण है। अरण्यकाण्ड में एक ही सूत्र है। इसमें रामचन्द्र के हेम मृग के पीछे भागने का वर्णन है। मुन्धर कांड में भवानक और रीडर-नों से पतिपुत्री जीवनत वनीत उपलब्ध होते हैं। लंका-वहन का वर्णन इसी काण्ड में में किया गया है। लंका काण्ड में सम्बन्धित रावण को उपदेश देती है। अंगद भी रावण को उपदेश देता है और इसके पश्चात् युद्ध का वर्णन है। और, रीड और भवानक रत्नों का यहाँ मुन्धर परिवार मिलता है। उत्तर काण्ड में कवि ज्ञान और मक्ति की महिमा का वर्णन करता है। गोस्वामी जी की बीवनी के अनेक पदों का स्पष्टीकरण उत्तरकांड के अनेक पदों से हो जाता है। कवि अपनी वात्स्यावस्था और अपनी बहिष्ता का वर्णन भी करते हैं सूत्र १६६ और १६७ में वे अपनी बाहु पोका का भी उल्लेख करते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें शिव, पार्वती काशी प्रयाग आदि से सम्बन्धित पद भी मिल जाते हैं। १७० वे सूत्र में कश्यपी का वर्णन है १७३ १७६ सूत्र में महामारी का वर्णन मिलता है और १७७ सूत्र में मीन की शरीर-री का वर्णन मिलता है। इसमें सर्वथा कवि सारग्रन्थ और श्रुतना सारों के प्रयोग किए गए हैं। उदाहरण—

बर बंठ की पंक्ति कुंद कसी जबरजबर-वस्त्रन खोजन की।

अपसा बमके बल बीज, अने सूत्र मोहित माल बमोहन की।

दुपटारि छटै लटकै मुस ऊपर नुँइछ लोल कपोलन की ।

निबद्धावरि प्रात करे 'तुम्ही', बलि जाळै लसा इन बोलन की ।

कवितावली बाळकाय्य ३ ।

बैराग्य संदीपनी — इस ग्रन्थ की रचना विभिन्न के विषय में लिखित प्रमाण ही मिलते हैं । 'चरित' के अनुसार इसकी रचना संवत् १६६२ में हुई । क्याज्जर दास तथा पीताम्बरदास बकश्शाज इस संवत् १६४० की रचना मानते हैं ।

'बैराग्य संदीपनी' दोस्वामी जी की भारद्वाज रचना है । सम्भवतः काक-ग्रन्थ से यह 'रामचरित मानस' के पूर्व की कृति है । विषय निरौंह और धोली, इन दोनों ही दृष्टियों से यह अप्रौढ़ कृति है । बल गौ० दास के अनुसार हम इसे संवत् १६१४ की रचना मान सकते हैं ।

इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य बैराग्य भावना है, इसका उत्कृष्ट कवि ने इस प्रकार किया है—

तुम्ही बैद पुरान मन, पूजन दास्य विचार ।

मह विराग संदीपिनी बलिख हान की धार ।

इस रचना में दोहा छोट्टा और चौलाई छन्दों के प्रयोग हुए हैं ।

उदाहरण — कंचन कौंचहि सम गनै, कामिनि काठ पखाम ।

तुम्ही ऐसे धन्य जन पृथ्वी ब्रह्म समाम ।

कंचन को मृत्तिका करि मानत । कामिनि काष्ठ सिखा पहिचानत ।

तुम्ही भूक्ति गयो रस एहा । ते जन प्रकट राम की बैहा ।

बैराग्य सं० २७२८ ।

परवर्ती राम साहित्य

बैराग्य दास—बैराग्य दास रीति काव्यधारा ने कवि और भाचार्य हैं । परन्तु अपनी विशिष्ट कृति 'रामचन्द्रिका' के कारण इनकी परिचयता रामकाव्य धारा के कवियों के अन्तर्गत की जाती है । 'रामचन्द्रिका' का प्रतिपाद्य 'राम चरित' है । परन्तु इनके इस काव्य की मुख्य अनुभावना भक्तिमूलक नहीं है ।

अब गोस्वामी तुलसी दास की भावना के सम्वर्धन में केसव दास के इस काव्य का मूल्यांकन अवश्य नहीं है।

केसव दास ने रामचन्द्रिका में अपना परिचय इस रूप में दिया है—

सनाइ जाति है जगसिद्ध सुख स्वभाव ।
 कृष्णदत्त प्रसिद्ध है यहि मिथ मंडित राव ।
 मनेस सो सुख पाइयो बुधि कापिनाथ अगाध ।
 असेप शास्त्र विचारि कै भिन पाइयो मत्त साध ।

सुगीत सख ।

उपज्यो तेहि कुछ मन्त्र मठि छठ कवि केसव दास
 रामचन्द्र की चन्द्रिका जाया करी प्रकाश ।

रामचन्द्रिका, पृ० ७ ।

इसके अनुसार केसव दास सनाइ ब्राह्मण थे। इनके पितामह का नाम श्री कृष्णदत्त और पिता का नाम काशी नाथ था। केसव दास का जन्म संवत् १६१० में हुआ था। ये जोरछा नरेश के दरबारी कवि थे। केसवदास गोस्वामी तुलसी दास के समकालीन थे। बेनीमाधव दास ने 'भूष गोसाई' चरित' में केसव दास के विषय में इस प्रकार लिखा है—

कवि केसव दास बड़े रहिया । जनस्याम गुरुकुल तन के बसिया ।
 कवि जानु कै बरसन हेतु गए । रहि बाहिर सुखल भेजि दिए ।
 सुनि कै बु बुसाइ कहै इतनी । कवि प्राकृत केसव भावन हो ।
 किरिगे मष्ट केसव सो सुनि कै । निज तुच्छता बापुइ ते गुन कै ।
 जब सेवक डेरैय मे कहि कै । हौं भेंटि हौं कासिह विमल यहि कै ।

× + + × ×

रवि राम सुचंद्रिका रातिहि में । बुरे केसवबु जातिबाटिहि में ।
 सठसंग बनी रह रंग मची । बोर प्राकृत विषय विमूर्ति पची ।
 मिष्टि कैराव को संकोच गयो । उर भीतर प्रीति को रीति रबो ।

भूष गोसाई चरित ।

इस अंश से यह स्पष्ट सिद्ध है कि केसव दास ने प्रतिक्रिया-भावना में आकर 'राम चन्द्रिका' की रचना की। गोस्वामी तुलसी दास ने उन्हें प्राकृत

कवि कहा। गोस्वामी जी के इस कथन से प्रेरित होकर ही उन्होंने 'रामचन्द्रिका' की रचना भाषा में की। परन्तु इस ग्रन्थ के अनुसार बास्मीकि से अनुप्रेरित होकर केवल बास इस ग्रन्थ के प्रचयन की ओर आकर्षित हुये थे।

बास्मीकि मुनि स्वयं में दीन्हों बरसन वाह।

केवल तिम सों मो कहो क्यों पाठें पुन छाह ॥

बास्मीकि - मयस्वरूपिणी छन्द—भयो बुरे न तु पुनै। कृपा क्या कही पुनै।

न रामदेव वाह है। न वैव सोय वाह है।

दीहा—मुनिपति बहु उपदेश है सब ही जयो बहट्ट।

केवल बास ठही कर्यो रामचन्द्र जु दष्ट।

वैभीमाचल बास ने गोस्वामी तुलसीदास और केवल बास के सम्मिलन का संस्केप जिस रूप में किया है वह किन्तु प्रामाणिक है, इस पर हम स्पष्ट निर्णय नहीं ले सकते।

'मूल गोसाईं चरित' के अनुसार केवलबास ने 'रामचन्द्रिका' की रचना संवत् १६४३ में की। परन्तु केवलबास के अनुसार इस ग्रन्थ का प्रचयन कार्तिक शुक्ल सं० १६१८ में हुआ। केवल की 'रामचन्द्रिका' बास्मीकीय रामायण पर आधारित है। इसके अतिरिक्त 'प्रद्युम्नरामय' और 'हनुमन्नाटक' के भी प्रभाव इस ग्रन्थ पर मिलते हैं। यह ग्रन्थ ३६ प्रकाशों में विभक्त है। बास्मीकि के राम महात्मन हैं, गोस्वामी तुलसी दास के राम पर श्रद्धा हैं। परन्तु केवल के इस काव्य में राम के व्यक्तित्व के इन दो रूपों में से किसी एक का भी प्रतिस्थापन नहीं मिलता है। इस ग्रन्थ के आरम्भ में राम-वचन का वर्णन नहीं किया गया है। बधिरय के कुस-परिचय के पश्चात् विस्वामित्र के आचमन का वर्णन है। ताड़का और सुबाहु की कथा का सांकेतिक संस्केप है। पुनः सीता स्वयंवर का विस्तृत वर्णन है। इस प्रकार ग्रन्थ में घटनाओं के वर्णन में संतुलन नहीं है। 'रामचन्द्रिका' में संवाद शैली का अति लघु प्रयोग मिलता है। रामचन्द्रिका में केवल अपने आचार्यत्व संस्थापन के प्रति ही अधिक आग्रहीक हैं। सन्तों और भक्तों के विविध रूप इस ग्रन्थ में उपलब्ध हो जाते हैं। उदाहरण—

मोहें मुर जाव जाव प्रसुद्ध पयोधर

मुपन बराय ज्योति लक्ष्मि रसाई है।

दूर करी मुख मुख मुबमा लखी की मेन
 ममल कमल इस इसति निकारी है ॥
 केवल रास प्रवल करेनुका बमन हर ।
 मुकुट सुहंसक सबर मुख दाई है ।
 अम्बर बलित मति मोई नील कंठ जू की ।
 कालिका सी बरपा हरति हिम्य बाई है ।

इस बंस में कवि ने कालिका के अप्रस्तुत विधान के माध्यम से वर्ण का वर्ण किया है ।

केवल वस्तुतः रीति बारा के कवि हैं । अतः इनके काव्य पर रीति काव्य के लक्षण विवेचना की गई है ।

अमरावास—ये नामावास के बंधू थे । इनकी प्रमुख रचना 'कुंडलिन्यां रामायण' है । यह 'द्वितीयदेश उपाख्यान बाबरी' के नाम से भी प्रसिद्ध है । ये रामायणी तुलसी दास के समकालीन थे ।

इनका आध्यात्मिक काल संवत् १६७५ माना जाता है ।

नामा वास—नामावास अमरावास के शिष्य थे । ये रामायण सम्प्रदाय के रचक थे । उन्होंने 'अष्टनाम' नामक ग्रन्थ की रचना की थी । परन्तु इनकी प्रसिद्धि 'मल्ल मास' के कारण ही है । वस्तुतः 'मल्ल मास' का रचना-काल स० १६८० माना गया है । मध्य मुनीन वेष्मण भक्ति के स्वल्प अध्ययन के लिए यह ग्रन्थ एक अनिवार्य साधन है । नामावास ने इस ग्रन्थ में अपने पूर्ववर्ती और समकालीन दो सौ छन्दों का परिचय तीन सौ छन्दों के ग्रन्थों में किया है ।

सेनापति—सेनापति वस्तुतः रीति-बारा के कवि हैं । इनका जन्म संवत् १६४६ में हुआ था । इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है 'कवित रत्नाकर' जिसकी रचना उन्होंने संवत् १७०६ में की । कवित रत्नाकर में पाँच तरंग हैं जो इस प्रकार हैं—

प्रथम—स्तेय वर्णन ।

द्वितीय—शृङ्गार वर्णन ।

तृतीय—मृत्यु वर्णन ।

चतुर्थ—रामायण वर्णन ।

पञ्चम—राम रसायन वर्णन ।

चतुर्थ और पञ्चम सर्गों में राम-कथा और रामभक्ति सम्बन्धी मुक्तक ग्रन्थ संकलित हैं ।

राम-कथा का संकलन उन्होंने बास्मीकि रामायण से किया है । यक्ति सिद्धान्त के अनुसार स्यामपति पोस्वामी तुलसीदास के निरुक्त पड़ते हैं ।

पोस्वामी तुलसीदास के पश्चात् राम-काव्य-परम्परा का स्पष्ट स्वरूप विकास देखने को नहीं मिलता है । यम-तन्त्र कतिपय रचनायें उपलब्ध हो जाती हैं परन्तु इनकी मूल्य मानना पोस्वामी तुलसीदास के समान यक्ति-मूलक नहीं करती है । अन्य रचनाकारों में महाराज गृन्धीराज का उत्कृष्ट इतिहास ग्रन्थों में मिलता है । इनकी निशिष्ट कृति, 'दशरामजय' की चर्चा की जाती है । यह राम-भक्ति से सम्बन्धित रचना है । इसमें राम-स्तुति-सम्बन्धित १० बोधे हैं । इस ग्रन्थ की रचना-दिशि ज्ञात नहीं है । परन्तु इस प्रकार के संकेत मिलते हैं कि इस ग्रन्थ का प्रथमतः संवत् १६१७ के लगभग हुआ था ।

ज्ञानचन्द चौहान की कृति 'रामायण महाभाष्य' इसी परम्परा के अन्तर्गत स्वीकार की गई है । इसकी रचना सं० १६६७ में हुई । इसमें राम-कथा संवाद धारी में प्रस्तुत की गई है । माधवदास चरण कृत 'गुन रामरातो' में रामचरित्र उपलब्ध होता है । इस ग्रन्थ की रचना संवत् १६७१ में हुई थी । सं० १६८१ में उन्होंने 'अध्यात्म रामायण' की रचना की । यह 'संस्कृत अध्यात्म रामायण' पर अवलम्बित है ।

हृदय राम पंचादी ने संवत् १६८० में 'हनुमन्नाटक' की रचना की । यह संस्कृत 'हनुमन्नाटक' पर आधारित है । यह कवित्त-सर्वेसा में लिखी गई कृति है । गद्यरिवाज चरण ने 'अवतार चरित्र' नामक ग्रन्थ की रचना लगभग १६०० धर्म्यों में की । इस ग्रन्थ में राम के विभिन्न अवतारों का वर्णन है । इस ग्रन्थ की रचना दिशि के विषय में हम कुछ ज्ञात नहीं है । परन्तु कवि की मृत्यु सं० १७३१ ई० में हुई । यद्यपि इसकी रचना इसी संवत् के कुछ पूर्व ही हुई होगी ।

अन्य कृतिकारों में बालकृष्ण नायक बाल कली की चर्चा की जाती है । इनकी कृति है 'ध्यान मन्त्राली' जिसकी रचना कवि ने संवत् १७२६ में की थी । इस में नवदम्पति के रूप में राम-सीता का सौम्य वर्णन है । इनकी दूसरी रचना है नेहप्रकाशिका, जिसकी रचना कवि ने सं० १७४१ में की थी । इस

ग्रन्थ में सीता का वर्णन कवि ने राम की आङ्गाश्रिणी शक्ति के रूप में किया है। अष्टयाम के उत्तरार्ध में कवि ने गण-व्यपत्ति के विघास-वर्णन के अतिरिक्त सीता के लक्ष्मिण का वर्णन भी किया है।

रामप्रियाधरण्य' ने संवत् १७६० में 'सीतायन' नामक ग्रन्थ की रचना की। इसमें सीता की बाळ-क्रीड़ाएँ विविध रूपों में वर्णित हैं। इस विधाका विकसित रूप प्रेम सखी हूत 'सीता राम मल्लिख' नामक ग्रन्थ में उल्लेख्य हो जाता है। इस ग्रन्थ में कवि ने सीता के 'मन्द चिह्न वर्णन' के अतिरिक्त सीता की विविध क्रीड़ाओं का वर्णन भी किया है।

महाराज विश्वनाथ सिंहः—इनका समय १७६० ई० माना जाता है। 'मानन्द रघुनन्दन नाटक' 'संगीत रघुनन्दन' तथा 'मानन्द रामायण' इस बारा की इनकी विशिष्ट कृतियाँ हैं। मानन्द रघुनन्दन' हिन्दी का प्रथम नाटक माना जाता है।

इस प्रकार काव्यक्रम से राम काव्य की मूल भावना में परिवर्तन मिलने लगता है। भक्ति-भावना के स्थान पर शृङ्गार-भावना के उभावेष के कारण राम साहित्य के मूल स्वर में परिवर्तन होता है।

दर्शन और भक्ति

गोस्वामी तुलसीदास राम भक्ति-बारा के प्रतिनिधि कवि हैं। इनके काव्य में दर्शन और भक्ति का समन्वित स्वरूप मुखरित हुआ है। 'रामचरित मानस' के आरम्भिक बल्लभ में गोस्वामी जी ने अपनी दार्शनिक दृष्टि की ओर संकेत किया है—

नानापुराणनित्यमागमसम्मतं यत्
रामायणे निबधितं कविदम्बतोऽपि ।
स्वान्त सुखाय तुलसी रघुनाथ पाषा
आपानिबन्ध मति मञ्जुक मातनोति । मानस ७ ।

तात्पर्य यह है कि गोस्वामी जी ने 'पुराण नियम' आदि साधनों से भी अपने दर्शन की मूर्धिका निर्मित की है। गोस्वामी जी के दार्शनिक चिंतन में विविध चिन्त-विधाओं का समन्वित रूप मिलता है। यद्यपि भक्ति और दर्शन के

उन्मर्ग में मोक्षामी की लक्ष्यकारी से । इन्होंने बौद्ध संज्ञितियों से प्रभाव ग्रहण किया है । इनके काव्य में 'निगम' का प्रयोग बौद्ध साहित्यके ग्रंथों में किया गया है जिसे वर्तन के अनुसार—वेद और उपनिषद्, इन दो भाषों में विभक्त किया गया है । बौद्ध साहित्य में मोक्ष के जिस स्वस्व के वर्णन होते हैं उसमें तीन तन्त्र के प्रति आग्रह स्पष्ट मिलता है—स्तुति प्रार्थना और उपासना । 'भारद्वाज' में जिन भारद्वाजवाचकियों का वर्णन मिलता है उनमें गुण महात्मवाचक, पुत्रावाचक, कन्यावाचक, बाल्यावाचक, लक्ष्म्यावाचक तथा सख्यावाचक के छह बौद्धिक मंत्रों में भी मिल जाते हैं । मोक्षामीजी ने इन वाक्यांशों को ग्रहण किया है । इनकी अनेक पंक्तियों में बौद्ध मंत्रों की छाया मिलती है । परन्तु मोक्षामी जी का प्रतिपाद्य है राममूर्ति, और राम-अवतार-कीका-गान उनका मुख्य हेतु है ।

मोक्षामीजी के प्रतिपाद्य हैं राम जो पर ब्रह्म है । इनका ब्रह्म निरूपण उपनिषदों से प्रभावित है । उपनिषद् का प्रतिपाद्य ब्रह्म है । वही ब्रह्म को कविन तन्त्र स्वस्व कहा गया है । वह निर्गुण और अप्रमत्त है वह अनिर्वचनीय है वह 'नेति नेति' से उसका प्रतिपादन किया गया है । औपनिषदिक वर्तन के मंत्रों को मोक्षामी जी ने ग्रहण किया है । उपनिषदों के कतिपय भाग अपने मूल रूप में मोक्षामीजी की अनेक पंक्तियों में उपलब्ध भी हो जाते हैं उदा०—

अपानि वाचो ब्रह्मणी प्रहीता पत्यस्य चक्षुः स शृणोत्य कर्णः ।

तुलसी—बिनु पर चले, सुने बिनु कामा ।

तब बिनु परत नवन बिनु देवा ।

मया गद्य स्पन्दमात्राः समुद्रे जलं पञ्चमूर्ति नाम कवी विद्वान् । तथा विद्वान्मात्रा
बपादे मुख परात्परं पुष्पमूर्ति विष्णुम् । मृ० ल० १।८

मोक्षामी तुलसीदास—

कटिटा बल बलनिधि यहू पाई । होइ अचल विमि निब हरि पाई ।

हेतिए तुलसी वर्तन मीमांसा, १४०

तुलसीदास ने निर्गुण राम की लक्ष्य सीमा का ज्ञान किया है । राम ब्रह्म हैं परम पुण्य हैं । प्रकृति उनकी शक्ति है, सीता प्रकृति स्वस्व है । मोक्षामी जी ने 'जानक' में राम की बाल्या के साथ सीता का स्वयन भी वर्णन किया है—

उद्यमस्त्वितिसंहारकारिणी नरेन्द्रहारिणीम् ।

सर्वं श्रेयस्करीं सीता न तौ अहं राम बहुनाम ।

राम परमार्थ रूप हैं अस्त्व और अनादि हैं वे बचन अमोघर हैं अविनाश और अनिर्बचनीय हैं वे ज्ञानातीत और कल्पता से परे हैं । वे अन्तर्दामी व्यापक और विमु हैं । अहं राम के दो स्वरूप हैं—अयुग और सयुग । भक्त हेतु अगम या निराकार राम साकार रूप धारण करते हैं—

समुनहि अमुनहि नहि कसु भेदा । वाचहि कुच पुराण कुच भेदा ।

अगुन अरुण अस्त्व अज बोर्ड । मयत प्रेम बस सगुण सो होई ।

मानस-कला की वर्णनात्मकता के उत्थर्ग में मोक्षामी भी ने श्रोता और ब्रह्मा की विद्या का प्रयोग किया है । वास्तव्य के आरम्भ में मर्यादा यात्रा ब्रह्म से प्रण करते हैं—

राम कवन प्रभु पूछई तोही । कहिय कुम्भार कृतानिधि मोही ।

एक राम बबसेस कुमारा । तिहु कर चरित विरित संघारा ।

गारि विरह कुनु छहेत अपारा । ममज रोपु रन रावण मारा ।

प्रभु छोड़ राम कि मपर कीठ बाहि जफत निपुरारि ।

स्वयं नाम सर्वस्य तुम्ह, कहहु विवेकु विचार । मानस ४९ ।

मात्रवत्क इस प्रश्न का उत्तर 'सती मोह प्रसंग' के माध्यम से देते हैं । कुम्भार कृति के आद्यम से अपने बाध की ओर जाते समय संकर राम को सीता के विमोच में पीड़ित देखते हैं । सती के मन में संका जाग्रत होती है—

अहं तो व्यापक निरव अज सकल अनीह अनेर ।

सोकि रेह चर होइ मर बाहि न जागत बैर ।

संकर सती की संका का सधाधान करते हुए कहते हैं कि जिस निर्गुण राम की कीर्ति का वर्णन नियम-आवम पुराण नेति' कह कर कहते हैं वे ही माया वृत्ति हैं रनुक्त में उन्होंने ही गरज्ज में अवतार किया है ।

परन्तु सती के मन की संका सन्दुष्ट नहीं होती है । वे राम की परीक्षा छिपी है । राम सती के सम्मुख अपनी सीका प्रकट करते हैं । इस ब्रह्मा के वर्णन द्वारा मोक्षामी भी राम के ब्रह्म के स्वरूप का उद्घाटन करते हैं ।

मती दीख कोनूक मय जाता । माये राम सहित भी जाता ।
 किरि चितवा पाछ प्रभु देता । सहित बन्धु सिय सुन्दर बैया ।

v

x

x

हले सिव बिधि बिष्णु अनेका । अमिल प्रभाऊ एक ते एका ।

बंदत चरन कछ प्रभु सेवा । बिलिबि बैप देखे सब देवा । बाळ० ३४ ।

इस प्रकार सती की भंका-समाधान के द्वारा भोस्वामी जी हमारी संका का भी समाधान करते हैं । भोस्वामी जी ने राम के सगुण रूप का ही पाम किया है परन्तु अपने वर्णन के माध्यम से राम के परम ब्रह्मत्व की ओर किसी न किसी रूप में वे संकेत करते हैं । इस प्रकार के अनेक समर्थन 'राम चरित मानस' में उपलब्ध होते हैं । जिनमें भोस्वामी जी राम के निर्गुण स्वरूप का परिचय देते चले हैं । उदाहरण स्वरूप, सिव और पार्वती के विवाह के पश्चात् एक समर्थन में पार्वती राम के ब्रह्मत्व के प्रति संका प्रकट करती हैं—

गुम्ह पुनि राम राम दिन राती । छावर अण्डुं अमंग भारती ।

राम सो अक्षय नृपति गुन छोई । की अज अगुन बसब मति छोई ।

जी अप तनय त ब्रह्म किमि मारि निरह मति ओरि ।

देखि चरित महिमा मुनज जमति बुद्धि मति ओरि । बाळ० १०८ ।

पार्वती की संका का उत्तर देते हुए गकर कहते हैं, राम निराकार भी हैं और साकार भी । राम के निर्गुण और सगुण स्वरूप में कोई तात्त्विक अन्तर नहीं है, केवल रूप का अन्तर है । वास्तव अस्तित्व अमर्यक्त है, वही प्रकट होने पर व्यक्त हो जाती है परन्तु दोनों एक रूप हैं । बल और उपल में तात्त्विक भेद नहीं है । इसी प्रकार निमुष और सगुण निराकार और साकार अमर्यक्त और व्यक्त अन्तर्धामी और बहुधामी युगातीत और युगाभय ब्रह्म में अन्तर नहीं है । राम युगातीत है, वे अमर्यक्त अमर्यक्त और अविच्छिन्न हैं । वे कर्म बन्धन और मन से बगोचर और मान्योत्तीत हैं । निर्गुण अमर्यक्त अनन्त और अनारि राम कोशिका के सम्मुख सगुण रूप में प्रकट होते हैं ।

बहु बुद्ध कर बोरी वस्तुति तोरी देखि बिधि करो बन्या ।

पापा गुण जानातीत अमाना बैर पुणन मन्या ।

कम्प्या मुक्त सामर स्रम मुग आयर बेहि माबहि धुति मन्ता ।

सो मम हित भागी जन अनुरागी भवत प्रकट धीकन्ता ।

बाळ० १६२ ।

इस प्रकार गोस्वामी भी स्वस-स्वक पर संकट करते हैं कि जिस राम का गुनदान दे कर रहे हैं वे मूलतः निर्गुण ब्रह्म ही हैं । बाळ काष्ठ के एक विशेष वर्चन की ओर हवाता ब्रह्म बाधित होता है । कौस्तुभ बाळक राम को पालने में मुसाकर पूजा-उपासना के पश्चात् तैरैय पड़ाकर भोजन-ग्रह में प्रवेश करती हैं । वहाँ वे बाळक राम को भोजन करते देखती हैं । पुन वे पालने के निष्ठ जाती हैं वहाँ बाळक को निष्ठि पाती हैं—

इहाँ तहाँ दुह बाळक बेबा । मति भ्रम मोरि कि जान बिसेपा ।

देखि राम जननी अकुछानी । प्रभु हंसि बीरह मधुर मुमुक्षानी ।

देखराधा माठहि निब अनुभुत कम भजन ।

रोम रोम प्रति भाये कोटि-कोटि ब्रह्मांड । बाळ० २०१ ।

माता कौस्तुभ अमर्षित रवि क्षति अनुराजन विरि सरिता, सिन्धु, महि और काल के वर्णन करती हैं और बिकस होकर वे विनय करती हैं—

बार-बार कौस्तुभ विनय करइ कर जोरि ।

अब अग कन्हू व्यापे प्रभु मोहि माया ठोरि । बाळ० २०२ ।

गोस्वामी तुलसी दास ने राम को परस्पर विरोधी गुणों से विभूषित किया है । भक्तियों में ब्रह्म के परस्पर विरोधी गुणों का वर्चन मिलता है । 'गीता' और 'महिम्नस्तोत्र' में भी ब्रह्म के परस्पर विरोधी गुणों का वर्चन किया गया है । वहाँ ब्रह्म को 'सर्वबास और 'सर्वबासी' कहा गया है । वह मावी है और भावा रहित है भोगी है, और योगयन्त्र भी है—

सर्वेन्द्रियगुणामासं सर्वेन्द्रियविबर्जितम् ।

अवक्तं सर्ववृत्तैश्च निगुणं नृनमोक्ष च ।

अविमलम् च क्लृप्तं विमलमिव च स्थितम् ।

भूत भर्तृ च तत्त्वैर्ष्यं प्रतिष्णु प्रमविष्णु च । गीता, १३ १९ ।

गोस्वामी भी के राम में भी परस्पर विरोधी गुण हैं—

बिनु पद अछइ सुनई बिनु काना ।

कर बिनु करम करइ बिनि नागा ॥

जानम रहित सकल रस धागी ।

बिनु बापी बकता बड़ बापी ॥

सन बिनु परस नयम बिनु देसा ।

महद भाग बिनु बास बसेरा ॥ बास० ११८ ।

राम अनाम हैं फिर भी उनक अनेक नाम हैं । वे निर्बीज हैं और निर्बीज-
ज भी हैं । वे साधक हैं और साध्य भी हैं । वे कुलिश स ओ कठोर हैं, और
मुम से भी कोमल हैं—

कुलिशहु चाहि कठोर, अति कोमल कुमुमहु चाहि ।

चित्त अनेस राम कह समुझ परद कहु काहि । उत्तर० १२ (ग) ।

राम प्रत्येक कल्प में अवतार धारण करके अपनी कीला का विस्तार करते
हैं । उनके अवतार-धारण करने के अनेक कारण हैं । सब-सब बर्म की हानि होती
संवसार में सब-सब अकल्याणकारी शक्तियों की वृद्धि होती है । तब-तब राम
नृप रूप धारण कर मुक्त-जीवन का निर्माण करते हैं—

बब अब होइ बरम की हानी । बाइहि असुर अपम अधिमामी ।

तब-तब प्रभु बरि विविध सरीरा । हरहि कृपानिधि सज्जन पीरा ।

बास० २२७ ।

रामचरित मास' में गोस्वामी जी ने राम के अवतार-धारण करने के अन्य
कारणों का भी उल्लेख किया है । भगवान् ने मनु-संतुष्ट्या को बरदान दिया था ।
महर्षि नारद ने मयभाग को धाप दिया था । जय मित्रय और प्रतापमानु को
धाप-मुक्त करने हेतु भी भगवान् ने अवतार धारण किया था । इस प्रकार राम
के अवतार-धारण के अनेक कारण हैं ।

तुलसी का दर्शन आपस-सम्पत् माना गया है । इसमें पंचरात्र^१ आगम

१ पंच राम आयम के अनुसार ब्रह्म सर्व व्याप्त पूर्ण और तिर्य है । प्राकृत
पुष्टी से स्थापित न होने के कारण वह निर्गुण है । उसका सम्बन्ध अप्राकृतिक
पुष्टी से स्थापित होने के कारण वह सगुण है । ज्ञान शक्ति, ऐश्वर्य बल और
और ऐव उसकी शक्तियों हैं । उसकी शक्ति का नाम प्रकृति है वह सृष्टा पाशक
और संहारक है । जीव जिव्य का अंश है । ये मायामय गोस्वामी जी की
रचनाओं में उपलब्ध हैं । यहाँ पर ब्रह्म विमल अर्था और अन्तर्यामी के अनुसार
ईश्वर की पाँच अवस्थाओं की कल्पना की गई । गोस्वामी जी ने इन भावनाओं
के अस्वीकार किया है ।

ब्रह्मैतन्मात्रं विधिष्टा ब्रह्मैतन्मात्रं रामानन्दसम्प्रदाय और सांख्ययोग के दर्शन से गोस्वामी जी प्रभावित हैं ।

गोस्वामी जी के दर्शन को केवलब्रह्मैतन्मात्र कहा गया है । इस दर्शन के अनुसार ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वस्व है । वह परमार्थतत्त्व है । उसकी परम शक्ति माया है । माया प्रकृति है । जीव ईश्वर के अंश हैं और मित्य हैं । ज्ञान से मोक्ष मिलता है । तुलसी ने इन तत्त्वों को स्वीकार किया है, परन्तु शंकराचार्य की मान्यताओं को गोस्वामी जी ने पूर्णतः स्वीकार नहीं किया है । शंकराचार्य ने ब्रह्म के निगुण स्वस्व को ही स्वीकार किया है । परन्तु गोस्वामी जी उसके निर्गुण और सगुण दोनों रूपों को स्वीकार करते हैं । शंकराचार्य विश्व को अद्यत्य मानते हैं गोस्वामी जी विश्व को सत्य मानते हैं । शंकराचार्य की यह मान्यता है कि अविद्या के कारण ब्रह्म और जीव में पार्यव्य का बोध है । गोस्वामी जी भी ब्रह्म और जीव के पार्यव्य को स्वीकार करते हैं । ब्रह्म और जीव का सम्बन्ध घटीर-घटीरी का है । भक्ति और ज्ञासना से मोक्ष की उपलब्धि होती है ।

राम की माया

ब्रह्म ने व्यात्मक जगत् का निर्माण माया के द्वारा किया है । माया ईश्वर से व्युत्पन्न है, वह त्रिगुणात्मिका और अविर्बन्धनीय है । गोस्वामी जी के अनुसार माया ब्रह्म राम की शक्ति है । राम माया-मयि है । माया राम की व्यक्त और अव्यक्त शक्ति है । राम के निरुत्कार और वाकार रूपों के अनुसार सीता (माया) के भी अव्यक्त और व्यक्त दो रूप हैं । राम के अवतार चारण करने के साथ माया भी अवतार चारण करती है । राम की शक्ति माया के दो रूप हैं—विद्या और अविद्या । विद्या माया द्वारा राम सृष्टि की रचना करते हैं । विद्या माया के रूप में सीता अवगमनी है । वे क्लेशहारिणी और सर्वभयस्करी हैं—

यन्मायावद्वर्ति विद्वन्महिम्नं ब्रह्माविदेवाभिरुप ।

यत्तत्त्वास्मूपैव भाति तस्मै रजो ह्याहेनम । बाळ० एको० १ ।

सांख्यदर्शन में प्रतिपादित प्रकृति-मुख के विद्वान्त का स्रष्ट प्रभाव गोस्वामी जी की चिन्तन धारा पर पड़ा है । सांख्य ने प्रकृति को अचेतन माना है । परन्तु गोस्वामी जी ने सांख्य के विपरीत प्रकृति को चेतन भी माना है । प्रकृति ही राम की विद्या माया है—

जगद्विस्तृतिसंहारकारिणी क्लेशहारिणीम् ।

सर्वभयस्करिणी सीता गतोऽहं रामबल्लभाम् ।

परन्तु अविद्या माया मिथ्या में सत्य और सत्य में मिथ्या का बोध कराती है। राम की अविद्या माया से कौटल्या प्रसिद्ध होती है। सती के मन में इस विद्या माया के कारण ही भ्रम उत्पन्न होता है। यथा

तव संकर बेसेउ बरि ज्ञाना । सती को कीन्ह करिछ छुवा ना ।

बहुरि राम मामहि छिब नाथा । प्रेरि सतिहि बेहि छूठ कहावा । वाक २६,

राम की माया नारद को प्रभाव करती है^१ । सीता की छाया या अविद्या

माया के साम्य में ही राम रावण-जय का उपक्रम करते हैं। रावण अविद्या माया का ही हरण करता है^२ ।

धनुष-जय के अवसर पर आये हुए रावण और रावण इत्यादि सीता के अविद्या माया पर ही विमुक्त हैं। परन्तु राम और सीता का सम्बन्ध अमिथ्या है, सत्य और सत्य माया अलग और धर्म में अमिथ्या है। इसी प्रकार राम और सीता अमिथ्या हैं।

विद्या अथवा जल जोषि सत्य कहिस्त मिथ्या न मिथ्या ।

जन्मौ सीता राम पद भिन्नहि परम प्रिय जिन । वाक २८ ।

गोस्वामी जी ने राम में जिनेबों की कल्पना की है। राम जल के कर्ता सती और संहती है। कर्ता रूप में के सहा है सती-रूप में विष्णु है और संहती रूप में ब्रह्म है। राम और परम विष्णु में अन्तर नहीं है। गोस्वामी जी ने शिव स्वयं भी किया है। राम के समान शिव भी जानमिराठी है। मर्यादा उनकी माया है। पुराणों के अनुसार राम विष्णु है और विष्णु शिव है। 'विनय पत्रिका' में इस प्रकार की भावना का स्पष्ट अनुमीलन किया गया है। 'भातस' में गोस्वामी जी ने शिव और विष्णु के अमिथ्या का प्रतिपादन किया गया है—

१ जय हरि नामा दूरि निवारी । गहि छैह राम म राजकुमारी ।

तव मुनि अति धमीत हरि चरना । गहे पाहि प्रसन्नारिह हरना । वाक, १३८ ।

२ मुनहु शिवा जग रचिब मुनीना । मैं कछु करबि सक्ति नर भीना ।

पुनहु पावक महुं करहु निवासा । ओ कति करो निवासर नासा ।

निज प्रतिबिम्ब राखि तहुं सीता । तेवई सीत कय मुनिनीता । वाक २४ ।

बैराग्य रूप में वर्णित है। ज्ञान की शक्ति भक्ति है जिसकी उपलब्धि बैराग्य से होती है—

सानुज सीय समेत प्रभु रागत परम कुटीर ।

भगति भ्यानु बैराग्य बनु सोहत घरे सरीर । राम० अयो ३२१ ।

गोस्वामीजी ने नवमा भक्ति का भी प्रतिपादन किया है। 'नवमा भक्ति' का स्वल्प-विरसेयण सिद्धांत पृष्ठों में किया गया है। नवमा भक्ति का यह स्वरूप गागरुत प्रतिपादित है। 'द्विजपुराण' 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' तथा 'आदिपुराण' आदि ग्रन्थों में 'भायकृत पुराण' की नवमा-भक्ति का अनुकरण किया गया है। रामा गन्ध, ब्रह्ममाचार्य तथा कर्मयोगस्वामी आदि की भक्ति-विद्या के निरूपण में 'भाम वत पुराण' ही मूल प्रेरणा है। इस विद्या को निम्नलिखित चर्चों में विभाजित किया जाता है।

(क) भजन कीर्तन स्मरण ।

(ख) पादसेवन, अर्चन बंदन ।

(ग) वास्य सस्य आत्मनिवेशन ।

गोस्वामीजी ने राम के नाम रूप और गुण-भजन का व्यवहृत किया है। राम कथा के भजन-फल का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी ने कहा है राम कथा समस्त अभिषेकापात्रों की पूर्ति करती है राम-कथा कश्मिल-नाशक और भक्तिदायक है। जयमानु के नाम के मान के प्रति आह्वान करते हुए गोस्वामी जी कीर्तन विचार करते हैं। नवमा भक्ति का तृतीय लक्षण स्मरण है। नाम-स्मरण का विचार गोस्वामीजी ने अनेक रूपों में किया है। गोस्वामी जी ने पाद-सेवन की महिमा का वर्णन भी किया है—

सब घर भौंयहि एकु फल राम चरण रति होत ।

शिख के मन मंजिर बतहु सिध रहुनबल बोट ।

नवमा भक्ति का पाँचवाँ अंग अर्पण है। यह प्रतिमा-गुह्य का समानार्थक है। 'मानस' में कौटिल्या राम की पूजा करती है। राम शिव की पूजा करते हैं। गोस्वामीजी ने 'जिनय पत्रिका' में 'अर्चनी विग्रह' का वर्णन किया है। नवमा भक्ति का छठा अंग बंदन है। गोस्वामीजी ने 'मानस' के प्रत्येक काण्ड में मंदस श्लोकों का विचार किया है, जिनमें सरस्वती, गणेश और राय की वन्दना की गई है।

मन्वान् स्वामी है । और भक्तसेवक है । इस प्रकार की भावना वास्तव भाव की शक्ति की प्रमुखता है ।

अस्य अविमान आद भनि भोरे । मैं ऐवक रक्षुपति पति भोरे ।

नववा भक्ति का बाढना अस सकल भाव है । गोस्वामी जी ने भक्त और भगवान् के मध्य बिना सम्बन्धों की कल्पना की है जगमें सत्य भाव भी है । 'राम चरित मानस' में राम ने सुग्रीव के सम्मुख प्रतिज्ञा की—

तखा सोच त्पामहु बस भोरे । सब बिबि पट्य काज मैं तोरे ।

इस शेष में सकल भाव को भक्ति का आकर्षण रूप व्यक्तित्व हो जाता है । 'वियप पत्रिका' में गोस्वामी जी ने तखा भावना से आपूरित होकर राम को त्पासम्म दिया है और जन-जन अति कष्ट सुखों का प्रयोग करने में भी गोस्वामी जी ने संकोच नहीं किया है—

परम पुनीत संत कैयल पितु तिनहि तुमहि बनि आई ।

तो कत बिम व्याध पतिकहि तारेहु कसु रही समई ।

वियप पत्रिका, १११।२ ।

नववा भक्ति की अन्तिम बिबा आत्म निवेदन है । इसके अन्तर्गत भक्त भगवान् के प्रति आत्मसमर्पण आत्मनिवेदन और शरणावृत्ति या प्रपत्ति करता है । गोस्वामीजी और उनके पादों में शरणावृत्ति की भावना की प्रधानता मिलती है । 'वियप पत्रिका' में गोस्वामीजी ने आत्मनिवेदन और आत्मसमर्पण की भावना से आपूरित पदों की रचना की है—

ताहि तें जायो सरल सचेरे ।

तुम सब ईश कृपासु परम द्विष्ट पुनि न पाइतौ हैरे ।

यह बिब जानि रहौ सब तनि रक्षुबीर भरोसे हैरे ।

तुलसीदास यह विपति जानुरो तुमहि सो बने निबेरे । वि० १८७ ।

गणु गोस्वामीजी ने नववा भक्ति के जिस स्वरूप को ग्रहण किया है, वह 'धामकत कुराण' पर आधारित नहीं है । गोस्वामीजी का विचार 'अध्यात्म रामा नव' की नववा भक्ति पर आधारित है । मानस में राम शरीर को नववा भक्ति का उपदेश देते हैं—

वैराग्य रूप में वर्णित है। ज्ञान की सच्चि भक्ति है जिसकी उपरुन्मि वैराग्य से होती है—

शानुज सीय समत प्रभु रागत परम कुजीर।

भयति य्यानु वैराग्य जनु सोहत बरे सरीर। राम० अयो० १२१।

गोस्वामीजी ने गववा भक्ति का भी प्रतिपादन किया है। गववा भक्ति का स्वरूप विस्लेषण विस्लेषे पृष्ठों में किया गया है। गववा भक्ति का यह स्वरूप नामकत प्रतिपादित है। 'शिवपुराण' 'सहस्रनामपुराण' तथा 'आदिपुराण' आदि ग्रन्थों में 'भागवत पुराण' की गववा-भक्ति का अनुकरण किया गया है। रामा नन्द, बहुमाचार्य तथा क्यनोस्वामी आदि की भक्ति-विद्या के निरूपण में 'भागवत पुराण' ही मूल प्रेरणा है। इस विद्या को निम्नलिखित वर्णों में विभाजित किया जाता है।

(क) अवलन कीर्तन स्मरण।

(ख) पारसेवन, वर्णन बंजन।

(ग) दास्य सख्य आत्मनिवेदन।

गोस्वामीजी ने राम के नाम रूप और गुण-अवलन का व्यवक्रम किया है। राम कथा के अवलन-फल का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी ने कहा है राम कथा समस्त अभिजापाओं की पूर्ति करती है। राम-कथा कश्मिक-नाशक और भक्तिदायक है। गगवानु के नाम के यान के प्रति जाग्रह करते हुए गोस्वामी जी कीर्तन विधान करते हैं। गववा भक्ति का तृतीय व्यवक्रम स्मरण है। नाम-स्मरण का विधान गोस्वामीजी ने अनेक रूपों में किया है। गोस्वामी जी ने पार-सेवन की महिमा का वर्णन भी किया है—

सब बार मौमहि एकु फल राम भरत रति होत।

शिव के मन मंदिर बसहु सिम रघुनन्दन दोत।

गववा भक्ति का चौथवाँ अंग वर्णन है। यह प्रतिमा-सुजन का समानार्थक है। 'मानस' में कौन्तस्या राम की पूजा करती हैं। राम शिव की पूजा करते हैं। गोस्वामीजी ने 'विनय पत्रिका' में 'अर्चौ विग्रह' का वर्णन किया है। गववा भक्ति का छठा अंग बंजन है। गोस्वामीजी ने 'मानस' के प्रत्येक काण्ड में संयुक्त दशकों का विधान किया है, जिनमें सरस्वती, गणेश और राम की वन्दना की गई है।

ममबान् स्वामी है । और भक्तसेवक है । इस प्रकार की भावना दास्य भाव की भक्ति की प्रमुखता है ।

अस भविमान बाहू बलि मोरे । मैं सेवक रूपसि पति मोरे ।

जबका भक्ति का आठवों संभ सख्य भाव है । मोस्वामी भी ने भक्त और ममबान् के मध्य विभ सम्बन्धों की कल्पना की है जिनमें सख्य भाव भी है । 'राम चरित मानस' में राम ने सुग्रीव के सम्मुख प्रतिज्ञा की—

तबका सोच त्वापहु बल मोरे । तब सिबि अट्ट काज मैं छोरे ।

इस अर्थ में सख्य भाव की भक्ति का आशय रूप व्यक्तित्व हो जाता है । 'विनय पत्रिका' में मोस्वामीजी भी न ब्रह्मा वाचना से आपूरित होकर राम को त्वाकम्बु दिया है और मय-तन बलि कट्टु दासों का प्रयोग करने में भी मोस्वामीजी न संकोच नहीं किया है—

पाम फुटील संत कोमल भिन्नु तिन्हहि तुमहि बलि जाई ।

तो कत सिम प्याव पमिन्हहि तारेहु कसु रही सजाई ।

विनय पत्रिका, १११।२ ।

ममबा भक्ति की अतिव्यक्ति विषय आत्म निवेदन है । इसके अन्तर्गत भक्त ममबान् के प्रति आत्मसमर्पण, आत्मनिवेदन और शरणागति या प्रार्थना करता है । मोस्वामीजी और उनके पात्रों में शरणागति की भावना की प्रधानता मिलती है । 'विनय पत्रिका' में मोस्वामीजी ने आत्मनिवेदन और आत्मसमर्पण की भावना से आपूरित पदों की रचना की है—

तार्हि ते जायो जल जमेरे ।

तुम तम ईस हुवाहु परम द्विष्ट पुलि न पाइही तेरे ।

यह बिप बालि रहौ खल तबि रबूबीर जरोसे तेरे ।

तुलसीदास बहू बिपति बाबुरो तुम्हहि हो गमै निवेरे । वि० २८७ ।

परन्तु मोस्वामीजी ने ममबा भक्ति के विषय स्वरूप को ग्रहण किया है, वह मायवत पुराण पर आधारित नहीं है । मोस्वामीजी का विधान 'बध्मात्म रामा नम' की ममबा भक्ति पर आधारित है । 'मानस' में राम अन्तरी की ममबा भक्ति का उल्लेख करते हैं—

नम्रता भगति कह्यो तेहि पाहीं । छाववान सुनु पर मनु माहीं ।
 प्रभव भवति सन्तनु कर संवा । दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ।
 गुह पर पंकज सेवा तीसरि भवति समाग ।
 चौबि भवति मम गुन मन करइ कष्ट तबि गान ।

मंत्र जाप मम हृद बिस्वासा । पंचम मजन सो वेद प्रकाशा ।
 छठ वम सीछ बिरति बहुकरमा । निरत निरन्तर सज्जन परमा ।
 सातवें सम मोहिमय बन लेखा । भौतें संत अधिक कर सेवा ।
 आठव बचामाम संतोषा । सपनेहुं गहि देखइ पर बोधा ।
 गणम सरल सब सग सत्य हीना । मम भरोम हिमैं हृदय न दीना ।

अरण्य ३५ ३६ ।

इस प्रकार पोस्वामी जी द्वारा प्रतिपादित नम्रता भक्ति का उपक्रम इस प्रकार है — सन्तो का साहचर्य, राम-कथा में प्रेम गुह-पर-सेवा राम-बुध-याग राम रूप भजन श्रेष्ठ कार्यों में रति बनको राममय देखना संतोष-साम परमोप निरीक्षण की ओर मैं विमुक्त रहना, और सल-हीन जान से भगवान् पर विस्वास कर सम भाव से जीवनवापन करना ।

गारायण तीर्थ ने सांख्यिक कुछ मति सूत्रों की व्याख्या की है । एक सिद्धि सम्बन्ध में इन्होंने कहा है कि निर्मुक्त भक्ति का पर्यायवाचन 'धोऽहम्' में होता है । काश्यप के अनुसार सगुण भक्ति का पर्यायवाचन 'बासोऽहम्' में होता है । सांख्यिक ने भक्ति के सगुण (मेव विषयक) और निर्मुक्त (अमेव विषय) दोनों में समन्वय स्थापित किया है । अपनी भक्ति-शावना में पोस्वामी जी सांख्यिक से निकट हैं । पोस्वामी जी ने निर्मुक्त भक्ति को अमेव भक्ति और सगुण भक्ति को मेव भक्ति कहा है । पोस्वामी जी ने भक्ति को साध्य रूपा और साधन रूपा के अनुसार दो दृष्टियों से देखा है । साध्य रूपा भक्ति के दो प्रकार माने गए हैं— हृदात्म्य और साधनबन्ध । प्रथम के अन्तर्गत भक्त कोई प्रयास नहीं करता इसमें भगवान् को हृदा ही साधन है । द्वितीय के अन्तर्गत भक्त साधना करता है । पोस्वामी जी ने अपनी भक्ति में इन दोनों

किया है ।

केहि जागरण ममो

धो

।

तुसतिदास रघुनाथ रूप

।

भक्ति की प्राप्ति राम-कृपा से ही होती है। राम-कृपा से ज्ञान उपलब्ध होता है, ज्ञान से प्रतीति होती है, और प्रतीति से प्रीति होती है, प्रीति से भक्ति उत्पन्न होती है—

राम कृपा बिनु सुनु कयलाई । जानि न जाइ रामप्रभुलाई ।

जाने बिन न होइ परतीति । बिनु परतीति होइ नहि प्रीति ।

राम-कृपा प्राप्ति के लिये सीता की कृपा, गुद-कृपा और संकर-कृपा अपेक्षित हैं ।

भक्ति के लिये रायानुग या अविविहित साधन अपेक्षित है । इस में भक्त नम्रमान के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है । रामचरित मानस में रविवी भक्ति के साथ-साथ रायानुगभक्ति के वर्णन भी मिलते हैं—

बलनी जनक बंधु सुत दारा । तनु जन भवन मुख बलिबारा ।

सब कै नमसा ताग बढोरी । मन पर मनहि बाधि कर डोरी ।

अस धरमन मन छर बस कैसैं । सोभी हृदय बधै बनु बैसे । 'मानस' ।

भक्ति और ज्ञान के वारत्परिक सम्बन्धों के निरूपण में सत्यम में गोस्वामीजी ने भक्ति के प्रति ही विचार रूप से आग्रह मात्र व्यक्त किया है । इसका तात्पर्य यह नहीं कि भक्ति को गोस्वामीजी ने ज्ञान से प्येष्ठ कहा है । इसके विपरीत गोस्वामी जी ने स्पष्ट रूप से कहा है कि ज्ञान से प्रतीति प्रतीति से प्रीति और प्रीति से भक्ति उत्पन्न होती है । परन्तु ज्ञान का मार्ग कठिन है । बर्ष स विरति, निरति से योग योग से ज्ञान और ज्ञान से मोक्ष उपलब्ध होता है । अतः इस मार्ग की अपेक्षा भक्ति-मार्ग सरल है । इसके अतिरिक्त ज्ञान पुष्टिम है । माया स्वीकृत्य है । अतः ज्ञान मायावशवर्ती हो सकता है । भक्ति और माया दोनों ही स्वीकृत्य हैं अतः भक्ति माया-वशवर्ती नहीं हो सकती है । यह हैतु भी ज्ञान की अपेक्षा गोस्वामी जी भक्ति की प्रधानता का प्रतिपादन करते हैं । परन्तु दोनों में अंतर नहीं है । क्या

भक्तिहि जानुहि नहि कछु भेदा । उभय हरहि भव-समय लेदा ।

नाम मर्ति

श्रीस्वामी पुष्पसीरास ने राम के नाम-गुण-नाम को अतिशेष्ठ कहा है। अपनी छठियों में इन्होंने राम-नाम-महिमा का प्रतिपादन किया है। 'मानस' 'कवितावली' और 'विनय पत्रिका' में इन्होंने राम नाम-महिमा की विशेषताओं का वर्णन किया है। राम की महिमा इतनी प्रबल है कि सफ़ा गुणवान राम स्वरूप नहीं कर सकते—

कहीं कहा छवि नाम बड़ाई । रामु न सकहि नाम गुन माई ।

बास० २९ ।

राम का समुच्च रूप नाम के आधीन है। नाम के प्रभाव में रूप की कोई कल्पना नहीं बन पाती। नाम के उच्चारण से रूप का साक्षात्कार होता है। यथा

वैस्त्रिजहि रूप नाम आधीना । रूप नाम नहि नाम सिद्धिना ।

रूप विरोध नाम विनु जाने । करतल गत न परहि पहिचाने ।

सुमिरिअ नाम रूप विनु देखे । आवत हृदय सनेह बिसेपे । बास० २१ ।

राम का नाम नामी राम से भी श्रेष्ठ है। नाम और नामी में भेद नहीं है। श्रीस्वामी जी की यह बारम्बार है कि नाम राम के निर्मूल और समुच्च इन दोनों रूपों से श्रेष्ठ है। साधक दोष-समाधि में 'नाम-स्मरण' द्वारा ब्रह्मसुख का अनुभव करता है—

साधक नामु अपहि रूप छार् ।

होहि सिद्ध अनिमित्त पाएँ ॥ बास० १२२। १२ ।

नाम निरूपण से निर्मूल ब्रह्म बोधवन्धु और गुणम हो जाता है अतः नाम का प्रभाव निर्मूल राम से भी श्रेष्ठ है—

निरपुन ते एहि नैति बड़ नाम प्रनाळ अपार ।

कह्ये नामु बड़ राम ते निज विचार अनुसार । बास० २३ ।

राम ने लोक कल्याण की भावना से अक्षरार बारण किया था। परन्तु तब रूप में उनका लोक-संवर्धन-व्यापार अति सीमित है। राम की अपेक्षा 'नाम' की उन्मत्तियों अति व्यापक हैं—

राम एक तापत दिन ठारी । नाम कोदि लख कुमति गुहारी ।

×

×

×

मंत्रित राम भावु मय बापु । मय मय मयम नाम प्रतापु ।

X

X

X

राम सुकृष्ट विनीयस होऊ । राख सरल जान सब कोऊ ॥

बाक० २३ २४ ।

इस प्रकार रामनाम ब्रह्म राम से भी बड़ा है । निर्गुण मार्गीय अपने घट के भीतर नाम-स्मरण से ब्रह्म की अनुमति करते हैं और 'नाम' के माध्यम से संपुन मारीं भक्त राम के साकार रूप की स्थापना करते हैं—

हिये निर्गुण नयनहि सगुण रचना नाम मुनाम ।

मनहुँ पुरट संपुट लसत तुलसी कलित ललाम । को ७ ।

काव्य मङ्ग

गोस्वामीजी ने अपने काव्य में राम का गुण-दान किया है । उनके काव्य के प्रतिपाद्य हैं भक्ति और वर्णन परन्तु उनकी कविता में अष्ट काव्य के सम्पूर्ण तत्त्व विद्यमान हैं । काव्यतत्त्व उनकी भक्ति भावना और वर्णन के अनुयायी हैं । अतः हम उनके काव्य और वर्णन में विभावन रेखा सूझी सीख सकते हैं । 'याग्य' के बार्हस्पिक श्लोक में ही कवि ने काव्य के सर्वयुगीन और सर्वकालीन अंशों का निष्पन्न इस रूप में किया है—

वर्णनामर्बसंवाता रचाना छंदसामभि ।

संप्रधाना च कर्तारी बन्दि बाणीविनायकी ।

काव्य के लिए छंद रस और मंगल भावना अनिवार्य तत्त्व हैं । काव्य का मुख्य उद्देश्य इसमें निहित सिद्धांत है । जिस काव्य में जीवन के प्रति यथार्थ और विश्वास की भावना निहित रहती है वही गरिमा से सज्जित होता है । गोस्वामी जी की भक्ति और उनके वर्णन का बर्णन मंगल-विधान है । अतः उनका काव्य उनकी भक्ति और वर्णन का पूरक वा पर्यायवाची है । 'याग्य' में काव्य के सिद्धांत के प्रति कवि ने अनेक स्थलों पर बाधह और विश्वास मान-व्यक्त किया है ।—

कीरति भक्ति भूति भक्ति सोई ।

गुर सरि सम सब कहैं द्वि होई ।

१ १४ ३ ।

गोस्वामी जी को राम की कथा इत्यदि भी प्रिय है कि उसकी शक्ति करने की शक्ति उसमें है काव्य छन्द

नाम मणि

श्रीस्वामी तुलसीदास ने राम के नाम-गुण-गान को अतिशेष्ट कहा है। अपनी कृतियों में इन्होंने राम-नाम-महिमा का प्रतिपादन किया है। 'मानस' कवितावली' और 'विनय पत्रिका' में इन्होंने राम नाम-महिमा की विशेषताओं का वर्णन किया है। राम की महिमा इतनी प्रबल है कि उसका गुणगान राम स्वयं नहीं कर सकते—

क्यों कहा लागि नाम बढ़ाई । रामु न सकहि नाम गुन पाई ।

वाक० २९ ।

राम का सगुण रूप नाम के आधीन है। नाम के अभाव में रूप की कोई सम्पदा नहीं बन पाती। नाम के लक्षणरूप से रूप का साक्षात्कार होता है। यथा

ईश्वरहि रूप नाम आधीना । रूप ज्ञान नहि नाम सिद्धिना ।

रूप विशेष नाम बिनु जाने । करतक कत न परहि पहिचाने ।

सुमिरिअ नाम रूप बिनु धेखें । जातहु ह्वमें सतेह बिसेये । वाक० २१ ।

राम का नाम मामी राम से भी श्रेष्ठ है। नाम और मामी में भेद नहीं है। श्रीस्वामी भी की यह धारणा है कि नाम राम के निर्गुण और समुच्च इन दोनों रूपों से श्रेष्ठ है। साधक योग-समाधि में 'नाम-स्मरण' द्वारा ब्रह्मसुख का अनुभव करेगा है—

साधक नामु अपहि छव जाएँ ।

होहि सिद्ध अनिमित्त पाएँ ॥ वाक० ॥ २२। २ ।

नाम निरूपण से निर्गुण ब्रह्म बोधव्यम्य और सुगम हो जाता है अतः नाम का प्रभाव निर्गुण राम से भी श्रेष्ठ है—

निरूपण सँ एहि मॉति बड़ नाम प्रमाळ अपार ।

कहुँ नामु बड़ राम सँ निअ बिचार अनुसार । वाक० २३ ।

राम ने लोक-कल्याण की भावना से अक्षरार धारण किया था। परन्तु गर रूप में उनका लोक-संभल-व्यापार अति सीमित है। राम की अपेक्षा 'नाम' की उत्तमियता अति व्यापक है—

राम एक ठापठ तिय ठारी । नाम कोटि जख कृमति सुठारी ।

×

×

×

मंजरे राम बापु भव बापु । भव भव मंजरे नाम प्रतापु ।

×

×

×

राम मुकुंठ विभीषण दोऊ । राखे सरन बात सब कोऊ ॥

बाल० २३, २४ ।

इस प्रकार रामनाम ब्रह्म राम से भी बड़ा है । निर्गुण मार्गों अपने घर के
गिर नाम-स्मरण से ब्रह्म की अनुमति करते हैं और 'नाम' के माध्यम से सगुण
राजी भक्त राम के साकार रूप को उपासना करते हैं—

हिये निर्गुण नयनहि सगुण रसना नाम मुनाम ।

मनहुँ पुरट संपुट कसत तुलसी कसित सकाम । दो ७ ।

काव्य पक्ष

दोस्वामीजी ने अपने काव्य में राम का गुण-गान किया है । उनके काव्य के
प्रतिपाद्य हैं भक्ति और वर्णन । परन्तु उनकी कविता में श्रेष्ठ काव्य के सम्पूर्ण
तत्त्व विद्यमान हैं । काव्यतत्त्व उनकी भक्ति भावना और वर्णन के अनुगामी हैं ।
अतः हम उनके काव्य और वर्णन में विचारण रेखा नहीं खींच सकते हैं । 'नामस'
के आरम्भिक स्तोक में ही कवि ने काव्य के सर्वगुणों और सर्वशक्तिों का
नामकल्प इस रूप में दिया है—

वर्णनामसर्वधारा रसानी सत्यमति ।

ममतानी च कर्तागे बन्ध मार्गनिन्दकः ।

और अर्थ के माध्यम से व्यञ्जित होता है। गोस्वामी जी ने छन्द और अर्थ के पारस्परिक सम्बन्ध की व्यञ्जना के लिए उन्हें भक्ति और दर्शन के अति उच्चतम स्तरों के समकक्ष का माना है—रवि और उसकी किरणें भिन्न प्रतीत होते हुए भी अमिल हैं, जल और बीज भिन्न प्रतीत होते हुए भी अमिल हैं। राम और सीता अमिल हैं वैसे ही छन्द और अर्थ अमिल हैं—

गिरा भरव बस बीजि सम कहिबत मिल न मिल । २१ १ १८

भारतीय कवियों के सम्मुख काव्य प्रयोजन के विभिन्न उद्देश्य रहे हैं जिनमें यश, अर्थ, कान्तासमर्पित उपदेश तथा कर्तुर्बल प्राप्ति प्रमुख हैं। गोस्वामी जी ने इन सब का समीकरण 'स्वात गुप्त' के अन्तर्गत कर दिया है—

स्वात गुप्ताय तुम्हरी रङ्गनाम गाथा आपानिबन्धमतिर्भङ्गमातनोति ।
बासकान्त श्लोक ७ ।

परन्तु कवि के 'स्वात गुप्त' की भावना में 'विश्वगुप्त' की भावना अनिवार्य रूप में निहित है।

गोस्वामी जी राम-वृत्त को ही काव्य का प्रतिपाद्य मानते हैं। इस सन्दर्भ में कवि ने यह स्पष्ट कहा है कि साधारण प्रतिभा वाले कवि की बाजी यदि राम-गुणवान से परिपूर्ण है तो वह कवि प्रतिष्ठा और सम्मान प्राप्त कर बैठा है, इसके विपरीत राम-गुण-वान से कृप्य ध्येष्ठ कवियों की बाजी सम्मान-अक्षिता रह जाती है—

(क) सब गुन रहित कुकवि हूत बानी । राम नाम बस अक्षित बानी ।

छाहर कहहि मुनिहि बुनि ताही । मनुकर घरिस संत गुन बाही ।

(ख) अनिति बिचित्र गुकवि हूत बोक । राम नाम भिनु सोह म सोक ।

बास० १० ।

गोस्वामी जी ने कविता के प्रतिपाद्य विषय के लिये केवल 'राम गुण राम' को ही अष्ट विषय माना है। इस प्रतिपादन पर यह संका उठाई गई है कि काव्य के लिए क्या अन्य कोई विषय या प्रतिपाद्य नहीं हो सकता है। वस्तुतः इस प्रकार की संका व्यक्त करने वाले आलोचक इस सत्य की अवहेलना कर जाते हैं कि उनका काव्य भक्तिमयी भाव का काव्य है। इसके अतिरिक्त उनके राम शिखर के पर्यायवाची हैं।

गोस्वामी जी भक्तिरस के कवि हैं। इनका काव्य भक्ति-भावना में
आपूरित है। भक्तिरस काव्यशास्त्र में वर्णित सब रसों से भरे हैं—

नव रस जप तप ओष विरागा । तै सब जलकर जाइ उड़ाया ।

सुखी धामु नाम पुन पाया । तै बिबिध बस बिहय धमाया ।

संत बना कहूँ निशि बँबराई । मज्जा छिनु बसंत सम मारई ।

मयति निरूपन बिबिध विधाना । हृदिपर रति रस बेब बसाना ।

१ ३७ २ ३ ।

मानस मान सरोवर है, काव्य के नव रस इसके जलधर हैं। मीठ-समा
जगराई है राग, यम और नियम पूरा हैं, मान फल है और भक्ति रस उलका रस
है। भक्ति रस का अनुपम प्रतिपादन जिनमें पत्रिका का प्रतिपाद है। वोक्तेब
की प्रसिद्ध कृति 'मुक्तावली' है। इस ग्रन्थ में भक्तिरस का व्यापक विस्तार
किया गया है—'व्यासादिभिर्बोधितस्य विष्णु विष्णोर्विष्णु भक्तार्ता वा भक्तिरस्य
नव रसात्मकस्य ध्वन्यादिना अनित्यव्यवहारो भक्ति रस — मुक्ता पृष्ठ १६७ ।
जहाँ, व्यास आदि ने विष्णु या विष्णु-अर्थों के नव रसात्मक भक्ति का वर्णन
किया है उसके अन्तर्गत वे जो भाग्य होता है, वह भक्ति रस है। गोस्वामी जी
के सम्मुख भक्ति रस का यही आदर्श था। 'मानस' के सप्त सौभाग्य भक्ति रस
के कार्य हैं। इस प्रसंग पर विचार करते हुए हमारा ध्यान मधुसूदन सरस्वती द्वारा
'भक्ति रसायन' की ओर आकर्षित होता है। उन्होंने सोच रसों की कल्पना की
है इनमें से कुछ भक्ति रस केवल तीन हैं—विष्णु भक्ति रस वात्सल्यभक्ति रस
और प्रेमानुभक्ति रस। गोस्वामी जी के काव्य में कुछ भक्ति रस के चार रूप
जलज्वल होते हैं—विष्णु भक्तिरस, दास भक्तिरस, प्रेमानु भक्तिरस और वात्सल्य
भक्ति रस। प्रपन्न के अन्तर्गत भगवान् के महात्म्य से भगवान् के प्रति सार्विक
रति मानना आवृत होती है। इसमें भगवान् की महिमा के प्रबल, कीर्तन और
स्मरण का विधान होता है। दास भक्ति के अन्तर्गत वेद-उपनिषद् के अर्थ
तीर्थ-सेवा और धर्मन आदि का विधान हुआ है। प्रेमानु भक्ति में सम्म-सेवक

१ भूवार पुढ रीज, रोभवानक, प्रीतिमयानक, वात्सल्यरस प्रेमानु,

विष्णु भक्ति रस, हास्य बहुभूत पुढवीर, करण, बीमल, व्यापीर बर्ष
वीर और दास ।

भाव की भक्ति का विषय रहता है। गोस्वामी जी की भक्ति ऐक्य और ऐक्य भाव की है। प्रेमान् भक्ति के तीन रूप हैं वास्य सख्य और वास्य-सख्योभयात्मक। गोस्वामी जी की भक्ति-विधा में सख्यभाव की भक्ति के प्रति विशेष प्राप्ति नहीं मिलती है। उनके काव्य में वास्य प्रेमान् रस की ही भावधारणा हुई है। वास्य सख्योभयात्मक भाव की भक्ति की व्यञ्जना गोस्वामी जी के काव्य में मिलती है। भरत सप्तम, मुद्राङ्ग और विभीषण जाति की भक्ति इती कोटि की है।

गोस्वामी जी के काव्य में भक्ति रस का चौथा रस वास्यस्य भक्तिरस है। इसके वर्णन 'गीतावली' 'कवितावली' और 'मानस' में होते हैं। राम के संयोग और वियोग के अवसरों पर कवि कोयल्या के वास्यस्य का भक्ति मार्मिक वर्णन करते हैं। गोस्वामी जी भक्ति में वास्यस्य सम्बन्धी भाव्य दो वर्गों में विभाजित किए जाते हैं। प्रथम मनीष और द्वितीय अकृतजन। प्रथम के अन्तर्गत भयवान् की वास-कीड़ाओं के वर्णन हैं—

कबहुँ सखि मोंपत बारि करें कबहुँ प्रतिविम निहारि करें ।
कबहुँ कछाक बजाइ के नाकत मातु सबे मन मोह भरें ।
कबहुँ रिखिमाई कहैं इठि के, पुलि केइ सोई बेहि छागि करें ।
अबचेष्ट के बाकल बारि सबा तुलसी मन-मंदिर में बिहरे ।

कवितावली बालकाण्ड ४ ।

दूसरे वर्ग में काकमुद्गि प्रतिलिपि रूप में जाते हैं। ये राम के बाकस्य को अपना धाराव्य मानकर मन्त्रित करते हैं—

जब जब राम मनुष्य तनु बखीं । मयत हेतु सीखा बहु कखीं ।
तब तब अबबपुरी में जाऊँ । बाकचरित निजोकि हरपाऊँ ।
जग मद्भोस्वय बेबठें जाई । बरय पाँच तहैं रही कोमाई ।
इष्टरेव भव बाकल रामा । सीमा अपुन कोलि छठ काया ।

× × ×
लरिकाई जहँ जहँ फिरहि तहैं तहैं संग छड़ावें ।

पूछन परह बजिर नहैं सो छठाइ करि सावें । उत्तर० ७१।१

शेष की गरीब प्रतिलिपियों के अन्तर्गत एक गरीब छन्द का अनुवादन किया गया है। गोस्वामी जी को मधुर रस का कवि भी कहा गया है। इस सन्दर्भ में

निवेदन यह है कि मोस्वामी तुलसी दास का उद्देश्य शृंगार निरूपण नहीं है। कतिपय सौन्दर्यकर्ताओं की यह मान्यता है कि मोस्वामी जी के काव्य में 'रसिक साधना' धारा भी व्यञ्जित हुई है।^१ इस प्रकार का निबन्ध गीतावली के कतिपय पदों और ब्रजनिधि की साखी के आधार पर लिखा गया है। 'गीतावली' के एक पद में 'कैतियह' का वर्णन है। इस पद के आधार पर ही डॉ० मयवती प्रसाद सिंह ने इस प्रकार का निबन्ध लिखा है।

वैने कस्तित् एखन लोक कोने।

तेसिमे कस्तित् उरमिना परसर कलत्र सुकोचन कोने।

मुसमा सामर सिमार धार करि कलक रहे हैं तिहि सोने।

क्योमे-नरमिनि न पाल कहि निपकि रही मलि मीने।

सोमासीम सनेह सोहाबने समउ केसि यह गोने।

वेहि सिपन के नयन मुफस गए, तुलसी दास हू के होने।

गीतावली।

मोस्वामीजी स्मयौदासाजी कवि हैं। इस पद का सम्बन्ध उर्मिका और मयमय से है। इस अंश से भी अधिक शृंगारपूर्ण अंश 'कवितावली' में उपलब्ध होते हैं। परन्तु हम उन्हें अपुर रस के अन्तर्गत नहीं रख सकते। विद्वान विचारक ने मोस्वामीजी की रचनाओं में उत्तरी भाग का भी निषेध किया है। अपने मत की संस्थापना के लिए जन-जात्रा के प्रसंग में एक रमणी की प्रेमाकुस भावना के वर्णन का प्रसंग छद्म कर आलोचक ने इस प्रकार का निष्कर्ष किया है।

सन्तिहि मुखिय रई, प्रेम मयन भई।

सुरति बिछरि गई कपनी जोही।

तुलसी रही है ठाढ़ी यही सी काढ़ी।

न जाने कहाँ से आई लीन की कोही।

स्वामिनी सीता उसे अपनी ह्वा-दहि देती है और उसे हृष्य से कपाती है—

सनेह दिविस मूनि बचन बरक सिप

बिठई कबिक हित सहित जोही।

१ डॉ० मयवती प्रसाद सिंह—राम मन्त्रि में रसिक सम्प्रदाय।

तुलसी मन्त्र प्रभु कृष्ण की मूर्ति फिर

हेरि के हरि हिये सिमो है पोही ।

अपनी विवेचना में डॉ० 'हिंदू मानस' में आए हुए तापस प्रसंग की ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए कहते हैं 'मानस में उनका आराध्य के प्रति आत्मनिवेदन वास्तव भाव का बा और पीठावली में उनकी आत्मविमोहता एवं आत्मसमर्पण श्रृंगार भावना से प्रेरित है । प्रथम में इस अवसर पर वे इष्टदेव के चरणों पर मिरे थे किन्तु अपने दूसरे रूप में वे स्वामिनी के हुपय से छगे । ऐतिह्य सिद्धान्त के अनुसार सत्त्वियों का सीता सम्बन्ध आराध्य देव (राम) से नहीं होता वे सीता की बंधोबुभावा हैं । अतएव स्वयं को उन्हें (सीता को) समर्पित करके ही तत्सुख की अधिकारिणी होती है । अर्थात् स्त्री का सीता द्वारा आर्क्षित सम्बन्ध इसी तथ्य का स्मरण कराता है ।

अबलिबि के आधार पर भी गोस्वामी जी को ऐतिह्य सम्प्रदाय के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है । इस सम्प्रदाय में गोस्वामी जी के 'मानस' का विशेष सम्मान है । परन्तु गोस्वामी जी ने मानस में जिस मयीया पुरुषोत्तम राम के वर्णन का विस्तार किया है ऐतिह्य सम्प्रदाय में उसके विपरीत राम का श्रृंगारिक वर्णन मिलता है । ऐतिह्य सम्प्रदाय और गोस्वामी जी—ये दोनों ही बेबीमलिक के प्रति आग्रहशील हैं । दोनों में रामचरित का वर्णन है । परन्तु दोनों में तात्त्विक अन्तर है । इस अन्तर की अवहेलना करके किसी प्रकार का निर्णय उपयोगी नहीं होगा । गोस्वामी जी ने तत्सुखी भाव से अपने को सीता मानकर राम के साथ रमन-अधिकाया व्यक्त नहीं की है । गोस्वामी जी में तत्सुख भाव की व्यङ्गना नहीं मिलती है । गोस्वामी जी ने सीता को शगद्व्या और राम को अपत्य पिता के रूप में अर्पित किया है । अतः ऐतिह्य भावना के सम्पादन की सम्भावना उनके काव्य में नहीं है ।

निम्नमे पृष्ठों में जो विवेचनाएँ और विस्लेषण प्रस्तुत हैं उनके आधार पर सम्भवतः यही निष्कर्ष किया जा सकता है कि गोस्वामी तुलसी दास भक्त और शार्पनिष्ठ थे । अतः साहित्य-तत्त्व उनमें अति बौध और मध्यम रूप में ही विद्यमान हैं । परन्तु वस्तुस्थिति इन प्रकार की नहीं है । गोस्वामी जी की रचनाओं में

काव्य-सत्त्वों का अति उत्कृष्टतम रूप देखने को मिलता है। भक्ति उत्पन्न और साहित्य उत्पन्न से सम्मिश्रित उनकी रचनामें केतना के स्रष्टा स्रष्टियों से आलोचकों की किरणें प्रसारित करती हैं। साहित्यिक दृष्टि से इनकी कृतियों में 'रामचरित मानस' विश्व साहित्य की एक विशिष्ट उपलब्धि है। योस्वामी जी ने प्राचीन संस्कृत साहित्य का अध्ययन किया था। अतः योस्वामी जी ने अनेक काव्य के सम्पूर्ण लक्ष्यों से इस कृति को विमूर्णित किया है। 'मानस' के आरम्भ के मंगला चरण में कविने इसे प्रमाणित किया है। इस की प्रवन्धात्मकता में कवि के भावों के सरस एवं संवेदनात्मक स्वरूप का स्फुरण हुआ है। कवि के भाव-स्रोत में जीवन की समग्रता का जो प्रतिबिम्ब निर्मित हुआ उसके मूर्तिकरण के लिए भाषा, रस, शब्द और अलंकारों का समुचित प्रयोग यह प्रमाणित करता है कि योस्वामी जी का कवि उनके भक्त रूप के समान ही उदात्त, चेतनापूर्ण और गौरवमय था। घेष्ठ कवि नहीं है जिसने अपनी संस्कृति के प्राचीन प्रकाश-स्तम्भों की अवतारणा अपने काव्य में युगीन परिस्थितियों के आधार पर की है। 'मानस' में कवि के प्रयास इसी रूप की आभारधिता पर संलग्न हैं। इस कथन का पोषण मंगलाचरण के अन्त से हो जाता है—

नामा पुराणनिमगागम सम्मर्तमद्
रामायणेतिवर्णितं स्वविदम्मतोऽसि ।
स्वान्तं मुखाय तुमसी रघुनाथगाथा ।
भाषा निबन्धमसिर्मात्रं मातनोति ।-

'नामा पुराण निमगागम' हमारी संस्कृति और केतना की विशिष्ट सप सन्निधि है। कवि ने 'स्वान्तं मुखाय' को निबन्धस्वाय का समीकषाणी माना है। इस सत्य का उद्घाटन कवि के एक अन्य कथन से भी हो जाता है—

यदि यानिक मुकुटा ध्वनि वैसी । अक्षिनिर्गम्यसिंह सोह न लेही ।
गुण किरीट तस्वी तनु पाई । सहस्र एकल सोभा अधिकारी ।
तेरेहि मुकनि कवि नुन रहही । जगहि धनत मण्डल यदि लखही ।

'मानस' में एक ओर कवि ने काव्यशास्त्रीय उपादानों का प्रयोग किया है, वहीं ओर कवि ने प्राकृत और अपभ्रंस काव्यों के कच्चा विधान और काव्य ज्ञान का अवलम्ब भी ग्रहण किया है। 'मानस' एक प्रबन्ध काव्य के साथ ही अपभ्रंस-परम्परा का चरित और कच्चा-काव्य भी है। इस ओर निश्चये से संकेत किया गया है। गोस्वामी जी ने अपभ्रंस काव्य-रस जहाँ तक संकेत में ही इस कृति की रचना की है। अपभ्रंस कवियों के अनुकूल गोस्वामी जी ने पूर्ण कवि-ग्रहणवादी हैं और भात्म-कथुता का प्रकाशन किया है कवि यद्यपि जाडर, अर्म, अर्ककार, क्षत्र, त्रियोजन, प्रबन्ध-कौसल तथा य के गुण-बोधों से परिचित हैं परन्तु चिन्ताधार का परिचय देते हुए प्रति अपनी अज्ञानता का ही उल्लेख करते हैं। गोस्वामी जी के मुख में उनके प्रति कवियों की संस्मृष्ट दृष्टि कैसी रही, इसका ज्ञान नहीं हो पाता परन्तु इस प्रकार के संकेत मिलते हैं कि उनके मुख में संस्कृत साहित्य की अविधि और अभिव्यञ्जना प्रभावता के प्रति आग्रह बढ़ रहा था। गोस्वामी ने इस कृत्रिमता से अलग रहने और काव्य के नैसर्गिक विधान के प्रति आग्रह-रहित रहने को ही श्रेयस्कर माना है। इस प्रकार गोस्वामी जी के काव्य में अ-संग्रह, अनुसृष्टियों और काव्य-रसा के सम्बन्धित रूप उपलब्ध हो जाते हैं। गोस्वामी जी के अनुसार कविता विश्वमयस की भाषा है। उनके राम विश्व-रस के पर्याय हैं—

मण्डित विचित्र मुकवि कृत कोट ।

राम नाम विनु सोह न सोह ।

गोस्वामी जी के 'मानस' को कल्पित भाषाओं ने पुराण और महापुराण भी कहा है। यदि हम इनकी इस मान्यता को स्वीकार कर लेते हैं तो हमें 'मानस' को काव्य के सन्दर्भ से अलग करना होगा। वस्तुतः इस भाषा का निर्माण गोस्वामी जी की 'नागापुराण निमनामम् संस्कृतम्' के आधार पर ही हुआ लगता है। परन्तु गोस्वामी जी की भावभूमि इन बातों से सम्बन्धित है इस प्रकार संकेत गोस्वामी जी ने स्वयं दिया है। भाषाई विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अपने ऐसी साहित्य का अतीत नामक ग्रन्थ में इस धारणा का अग्रज किया है परन्तु उनकी भाषा की कथुता हमें प्रभावित नहीं कर पायी। सम्भवतः अपनी अधि-

व्यक्ति के माध्यम से बिधा भी इस तरह का समर्पण करते हैं कि स्वयं स्वयं कटु होना है ।^१

यह कहा गया है कि पोस्वामीजी ने 'मावत' में पुराण सेली का अनुसरण कर संवाद-सेली का माध्यम ग्रहण किया है। वस्तुतः यह सेली ओटा और बछा की है, जिसकी बर्तन आदि काज को विवेचना के अन्तर्गत की जा चुकी है। ओटा और बछा की निम्नलिखित परम्परा मानस में उपलब्ध होती है। बछा—बाकबल्ल, काकभुंछि और सिंग ओटा—अष्टाव, परक और पार्ष्णी। इनके अतिरिक्त ओटा और बछा की एक चौकी परम्परा भी मानी जाती है जिसमें बछा स्वयं पोस्वामीजी हैं और ओटा उनके पाठक हैं।

संवाद सेली की यह बिधा अप्रमत्त में पूर्णतः विकसित हुई। हिन्दी की आदि काशीय कृतियों में ओटा और बछा की इस परम्परा का मूलभूत रूपन काज ही है। मेरी यह धारणा है कि पोस्वामीजी ने पौराणिक और अप्रमत्त की संकेतों के समन्वित रूपों को ग्रहण किया है। परन्तु विचारकों की यह निश्चयात्मक धारणा है कि मानस की संवाद-सेली और कथा बिधा पौराणिक सेली की है। इनके अनुसार ओटा-बछा के प्रत्येक चरित्र के रूप में कथा कहने की बीसी प्रायः पुराणों और पौराणिक सेली के महाकाव्यों में ही उपलब्ध होती है। रामायण की कथा सर्वप्रथम भारत में महर्षि वाल्मीकि को सुनाई, वाल्मीकि ने कव-कुल को सुनाई, कव-कुल ने अश्वमेध के अवसर पर इस कथा का राज मयोध्यावासियों के सम्मुख किया। मानस में ओटा-बछा की बिधा इस परम्परा के अनुसार ही स्पष्टी है।

सन्तु कीन्तु यह कथित मुहावा। बहुरि कुराकर बमहि मुनावा।

सोइ सिंग काज मुनुं जिहि बीन्हा। राम यवति बधिकारी बीन्हा।

तेहि हन आगवलिह मुनि बावा। तिनहु पुनि नखाव प्रति पावा।

१ 'जिसकी मति जाता पुराण नियबावन संमतपु को रामने रखकर यह कहती है कि यह पुराण है उनक लिए संस्कृत व्याकरण (लघु कोशरी का ही उद्दी) बन्नास कल्पित है। उन्हें अधिक नहीं तो किसी कोप में पुराण के पंच मन्त्रों को ही बैठ सपन केना चाहिये।' हिन्दी साहित्य का इतिहास ५० पृ०।

मैं पुनि निज गुण उन सुनो कथा सो सुकर खेत ।

समुझी महि तस बाधन तब कति रहैऊ भवेत ।

मानस, नाम काव्य, १० । (क)

मानस का महाकाव्यत्व

ऊपर यह संकेत किया गया है कि 'रामचरित मानस' पुराण नहीं है । पुराण की एक निश्चित परिभाषा प्रस्तुत की गई है । इस परिभाषा के अनुसार मानस पुराण नहीं है ।^१ 'मानस' अपभ्रंश के चरित-काव्य-परम्परा की रचना है जो धर्म और कथा के क्षेत्रों से परिपूर्ण है । गोस्वामीजी ने अपने इस काव्य को 'चरित' 'गाथा' और कथा कहा है । आचार्य रामधु, बिस्वनाथ और बंड़ी बापि ने महाकाव्य की जो परिभाषायें दी हैं उनके अनुसार 'मानस महाकाव्य' नहीं है । भारतीय महाकाव्य की परम्परा में 'रामायण' और 'महाभारत' के पश्चात् अस्वघोष के 'बुद्ध चरित' की ओर हम आकर्षित होते हैं । 'रामायण' और 'महाभारत' में राम और रावण तथा कौरव और पाण्डवों के संघर्षों का सम्बन्ध मन की वृत्तियों से स्थापित किया जाता है जिसमें राम अष्ट मनोभावों के प्रतीक और रावण विद्वत् मनोभावों के प्रतीक रूप में ग्रहण किए जाते हैं । परन्तु यह आग्रह अधिक स्थापत्य नहीं लगता है । इस दृष्टि से अस्वघोष के 'बुद्ध चरित' की ओर हम आकर्षित होते हैं । यहाँ गौतम स्मर से संघर्षण है । वस्तुतः यहाँ मनुष्य की आत्मा अपनी बाधनाओं से संघर्षण चिन्तित की गई है । भाव फल की सुकृता के साथ इस कृति की खोज भी सुलभ है ।

इसके पश्चात् कवि काव्यदास के 'रघुवंश' की ओर हम आकर्षित होते हैं । शिल्प की दृष्टि से और कथा-प्रस्ताव की दृष्टि से यह काव्य अपने पूर्व के महाकाव्यों से भिन्न प्रकार का है । और यहाँ कथा के सत्वात्मक स्वरूप के वर्णन हो

१ पुराणों के माध्यम्य ये हैं—सर्ग प्रति सर्ग ऋषियों और देवताओं का बंध-वर्जन सम्बन्धों का वर्णन राज्यबंधों का वर्णन । यहाँ ज्ञान-कोप और धर्म की बातें भी रहती हैं । मानस में सर्व प्रतिर्ग मन्त्रर आदि के वर्णन नहीं हैं इसमें काव्य के नायक का बंध-वर्जन भी नहीं है । इन दृष्टियों के अनुसार मानस पुराण नहीं है । देखिए —हिन्दी महाकाव्य का स्वल्प विकास पृ० ४८४ ४८५ ।

जाते हैं। इस कृति में कवि शैलीपथ अलंकरण की ओर ही अधिक बाधहृदीस है। द्विम्बनिधि की दृष्टि से यह एक विशिष्ट परम्परा का संस्थापन करती है। इस प्रकार परबर्ती महाकाव्यों ने 'रघुवन्द' की स्तुत्यमोचना और भावार्थक अनुपायी को अपना अपना भावार्थ-स्तम्भ बनाया। इन संश्लिष्ट संकेत से हमारा तात्पर्य यह है कि 'बुद्धि चरित' 'रघुवन्द' और 'सिन्धुपाल बध' के माध्यम से द्विम्ब प्रपात या रीति प्रपात महाकाव्यों की विशिष्ट छंदी का विकास हुआ। यह परम्परा अपने रूप में विकसित होती रही है और इस प्रकार के महाकाव्यों के प्रचलन की परम्परा सम्मुख आई, जिसमें कथा, व्याकरण और अलंकार इन तीनों विधाओं के संयोजन का प्रयास किया गया। इन तीनों को एक विशिष्ट कृति है 'राजब बध'। इसके रचयिता हैं अष्टि।

इस परम्परा के विपरीत एक नवीन परम्परा का प्रस्तुत हुआ जिसका पूर्ण विकसित रूप प्राकृत और अपभ्रंश महाकाव्यों में पल्लवित हुआ। इसकी पची आठिकांश और प्रेमाश्रयानक काव्य के सगरमें में का गई है। इस परम्परा की प्रतिनिधि रचनायें हैं 'पद्मचरित' 'सिन्धुवन्द', 'पौडवन्द' एवं 'कुमारपाल चरित'। यही अपनी निश्चित मान्यता है कि द्विम्ब की दृष्टि से मोस्वामी जी का 'रामचरित मानस' इस द्वितीय परम्परा की रचना है। पुनरुक्त के 'पद्मचरित' के मारम्भ में द्वैत-स्तुति ब्रह्म-निन्दा सङ्ग्रह प्रशंसा आदि के वर्णन उपलब्ध हैं। इनके अतिरिक्त पुण्यवन्द ने कवि-कर्म में अपनी महत्त्वबोध का भी प्रकाशन किया है। पूर्ण कवियों की श्रमंता और उनके प्रति इत्यन्ता-प्राप्त सम्बन्धी छन्द यहाँ भी उपलब्ध हैं। मोस्वामीजी की प्रथम रचना में ये छन्द उपलब्ध हो जाते हैं। 'रामचरित मानस' के रचना-तंत्र पर प्राकृत और अपभ्रंश महाकाव्यों के रचना छन्द के पर्यट प्रभाव उपलब्ध होते हैं। इन प्रभावों का संश्लिष्ट निवारण इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है—

(क) शोक जीवन का स्पर्श—शोक-जीवन के स्पर्श की वाचना से ही मोस्वामी जी ने 'मानस' की रचना शोक भाषा में की है। 'मानस' के प्रचलन के समय मोस्वामीजी के सम्मुख भाषा का प्रश्न था। संस्कृत के माध्यम से अपने काव्य में प्रस्तावित शोक-मौलिक का प्रसार से शोक जीवन में नहीं कर सकते इन छन्द से वे परिचित थे। भाषा की यह समस्या स्वयम्भू के सामुप्य की

विद्यापति के सम्मुख भी और पोस्वामीजी के सम्मुख भी थी। स्वयंभू ने बेसी (लोक भाषा) भाषा में 'पञ्च भरित' की रचना की—

बेसी भाषा समय-तदुत्पन्न ।

कवि बुद्धर भय सह सिद्धात्म्य ।

विद्यापति ने भी इसी भाषा को ग्रहण करते हुए 'दिगम्बर बघना' में अपनी रचना की। पोस्वामीजी काव्य के लोक वर्गी स्वरूप के अनुसार भाषा के लोक वर्गी स्वरूप को स्वीकार करते हैं। इस भाषा से अनुप्रेरित होकर ही पोस्वामीजी ने कहा है— 'का भाषा का संस्कृत प्रेम बाधिए छाँच'। और 'भाषा बड़ करब मैं छोई। मोरें मन प्रबोध बेहि होई।

मानस बाळ० ९१।

(क) बार्मिक और पौराणिक तत्त्वों के समावेश के साथ रोमांचक तत्त्वों की परिकल्पना तथा अलौकिक और अति मानवीय तत्त्वों के प्रति भावह।

(ग) मर्मकाचरण तथा वस्तु निर्बंध के साथ आत्म विनय सम्पन्न प्रसंगादुर्बल मिथ्या तथा पूर्ववर्ती कवियों का अभिनयन।

(घ) प्रमुख रूप से शृंगार, वीर एवं छाँठ इन्हीं तीन रसों का विनिमोग और काव्य का पयौबसान छान्तरस में होना (ङ) पूर्वभय-वर्चन एवं अवान्तर कथाओं का संकल्पन (च) मोहता और बहता के रूप में कथा प्रस्तुत करने की विधा। (छ) संस्कृत महाकाव्यों की रस बढ़ता के स्थान पर आस्वासी सन्धियों एवं काव्यों में कथानक का विभाजन। पोस्वामीजी ने अपने महाकाव्य को 'भरित' संज्ञा से विभूषित किया है। अलौकिक और अतिमानवीय तत्त्वों के रूप में 'राम भरित मानस' में अहिंसा उद्धार की कथा चर्तुर्भंग प्रसंग, मत्त-नीस द्वारा समुद्र में पापाज-संहरण आदि बटनारों वर्णित हैं।

इस प्रकार 'रामभरित मानस' में कल्पित महाकाव्यों अथवा 'भरित काव्यों' की समस्त प्रवृत्त-कर्मिणी उपलब्ध हो जाती है।

महाकाव्य की आधुनिकतम मापदण्डों के अनुसार श्रेष्ठ महाकाव्य के हेतु सुसंघटित कथानक उदात्त चरित्रांकन यम्भीर रस व्यञ्जना महान् उद्देश्य और चरित्रात्मकी उदात्त सीखी अथवा व्यापक अर्थवृत्ति अपेक्षित गुण हैं। 'मानस' की कथा उत्पाद्य नहीं अस्तित्व प्रख्यात है। कवि ने इसकी कथा भाषा का संकल्पन संस्कृत

महाकाव्यों पुराणों और नाटकों के अतिरिक्त प्राकृत और अवप्रम के काव्यों में भी किया है। 'मानस' की परिभाषा के अनुसार मानस का कथानक संचालित है और इसी के अनुसार इसकी कथा इतिहास-उद्भूत है। इसके कथानक का विभाजन बाल अयोध्या अरण्य, किष्किन्ध्या मुरार संका एवं उत्तर काण्वों में हुआ है। इनके लिए कवि ने 'सप्त भुवग योषान' (बाल० ३९ १) संज्ञा का प्रयोग किया है। बाल काण्व कवेवर की दृष्टि से विलुप्त है। 'मानस' की कथा नाटकीय अन्विष्टियों से परिपूर्ण है। इसका मुख्य कार्य है राक्षस-दम और राम का राम्याभिषेक।

महाकाव्य की आत्मा रस है। 'मानस' में नव रसों की परिध्याप्ति उपलब्ध हो जाती है। इसका सभी रस घास्त है। सीता की शृंगार भावना, मरुत की कल्पा और इस प्रकार की समस्त विविष्टि घटनाओं का सम्पादन घास्त रस में होता है। मरुत के मन्दर्भ में जो मरुति रस है वही मोक्षामीची के काव्यात्मक अनुबन्धों में घास्त रस के रूप में व्यक्त हुआ है।

'मानस' की चरित्र-योद्धता वृत्ति व्यापक है। राम के मरुत पर मारामरुत के व्यक्तित्व के आरोपण से राम के चरित्रिक व्यापार की क्रिया-भूमि अति व्यापक हो गई है। उनके चरित्र का एक पक्ष मरुत की भूमि का संस्पर्श करता है और दूसरा मारामरुत का। जनक की वाटिका में सीता-दर्शन के पश्चात् राम के मन में रति-मूलक अनुराग भावना जागृत होती है। सीता के गुणों की अग्नि जलमें जलीक भाव जागृत करती है और राम अपनी भावनाओं का प्रकाशन लक्ष्मण के सम्मुख करते हैं—

ठाठ जनक ठकमा यह सोई । अनुप जस बेहि कारण होई ।

पुनज पौरि सखी सै भाई । कस्तु प्रकामु छिरइ फुलभाई ।

बामु बिलोकि बलीकिक सोभा । सहज पुनीत मोर अनु सोभा ।

सो सहु काल जान बिबाठा । करकहि मुमर भय मुनु भावा ।

मानस २३१ १४ ।

अरण्य काण्व में राम सीता का न बार करते हैं। फिर सीताहरण की कथा से वे व्याकुल भी हो उठते हैं। इन प्रकार राम लौकिक संवेदनशीलता की मनोवैज्ञानिक परिभूमियों में विचरण करते हैं। 'मानस' में राक्षस प्रतिनामक है। राक्षस का व्यक्तित्व भी अति प्रबल और आवेग पूर्ण है। वह अव्यक्त रस का वाहक है, जो उत्तर

अमृत-तृण इत्यादि युग ध्यायी हो उठता है कि उसके विपरीत राम को मृत-तृण के रूप में अवतार ग्रहण करना पड़ता है । रावण के व्यक्तित्व का परिचय गोस्वामी जी ने निम्नलिखित पंक्तियों में दिया है—

अथ वसामन होरति जवनी । परत गर्म सबहि मुर रमनी ।

रावन जावत सुनेहु सकोहा । देखहु तके मेव विरि सोहा ।

बाल० ११० ।

गोस्वामी जी ने एकदलीय चित्रण नहीं किया है । जीवन में अमृत-तृण के समान ही अमृत तृण भी सत्तिशायी होते हैं । मनुष्यता की कृतृतियों को सरसता से पराजित नहीं कर पाती है । राम और रावण के चरित्र निर्माण में गोस्वामी जी ने इस मनोवैज्ञानिकता का संरक्षण सम्पूर्ण रूप से किया है ।

‘मानस’ का उद्देश्य लोक-संमेल की वाक्या है । इस का उद्देश्य कवि ने ‘मानस’ के संस्काराचरण में ही कर दिया है । ‘उत्तरकाण्ड’ में रामराज्य की परिकल्पना में भी गोस्वामी जी ने परोक्ष रूप से अपने इस काव्य के महत् उद्देश्य का ही प्रकाशन किया है—

देहि नैविक भौतिक तापा । राम राज नहि काहुहि व्यापा ।

चारिउ भरन जर्म जप माही । पूरि रहा सनेहुँ जप नाही ।

नहि रहि कोउ कुसी न बीना । नहि कोउ अबुन न सखनहीना ।

मानस उत्तरकाण्ड २११३६ ।

गोस्वामी जी लोक-संमेल की साधना अवस्था और अत्यारम्भक सौन्दर्य के कवि हैं । राम जीवन में संघर्ष कर निजम प्राप्त करते हैं और फिर अपने राम राज्य का सुख करते हैं । इस प्रकार जीवन की महती साधना ही ‘मानस’ का उद्देश्य है ।

गोस्वामी जी के काव्य में युग-सापेक्षता

गोस्वामी दत्तसीढाह का काव्य विशेषतः राम चरित मानस’ युग सापेक्ष काव्य है । उत्तर काण्ड का उत्तरार्ध मानस का उपसंहार है । इस उपसंहार में गोस्वामी जी की सामाजिक माय्यताओं का परिचय हमें मिलता है । कस्मियुग वर्चन के प्रसंग में कवि अपने युग का गण चित्र प्रस्तुत करते हैं । राम राज्य की कल्पना में कवि ने एक सम्पूर्ण संतुष्ट और बलितापूर्ण समाज की परिकल्पना

की है। मोस्वामी जी की सामाजिक नैतिक और बार्मिक मान्यताओं में उनके विचलित युग के प्रति प्रतिक्रियारम स्वर अभिव्यक्तित हैं। इस सत्य का अभ्यवर्तन यदि काल के सामाजिक और राजनैतिक विश्लेषण के अन्तर्गत किया गया है। (विशेष इस इतिहास का द्वितीय खण्ड—परिचित संख्या हो)।

कथा

मोस्वामी तुलसी के काव्य में अभिव्यक्तता-प्रणाली का अति सचेतन रूप व्यक्त होता है। अभिव्यक्तता प्रणाली की दृष्टि से भी मोस्वामीजी अपने काव्य में सिम्बलिजि की संक्षिप्त विधा के सौन्दर्यपूर्ण और चेतनशील आदर्श प्रस्तुत करते हैं। मोस्वामीजी के काव्य विशेषकर मानस में भिन्न-भिन्न रसों की अभिव्यक्ति दर्शनीय है। शृंगार के संयोग और वियोग पदों की उद्भावना 'मानस' की वर्णनात्मकता में संवेदनशीलता की छत-छत-बाराणों का स्वल्प विधान करती है। मोस्वामी जी बीरम के यथार्थ संस्कारों के अनुकूल राम को नायक के रूप में प्रस्तावित कर उन्हें आत्ममत्त प्रदान करते हैं। सीता को नायिका-रूप में अंकित कर उन्हें आत्ममत्त प्रदान करते हैं। शृंगार के प्रसंग तुलसी-काव्य में अति सीमित हैं, परन्तु अपनी सीमित परिधि में भी ये प्रसंग अनुभूति और प्रभाव की दृष्टि से गौरवपूर्ण हैं। अब हम शृंगार की कथा करते हैं, तो सर्वप्रथम हमारा ध्यान 'मानस' के उस प्रसंग पर जाता है जिसमें सीता के गुरुरों की ध्वनि से राम रक्षित हो उठते हैं—

कंकन किंकन गुरुर धुनि सुनि । कल्ल सखन सन राम हृदय सुनि ।
 पान्हुँ मरन दुखुनी बीन्ही । मनसा बिसन विजय कहेँ कीन्ही ॥
 अब कहि फिरि चितए ठेहि ओरा । छिम मुख छसि भए नयन बकोरा ।
 भए बिलोचन बाब बचन । मलहुँ छकृषि निमि तजे किमबल ॥
 देखि छीय छोभा मुख पाबा । हृदय वराहत बचनु न आबा । वास० २३० ।

गुरुरों की ध्वनि उद्गीत विमान है नेत्रों की अपकृष्ट स्थिति अनुभाव है। इस प्रकार मोस्वामी जी इस अंश में पुनर्नुरात की अवस्था का विधान करते हैं। शृंगार के प्रसंगों में अतिजाया सृष्टि, औत्सुक्य कक्षा एवं चरमता जाति जाकों की नियोजना इन प्रकार के संस्कारों में विशेष रूप से दर्शनीय है।

विश्रम्भ शू गार के अन्तर्गत स्वामी भाव रति के ककारत्मक नियोजन के अनेक सुन्दर गोस्वामीजी के काव्य में उपलब्ध हो जाते हैं। इस अवसर पर हमारा ध्यान वरष्पकाण्ड के उस अंश की ओर अनायास ही आकर्षित हो जाता है जिसमें सीता के वियोग में रामचन्द्र बिलाप करते हुए वर्णित किये गये हैं —

हे खग मृग हे मधुकर येनी । तुम्ह देखी सीता भूकनीनी ।
 लंघन सुक कपोत मृग भीना । मधुप निकर कोकिला प्रवीना ॥
 कुन्दवल्ली बाह्मि वामिनी । कमल सरय ससि बहि मामिनी ।

X X X X

सुगु आनकी तोहि बिनु आवू । हृदये सकल पाहू बनू राखू ।

मानस वरष्प काण्ड ३० ।

इस अंश में तथा इस प्रकार के अन्य सुन्दरों में स्मृति सम्पाद, आशेग एव अकृता आदि संवारी भावों का गुम्फन स्वामी भाव के साज भावनाओं के उत्कर्ष में योग-दान देता है। इसी प्रकार आशय के उद्घेप दैव्य विषाद और सम्पाद आदि अवस्थाओं का चित्रण हमके काव्य में नैसर्गिक रूप में उपलब्ध हो जाता है।

गोस्वामी जी भावनाओं के कुशल धरणी हैं। परिस्थितियों के विशिष्ट सुन्दरों में पाशों के मनोगत अमूर्त भावों के छिये कवि जीवन सापेक्ष प्रस्तुतों का प्रयोग कर साधारणीकरण की महती चैष्टा के आदर्श प्रस्तुत करते हैं। इस प्रसंग पर विचार करते हुए हमारा ध्यान वनूप मंग-असंग की ओर अनायास ही आकर्षित हो उठता है। सीता पिता के प्रण का स्मरण करती हैं और राम की ओर देखती हैं। राम वनूप-मंग कर सकी इस प्रकार के अनिश्चित भाव से वे आतुरित हो उठती हैं। चिन्त-वनूप सीता के जीवन का सबसे बड़ा प्रतिबन्ध है। पिता के प्रण से वे दुःख हो उठती हैं। उनका हृदय एक विशेष प्रकार के आत्म-संघर्ष में भर जाता है। वे अपनी व्यापारिणी में व्यक्त नहीं कर पातीं उनके सम्मुख मर्यादा का बन्धन है। कवि ने सीता की मन स्थिति का अंकन इस प्रकार किया है—

गिरा बसिनि मुख पंकज रोकी । प्रकट न काम निहा धवलकी ।
 सोचन बल यह सोचन कोना । जैसे परम कृपण कर सोना ।
 सङ्गुची व्याकुलता बहि बानी । बरि चीरन प्रतीति घर बानी ।
 प्रभु तब चितह प्रेम लग ठाना । कृपा निजान राम सब जाना ।

मानस० बास०, २२६।

मोस्वामी जी मयीदा के कवि हैं । उनके काव्य में रति-वर्णन भी अति
 संयमित और प्रकीर्णित है, परन्तु उनके संयम और मयीदा में भी एक स्निग्धता
 मिलती है । 'बागकी मंगल' और 'कवितावली' में रति के आकर्षकपूर्ण वर्णन के
 अनेक सन्दर्भ उपलब्ध हो जाते हैं । राम और सीता के वास्तव स्नेह की उद्भासना
 कवि उनके जीवन के विविध परिवाहों के सम्पर्क में करते हैं । इन अंशों में
 कवि पाशों की अन्तःप्रकृति का पर्यवेक्षण भी करते हैं—

पल को गए लखन हैं करिका परिली मि छाँह चरीक हूँ ठाढ़े ।
 पौछि पसेठ बगारि करौ अठ पाँच पजारिहूँ भूमुरि बाढ़े ।
 मुकवी रघुबीर प्रिया भन जानि के बँडि बिलम्ब को कटक काढ़े ।
 बागकी गाह को मंह लखो, पुलक्यो तनु बारि बिलोचन बाढ़े ।

कविता अयोध्या० १२ ।

'रामचरित मानस' के अन्तर्गत कस्म रस के कतिपय विशिष्ट सन्दर्भ उपलब्ध
 होते हैं । केकयी राजा वधरस से बरदाग मीकयी है । इस अवसर पर वधरस
 की कस्या का मूर्तत्व कवि स्वप्न स्वरमय और वैभव्य आदि तात्त्विक अनुमापों
 के द्वारा अभिव्यक्त करते हैं । वधरस की अवस्था अति दयनीय हो उठती है—

बाह बीख रघुबंसमति भरपति निस्ट मुखाजु ।

सहसि परोज छवि सिबिमिदि मतहुँ कृद गजराजु ।

मानस अयोध्या० ११ ।

राम के निर्वासन के समाचार से कोयल्या के मातु-हृदय को आकाश लफटा
 है । उनमें प्रहस्य और जघ्नु का संचार होवा है । मानस में लंका काण्ड में
 लक्ष्मण मुधौ के प्रसंग में कवि ने राम की भगवान्तर पीड़ा की उद्भासना की है—

अर्चरानि बह कसि नहि आयत । राम बढाय लज्जु जर लायत ।

सङ्गु न बुगिन वैनि मोदि काऊ । बंभु सना तब सुनुल सुभाऊ ॥

x

x

x

x

विप्रसन्न मनुष्य के अन्तर्गत स्थायी भाव रति के ब्रह्मात्मक निबोधन के अनेक सम्बन्ध गोस्वामीजी के काव्य में उपलब्ध हो जाते हैं। इस बख्तर पर हमारा ध्यान अरव्यकाण्ड के उस अंश की ओर बनाया ही आकर्षित हो जाता है जिसमें सीता के वियोग में रामचन्द्र विलाप करते हुए अंकित किये गये हैं —

है खल मृग है मनुकर धनी । तुम्ह बेसी सीता मृगनी ।
 संजल सुक कपोत मृग मीना । मनुष निकर कोकिला प्रमीना ॥
 कुम्हकसी बाढ़िम दामिनी । कमल खख ससि भहि मामिनी ।

× × × ×

तुनु आमकी सोहि बिनु जाजू । इत्ये सकल पाहू अनु राजू ।

मानस अरव्य काण्ड ३० ।

इस अंश में तथा इस प्रकार के अन्य सम्बन्धों में स्मृति उग्राह, आश्रय एवं अड़ता आदि संचारी भावों का गुम्फन स्थायी भाव के साथ भावनाओं के उत्कर्ष में योग-दान देता है। इसी प्रकार आश्रय के उद्भव सेव्य विप्राद और उन्माद आदि अवस्थाओं का चित्रण इनके काव्य में नैसर्गिक रूप में उपलब्ध हो जाता है।

गोस्वामीजी भावनाओं के कुत्थल सिन्धी हैं। परिस्थितियों के विशिष्ट सम्बन्धों में पात्रों के मनोगत अमूर्त भावों के छिये कवि जीवन सापेक्ष प्रस्तुतों का प्रयोग कर साधारणीकरण की महती चेष्टा के आदर्श प्रस्तुत करते हैं। इस प्रसंग पर विचार करते हुए हमारा ध्यान अनुप-अव-प्रसंग की ओर बनाया ही आकर्षित हो उठता है। सीता पिता के प्रण का स्मरण करती हैं और राम की ओर देखती हैं। राम अनुप-अव कर सके इस प्रकार के अनिश्चित भाव से बेजापूरित हो उठती हैं। शिव-अनुप सीता के जीवन का सबसे बड़ा प्रतिपक्ष है। पिता के प्रण से बेखुश हो उठती हैं। उनका हृदय एक विशेष प्रकार के आत्म-दर्शन में भर जाता है। वे अपनी व्यथा बानी में व्यक्त नहीं कर सकतीं उनके सम्मुख मर्त्यता का वर्णन है। कवि ने सीता की मन स्थिति का अंकन इस प्रकार किया है—

विरा बलिनि मुख पंकज रोकी । प्रकट न जान हिसा अवलोकी ।
 लोचन बरु रहु लोचन कोना । जैसे परम कृपल कर सीमा ।
 घटुकी व्याकुलता बहि जागी । धरि बीरब प्रतीति ठर जागी ।
 प्रभु तब बितद प्रेम तन ठाना । कृपा निधान राम सब जाना ।
 मानस० बास०, २३६ ।

गोस्वामी जी मयौदा के कवि हैं । उनके काव्य में रति-वर्णन भी बलि
 संबन्धित और मयौदा है । परन्तु उनके समय और मयौदा में भी एक सिम्बता
 मिलती है । 'जागकी मयल' और 'कवितावली' में रति के आकर्षणपूर्ण वर्णन के
 लोकेक सम्पर्क उपलब्ध हो जाते हैं । राम और सीता के वाष्पय स्नेह की उद्भावना
 कवि उनके जीवन के विविध परिपार्श्वों के सम्पर्क में करते हैं । इन अंशों में
 कवि पात्री की अन्तःप्रकृति का पर्यवेक्षण भी करते हैं—

जब को गए लखन है गरिका परिली निप छाँह परीक झूँ ठाढ़े ।
 पोंछि पसैव बमारि करो जब पाँव पछारिहौ मूमुरि डाढ़े ।
 तुलसी रघुबीर प्रिमा मम जाति के बँधि बिछम्य को कंठक काढ़े ।
 जानकी नाह को नेह लख्यो पुलख्यो ठनु बारि बिलोचन बाढ़े ।
 कविता अयोध्या० १२ ।

'रामचरित मानस' के अन्तर्गत कश्मल रस के कल्पित विशिष्ट सम्बन्ध उपलब्ध
 होते हैं । कैकयी राजा वधरस से वरदान माँगती है । इस अवसर पर वधरस
 की कल्पा का भूर्तस्व कवि स्तम्भ, स्वरस्य और वैवर्ष्य जाति सात्त्विक अनुभावों
 के द्वारा बंफित करते हैं । वधरस की अवस्था बलि वयमीय हो उठती है—

जाद बीज रघुबंसमनि मरपति निपट कुसानु ।
 सहस्रि परैव लखि सिधिमिद्धि मलहुँ बूढ मगरानु ।
 मानस, अयोध्या० ३६ ।

राम के निर्वासन के समाचार से कौषल्या के मातृ-हृदय को आघात लगता
 है । जन्में प्रकल और मधु का संचार होना है । मातृ में लंका काण्ड में
 लखन-मुखी के प्रसंग में कवि ने राम की नमोत्क पीड़ा की उद्भावना की है—
 लखेराति बर करि नहि जावत । राम उदाम अनुज सर सायद ।
 बरहु न कुमिन दीपि मोहि काठ । बंधु सदा तब सुख मुपाड ॥

बौ बनतहुँ बन बन्धु बिछोहू । पिता बचन भनतेरुँ महि ओहू ।

माणस संका : ६१ ।

‘नीतावसी में राम नियोग में कौशल्य की व्यासा का वर्णन सखमन की मूर्खी पर राम निष्ठाप का वर्णन और सीता निवासन का वर्णन निवेप रूप से कर्णों के योग्य है ।

भारतीय आचार्यों ने काव्य में रस कपी की कल्पना की है । इसके अन्तर्गत तीन रसों का समावेश किया गया है—शृंगार वीर और शास्त्र । ‘माणस’ का अर्थ रस शान्त है जिसकी स्पष्ट प्रतीति जन्ति-मुख्य प्रसंगों में होती है । माणस की स्तुतियों में मुख्य रूप से उत्तर काण्ड में इसका नियोजन मिलता है ।

रीतिरस के नियोजन ‘माणस’ के बाल काण्ड’ और बयोध्या काण्ड में उपलब्ध होते हैं । वीर रस के संचारी भाव हैं मति धृति बल तथा उद्यता । इस रस का नियोजन संकाकाण्ड में हुआ है परन्तु बाळकाण्ड में सखमन-परशुराम-संवाद किष्किना काण्ड में वासि-वध प्रसंग और बयोध्या-काण्ड में भरत के ससैन्य-अमन के सन्धर्मों में इस रस का नियोजन मिलता है । अनुभूत रस में रोमांच स्वप्न स्वेद वासि अनुभावों के नियोजन मिलते हैं । पार्वती राम के प्रह्लाद की परीक्षा लेती है । अनुप-भंग के समय परशुराम राम की परीक्षा लेते हैं । इन प्रकरणों में अनुभूत रस के स्वस्वप कल्पना के अति सफ़ल प्रयास उपलब्ध होते हैं ।

हास्य के अनेक प्रकरण कवि की रचनाओं में मिलते हैं । गारद-मोह प्रकरण में छिव विवाह के वर्णन प्रसंग में बल भाषा के सन्धर्म में राम-केवट-बाठी के प्रकरण में और परशुराम-सखमन संवाद के प्रकरण में हास्य के अति चेतन प्रवाही वर्णन उपलब्ध होते हैं । इन प्रसंगों में हास्य के साथ व्यंग्य अनिवार्य रूप से नियोजित मिलता है । हास्य का एक प्रकरण कविदावली में उपलब्ध होता है—

विषय के बानी उरामी पण्डितपारी हुये बिनु मारि दुगारे ।

नीतय तोय ठरी तुम्ही सो कबा गुनि भे मुनि बृन्द तुम्हारे ।

हूँ है बिना सब चरमुन्नी पाने पर मनुज कंज तिहारे ।
 कीन्हीं भरी रत्नामय जू कस्ता कर कामन को मनु बाने ।
 कवितावली ।

तपस्वी अपनी जीवन-संविनी बिना मन में चुकी रहे । एकान्त जीवन की नीरसता को दूर करने की भावना से अहिंसा उद्योग की कथा से परिचित मुनि शिखा-काण्ड के साथ बैठे हैं । राम के पावन चरम-स्पर्श से शिखा के तारों में परिचित हों जायेंगी । इस सम्भावित लाभ से वे प्रसन्न हैं ।

मयानक रस का स्वामी भाव भव है । इसमें रंग स्नेह वैभवं, रोमांच एवं स्वरसंवादि अनुभाव होते हैं । वास, चिन्ता, रंजना आगुप्ता इसके संचारी भाव हैं । 'पातल' के बालकाण्ड में शिव शिखा प्रसंग में इस रस का नियोजन मिलता है । 'अयोध्याकाण्ड' में कैकेयी-कोप तथा 'संका काण्ड' के अनेक प्रसंगों में इस रस का प्रस्तार मिलता है —

अपने हील दलान्न वैषे । साहित प्रातः कश्यप गिरि वैषे ।
 भुजा विटप गिरि श्रुम समाना । रोमानको कता अनुमाना ।
 मुख तासिका मयन अब काना । गिरि करार कोह अनुमाना ।

मानस संकाकाण्ड, १६ ।

अपने में रास का साक्षात्कार हुयी कन में किया । इस प्रकार मयानक रस की व्यवस्था विविष्ट प्रसंगों के अन्तर्गत हुई है । जीवन का स्वामी भाव आगुप्ता है । 'मानस' में इस रस की परिभाषा संका काण्ड में ही प्रमुख रूप में हुई है—

गाना मोलि पिबास पिवाची । माव काटि मुनि बोसई नाची ।
 विष्टा पूष बजिर कच हाड़ा । बरतहि कचहु जल बहु धाड़ा ।
 कापि पुरि कीन्हीति अविबारा । मुक्त न आपन हाव पसारा ।

मानस संका ११ २ ३ ४ ।

इस वर्णन में रास का सम्बन्ध है तथा मानस भाव है । 'कच' कच हाड़ा इत्यादि उद्दीप्त विभाव हैं । भुजा और आगुप्ता स्वामी भाव हैं ।

पौत्वाभीजी के काव्य में रास का अर्थ अति परिमित भाषा में हुआ है । तुलसी-काव्य में दसरथ और कैम्प्या के वर्णन में ही इस रस का प्रस्तावन

मिथता है। राम बन भगन के समय माता कौसल्या के बत्सल हृदय की अभित भावनाएँ राशि राशि बिखर पड़ती हैं। इस रस का नियोजन मानस के दो कोनों में ही प्राप्त होता है प्रथम वाक्काण्ड में और द्वितीय अयोध्या काण्ड में। उत्तर काण्ड में एक स्थल पर इस रस का नियोजन मिलता है। वात्सल्य के संयोग और विषम इन दोनों पक्षों के प्रस्तावन कवि के काव्य में उपरज्य होते हैं। 'गीतावली' से वात्सल्य के विप्रस्मन से सम्बन्धित एक अंश वहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

बननी निरवधि बान बनहिमों ।

बार-बार छर नैननि कावति प्रभुनु की कसित पनहिमों ।

कबहुँ प्रथम ज्यों बाद जमावति कहि प्रिय बचन छहारे ।

छलु तात बसि मानु बरन पर धनुज सखा सब द्वारे ।

कबहुँ कहति यों बड़ी बार यह बाहु भूष पहुँ मैया ।

बंदु बोलि जेस्य जो भावै गई निष्कार मैया ।

कबहुँ समुन्नि बन गयन राम को रहि बकिबिन लिखी छी ।

गुल्मी दास बहु समय कहे ये सावति प्रीति सिखी छी ।

गीतावली अयोध्या ५२ ।

इस अंश का भाव-सौन्दर्य अति स्निग्धपूर्ण है। पुन-वियोग में पुन की वस्तुओं से मा कौसल्या की बत्सल भावनाएँ उद्गीत होती हैं और वे 'जमाव' की स्थिति में पहुँच जाती हैं।

अलंकार

शेखरी के काव्य में अलंकार के अति विराट् स्वरूप और उनके सम्बन्धित विभिन्न केना भूमियों के स्वरूप-संस्वान के दर्शन होते हैं। कवि के काव्य में अलंकार भावों की आवेगपूर्ण धारा के नैसर्गिक उत्स के साथ ही प्रकटित होते हुए उगते हैं। अलंकार के अन्तर्गत अनुपास समक पुनरुक्त्या मात, वीत्या इत्येव बकीछि आदि के सबसे प्रयोग वर्चनीय हैं। अलंकार क कविपद असाधारण यहाँ दिये जा रहे हैं—

करीब — जुबर्दस्त कोरंड केरत कबिर कन ठन बति बने ।

बनु राबमुनी तमाक बर बंठी बिनुल मुस मापने ॥

मानस लंका०, छन्द २।

इस संस में बर्ग-साम्य के आचार पर तमाक, एक बिन्दुओं और और बहूतियों के अप्रस्तुत विभाग से राम के सौन्दर्य निरूपण का जो विम्वरविधान होता है वह बड़ा मोहक है।

रूपक—स्वयं अकाल के अन्तर्गत निरर्थक रूपक परम्परित रूपक और सांग रूपक तुलसी दास की अविम्वरता प्रपाठी में बिधेय रूप से प्रयुक्त हुए हैं।
निरर्थक रूपक—

बगरी जनक बंश सुत बारा । तनु बनु भवन सुख परिवारा ।

सब के ममता ठाग बढोरी । भय पर स्नहि बौबि बर डोरी ।

मानस, सुन्दर० ४८ ४, १।

परम्परित रूपक—

कइ युनि मुनु रूपबीर इमाठा ।

घोर मानस राज मयाका । करष्य ८१ ।

सांग रूपक—

नाम वाहुक सिख निधि प्यान तुम्हार कपाठ ।

बोचन निज पर बंभित बाहिं मान केहि नाट ।

मानस : सुन्दर० बोधा ३० ।

दृष्टांत—

भलहि होहि न राबमव निधि हखिर पर पाइ ।

कबहुं कि काजी छीकरन छीरछिनु बितवाइ ।

मानस अयो०, दो २३१ ।

सुन्दर धोखना—‘मानस’ के अनेक काण्ड का आरम्भ श्लोक से हुआ है। परन्तु ‘मानस’ की रचना कदाक सेली में हुई है। कदाक के अन्तर्गत निम्नोक्त वर्णानुवर्णों के संख्या-क्रम में एककता नहीं है। इसी प्रकार उर्दू की भाषा के क्रम में भी एककता नहीं मिलती है। उदाहरण स्वयं विभंकी छन्द में अथ-तथ १२ आवाजों के अन्त में ७४ = १० मात्राओं का

प्रयोग मिलता है। संस्कृत छन्दों के अन्तर्गत कवि ने अनुष्टुप, धातु-विच्छिन्न वसंतसिद्धा इन्द्रवज्रा, मासिनी और खम्बरा आदि छन्दों का प्रयोग किया है। परन्तु मासस में चौपाई बोहा एवं सोरठा आदि छन्दों के ही प्रयोग व्यापक रूप में हुये हैं। कदम्बों में चौपाई के पश्चात् बोहा सोरठा और छन्द का वृत्ताक्रम नियोजित है। सामान्यतः ५, १, ७ अर्थात् छन्दों के पश्चात् बोहा या सोरठा के बतने का नियोजन है किन्तु ऐसे भी सन्दर्भ उपलब्ध होते हैं जहाँ कदम्बों में ११ १२ और १७ अर्थात् छन्दों का विभाग मिलता है। 'मानस' में बोहा सोरठा हरिगीतिका निर्मली चौपाया तोमर आदि छन्दों के प्रयोग हुये हैं।

शब्द शक्तिर्मा—काव्य के संदर्भ में पोस्वामी जी ने छन्द और अर्थ की अभिलेखा पर विश्वास प्रकट किया है।

मिरा जय कळ बीजि सम कळियत मिल्ग न मिल्ग।

परन्तु कवि ने अभिधा कसना एवं व्यञ्जना इन दोनों अन्वयशक्तियों का प्रयोग किया है। अन्वयशक्तियों से इनके काव्य में अभिव्यक्ति की प्रेषणीयता की सम्भावना अति व्यापक हुई है।

गुण रूप रीति

(क) माधुर्य गुण—श्रु पार, कदम्ब एवं धातु रसों के सन्दर्भों में कवि ने माधुर्य गुण का प्रयोग किया है। 'मानस' में 'बाटिका प्रसंग' में राम-जनयन के सन्दर्भ में सीता विरोध तथा अत्यन्त-सक्ति के प्रसंगों में माधुर्य गुण का प्रयोग मिलता है—

कोकक किकिन तूपुर बुनि मुनि । कहत लज्जल सन राम हृदय गुन ।

मानई मरन दुन्दुभी बीन्ही । मतसा विस्व विजय कई कीन्ही ।

वाक्य २३० ।

ओजगुण—इसका सम्बन्ध आचार्यों ने उत्तेजना का रीति से माना है। इस गुण का विन्यास और बीमत्स और रौद्र रसों में मिलता है। 'मानस' में बाक्यगण से धनुष्य के प्रसंग का निम्नलिखित अंश विशेष रूप से वर्गनीय है। यह अंश छिन्न-बन्धुप अंग के संदर्भ में प्रस्तुत है।

मरे मुबल धोर कठोर रव रवि बाबि ठेवि मरिपु बले ।
 बिहगहि बिगन डोल महि बहि कोल-कूलम कलमले ।
 सूर बमुर मुनि कर काण्ड बीन्हें सटस विफल बिचारही ।
 कोइह मनेठ राम तुलसी जयति वचन उचारही ।

मानस बाल०, २११ ।

प्रसाद गुण—गोस्वामी तुलसीदास ने काव्य में प्रसाद गुण के प्राबल्य स्वयं उपलब्ध होते हैं—

एक बार बगनी बगुबाए । करि छिमार पसनों पीढ़ाये ।
 निज कुछ इच्छेब मगबाना । पूजा हेतु कीन्ह अस्नाना ।
 करि पूजा नैवेद्य बड़ावा । बापु यहै यहै पाक बढावा ।

बाल० २०१ १ २ ३ ।

गोस्वामी तुलसीदास के काव्य में रीति और वृत्तियों को माधुर्य और प्रसाद, इन तीन गुणों के प्रसार में सहायक है । गौडीय रीति का बिस्वास 'मानस' में शिव बिबाह अनुमग बाबि सख्यों में हुआ है । लंका काण्ड के अन्तर्गत और, बीमल बाबि रसों में यह वृत्ति संवर्धित है ।

गोस्वामीजी के काव्य मुख्यतः 'मानस' में शृङ्गार कदम एवं छाँट रसों में इस रीति का निर्योजन मिलता है । पार्श्वी रीति का बिस्वास प्रसाद गुण के साथ देखने को मिलता है ।

इस प्रकार गोस्वामी जी की कृतियों में काव्य-कला की सम्पूर्णता विद्यमान है । 'तुलसी छतसई' में गोस्वामी जी ने बलकार, रीति गुण और दोष के काव्य उपयोगी पद्यों की बर्णना की है ।

८. बलकार कवि रीति मुत मुलन दूज्य प्रीति ।
 बारिबाठ बरनन बिबिध तुलसी बिमल बिनीत ।

तु० व० ४, ४७ ।

कोम आनंद्य सन्धि मति मँची बरन बिचार ।
 इरन बरन मुनिमति बल कबिहि बरन निरवार । ३० ६० ।
 मरन हन अण्यय बरन सटित विकल्प बिचार । ३ ६० ।
 बह तुलसी मति अनुदरित दोष बरन बवार ३०, ४८ ।

इस प्रकार गोस्वामी जी ने स्पष्ट कहा है कि कवि को कोष्ठ, अलंकार सन्धि प्रवाह, बर्च आदि पर अधिकार प्राप्त करना चाहिए, जिससे विभक्तियों और भाषा-रस के कारण काव्य के बर्च का अधिक निर्वोचन हो सके । अरुण अर्थात् अलंकार, रस तथा प्रसाद गुण का जिससे सम्बन्ध नियमन हो सके और हरण अर्थात् अस्मीकता आदि का परिचाय सम्भव हो सके ।

गोस्वामी तुलसीदास की भाषा

गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी कृतिओं में ब्रजभाषा और अवधी का प्रयोग किया है । 'गीतावली कवितावली' 'बोहावली' और 'विनय पत्रिका' की भाषा ब्रज है । 'मानस' की भाषा अवधी है । कविपद आलोचकों ने इसे वैतवाही भी कहा है । मानस की भाषा जोड़ बोली के विपरीत साहित्यिक अवधी है । परन्तु 'रामकथा गहूँ' 'पार्वती मंजठ' और 'जागकी मंजठ' की भाषा जोड़-जीवन के अधिक निकट की भाषा है । मानस में शब्द भण्डार की व्यापकता पर हम मुग्ध होते हैं । राजस्थानी, बुन्देली, भोजपुरी आदि भाषाओं के शब्द समूहों के अतिरिक्त अरबी और फारसी भाषाओं के शब्दों की एक व्यापक संख्या इनकी कृतिओं में विशेषकर मानस में, उपलब्ध है । विशेषी सत्य मूस भाषा की प्रकृति में समाविष्ट हो गए हैं । गोस्वामी जी द्वारा प्रयुक्त शब्दों की स्पष्टता की दृष्टि से इस प्रकार में विभाजित कर सकते हैं—

सरसम—बहुन् परब बर ठेऽति इयं मदन कलेवर गिरि वृत्ति इत्यादि ।

अर्धतत्सम—अरुण, कुमु पखीत परमात विज्ञाम, मरवार इत्यादि ।

अरबी-फारसी—साहिब, मनी बसात बाब मुसाम, मसीत बिरमानी बहान साब परबाह, सुमार पीछ पकीता, रेयत आदि ।

तदुक्त सत्य गोस्वामी जी के काव्य की ही नहीं अपितु प्रत्येक आधुनिक आर्य भाषा की मूल सम्पत्ति है । अतः ऊन्ही सुनी यहाँ नहीं दी जा रही है ।

देशज—ऊबाट, बुक बुकी बुकुदारे इत्यादि ।

'रामचरित मानस' में भाषा पात्रों के अनुकूल स्वयं चारण करती पकती है । इस दृष्टि की भाषा को दूसरी विशेषता यह है कि वह भावानुयायिनी है जिसके माध्यम से अभिव्यक्ति का स्वाभाविक विचार सम्भव हो सका है । इस की भाषा की तृतीय विशेषता है इसकी रसमयसम्पन्नता । इस प्रकार यही भाषा

गुण-संस्तिष्ट-शब्द-योजना से विभूषित है जिसमें सानुप्रासिक सौन्दर्य और अ-संमील की अविति मिश्रित है ।

रचना शैली—गोस्वामी तुलसीदास ने अपने काव्य में छ रचना विधियों का प्रयोग किया है—१ छन्द पद्यति । २ गीत पद्यति—‘गीतावली’ और ‘विनय पत्रिका’ इस पद्यति की रचनायें हैं । ३ कवित्त-सवैया-पद्यति—‘विद्यावली’ की रचना इसी विधा में है । ४ बोहा-पद्यति—मानस में बोहा भक्ता रूप में प्रयुक्त है । परन्तु ‘बोहावली’ शूद्र बोहा-पद्यति की रचना है । ५ ‘मन्त्रादि सामस’ की रचना प्रबन्ध-पद्यति में है, जिसमें कवि ने बीनाई-बोहे का प्रयोग किया है । ६ तुलसी-सप्तसई के कविम्य दोहों में कू लैको का प्रयोग प्रयुक्त है । उदाहरण —

भञ्जु तरनि अरि आदि कहै तुलसी दायमज प्रस ३,१४ । तरनि-अरि
रनि के अरि के आदि अर्थात् राहु का ‘रा’, दायमज प्रस, अर्थात् ‘राम’ का
प्रस=म ? सम्पूर्ण का अर्थ हुआ राम ।



इस प्रकार गोस्वामी जी ने स्पष्ट कहा है कि कवि को को' धनि प्रसाह, बर्ष आवि पर अधिकार प्राप्त करना चाहिए, जिस और भाषा-कर्म के कारण काव्य के बर्ष का उक्ति निर्धारण भरण अर्थात् अलंकार, रस तथा प्रसाह मूल का जिससे सम्यक नियम और ह्रास अर्थात् अस्वीकृता भाषि का परिणाम सम्भव हो सके गोस्वामी तुलसीदास की भाषा

गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी कृतियों में ब्रजभाषा और अवधी का किया है। 'बीतावधी कवितावधी' 'दोहावधी' और विनय पत्रिका भाषा ब्रज है। 'मानस' की भाषा अवधी है। कतिपय आलोचकों ने इसे ब्रज भी कहा है 'मानस' की भाषा लोक बोली के विपरीत साहित्यिक अवधी है। १ 'रामकृष्ण गहणू' 'पार्वती मंगल' और 'जानकी मंगल' की भाषा लोक-बोली के अधिक निकट की भाषा है। 'मानस' में ध्वनि मण्डार की व्यापकता पर हम मुग्ध होते हैं। रावस्वामी, दुसरेही मोक्षपुरी भाषि भाषाओं के राज्य समूहों के अतिरिक्त अरबी और फारसी भाषाओं के शब्दों की एक व्यापक संख्या इनकी कृतियों में विशेषकर मानस में उपलब्ध है। विशेषी ध्वनि मूल भाषा की प्रकृति में समाविष्ट हो गए हैं। गोस्वामी जी द्वारा प्रयुक्त शब्दों को स्वीकृता की दृष्टि से इस प्रकार में विभाजित कर सकते हैं—

उत्तम—ब्रह्म, परम ब्रह्म तैऽपि इहं, मदन कसैवर निरि हृति इत्यादि।

अर्धोत्तम—अप्यमु, पदुम पळीत परमात विनाय मरवाह इत्यादि।

अवधी-फारसी—साहिब, फनी जमात बाब मुकाम, मसीत निरमानी बहाग साज, परवाह, सुमार पीछ पकीठा, रीयत आदि।

उत्तम ध्वनि गोस्वामी जी के काव्य की ही नहीं बलितु प्रत्येक आधुनिक भार्य भाषा की मूल सम्पत्ति है। अतः उनकी सुधी यहाँ नहीं ही जा रही है।

देशज—कवाट, चुक चुकी चुबुकारे इत्यादि।

'रामचरित मानस' में भाषा पात्रों के अनुकूल स्वल्प्य कारण करती चली है। इस दृष्टि की भाषा की दूसरी विशेषता यह है कि यह भाषागुणमिनी है जिसके माध्यम से अभिव्यक्ति का स्वाभाविक विधान सम्भव हो सका है। इस की भाषा की तृतीय विशेषता है इसकी रसमूलसम्पन्नता। इस प्रकार यहाँ भाषा

रस-गुण-संक्षिप्त-ध्वनि-शोभना से विभूषित है जिसमें सानुभाविक सौन्दर्य और ध्वनि-संघीत की बलवति मिश्रणी है।

रचना शैली—पौस्वामी तुलसीदास ने अपने काव्य में छ रचना पद्यविधों का प्रयोग किया है—१. सूक्त्य पद्यति । २. गीत पद्यति—‘गीतावली’ और ‘विजय पत्रिका’ इस पद्यति की रचनायें हैं। ३. कवित्त-सर्वेसा-पद्यति—‘कवितावली’ की रचना इसी विधा में है। ४. दोहा-पद्यति—आमस में दोहा पद्य के रूप में प्रबुद्ध है। परन्तु ‘दोहावली’ बृहद् दोहा-पद्यति की रचना है। ५. रामचरित मासस की रचना प्रबन्ध-पद्यति में है, जिसमें कवि ने चौपाई-दोहे का प्रयोग किया है। ६. तुलसी-सप्तसई के कठिण दोहों में कूट सोमो का प्रयोग निरुता है। उदाहरण —

अबहु तरनि जरि जाहि कहूँ तुलसी आत्मज-जन्त ३,१४। तरनि जरि
तरनि के जरि के जाहि अनीत राहु का ‘रा’, आत्मज जन्त, अनीत ‘काम’ का
जन्त-जन्म ? सम्पूर्ण का वर्ण तुलसी राम ।



